अथाष्टमं मण्डलम्

प्रथम दो मन्त्रों का ऋषि 'प्रगाथः'=प्रभु का प्रकृष्ट गान करनेवाला है। यह 'घौर'=घोर पुत्र है, शत्रुओं के लिये अतिभयंकर है। प्रभु का गायन ही इसे शत्रुनाश की योग्यता प्राप्त कराता है। इस प्रभु-स्मरण से ही यह 'काण्व'=कण्व पुत्र अत्यन्त मेधावी बनता है। यह कहता है-.

प्रथमोऽनुवाकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

ऋषिः—प्रगाथो घौरः काण्वो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उपरिष्टाद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

प्रभु का ही शंसन

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥

१. 'प्रगाथ' मित्रों को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि **सखायः**=हे मित्रो! **अन्यत्**=प्रभु से भिन्न किसी अन्य का **मा चित् विशंसत**=शंसन व स्तवन मत करो। सदा प्रभु का स्मरण करते हुए तुम **मा रिषण्यत**=काम-क्रोध आदि से हिंसित मत होवो। जब हृदय में प्रभु का अधिष्ठान होता है, तो वहाँ वासनाओं का प्रवेश हो ही नहीं पाता। वासनाओं को हम न भी जीतवायें, पर प्रभु हमारे लिये इनका पराभव करते हैं तो ये वासनाएँ हमें हिंसित नहीं कर पाती। २. हे मित्रो! **सुते**=इस उत्पन्न जगत् में **सचा**=साथ मिलकर **वृषणम्**=उस शक्तिशाली व सुखों का वर्षण करनेवाले **इन्द्रं इत्**=परमैश्वर्यशाली व शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु को ही **स्तोता**=स्तुत करो। **च**=और **मुहुः**=बारम्बार **उक्था**=ऊँचे से गाने योग्य स्तोत्रों का **शंसत**=उस प्रभु के लिये शंसन करो। यह प्रभु-स्तवन तुम्हें सबल बनायेगा और तुम वासनाओं व रोगों से हिंसित न होवोगे।

भावार्थ—प्रभु का शंसन हमें 'काम' के आक्रमण से बचाता है। इस प्रकार यह शंसन हमें हिंसित नहीं होने देता।

ऋषिः—प्रगाथो घौरः काण्वो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीभुरिग्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'उभयंकर-उभयावी' प्रभु

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम्। विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम्॥ २ ॥

१. गत मन्त्र के अनुसार उस प्रभु का मिलकर स्तवन करो, जो **अवक्रक्षिणम्**=शत्रुओं के अवकर्षणशील हैं। **यथा**=जैसे **वृषभम्**=शक्तिशाली हैं, उसी प्रकार **अजुरम्**=अहिंसित हैं। प्रभु हमारे शत्रुओं का हिंसन करते हैं, प्रभु इनसे हिंसित नहीं होते **गां न**=एक वृषभ के समान **चर्षणी-सहम्**=हमारे शत्रुभूत मनुष्यों का पराभव करनेवाले हैं। प्रभु हमारे आन्तर व बाह्य दोनों ही शत्रुओं का हिंसन करते हैं। २. **विद्वेषणम्**=वे प्रभु (वि-द्विष्, वि=विगत) हमारे जीवनों को द्वेष से शून्य करनेवाले हैं और **संवननम्**=सम्यक् विजय को प्राप्त करानेवाले हैं (वन्=सम्भक्तौ)। **उभयंकरम्**=

इहलोक के अभ्युदय व परलोक के निःश्रेयस को प्राप्त करानेवाले हैं। **मंहिष्ठम्**=वे प्रभु दातृतम हैं, सर्वोपरि दाता हैं। हमारे लिये सब आवश्यक चीजों को देनेवाले हैं। **उभयाविनम्**=शरीर में शक्ति व मस्तिष्क में ज्ञान दोनों को वे देनेवाले हैं, प्रभु ज्ञान व शक्ति दोनों से युक्त हैं, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् हैं।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन से आन्तर व बाह्य शत्रुओं का विनाश होता है, अभ्युदय व निःश्रेयस की प्राप्ति होती है, ज्ञान व शक्ति से युक्त हमारा जीवन बनता है।

इस प्रकार हम '**मेधातिथि**'=बुद्धि की ओर निरन्तर गतिवाले व '**मेध्यातिथि**'=पवित्रता की ओर चलनेवाले बनते हैं। अगले (३ से २९ तक) मन्त्रों के ये ही ऋषि हैं—

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

आर्त भक्त नहीं, ज्ञानी भक्त बनें

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम्॥ ३॥

(१) **यत्**=जो **चित् हि**=निश्चय से **इमे नाना जनाः**=ये विविध वृत्तियोंवाले लोग हैं, वे सब **ऊतये**=रक्षण के लिये **त्वा हवन्ते**=आपको ही पुकारते हैं। सामान्यतः मनुष्य सांसारिक कामों में उलझा रहता है और ब्रह्म को भूला रहता है। परन्तु जब कभी विघ्न व कष्ट आता है तो रक्षण के लिये प्रभु को पुकारता है। यह प्रभु का आर्त भक्त कहलाता है। यह पीड़ा के दूर होने के साथ प्रभु को फिर भूल जाता है। (२) पर हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अस्माकं इदं ब्रह्म**=हमारे से किया गया यह स्तवन **ते**=आपके लिये **विश्वा च अहा**=सब दिनों में **वर्धनम्**=आपके यश का वर्धन करनेवाला **भूतु**=हो। अर्थात् हम सदा आपका स्मरण करनेवाले हों। हमारे सब कार्य आपके स्मरण के साथ हों। हम आपके ज्ञानी भक्त बनें। दुःख में, सुख में समवस्था को प्राप्त करके स्थितप्रज्ञ बनें।

भावार्थ—हम प्रभु के आर्तभक्त ही न बनकर, ज्ञानी भक्त बनें। सदा प्रभु-स्मरणपूर्वक ही सब कार्यों को करें।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीस्वराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

पुरुरूप वाज

वि तर्तूर्यन्ते मघवन्विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम्।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये॥ ४॥

(१) हे **मघवन्**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **विपश्चितः**=(वि पश् चित्) सब वस्तुओं को बारीकी से देखकर चिन्तन करनेवाले विद्वान्! **अर्यः**=शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले वीर तथा **जनानां विपः**=तत्त्वज्ञान की प्रेरणा से लोगों को कम्पित कर देनेवाले, उन्हें एक बार हिला देने वाले लोग **वितर्तूर्यन्ते**=सब कष्टों को तैर जाते हैं। (२) हे प्रभो! आप **नेदिष्ठ उप क्रमस्व**=हमें समीपता से प्राप्त होइये। हम आपके अधिक से अधिक समीप हों। आपसे दूर होने पर ही तो हम शत्रुओं का शिकार होते हैं और नाना आपदाओं में फँस जाते हैं। आप हमें **ऊतये**=रक्षण के लिये **पुरुरूपम्**=अनेक रूपोंवाले **वाजम्**=बल को **आभर**=प्राप्त कराइये। 'शरीर, इन्द्रियों, मन व बुद्धि' के विविध बलों को प्राप्त करके हम अपना रक्षण करने में समर्थ हों।

भावार्थ–हम ज्ञानी व वीर बनकर आपत्तियों को तैरनेवाले हों। प्रभु के समीप होते हुए अनेकरूपा शक्ति को प्राप्त करके रक्षण के लिये समर्थ हों।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

प्रभु का अपरित्याग

म॒हे च॒न त्वाम॑द्रिवः॒ परा॑ शु॒ल्काय॑ देयाम्। न स॒हस्रा॑य॒ नायुता॑य वज्रिवो॒ न श॒ताय॑ शतामघ॥५॥

(१) हे **अद्रिवः**=आदरणीय (आदृ) अथवा वज्रहस्ता (अद्रि=वज्र) प्रभो! मैं **महे शुल्काय**=महान् शुल्क के लिये **त्वाम्**=आपको **न परादेयाम्**=छोड़ दूँ। मुझे कितना भी अधिक धन प्राप्ति का प्रलोभन मिले तो भी मैं उस धन को लेने के विचार से आपका परित्याग न करूँ। **न**=ना ही **सहस्राय**=आमोद-प्रमोदमय जीवन के लिये आपको छोड़ दूँ। मैं भी इस विलासमय जीवन में प्रभु का परित्याग न कर बैठूँ। (२) **न**=ना ही **अयुताय**=अपार्थक्य के लिये, परिवार जनों से सदा सम्पृक्त रहने के लिये मैं आपको छोड़ूँ। (३) हे **वज्रिवः**=वज्रहस्त **शतामघ**=अनन्त ऐश्वर्यवाले प्रभो! **न शताय**=शत (सौ) वर्ष के दीर्घजीवन के लिये भी मैं आपका परत्याग न करूँ। मैं किन्हीं भी प्रलोभनों में फँसकर, हे प्रभो! आपका परित्याग न करूँ।

भावार्थ–'धन, विलास, भरपूर परिवार व दीर्घजीवन' आदि के प्रलोभन मुझे प्रभु से पृथक् करने में असमर्थ हों। मैं प्रभु का ही वरण करूँ।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'मातृ रूप' प्रभु

वस्याँ॑ इन्द्रासि मे पि॒तुरु॒त भ्रातु॒रभु॑ञ्जतः। मा॒ता च॑ मे छदयथः स॒मा व॑सो वसु॒त्वना॑य॒ राध॑से॥६॥

(१) हे **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **मे पितुः**=मेरे पिता से **वस्यान् असि**=अधिक वसानेवाले हैं, वसुमत्त हैं। पिता भी पुत्र का पालन करता है, पर वह अल्पशक्ति व अल्पज्ञान के कारण पालन में कहीं-कहीं असमर्थ हो जाते हैं। प्रभु परम पिता हैं। सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् होने के कारण उनके पालन में कहीं कमी नहीं होती। (२) **उत**=और **अभुञ्जतः**=न पालन करनेवाले **भ्रातुः**=भाई से तो वे प्रभु वस्यान् हैं ही। सामान्यतः संसार में भाई अपने ही परिवार का ध्यान करता है और अपने अन्य भाइयों का ध्यान हीं कर पाता। (२) हे **वसो**=वसानेवाले प्रभो! आप **च**=और **मे माता**=मेरी माता **छदयथः**=मुझे आपत्तियों से बचाते हो (छद् अपवारणे) मेरी आपत्तियों को दूर करते हो सो आप और माता **समौ**=सम ही हो। अर्थात् पिता हो, भ्राता हो। पर सब से बड़ी बात यह की आप माता हो। आप **वसुत्वनाय**=हमारे उत्तम निवास के लिये होते हो और **राधसे**=कार्यसाधक ऐश्वर्य के लिये होते हैं।

भावार्थ–माता के समान हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभु हमारे निवास का कारण बनते हैं और हमारी कार्यसिद्धि के लिये आवश्यक धनों के देनेवाले होते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

व्याकुल भक्त की करुण पुकार

क्वे॑य॒थ क्वेद॑सि पुरु॒त्रा चि॒द्धि ते॒ मनः॑। अल॑र्षि युध्म खजकृत्पुरन्दर॒ प्र गा॑य॒त्रा अ॑गासिषुः॥७॥

(१) एक भक्त प्रभु के दर्शन में समर्थ न होता हुआ, वासनाओं से पीड़ित होने पर पुकार उठता है कि हे प्रभो! **क्व इयथ**=आप कहाँ गये हुए हो। आप **क्व इत्**=कहाँ ही **असि**=विद्यमान हो। **ते मनः**=आपका मन **चित्**=निश्चय से **पुरुत्रा**=बहुत स्थानों पर है। आपने सभी भक्तों का

तो कल्याण करना है, केवल मेरा ही कल्याण तो आपका लक्ष्य नहीं। (२) फिर भी इस समय मैं काम-क्रोध आदि शत्रुओं से घिरा हुआ हूँ, सो **अलर्षि**=आइये (आगच्छ)। हे **युध्म**=युद्ध कुशल और **खजकृत्**=संग्राम को करनेवाले और **पुरन्दर**=इन आसुर पुरियों का विदारण करनेवाले प्रभो! **गायत्राः**=गुणगान में कुशल स्तोता लोग **प्र अगासिषुः**=प्रकर्षेण आपका गायन करते हैं। आपके स्तवन के द्वारा वे आपको अपने हृदयों में आसीन करते हैं और इस प्रकार आपके द्वारा इन शत्रुओं पर विजय पाकर स्वस्थ होते हैं।

भावार्थ-हे प्रभो! आइये। अपने ही इन मेरे वासनारूप शत्रुओं के साथ युद्ध करना है।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

स्तवन व आसुर पुरियों का विदारण

प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरन्दरः। याभिः काण्वस्योप बर्हिरासदं यासद्वज्री भिनत्पुरः॥८॥

(१) **अस्मै**=इस प्रभु की प्राप्ति के लिये **गायत्रम्**=गाथक साम को **प्र अर्चत**=गाते हुए अर्चन करो, **यः**=जो प्रभु **वावातुः**=(वन् संभक्तौ) संभजनशील पुरुष का **पुरन्दरः**=शत्रु पुरियों का विदारण करनेवाला है। (२) उन ऋचाओं से इस गायत्र साम का गायन करो, **याभिः**=जिनसे कि **काण्वस्य**=इस मेधावी पुरुष के **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय में ये प्रभु **उपासदम्**=(उपासत्तुं) आसीन होने के लिये **यासत्**=आते हैं और **वज्री**=वज्रयुक्त होते हुए **पुरः**=आसुर पुरियों को **भिनत्**=विदीर्ण करते हैं।

भावार्थ-गायत्र साम से गाये गये प्रभु हमारे शत्रुओं की पुरियों का विदारण करते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

कौन से इन्द्रयाश्व?

ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये सहस्रिणः।
अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुवस्तेभिर्नस्तूयमा गहि॥९॥

(१) **ये**=जो **ते**=तेरे **अश्वासः**=इन्द्रियाश्व **दशग्विनः सन्ति**=दश लक्षणक धर्म में चलनेवाले हैं (धृतिः क्षमा दमो स्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्)। **शतिनः**=सौ वर्ष तक स्थिर रहनेवाले हैं। ये **सहस्रिणः**=जो (स+हस्) आनन्दमय प्रभु की ओर हमें ले जानेवाले हैं **तेभिः**=उन इन्द्रियाश्वों के साथ **नः**=हमें **तूयम्**=शीघ्र ही **अगहि**=(आगच्छ) प्राप्त होइये। (२) उन इन्द्रियाश्वों के साथ हमें प्राप्त होइये, **ये**=जो **ते**=आपके इन्द्रियाश्व **वृषणः**=शक्तिशाली है और **रघुद्रुवः**=तीव्र गतिवाले हैं, शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाले हैं।

भावार्थ-प्रभु हमें उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करायें जो दश लक्षणधर्म में प्रवृत्त हों, सौ वर्ष तक चलें, ब्रह्म को प्राप्त करायें, शक्तिशाली हों व शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाले हों।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

वेद-धेनु की प्रभु से याचना

आ त्वद्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम्। इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरंकृतम्॥१०॥

(१) **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली **त्वा**=तेरे से **अद्य**=आज **धेनुम्**=ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेद-धेनु को **आहुवे**=पुकारता हूँ, वेद-धेनु के लिये याचना करता हूँ। आप मुझे इस वेद-धेनु को प्राप्त कराइये, जो **सबर्दुघाम्**=ज्ञानदुग्ध का हमारे में पूरण करनेवाली है। **गायत्रवेपसम्**=स्तुति को

हमारे अन्दर प्रक्षिप्त करनेवाली है, अर्थात् स्तुति को हमारे में प्रेरित करनेवाली है इस वेदवाणी के स्वाध्याय से हम स्तुति की वृत्तिवाले बनेंगे। (२) उस वेद-धेनु को हमें प्राप्त कराइये, जो **सुदुघाम्**=सुख संदोह्य है, अध्यमन के द्वारा आराम से समझने योग्य है 'वेदेन वेदः ज्ञातव्यः'। **अन्याम्**=विलक्षण है, अन्य मनुष्यकृत ग्रन्थों जैसी नहीं है। **इषम्**=उत्तम कर्मों की प्रेरणा देनेवाली है और **उरु धाराम्**=विशाल ज्ञानदुग्ध की धाराओंवाली है। **अरंकृतम्**=जीवन को अलंकृत करनेवाली है, अथवा **अरम्**=पर्याप्त भोगों को **कृताम्**=करनेवाली है 'आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्' आदि सातों रत्नों को देनेवाली है।

भावार्थ–प्रभु कृपा से हम वेद-धेनु को प्राप्त करें, उसके ज्ञानदुग्ध से अपना उचित पोषण करनेवाले हों।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'कुत्स-आर्जुनेय-गन्धर्व-अस्तृत'

यत्तुदत्सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना। वहत्कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुः त्सरद्गन्धर्वमस्तृतम्॥ ११॥

(१) **यत्**=जब **सूरः**=वह उत्तम प्रेरणा देनेवाला प्रभु **एतशम्**=(shining) इस निर्मल व दीप्त मनवाले पुरुष को **तुदत्**=प्रेरित करता है, तो **वङ्कू**=गतिशील **वातस्य पर्णिना**=वायु के समान पतनवाले-वेगवाले इन्द्रियाश्वों को **वहत्**=प्राप्त कराता है। हम एतश बनें, निर्मल मनवाले बनें। प्रभु हमें प्रेरणा को प्राप्त कराते हैं और तीव्र गतिवाले इन्द्रियाश्वों को देते हैं। (२) **शतक्रतुः**=वे अनन्त प्रज्ञानों व शक्तियोंवाले प्रभु **कुत्सम्**=वासनाओं का संहार करनेवाले, **आर्जुनेयम्**=श्वेत उज्ज्वल चरित्रवाले, **गन्धर्वम्**=वेदवाणियों को धारण करनेवाले **अस्तृतम्**=किसी से हिंसित न होनेवाले उपासक को **त्सरत्**=गुप्त रूप में प्राप्त होते हैं। यह 'कुत्स, आर्जुनेय, गन्धर्व व अस्तृत' व्यक्ति अन्दर हृदयदेश में प्रभु का दर्शन करता है। प्रभु 'गुहाचरन्' नामवाले हैं। हृदयरूप गुहा में सुगुप्त रूप से स्थित हैं।

भावार्थ–प्रभु शुद्ध मनवाले पुरुष को प्रेरणा प्राप्त कराते हैं। गतिशील इन्द्रियाश्वों को देते हैं। वासनाओं का संहार करनेवाले पुरुष के हृदयदेश में सुगुप्त रूप से निवास करते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

प्राकृतिक चमत्कार

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विह्रुतं पुनः॥ १२॥

(१) **यः**=जो प्रभु **अभिश्रिषः**=सन्धान द्रव्य के **ऋते चित्**=बिना ही, **जत्रुभ्यः आतृदः पुरा**=ग्रीवास्थिवाले स्थान से कट जाने से पूर्व **सन्धिं सन्धाता**=जोड़ को फिर से मिला देनेवाले हैं, वे प्रभु **मघवा**=सचमुच परमैश्वर्यवाले हैं। प्रभु ने शरीर की व्यवस्था ही इस प्रकार से की है कि सब घाव फिर से भर जाते हैं, गर्दन ही कट जाये तो बात और है अन्यथा सब कटाव फिर से जुड़ जाते हैं। (२) **पुरूवसुः**=वे पालक व पूरक वसुओंवाले प्रभु **विह्रुतम्**=कटे हुए को **पुनः**=फिर से **इष्कर्ता**=ठीक कर देते हैं। सब कटावों को प्रभु फिर से भर देते हैं।

भावार्थ–शरीर की इस रचना में क्या ही प्रभु का चमत्कार है कि बड़े से बड़ा घाव भी फिर से भर जाता है।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—शङ्कुमतीबृहतीङ्क स्वरः—मध्यमःङ्क

मा भूम निष्ट्याः इव

मा भूम निष्ट्याइवेन्द्र त्वदरणाइव। वनानि न प्रजाहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि॥ १३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! हम **निष्ट्याः इव**=घर से बहिष्कृत से **मा भूम**=मत हो जायें। आप ही तो हमारे सच्चे पिता व माता हैं, हम आप से दूर न हो जायें। और परिणामतः **त्वत्**=आप से **अरणाः**=(अरमणाः) आनन्द को न प्राप्त होनेवाले न हो जायें, हमें आपकी उपासना में ही आनन्द आये। (२) इस प्रकार आप से बहिष्कृत न हुए-हुए और आपकी उपासना में आनन्द को लेनेवाले हम **प्रजहितानि**=शाखा पत्र आदि से त्यक्त (क्षीण) **वनानि न**=वनों की तरह (मा भूम=) मत हो जायें, हम पुत्र-पौत्रों से वियुक्त से न हो जायें। हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! हम **दुरोषासः**=सब बुराइयों को दग्ध करनेवाले होते हुए **अमन्महि**=आपका स्तवन करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु से बहिष्कृत न हो जायें, प्रभु की उपासना में ही आनन्द का अनुभव करें। पुत्र-पौत्रों से भरे परिवारवाले हों और बुराइयों का दहन करते हुए आपका स्तवन करनेवाले बनें।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—विराड्बृहतीङ्क स्वरः—मध्यमःङ्क

अनाशवः-अनुग्रासः

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन्। सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि॥ १४॥

(१) हे **वृत्रहन्**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **अनाशवः**=बहुत हबड़-दबड़ में न पड़े हुए, अर्थात् शान्तभाव से सब कार्यों को करते हुए, **च**=और **अनुग्रासः**=उग्र व क्रूर क्रोधी वृत्तिवाले न होते हुए हम **इत्**=निश्चय से **अमन्महि**=आपका मनन व स्तवन करते हैं। (२) हे **शूर**=हमारे शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **सकृत्**=एक बार तो **ते महता राधसा**= आपसे दिये गये इस महान् ज्ञानैश्वर्य के साथ **स्तोमं अनु सु मुदीमहि**=आपके स्तवन के अनुसार उत्तम आनन्द का अनुभव करते हैं। ज्ञानपूर्वक आपका स्तवन हमें आनन्दित करनेवाला होता है।

भावार्थ—हम शान्त व मृदु स्वभाव बनकर प्रभु का स्तवन करते हैं। ज्ञानपूर्वक इन प्रभु-स्तवनों में ही आनन्द का अनुभव करते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—निचृद्बृहतीङ्क स्वरः—मध्यमःङ्क

उपासना व सोमरक्षण

यदि स्तोमं मम श्रवदस्माकमिन्द्रमिन्दवः। तिरः पवित्रं ससृवांस आशवो मन्दन्तु तुग्र्यावृधः॥ १५॥

(१) **यदि**=यदि **मम स्तोमम्**=मेरे से किये गये स्तुति समूह को **श्रवत्**=वे प्रभु सुनते हैं तो **इन्दवः अस्माकम्**=ये सोमकण हमारे होते हैं। और ये सोमकण **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **मन्दन्तु**=आनन्दित करनेवाले हों। प्रभु की उपासना से वासनाओं का आक्रमण नहीं होता और सोमकण सुरक्षित रहते हैं। (२) ये सोमकण **तिरः**=तिरोहित रूप में रुधिर के अन्दर व्याप्त हुए-हुए **पवित्रं ससृवांसः**=पवित्र हृदयवाले पुरुष की ओर गतिवाले होते हैं। **आशवः**=ये शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाले होते हैं। और **तुग्र्यावृधः**=जलों से वर्धन को प्राप्त होते हैं। 'आपः रेतो भूत्वा०'=जल ही तो शरीर में रेतःकणों के रूप में होते हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना से शरीर में सोमकणों का रक्षण होता है।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—आर्चीभुरिग्बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

यज्ञशीलता व प्रभु-स्तवन

आ त्वद्य सधस्तुतिं वावातुः सख्युरा गहि। उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वावत्वधा ते वश्मि सुष्टुतिम्॥ १६॥

(१) हे प्रभो! **अद्य**=आज **वावातुः**=आपके सम्भजन की कामनावाले **सख्युः**=मित्र की **सधस्तुतिम्**=सब घरवालों के साथ मिलकर की जानेवाली इस स्तुति को **तु**=तो **आ आगहि**=अवश्य प्राप्त होइये। हम मिलकर आपका स्तवन करनेवाले बनें। (२) **मघोनाम्**=यज्ञशील पुरुषों की (मघ=मख) **उपस्तुतिः**=स्तुति **त्वा**=आपको **प्र अवतु**=प्रीणित करनेवाली हो। हम यज्ञशील बनें और आपके स्तवन में प्रवृत्त हों। **अधा**=अब मैं तो **ते सुष्टुतिम्**=आपकी उत्तम स्तुति की ही **वश्मि**=कामना करता हूँ, मैं यही चाहता हूँ कि आपका स्तवन करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—मैं आपका स्तोता व सखा बनूँ, यज्ञशील बनकर आपका ही स्तवन करनेवाला होऊँ।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद्बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

'उपासना, कर्म व स्वाध्याय' द्वारा सोमरक्षण

सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत। गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्नरो निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः॥ १७॥

(१) **सोमम्**=सोम शक्ति को **हि**=निश्चय से **अद्रिभिः सोत**=उपासना के द्वारा उत्पन्न करो, अपने अन्दर प्रेरित करो। (adore) प्रभु की उपासना हमारे जीवन में सोम शक्ति की स्थिरता का कारण बनती है। **ईम्**=निश्चय से **एनम्**=इस सोम को **अप्सु**=कर्मों में **आधावतः**=शुद्ध करो। कर्मों में लगे रहने से यह सोम वासनाओं से मलिन नहीं होता। (२) **गव्यावस्त्रा इव**=ज्ञान की वाणियों को वस्त्रों की तरह **वासयन्तः इत्**=धारण करते हुए ही **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **वक्षणाभ्यः निर्धुक्षन्**=सब प्रकार की उन्नतियों (growth) के लिये इन सोमों का दोहन करते हैं। ज्ञान प्राप्ति में लगे रहना हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाता है। सो ज्ञानवस्त्रों का धारण सोमरक्षण में सहायक होता है। यह सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन भी बनता है। इस प्रकार सोम का सद्व्यय होकर सब प्रकार की उन्नति हो पाती है।

भावार्थ—सोमरक्षण के साधन ये हैं–(१) उपासना (अद्रिभिः), (२) कर्मव्यापृति (अप्सु), (३) स्वाध्याय (गव्या वस्त्रा वासयन्तः)। सुरक्षित सोम सब उन्नतियों का साधन बनता है।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड्बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

सुक्रतो पृण

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण॥ १८॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि **अध**=अब **ज्मः**=शरीररूप पृथिवी के दृष्टिकोण से **वा**=या **अध**=अब **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक के दृष्टिकोण से तथा **बृहतः**=विशाल **रोचनात्**=दीप्त हृदयान्तरिक्ष के दृष्टिकोण से **अधि वर्धस्व**=आधिक्येन वृद्धिवाला हो। शरीर को दृढ़, मस्तिष्क को ज्ञानोज्ज्वल व हृदय को नैर्मल्य दीप्त बनानेवाला हो। (२) हे **सुक्रतो**=उत्तम कर्मों व प्रज्ञानोंवाले जीव! तू **मम अया गिरा**=मेरी इस ज्ञान वाणी के द्वारा **जाता**=उत्पन्न सब अंग-प्रत्यंगों को **तन्वा**=शक्ति के विस्तार से **आपृण**=आपूरित कर। वेदवाणी में उपदिष्ट मार्ग से चलते हुए हम सब अंगों को शक्तिशाली बनानेवाले हों।

भावार्थ–हम शरीर, मस्तिष्क व हृदय के दृष्टिकोण से उन्नत हों। वेदवाणी के अनुसार जीवन को बिताते हुए सब अंगों की शक्ति का वर्धन करें।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'प्रभु प्राप्ति, ज्ञान व शक्ति वर्धन'

इन्द्राय सु मदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम्। शक्र एणं पीपयद्विश्वया धिया हिन्वानं न वाजयुम्॥ १९॥

(१) **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये **सोमं सु सोत**=सोम को (वीर्य को) सम्यक् उत्पन्न करो, जो सोम **मदिन्तमम्**=मादयितृतम है, अधिक से अधिक उल्लास का जनक है और **वरेण्यम्**=वरणीय है, सम्भजनीय है। सोम के रक्षण के द्वारा ही प्रभु की प्राप्ति होती है। (२) **शक्रः**=वे सर्वशक्तिमान् प्रभु **एनम्**=इस सोम को **पीपयत्**=हमारे अन्दर आप्यायित करते हैं। उस सोम को आप्यायित करते हैं, जो **विश्वया धिया हिन्वानम्**=सम्पूर्ण ज्ञान से हमें प्रीणित करता है, **न**=और (न=च) **वाजयुम्**=हमारे साथ शक्ति को जोड़ता है। सोमरक्षण से ज्ञान व शक्ति का वर्धन होता है।

भावार्थ–उस प्रभु की प्राप्ति के लिये हम सोम का रक्षण करें। सुरक्षित सोम हमारे ज्ञान व बल का वर्धन करेगा।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

कः ईशानं न याचिषत्

मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत्॥ २०॥

(१) हे प्रभो! **सोमस्य गल्दया**=(गालनेन आस्रावणेन) शरीर में सोम के आस्रावण के हेतु से **अहम्**=मैं **त्वा**=आप से **गिरा**=इन ज्ञान वाणियों के द्वारा **सदा याचन्**=सदा याचना करता हुआ होऊँ। अर्थात् मेरी एक ही आराधना हो कि प्रभु कृपा से मैं सोम का शरीर में रक्षण कर पाऊँ। (२) इस प्रकार **सवनेषु**=यज्ञों में याचना करता हुआ मैं **भूर्णिम्**=पालन करनेवाले **मृगं न**=अन्वेषणीय के समान उन आपको (मृग अन्वेषणे) **मा चुक्रुधम्**=क्रुद्ध न कर बैठूँ। यह सोमरक्षण की निरन्तर रट बारम्बार प्रार्थना आप के क्रोध का कारण न बन जाये। **ईशानम्**=ईशान स्वामी से **कः न याचिषत्**=कौन याचना नहीं करता! और किससे मैंने याचना करनी! आप से ही तो माँगना है।

भावार्थ–मैं सदा प्रभु से यही याचना करूँ कि मैं यज्ञों में लगा रहूँ और सोम को शरीर में सुरक्षित कर पाऊँ।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

उल्लास, शक्ति व शत्रु विजेता सन्तान

मदेनेषितं मदमुग्रमुग्रेण शवसा। विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदे हि ष्मा ददाति नः॥ २१॥

(१) **मदेन**=उल्लास के हेतु से तथा **उग्रेण शवसा**=प्रबल शक्ति के हेतु से **इषितम्**=शरीर में प्रेरित किये गये इस **उग्रम्**=तेजस्वी **मदे**=उल्लासजनक सोम को जितेन्द्रिय पुरुष पीने का प्रयत्न करे। (२) **मदे**=सोमपान से जनित उल्लास के होने पर वे प्रभु **नः**=हमारे लिये **हि ष्मा**=निश्चय से **विश्वेषां तरुतारम्**=सब शत्रुओं के तैर जानेवाले **मदच्युतम्**=शत्रुओं के मद को च्युत करनेवाले सन्तान को **ददाति**=देते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से 'उल्लास व शक्ति' प्राप्त होती है। इससे शत्रु विजेता सन्तान प्राप्त होते है।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—निचृद्बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

सुन्वन्-स्तुवन् (दाश्वान्)

शेवारि वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे।
स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुतः ॥ २२ ॥

(१) **देवः**=वह सब कुछ देनेवाला प्रभु **शेवारे**=(शेवं सुखं तस्य अरे गमके यज्ञे) सुख प्राप्त करानेवाले यज्ञों में **दाशुषे**=हविरूप से घृत आदि को देनेवाले **मर्ताय**=मनुष्य के लिये **पुरु**=बहुत **वार्या**=वरणीय धनों को **रासते**=देता है। वस्तुतः प्रभु यज्ञशील को सब काम्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। यह यज्ञ 'कामधुक्' तो है ही। (२) **सः**=वह **विश्वगूर्तः**=सर्वत्र उद्यमवाले **अरिष्टुतः**=(ऋ गतौ) गतिशील पुरुषों से स्तुति किये गये प्रभु **सुन्वते**=यज्ञशील **च**=और **स्तुवते**=स्तुति करनेवाले प्रभु के लिये सब आवश्यक वस्तुओं को देते ही हैं।

भावार्थ—दानशील-यज्ञशील स्तोता के लिये प्रभु सब आवश्यक वस्तुओं को देते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—आर्चीभुरिग्बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

'चित्र राधस्' की प्राप्ति

एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा। सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरा सोमेभिरुरु स्फिरम्॥ २३ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यवन् प्रभो! **आयाहि**=आप आइये। हे **देव**=सब कुछ देनेवाले प्रभो! **चित्रेण राधसा**=अद्भुत व चायनीय (पूजनीय-उत्कृष्ट) धन से **मत्स्व**=हमें आनन्दित करिये। (२) हे प्रभो! आप **सरः न**=एक जलाशय की तरह **उरु**=विशाल व **स्फिरम्**=प्रवृद्ध **उदरम्**=मध्यभाग को **सपीतिभिः सोमेभिः**=प्राणों के साथ पीये जाते हुए इन सोमों से **प्रासि**=पूर्ण करते हैं। प्राणसाधना के द्वारा शरीर में सोमकणों की ऊर्ध्व गति होती है। इस प्रकार प्राण का सोम का पान करनेवाले होने से 'सपीति' कहे गये हैं। इन सोमकणों के रक्षण से शरीर का मध्य, अर्थात् हृदयान्तरिक्ष प्रवृद्ध व विशाल बनता है। वस्तुतः यह सोमरक्षण ही अद्भुत ऐश्वर्य की प्राप्ति का साधन बनता है।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से हम सोम का रक्षण कर पायें। यह सोमरक्षण हमारे लिये अद्भुत ऐश्वर्य की प्राप्ति का साधन बने। इससे हमारा हृदयान्तरिक्ष विशाल व प्रवृद्ध बने।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—आर्षीबृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

अर्वाञ्चि खानि (अन्तर्मुखी इन्द्रियाँ)

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये॥ २४॥

(१) हे प्रभो! **हिरण्यये रथे**=इस हितरमणीय, या तेजस्विता से दीप्त ज्योतिर्मय शरीर-रथ में **युक्ताः**=जुते हुए **हरयः**=इन्द्रियाश्व **आशतम्**=शतवर्षपर्यन्त **आ सहस्रम्**=(स+हस्) आनन्दमय-कोश तक **वहन्तु**=हमें प्राप्त करायें। ये इन्द्रियाश्व बाहर विषयों में न भटककर हमें अन्नमय कोश से ऊपर प्राणमयकोश में, वहाँ से मनोमय व विज्ञानमयकोश में होते हुए आनन्दमयकोश में प्राप्त करानेवाले हों। ताकि **सोमपीतये**=सोम का हम पान कर सकें, अर्थात् सोम का शरीर में ही रक्षण

करनेवाले हों। (२) हे प्रभो! इस प्रकार ये इन्द्रियाश्व **ब्रह्मयुजः**=एक महान् लक्ष्य से (ब्रह्म=great) हमें सम्बद्ध करनेवाले हों। और **केशिनः**=प्रकाश की रश्मियोंवाले हों।

भावार्थ—हमारी इन्द्रियाँ शरीर-रथ में जुती हुई विषयों में न भटककर हमें आनन्दमयकोश की ओर ले चलें। इस प्रकार ये हमें एक महान् लक्ष्य से सम्बद्ध करनेवाली हों और प्रकाश की रश्मियोंवाली हों।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

हरी मयूरशेप्या

आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये॥ २५॥

(१) हे प्रभो! इस **हिरण्यये रथे**=मेरे हितरमणीय-तेजस्विता से दीप्त शरीर-रथ में **शितिपृष्ठा**=श्वेत पृष्ठवाले, अर्थात् वासनाओं के आवरण से न मलिन हुए-हुए, **मयूरशेप्या**=(मह्यां रौति) प्रभु-स्तवन द्वारा उत्तम रूप (शेप) को प्राप्त हुए-हुए **हरी**=इन्द्रियाश्व **त्वा**=आपको **आवहताम्**=प्राप्त करायें। हमारी इन्द्रियाँ विषय मलिन न हों, अपितु स्तुति से दीप्त हों। और इस प्रकार ये इन्द्रियाँ अर्वाङ्मुखी होती हुई प्रभु प्राप्ति का साधन बनें। (२) आपको शरीर-रथ में प्राप्त कराना इस **मध्वो**=जीवन को मधुर बनानेवाले, **अन्धसः**=आध्यातव्य अथवा जीवन के लिये अन्नरूप **विवक्षणस्य**=विशिष्ट उन्नति के साधनभूत (वक्षण=growth) सोम के **पीतये**=पान के लिये हो। हम सोम का शरीर में रक्षण करते हुए सब प्रकार से उन्नत हों।

भावार्थ—हमारे इन्द्रियाश्व प्रभु-स्तवन द्वारा उज्ज्वल बने रहें। सोम का रक्षण करते हुए हम उन्नत हों।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'परिष्कृत रसी' सोम

पिबा त्वंस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपाइव। परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते॥ २६॥

(१) हे **गिर्वणः**=ज्ञानपूर्वक उच्चारित स्तुतिवाणियों से सम्भजनीय प्रभो! **अस्य सुतस्य**=इस उत्पन्न हुए-हुए सोम का **पूर्वपाः इव**=सब से प्रथम पान करनेवाले के समान **पिबा तु**=अवश्य पान कर। हम आपके स्तवन के द्वारा इस सोम का रक्षण करनेवाले बनें। (२) **परिष्कृतस्य**=वासनाओं से न मलिन हुए-हुए **रसिनः**=जीवन को रसमय बनानेवाले इस सोम की **इयम्**=यह **आसुतिः**=उत्पत्ति **चारुः**=अत्यन्त सुन्दर है और **मदाय पत्यते**=यह उल्लास के लिये होती है (पत्यते संपद्यते सा०)। परिष्कृत सोम जीवन में सुरक्षित हुआ आनन्द का जनक होता है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन सोमरक्षण का साधन बने। सुरक्षित सोम उल्लास का जनक हो।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सतत प्रभु-स्मरण

य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः।
गमत्स शिप्री न स योषदा गमद्धवं न परि वर्जति॥ २७॥

(१) **यः**=जो प्रभु **एकः अस्ति**=अद्वितीय हैं **दंसना**=अपने सृष्टि उत्पत्ति आदि कर्मों से **महान्**=महनीय व पूजनीय हैं। **व्रतैः**=सूर्य, विद्युत्, अग्नि आदि देवों के निर्माण रूप कर्मों से

उग्रः=अत्यन्त तेजस्वी हैं, वे प्रभु **अभिगमत्**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त हों, हम प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनें। (२) **सः**=वे प्रभु **शिप्री**=शोभन हनु व नासिकावाले हैं। प्रभु ने हमारे लिये उत्तम दंष्ट्राओं व नासिका को प्राप्त कराया है। इन जबड़ों से खूब चबाकर भोजन करते हुए हम नीरोग बने रहते हैं और नासिका से प्राणसाधना करते हुए मन को निर्मल बना पाते हैं। **सः**=वे प्रभु **न योषत्**=कभी हमारे से पृथक् न हों। **हवं आगमत्**=हमारे पुकार के होते ही हमें प्राप्त हों। **न परिवर्जति**=प्रभु कभी हमारा परित्याग न कर दें। हम अपने उत्तम कर्मों से सदा प्रभु के प्रिय बने रहें।

भावार्थ–प्रभु अद्वितीय हैं। हम उत्तम कर्मों को करते हुए, नीरोग व निर्मल बनते हुए, सदा प्रभु के प्रिय रहें। कभी प्रभु से पृथक् न हों।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृत् पथ्या बृहती॥
स्वरः—मध्यमः॥

शुष्णासुर की पुरी का संपेषण

त्वं पुरं चरिष्ण्वं वधैः शुष्णस्य सं पिणक्।
त्वं भा अनु चरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः॥ २८॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रु विद्रावक प्रभो! **त्वम्**=आप **यत्**=जब **हव्यः**=पुकारने योग्य होते हैं, अर्थात् जब उपासकों से आप उपासनीय होते हैं, तो **शुष्णस्य**=सुखा देनेवाले इस कामदेव की (शुष्णासुर के) **चरिष्ण्वम्**=निरन्तर चरणशील **पुरम्**=नगरी को **वधैः**=आयुधों से, इन्द्रिय, मन व बुद्धि रूप अस्त्रों से **सं पिणक्**=छिन्न-भिन्न कर देते हैं। कामाक्रान्त पुरुष अत्यन्त अशान्त होता है। सो काम की पुरी को 'चरिष्ण्वं' कहा गया है। (२) इस काम की पुरी के विध्वंस के होने पर **त्वम्**=आप **भाः अनुचरः**=दीप्तियों के साथ हमें प्राप्त होते हैं। **अध**=अब **द्विता**=हमारे जीवनों में दो का विस्तार होता है (द्वौ तनोति) शरीर में शक्ति का (=क्षत्र का) तथा मस्तिष्क में ज्ञान का (=ब्रह्म का) काम विध्वंस शरीर में शक्ति संचय व मस्तिष्क में ज्ञान संचय का कारण बनता है।

भावार्थ–हम प्रभु की उपासना करते हुए काम का विध्वंस करनेवाले बनें। इस काम विध्वंस से दीप्तियों को प्राप्त करते हुए 'ब्रह्म व क्षत्र' का विकास करें।

ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'प्रातः, मध्याह्न, सायं व अर्धरात्रि' में प्रभु-स्मरण

मम त्वा सूर उदिते मम मध्यन्दिने दिवः।
मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत॥ २९॥

(१) हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **सूरे उदिते**=सूर्योदय के समय **मम स्तोमासः**=मेरे से किये जानेवाले स्तवन **त्वा**=आपको **आ अवृत्सत**=मेरी ओर आवृत्त करनेवाले हों (आवर्तयन्तु)। सूर्योदय के समय मैं आपका स्तवन करूँ। इसी प्रकार **दिवः मध्यन्दिने**=दिन के मध्यभाग में, मध्याह्न में **मम**=मेरे से किये गये ये स्तवन आपको मदभिमुख करनेवाले हों। (२) **प्रपित्वे**=दिन के अवसान के प्राप्त होने पर, अर्थात् सायंकाल के समय भी **मम**=मेरे स्तवन आपको मदभिमुख करें। तथा **शर्वरे अपि**=रात्रि के समय भी ये स्तोम आपको मदभिमुख करनेवाले हों। मैं सदा प्रातः, मध्याह्न, सायं व रात्रि में आपका ध्यान करता हुआ आपको अपने अभिमुख करनेवाला बनूँ। सदा आपके समीप रहता हुआ अपने कर्त्तव्य कर्मों को अप्रमाद से करूँ।

भावार्थ–हम प्रातः, मध्याह्न, सायं व अर्धरात्रि में, अर्थात् सदा प्रभु-स्मरण करते हुए अपने जीवनों को पवित्र बनायें। प्रभु से दूर होने पर ही जीवनो में अपवित्रता का प्रवेश होता है।

ऋषिः—आसङ्गः प्लायोगिः॥ **देवता**—आसङ्गस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—आर्चीभुरिग्बृहती॥
स्वरः—मध्यमः॥

निन्दिताश्व का प्रपथी बनना

स्तुहि स्तुहीदेते घा ते मंहिष्ठासो मघोनाम्।
निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे॥ ३०॥

(१) हे जीव **स्तुहि स्तुहि इत्**–तू स्तवन करनेवाला बन और स्तवन करनेवाला बन ही। इस स्तवन के करने पर **एते**–ये **ते**–तेरे इन्द्रियाश्व **घा**=निश्चय से **मघोनां मंहिष्ठासः**=(मघ=मख) यज्ञशील पुरुषों में भी दातृतम होते हैं। प्रभु-स्तवन से लोभ विनष्ट होता है, दान की वृत्ति पुष्पित होती है। (२) प्रभु-स्तवन से पूर्व जो व्यक्ति **निन्दिताश्वः** कुत्सित इन्द्रियाश्वोंवाला बना हुआ था, वह **प्रपथी**=प्रकृष्ट मार्ग पर चलनेवाला बनता है, **परमज्याः**=उत्कृष्ट शत्रुओं को भी विनष्ट करनेवाला होता है। हे **मेध्यातिथे**=मेध्य प्रभु को अतिथि बनानेवाले जीव! इस स्तवन से तू **मघस्य**–यज्ञ का हो जाता है, यज्ञमय तेरा जीवन बन जाता है।

भावार्थ–प्रभु-स्तवन करने से इन्द्रियाँ निन्दित वृत्तियों का परित्याग करके शुभ मार्ग की ओर चलती हैं।

ऋषिः—आसङ्गः प्लायोगिः॥ **देवता**—आसङ्गस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

याद्वः पशुः

आ यदश्वान्वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम्।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः॥ ३१॥

(१) **यत्**=जब **अहम्**=मैं **वनन्वतः**–प्रभु का सम्भजन करते हुए **अश्वान्**=इन्द्रियाश्वों को **श्रद्धया**=बड़ी श्रद्धा से **रथे**=शरीर-रथ में जोतकर चलता हूँ तो **आरुहम्**=उन्नतिपथ पर आरूढ़ होता हूँ। इन्द्रियाश्वों को अलस नहीं होने देता, इसी कारण मैं अग्रगति कर पाता हूँ। (२) **उत**–और **यः**=जो **याद्वः** (यद्वो मनुष्याः) मनुष्यों का हित करनेवाला **पशुः**–द्रष्टा **अस्ति** होता है यह **वामस्य**=सुन्दर **वसुनः**–वसु का, धन का **चिकेतति**–जाननेवाला बनता है।

भावार्थ–प्रभु-सम्भजन पूर्वक जीवनयात्रा में आगे बढ़नेवाला व्यक्ति मानव हित की भावनावाला होता है यह तत्त्वद्रष्टा बनकर सुन्दर धनों का अर्जन करनेवाला बनता है, उत्तम साधनों से ही धन कमाता है।

ऋषिः—आसङ्गः प्लायोगिः॥ **देवता**—आसङ्गस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—आर्चीभुरिग्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

आसंगस्य स्वनद्रथः

य ऋज्रा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्ययां। एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभंगासङ्गस्य स्वनद्रथः॥ ३२॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **यः**=जो **ऋज्रा**–ऋजुगामी इन्द्रियाश्वों को **मह्यं मामहे**=मेरे लिये देता है अथवा इन इन्द्रियाश्वों से मेरा पूजन करता है, **एषः**=यह उपासक **हिरण्यया त्वचा सह**= ज्योतिर्मय, तेजस्वी, आवरणभूत शरीर के साथ **विश्वानि**=सब **सौभगानि**–उत्तम ऐश्वर्यों को **अभ्यस्तु**-सर्वतः प्राप्त हो, उन्हें जीतनेवाला बने। यह ऐश्वर्यों का पति हो, ऐश्वर्य इसके पति न

हो जायें। (२) **आसंगस्य**-(आ असंगस्य) इस सर्वथा ऐश्वर्यों में अनासक्त पुरुष का **स्वनद्रथः**=वह शरीर-रथ सदा प्रभु के स्तोत्रों के स्तवनवाला हो। यह सदा नाम-स्मरण करता हुआ जीवनयात्रा में आगे बढ़े।

भावार्थ-हम इन्द्रियों को विषयाशक्ति से बचाकर प्रभु के उपासन में लगायें। तेजस्वी शरीरवाले हों, ऐश्वर्यों के स्वामी हो। अनासक्त भाव से चलते हुए सदा प्रभु के नामों का उच्चारण करें।

ऋषिः—आसङ्गः प्लायोगिः॥ **देवता**—आसङ्गस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

दश उक्षणः

अध प्लायोगिरति दासदन्यानासङ्गो अग्ने दशभिः सहस्रैः।

अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो नळाइव सरसो निरतिष्ठन्॥ ३३॥

(१) **अध**=अब यह **प्लायोगिः**-प्रकर्षेण कर्मयोग के मार्ग पर चलनेवाला **आसंगः**= (आ असंगः) विषयों में अनासक्त पुरुष **अन्यान्**-अपने से भिन्न, विरोधी, काम आदि शत्रुओं को **अतिदासत्**=अतिशयेन विनष्ट करता है। (२) **अग्ने**=हे प्रभो! **अध**=अब कामादि शत्रुओं का विनाश करने पर **सहस्रैः**=आनन्दमय **दशभिः**=दसों इन्द्रियों के साथ **मह्यम्**-मेरे लिये **दश**=दस **उक्षणः**=शक्ति का मेरे में सेचन करनेवाले **रुशन्तः**=चमकते हुए प्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय) **सरसः**=तालाब से **नडाः इव**=तृणविशेषों की तरह **निरतिष्ठन्**=निकलकर स्थित होते हैं। वस्तुतः शरीर तालाब है तो दश प्राण उससे उत्पन्न होकर उसमें स्थित होनेवाले दश तृणविशेष हैं। इनके द्वारा शरीर में शक्ति का सेचन होता है, ये ही शरीर में सोमकणों की ऊर्ध्वगति का कारण बनते हैं।

भावार्थ-कर्मों में व्यापृत उपासक काम आदि शत्रुओं का विनाश करता है। इसकी इन्द्रियाँ निर्मल होती हैं और इसके प्राण शरीर में शक्ति की ऊर्ध्वगति का कारण बनते हैं।

ऋषिः—शश्वत्याङ्गिरस्यासङ्गस्य पत्नी॥ **देवता**—आसङ्गः॥ **छन्दः**—विराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'स्थूर', 'उरु' तथा 'सुभद्र भोजन का भर्ता'

अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्तादनस्थ ऊरुरवरम्बमाणः।

शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजनं बिभर्षि॥ ३४॥

(१) **अस्य**-इस प्लायोगि का (१।३३) प्रकर्षेण कर्मयोग के मार्ग पर चलनेवाले का **अनु**=क्रमशः दिन व दिन **स्थूरं ददृशे**=स्थूलत्व व दृढ़ता दिखती है। **पुरस्तात्**=यह आगे और आगे बढ़ता हुआ **अनस्थः**=अस्थिशून्य-सा भरे शरीरवाला दिखता है। हड्डियों का ढाँचा नहीं लगता। **उरुः**=विशाल हृदयवाला व **अवरम्बमाणः**=प्रभु का आलम्बन करता हुआ, प्रभु के आधारवाला होता है। (२) **शश्वती**=सनातन काल से चली आनेवाली **नारी**=उन्नतिपथ पर ले चलनेवाली यह वेदमाता **अभिचक्ष्य**=इसे देखकर **आह**=कहती है कि हे **अर्य**=जितेन्द्रिय पुरुष तू **सुभद्रं भोजनम्**=अत्यन्त कल्याणकर इस पालक ज्ञान को (भुजपालने) **बिभर्षि**=धारण करता है। वेद से यह ज्ञान प्राप्ति की प्रेरणा लेता है। यह ज्ञान ही तो इसके जीवन को उत्कृष्ट बनाता है।

भावार्थ-कर्मयोगी पुरुष शरीर में स्थूल व दृढ़, मन में विशाल व प्रभु-भक्तिवाला तथा मस्तिष्क में ज्ञान को धारण करनेवाला होता है।

अब यह मेधातिथि=बुद्धि को अपना अतिथि बनानेवाला 'प्रियमेध' बनता है। कण-कण करके शक्ति का संचय करता हुआ 'काण्व' व 'आंगिरस' बनता है। यह प्रभु का स्तवन करता हुआ सोम रक्षण के लिये यत्नशील होता है—

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

निर्भयता

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्। अनाभयिन्ररिमा ते॥ १॥

(१) प्रभु जीव से कहता है कि हे **वसो**=अपने निवास को उत्तम बनानेवाले उपासक **इदम्**=यह **अन्धः**=सोमलक्षण अन्न **सुतम्**=तेरे लिये उत्पन्न किया गया है। इसको तू **सुपूर्णं उदरम्**=उदर को पूर्ण करता हुआ **पिबा**=अपने में पीनेवाला बन, अपने अन्दर इसे तू सुरक्षित कर। (२) सोमरक्षण के द्वारा सब प्रकार के रोगों के भय से ऊपर उठे हुए **अनाभयिन्**=अभयता को प्राप्त उपासक! **ते**=तेरे लिये **ररिमा**=इस सोम को देते हैं। यह शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ तेरे कल्याण का साधक हो।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम (क) रोगों से ऊपर उठाकर हमें उत्तम निवासवाला बनाता है, (ख) तथा यह सोमरक्षण हमें काम-क्रोध आदि के आक्रमण के भय से दूर रखता है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

नर-अशन-अवि-नदी

नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः। अश्वो न निक्तो नदीषु॥ २॥

(१) यह सोम **नृभिः धूतः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों से कम्पन द्वारा पवित्र किया जाता है। ये लोग वासनाओं को कम्पित करके दूर करते हैं और इस प्रकार सोम वासनाओं से मलिन नहीं होता। **अश्नैः**=(अश् व्याप्तौ) कर्मों में व्याप्त रहनेवाले लोगों से यह **सुतः**=अपने अन्दर उत्पन्न किया जाता है। और **अव्यः**=रक्षण करनेवाले पुरुष के **वारैः**=वासनाओं के निवारण के द्वारा यह सोम **परिपूतः**=सर्वथा पवित्र किया जाता है। (२) यह सोम **अश्वः न**=अश्व के समान है, इस सोम के द्वारा हम जीवनयात्रा को अच्छी प्रकार पूर्ण कर पाते हैं। यह **नदीषु**=स्तोताओं में (नद शके) **निक्तः**=शुद्ध व पोषित होता है। प्रभु-स्मरण सोम के पवित्र करने का साधन बन जाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये आवश्यक है कि हम नर=उन्नतिपथ पर चलनेवाले बनें। **अशन**=सदा कर्मों में व्याप्त हों। **अवि**=अपना रक्षण करनेवाले हों, वासनाओं के आक्रमण से अपने को बचायें। नदी=प्रभु के स्तोता बनें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गोभिः श्रीणन्तः

तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः। इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **तम्**=उस **ते**=आपके दिये हुए इस **यवम्**=(यु मिश्रणामिश्रणयोः) बुराइयों को पृथक् करनेवाले और अच्छाइयों को मिलानेवाले सोम को **यथा**=जिस प्रकार **गोभिः श्रीणन्तः**=ज्ञान का वाणियों के द्वारा परिपक्व करते हुए **स्वादुं अकर्म**=जीवन को मधुर बनानेवाला करते हैं। सोम 'यव' है, दुरितों को दूर व भद्र को समीप करनेवाला है। ज्ञान में लगे रहना सोम को परिपक्व

करने का साधन है। इस सोम के ठीक परिपाक से जीवन मधुर बनता है। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वा**=आप को **अस्मिन्**=इस **सधमादे**=(सह माद्यन्ति अस्मिन्) प्रभु के साथ आनन्द अनुभव करने के स्थान हृदय में आमन्त्रित करते हैं। सोमरक्षण ही हमें इस आमन्त्रण के लिये योग्य बनाता है।

भावार्थ–सोम हमारे जीवन से मब बुराइयों को दूर करनेवाला है। ज्ञान की वाणियों के द्वारा इसका परिपाक होता है। परिपक्व सोम जीवन को मधुर बनाता है, और हमें हृदय में प्रभु को आमन्त्रित करने के योग्य बनाता है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीनिचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सोमपा इन्द्रः विश्वायुः (भवति)

इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः। अन्तर्देवान्मर्त्याँश्च॥ ४॥

(१) **एकः इन्द्रः इत्**=वह एक जितेन्द्रिय पुरुष ही **सोमपाः**=सोम का अपने अन्दर रक्षण करनेवाला बनता है यह **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष ही **सुतपाः**=उत्पन्न सोम का पान करता है और परिणामतः **विश्वायुः**=पूर्ण जीवनवाला होता है। सोम ही सुरक्षित होकर दीर्घ व सुन्दर जीवन का साधन बनता है। (२) यह सोम ही **देवान् अन्तः**=इन्द्रियरूप देवों के अन्दर कार्य करता है। अर्थात् इन्द्रियों को यही सशक्त बनाता है। **च**=और **मर्त्यान् अन्तः**=इन नश्वर 'पृथिवी, जल, तेज, वायु' आदि भूतों से बने शरीरों में कार्य करता है। इन शरीरों को भी यह सोम ही ठीक रखता है। ये भूत क्षर हैं, सो इन्हें मर्त्य कहा है। इन्द्रियाँ मृत्यु पर भी साथ जाती हैं, सो देव व अमर हैं। इन सबके अन्दर सोम की ही शक्ति काम करती है।

भावार्थ–इन्द्र सोम का पालन करता है सो उत्तम दीर्घ जीवनवाला बनता है। यह सोम की इन्द्रियों व शरीर के स्वास्थ्य का साधन बनता है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उरुव्यचाः सुहार्द

न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम्। अपस्पृण्वते सुहार्दम्॥ ५॥

(१) **यम्**=जिस **उरुव्यचसम्**=महान् विस्तारवाले प्रभु को **शुक्रः**=(शुक् गतौ) गतिशील पुरुष **न अपस्पृण्वते**=प्रीणित नहीं करता, सो बात नहीं है। अर्थात् गतिशील पुरुष ही स्वकर्म द्वारा प्रभु का अर्चन करता है। **दुराशी**=(दुर् आ शृ) बुराई का समन्तात् विनाश करनेवाला व्यक्ति उस **सुहार्दम्**=उत्तम मित्र प्रभु को **न**=प्रीणित नहीं करता ऐसी बात नहीं है। (२) इसी प्रकार **तृप्राः**=जीवन को उत्तम बनाने के द्वारा अपने माता, पिता व बड़ों को प्रसन्न करनेवाले व्यक्ति **न**=उस प्रभु को प्रीणित न करें, सो नहीं है। प्रभु को ये तृप्र प्रीणित करते ही हैं।

भावार्थ–प्रभु अत्यन्त विस्तारवाले व उत्तम मित्र हैं। प्रभु को गतिशील (शुक्र) बुराइयों को शीर्ण करनेवाले (दुराशी) उत्तम कर्मों से माता, पिता को प्रसन्न करनेवाले (शृ) व्यक्ति प्रीणित करते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गोभिः मृगयन्ते, अभित्सरन्ति धेनुभिः

गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते। अभित्सरन्ति धेनुभिः॥ ६॥

(१) **यत्**=जब **अस्मत् अन्ये**=हमारे से भिन्न ये लोग **ईम्**-निश्चय से **गोभिः**-इन ज्ञान की वाणियों द्वारा उस प्रभु को **मृगयन्ते**=ढूँढ़ते हैं। इस प्रकार ढूँढ़ते हैं, **न**=जैसे **व्राः मृगम्**=घेर लेनेवाले शिकारी शिकार के योग्य पशु को। हमें भी चाहिये कि हम भी स्वाध्याय द्वारा ज्ञानवाणियों का ग्रहण करते हुए प्रभु के अन्वेषण के लिये यत्नशील हों। (२) ये लोग **धेनुभिः**-ज्ञानदुग्ध को देनेवाली इन वेद-धेनुओं से **अभित्सरन्ति**=उस प्रभु के समीप शान्तिपूर्वक प्राप्त होते हैं। इनके द्वारा हम क्यों न प्रभु को पायेंगे?

भावार्थ–ज्ञान की वाणियों द्वारा हम इष्टदेवता से अपना सम्बन्ध स्थापित करें। वेद-धेनुओं को अपनाते हुए प्रभु के समीप हों।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीविराड्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

त्रयः सोमाः

त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य। स्वे क्षये सुतपाव्नः ॥ ७॥

(१) शरीर में सोम का सम्पादन व रक्षण करना होता है। सोम का सम्पादन ही 'सवन' है। ये सवन तीन हैं–'प्रातःसवन, माध्यन्दिन सवन, तृतीय सवन'। जीवन के प्रथम चौबीस वर्ष प्रातः सवन हैं, अगले चवालीस वर्ष माध्यन्दिन सवन, अन्तिम अड़तालीस वर्ष तृतीय सवन हैं। इन तीनों सवनों में सम्पादित होने से सोम भी तीन हैं। ये **त्रयः सुतासः सोमाः**=तीनों सवनों में उत्पन्न किये गये सोम **देवस्य**=दिव्यगुणों का अपने में वर्धन करनेवाले **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **सन्तु**= हों। इन्द्रदेव तीनों सवनों में सोम का पान करनेवाला हो। ये सोम ही तो उसे 'इन्द्रदेव' बनाते हैं। (२) ये तीनों सोम उन इन्द्रदेव के हों, जो **स्वे क्षये**=अपने इस शरीररूप गृह में **सुतपाव्नः**=उत्पन्न सोमों का पान करते हैं। शरीर में ही सोम का रक्षण सोम का पान है।

भावार्थ–हम जीवन के प्रातः, मध्याह्न व सायं में (बाल्य, यौवन व वार्धक्य में) सोम का रक्षण करनेवाले बनें। यह सोम का पान हमें दिव्यगुण-सम्पन्न व ऐश्वर्यशाली बनायेगा।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीविराड्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

द्रोणकलश-पूतभृत्-आधवनीय (त्रयः कोशासः)

त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः। समाने अधि भार्मन्॥ ८॥

(१) शरीर में यह अन्नमयकोश 'द्रोणकलश' है (द्रु गतौ) सब गतियों का यह आधार है। प्राणमयकोश 'पूतभृत्' है, पवित्र इन्द्रियों का धारण करनेवाला। मनोमयकोश 'आधवनीय' है, जिससे सब वासनाओं को कम्पित करके दूर करना चाहिए। ये **त्रयः कोशासः**=तीनों कोश **श्चोतन्ति**=सोम के क्षरणवाले होते हैं। इन में सोम का क्षरण होता है। इनमें सोम का क्षरण होने पर **तिस्रः चम्वः**=तीनों शरीररूप पात्र **सुपूर्णाः**=उत्तमता से पूर्ण होते हैं। 'स्थूल, सूक्ष्म व कारण' सब शरीर न्यूनताओं से रहित होकर हमारे जीवन को पूर्ण बनानेवाले होते हैं। (२) ये सोम **समाने भार्मन् अधि**=(अधिः सप्तम्यर्थानुवादी) समान भरण के निमित्त होते हैं। अन्नमयकोश को ये नीरोग व तेजस्वी बनाते हैं। प्राणमयकोश को ये ही 'वीर्यवान्' करते हैं। मनोमयकोश इनके द्वारा 'ओजस्वी व बलवान्' होता है। विज्ञानमयकोश को ये दीप्त ज्ञानवाला बनाते हैं इन्हीं से आनन्दमयकोश सहस्वाला होता है।

भावार्थ–सोम जब अन्नमय, प्राणमय व मनोमयकोश में गति करता है तो हमारे जीवन की

पूर्णता का यह कारण बनता है। यह सब कोशों का समानरूप से भरण करता है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः **देवता**—इन्द्रः **छन्दः**—आर्षीगायत्री **स्वरः**—षड्जः

शुचिः मन्दिष्ठः

शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः। दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य॥ ९॥

(१) हे सोम! तू **शुचिः असि**=पवित्र है, हमारे जीवन को पवित्र करनेवाला है। **पुरुनिःष्ठाः**=पालक व पूरक रूप से शरीर निष्ठ होनेवाला है, शरीर में स्थित होकर तू पालन व पूरण करता है। **क्षीरैः**=दुग्धों से उत्पन्न हुआ-हुआ तू **मध्यतः**=शरीर मध्य में स्थित हुआ-हुआ **आशीर्तः**=समन्तात् शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला है। (२) हे सोम तू **शूरस्य**=इन शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले पुरुष का **दध्ना**=धारक बल के द्वारा **मन्दिष्ठः**=अधिक से अधिक आनन्दित करनेवाला है।

भावार्थ—सोम हमें पवित्र व आनन्दमय जीवनवाला बनाता है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः **देवता**—इन्द्रः **छन्दः**—आर्षीविराड्गायत्री **स्वरः**—षड्जः

इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतासः। शुक्रा आशिरं याचन्ते॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यवन् प्रभो! **इमे**=ये **ते**=आपके **सोमाः**=सोमकण **तीव्राः**=बड़े तीव्र हैं, शत्रुओं के लिये भयंकर हैं। **अस्मे**=हमारे लिये **सुतासः**=ये उत्पन्न किये गये हैं। (२) **शुक्राः**=(शुक गतौ) गतिशील पुरुष **आशिरम्**=(आशृणाति) समन्तात् शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले इस सोम को **याचन्ते**=माँगते हैं। गतिशीलता के द्वारा ही सोम का रक्षण होता है। सुरक्षित सोम शरीर में रोग व वासनारूप शत्रुओं के विनाश का कारण बनता है।

भावार्थ—गतिशील पुरुष सोम का रक्षण करते हुए नीरोग शरीर व निर्मल मन को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः **देवता**—इन्द्रः **छन्दः**—आर्षीगायत्री **स्वरः**—षड्जः

'पुरोडाशं' सोमम्

ताँ आशिरं पुरोळाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि। रेवन्तं हि त्वा शृणोमि॥ ११॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यवन् प्रभो! **तान्**=गत मन्त्र में वर्णित **शुक्र**=गतिशील पुरुषों का लक्ष्य करके **इमम्**=इस **आशिरम्**=समन्तात् शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले, **पुरोडाशम्**=(दाश्नोति hurt, kill) सर्वप्रथम रोगों व वासनाओं को नष्ट करनेवाले **सोमम्**=सोम को **श्रीणीहि**=परिपक्व करिये। इस सोम के परिपाक से ही हमारा जीवन सब ऐश्वर्यों से सम्पन्न बनेगा। (२) हे प्रभो! **त्वा**=आपको **रेवन्तम्**=सर्वैश्वर्य-सम्पन्न **हि**=ही **शृणोमि**=सुनता हूँ। आपके द्वारा सोम के परिपाक होने पर मैं भी सब कोशों के ऐश्वर्य को प्राप्त करूँगा।

भावार्थ—सोम का परिपाक होने से यह सोम रोग व वासनारूप शत्रुओं को शीर्ण करता है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः **देवता**—इन्द्रः **छन्दः**—आर्षीगायत्री **स्वरः**—षड्जः

ऊधर्न नग्ना जरन्ते

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्। ऊधर्न नग्ना जरन्ते॥ १२॥

(१) **सुरायाम्**=शराब में **दुर्मदासः**=दुष्ट मद को प्राप्त हुए-हुए व्यक्ति **न**=जिस प्रकार

युध्यन्ते=युद्ध करते इसी प्रकार **हृत्सु पीतासः**=हृदयों में सोम का पान करनेवाले, अर्थात् खूब ही सोम का रक्षण करनेवाले लोग रोगों व वासनाओं से युद्ध करते हैं। शराब पीकर सैनिक राजस नशे में शत्रुओं पर प्रहार करते हैं। ये सोम पुरुष सात्त्विक मद सम्पन्न होकर रोगों व वासनाओं से युद्ध करते हैं। (२) ये सोमरक्षक पुरुष **नग्नाः**=(ग्राः छन्दांसि तानि न जहति) छन्दों द्वारा प्रभु का स्तवन करनेवाले ज्ञानी पुरुष **ऊधः न**=सब ज्ञानदुग्धों के आधारभूत 'ऊधस्' के समान उस प्रभु का **जरन्ते**=स्तवन करते हैं। प्रभु को ये 'उधस्' के रूप में देखते हैं। गौ का 'ऊधस्' दुग्ध का आधार होता है, प्रभु रूप 'ऊधस्' सब ज्ञानदुग्धों के आधार हैं। सोमी पुरुष ही तीव्र बुद्धि बनकर इन ज्ञानदुग्धों का पान करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के मद में यह सोमी पुरुष रोगों व वासनाओं से युद्ध करता है। वेदवाणियों का परित्याग न करता हुआ यह प्रभु को ज्ञानदुग्धाधार के रूप में स्तुत करता है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीनिचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

रेवतः स्तोता रेवान्

रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः। प्रेदु हरिवः श्रुतस्य॥ १३॥

(१) हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले प्रभो! **त्वावतः**=आप जैसे **श्रुतस्य मघोनः**=प्रख्यात (प्रसिद्ध) ऐश्वर्यशाली का **स्तोता**=स्तुति करनेवाला उपासक **उ**=निश्चय से **प्र स्यात् इत्**=(प्रभवेद् एव) प्रभावशाली होता ही है। प्रभु का स्तवन करता हुआ उपासक प्रभु क्यों न बनेगा! **रेवतः**=धनवान् का स्तोता **इत्**=निश्चय से **रेवान्**=धनी होता ही है। इसी प्रकार उस प्रख्यात मघवा प्रभु का स्तोता प्रभावशाली होगा ही।

भावार्थ—धनी का स्तोता भी धनी बनता है। इसी प्रकार हम उस मघवान् प्रभु के स्तोता बनते हुए प्रभु ही बनें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'मूक स्तवन के भी श्रोता' प्रभु

उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत। न गायत्रं गीयमानम्॥ १४॥

(१) **अरिः**=(ऋ गतौ) सर्वत्र प्राप्त वे प्रभु **अगोः**=(गौ=वाणी) वाक्शक्ति रहित मूक पुरुष के **चन**=भी **शस्यमानम्**=हृदय में शंसन किये जाते हुए **उक्थम्**=स्तोत्र को **आचिकेत**=सम्यक् जानते हैं। मूक पुरुष से किये जाते हुए मूक स्तवन को भी वे समझते हैं। (२) इसी प्रकार **न गीयमानम्**=स्वरपूर्वक न गाये जाते हुए **गायत्रम्**=गायत्र स्तोभ को भी वे जानते ही हैं। अर्थात् यदि एक स्तोता गायन न कर सका, तो उसका स्तोत्र न सुना जायेगा ऐसी बात नहीं है।

भावार्थ—प्रभु मूक स्तवन को भी सुनते ही हैं। 'बिना गायन के उच्चरित स्तोत्रों को प्रभु न सुनेंगे' यह बात नहीं है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीनिचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पीयत्नु व शर्धत्

मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः। शिक्षा शचीवः शचीभिः॥ १५॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रु विद्रावक प्रभो! **नः**=हमें **पीयत्नवे**=वधशील शत्रु के लिये **मा परा दाः**=

मत दे डालिये इसी प्रकार **शर्धते**=हमें कुचल देनेवाले शत्रु के लिये **मा**=मत दे डालिये। शरीर को नष्ट करनेवाले रोग 'पीयलु' हैं। मन को अभिभूत कर लेनेवाले काम-क्रोध आदि शत्रु 'शर्धन्' हैं। हम इनके वश में न हो जायें। (२) हे **शचीवः**=शक्तिमन् प्रभो! **शचीभिः**=अपनी शक्तियों के द्वारा **शिक्षा**-शत्रुओं को अभिभूत करने के लिये हमें शक्तिशाली बनाने की कामना करिये। आपके अनुग्रह से सशक्त बनकर हम शत्रुओं का शातन कर पायें।

भावार्थ-हे प्रभो! वध करनेवाले रोग और मनों को अभिभूत करनेवाले काम-क्रोध आदि आसुरभाव हमें आक्रान्त न कर पायें। प्रभु हमें शक्ति दें कि हम इन शत्रुओं को अभिभूत कर सकें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

व॒यमु॑ त्वा त॒दिद॑र्था॒ इन्द्र॑ त्वा॒यन्तः॒ सखा॑यः। कण्वा॑ उ॒क्थेभि॑र्जरन्ते॥ १६॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वयम्**=हम **उ**=निश्चय से **त्वायन्तः**=आपको प्राप्त करने की कामनावले होते हुए **उ**=निश्चय से **त्वा**=आपका ही स्तवन करते हैं। **तदिदर्थाः**-(तत् इत अर्थाः) वह प्रभु स्तवन ही हमारा प्रयोजन हो। अन्य लौकिक कामनाओं से स्तवन न करके हम स्तवन को स्तवन के लिये ही करें। 'स्तवन ही हमारा कर्त्तव्य है' ऐसा जानें। हवन करते हुए हम **सखायः**=आपके मित्र होते हैं। (२) **कण्वाः**=मेधावी पुरुष **उक्थेभिः**=उच्चैःगीयमान स्तोतों से **जरन्ते**=हे प्रभो! आपका स्तवन करते हैं। मूर्ख व नासमझ पुरुष ही स्तवन से दूर रहता है।

भावार्थ-हम शुद्ध भाव से, कामनारहित मन से प्रभु का स्तवन करें। यही हमारा मुख्य काम हो।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु का ही स्तवन

न घे॑म॒न्यदा प॑पन॒ वज्रि॑न्न॒पसो॒ नवि॑ष्टौ। तवेदु॒ स्तोमं॑ चिकेत॥ १७॥

(१) हे **वज्रिन्**=क्रियाशीलता रूप वज्र (वज् गतौ) वाले प्रभो! मैं **अपसः नविष्टौ**=कर्मों के अभिनव याग में, अर्थात् प्रत्येक कर्मयज्ञ के अवसर पर **वा ईम्**=निश्चय से अन्यत् **न आपपन**=किसी और का स्तवन न करूँ। (२) **तव इत् उ**=निश्चय से आपके ही **स्तोमं चिकेत**=स्तवन को जानूँ। अर्थात् आपका ही स्तवन करूँ।

भावार्थ-हम प्रत्येक कार्य के अवसर पर प्रभु का स्तवन करें। प्रभु का स्तवन ही हमें शक्ति देगा और हम कार्य को सफलता के साथ कर सकेंगे।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पुरुषार्थ में ही दिव्यता व आनन्द का वास हो

इ॒च्छन्ति॑ दे॒वाः सु॒न्वन्तं॒ न स्वप्ना॑य स्पृहयन्ति। यन्ति॑ प्र॒माद॒मत॑न्द्राः॥ १८॥

(१) **देवाः**=सब देव **सुन्वन्तम्**=यज्ञशील को **इच्छन्ति**=चाहते हैं। यज्ञों में प्रवृत्त पुरुष ही देवों का प्रिय बनता है। **स्वप्नाय न स्पृहयन्ति**=सोनेवाले को देव नहीं चाहते। आलसी देवों का प्रिय नहीं होता। (२) आलस्य को छोड़कर **अतन्द्राः**=तन्द्राशून्य जीवनवाले पुरुष **प्रमादं यन्ति**=प्रकृष्ट हर्ष को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ-यज्ञशील पुरुष ही देवों का प्रिय बनता है, अर्थात् दिव्यगुणों को धारण करता है। आलस्य के साथ दिव्यताओं का सम्बन्ध नहीं। पुरुषार्थ में ही आनन्द है।

ऋषिः—मेधातिथि: काण्व: प्रियमेधश्चाङ्गिरस:ङ्क **देवता**—इन्द्र:ङ्क **छन्दः**—आर्षीनिचृद्गायत्रीङ्क
स्वरः—षड्ज:ङ्क

महान् इव युवजानिः

ओ षु प्र याहि वाजेभिर्मा हृणीथा अभ्य१स्मान्। महाँइव युवजानिः ॥ १९ ॥

(१) हे प्रभो! आप **वाजेभिः**=शक्तियों के साथ **अस्मान् अभि**-हमारे प्रति **सु**-सम्यक् **आप्रयाहि**-आइये। **मा हृणीथाः**=हमारे पर आप क्रोध न करें। हम अपने कुकर्मों से आपके क्रोध के पात्र न बन जायें। आप हमें सब शक्तियों को प्राप्त कराइये। (२) हे प्रभो! आप महान् हैं. मैं भी **महान् इव** आप जैसा ही महान् बनने का प्रयत्न करूँ। **युवजानिः** (युवतिर्जाया यस्य)-मैं इस वेदवाणीरूप युवति का पति बनूँ, यह वेदवाणी मेरी जाया हो। 'दोषों को पृथक् करनेवाली व गुणों को मिलानेवाली' यह युवति है 'यु मिश्रणामिश्रणयो:'। गुणों को जन्म देनेवाली यह 'जाया' है।

भावार्थ-प्रभु हमें शक्ति प्राप्त करायें, हम प्रभु के क्रोध के पात्र न हों। महान् बनें। वेदवाणी को पत्नी के रूप में प्राप्त कर अपनी पूर्णता करें।

ऋषिः—मेधातिथि: काण्व: प्रियमेधश्चाङ्गिरस:ङ्क **देवता**—इन्द्र:ङ्क **छन्दः**—आर्षीनिचृद्गायत्रीङ्क
स्वरः—षड्ज:ङ्क

अश्रीरः इव जामाता

मो ष्व१द्य दुर्हणावान्त्सायं करदारे अस्मत्। अश्रीरइव जामाता ॥ २० ॥

(१) 'काम' वासना मनुष्य का बुरी तरह से अन्त कर देती है। यह नशे में ले जाकर (मदन:) हमारे ज्ञान को नष्ट करके (मन्मथ:) हमें समाप्त कर देती है (मार:)। सो कहते हैं कि यह **दुर्हणावान्**=बुरी तरह से मार डालनेवाला काम **अद्य**-आज **मा उ**=मत ही **सायं करत्**-(षो अन्तकर्मणि) हमारा अन्त कर दे। (२) यह काम **अस्मत् आरे**-हमारे से दूर ही रहे। **इव**-जैसे हम चाहते हैं कि **अश्रीरः जामाता**-श्री (शोभा) से शून्य जामाता (हमारी कन्या का पति) हमारे से दूर रहे। यह हमारे विनाश का कारण बनता है।

भावार्थ-काम-वासना बुरी तरह से हमें नष्ट करनेवाली है। यह हमारे से दूर ही रहे।

ऋषिः—मेधातिथि: काण्व: प्रियमेधश्चाङ्गिरस:ङ्क **देवता**—इन्द्र:ङ्क **छन्दः**—आर्षीनिचृद्गायत्रीङ्क
स्वरः—षड्ज:ङ्क

सुमति-मनांसि (ज्ञान)

विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम्। त्रिषु जातस्य मनांसि ॥ २१ ॥

(१) **अस्य वीरस्य**=इस (वि+ईर) विशेषरूप से शत्रुओं के कम्पक प्रभु की **भूरिदावरीम्**-अनन्त ऐश्वर्यों के देनेवाली **सुमतिम्**=कल्याणी मति को **हि**-निश्चय से **विद्मा**=जानें, प्राप्त करें। प्रभु के अनुग्रह से हमें उत्तम बुद्धि प्राप्त हो। (२) **त्रिषु**-तीनों लोकों में **जातस्य**=प्रादुर्भूत अपनी महिमा से दिखनेवाले, उस प्रभु के **मनांसि**-ज्ञानों को भी हम प्राप्त करें। वेद में दिये गये सब ज्ञान हम प्राप्त कर पायें।

भावार्थ-प्रभु के अनुग्रह से हमें उत्तम बुद्धि प्राप्त हो और उसके द्वारा हम सब ज्ञानों को प्राप्त करें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

कण्वमन्तं यशस्तरं

आ तू षिञ्च कण्वमन्तं न घा विद्म शवसानात्। यशस्तरं शतमूतेः॥ २२॥

(१) हे प्रभो! आप **तु**=निश्चय से **आसिञ्च**=हमें शक्ति से सिक्त करिये। आप के अनुग्रह से सोम का (वीर्य का) हमारे अंग-प्रत्यंग में सेचन हो। (२) हम **शतं उतेः**=सैंकड़ों रक्षणोंवाले **शवसानात्**=शक्तिशाली की तरह आचरण करते हुए आप से भिन्न किसी को भी **कण्ववन्तम्**=मेधाविता से युक्त व **यशस्तरम्**=अधिक यशस्वी **घा**=निश्चय से **न विद्म**=नहीं जानते।

भावार्थ—प्रभु हमें शक्ति सम्पन्न करें। प्रभु ही सर्वोपरि मेधावी व शक्ति सम्पन्न हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीनिचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'इन्द्रइन्द्र वीर शक्र नर्य'

ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय। भरा पिबन्नर्याय॥ २३॥

(१) हे **सोतः**=सोम को उत्पन्न करनेवाले प्रभो! **ज्येष्ठेन**=ज्येष्ठता के हेतु से **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **सोमम् भरा**=सोम का भरण करिये। इस सोम शक्ति के द्वारा यह जितेन्द्रिय पुरुष ज्येष्ठता को प्राप्त होता है। (२) इन **वीराय**-शत्रुओं को विशेषरूप से कम्पित करके दूर करनेवाले, **शक्राय**=शक्ति सम्पन्न **नर्याय**=नर हित के कार्यों में प्रवृत्त पुरुष के लिये **पिबन्**=इस सोम का पान करिये। इस सोम को इस के शरीर में ही सुरक्षित करिये। सोमरक्षण से ही वस्तुतः यह 'वीर, शक्र व नर्य' बनता है।

भावार्थ—हम सोमरक्षण के द्वारा 'वीर, शक्र व नर्य' बनें। 'इन्द्र' बनकर, जितेन्द्रिय बनकर सोम का रक्षण करें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीनिचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रशस्त बल की प्राप्ति

यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः। वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम्॥ २४॥

(१) **अव्यथिषु**-औरों को पीड़ित न करनेवाले सज्जनों में जो **वाजम्**-बल है, उस **अश्वावन्तम्**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाले बल को **यः**=जो प्रभु **जरितृभ्यः**=वासनाओं को जीर्ण करनेवाले स्तोताओं के लिये **वेदिष्ठः**=सर्वाधिक प्राप्त करानेवाले हैं। (२) उस **गोमन्तम्**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाले बल को प्रभु **स्तोतृभ्यः**=स्तोताओं के लिये प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु स्तोताओं को वह बल प्राप्त कराते हैं, जो औरों को न पीड़ित करनेवाले पुरुषों में होता है। तथा जो बल उत्तम कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियोंवाला है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीनिचृद्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

'मद्य-वीर-शूर'

पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय। सोमं वीराय शूराय॥ २५॥

(१) हे **सोतारः**=सोम का अपने में सम्पादन करनेवाले पुरुषो! यह सोम जो **पन्यम्**=स्तुत्य है और **इत्**=निश्चय से स्तुत्य है, इस **सोमम्**=सोम को **आधावत**=सर्वथा शुद्ध करो। इसे वासनाओं

से मलिन मत होने दो। (२) यह सोम निश्चय से **मद्याय**-सदा प्रसन्न रहनेवाले पुरुष के लिये है **वीराय**-यह वीर के लिये है, वासनाओं को कम्पित करके दूर करनेवाले के लिये हैं। **शूराय**=यह रोगों को शीर्ण करनेवाले के लिये है। वस्तुतः सुरक्षित हुआ-हुआ सोम ही हमें 'मद्य, वीर व शूर' बनाता है।

भावार्थ—हम सोम को वासनाओं से मलिन न होने दें। यह सोम हमें आनन्दमय वीर व शूर बनायेगा।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसःङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—आर्षीनिचृद्गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

नियमते शतमूतिः

पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत्। नि यमते शतमूतिः॥ २६॥

(१) वे प्रभु **वृत्रहा**-हमारे वासना रूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाले हैं और इस प्रकार **सुतं पाता**=उत्पन्न सोम का रक्षण करते हैं। ये प्रभु **घा**-निश्चय से **आगनत्**=हमें प्राप्त हों। (२) **अस्मत्**=हमारे से **आरे**=दूर व समीप देशों में होते हुए वे प्रभु **शतमूतिः**=सैंकड़ों रक्षणोंवाले होते हुए **नियमते**=सारे संसार का नियमन करते हैं। 'आराद् दूरसमीपयोः' प्रभु हमारे से दूर से दूर देश में हैं और समीप से समीप देश में भी है। सर्वत्र होते हुए वे संसार का नियमन कर रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारी वासनाओं का विनाश करके हमारे सोम का रक्षण करते हैं, वे दूर व समीप सर्वत्र होते हुए सैंकड़ों रक्षणोंवाले हैं और संसार का नियमन कर रहे हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसःङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—आर्षीगायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

ब्रह्म-युजा-शग्मा-हरी

एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम्। गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम्॥ २७॥

(१) **इह**=इस जीवन में **हरी**=ये हमारे इन्द्रियाश्व **सखायम्**-उस मित्र प्रभु को **आवक्षतः**=प्राप्त कराते हैं। वे इन्द्रियाश्व जो **ब्रह्मयुजा**-ज्ञान के साथ सम्पर्क को करनेवाले हैं और **शग्मा**=(शग्म इति कर्म नाम नि० २।१) यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त होनेवाले हैं। और इन यज्ञादि कर्मों के द्वारा सुख प्राप्त करानेवाले होते हैं (शग्म इति सुख नाम नि० ३।६)। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति में लगी रहें और इसी प्रकार कर्मेन्द्रियाँ यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त रहें तो मनुष्य प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर चल रहा होता है। (२) ये इन्द्रियाश्व उस सखा को प्राप्त कराते हैं, जो **गीर्भिः श्रुतम्**=वेदवाणियों के द्वारा सुनाई पड़ते हैं 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' सब ऋचाएँ उस प्रभु का ही तो वर्णन कर रही हैं। **गिर्वणसम्**=वे प्रभु इन ज्ञान वाणियों के द्वारा सम्भजनीय हैं। इन ज्ञानवाणियों में विचरनेवाला पुरुष ही प्रभु को पाता है।

भावार्थ—हम ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्ति में प्रवृत्त होकर तथा कर्मेन्द्रियों से यज्ञादि कर्मों को करते हुए प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसःङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—आर्षीस्वराडनुष्टुप्ङ्क **स्वरः**—गान्धारःङ्क

ऋषीवः, शचीवः

स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि।
शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादम्॥ २८॥

(१) हे **शिप्रिन्**=उत्तम हनु व नासिका को हमारे लिये प्राप्त करानेवाले! **ऋषीवः**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियों को देनेवाले (ऋषि=तत्त्वदर्शन करानेवाली) **शचीवः**=प्रशस्त कर्मों की साधनभूत कर्मेन्द्रियोंवाले प्रभो! हमारे जीवन में **सोमाः**=सोमकण **स्वादवः**=आनन्द के साधन बने हैं। सो **आयाहि**–आप आइये। **सोमाः**=ये सोमकण ठीक **श्रीताः**–परिपक्व हुए हैं। **आयाहि**=आप आइये। (२) हे प्रभो! आप हमें प्राप्त होइये। आप हमें **सधमादम्**=आपके साथ मिलकर आनन्दित होनेवाले हृदयक्षेत्र की **अच्छा**=ओर **नायम्**=(नेतुं) ले जाने के लिये प्राप्त होइये। प्रभु का अनुग्रह ही हमें अन्तर्मुख वृत्तिवाला बनायेगा। तभी हम हृदय में प्रभु की उपासना करते हुए आनन्द का अनुभव करेंगे।

भावार्थ–हम सोमरक्षण करें तभी हम प्रभु प्राप्ति के पात्र होंगे। यही सोमरक्षण हमें अधिकाधिक अन्तर्मुखी वृत्तिवाला बनायेगा।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

महे, राधसे, नृम्णाय

स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय। इन्द्र कारिणं वृधन्तः॥ २९॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **स्तुतः च**=और वे स्तुतियाँ **याः**=जो **त्वा**=आपको बढ़ाती हैं, आपका यशोगान करती हैं, वे इस स्तोता के **महे**=महत्त्व के लिये होती हैं, **राधसे**=ऐश्वर्य के लिये होती हैं और **नृम्णाय**=शक्ति के लिये होती हैं। इन स्तुतियों के द्वारा स्तोता का 'महत्त्व (यश), ऐश्वर्य व बल' बढ़ता है। (२) हे प्रभो! आपके ये स्तवन **कारिणम्**=क्रियाशील पुरुष का ही **वृधन्तः**=वर्धन करते हैं। वस्तुतः सच्चा स्तोता होता ही क्रियाशील है। अकर्मण्यता का प्रभु स्तवन से कोई सम्बन्ध नहीं।

भावार्थ–हम प्रभु-स्तवन करते हैं। यह प्रभु-स्तवन हमारी महिमा (यश) को बढ़ाता है, हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि का कारण बनता है और हमारे बल का वर्धन करता है। स्तोता सदा क्रियावान् होता है, अकर्मण्य नहीं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीनिचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ज्ञान-सवन

गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि। सत्रा दधिरे शवांसि॥ ३०॥

(१) हे **गिर्वाहः**=ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **गिरः च याः**=ये जो भी ज्ञान की वाणियाँ हैं, वे **ते**=आपकी ही हैं। आप ही सब ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करानेवाले हैं। **उक्थ च**=और जो भी स्तुति-वचन हैं, वे सब भी **तुभ्यम्**=आप के लिये ही हैं। सब पूजा परम्परया आपकी ही पूजा होती है (२) **तानि**=वे स्तुति-वचन **सत्रा**=सदा इस स्तोता के जीवन में **शवांसि दधिरे**=बलों को धारण करते हैं। स्तोता प्रभु के बल से बल-सम्पन्न होकर सब आन्तर शत्रुओं को दूर भगानेवाला होता है और बाह्य कष्टों का सहन कर पाता है।

भावार्थ–सब ज्ञान प्रभु से प्राप्त होता है। प्रभु का स्तवन स्तोता को बल सम्पन्न करता है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

तुविकूर्मिः वज्रहस्तः

एवेदेष तुविकूर्मिर्वाजाँ एको वज्रहस्तः। सनादमृक्तो दयते॥ ३१॥

(१) **एवा**=सचमुच **इत्**-ही **एषः**-यह प्रभु **तुविकूर्मिः**=महान् कर्मोंवाले हैं। इन सब महान् लोक लोकान्तरों को बनानेवाले हैं। वे **एकः**=अद्वितीय प्रभु ही **वज्रहस्तः** वज्रहस्त होकर सब लोकों का नियमन व शासन कर रहे हैं। उसी के वज्र के भय से सब सूर्य आदि अपने-अपने मार्ग पर चल रहे हैं (२) ये प्रभु ही **सनाद् अमृक्तः**=(unhurt) सदा से अहिंसित व (unwashed) अशोधनीय, सदा पवित्र होते हुए **वाजान् दयते**=सब शक्तियों को उपासकों के लिये प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ-प्रभु ही इन महान् लोकों के निर्माता व धारक हैं। वे सदा पवित्र प्रभु हमारे लिये शक्तियाँ को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीनिचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

महीभिः शचीभिः महान्

हन्ता वृत्रं दक्षिणेनेन्द्रः पुरू पुरुहूतः। महान्महीभिः शचीभिः॥ ३२॥

(१) वे **पुरुहूतः**=बहुतों से पुकारे जाने योग्य **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **दक्षिणेन**-(दक्ष्-दक्षणे to grow) शक्तियों के वर्धन के द्वारा **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को **पुरु हन्ता**-खूब ही विनष्ट करनेवाले हैं। प्रभु का स्तवन स्तोता को शक्ति-सम्पन्न बनाता है। इस शक्ति से सम्पन्न होकर स्तोता वासना को विनष्ट कर पाता है। (२) वे प्रभु **महीभिः शचीभिः**=महनीय शक्तियों के कारण **महान्**-महान् हैं, पूजनीय हैं। प्रभु का स्तोता भी इन शक्तियों को प्राप्त करके महान् बनता है।

भावार्थ-प्रभु शक्तियों से महान् हैं। वे स्तोता को भी शक्ति-सम्पन्न बनाकर वासना के विनाश के योग्य बनाते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'बलों व विजयों के आधार' प्रभु

यस्मिन्विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्रयांसि च। अनु घेन्मन्दी मघोनः॥ ३३॥

(१) प्रभु वे हैं, **यस्मिन्** जिनके आधार में **विश्वाः चर्षणयः**-सब श्रमशील मनुष्यों का निवास है। **उत**-और भी जो **च्यौत्ना**=शत्रुओं को च्युत करनेवाले बल का निवास है। **च**-और **ज्रयांसि**-(ज्रियति) सब विजयों के आधार वे प्रभु ही हैं। (२) वस्तुतः उपासक **मघोनः**-उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की **अनु घा इत्**=अनुकूलता में ही **मन्दी**=आनन्द का अनुभव करता है। जितना-जितना प्रभु का अनुसरण करता है, उतना-उतना आनन्दित होता है।

भावार्थ-सब कामशील मनुष्यों का आधार प्रभु ही हैं। सब बलों व विजयों के भी वे ही आधार हैं। प्रभु के अनुसरण में स्तोता आनन्द का अनुभव करता है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीविराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'निर्माता-शक्तिदाता' प्रभु

एष एतानि चकारेन्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे। वाजदावा मघोनाम्॥ ३४॥

(१) **एषः**=यह **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु ही **एतानि**-इन **विश्वा**=सब लोक लोकान्तरों को **चकार**-बनाते हैं। प्रभु ही सब लोकों के निर्माता हैं। (२) और **यः**=जो **अतिशृण्वे**-अपने

बलों के कारण सब को लाँघकर स्थित हुए-हुए सुने जाते हैं, वे प्रभु ही **मघोनाम्**=सब यज्ञशील पुरुषों के **वाजदावा**=शक्तियों के देनेवाले हैं।

भावार्थ–प्रभु ही सब लोकों के निर्माता हैं। वे ही सर्वाधिक शक्तिवाले हैं। यज्ञशील पुरुषों को शक्ति प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

रथं प्रभर्ता

प्रभर्ता रथं गव्यन्तमपाकाच्चिद्यमवति। इनो वसु स हि वाळ्हा ॥ ३५ ॥

(१) वे प्रभु ही **रथम्**=हमारे इस शरीर-रथ का **प्रभर्ता**=भरण करते हैं। उस रथ का जो **गव्यन्तम्**=ज्ञान की वाणियों की कामनावाला होता है। अर्थात् प्रभु इस शरीर-रथ को ऐसा बनाते हैं कि हम इसमें ज्ञान की वाणियों की कामनावाले बनते हैं। और वे प्रभु **चित्**=ही **यम्**=जिस शरीर-रथ को **अपाकात्**=(Indigestion) अपचन से **अवति**=बचाते हैं। प्रभु-स्मरण से भोजन की नियमितता के होने पर अपचन व रोगों का भय नहीं रहता। (२) वे प्रभु **इनः**=स्वामी हैं। **सः हि**–वे ही **वसु वोढा**=सब निवास के लिये आवश्यक धनों का प्राप्त कराते हैं। ये धन हमें निधन (मृत्यु) से बचानेवाले होते हैं।

भावार्थ–प्रभु ही हमारे शरीर-रथों का रक्षण करते हैं, हमें ज्ञानयुक्त व नीरोग बनाते हैं। निवास के लिये आवश्यक धनों को प्रभु ही प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—आर्षीनिचृद्गायत्री ॥
स्वरः—षड्जः ॥

सनिता-हन्ता (वृत्रं)-अविता

सनिता विप्रो अर्वद्भिर्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः। सत्योऽविता विधन्तम् ॥ ३६ ॥

(१) वे **विप्रः**=हमारा विशेष रूप से पूरण करनेवाले प्रभु **अर्वद्भिः**=इन्द्रियाश्वों के द्वारा हमारे लिये **सनिता**=ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करानेवाले हैं। वे **शूरः**-शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभु **नृभिः**=उत्तम मार्ग से ले चलनेवाले पुरुषों के द्वारा **वृत्रं हन्ता**=हमारे जीवनों में वासनाओं को विनष्ट करनेवाले हैं। उत्तम माता, पिता व आचार्य को पाकर हम वासनामय जीवनवाले बन जाने से बचे रहते हैं। (२) वे प्रभु **सत्यः**=सत्यस्वरूप हैं। **विधन्तं अविता**=उपासक का रक्षण करनेवाले हैं।

भावार्थ–वे प्रभु ज्ञान व शक्ति के देनेवाले हैं, वासना को विनष्ट करनेवाले हैं और उपासक के रक्षक हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

सत्यमद्वा

यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा। यो भूत्सोमैः सत्यमद्वा ॥ ३७ ॥

(१) हे **प्रियमेधाः**=(मेध=यज्ञ, **मेधा**=बुद्धि) यज्ञों से प्रेमवाले अथवा प्रिय बुद्धिवाले पुरुषो! **एनं इन्द्रम्**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **सत्राचा**=(सत्रं अञ्चति, सत्र=sacrifice, vrtue) यज्ञ व गुणों की ओर झुकाववाले **मनसा**=मन से **यजध्व (म्)**=उपासित करो। प्रभु की सच्ची उपासना यही है कि हम मनों को यज्ञ की भावना व उत्कृष्ट गुणों के उपार्जन की भावनावाला बनायें। (२) उस प्रभु की उपासना करो **यः**=जो **सोमैः**=सोमों के द्वारा, वीर्यकणों के द्वारा

सत्यमद्वा भूत्-सच्चे आनन्द को प्राप्त करानेवाले होते हैं। इन सोमकणों के रक्षण से ही सब 'तेज, वीर्य, ओज बल, ज्ञान व सहस्' की प्राप्ति होती हैं। ये ही हमारे जीवनों के सच्चे ऐश्वर्य हैं।

भावार्थ-हम यज्ञप्रिय व बुद्धि प्रिय बनकर प्रभु का उपासन करें। प्रभु सोमकणों के रक्षण के द्वारा हमारे जीवनों में आनन्द का संचार करते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

'गाथश्रवस्-श्रवस्काम' प्रभु

गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम्। कण्वासो गात वाजिनम्॥ ३८॥

(१) **कण्वासः**=हे मेधावी पुरुषो! उस **वाजिनम्**=शक्तिशाली प्रभु का **गात**=गायन करो, जो प्रभु **गाथश्रवसम्**-गायन योग्य यशवाले हैं। **सत्पतिम्**=सज्जनों के रक्षक हैं। (२) रक्षण के उद्देश्य से ही **श्रवस्कामम्**=हमारे लिये ज्ञान की कामनावाले हैं और **पुरुत्मानम्**=पालक व पूरक स्वरूपवाले हैं (पृ पालनपूरणयोः)।

भावार्थ-हम उन प्रभु का गायन करें जो गेययशवाले हैं, सज्जनों के रक्षक हैं, हमारे लिये ज्ञान की कामनावाले हैं, पालन व पूरण के स्वभाववाले हैं और प्रशस्त शक्तिवाले हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीगायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सखा शचीवान्

य ऋते चिद्गास्पदेभ्यो दात्सखा नृभ्यः शचीवान्। ये अस्मिन्काममश्रियन्॥ ३९॥

(१) **यः**=जो प्रभु **ऋते चित्**=सत्य ज्ञान की प्राप्ति कराने के निमित्त ही **पदेभ्यः**=(पद् गतौ) गतिशील **नृभ्यः**=मनुष्यों के लिये **गाः**=ज्ञान की वाणियों को **दात्**=देते हैं। वे प्रभु ही हमारे **सखा**=सच्चे मित्र हैं। **शचीवान्**=वे प्रभु ही सब कर्मों व प्रज्ञानोंवाले हैं। (२) ये प्रभु उन मनुष्यों के लिये इन ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराते हैं **ये**=जो **अस्मिन्**=इस प्रभु में कामं **अश्रियन्**=अपनी सब इच्छाओं को आश्रित करते हैं। अर्थात् प्रभु के प्रति जो आत्मार्पण करनेवाले होते हैं, उनके लिये प्रभु इन ज्ञानों को अवश्य प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ-प्रभु हमारे सच्चे सखा हैं, वे शक्ति व प्रज्ञान के भण्डार हैं। ये अपने प्रति आत्मार्पण करनेवाले गतिशील पुरुषों के लिये ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीविराड्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

धीमान्-काण्व-मेध्यातिथि

इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम्। मेषो भूतो३ऽभि यन्नयः॥ ४०॥

(१) हे **अद्रिवः**=आदरणीय-उपासनीय प्रभो! **इत्था**=सचमुच **मेषः**=सुखों का सेचन करनेवाले **भूतः**=हुए-हुए तथा **धीवन्तम्**=बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाले की **अभियन्**=ओर जाते हुए आप **काण्वम्**=मेधावी को तथा **मेध्यातिथिम्**=पवित्र कर्मों की (मेध्य) और निरन्तर गतिवाले पुरुष को (अत सातत्यगमने) **अयः**=प्राप्त होते हैं। (२) प्रभु उसी को प्राप्त होते हैं, जो (क) बुद्धिपूर्वक कर्मों में प्रवृत्त हों, (ख) मेधावी हो तथा (ग) पवित्र कर्मों में निरन्तर गतिवाला हो। ऐसे व्यक्तियों के लिये ही आप सुखों का सेचन करनेवाले होते हैं।

भावार्थ–प्रभु को वही प्राप्त करता है जो ज्ञानपूर्वक कर्मों को करता हुआ पवित्राचरण बनता है। इन्हीं के लिये प्रभु सुखों का सेचन करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः॥ **देवता**—विभिन्दोर्दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—पादनिचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

चत्वार अष्टा ददत्

शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत्। अष्टा परः सहस्रा॥ ४१॥

(१) हे **विभिन्दो**=शत्रुओं का भेदन करनेवाले प्रभो! **अस्मै**=इस उपासक के लिये **चत्वारि**=चारों वेद ज्ञानों को **अयुता**=अपृथग्भूत रूप में **ददत्**=देते हुए **शिक्षा**=इसे शत्रु-नाशन के लिये शक्ति-सम्पन्न करिये (शकिः सन्नन्तः)। प्रकृति, जीव, परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करते हुए हम नीरोग व अशत्रु बने हुए शान्ति से उन्नतिपथ पर आगे बढ़ें। ऋचाएँ हमें प्रकृति का, यजु जीव का, साम आत्मा का तथा अथर्व नीरोगता व अशत्रुता के उपायों का ज्ञान देनेवाले हों। (२) हे प्रभो! आप हमें **अष्टा**=पञ्चभूतों तथा मन-बुद्धि व अहंकार को प्राप्त कराइये। इन आठ को प्राप्त कराइये, जो **परः सहस्रा**=उत्कृष्ट सहस् (बल) वाले हैं। अथवा जिनमें आनन्दमयकोश (स+हस्) सर्वोपरि है।

भावार्थ–प्रभु हमें चारों वेदों का ज्ञान दें तथा हमारे पञ्चभूतों व मन, बुद्धि, अहंकार को बल-सम्पन्न करें।

सूचना–उत्तम अहंकार 'आत्मगौरव की भावना' के रूप में प्रकट होता है।

ऋषिः—मेधातिथिः॥ **देवता**—विभिन्दोर्दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—आर्शीनिचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

जगतः पितरौ (प्रकृति परमेश्वरौ)

उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या। जनित्वनाय मामहे॥ ४२॥

(१) **उत**=और **त्ये**=उन **पयोवृधा**=शक्ति व ज्ञानदुग्ध के द्वारा हमारा वर्धन करनेवाले, **रणस्य**=रमणीयता का **माकी**=(निर्मात्र्यौ) निर्माण करनेवाले **नप्त्या**=हमारा पतन न होने देनेवाले माता-पितृरूप प्रकृति व परमेश्वर को **जनित्वनाय**=शक्तियों के प्रादुर्भाव के लिये **सुमामहे**=उत्तमता से पूजते हैं। (२) प्रकृति शरीर को सशक्त बनाती है, प्रभु आत्मा को सज्ञान बनाते हैं। इस प्रकार प्रकृति व प्रभु मिलकर जीवरूप सन्तान का पालन करते हैं। शक्ति व ज्ञान के द्वारा ये हमारे जीवन को कितना ही सुन्दर बनाते हैं?

भावार्थ–प्रकृति व परमेश्वर इस जगत् के माता-पिता के समान हैं। ये शक्ति व ज्ञानदुग्ध के द्वारा हमारा वर्धन करते हैं, हमारे जीवन में रमणीयता का निर्माण करते हैं, हमें गिरने नहीं देते। हम इन दोनों का आराधन करते हैं।

इस सूक्त के मन्त्र चालीस में 'मेध्यातिथि काण्व' का उल्लेख है। यही अगले सूक्त का ऋषि है –

३. [तृतीयं सूक्तम्]

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—ककुम्मतीबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'गोमान् रसी' सोम

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३ऽस्माँ अवन्तु तेऽ धियः॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **गोमतः**-प्रशस्त इन्द्रियोंवाले **रसिनः**=जीवन को रसमय बनानेवाले **सुतस्य**-उत्पन्न सोम का **पिबा**-पान करिये और **नः मत्स्वा**-हमें आनन्दित करिये। प्रभु के अनुग्रह से सोम का रक्षण होता है। यह सोम हमारी इन्द्रियों को प्रशस्त बनाता है और जीवन को रसमय बनाता है। इस प्रकार प्रभु इस सोम के द्वारा हमें आनन्दित करते हैं। (२) हे प्रभो! **नः आपिः**-हमारे मित्रभूत आप **बोधि**=हमारा ध्यान करिये। आप **सधमाद्यः**-हृदय में हमारे साथ स्थित हुए-हुए हमें आनन्दित करनेवाले हैं। **ते धियः**-आपसे प्राप्त करायी गयी बुद्धियाँ **वृधे**-वृद्धि के लिये हों और **अस्मान् अवन्तु**-हमारा रक्षण करें।

भावार्थ-प्रभु हमारे जीवन में सोमरक्षण के द्वारा प्रशस्त इन्द्रियों को व रस को प्राप्त कराते हैं। प्रभु हमारे मित्र हैं। प्रभु से प्राप्त करायी गयी बुद्धियाँ हमारा वर्धन व रक्षण करती हैं।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—सतःपङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

मा नः स्तः अभिमातये

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय॥ २॥

(१) हे प्रभो! **वयम्**-हम **ते सुमतौ**-आपकी कल्याणी मति में चलते हुए **वाजिनः**-शक्तिशाली **भूमाय**-हों। इस प्रकार सुमति प्राप्त कराके आप **नः**-हमें **अभिमातये**-अभिमान रूप शत्रु के लिये **मा स्तः**-मत विनष्ट करिये। (२) **अस्मान्**=हमें आप **चित्राभिः**=अद्भुत **अभिष्टिभिः**=(इष्ट प्राप्तियों) के द्वारा **अवतात्**-सहायताओं (assistance) से रक्षित करिये। तथा **नः**-हमें **सुम्नेषु**-आनन्दों में व अपने रक्षणों में **आयामय**-नियमित करिये। हमारा निवास सदा आनन्दों में व आपके रक्षणों में हो।

भावार्थ-हमें प्रभु की कल्याणी मति प्राप्त हो। हम अभिमान से दूर रहें। प्रभु अद्भुत सहायताओं द्वारा हमारा रक्षण करें और हमें अपने रक्षणों में स्थापित करें।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत॥ ३॥

(१) हे **पुरुवसो**-पालक व पूरक वसुओं (धनों) वाले प्रभो! **इमाः याः मम गिरः**-ये जो मेरी वाणियाँ हैं वे **उ त्वा वर्धन्तु**-निश्चय से आपका ही वर्धन करनेवाली हों। हम सदा आपका ही स्तवन करें। (२) **पावकवर्णाः**=अग्नि के समान वर्णवाले, तेजस्वी, **शुचयः**-पवित्र मनोंवाले, **विपश्चितः**-ज्ञानी पुरुष ही **स्तोमैः**-स्तुतियों के द्वारा आपका **अभि अनूषत**-प्रातः सायं (अभि=दिन के दोनों ओर) स्तवन करते हैं। वस्तुतः आपके स्तवन से ही वे 'पावकवर्ण, शुचि व विपश्चित्' बनते हैं।

भावार्थ-हम सदा प्रभु का स्तवन करें। यह प्रभु-स्तवन हमें शरीरों में अग्नि के समान तेजस्वी, मनों में पवित्र व मस्तिष्क में ज्ञानोज्ज्वल बनायेगा।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

यज्ञेषु विप्रराज्ये

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये॥४॥

(१) **अयम्**=ये प्रभु **ऋषिभिः**=तत्त्वद्रष्टा पुरुषों से **सहस्रम्**=आनन्दपूर्वक **सहस्कृतः**=अपना बल (सहस्) बनाते हैं। अर्थात् ऋषि लोग प्रभु को हृदयों में धारण करते हुए, प्रभु के बल से अपने को बल-सम्पन्न बनाते हैं। ये प्रभु **समुद्रः इव**=समुद्र के समान **पप्रथे**=विस्तृत हैं। समुद्र अनन्त-सा प्रतीत होता है, प्रभु हैं ही अनन्त। (२) **सः**=वह **अस्य**=इसकी **महिमा**=महिमा **सत्यः**=सत्य है कि **यज्ञेषु**=यज्ञों में और **विप्रराज्ये**=ज्ञानियों के राज्य में **शवः गृणे**=इस प्रभु के बल का स्तवन होता है। स्तुत्य बलवाले वे प्रभु हैं, प्रभु का यह बल यज्ञों व ज्ञानयज्ञों का रक्षण करता है।

भावार्थ—ऋषि प्रभु को ही अपना बल बनाते हैं। प्रभु सर्वव्यापक हैं। प्रभु के बल का सर्वत्र यज्ञों व ज्ञानयज्ञों में स्तवन होता है।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

इन्द्र की आराधना

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये॥५॥

(१) हम **इन्द्रं इत्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **देवतातये**=दिव्यगुणों के विस्तार के लिये **हवामहे**=पुकारते हैं **इन्द्रम्**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु को ही **प्रयति अध्वरे**=इस चलते हुए जीवन यज्ञ के निमित्त, अर्थात् जीवनयज्ञ की रक्षा के लिये पुकारते हैं। (२) **इन्द्रम्**=उस शत्रु विद्रावक प्रभु को ही **समीके**=संग्रामों में पुकारते हैं, प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर ही तो हम शत्रुओं का विद्रावण कर पायेंगे। (२) **वनिनः**=सम्भजन करनेवाले हम **धनस्य सातये**=धन की प्राप्ति के लिये उस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को पुकारते हैं।

भावार्थ—प्रभु की आराधना से ही (क) दिव्यगुणों का विस्तार होता है, (ख) जीवनयज्ञ सुरक्षित रूप से चलता है, (ग) संग्राम में हम विजयी बनते हैं और (ग) धनों की प्राप्ति में समर्थ होते हैं।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—भुरिक्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

इन्द्र की महिमा

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः॥६॥

(१) **इन्द्रः**=वह सर्वशक्तिमान् प्रभु **मह्ना**=अपनी महिमा से **रोदसी**=द्यावापृथिवी में **शवः**=बल को **पप्रथत्**=विस्तृत करता है। सर्वत्र द्यावापृथिवी में प्रभु की शक्ति ही कार्य कर रही है। **इन्द्रः**=ये परमैश्वर्यशाली प्रभु ही **सूर्यम्**=सूर्य को **अरोचयत्**=दीप्त करते हैं। सूर्यादि सब ज्योतिर्मय पिण्ड प्रभु की ज्योति से ही ज्योतिर्मय हो रहे हैं। (२) **ह**=निश्चय से **इन्द्रे**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु में **विश्वा भुवनानि**=सब भुवन **येमिरे**=नियमित हो रहे हैं, प्रभु ही इनका नियमन कर रहे हैं। **इन्द्रे**=उस शक्तिशाली प्रभु में ही **इन्दवः**=शक्तिशाली **सुवानासः**=शब्द हैं (स्वानासः)।

भावार्थ–द्यावापृथिवी में सर्वत्र प्रभु की शक्ति का विस्तार है, प्रभु ही सूर्य को दीप्त करते हैं, सब भुवन प्रभु में नियमित हो रहे हैं, प्रभु में ही शक्तिशालीन शब्दों का निवास है।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वःङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—निचृद्बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

चारों आश्रमों में प्रभु-स्तवन

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **पूर्वपीतये**=जीवन के पूर्व भाग में सोम के रक्षण के लिये **त्वा अभि**–आपका लक्ष्य करके ही **समस्वरन्**–स्तुति शब्दों का उच्चारण करते हैं, आपका स्तवन ही वासनाओं के विनाश के द्वारा हमें सोमरक्षण के योग्य बनाता है। (२) **आयवः**–संसार व्यवहारों में चलनेवाले गृहस्थ पुरुष भी **स्तोमेभिः**–स्तुति समूहों के द्वारा आप को ही स्तुत करते हैं। आपका स्तवन ही उन्हें भोग-विलास में फँसने से बचाकर आगे बढ़ानेवाला होता है। (३) गृहस्थ से ऊपर उठकर **समीचीनासः**=प्रभु के साथ मिलकर गति करनेवाले (सं अञ्च्) प्रभु-स्मरण पूर्वक गतिवाले **ऋभवः**-ज्ञानदीप्त व्यक्ति आपके ही (समस्वरत्) स्तुति शब्दों का उच्चारण करते हैं और (४) अन्त में **रुद्राः**=(रुत) ज्ञानोपदेश करनेवाले ये परिव्राजक लोग भी **पूर्व्यम्**–पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम आप को ही **गृणन्त** स्तुत करते हैं। आपका स्तवन ही उन्हें अनासक्त होने की शक्ति देता है।

भावार्थ–प्रभु-स्मरण ही एक ब्रह्मचारी को सोम के रक्षण के योग्य बनाता है। प्रभु स्मरण से ही गृहस्थ भोग-प्रसक्त नहीं हो जाता? प्रभु-स्मरण ही वनस्थ को स्वाध्याय प्रवृत्त कर दीप्त जीवनवाला बनाता है। प्रभु स्मरण ही सन्यस्त को सब कमियों से दूर रहने में समर्थ करता है।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वःङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—स्वराड्बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

वृष्ण्यं शवः

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा॥ ८॥

(१) **इन्द्रः**-एक जितेन्द्रिय पुरुष **सुतस्य अस्य**=उत्पन्न हुए-हुए इस सोम के **विष्णवि मदे**=शरीर में व्याप्त मद (उल्लास) के होने पर **इडम्**=ही **वृष्णयं शवः**=शक्ति को सेचन करनेवाले, अंग प्रत्यंग को सशक्त बनानेवाले बल को **वावृधे**–अपने अन्दर बढ़ाता है। (२) **आयवः**-गतिशील पुरुष **अस्य**–इस सोम की **तम्**-उस **महिमानम्**–महिमा को **पूर्वथा**=पहले की तरह **अनुष्टुवन्ति**=स्तुत करते हैं। सोम का महत्त्व सदा गाया जाता रहा है। यही उत्कृष्ट जीवन का आधार बनता है।

भावार्थ–सुरक्षित सोम शरीर के सब अंगों को सशक्त बनाता है। सोम की महिमा सदा वेदवाणियों से गायी जाती रही है।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वःङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—निचृद्बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

सुवीर्य-ब्रह्म

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ॥ ९॥

(१) हे प्रभो! मैं **त्वा**=आप से **तत्**=उस **सुवीर्यं यामि**=उत्कृष्ट शक्ति की याचना करता हूँ और **पूर्वचित्तये**=पालक व पूरक चित्ति (चेतना) के लिये **तद् ब्रह्म**=उस ज्ञान की याचना करता हूँ, **येना**=जिस 'सुवीर्य और ब्रह्म' के द्वारा **यतिभ्यः**=संयमी पुरुषों के लिये तथा **भृगवे**=ज्ञान के द्वारा अपना परिपाक करनेवाले के लिये **हिते धने**=हितकर धन के निमित्त **आविथ**=आप रक्षण करनेवाले होते हो। ये यति और भृगु सुवीर्य और ब्रह्म के द्वारा उत्कृष्ट धनों को प्राप्त करनेवाले होते हैं। (२) हे प्रभो! मैं उस सुवीर्य और ब्रह्म की आप से याचना करता हूँ **येन**=जिस से आप **प्रस्कण्वं आविथ**=प्रकृष्ट मेधावी पुरुष का रक्षण करते हैं।

भावार्थ—हे प्रभो! आप हमें वह सुवीर्य व ज्ञान प्राप्त कराइये जिससे कि हम पूर्ण चेतना में रहते हुए यति बनें, भृगु बनें व प्रस्कण्व बन पायें 'संयमी-ज्ञानपरिपक्व-मेधावी'।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—सतःपङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'अनन्त महिम' प्रभु

येना॑ समु॒द्रमसृ॑जो म॒हीर॒पस्तदि॑न्द्र॒ वृष्णि॑ ते॒ शवः॑।

स॒द्यः सो अ॑स्य महि॒मा न सं॒नशे॒ यं क्षो॒णीर॑नुचक्र॒दे॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=सब बल के कर्मों को करनेवाले प्रभो! **येन**=जिस बल के द्वारा **समुद्रं असृजः**=आप समुद्र का निर्माण करते हैं, **महीः**=इन पृथिवियों का व **अपः**=जलों का निर्माण करते हैं, **ते**=आपका **तत् शवः**=वह बल **वृष्णि**=सुखों का वर्षण करनेवाला है। (२) **अस्य**=इस प्रभु की **सः महिमा**=वह महिमा **सद्यः**=शीघ्र **न सन्नशे**=प्राप्त करने योग्य नहीं होती **यम्**=जिस महिमा को **क्षोणीः**=ये सम्पूर्ण पृथिवियाँ **अनुचक्रदे**=प्रतिदिन क्रन्दतापूर्वक कह रही हैं। 'यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः'।

भावार्थ—प्रभु अपने अद्भुत बल से समुद्र, पृथिवी व जलों का निर्माण करते हैं। प्रभु की महिमा को ये पृथिवियाँ पुकार-पुकार कर कह रही है। प्रभु की इस महिमा को व्याप्त करने का सम्भव नहीं।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—भुरिगनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

शक्ति के द्वारा पालन व पूरण

श॒ग्धी न॑ इन्द्र॒ यत्त्वा॑ र॒यिं यामि॑ सु॒वीर्य॑म्।

श॒ग्धि वाजा॑य प्रथ॒मं सिषा॑सते श॒ग्धि स्तोमा॑य पूर्व्य॥ ११॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जिस **रयिम्**=ऐश्वर्य को व **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को **त्वा यामि**=आप से याचना करता हूँ, उसे **नः**=हमारे लिये **शग्धि**=दीजिये (देहि द०)। (२) हे प्रभो! आप **प्रथमम्**=सर्वप्रथम **वाजाय सिषासते**=शक्ति के लिये सम्भजन की कामनावाले पुरुष के लिये **शग्धि**=शक्ति को दीजिये। (३) हे **पूर्व्य**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम प्रभो! आप **स्तोमाय**=स्तुति करनेवाले के लिये **शग्धि**=शक्ति को देनेवाले होइये। इस शक्ति ने ही तो हमारा पालन व पूरण करना है।

भावार्थ—प्रभु से हम शक्ति की याचना करते हैं। हम स्तोता बनें, सर्वप्रथम प्रभु का सम्भजन करें। प्रभु हमें शक्ति देंगे और हम अपना पालन व पूरण कर पायेंगे।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

पौर-रुशम-श्यावक-कृप-चणेर्

शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिषासतः।
शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपमिन्द्र प्रावः स्वर्णरम्॥ १२॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **धियः**=बुद्धिपूर्वक कर्मों का **सिषासतः**=सम्भजन करनेवाले **अस्य**=इस बल को **नः**=हमारे लिये **शग्धि**=दीजिये, **यत् ह**=जिस बल के द्वारा आप **पौरम्**=(पृ पालनपूरणयोः) पालन व पूरण करनेवाले मनुष्य को **आविथ**=रक्षित करते हो। हमें प्रभु कृपा से वह बल प्राप्त हो जिसके द्वारा हम बुद्धिपूर्वक कर्मों में प्रवृत्त रहें। यही मार्ग है जिससे कि हम अपना पालन व पूरण करते हैं और 'पौर' बनते हैं। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप इस प्रकार हमें **शग्धि**=समर्थ करिये सामर्थ्य दीजिये **यथा**=जिस से आप **प्रावः**=हमारा प्रकर्षेण रक्षण करें। उन हम लोगों का रक्षण करें जो **रुशमम्**=वासनाओं का संहार करनेवाले बनें हैं। **श्यावकम्**=(श्यै गतौ) गतिशील हुये हैं। **कृपम्** सामर्थ्य का सम्पादन करनेवाले व **स्वर्णरम्**=प्रकाश की ओर अपने को ले चलनेवाले हुए हैं।

भावार्थ—प्रभु उनको शक्तिशाली बनाकर रक्षित करते हैं, जो (क) अपना पालन व पूरण करें, (ख) वासनाओं का संहार करे, (ग) गतिशील हों, (घ) सामर्थ्य-सम्पन्न बनें, (ङ) प्रकाश के ओर चलनेवाले हों।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

महिमानं, इन्द्रयं, स्वः

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः॥ १३॥

(१) **अतशीनाम्**=विविध योनियों में गतिशील इन जीवों में **नव्यः**=(नु स्तुतौ) स्तुति में उत्तम, **तुरः**=अतएव वासनाओं का संहार करनेवाला **मर्त्यः**=मनुष्य **कत्**=कभी ही **गृणीत**=उस प्रभु का स्तवन करता है। सामान्यतः मनुष्य वासनामय जीवनवाला होकर इन प्राकृतिक भोगों में ही फँसा रह जाता है। सौभाग्यवश कोई एक उस प्रभु के स्तवन की ओर झुकता है। (२) **नु**=अब इन स्तवन करनेवालों में भी **अस्य**=इस प्रभु के **इन्द्रियम्**=बल व **स्वः**=प्रकाश का **गृणन्तः**=स्तवन करते हुए ये स्तोता लोग इसकी **महिमानम्**=महिमा को **नहि आनशुः**=व्याप्त नहीं कर पाते, प्रभु की महिमा को पूर्णरूपेण नहीं जान पाते। प्रभु के बल व प्रकाश का स्तवन करते हुए ये लोग प्रभु की महिमा के अन्त को नहीं पा पाते।

भावार्थ—विरल व्यक्ति ही प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त होते हैं। स्तवन करनेवाले भी प्रभु की महिमा का अन्त नहीं जान पाते।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—सतःपङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

सुन्वतः-स्तुवतः

कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः॥ १४॥

(१) हे **देवत**=प्रकाशमय प्रभो! **ऋतयन्तः**=ऋत को अपनाने की कामनावाले ये लोग **कत्**

उ=कब ही **स्तुवन्ते**=आपका स्तवन करते हैं? **कः**=कौन **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा **विप्रः**=विशेषरूप से अपना पूरण करनेवाला, न्यूनताओं को दूर करनेवाला व्यक्ति **ओहते**=आपको प्राप्त होता है (ओह: गतौ Reaching) (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् **मघवन्**=सब यज्ञोंवाले (मघ=मख) प्रभो! **कदा**=कब **सुन्वतः**=यज्ञशील पुरुष की **हवम्**=पुकार को सुनकर **आगमः**=आप आते हैं। **कत् उ**=और कब ही **स्तुवतः**=स्तुति करनेवाले की पुकार को सुनकर आप प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—प्रभु-सम्पर्क से अनृत का विनाश होता है यह ऋत को अपनानेवाले लोग ऋषि व विप्र बनकर प्रभु को प्राप्त होते हैं। प्रभु यज्ञशील स्तोताओं की पुकार को सुनते हैं।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सदा विजयी

उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव॥ १५॥

(१) **त्ये**=वे **स्तोमासः**=स्तुति करनेवाले लोग **उ**=निश्चय से **मधुमत्तमाः**=जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाली **गिरः**=ज्ञान की वाणियों का **उद् ईरते**=उच्चारण करते हैं। (२) इन ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाले ये स्तोता लोग **सत्राजितः**=सदा विजयी, **धनसाः**=उत्तम धनों को प्राप्त करनेवाले, **अक्षित-उत्तमः**=अक्षीण रक्षणोंवाले तथा **रथाः इव**=महारथियों के समान **वाजयन्तः**=संग्राम में शक्तिशाली पुरुष की तरह आचरण करते हैं।

भावार्थ—स्तोता लोग मधुर ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करते हैं। परिणामतः सदा विजयी, धनैश्वर्यवाले, सुरक्षित जीवनवाले तथा महारथियों के समान संग्राम करते हुए होते हैं।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

(आयवः प्रियमेधासः) सर्वोत्कृष्ट जीवन

कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद्धीतमानशुः।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन्॥ १६॥

(१) **कण्वाः इव**=मेधावी पुरुषों के समान **भृगवः**=ज्ञानाग्नि में अपने को परिपक्व करनेवाले ये उपासक **सूर्याः इव**=सूर्यों के समान होते हैं, सूर्य की तरह सर्वत्र प्रकाश को करनेवाले होते हैं। ये **इत्**=निश्चय से **धीतम्**=(thought about, reflected upon) **सुचिन्तित विश्वम्**=संसार को **आनशुः**=व्याप्त करते हैं, अर्थात् संसार में सब चीजों को तात्त्विक दृष्टिकोण से देखते हुए वर्तते हैं। परिणामतः ये किसी भी वस्तु में उलझते नहीं। (२) ये **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **स्तोमेभिः**=स्तुति समूहों से **महयन्तः**=पूजते हुए, **आयवः**=गतिशील जीवन बिताते हुए, **प्रियमेधासः**=प्रिय बुद्धिवाले (मेधा) अथवा यज्ञप्रिय (मेध=यज्ञ) होते हुए **अस्वरन्**=अपने शरीरों को तथा पीड़ित करते हैं, तपस्वी जीवन बिताते हैं।

भावार्थ—हम ज्ञानाग्नि में अपने जीवन को परिपक्व करें। सब चीजों को तात्त्विक दृष्टि से देखते हुए वर्तें। प्रभु का स्तवन करते हुए, गतिशील जीवन बिताते हुए, यज्ञप्रिय व तपस्वी बनें।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पथ्याबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

अर्वाचीनः

युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि॥ १७॥

(१) हे **इन्द्र**–सर्वशक्तिमन् **वृत्रहन्तम्**=वासनाओं को अतिशयेन विनष्ट करनेवाले प्रभो! आप **हि**-निश्चय से **परावतः**=सुदूर देशों में भटकनेवाले इन **हरी**-इन्द्रियाश्वों को **युक्ष्वा**=हमारे शरीर रथ में युक्त करिये। ये इधर–उधर न भटककर, यहाँ शरीर में स्थित हुए–हुए अपने कार्यों को अच्छी प्रकार करनेवाले हों। (२) हे **मघवन्**-सब यज्ञों के भोक्ता (मघ-मख) आप **अर्वाचीनः**=हमें अन्दर हृदयान्तरिक्ष में प्राप्त होइये (अर्वाङ् अञ्चति)। हम हृदयों में आपका ध्यान करनेवाले बनें। हे **उग्र**-तेजस्विन् प्रभो! **सोमपीतये**=हमारी सोमशक्ति के शरीर में ही पान के लिये आप **ऋष्वेभिः**–उत्कृष्ट इन्द्रियाश्वों के साथ **आगहि**-हमें प्राप्त होइये। आपकी कृपा से हमें उत्कृष्ट पवित्र इन्द्रियाँ प्राप्त हों और हम सोम का रक्षण कर सकें।

भावार्थ–हमारे इन्द्रियाश्व विषयों में भटकनेवाले न हों। हम सोम का शरीर में ही रक्षण कर सकें।

ऋषिः -मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

ते कारवः

इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसातये।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम्॥ १८॥

(१) हे प्रभो! **इमे ते कारवः** ये आपके स्तोता लोग **विप्रासः**–अपना विशेषरूप से पूरण करते हुए **धिया**=बुद्धिपूर्वक **मेधसातये**=यज्ञों की प्राप्ति के लिये **हि**=निश्चय से **वावशुः**–कामना करते हैं। प्रभु का स्तोता (क) अपने जीवन में न्यूनताओं को दूर करने के लिये यत्नशील होता है। (ख) यज्ञमय जीवन बिताता है। (ग) सब कर्मों को बुद्धिपूर्वक कुशलता से करता है। (२) हे **मघवन्**–यज्ञशील **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा उपासनीय प्रभो! **सः त्वम्**-वे आप **नः**=हमारे लिये **वेनः न**–हमारे प्रति प्रेमवाले होते हुए **हवं शृणुधि**=हमारी पुकार को सुनिये। हम आपके प्रिय बनें, हमारी प्रार्थना सदा सुनी जाये।

भावार्थ–सच्चा स्तोता अपने जीवन की न्यूनताओं को दूर करता हुआ बुद्धिपूर्वक यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त रहता है। प्रभु का यह प्रिय बनता है, इसकी प्रार्थना सदा सुनी जाती है।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'अर्बुद-मृगय-मायी-पर्वत' से गौओं को बाहिर करना

निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः॥ १९॥

(१) **इन्द्र**-हे जितेन्द्रिय पुरुष! तू **बृहतीभ्यः धनुर्भ्यः**=वृद्धि के कारणभूत प्रणव (ओंकार) रूप धनुषों के द्वारा **वृत्रम्**–वासनारूप शत्रु को **निः अस्फुरः**-निश्चय से विनष्ट करनेवाला हो। 'ओ३म्' के जप के द्वारा तू वासना को अपने से दूर कर। (२) **अर्बुदस्य**=कुटिलता की वृत्ति, **मृगयस्य**–तृष्णा की वृत्ति की (मृग अन्वेषणे। सदा धन की खोज में रहना) तथा **मायिनः**–अत्यन्त मायाविनी कामवृत्ति की शिकार बनी हुई **गाः**–इन्द्रियों को **निः आजः**=इन वृत्तियों से बाहर कर। तथा **पर्वनस्य**=अविद्या पर्वत में निरुद्ध इन इन्द्रियों को इस पर्वत से **निः**-(आजः) बाहिर गतिवाला कर।

भावार्थ–प्रणव (ओ३म्) के जप से हम वासना को विनष्ट करें। इन्द्रियों को 'कुटिलता, तृष्णा, काम व अविद्या' का शिकार न होने दें।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

वासना विनाश व दीप्ति

निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यः निः सोम इन्द्रियो रसः।
निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र पौंस्यम्॥ २०॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू जब **अन्तरिक्षात्**=हृदयान्तरिक्ष से इस **महां अहिम्**=महान् हनन करनेवाली (आहन्ती) वासना को **निरधमः**=सुदूर विनष्ट करता है, तो तू **तत्**=उस **पौंस्यम्**=पुरुषार्थ को **कृषे**=करता है कि **अग्नयः**=शरीर में सब अग्नियाँ **निः रुरुचुः**=निश्चय से दीप्त हो उठती हैं, 'पार्थिव पदार्थों का ज्ञान, अन्तरिक्ष के पदार्थों का ज्ञान तथा द्युलोक के पदार्थों का ज्ञान' ये सब अग्नियाँ चमक उठती हैं। इसी प्रकार 'उत्साह की अग्नि', 'शक्ति की अग्नि' व 'ज्ञान की अग्नि' ये सब अग्नियाँ चमक उठती हैं। (२) **उ**=और **सूर्यः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में सूर्य **निः**=निश्चय से दीप्त होता है। **सोमः**=शरीर में उत्पन्न हुई-हुई सोमशक्ति **निः**=निश्चय से दीप्त हो उठती है तथा **इन्द्रियः रसः**=(इन्द्रियं वीर्यं बलम्) बल के कारण उत्पन्न होनेवाला जीवन का रस चमक उठता है।

भावार्थ–वासना विनाश से शरीर में 'अग्नियाँ, ज्ञान का सूर्य, सोमशक्ति व बल से उत्पन्न रस' सब चमक उठते हैं।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ देवता—पाकस्थाम्नः कौरयाणस्य दानस्तुतिः॥ छन्दः—भुरिगनुष्टुप्॥
स्वरः—गान्धारः॥

'इन्द्रः मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः'

यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम्॥ २१॥

(१) **यम्**=जिस प्रभु को **मे**=मेरे लिये वे आचार्य **दुः**=देते हैं, जो **इन्द्रः**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता व जितेन्द्रिय हैं, **मरुतः**=प्राणसाधना में चलनेवाले हैं। **पाकस्थामा**=परिपक्व व शुद्ध बलवाले हैं और **कौरयाणः**=क्रियाशील हैं। मैं उसका **विश्वेषाम्**=सबके मध्य **त्मना**=आत्मरूप से **शोभिष्ठम्**=अतिशोभनीय **उप इव**=अत्यन्त समीप **दिवि**=आकाश में **धावमानम्**=गति करते हुये देखता हूँ।

भावार्थ–प्राण साधक योगाभ्यासा जन सर्वत्र परम प्रभु को देखते हैं।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ देवता—पाकस्थाम्नः कौरयाणस्य दानस्तुतिः॥ छन्दः—विराड्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

पाकस्था सुधुरम्

रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम्। अदाद्रायो विबोधनम्॥ २२॥

पाकस्थामा=वह बल का पुञ्ज प्रभु **सुधुरम्**=सुख से धारण योग्य **कक्ष्यप्राम्**=कोखों में पूर्ण **रोहितम्**=जन्मनेवाला, प्रादुर्भूत होनेवाला शरीर वा आत्मा **अदात्**=देता है, वह **रायः**=सम्पत्ति तथा **विबोधनम्**=विशेष साधन मन, बुद्धि, इन्द्रियादि (अदात्) देता है।

भावार्थ–वह परम प्रभु जीव को सब साधन देता है।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—पाकस्थाम्नः कौरयाणस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

दश वह्नयः

यस्मा॑ अ॒न्ये दश॒ प्रति॒ धुरं॒ वह॑न्ति॒ वह्न॑यः। अस्तं॒ वयो॒ न तुग्र्य॑म्॥ २३॥

तुग्र्यं वयः न=बलवान् गृहपति को तीव्रगामी घोड़े जिस प्रकार **अस्तम्**=गृह को ले जाते हैं, इसी प्रकार **यस्मै**=प्रभु दर्शन के लिए **अन्ये**=दूसरे **दश**=दस **वह्नयः**=अग्निवत् तेजस्वी प्राण **धुरं प्रति**=धारक आत्मा के अधीन **वहन्ति**=उसको वहन करते हैं।

भावार्थ—दस प्राण आत्मा से शरीर में धारण करते हैं।

ऋषिः—मेध्यातिथिः काण्वः॥ **देवता**—पाकसथाम्नः कौरयाणस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—बृहती॥
स्वरः—मध्यमः॥

भोजं तुरीयम्

आ॒त्मा पि॒तुस्त॒नूर्वास॑ ओजो॒दा अ॒भ्यञ्ज॑नम्।
तु॒रीय॒मिद्रोहि॑तस्य॒ पाक॑स्थामानं भो॒जं दा॒तार॑मब्रवम्॥ २४॥

मैं **रोहितस्य**=जन्मनेवाले शरीर, प्रादुर्भूत जीवात्मा को **पाकस्थामानम्**—अत्यन्त बलशाली **भोजम्**=पालक प्रभु को **अब्रवम्**—बतलाता हूँ कि वे प्रभु **तुरीयम् इत्**='हिरण्यगर्भ, तैजस व प्राज्ञ' इन तीन पादों से ऊपर उठकर चतुर्थ 'शान्त शिव अद्वैत' पाद के रूप में हैं। **पाकस्थामानम्**=परिपक्व बलवाले हैं। **भोजम्**—सबका पालन करनेवाले हैं और पालन के लिये सब आवश्यक शक्तियों व पदार्थों के **दातारम्**=देनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु ही 'आत्मा, अन्न, शरीर, वस्त्र, ओज के दाता, कान्ति व शक्ति के दाता' हैं। वे प्रभु 'तुरीय, पाकस्थामा, भोज व दाता' हैं।

इस महान् देव का आतिशय करनेवाला 'देवातिथि' अगले सूक्त का ऋषि है। यह 'काण्व' मेधावी है। इन्द्र का स्तवन करता हुआ कहता है—

४. [चतुर्थं सूक्तम्]

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—भुरिगनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

प्रभु कहाँ नहीं हैं?

यदि॑न्द्र॒ प्रागपा॒गुदङ्॒ न्य॑ग्वा हू॒यसे॒ नृभिः॑।
सिमा॑ पु॒रू नृषू॑तो अ॒स्यान॒वेऽसि॑ प्रशर्ध तु॒र्वशे॑॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यद्**=जो आप **प्राक् अपाक्**—पूर्व में व पश्चिम में **उदङ् न्यग् वा**—या उत्तर व दक्षिण में **नृभिः हूयसे**=मनुष्यों से पुकारे जाते हैं। वे आप **सिमा**=सब दिशाओं में विद्यमान हैं। आप कहाँ नहीं हैं? आप **पुरु**=खूब ही **नृषूतः असि**—उन्नतिपथ पर चलनेवालों के सारथि हैं। (२) **आनवे**=(अन प्राणने) आप इन नर मनुष्यों को प्राणित व उत्साहित करनेवाले हैं। हे **प्रशर्ध**=प्रकृष्ट शक्ति-सम्पन्न प्रभो! आप **तुर्वशे असि**=त्वरा से शत्रुओं को वश में करने के लिये होते हैं। प्रभु का भक्त प्रभु से शक्ति व उत्साह को प्राप्त करके शीघ्रता से शत्रुओं को वशीभूत करनेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु सर्वव्यापक हैं। उन्नतिपथ पर चलनेवालों के रथ के सारथि होते हैं। उत्साह

व शक्ति देते हैं। शत्रुओं को वशीभूत करनेवाले हैं।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'रुम-रुशम-श्यावक-कृप'

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यद् वा**-या तो **रुमे**-(रु शब्दे) स्तुति शब्दों का उच्चारण करनेवाले पुरुष में या **रुशमे**=स्तुति शब्दों का उच्चारण करते हुए शत्रु-संहार करनेवाले में (रुश शब्दे) तथा **श्यावके**=शत्रु-संहार के उद्देश्य से ही निरन्तर गतिशील पुरुष में और **कृपे**=(कृप् सामर्थ्ये) शक्तिशाली पुरुष में **सचा**=समवाय (मेल) वाले होते हुए आप **मादयसे**=इन उपासकों को आनन्दित करते हैं। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **स्तोमवाहसः**=स्तुति समूहों का धारण करनेवाले **कण्वासः**=बुद्धिमान् लोग **ब्रह्मभिः**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित होनेवाली इन स्तुति वाणियों से **त्वा यच्छन्ति**=आपके प्रति अपने को दे डालते हैं। **आगहि**=आप इन स्तोताओं को प्राप्त होइये।

भावार्थ-प्रभु उन्हें प्राप्त होते हैं जो (क) स्तुति शब्दों का उच्चारण करते हैं, (ख) वासनाओं का संहार करते हैं, (ग) गतिशील हैं तथा (घ) शक्तिशाली बनते हैं। स्तोता प्रभु के प्रति अपना अर्पण करते हैं, प्रभु इन्हें प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

प्यासा मृग जैसे जलधारा पर

यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब॥ ३॥

(१) प्रभु कहते हैं **यथा**=जैसे **गौरः**=एक मृग **तृष्यन्**=प्यासा होता हुआ **अपा कृतम्**=जल से बने हुए, जल से युक्त **इरिणम्**=एक जलप्रवाह की **अव एति**=ओर आता है, इसी प्रकार हे जीव! तू भी **नः**=हमारे **प्रपित्वे**=(अभीके नि०) समीप **आपित्वे**=मित्रता में **तूयं आगति**=शीघ्र आनेवाला हो। वस्तुतः तेरी प्यास यहाँ आकर ही बुझेगी संसार के पदार्थ तेरी प्यास को न बुझायेंगे। उनसे तो तेरी तृष्णा और बढ़ती ही जायेगी। (२) **कण्वेषु**=मेधावी पुरुषों में **सचा**=मेलवाला होता हुआ तू **सु पिब**=अच्छी प्रकार ज्ञान जलों का पान कर। यह ज्ञानजल ही तुझे निर्मल भी बनायेंगे और तेरी प्यास को भी बुझायेंगे। इनसे निर्मल बना हुआ तू हमें प्राप्त होगा।

भावार्थ-हम प्रभु चरणों में ऐसे उपस्थित हों जैसे एक प्यासा मृग जलधारा पर उपस्थित होता है। मेधावी पुरुषों के सत्संग में हम ज्ञान जलों का पान करें।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

सोमरक्षण व सहस् की प्राप्ति

मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते।
आमुष्या सोमममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद् दधिषे सहः॥ ४॥

(१) हे **मघवन्**=यज्ञशील **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **इन्दवः**-ये सोमकण **त्वा**-तुझे **मन्दन्तु**= आनन्दित करनेवाले हों। ये सोमकण **सुन्वते**=यज्ञशील पुरुष के लिये **राधोदेयाय**=ऐश्वर्य के

देनेवाले होते हैं। (२) सो हे जीव! तू **चमूसुतम्**=इस शरीर में उत्पन्न किये गये इस सोम को **आपिबः** पीनेवाला हो और **आमुष्यः**-इस शरीर में ही चारों ओर इसे सुहुत करनेवाला बन और **तद्**-तब **ज्येष्ठ सहः**-सर्वोत्कृष्ट बल को **दधिषे**-धारण कर।

भावार्थ-यज्ञशीलता व जितेन्द्रियता हमें सोम के रक्षण के योग्य बनाये। इस सोमरक्षण के द्वारा हम सर्वोत्कृष्ट बल को (आनन्दमयकोश की सहस् शक्ति को) धारण करें।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पथ्याबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सहस्वी व ओजस्वी बनना

प्र चक्रे सहसा सहो बभञ्ज मन्युमोजसा।
विश्वे त इन्द्र पृतनायवो यहो नि वृक्षाइव येमिरे॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **सहसा** बल के द्वारा **सहः**=शत्रुओं के मर्षण को **प्र चक्रे**=प्रकर्षेण करता है। **ओजसा**-ओजस्विता के द्वारा **मन्युम्**-इन के क्रोध को **बभञ्ज**-भग्न कर देता है। (२) प्रभु जीव से कह रहे हैं कि हे **यहो**=प्रिय पुत्र! **ते**-तेरे **विश्वे**=सब **पृतनायवः**=सेना के द्वारा आक्रमण करनेवाले **वृक्षाः इव**=वृक्षों की तरह **नियेमिरे**-काबू में किये जाते हैं। काम-क्रोध-लोभ आदि को तू इस प्रकार वशीभूत कर लेता है कि उनकी सब हलचल पूर्ण रूप से संयत हो जाती है। उनकी उग्रता समाप्त होकर वे भी वृक्षों की तरह छाया को देनेवाले हो जाते हैं। धर्माविरुद्ध होकर वे भी शुभ रूप हो जाते हैं।

भावार्थ-हम सहस्वी व ओजस्वी बनकर काम क्रोध आदि शत्रुओं को वशीभूत करनेवाले हों।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

प्रावर्ग पुत्र

सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिम्।
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये दाश्नोति नमउक्तिभिः॥ ६॥

(१) हे प्रभो! **यः**-जो **ते**-आपकी **स्तुतिं आनट्**-स्तुति को व्यापता है, अर्थात् सदा आपका स्तवन करता हुआ कार्यों को करता है वह **सहस्रेण इव**-हजारों के समान **यवीयुधा**-शत्रु-नाशक बल से **सचते**=संयुक्त होता है। स्तोता के अन्दर हजारों पुरुषों का बल आ जाता है और यह शत्रु-नाश करने में समर्थ होता है। (२) **नम उक्तिभिः**-नमन के वचनों से, प्रभु के प्रति इन स्तुति-वचनों से **सुवीर्ये**-उत्तम वीर्य के होने पर **पुत्रम्**-सन्तान को **प्रावर्गम्**=प्रकर्षेण शत्रुओं का वर्जन करनेवाला **कृणुते**-करता है। अर्थात् इस उपासक की सन्तान नीरोग व निर्मल होती है। और यह इन स्तुति-वचनों से सब शत्रुओं को **दाश्नोति**-समाप्त करनेवाला होता है।

भावार्थ-प्रभु-स्तवन से हजारों पुरुषों के बल के समान बल प्राप्त होता है। सन्तान नीरोग व निर्मल मनवाली होती है। हम भी सब शत्रुओं का शातन (संहार) कर पाते हैं।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

मा भेम, मा श्रमिष्म

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम्॥ ७॥

(१) हे प्रभो! **उग्रस्य**=शत्रुओं के लिये भयंकर **तव**=आपके **सख्ये**=मित्रभाव में हम **मा भेम**=न तो शत्रुओं से भयभीत हों और **मा**=ना ही **श्रमिष्म**=थक जायें, सदा श्रमशील बनें रहें, अनथक रूप से कार्य करनेवाले हों। (२) **वृष्णः**=शक्तिशाली **ते**=आपकी **महत्**=महान् **अभिचक्ष्यम्**=(means of defence) रक्षण व्यवस्था **कृतम्**=की गयी है। उस रक्षण व्यवस्था से रक्षित हुए-हुए हम अपने को **तुर्वशम्**=त्वरा से शत्रुओं को वश में करनेवाला व **यदुम्**=यत्नशील **पश्येम**=देखें। आप से रक्षित हुए-हुए हम शत्रुओं के शीर्ण करके सदा धर्म कार्यों में यत्नशील रहें।

भावार्थ—प्रभु की मित्रता में हम अभय व सतत कार्यशील बनें। प्रभु की रक्षण व्यवस्था में शत्रुओं को वश में करनेवाले व यत्नशील हों।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

मधुयुक्त धेनुदुग्ध का सेवन

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति।
मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब॥ ८॥

(१) कटि प्रदेश में स्थित 'सव्या स्फिग्य'=गर्भधानी है। **सव्यां सिफ्गयं अनु**=गर्भधानी में निवास के बाद गत मन्त्र का यह 'तुर्वश-यदु' **वावसे**=उत्तम निवासवाला होता है। **वृधा**=शक्तिशाली बनता है। **अस्य**=इसका **दानः**=त्याग-भाव (दाप् लवने) बुराइयों का खण्डन व (दैप् शोधने) शोधन **न रोषति**=हिंसित नहीं होता। यह जीवन में त्याग भाववाला बनता है, सब बुराइयों को दूर करके जीवन को शुद्ध बनाये रखता है। (२) 'ऐसा जीवन बन सके' इस के लिये आवश्यक है कि हम प्रभु के इस निर्देश के अनुसार कार्य करें कि **सारधेण मध्वा**=मधुमक्षिकाओं से संचित शहद से **धेनवः**=नवसूतिका गौवों का दूध **संपृक्ताः**=मिलाया गया है। **तूयं ऐहि**=शीघ्र आओ, **द्रुव**=गतिशील बनो और **पिब**=इस का पान करो। वस्तुतः गर्भिणी माता शहद युक्त इन नवसूतिका गौ के दुग्ध के प्रयोग से शक्तिशाली शुद्ध जीवनवाले सन्तान को जन्म देती है।

भावार्थ—यदि गर्भिणी माता मधुयुक्त धेनुदुग्ध का प्रयोग करती है तो सन्तान शक्तिशाली शुद्ध जीवनवाली, त्याग वृत्तिवाली होती है।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पथ्याबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सुरूपः गोमान्

अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ इदिन्द्र ते सखा।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति सभामुप॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते सखा**=आपका मित्र **अश्वी**=उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाला होता है, **रथी**=उत्तम शरीर-रथवाला बनता है और **इत्**=निश्चय से **सुरूपः**=उत्तम रूपवाला होता है। यह **गोमान् इत्**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाला ही होता है। जहाँ इसका रूप उत्तम होता है, वहाँ यह ज्ञान के दृष्टिकोण से भी उत्तम होता है। (२) यह **सदा**=सदा **श्वात्रभाजा**=(श्वि वृद्धौ) वृद्धि का सेवन करनेवाले **वयसा**=आयुष्य से **सचते**=युक्त होता है जीवन में सदा बढ़ता ही चलता है और **चन्द्रः**=आह्लादमय मनोवृत्तिवाला **सभां उपयाति**=सभा में उपस्थित होता है। जब कभी जन समुदाय में आता है, प्रसन्न ही मनोवृत्तिवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु का मित्र 'उत्तम इन्द्रियों व शरीरवाला, सुरूप, ज्ञानी, वृद्धिशील व प्रसन्न मनोवृत्तिवाला' होता है।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—सतः पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

सोमपान से ओजिष्ठ सहस् की प्राप्ति

ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमा गहि पिबा सोमं वशाँ अनु।
निमेघमानो मघवन्दिवेदिव ओजिष्ठं दधिषे सहः॥ १०॥

(१) **न**=जैसे **तृष्यन्**=पिपासाकुल हुआ-हुआ **ऋश्यः**=मृग **अवपानम्**=पानी पीने स्थान-जलाशय आदि को प्राप्त होता है, उसी प्रकार हे जीव! तू भी **आगहि**=आ और **वशान् अनु**=इन्द्रियों को वश में करने के अनुपात में **सोम पिबा**=सोम का पान कर। इस सोम शक्ति के पान से ही तेरी पिपासा शान्त होगी, यह सोम ही तो तेरे में शक्ति व ज्ञान का वर्धन करेगा। (२) हे **मघवन्**=यज्ञशील पुरुष! (मघ=मख) **निमेघमानः**=(मिह सेचने) अपने अन्दर शक्ति का सेचन करता हुआ ही तू **दिवेदिवे**=प्रतिदिन **ओजष्ठिम्**=ओजस्विता से युक्त **सहः**=शत्रुओं के कुचलनेवाले बल को **दधिषे**=धारण करता है। यज्ञादि कर्मों में लगे रहने से वासनाओं का उदय नहीं होता और सोमरक्षण होकर शक्ति की वृद्धि होती है।

भावार्थ—हम सोमपान के लिये प्रबल कामनावाले हों, इन्द्रियों को वश में करते हुए सोम का रक्षण करें, प्रतिदिन सोम का शरीर में ही सिक्त करते हुए ओजस्वी व सहस्वी बनें।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

प्रभु के समीप पहुँचना

अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा॥ ११॥

(१) हे **अध्वर्यो**—यज्ञशील पुरुष! **त्वं द्रावया**—तू वासनाओं को दूर भगा दे। **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **सोमं पिपासति**=सोम के पान की कामना करता है। यज्ञशीलता वासनाओं से बचायेगी। वासनाओं का अभाव इसे सोमरक्षण के योग्य करेगा। (२) यह सोमपान करनेवाला इन्द्र **नूनम्**=निश्चय से **वृषणा**=शक्तिशाली **हरी**—इन्द्रियाश्वों को **उपयुयुजे**=शरीर-रथ में जोतता है। **च**=और सदा उत्तम कर्मों में लगा हुआ **वृत्रहा**=वासना का विनाश करनेवाला यह **इन्द्र**=उस इन्द्रियाश्वों से जुते शरीर-रथ के द्वारा **आजगाम**=प्रभु के समीप आता है।

भावार्थ—वासनाओं को दूर करके हम सोम का रक्षण करें। शक्तिशाली इन्द्रियाश्वों को शरीर-रथ में जोतकर, वासनारूप विघ्नों को नष्ट करते हुए, प्रभु तक पहुँचने के लिये यत्नशील हों।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

सोमरक्षण के तीन लाभ

स्वयं चित्स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृम्पसि।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब॥ १२॥

(१) **यत्रा**=जब **सोमस्य तृम्पसि**=तू सोम से तृप्त होता है, अर्थात् सोम का रक्षण करनेवाला बनता है, तो **सजनः**-वह मनुष्य स्वयं **चित् स्वयं मन्यते**=ज्ञानवान् बनता है। यह व्यक्ति सोम के द्वारा दीप्त ज्ञानाग्निवाला बनकर अन्तः प्रकाश को देखनेवाला होता है। **दाशुरिः**-दान व त्याग की वृत्तिवाला बनता है। (२) हे जीव! **इदम्**=यह सोम **ते अन्नम्**-तेरा अन्न है। **युज्यम्**=यह

तुझे प्रभु से मिलाने का उत्तम साधन है। **समुक्षितम्**=शरीर के अंग-प्रत्यंगों में यह सिक्त होता है। तू **इहि**=आ, **प्र द्रवा**=शीघ्र गतिवाला हो और **तस्य पिब**=उस सोम का तू पान कर।

भावार्थ–सोमरक्षण के लाभ ये हैं–(क) अन्तःप्रकाश प्राप्त होता है, (ख) त्यागवृत्ति का उदय होता है, (ग) यह सोम हमें प्रभु से मिलानेवाला होता है। इस प्रकार इस सोम का महत्त्व स्पष्ट है। सो हमें सोमरक्षण पर बड़ा बल देना चाहिए।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—भुरिगनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

रथेष्ठाय इन्द्राय

रथेष्ठायाध्वर्यवः सोममिन्द्राय सोतन। अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते सुन्वन्तो दाश्वध्वरम्॥ १३॥

(१) हे **अध्वर्यवः**=यज्ञशील पुरुषो! **रथेष्ठाय**=तुम्हारे इस शरीर-रथ के सारथिभूत **इन्द्राय**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु की प्राप्ति के लिये **सोमं सोतन**=सोम को (वीर्य को) अपने अन्दर उत्पन्न करो। (२) **दाशु**=दानवृत्ति से युक्त **अध्वरम्**=इस हिंसारहित यज्ञ को **सुन्वन्तः**=करते हुए **अद्रयः**=उपासक लोग (आद्रियन्ते इति अद्रयः) **ब्रध्नस्य**=उस महान् प्रभु के पद को **अधि-विचक्षते**=अपने हृदय देशों में देखते हैं।

भावार्थ–प्रभु-दर्शन के लिये आवश्यक है कि–(क) शरीर में सोम का रक्षण करें (ख) यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

अध्वरश्रियः सप्तयः

उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः।
अर्वाञ्चं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप॥ १४॥

(१) **वावाता**=निरन्तर गतिशील **वृषणा**=शक्तिशाली **हरी**=इन्द्रियाश्व **अपसु**=कर्मों में निरन्तर व्याप्ति के होने पर **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को **ब्रध्नं उप वक्षतः**=उस महान् प्रभु के समीप प्राप्त कराते हैं। प्रभु प्राप्ति के लिये इन्द्रियों का कर्मों में व्याप्त रहना व शक्तिशाली बने रहना आवश्यक है। (२) हे (इन्द्र)=जितेन्द्रिय पुरुष! **त्वा**=तुझे **सप्तयः**=कर्मों में सर्पणशील इन्द्रियाश्व **अध्वरश्रियः**=यज्ञों का सेवन करनेवाले होते हुए **अर्वाञ्चम्**=अन्दर हृदय देश की ओर **वहन्तु**=ले चलें। सदा **इत्**=निश्चय से **सवना उप**=यज्ञों के समीप प्राप्त करायें।

भावार्थ–इन्द्रियाश्वों का यज्ञादि कर्मों में लगे रहना व विषयों से बचे रहना ही प्रभु प्राप्ति का मार्ग है। यज्ञसेवी इन्द्रियाश्व ही हमें प्रभु-दर्शन करायेंगे।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः पूषा वा॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

प्रभु-वरण से बुद्धि व शक्ति की प्राप्ति

प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरूवसुम्।
स शक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन॥ १५॥

(१) हम **युज्याय**=मित्रता के लिये (union) मेल के लिये **पूषणम्**=उस पोषक प्रभु को **प्रवृणीमहे**=वरते हैं, जो **पुरूवसुम्**=खूब ही पालक व पूरक धनवाले हैं। प्रभु की मित्रता में निवास के लिये आवश्यक धनों की कमी नहीं रहती। (२) हे **शक्र**=सर्वशक्तिमन्, **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले, **विमोचन**=सब शत्रुओं से मुक्त करनेवाले प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमें

तुजे=शत्रुओं के संहार के लिये तथा **राये**=ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये **धिया**=बुद्धि के साथ **शिक्ष**=शक्तिशाली बनाइये।

भावार्थ—हम मित्रता के लिये प्रभु का ही वरण करें। प्रभु हमें बुद्धि व शक्ति को प्राप्त कराये। जिससे हम शत्रुओं का संहार कर सकें तथा ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकें।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः पूषा वा॥ **छन्दः**—विराट् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

उस्त्रियं वसु

सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन।
त्वे तन्नः सुवेदमुस्त्रियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यम्॥ १६॥

(१) **भुरिजोः**—द्यावापृथिवी में, मस्तिष्क व शरीर में **नः**—हमें **संशिशीहि**—इस प्रकार तेज करिये **इव**—जैसे **क्षुरम्**—एक छुरे को तेज करते हैं। हमारा मस्तिष्क तीव्र ज्ञान ज्योति से चमके और शरीर तेजस्विता से। हे **विमोचन**=सब कष्टों से मुक्त करनेवाले प्रभो! **रायः रास्व**=हमारे लिये कार्यसाधक धनों को दीजिये। (२) **त्वे**=आपके आश्रय में **नः**=हमारे लिये **तत्**=वह **उस्त्रियम्**-ज्ञान की रश्मियों से युक्त **वसु**=धन **सुवेदम्**-सुलभ (विद् लाभे) होता है, **यम्**=जिस धन को (यत्) **त्वम्**-आप **मर्त्यम्**-मनुष्य के लिये **हिनोषि**=प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे मस्तिष्क व शरीर को ज्ञान व शक्ति से दीप्त करें। धनों को प्राप्त करायें। ज्ञान रश्मियों से युक्त धन को हमारे लिये प्रेरित करें।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः पूषा वा॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'स्व' (आत्मा) की ही कामना

वेमि त्वा पूषन्नृञ्जसे वेमि स्तोतव आघृणे।
न तस्य वेम्यरणं हि तद्वसो स्तुषे पज्राय साम्ने॥ १७॥

(१) हे **पूषन्**-पोषक प्रभो! **ऋञ्जसे**-अपने जीवन को सद्गुणों से प्रसाधित करने के लिये **त्वा वेमि**=आपको ही **वेमि**=चाहता हूँ। हे **आघृणे**=सर्वतो दीप्त प्रभो! **स्तोतवे**-स्तुति करने के लिये आपकी ही **वेमि**=मैं कामना नहीं करता हूँ। **हि**-निश्चय से **तत्**-यह भौतिक धन **अरणम्**-('स्व' से विपरीत) आत्मा से भिन्न है मेरा विरोधी है, मेरी उन्नति में रुकावट बनता है। हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! मैं **पज्राय**=शक्तिशाली धनी होते हुए सभी **साम्ने**=शान्त, सब के साथ समान व्यवहार करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष के लिये **स्तुषे**-स्तवन करता हूँ।

भावार्थ—हम प्रभु का वरण करें, प्रभु का ही स्तवन करें। केवल भौतिक धन हमारे पतन का कारण बनता है। प्रभु-स्मरण के साथ हम धनी होते हुए समान वर्तनेवाले व शान्त बनते हैं।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः पूषा वा॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

नित्यं रेक्णः

परा गावो यवसं कच्चिदाघृणे नित्यं रेक्णो अमर्त्य।
अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये॥ १८॥

(१) हे **आघृणे**-सर्वत दीप्त प्रभो! **गावः**-हमारी ये इन्द्रियाँ **परा**-दूर बाहिर की ओर **यवसम्**=विषयरूप घास को चरने के लिये जाती हैं। हे **अमर्त्य**-हमें न नष्ट होने देनेवाले प्रभो! **कच्चित्**-क्या कभी ये इन्द्रियाँ **नित्यं रेक्णः**-उस अविनश्वर ज्ञानरूप धन को लेने के लिये भी

चलेंगी? क्या हमारी इन्द्रियाँ ज्ञान की रुचिवाली न बनेगी? (२) हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! आप **अस्माकम्**=हमारे **अविता**=रक्षक व **शिवः**=कल्याण करनेवाले **भव**=होइये। आप **वाजसातये**= शक्ति को प्राप्त कराने के लिये **मंहिष्ठः**=दातृतम होइये। आप हमें अधिक से अधिक शक्ति को प्राप्त करानेवाले हों। यह शक्ति ही हमारा रक्षण व कल्याण करेगी। विषयों में भटककर इन्द्रियाँ शक्तियों को जीर्ण कर लेती थीं। आप की कृपा से ये ज्ञान की ओर झुकी और हम अमंगल से बच गये।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से हमारी इन्द्रियाँ विषयों में न भटककर ज्ञानरूप नित्य धन की प्राप्ति के लिये झुकाववाली हों। प्रभु हमारा रक्षण करें और अधिक से अधिक शक्ति को प्राप्त करायें।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'दिविष्टि-राति-तुर्वश'

स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु। राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि॥ १९॥

(१) **दिविष्टिषु**=(दिव् इष्) ज्ञानयज्ञ को करनेवाले व्यक्तियों में **कुरुङ्गस्य**=(कवते, रंगति) ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाले गतिशील प्रभु के **स्थूरं राधः**=महान् ऐश्वर्य को हम **अमन्महि**=आदरपूर्वक देखते हैं, उस धन को जो **शताश्वम्**=शत वर्षपर्यन्त इन्द्रियों को कर्मों में व्याप्त रूप से रखनेवाला है। जिस धन के कारण इन्द्रियों की शक्ति अन्त तक ठीक बनी रहती है। (२) **रातिषु**=दान की वृत्तिवाले **तुर्वशेषु**=त्वरा से शीघ्रता से काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं को वश में करनेवाले पुरुषों में उस **राज्ञः**=सारे ब्रह्माण्ड के व्यवस्थापक **त्वेषस्य**=ज्ञानदीप्त **सुभगस्य**=उत्तम ऐश्वर्यवाले प्रभु के 'स्थूरं राधः'=महान् ऐश्वर्य को हम आदर से सोचते हैं। इन व्यक्तियों में प्रभु-प्रदत्त ऐश्वर्य को देखकर हम भी 'दिविष्टि, राति व तुर्वश' बनने का प्रयत्न करते हैं।

भावार्थ—हम ज्ञान की कामनावाले, दानशील-लोभ आदि को वश में करनेवाले बनें। हमें प्रभु कृपा से वह महान् धन प्राप्त होगा जो हमारी इन्द्रियों को शतवर्षपर्यन्त अजीर्ण शक्ति रखेगा।

ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ **देवता**—कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—विराट् पं-॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

षष्टिं सहस्रा गवां यूथानि

धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः॥ २०॥

(१) **प्रियमेधैः**=प्रिय है यज्ञ जिनको ऐसे यज्ञशील व्यक्तियों से तथा **अभिद्युभिः**=प्रातः-सायं ज्ञान की ज्योति को प्राप्त करनेवाले (अभि=दोनों ओर) स्वाध्यायशील लोगों से **काण्वस्य**=उस अतिशयेन मेधावी **वाजिनः**=शक्तिशाली प्रभु के **गवां यूथानि**=इन्द्रियों के समूह **धीभिः सातानि**= बुद्धिपूर्वक कर्म करने के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। वस्तुतः यज्ञशीलता हमारी कर्मेन्द्रियों को पवित्र बनाती है, तो स्वाध्याय हमारी ज्ञानेन्द्रियों को पवित्र करता है। (२) मैं **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा बनकर **निर्मजाम्**=अतिशयेन शुद्ध **गवाम्**=वेदवाणियों के **षष्टिं सहस्रा**=साठ हजार **यूथानि**=समूहों के **अनु**=पीछे **निर् अजे**=विषय-वासनाओं के (गर्त) से इन्द्रियों को बाहिर करता हूँ। इन वेदवाणियों के स्वाध्याय के द्वारा इन्द्रियों को विषय व्यावृत्त बनाता हूँ, वेदवाणियाँ संख्या में बीस हजार के लगभग हैं। वे 'आध्यात्मक, आधिभौतिक व आधिदैविक' अर्थों के भेद से ६० हजार हो जाती हैं। इनके अनुसार जीवन में चलने से इन्द्रियाँ बड़ी शुद्ध बनी रहती हैं।

भावार्थ–प्रभु 'काण्व व वाजी' हैं, मेधा व शक्ति के पुञ्ज हैं। इस प्रभु से दी गयी इन्द्रियों को वस्तुत: यज्ञशील स्वाध्याय रुचि पुरुष ही प्राप्त करते हैं, वे ही इन्हें शुद्ध बनाये रखने में समर्थ होते हैं। तत्त्वद्रष्टा पुरुष वेदवाणियों के स्वाध्याय से इन्द्रियों को विषयगर्त में नहीं गिरने देता।

ऋषिः — देवातिथिः काण्वः॥ **देवता** — कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः** — विराडुष्णिक्॥ **स्वरः** — ऋषभः॥

वेद ध्वनिमय वातावरण

वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः। गां भजन्त मेहनाश्वं भजन्त मेहना॥ २१॥

(१) गत मन्त्र में उस ऋषि का उल्लेख हुआ है जो वेदवाणियों के निरन्तर अपनाने में प्रवृत्त है। यह कहता है कि **मे अभिपित्वे**-मेरे प्राप्त होने पर **वृक्षाः चित्**-वृक्ष भी **अरारणुः**-इन वेदवाणियों का ही उच्चारण करते हैं। अर्थात् इसका सारा वातावरण ही वेदवाणीमय हो जाता है। ऐसा होने पर यह स्वाभाविक ही है कि किसी प्रकार की विषय-वासनाओं की वहाँ स्थिति न हो। यह वासनाशून्यता शरीर में सोमरक्षण की अनुकूलतावाली होती है। (२) ऐसा होने पर ये लोग **मेहना**=सोम शक्ति के शरीर में सेचन के द्वारा **गां भजन्त**-प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियों को प्राप्त करते हैं। **मेहना**-इस शक्ति सेचन के द्वारा **अश्वं भजन्त**-प्रशस्त कर्मेन्द्रियों को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ–हमारा सारा वातावरण वेदवाणियों की ध्वनि से पूर्ण हो हम सोम शक्ति के शरीर में सेचन के द्वारा प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियों व प्रशस्त कर्मेन्द्रियों को प्राप्त करें।

यह वेदध्वनिमय वातावरण में निवास करनेवाला, सोम का शरीर में सेचन करके इन्द्रियों को प्रशस्त बननेवाला साधक 'ब्रह्मातिथि' होता है, ब्रह्म की ओर निरन्तर चलनेवाला। यह 'काण्व' मेधावी होता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है–

५. [पञ्चमं सूक्तम्]

ऋषिः — ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता** — अश्विनौ॥ **छन्दः** — निचृद् गायत्री॥ **स्वरः** — षड्जः॥

उषा व युवति

दूरादिहेव यत्सत्यरुणप्सुरशिश्वितत्। वि भानुं विश्वधातनत्॥ १॥

(१) **दूरात्**=सुदूर प्रदेश में, प्राचीदिग्भाग में होती हुई यह उषा **यत्**-जब **इह एव सती**=यहाँ हमारे समीप ही होती हुई प्रतीत होती है, तो यह **अरुणप्सुः**=अव्यक्त लालिमा सम्पन्न रूपवाली उषा **अशिश्वितत्**=सारे आकाश को (सफेद) ही कर डालती है। **भानुम्**-अपने प्रकाश को **विश्वधा**=सब ओर **वि अतनत्**-विशेषरूप से फैलानेवाली होती है। (२) इसी प्रकार इस उषा के समान एक युवति **दूरात्**-बड़े दूर स्थित पितृगृह से **यत्**-जब **इह एव**=यहाँ पतिकुल में ही **सती**=होती हुई **अरुणप्सुः**-स्वास्थ्य की लालिमा युक्त रूपवाली **अशिश्वितत्**=सारे घर को उज्ज्वल करनेवाली होती है तो यह **भानुम्**-प्रकाश को **विश्वधा**-सब ओर अड़ोस-पड़ोस में **वि अत्यनत्**=विशेषरूप से फैलाती है। इसके आने से घर और घर का सारा क्षेत्र चमक उठता है।

भावार्थ–उषा आती है और किस प्रकार अन्धकार को दूर करके प्रकाश को फैलाती है। इसी प्रकार एक युवति को पतिकुल में आकर प्रकाश को फैलानेवाली बनना है।

ऋषिः — ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता** — अश्विनौ॥ **छन्दः** — गायत्री॥ **स्वरः** — षड्जः॥

सबलता व एकाग्रता

नृवद्दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा। सचेथे अश्विनोषसम्॥ २॥

(१) **नृवद् दस्रा**=एक उत्तम नेता के समान दु:खों का उपक्षय करनेवाले **अश्विना**=प्राणापान **उषसं सचेथे**=उषा के साथ संगत होते हैं। अर्थात् हम उषाकाल में उद्बुद्ध होकर प्राणसाधना में प्रवृत्त होते हैं। ये प्राणापान ही हमारे दु:खों का विनाश करते हैं, ये ही हमें नीरोग व निर्मल बनाते हैं। (२) ये प्राणापान **रथेन**=उस शरीर-रथ से हमें प्राप्त होते हैं जो **मनोयुजा**=उत्तम मन से युक्त है तथा **पृथुपाजसा**=विशाल शक्तिवाला है। प्राणसाधना से शरीर शक्ति-सम्पन्न बनता है तो मन इधर-उधर भटकनेवाला न होकर एकाग्र होता है।

भावार्थ-हम उषाकाल में प्रबुद्ध होकर प्राणसाधना में प्रवृत्त हों यह साधना हमारे रोगों व मलों का क्षय करेगी। हमें यह सबल व एकाग्र मनोवृत्तिवाला बनायेगी।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

स्तुतिमय मनन ज्ञानदीप्त मस्तिष्क

युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत। वाचं दूतो यथोहिषे॥ ३॥

(१) हे **वाजिनीवसू**=शक्तिरूप धनोंवाले प्राणापानो! **युवाभ्याम्**=आपके द्वारा, आपकी साधना के द्वारा **स्तोमाः**=स्तुति-वचन **अति अदृक्षत**=प्रतिदिन देखे जाते हैं। अर्थात् आपकी साधना से हम प्रतिदिन प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले होते हैं। (२) आपकी साधना से मैं **यथा दूतः**=जैसे कोई सन्देशवाहक होता है उसके समान **वाचं ओहिषे**=ज्ञान की वाणियों का धारण करता हूँ। प्राणसाधक पुरुष ज्ञान की वाणियों का धारण करता हुआ सर्वत्र इस ज्ञान-सन्देश को पहुँचानेवाला होता है।

भावार्थ-प्राणसाधना हमारे मनों को स्तुति से तथा मस्तिष्कों को ज्ञान से परिपूर्ण करती है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पुरुप्रिया-पुरुमन्द्रा-पुरूवासू

पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू। स्तुषे कण्वासो अश्विना॥ ४॥

(१) **अश्विना**=प्राणापान **नः ऊतये**=हमारे रक्षण के लिये हों। ये प्राणापान **पुरुप्रिया**=खूब ही प्रीणित करनेवाले हैं, इनकी साधना अन्त:प्रीति का अनुभव कराती है। नीरोगता के कारण चित्त में भी प्रसन्नता का अनुभव होता है। **पुरुमन्द्रा**=ये खूब ही आनन्द को उत्पन्न करनेवाले हैं। मन में वासनाओं के न रहने के कारण मन:प्रसाद का अनुभव होता है। ये **पुरूवसू**=पालक व पूरक वसुओं को प्राप्त करानेवाले हैं। निवास के लिये आवश्यक तत्त्व ही वसु हैं। प्राणसाधना से सब वसुओं की प्राप्ति होती है। (२) सो **कण्वासः**=मेधावी पुरुष इन प्राणापान के **स्तुषे**=स्तवन के लिये होते हैं। प्राणापान के गुणों का स्मरण करते हुए वे इनकी साधना में प्रवृत्त होते हैं।

भावार्थ-प्राणसाधना (क) प्रीति व आनन्द का कारण बनती है, (ख) शरीर के लिये सब आवश्यक तत्त्वों को, वसुओं को जन्म देती है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

इषयन्ता शुभस्पती

मंहिष्ठा वाजसातमेषयन्ता शुभस्पती। गन्तारा दाशुषो गृहम्॥ ५॥

(१) ये प्राणापान **मंहिष्ठा**=हमारे लिये दातृतम हैं, सर्वोत्तम दाता हैं, गत मन्त्र के अनुसार सब वसुओं को देनेवाले हैं। **वाजसा-तमा**=शक्ति को प्राप्त करानेवालों में सर्वोत्तम हैं। प्राणसाधना से वीर्य की ऊर्ध्वगति होकर शक्ति बढ़ती ही है। **इषयन्ता**=ये हमारे लिये प्रभु-प्रेरणा की

कामनावाले होते हैं। प्राणसाधना से हृदय निर्मल होता है, इस निर्मल हृदय में प्रभु-प्रेरणा सुनाई पड़ती है। इस प्रकार ये **शुभस्पती**-हमारे जीवनों में शुभ कार्यों के, सौन्दर्य के रक्षक होते हैं। (२) ये प्राणापान **दाशुषः**-दाश्वान् के, देने की वृत्तिवाले के, त्यागशील के **गृहम्**=शरीररूप गृह को **गन्तारा**-प्राप्त होनेवाले हैं। त्यागवृत्ति से विपरीत भोगवृत्ति होती है। इस वृत्ति में प्राणापान की क्षीणता होती है। ये इस भोगी के शरीर गृह को छोड़ जाते हैं। प्राणसाधना के साथ युक्ताहार-विहार अत्यन्त आवश्यक है।

भावार्थ-प्राणसाधना शरीर में सब आवश्यक वसुओं की स्थापना करती है, शक्ति को देती है, हमें प्रभु प्रेरणा को सुनने योग्य बनाती है, हमारे में शुभ का रक्षण करती है। इस साधना में भोगवृत्ति नितरां विघातक है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अवितारिणी सुमेधा

ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम्। घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्॥ ६॥

(१) **ता**-वे दोनों प्राणापान **सुदेवाय**-शुभ देववृत्तिवाले, **दाशुषे**=भोगवृत्ति से ऊपर उठे हुए दाश्वान् पुरुष के लिये **अवितारिणीम्**-अहिंसक व अनपायिनी (स्थिर) **सुमेधाम्**-उत्तम बुद्धि को **उक्षतम्** पवित्र कर देते हैं। प्राणसाधना से बुद्धि भी चमक उठती है, यह विवेकख्यातिवाली बनती है। (२) हे प्राणापानो! आप इस साधक के **गव्यूतिम्**=इन्द्रियरूप गौओं के प्रचारक्षेत्र को **घृतैः**-निर्मलता व ज्ञानदीप्तियों से (उक्षतम्) सिक्त करते हो। प्राणसाधक की इन्द्रियाँ निर्मल कर्मों को करनेवाली तथा ज्ञानदीप्ति को बढ़ानेवाली होती हैं।

भावार्थ-प्राणसाधना (क) अहिंसक व स्थिर सुमेधा को प्राप्त कराती हैं। (ख) इन्द्रियों को निर्मल कर्मों व ज्ञानवृद्धि के कार्यों में प्रवृत्त करती है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'श्येन-आशु' अश्व

आ नः स्तोममुप द्रवत्तूयं श्येनेभिराशुभिः। यातमश्वेभिरश्विना॥ ७॥

(१) हे **अश्विना**-प्राणापानो! **नः** हमारे **स्तोमम्**-स्तुति समूह को **द्रवत् तूयम्**=दौड़कर शीघ्रता से **श्येनेभिः**=शंसनीय गतिवाले **आशुभिः**-शीघ्रता से कार्यों में व्यापनेवाले **अश्वेभिः**= इन्द्रियाश्वों के साथ **उप आयतम्**-समीपता से प्राप्त होवो। (२) प्राणसाधना हमें स्तुति में प्रवृत्त करती है तथा हमारे इन्द्रियाश्वों को प्रशस्त गतिवाला, शुभ कर्म प्रवृत्त व शीघ्र गतिवाला, स्फूर्तियुक्त करती है।

भावार्थ-प्राणसाधन के द्वारा (क) हमारी वृत्ति प्रभु-प्रवण होती है, प्रभु के स्तोत्र हमें प्रिय होते हैं, (ख) हमारे इन्द्रियाश्व शंसनीय गतिवाले व शीघ्रगतिवाले होते हैं।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

तीन प्रकाशे व अन्धकार विनाश

येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना। त्रीँरक्तून्परिदीयथः॥ ८॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित उन इन्द्रियाश्वों के साथ, हे प्राणापानो! आप हमें प्राप्त होवो **येभिः**= जिन के द्वारा **तिस्रः परावतः दिवः**-तीन सुदूर के प्रकाशों को, उच्च ज्ञानों को, प्रकृति जीव व परमात्मा के ज्ञानों को **परिदीयथः**-प्राप्त करते हो। (२) उन इन्द्रियाश्वों से हमें प्राप्त होवो

जिनसे कि **विश्वानि रोचना**=सब दीप्तियों को आप (परिदीयथः) दीप्त करते हो। शरीर, मन व बुद्धि सभी को आप दीप्त बनाते हो। तथा **त्रीन् अक्तून्**=तीन अन्धकारों को (परिदीयथः) कम व विनष्ट करते हो। 'काम' इन्द्रियों को अन्धकारमय बनाता है, क्रोध मन को तथा लोभ बुद्धि को। प्राणसाधना इन तीनों ही अन्धकारों को दूर करती है।

भावार्थ–प्राणसाधना से (क) प्रकृति, जीव, परमात्मा का उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त होता है, (ख) शरीर, मन, बुद्धि दीप्त हो उठते हैं, (ग) काम-क्रोध-लोभ रूप अन्धकार विनष्ट हो जाते हैं।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गोमतीः इषः

उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा। वि पथः सातये सितम्॥ ९॥

(१) **उत**–और हे **अहर्विदा**=रात्रि के अन्धकार को दूर करके दिन के प्रकाश को प्राप्त करानेवाले प्राणापानो! (प्राणसाधना से अन्धकार दूर होता है और प्रकाश प्राप्त होता है) आप **नः**=हमारे लिये **गोमतीः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाली **इषः**=प्रेरणाओं को **विसितम्**=विशेष रूप से बाँधो। हमें आपके द्वारा बुद्धि की तीव्रता से ज्ञान प्राप्त हो तथा मन की पवित्रता से प्रभु-प्रेरणा सुनायी पड़े। (२) **उत**=और हे प्राणापानो! आप **सातीः**=सब लाभों को हमारे साथ जोड़ो, सब प्राप्त करने योग्य वसुओं को हम प्राप्त करें। तथा **सातये**=इन प्राप्तियों के लिये **पथः**=मार्गों को (विसितम्) विशेषरूप से हमारे साथ नियमित करिये। इन मार्गों पर चलते हुए हम सब प्राप्तियों को सिद्ध करनेवाले हों।

भावार्थ–प्राणसाधना से (क) बुद्धि की तीव्रता के द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है, (ख) मानस पवित्रता से प्रभु-प्रेरणा सुनायी पड़ती है, (ग) मार्ग पर चलते हुए हम सब आवश्यक सम्पदाओं को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'गोमन्-सुवीर-सुरथ' रयि

आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम्। वोळ्हमश्वावतीरिषः॥ १०॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **नः**=हमारे लिये **रयिं आवोढम्**=उस ऐश्वर्य को प्राप्त कराओ, जो **गोमन्तम्**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाला है, **सुवीरम्**=उत्तम सन्तानोंवाला है तथा **सुरथम्**=प्रशस्त शरीर-रथवाला है। प्राणसाधक धन को प्राप्त करता है, परन्तु उसके जीवन में इस धन का घातक प्रभाव नहीं होता। यह धन उसे भोग-विलास में फँसाकर उसकी इन्द्रियों को जीर्ण करनेवाला नहीं होता। इस धन से उसकी सन्तानें कुत्सित प्रभावों से आक्रान्त नहीं हो जाती और उसका यह शरीर ठीक बना रहता है। (२) हे प्राणापानो! आप हमें **अश्वावतीः**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाली **इषः**=प्रेरणाओं को प्राप्त कराओ। प्राणसाधना से हमारी कर्मेन्द्रियाँ उत्तम बनें और प्रभु-प्रेरणा के अनुसार कार्यों को करनेवाली हों।

भावार्थ–प्राणसाधना से हमें वह धन प्राप्त होता है जो हमारी इन्द्रियों, सन्तानों व शरीररूप रथों को उत्तम बनाता है। हमारी कर्मेन्द्रियाँ भी उत्तम बनती हैं और प्रभु-प्रेरणा के अनुसार चलती हैं।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

दस्रा हिरण्यवर्तनी

वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी। पिबतं सोम्यं मधु॥ ११॥

(१) हे प्राणापानो! आप **वावृधाना**-खूब ही हमारी वृद्धि का कारण बनते हो। **शुभस्पती**-हमारे जीवनों में सब सौन्दर्यों का रक्षण करते हो। **दस्रा**=सब दास्यव भावों का उपक्षय करनेवाले हो और **हिरण्यवर्तनी**=हितरमणीय ज्योतिर्मय मार्ग पर हमें ले चलनेवाले हो। (२) आप **सोम्य मधु**-इस सोमरूप सारभूत वस्तु का **पिबतम्**=पान करो। हमारे शरीरों में इस सोम को ऊर्ध्वगति होकर शरीर में ही इसका व्यापन हो। यही सुरक्षित सोम ही तो सब उन्नतियों का मूल बनेगा।

भावार्थ-प्राणसाधना शक्तियों का वर्धन करती है, सौन्दर्य को बढ़ाती है, अशुभवृत्तियों को नष्ट करती है, हमें ज्योतिर्मय मार्ग पर ले चलती है। शरीर में सोम का रक्षण करती है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथि: काण्व:ङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—निचृद् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

अदाभ्यं छर्दिः

अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः। छर्दिर्यन्तमदाभ्यम्॥ १२॥

(१) हे प्राणापानो! आप **वाजिनीवसू**=शक्तिरूप धनवाले हो। आप **अस्मभ्यम्**-हमारे लिये **मघवद्भ्यः च**=और सब (मघ-मख) यज्ञशील पुरुषों के लिये **सप्रथः**=शक्तियों के विस्तारवाले, शक्तियों के विस्तार से युक्त **अदाभ्यम्**-रोगों व वासनाओं से हिंसित न होनेवाले इस **छर्दिः**=शरीर गृह को **यन्तम्**=प्राप्त कराओ। (२) प्राणसाधना से शरीर की शक्तियों का विस्तार होता है, और यह रोगों व वासनाओं से आक्रान्त नहीं होता।

भावार्थ-प्राणापान ही शक्तिरूप धन को प्राप्त करानेवाले हैं। ये यज्ञशील पुरुषों के शरीर गृह को रोगों व वासनाओं से अभिभूत नहीं होने देते।

ऋषिः—ब्रह्मातिथि: काण्व:ङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—विराड् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

ज्ञान-रक्षण

नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम्। मो ष्व१न्याँ उपारतम्॥ १३॥

(१) हे प्राणापानो! **या**=जो आप **जनानाम्**=लोगों के **ब्रह्म**=ज्ञान को **नि**=निश्चय से **सु**=अच्छी प्रकार **अविष्टम्**=रक्षित करते हो, वे आप **तूयं आगतम्**=शीघ्रता से प्राप्त होवो। (२) **अन्यान्**=ज्ञान विरोधी अन्य भावों को **मा उ**-मत ही **सु उपारतम्**=हमारे समीप प्राप्त कराओ।

भावार्थ-प्राणसाधना से हमारी ज्ञानदीप्ति विकसित होती है, अतः हम प्राण-साधक बनें।

ऋषिः—ब्रह्मातिथि: काण्व:ङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—निचृद्गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

धिष्ण्या

अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः। मध्वो रातस्य धिष्ण्या॥ १४॥

हे **अश्विना**=प्राणापान के स्वामी जनो! आप दोनों **धिष्ण्या**=स्तुति योग्य **एतस्य**=आदर पूर्वक दिये **अस्य**-इस **चारुणः**=उत्तम **मदस्य**=हर्षकारक सोम का **पिबतम्**=पान करो।

भावार्थ-प्राणापानसेवी वीर्यरक्षण में समर्थ होता है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथि: काण्व:ङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

विश्वधायसम्

अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम्। पुरुक्षुं विश्वधायसम्॥ १५॥

हे जितेन्द्रिय जनो! आप दोनों **अस्मे**=हमारे लिए **शतवन्तम्**=सौ **सहस्रिणम्**=और सहस्रों **रयिम्**-ऐश्वर्यों को **आ वहतम्**=प्राप्त कराओ। वह **पुरुक्षुम्**=बहुतों को बसाने और **विश्व**-

धारयसम्=सबका पालक हो।

भावार्थ–हम प्रभु कृपा से बहुतों के पालक होवें।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

विह्वयन्ते मनीषिणः

पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः। वाघद्भिरश्विना गतम्॥ १६॥

हे **नरौ**=स्त्री–पुरुषो! **मनीषिणः**=ज्ञानी लोगों **वाम्**=आप दोनों को **पुरुत्र चित् हि**=बहुत से कार्यों में **विह्वयन्ते**=बुलाते हैं। आप **वाघद्भिः**=समर्थ **अश्विना**=अश्वों के समान **आ गतम्**=आओ।

भावार्थ–हम मनस्वी बनकर ज्ञानी जनों की संगति में रहें।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

हविष्मन्तो अरंकृतः

जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरंकृतः। युवां हवन्ते अश्विना॥ १७॥

हे **अश्विना**–राष्ट्र के अध्यक्ष्य और सेनापति **जनासः**=जनो! **युवाम्**=आप दोनों को **वृक्त-बर्हिषः**=शत्रुहन्ता **हविष्मन्तः**=समृद्धियुक्त **अरंकृतः**=उद्योगीजन **हवन्ते**=बुलाते हैं। शक्तियों का विकास करने की कामनावाले लोग प्राणापान की साधना करते हैं। यह साधना इन्हें 'पवित्र हृदयवाला, त्याग की वृत्तिवाला व सद्गुणालंकृत जीवनवाला' बनाती है।

भावार्थ–हमारे राष्ट्रपति–सेनापति शत्रुहन्ता हों।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

वाहिष्ठः (स्तोमः)

अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः। युवाभ्यां भूत्वश्विना॥ १८॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **अद्य**–आज **अस्माकम्**=हमारा **अयम्**=यह **याम्**=आपके लिये किया गया **स्तोमः**=स्तुति समूह **युवाभ्यां अन्तमः भूतु**=आपके लिये अन्तिकतम हो, अत्यन्त प्रिय हो। अर्थात् हमें यह आपकी स्तुति आपके प्रति रुचिवाला बनाये, हम प्राणसाधना की प्रवृत्तिवाले हों। (२) यह स्तोम **वाहिष्ठः**=हमें अधिक–से–अधिक लक्ष्य के समीप पहुँचानेवाला हो। वस्तुतः प्राणसाधना ही चित्तवृत्ति की एकाग्रता का साधन बनकर हमें प्रभु–दर्शन कराती है। यह प्रभु–दर्शन ही अन्तिम लक्ष्य है, यहाँ हमें यह प्राणों का स्तवन पहुँचानेवाला होता है।

भावार्थ–हम प्राणापान का स्तवन करते हुए प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। यह साधना ही हमें लक्ष्य–स्थान पर पहुँचायेगी।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

मधुनः दृतिः

यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे। ततः पिबतमश्विना॥ १९॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **यः**=जो **ह**=निश्चय से **वाम्**=आपका **मधुनः दृतिः**=सोम का पात्र है, इस शरीर में सोमरक्षण का स्थान है, **ततः**=उससे **पिबतम्**=इस सोम को पीओ। इस सोम को सारे शरीर में व्याप्त करनेवाले होवो। सोम उत्पन्न होकर सोमयानी में संगृहीत होता है। प्राणसाधना के द्वारा यह इससे निकलकर रुधिर के साथ सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है। (२)

यह सोम **रथचर्षणे** रथ को गति देने के निमित्त स्थापित हुआ है। (चर्षण) सोम के सुरक्षित होने पर ही शरीर रथ की सारी गतियाँ निर्भर करती हैं। सोम-विनाश में इस रथ की सब गतियाँ समाप्त हो जाती हैं और मृत्यु हो जाती है।

भावार्थ-शरीर रथ की ठीक गति इसी बात पर निर्भर करती है कि हम प्राणसाधना द्वारा शरीर में सोम का रक्षण करें।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

शारीरिक शान्ति (नीरोगता) व हृदय शुद्धि

तेन॑ नो वाजिनीवसू पश्वे॑ तो॒काय॒ शं गवे॑। वह॑तं॒ पीव॑रीरिषः॥ २०॥

(१) **तेन**-गत मन्त्र में वर्णित सोम के पान के द्वारा, हे **वाजिनीवसू**-शक्तिरूप धनोंवाले प्राणापानो! आप **पश्वे**-पशुओं के लिये, **तोकाय**-सन्तानों के लिये, **गवे**-गौओं के लिये **शम्** शान्ति को प्राप्त करानेवाले होइये। (२) हे प्राणापानो! आप **नः**-हमारे लिये इस सोमपान के द्वारा **पीवरीः इषः**-आप्यायित करनेवाली **इषः**-प्रेरणाओं को **वहतम्**-प्राप्त कराओ। हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणायें हृदय शुद्धि के होने पर ही सुन पड़ती हैं। प्राणसाधना इस हृदय शुद्धि का साधन बनती है। ये सब प्रेरणायें हमारा आप्यायन करनेवाली होती हैं।

भावार्थ-प्राणायाम से शारीरिक शान्ति व हृदय की शुद्धि प्राप्त होती है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

दिव्य प्रेरणायें व ज्ञान प्रवाह

उ॒त नो॑ दि॒व्या इष॑ उ॒त सिन्धूँ॑रहर्विदा। अप॒ द्वारे॑व वर्षथः॥ २१॥

(१) हे **अहर्विदा**-अज्ञानान्धकार को दूर करके प्रकाश को प्राप्त करानेवाले प्राणापानो! **उत**-और **नः**-हमारे लिये **दिव्याः इषः**=प्रभु से दी जानेवाली दिव्य प्रेरणाओं को **वर्षथः**-बरसाओ। हम सदा अपने शुद्ध हृदयों में प्रभु की प्रेरणाओं को सुननेवाले बनें। (२) **उत**-और **द्वारा**-सब इन्द्रिय द्वारों को **अप इव**-वासना विनाश के द्वारा अपावृत (खोल) करके **सिन्धून्**-ज्ञानजलों का, ज्ञान-प्रवाहों का **वर्षथः**=वर्षण करो।

भावार्थ-प्राणसाधना से हमें दिव्य प्रेरणायें शुद्ध हृदयों में सुन पड़ें तथा इन्द्रियों के विषय व्यावृत्त होने से हम ज्ञान प्रवाहों को अपने में प्रवाहित कर पायें।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

तौग्र्य का रक्षण

क॒दा वां॑ तौ॒ग्र्यो वि॑धत्सम॒ुद्रे ज॑हि॒तो न॑रा। यद्वां॒ रथो॒ वि॒भि॒ष्पता॑त्॥ २२॥

(१) हे **नरा**=उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणापानो! **समुद्रे जहितः**-(कामोहि समुद्रः) वासना के समुद्र में फेंका हुआ यह **तौग्र्यः** (तुग्र्या water, आपः-रेतः) रेतःकणरूप जलों की रक्षा की कामनावाला पुरुष **कदा**-कब **वां विधत्** आपकी उपासना करता है? **यत्**-जिससे **वां रथः**-आपका यह शरीर-रथ **विभिः**-इन्द्रियाश्वों के साथ **पतात्**-प्राप्त हो। (२) हम अपने शरीर को प्राणापान का ही रथ बनायें। अर्थात् प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। इससे इन्द्रियों के दोषों का दहन होकर इन्द्रियाश्व बड़े शक्तिशाली व स्फूर्तिमय बनेंगे। प्राणापान की साधना ही कामसमुद्र में डूबने से बचाती है।

भावार्थ-प्राणसाधना ही इन्द्रियों को निर्दोष बनाती है और हमें वासना समुद्र में डूबने नहीं

देती।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सब दोषों से बचाव

युवं कण्वाय नासत्यापिरिप्ताय हर्म्ये। शश्वदूतीर्दशस्यथः॥ २३॥

(१) हे **नासत्या**-असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! **युवम्**=आप **हर्म्ये**=इस शरीर गृह में **अपिरिप्ताय**=शतशः वासनाओं व रोगों से पीड़ित **कण्वाय**=मेधावी पुरुष के लिये **शश्वत्**=सदा **ऊती:**=रक्षणों को **दशस्यथः**=देते हो। (२) प्राणसाधना ही मेधावी पुरुष को रोगों व वासनाओं से बचाती है। प्राणसाधना के अभाव में एक पुरुष रोगों व वासनाओं से आक्रान्त होता ही रहता है।

भावार्थ-प्राणापान 'नासत्या' हैं। वे इस शरीर में हमें वासनाओं व रोगों से आक्रान्त नहीं होने देते।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ऊतिभिः-सुशस्तिभिः

ताभिरा यातमूतिभिर्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः। यद्वां वृषण्वसू हुवे॥ २४॥

(१) हे **वृषण्वसू**-शक्ति का सेचन करनेवाले, धनोंवाले प्राणापानो! **यद् वां हुवे**=जब मैं आपको पुकारूँ तो आप **ताभिः**=उन **नव्यसीभिः**=अतिशयेन स्तुत्य (नु स्तुतौ) **ऊतिभिः**=रक्षणों के साथ **आयातम्**-हमें प्राप्त होवो। आप से रक्षित हुए-हुए हम किन्हीं भी रोगों व वासनाओं से आक्रान्त न हों। (२) हे प्राणापानो! हमारा रक्षण करते हुए आप **सुशस्तिभिः**=प्रशस्त स्थितियों के साथ हमें प्राप्त होवो। प्राणसाधना द्वारा हम सदा प्रशस्त कर्मों को ही करनेवाले बनें।

भावार्थ-प्राणसाधना हमारे जीवनों में शक्तिशाली वसुओं को (धनों को) प्राप्त कराये। हमारा रोगों व वासनाओं के आक्रमण से रक्षण करे। हमारे जीवनों को प्रशस्त बनाये।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'कण्व-प्रियमेध-उपस्तुत-अत्रि-शिञ्जार'

यथा चित्कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम्। अत्रिं शिञ्जारमश्विना॥ २५॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **यथा चित्**-जैसे निश्चय से **कण्वम्**-मेधावी पुरुष को **आवतम्**=आप रक्षित करते हो। इसी प्रकार **प्रियमेधम्**-यज्ञप्रिय मनुष्य को तथा **उपस्तुतम्**=यज्ञों के द्वारा ही प्रभु-स्तवन व प्रभु-पूजन करनेवाले व्यक्ति को आप (आवतं) रक्षित करते हो। (२) हे प्राणापानो! **अत्रिम्**=काम-क्रोध-लोभ से दूर रहनेवाले का आप रक्षण करते हो और **शिञ्जारम्**=सदा प्रभु के गुणों का गान करनेवाले, प्रभु के नामों का उच्चारण करनेवाले को आप रक्षित करते हो। वस्तुतः प्राणसाधना ही हमें 'कण्व, प्रियमेध, उपस्तुत, अत्रि व शिञ्जार' बनाती है।

भावार्थ-प्राणसाधना से हम 'मेधावी, यज्ञशील, स्तुति-प्रवण, काम, क्रोध व लोभ से ऊपर उठे हुए तथा सदा मधुरता से प्रभु के नामों का उच्चारण करनेवाले' बनेंगे।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'अंशु-अगस्त्य-सोभरि'

यथोत कृत्व्ये धनेंऽशुं गोष्वगस्त्यम्। यथा वाजेषु सोभरिम्॥ २६॥

(१) **उत यथा**-और जैसे हे प्राणापानो! आप **कृत्व्ये धने**-पुरुषार्थ से प्राप्त करने योग्य धन में **अंशुम्**-धनों का विभाग करनेवाले को रक्षित करते हो, इसी प्रकार **गोषु**-ज्ञान की वाणियों में **अगस्त्यम्**-(अगं अस्याति) अविद्या पर्वत को परे फेंकनेवाले को आप रक्षित करते हैं। (२) इन अंशु और अगस्त्य को उसी प्रकार रक्षित करते हैं, **यथा**-जैसे **वाजेषु**-शक्तियों में **सोभरिम्**-अपना उत्तमता से पोषण करनेवाले को आप रक्षित करते हैं।

भावार्थ-प्राणसाधना से (क) हम पुरुषार्थ से धनार्जन करके उस धन को विभक्त करनेवाले बनते हैं, (ख) अविद्या पर्वत को परे फेंकने के लिये हम सदा ज्ञान की वाणियों में चलते हैं, तथा (ग) शक्तियों का सम्पादन करते हुए अपना उत्तमता से भरण करते हैं।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सुम्नम्

एतावद्वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना। गृणन्तः सुम्नमीमहे॥ २७॥

(१) हे **वृषण्वसू**-शक्ति सेचक धनोंवाले **अश्विना**-प्राणापानो! **वाम्**-आप से **एतावत्**=इतने **सुम्नम्**-आनन्द व रक्षण को **ईमहे**-माँगते हैं। गत मन्त्र के अनुसार हम यही चाहते हैं कि आप से रक्षित होकर हम 'अंशु अगस्त्य व सोभरि' बन पायें। (२) हे प्राणापानो! **गृणन्तः**-स्तुति वचनों का उच्चारण करते हुए हम **अतः भूयः वा**-इस से भी अधिक आनन्द व रक्षण की कामना करते हैं। आप से रक्षित होकर हम प्रभु को ही प्राप्त करनेवाले बन पायें।

भावार्थ-हे प्राणापानो! आप हमारे जीवनों में वसुओं का वर्षण करते हो। आप से हम उचित रक्षण व आनन्द की याचना करते हैं।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'हिरण्यवन्धु-हिरण्याभीशु-दिविस्पृश्' रथ

रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना। आ हि स्थाथो दिविस्पृशम्॥ २८॥

(१) **अश्विना**-हे प्राणापानो! आप **रथम्**-उस शरीर-रथ पर **हि**=निश्चय से **आस्थाथः**-अधिष्ठित होते हो जो **दिविस्पृशम्**=प्रकाश का स्पर्श करनेवाला है, प्रकाशमय है। शरीर रथ में बुद्धि ही विद्युद्दीप का काम करती है, प्राणापान ही इस बुद्धि को बड़ा तीव्र बनाते हैं। (२) प्राणापान उस शरीर-रथ पर स्थित होते हैं जो **हिरण्यवन्धुरम्**-ज्योतिर्मय व सुन्दर है, ज्योति के कारण बड़ा सुन्दर है और **हिरण्याभीशुम्**-हितरमणीय मनरूप लगामवाला है।

भावार्थ-प्राणसाधना से यह शरीर-रथ 'ज्योतिर्मय सुन्दर, उत्तम मन रूप लगामवाला तथा बुद्धि के कारण उज्ज्वल' बनता है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

हिरण्यय रथ

हिरण्ययी वां रभिरीषा अक्षो हिरण्ययः। उभा चक्रा हिरण्यया॥ २९॥

(१) हे प्राणापानो! **वाम्**=आपका **ईषा**-रथ का दण्ड **रभिः**-दृढ़ वा **हिरण्ययी**-तेजस्विता से दीप्त है। इस शरीर में हाथ ही ईषा स्थानापन्न हैं, ये दृढ़ व तेजो दीप्त हैं। आपके रथ का **अक्षः**-(axle) धुरा भी **हिरण्ययः**-तेजो दीप्त है, रीढ़ की हड्डी पृष्ठवंश ही अक्ष है। वह पूर्ण स्वस्थ है। (२) इस रथ के **उभा चक्रा**= दोनों चक्र **हिरण्यया**-स्वर्ण के समान चमकते हुए हैं। स्थूल शरीर (अन्नमयकोश) एक चक्र है, तो मस्तिष्क (विज्ञानमयकोश) दूसरा चक्र है। ये

दोनों ही शक्ति व ज्योति से चमक रहे हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना के होने पर इस शरीर-रथ की 'ईषा, अक्ष व दोनों चक्र' हिरण्यय, दीप्त होते हैं। सारा रथ ही चमक उठता है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु-स्मरण के साथ प्राणायाम

तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम्। उपेमां सुष्टुतिं मम॥ ३०॥

(१) हे **वाजिनीवसू**=शक्तिरूप धनोंवाले प्राणापानो! **तेन**=गत मन्त्र में वर्णित उस हिरण्यय-रथ के हेतु से **परावतः चित्**=सुदूर देश से भी **नः आगतम्**=हमें प्राप्त होवो। अर्थात् हम किन्हीं भी सांसारिक कार्यों में कितने भी उलझे हों, प्राणायाम (प्राणसाधना) को कभी उपेक्षित न करें। सब कार्यों को छोड़कर भी समय पर प्राणसाधना अवश्य करें। (२) हे प्राणापानो! आप **मम**=मेरी **इमाम्**=इस **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को **उप**=समीपता से प्राप्त होवो। मैं प्राणसाधना करता हुआ प्रभु का स्तवन करूँ।

भावार्थ—हम प्रतिदिन अन्य कार्यों में उलझे हुए होने पर भी प्राणसाधना अवश्य करें। प्राणायाम करते हुए प्रभु का स्मरण भी करें।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्राणसाधना व सात्विक भोजन

आ वहेथे पराकात्पूर्वीरश्नन्तावश्विना। इषो दासीरमर्त्या॥ ३१॥

(१) हे **अमर्त्या अश्विना**=हमें न मरने देनेवाले प्राणापानो! आप **दासीः**=रोगों का उपक्षय करनेवाले **पूर्वीः**=हमारा पालन व पूरण करनेवाले **इषः**=अन्नों को **अश्नन्तौ**=खाते हुए इन 'अनमीव शुष्मी' नीरोगता को देनेवाले व शक्ति का पूरण करनेवाले अन्नों का सेवन करते हुए **पराकात्**=दूरदेश से भी **आवहेथे**=लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाते हो। (२) प्राणसाधना के साथ 'युक्ताहार-विहार' भी अत्यन्त आवश्यक है, भोजन के अतियम से प्राणसाधना लाभप्रद नहीं रहती। नीरोगता को देनेवाले व शक्ति का पूरण करनेवाले अन्नों का सेवन आवश्यक है। इस प्रकार भोजन के नियम के साथ प्राणसाधना चली तो यह हमें अवश्य लक्ष्य-स्थान पर पहुँचायेगी। चाहे हम कितना भी लक्ष्य से दूर हों, यह साधना हमें उन्नत करते हुए लक्ष्य पर पहुँचायेगी ही।

भावार्थ—हम प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। इस साधना के साथ भोजन का भी नियम रखें। ऐसा करने पर हम कितना भी दूर हों, अवश्य लक्ष्य-स्थान पर पहुँचेंगे ही।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

शक्ति-ज्ञान-धन

आ नो द्युम्नैरा श्रवोभिरा राया यातमश्विना। पुरुश्चन्द्रा नासत्या॥ ३२॥

(१) हे **अश्विना**=कर्मों में व्याप्त होनेवाले प्राणापानो! आप **नः**=हमें **द्युम्नैः आयातम्**=शक्तियों के साथ **आयातम्**=प्राप्त होवो। (द्युम्नं=energy, strength, power)। हे **पुरुश्चन्द्रा**=खूब ही आह्लादित करनेवाले प्राणापानो! आप **श्रवोभिः**=ज्ञानों के साथ (आ=) हमें प्राप्त होवो। वस्तुतः ज्ञान के द्वारा ही आप अविद्यान्धकार को व वासनाओं को विनष्ट करके हमें आनन्दित करते हो। (२) हे **नासत्या**=सब असत्यों को दूर करनेवाले प्रभो! आप **राया**=धनों के साथ (आ) हमें प्राप्त होवो। वस्तुतः प्राणसाधना को करते हुए हम पवित्र साधनों से ही धनों को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ–प्राणसाधना हमें शक्ति, ज्ञान व धनों को प्राप्त कराती है। इस से हम 'कर्मशील (अश्विना), आनन्दमय (पुरुश्चन्द्रा) व सत्यशील (न सत्या)' बनते हैं।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'प्रुषितप्सवः-पर्णिनः' वयः

एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः। अच्छा स्वध्वरं जनम्॥ ३३॥

(१) हे प्राणापानो! **इह** यहाँ **वाम्**-आप दोनों को **वयः**-इन्द्रियरूप अश्व **स्वध्वरम्**-हिंसारहित यज्ञशील **जनम्**=मनुष्य के **अच्छा** ओर **आ वहन्तु**-प्राप्त करायें। अर्थात् हम सदा प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। (२) वे इन्द्रियाश्व हमें प्राणसाधना में प्रवृत्त करें, जो **प्रुषितप्सवः**-शक्ति-सिक्त रूपवाले हैं अर्थात् तेजस्विता से चमकते हुए रूपवाले हैं। तथा **पर्णिनः**-(पर्ण -पृ पालनपूरणयोः) जो इन्द्रियाश्व सब न्यूनताओं से रहित होकर अपना शक्ति से पूरण करनेवाले हैं।

भावार्थ–हम प्राणसाधना के द्वारा इन्द्रियों को तेजो दीप्त तथा शक्ति से पूर्ण बनायें।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'शत्रुओं से अनाक्रान्त' रथ

रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह। न चक्रमभि बाधते॥ ३४॥

(१) हे प्राणापानो! **वां रथम्**-आपके रथ को **चक्रम्** रोगों व वासनारूप शत्रुओं का समूह **न अभिबाधते**-पीड़ित नहीं करता। अतएव आपका यह रथ **अनुगायसम्**-प्रशंसनीय-स्तुत्य है अथवा लक्ष्य के अनुकूल गतिवाला है। (२) यह रथ वह है **यः**-जो **इषा सह वर्तते**-प्रभु की प्रेरणा के साथ है, अर्थात् जो रथ प्रभु प्रेरणा के अनुसार ही गतिवाला है। यह रथ सदा प्रभु प्रेरणा से प्रदर्शित मार्ग पर चलता है।

भावार्थ प्रामसाधना से यह शरीर-रथ रोगों व वासनाओं से बाधित नहीं होता। यह साधना हमें प्रभु प्रेरणा के सुनने योग्य बनाती है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'शरीर, इन्द्रियों व बुद्धि' का परिमार्जन

हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वैः। धीजवना नासत्या॥ ३५॥

(१) हे **नासत्या**-सब असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! आप **हिरण्ययेन रथेन**-हितरमणीय व ज्योतिर्मय शरीर-रथ से तथा **द्रवत् पाणिभिः** -कर्मों में शीघ्रता से प्रवृत्त हाथोंवाले **अश्वैः**-इन्द्रियाश्वों से **धीजवना**-हमारे जीवनों में बुद्धि व कर्मों को प्रेरित करनेवाले हो। (२) प्राणसाधना से शरीर तेजस्वी बनता है, इन्द्रियाश्व स्फूर्तिवाले बनते हैं। शरीर में बुद्धि व कर्मों की प्रेरणा होती है।

भावार्थ–प्राणसाधना 'शरीर, इन्द्रियों व बुद्धि' को उत्तम बनाती है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'मृग जागृवान्' का मधुर-जीवन

युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषणवसू। ता नः पृङ्क्तमिषा रयिम्॥ ३६॥

(१) हे प्राणापानो! **युवम्**-आप दोनों **वृषणवसू**-शक्ति रूप धनोंवाले हो। आप **मृगम्**=आत्मान्वेषण करनेवाले **वा**=और **जागृवांसम्**-सदा जागरित, सावधान, विषयों में न फँसनेवाले

पुरुष को **स्वदथः**=स्वादयुक्त, मधुर-जीवनवाला बनाते हो। (२) **ता**=वे आप दोनों **नः**=हमारे लिये **इषा**-प्रभु-प्रेरणा के साथ **रयिम्**=धन को **पृङ्क्तम्**-सम्पृक्त करो। हम पवित्र हृदय बनकर प्रभु-प्रेरणा को सुननेवाले बनें। यह प्रेरणा ही हमें धनों के दुरुपयोग से बचानेवाली होगी।

भावार्थ-प्राणसाधना से हम आत्मान्वेषण करनेवाले सदा सावधान बनकर मधुर जीवनवाले बनते हैं। यह प्राणसाधना हमें प्रभु-प्रेरणा के साथ धनों को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ, चैद्यस्य कशोर्दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥
स्वरः—मध्यमः॥

चैद्यः कशुः

ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम्।
यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत्सहस्रा दश गोनाम्॥ ३७॥

(१) **ता अश्विना**=वे प्राणापान **मे**=मेरे लिये **नवानाम्**=स्तुत्य (नु स्तुतौ) **सनीनाम्**=प्राप्तियों का **विद्यातम्**=ज्ञान दें। इन प्राणापान की साधना से मुझे अन्नमय आदि सब कोशों का उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त हो। (२) प्राणापान का ऐसा अनुग्रह हो कि **यथा**=जिस से **चित्**=निश्चयपूर्वक **चैद्यः**=(चित् एव चैद्यः) ज्ञानस्वरूप **कशुः**=(कश गतिशासनयोः) सर्वत्र क्रियावाला सर्वशासक प्रभु **शतम्**=शतवर्षपर्यन्त **उष्ट्रानाम्**-(उष् दाहे) दोषदहन शक्तियों का **ददत्**=देनेवाला हो तथा **गोनाम्**-इन ज्ञान की वाणियों के **दश सहस्रा**=दस हजारों को (=ऋग्वेदस्थ १० हजार मन्त्रों को) वे प्रभु हमारे लिये देनेवाले हों। यह ज्ञानाग्नि ही तो कर्म-दोषों को भस्म करके उन्हें पवित्र करेगी।

भावार्थ-प्राणापान की साधना से सब कोशों का ऐश्वर्य प्राप्त हो। शतवर्षपर्यन्त दोषदहन शक्ति मिले। तथा कर्मदोषों को भस्म करनेवाली ज्ञान-वाणियाँ प्राप्त हों।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**—चैद्यस्य कशोर्दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥
स्वरः—मध्यमः॥

दस राजाओं की प्राप्ति (राजा=प्राण)

यो मे हिरण्यसंदृशो दश राज्ञो अमंहत।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मम्ना अभितो जनाः॥ ३८॥

(१) **यः**=जो प्रभु **मे**=मेरे लिये **दश**=दस **हिरण्यसन्दृशः**=स्वर्ण के समान देदीप्यमान, तेजस्वी **राज्ञः**=जीवन को व्यवस्थित (regulated) करनेवाले, जीवन के शासक प्राणों को **अमंहत**=देते हैं। **इत्**=निश्चय से उस **चैद्यस्य**=(चित् एव चैद्यः) सर्वज्ञ प्रभु के **कृष्टयः**=सब मनुष्य **अधस्पदाः**=पावों के नीचे हैं, अर्थात् उसके अधीन हैं, उसी के शासन में चल रहे हैं। (२) सामान्यतः **अभितः**=सब ओर **जनाः**=लोग **चर्मम्नाः**=(म्ना अभ्यासे) चर्मवेष्टित इस देह को बार-बार लेनेवाले हैं। ये देह प्रभु की कर्मव्यवस्था के अनुसार ही इन लोगों को लेने पड़ते हैं। जब कभी प्रभु का साक्षात्कार होता है, तभी यह देह-बन्धन समाप्त होता है।

भावार्थ-प्रभु हमें दश प्राणों को प्राप्त कराते हैं। वे सर्वज्ञ प्रभु सब जीवों को अपनी आधीनता में ले चल रहे हैं। जब तक प्रभु-दर्शन नहीं होता, तब तक बारम्बार यह शरीर लेना ही पड़ता है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः काण्वः॥ **देवता**— चैद्यस्य कशोर्दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—आर्षीनिचृदनुष्टुप्॥
स्वरः—गान्धारः॥

ज्ञानियों का दुर्गम मार्ग

माकिरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति चेदयः। अन्यो नेत्सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जनः॥ ३९॥

(१) **येन**-जिस मार्ग से **इमे**-ये **चेदयः**=(चित् का अपत्य चेदि) ज्ञानी पुरुष **यन्ति**=जाते हैं, **एना पथा**-इस मार्ग से **माकिः गात्**-सामान्य पुरुष नहीं जा पाता। (२) **अन्यः**=सामान्य मनुष्य **न इत्**-नहीं ही इस पर चल पाता। **सूरिः**-ज्ञानी ही **ओहते**-इस मार्ग पर आगे बढ़ता है। यह ज्ञानी **भूरिदावत्तरः**=खूब ही दानशील होता है। भोगवृत्ति से ऊपर उठा होने के कारण यह खूब दे पाता है। और इसीलिए **जनः**-उत्तरोत्तर अपनी शक्तियों का विकास करनेवाला होता है। सामान्य मनुष्य प्रभु की ओर न चलकर प्रकृति की ओर चलता है। उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं। वह उन्हीं के भार से दब जाता है। इसके गुणों का विकास नहीं हो पाता। ज्ञानी प्रभु के मार्ग पर चलता है, सामान्य मनुष्य इस मार्ग पर नहीं ही चलता।

भावार्थ-जिस मार्ग पर ज्ञानी चलते हैं, वह प्रभु प्राप्ति का मार्ग सामान्य मनुष्य के लिये बड़ा कठिन होता है। ज्ञानी ही उस पर चलकर दानशील व अपनी शक्तियों का विकास करनेवाले होते हैं।

इस मार्ग पर चलनेवाला यह 'काण्व'=मेधावी पुरुष प्रभु का प्रिय 'वत्स' होता है। यह 'वत्स काण्व' ही अगले सूक्त का ऋषि है-

द्वितीयोऽनुवाकः

६. [षष्ठं सूक्तम्]

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ओजस्विता से महान्

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँइव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे॥ १॥

(१) **यः इन्द्रः**-जो परमैश्वर्यशाली प्रभु हैं, वे **ओजसा महान्**-अपनी ओजस्विता से महान् हैं। अपने सब कार्यों को करने का उनमें पूर्ण सामर्थ्य है। वे सर्वशक्तिमान् प्रभु **वृष्टिमान् पर्जन्यः इव**-वृष्टि करनेवाले बादल के समान हैं। वे सब के सन्ताप को हरनेवाले व सब इष्टों को प्राप्त करानेवाले हैं। (२) ये प्रभु **वत्सस्य**-(वदति) इस स्तोत्रों का उच्चारण करनेवाले प्रिय स्तोता के **स्तोमैः**=स्तुति समूहों से **वावृधे**-खूब ही बढ़ाये जाते हैं। अर्थात् स्तोता प्रभु का खूब ही स्तवन करता है, प्रभु के गुणों का सर्वत्र प्रख्यापन करता है।

भावार्थ-प्रभु अपनी ओजस्विता से महान् हैं। सब काम्य पदार्थों का वर्षण करनेवाले हैं। प्रभु प्रिय लोग सर्वत्र प्रभु-स्तवन द्वारा प्रभु की महिमा का प्रख्यापन करते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

विप्र

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः। विप्रा ऋतस्य वाहसा॥ २॥

(१) **ऋतस्य**-ऋत का, सत्य वेद ज्ञान का **पिप्रतः**=अग्नि आदि ऋषियों के हृदय में पूरण करनेवाले प्रभु की **प्रजाम्**-प्रजा को **यत्**-जब **प्र भरन्त**-प्रकर्षेण धारण करनेवाले होते हैं, तो

ये **वह्नयः**=इस प्रजा-पोषण के भार का वहन करनेवाले लोग, **ऋतस्य वाहसा**=स्वयं अपने अन्दर ऋत का वहन करने के कारण **विप्राः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले ज्ञानी कहलाते हैं। (२) एवं विप्रों के दो मुख्य लक्षण हैं कि-(क) प्रभु की प्रजा का ये पालन करते हैं और (ख) इस पालन की क्रिया को सम्यक् कर सकने के लिये ये सत्य वेदज्ञान को धारण करते हुए अपना विशेषरूप से पूरण करते हैं।

भावार्थ-विप्र वे हैं जो-(१) प्रभु की प्रजा का पालन करें और (२) ज्ञान के धारण से अपनी न्यूनताओं को दूर करें।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु का संरक्षण

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्। जामि ब्रुवत आयुधम्॥ ३॥

(१) **कण्वाः**=मेधावी पुरुष **यद्**=जब **इन्द्रम्**=उस सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु को **स्तोमैः**=स्तुति समूहों के द्वारा **यज्ञस्य साधनम्**=अपने सब उत्तम कर्मों का सिद्ध करनेवाला **अक्रत**=कर लेते हैं, तो वे **आयुधम्**=इन बाह्य अस्त्र-शस्त्रों को **जामि ब्रुवते**=व्यर्थ ही कहते हैं। (२) प्रभु जब रक्षक हैं तो इन अस्त्रों की बहुत उपयोगिता नहीं रह जाती। प्रभु के रक्षण के प्रकार अद्भुत ही हैं। प्रभु-विश्वासी प्रयत्न में कमी नहीं रखता और सफलता उसे प्रभु अवश्य ही प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ-प्रभु के संरक्षण के होने पर बाह्य अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ हो जाते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

नम्रता से ज्ञान प्राप्ति

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः। समुद्रायेव सिन्धवः॥ ४॥

(१) **अस्य मन्यवे**=इस प्रभु के ज्ञान के लिये **विश्वाः**=सब **विशः**=संसार में प्रवेश करनेवाली **कृष्टयः**=श्रमशील प्रजायें **संनमन्त**=इस प्रकार नतमस्तक होती हैं, **इव**=जिस प्रकार **समुद्राय**=समुद्र के लिये **सिन्धवः**=नदियाँ। (२) नदियाँ निम्न मार्ग से जाती हुई समुद्र को प्राप्त करती हैं। इसी प्रकार प्रजायें नम्रता को धारण करती हुई प्रभु से दिये जानेवाले ज्ञान को प्राप्त करती हैं। ज्ञान प्राप्ति के लिये नम्रता ही मुख्य साधन है।

भावार्थ-हम नम्रता को धारण करते हुए प्रभु से दिये जानेवाले वेदज्ञान को प्राप्त करें।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ज्ञान+शक्ति=ओजस्विता

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत्। इन्द्रश्चर्मेव रोदसी॥ ५॥

(१) **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **चर्म इव**=चर्म की तरह **यत्**=जब **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी को **समवर्तयत्**-ओढ़ लेता है, मस्तिष्क रूप द्युलोक तथा शरीर रूप पृथिवीलोक दोनों का धारण करता है, **तत्**=तो **अस्य ओजः**=इस जितेन्द्रिय पुरुष का ओज (शक्ति) **तित्विष**=चमक उठती है। (२) ओजस्विता केवल शरीर की शक्ति से नहीं, अपितु मस्तिष्क के ज्ञान के भी होने पर चमकती है। 'शरीर की शक्ति व मस्तिष्क के ज्ञान' दोनों के ही धारण की आवश्यकता है। ये दोनों सम्मिलित रूप से धारण किये जाने पर इस रूप में हमारे रक्षक होते हैं, जैसे एक ढाल। ढाल के द्वारा योद्धा अपना रक्षण करता है। ये शक्ति व ज्ञान इस उपासक के लिये ढाल का काम

देते हैं।

भावार्थ–शरीर की शक्ति व मस्तिष्क के ज्ञान दोनों को सम्मिलित रूप से धारण करने पर हम ओजस्वी बनते हैं। यह ओजस्विता ही हमारा रक्षण करनेवाली ढाल होती है।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'शतपर्व-वृष्णी' वज्र

वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा। शिरो बिभेद वृष्णिना॥ ६॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **दोधतः** (दुध) हमारा विनाश करनेवाली **वृत्रस्य**-ज्ञान की आवरणभूत वासना के **शिरः**-सिर का **चित्**-निश्चय से **वज्रेण** क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा **विबिभेद**-विदारण कर देता है। क्रियाशीलता हमारे पर वासना के आक्रमण को नहीं होने देती। (२) यह क्रियाशीलतारूप वज्र **वृष्णिना**=बड़ा प्रबल है, हमारे में शक्ति का सेचन करनेवाला है। तथा **शतपर्वणाः**-शतवर्षपर्यन्त हमारा पूरण करनेवाला है। क्रियाशीलता से शक्ति बनी रहती है और सौ वर्ष का पूर्ण जीवन प्राप्त होता है।

भावार्थ–एक जितेन्द्रिय पुरुष क्रियाशील बना रहकर वासना का विनाश करनेवाला बनता है। इससे वह शक्ति-सम्पन्न व शतवर्षपर्यन्त जीनेवाला होता है।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उपासना से दीप्त जीवन की प्राप्ति

इमा अभि प्र णोनुमो विपामग्रेषु धीतयः। अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः॥ ७॥

(१) **विपाम्**-मेधावी पुरुषों में **अग्रेषु**-प्रमुख स्थान में स्थित व्यक्तियों में जो **इमाः**-ये **धीतयः** (devotion) उपासनायें हैं उनके प्रति **अभि प्रणोनुमः**-हम बारम्बार नतमस्तक होते हैं। इन उपासनाओं का हम आदर करते हैं। वस्तुतः ये उपासनायें ही उन्हें 'विप्' (मेधावी) बनाती हैं, मेधावियों में भी अग्र-स्थान में स्थित करती हैं। (२) ये उपासनायें **अग्नेः शोचिः न**-अग्नि की दीप्ति के समान **दिद्युतः**-चमकती हैं। उपासनाओं से इन मेधावी पुरुषों का जीवन चमक उठता है।

भावार्थ–मेधावी पुरुषों से की जानेवाली उपासनाओं का हम आदर करते हैं। ये उपासनायें ही उनके जीवनों को अग्नि की दीप्ति के समान दीप्त करती हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

हृदय से की गई उपासना व दीप्ति

गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः। कण्वा ऋतस्य धारया॥ ८॥

(१) **गुहा सतीः**=हृदयरूप गुहा के अन्दर होती हुई **धीतमः**-ये उपासनायें **यत्**=जब **त्मना उप**=आत्मा की समीपता में **शोचन्त**=दीप्त होती हैं, तो **कण्वाः**-मेधावी पुरुष **ऋतस्य**-सत्य की, सत्य ज्ञान को प्रकट करनेवाली **धारया**-वाणी से (शोचन्त-)दीप्त हो उठते हैं। (२) हृदय में प्रभु का ध्यान करने पर उपासनायें प्रभु की दीप्ति से दीप्त हो उठती हैं। इस प्रभु के द्वारा सत्य ज्ञान को प्राप्त करके उस ज्ञान को प्रकट करनेवाली वाणी से मेधावी पुरुष भी चमक उठते हैं।

भावार्थ–हृदय के अन्तस्तल से की गई उपासनायें प्रभु की दीप्ति से उपासक को दीप्त करनेवाली होती हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'गोमान् अश्वी' रयि

प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम्। प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **तं रयिम्**=उस ज्ञानैश्वर्य को व धन को हम **प्र नशीमहि**=प्राप्त करें, जो **गोमन्तम्**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाला है तथा **अश्विनम्**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाला है। हम धन का इस प्रकार से विनियोग करें कि वह इन्द्रियों को प्रशस्त ही बनानेवाला हो। किसी प्रकार से इन्द्रियों की शक्ति में जीर्णता न आ जाये। (२) हम **ब्रह्म**=परमात्मा को **प्र**=(नशीमहि) प्राप्त करें ताकि **पूर्वचित्तये**=हम उस चेतना व ज्ञान के लिये हों जो हमारा पालन व पूरण करता है। हृदयस्थ ब्रह्म ने ही तो हमें यह ज्ञान देना है।

भावार्थ—धन का हम ऐसा विनियोग करें कि हमारी इन्द्रियाँ प्रशस्त शक्तिवाली ही बनें। ब्रह्म का ध्यान करें, ये प्रभु ही उस चेतना को प्राप्त करायेंगे, जो हमारा पूरण करनेवाली होगी।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सूर्य के समान

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ। अहं सूर्यइवाजनि॥ १०॥

(१) **अहम्**=मैं **इत् हि**=निश्चय से **पितुः**=अपने पिता प्रभु से **ऋतस्य**=सत्य ज्ञान की **मेधाम्**=बुद्धि को **परिजग्रभ**=ग्रहण करूँ। प्रभु की उपासना करता हुआ हृदयस्थ प्रभु से प्रकाश को प्राप्त करूँ। (२) इस प्रकाश को प्राप्त करके **अहम्**=मैं **सूर्य इव**=सूर्य की तरह **अजनि**=हो गया हूँ। प्रभु से दिया हुआ प्रकाश इस प्रकार मुझे चमका देता है जैसे सूर्य।

भावार्थ—हम प्रभु का ध्यान करें। हृदयस्थ प्रभु से प्रकाश को प्राप्त करें। यह प्रकाश हमें सूर्यवत् दीप्त करनेवाला होगा।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सनातन ज्ञान से बल की प्राप्ति

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत्। येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे॥ ११॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार मैं प्रभु से प्रकाश को प्राप्त करता हूँ। **अहम्**=मैं **प्रत्नेन मन्मना**=इस सनातन (पुराणे) सदा सृष्टि के प्रारम्भ में दिये जानेवाले ज्ञान से **गिरः शुम्भामि**=अपनी वाणियों को ऐसे अलंकृत करता हूँ **कण्ववत्**=जैसे एक मेधावी पुरुष किया करता है। वस्तुतः यह सनातन ज्ञान ही मुझे मेधावी बनाता है। (२) उस ज्ञान से मैं अपनी वाणियों को अलंकृत करता हूँ **येन**=जिससे **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **इत्**=निश्चय से **शुष्मम्**=शत्रु-शोषक बल को **दधे**=धारण करता है। इस ज्ञानाग्नि से ही इन्द्र सब असुरों को दग्ध करनेवाला होता है।

भावार्थ—सनातन वेदज्ञान मेरी वाणियों को अलंकृत करे। इस ज्ञान के द्वारा जितेन्द्रिय बनता हुआ मैं सब वासनारूप शत्रुओं के शोषक बल को धारण करूँ।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

वर्धस्व सुष्टुतः

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः। ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः॥ १२॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! ऐसे भी लोग हैं **ये**=जो **त्वाम्**=आपको **न तुष्टुवु**=स्तुत

नहीं करते। प्रकृति के भोगों में फँसे हुए, उन्हीं के जुटाने में यत्नशील वे संसार को ईश्वररहित नहीं कहते हैं। आपकी सत्ता से ही इनकार करते हैं। **च**=और इनके विपरीत वे **ऋषयः** तत्त्वद्रष्टा पुरुष भी हैं **ये**-जो आपका **तुष्टुवुः** स्तवन करते हैं, सब कार्यों को आपसे ही होता हुआ जानते हैं। (२) इस प्रकार द्विविध लोगों को देखता हुआ मैं तो आपका स्तवन करनेवाला ही बनूँ। **मम**=मेरे तो **इत्**-निश्चय से **सुष्टुतः** उत्तमता से स्तुत हुए हुए आप **वर्धस्व** (वर्धयस्व) वृद्धि का कारण बनें। मैं आपका स्तवन करता हुआ आप जैसा बनने का यत्न करूँ और इस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होऊँ।

भावार्थ-प्राकृतिक भोगों में फँसे हुए लोग ईश्वर का स्मरण नहीं करते। तत्त्वद्रष्टा ऋषि प्रभु की स्तुति करते हैं। मैं प्रभु-स्तवन करता हुआ वृद्धि को प्राप्त करूँ।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अपः समुद्रं ऐरयत्

यद॑स्य म॒न्युरध्व॑नी॒द्वि वृ॒त्रं प॑र्व॒शो रु॒जन्। अ॒पः स॑मु॒द्रमैर॑यत्॥ १३॥

(१) **यत्**-जब **अस्य**-इस प्रभु का **मन्युः**-यह वेदज्ञान **अध्वनीत्**-हमारे जीवनों में शब्दायमान होता है तो यह **ज्ञान वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को **पर्वशः**-पोरी पोरी करके **रुजन्**-भग्न करनेवाला होता है। ज्ञान-वासना का खण्डन कर देता है। (२) यह ज्ञानी पुरुष **अपः**-सब कर्मों को **समुद्रम्**-उस आनन्दमय प्रभु की ओर **ऐरयत्**-प्रेरित करता है। जिस जिस कर्म को यह ज्ञानी करता है, उसे प्रभु के अर्पण करता चलता है।

भावार्थ-प्रभु से दिया गया ज्ञान यदि हमारे हृदयों में आता है तो सब वासनाओं का विनाश कर देता है। यह ज्ञानी सब कर्मों को प्रभु के अर्पण करता है।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

शुष्ण पर वज्र-प्रहार

नि शुष्ण॑ इन्द्र धर्ण॒सिं वज्रं॑ जघन्थ॒ दस्य॑वि। वृषा॒ ह्यु॑ग्र शृण्वि॒षे॥ १४॥

(१) हे **इन्द्र**-शत्रु-विनाशक प्रभो! आप **शुष्णे**-हमारा शोषण करनेवाले **दस्यवि**=काम-वासनारूप दस्यु पर **धर्णसिम्**-हमारा धारण करनेवाले **वज्रम्**=क्रियाशीलतारूप वज्र को **निजघन्थ**-प्रहृत करते हो। अर्थात् आप क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा वासना का विनाश करते हो। (२) हे **उग्र**=तेजस्विन् अथवा शत्रु-भयंकर प्रभो! आप **हि**-निश्चय से **वृषा**=अत्यन्त शक्तिशाली **शृण्विषे**=सुने जाते हैं। आपकी उपासना से शक्तिशाली बनकर मैं भी इन शत्रुओं का संहार करनेवाला बनता हूँ।

भावार्थ-प्रभु हमारे वासनारूप शत्रुओं पर क्रियाशीलतारूप वज्र का प्रहार करते हैं। वे प्रभु शक्तिशाली हैं, उपासक को भी शक्तिशाली बनाते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पादोऽस्य विश्वा भूतानि

न द्याव॒ इन्द्र॒मोज॑सा॒ नान्तरि॑क्षाणि व॒ज्रिण॑म्। न वि॑व्यचन्त॒ भूम॑यः॥ १५॥

(१) **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **द्यावः**-ये द्युलोक **ओजसा**-अपनी ओजस्विता से **न विव्यचन्त**-(व्यच समवाये) घेर नहीं पाते। **वज्रिणम्**=उस वज्रहस्त प्रभु को **न अन्तरिक्षाणि**-ना ही अन्तरिक्षलोक (विव्यचन्त-) घेर पाते हैं। प्रभु इन द्युलोक व अन्तरिक्ष लोकों से बहुत बड़े हैं, ये तो प्रभु के एक देश में स्थित हैं। (२) **भूमयः**=ये पृथिवीलोक भी

न विव्यचन्त=उस प्रभु को नहीं घेर सकते।

भावार्थ–प्रभु त्रिलोकी से बहुत विशाल हैं ये तीनों लोक प्रभु के एकदेश में स्थित हैं।

सूचना–यहाँ 'द्यावः, अन्तरिक्षाणि, भूमयः' ये बहुवचनान्त प्रयोग कई सौर लोकों के होने की सूचना दे रहे हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सोमरक्षण-सन्मार्ग पर गमन-मुक्ति

यस्त इन्द्र महीरपः स्तभूयमान आशयत्। नि तं पद्यासु शिश्नथः॥ १६॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यः**=जो **ते**=तेरे **महीः अपः**=इन महत्त्वपूर्ण रेतःकण रूप जलों को **स्तभूयमानः**=शरीर में ही थामता हुआ **आशयत्**=निवास करता है अथवा उन रेतःकणों को शरीर में ही निवास कराता है, **तम्**=उस पुरुष को आप **पद्यासु**=मार्गों में ही स्थापित करते हुए **निशिश्वथः**=(Liberate) निश्चय से मुक्त करते हो। (२) प्रभु ने शरीर में रेतःकणों को जन्म दिया है। जो भी व्यक्ति इन्हें शरीर में सुरक्षित करता है, वह मार्ग-भ्रष्ट नहीं होता और अन्ततः मुक्ति को प्राप्त करता है।

भावार्थ–सोमरक्षण से सन्मार्ग पर चलते हुए हम मोक्ष का लाभ करते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

मही समीची रोदसी

य इमे रोदसी मही समीची समजग्रभीत्। तमोभिरिन्द्र तं गुहः॥ १७॥

(१) **यः**=जो **इमे**=इन **मही**=महत्त्वपूर्ण **समीची**=सम्यक् व सम्मिलित गतिवाले **रोदसी**=द्यावा-पृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **समजग्रभीत्**=ग्रहण करता है। हे **इन्द्र**=शत्रुओं को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **तम्**=उस पालक को आप **तमोभिः**=(तमोभ्यः) अन्धकारों से **गुहः**=बचाते हैं, छिपाकर रखते हैं। अन्धकार उसपर आक्रमण नहीं कर पाते।

भावार्थ–हम मस्तिष्क व शरीर दोनों को मिलाकर चलें। प्रभु हमें अन्धकारों से बचायेंगे।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

यतयः-भृगवः

य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः। ममेदुग्र श्रुधी हवम्॥ १८॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालनि् प्रभो! ये **यतयः**=जो यति हैं, संयमी पुरुष हैं, ये **च**=और जो **भृगवः**=ज्ञान से अपना परिपाक करनेवाले हैं, वे **त्वा तुष्टुवुः**=आपका स्तवन करते हैं। (२) हे **उग्र**=तेजस्विन् प्रभो! **मम इत्**=मेरे भी **हवम्**=पुकार को, प्रार्थना को **श्रुधि**=आप सुनिये। मैं भी आपका आराधक बनूँ। यति व भृगु बनकर आपकी उपासना करनेवाला बनूँ।

भावार्थ–हम संयमी व ज्ञानी बनकर प्रभु का स्तवन करें। यह स्तवन ही वस्तुतः हमें संयम व ज्ञान-परिपक्वता में सहायक होगा।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पृश्नि-घृत-अमृतत्व

इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम्। एनामृतस्य पिप्युषीः॥ १९॥

(१) हे **इन्द्र**=ज्ञानरूप परमैश्वर्यवाले प्रभो! **इमाः**=ये **ते**=आपकी **पृश्नयः**=प्रकाश की किरणें

हैं। **आशिरम्**-(आशृणाति) ये अन्धकार को समन्तात् शीर्ण करनेवाली **घृतम्**=ज्ञानदीप्ति को **दुहते**=हमारे में पूरित करती हैं। (२) ये प्रकाश की किरणें **एना**-इस ज्ञान दीप्ति के द्वारा **अमृतस्य**=अमृतत्व का **पिप्युषीः**=आप्यायन करती हैं। ज्ञानाग्नि में सब वासनायें भस्म हो जाती हैं और इस प्रकार हमारा जीवन नीरोग व निर्मल बन जाता है।

भावार्थ-प्रभु की प्रकाश की किरणें हमारे आदर ज्ञान दीप्ति का पूरण करके वासना विदाह के द्वारा अमृतत्व को देनेवाली होती हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु को स्तवन के द्वारा धारण करना

या इन्द्र प्रस्वस्त्वासा गर्भमचक्रिरन्। परि धर्मेव सूर्यम्॥ २०॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **याः**=जो **प्रस्वः**=प्रकृष्ट जन्मवाली प्रजायें हैं, वे **आसा**=स्तुति के द्वारा **त्वा**=आपको **गर्भं अचक्रिरन्**=गर्भ में धारण करती हैं। (२) उन आपको अपने अन्दर धारण करती हैं, जो आप **परिधर्म**=चारों ओर धारण करनेवाले **सूर्यं इव**=सूर्य के समान हैं। सूर्य अपने प्रकाश व प्राणशक्ति से सबका धारण करता है। सूर्य के भी सूर्य आप हैं। आप ही सूर्य में इस शक्ति को स्थापित करते हैं।

भावार्थ-हम स्तुति द्वारा प्रभु का अपने अन्दर धारण करें। प्रभु हमारा धारण करेंगे, सूर्य की तरह हमें प्राण शक्ति व प्रकाश को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीविराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

स्तवन-सोमरक्षण

त्वामिच्छवसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः। त्वां सुतास इन्दवः॥ २१॥

(१) हे **शवसः पते**-सब बलों के स्वामिन् प्रभो! **त्वां इत्**=आपको ही **कण्वाः**=मेधावी पुरुष **उक्थेन**-स्तोत्रों के द्वारा **वावृधुः**=बढ़ाते हैं। स्तवन के द्वारा निरन्तर अपने अन्दर धारण करने का प्रयत्न करते हैं। (२) **त्वाम्**-आपको ही **सुतासः**=उत्पन्न हुए-हुए **इन्दवः**=सोमकण बढ़ाते हैं। सोमकणों के द्वारा बुद्धि की तीव्रता होकर आपके दर्शन की योग्यता हमारे में उत्पन्न होती है।

भावार्थ-प्रभु का उपासक प्रभु की शक्ति से अपने को शक्ति-सम्पन्न बना पाता है। मेधावी पुरुष स्तोत्रों व सोमरक्षण द्वारा प्रभु को पाने का यत्न करते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीविराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रशस्तिः-यज्ञः

तवेदिन्द्र प्रणीतिषूत प्रशस्तिरद्रिवः। यज्ञो वितन्तसाय्यः॥ २२॥

(१) हे **अद्रिवः**=वज्रवत् अथवा आदरणीय प्रभो! **तव प्रणीतिषु**=आपके प्रणयनों में ही **प्रशस्तिः**-जीवन का प्रशस्त्य निहित है। आपकी प्रेरणा के अनुसार चलने पर ही जीवन प्रशस्त बनता है। (२) **उत**=और आपके प्रणयनों में ही **यज्ञः**=यज्ञ **वितन्तसाय्यः**=अति-विस्तारवाला होता है। जब हम प्रभु की उपासना करते हैं तो हमारे जीवन में सब प्रशस्त बातों का प्रवेश होता है, अप्रशस्त बातें हमारे जीवन से दूर होती हैं। और हमारा जीवन अधिकाधिक यज्ञमय बनता जाता है।

भावार्थ-प्रभु की उपासना से जीवन प्रशस्त व यज्ञमय बनता है।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

उत्तम साधन व उत्तम फल

आ न॑ इन्द्र म॒हीमिष॒म्पुरं॒ न द॑र्षि॒ गोम॑तीम्। उ॒त प्र॒जां सु॒वीर्य॑म्॥ २३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यवन् प्रभो! आप **नः**=हमारे लिये **गोमती पुरं न**=इस प्रशस्त इन्द्रियोंवाली शरीर नगरी के समान **मही इषम्**=महनीय प्रेरणा को भी **अदर्षि**=प्राप्त कराइये। उत्तम इन्द्रियोंवाले शरीर के साथ उत्तम इच्छाओं व प्रेरणाओं को भी दीजिये। (२) **उत**=और इस प्रकार उत्तम इन्द्रियों, उत्तम शरीर व उत्तम प्रेरणाओं को प्राप्त कराके आप हमारे लिये **प्रजाम्**=उत्तम सन्तानों व **सुवीर्यम्**=उत्तम वीर्य (शक्ति) को प्राप्त कराइये।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से हमें 'उत्तम इन्द्रियोंवाला शरीर, उत्तम प्रेरणा, उत्तम सन्तान व उत्तम शक्ति' प्राप्त हो।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—पादनिचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

आशु अश्व्यम्

उ॒त त्यदा॒श्वश्व्यं॒ यदि॑न्द्र॒ नाहु॑षी॒ष्वा। अग्रे॑ वि॒क्षु प्र॒दीद॑यत्॥ २४॥

(१) **उत**=और हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्यद्**=उस **आशु**=शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाले **अश्व**=इन्द्रिय समूह को हमें प्राप्त कराइये ('आदर्षि' गत मन्त्र से आवृत्त है) (२) हे प्रभो! उस इन्द्रिय समूह को प्राप्त कराइये **यत्**=जो **ना हुषीषु विक्षु**=मानव प्रजाओं में (णह बन्धने) अपने को आपके साथ जोड़नेवाली प्रजाओं में **अग्रे**=सब से आगे **प्रदीदयत्**=दीप्त होता है। उपासक में इन्द्रिय समूह दग्ध दोष होकर चमक उठता है।

भावार्थ—हमें वह इन्द्रिय समूह प्राप्त कराइये जो उपासकों में दीप्त रूप से स्थित होता है।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

ज्ञानदीप्त हृदय

अ॒भि व्र॒जं न त॑त्नि॒षे सूर॑ उपा॒कच॑क्षसम्। यदि॑न्द्र मृ॒ळया॑सि नः॥ २५॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **यत्**=जब आप **नः मृडयासि**=हमें सुखी करते हैं, तो **सूरः**=सूर्य के समान देदीप्यमान आप **उपाकचक्षसम्**=अति समीप हृदयदेश में दर्शनीय ज्ञान को **व्रजं न**=एक गृह के समान विश्राम-स्थान के समान **अभितत्निषे**=चारों ओर विस्तृत करते हैं। (२) ज्ञान को देकर ही प्रभु हमारा कल्याण करते हैं। ज्ञान सब दोषों को दग्ध करके हमें पवित्र बनाता है और इस प्रकार सब अशुभों के आक्रमण से बचाता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे हृदयों को ज्ञान से दीप्त करके हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाते हैं। इस प्रकार प्रभु हमें सुखी करते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

महान् ओजस्वी

यद॒ङ्ग त॑विषी॒यस॒ इन्द्र॑ प्र॒राज॑सि क्षि॒तीः। म॒हाँ अ॑पा॒र ओज॑सा॥ २६॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **यद्**=जब आप **अंग**=शीघ्र ही **तविषीयसे**=(तविषी) उपासक के जीवन में शक्ति की तरह आचरण करते हैं, जब उपासक के जीवन की आप शक्ति बनते हैं तो **क्षितीः**=अन्नमयकोश आदि पाँचों भूमियों को **प्रराजसि**=दीप्त

कर देते हैं। आप की ज्योति से उपासक का जीवन चमक उठता है। आपके बल से बल-सम्पन्न यह उपासक सब दोषों को दग्ध करके दीप्त जीवनवाला बन जाता है। (२) हे प्रभो! आप **महान्**=पूज्य हैं, **ओजसा अपारः**=ओजस्विता से अपार हैं, अनन्त ओजस्वितावाले हैं। यह उपासक भी महान् व ओजस्वी बनता है।

भावार्थ-उपासक के जीवन में प्रभु की शक्ति काम करती है, अतएव वह महान् व अनन्त ओजस्वितावाला प्रतीत होता है।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

हविष्मतीः विशः

तं त्वा हविष्मतीर्विश उप ब्रुवत ऊतये। उरुज्रयसमिन्दुभिः॥ २७॥

(१) **तं त्वा**-उन आप को, हे प्रभो! **हविष्मतीः विशः**=त्यागपूर्वक अदन करनेवाली प्रजायें **ऊतये**=रक्षा के लिये **उपब्रुवते**=प्रार्थना करती हैं, पुकारती हैं। प्रभु का आराधन हवि के द्वारा होता है, त्यागपूर्वक अदन ही प्रभु की उपासना का साधन है। प्रभु से यह उपासक रक्षित होता है। (२) **उरुज्रयसम्** महान् बल व वेगवाले प्रभु को **इन्दुभिः** सोमकणों के रक्षण के हेतु से (उपब्रुवते) पुकारते हैं। प्रभु की उपासना से वासना विनाश द्वारा सोम का रक्षण होता है, यह सुरक्षित सोम उपासक को सबल बनाता है।

भावार्थ-प्रभु की उपासना यज्ञशेष के सेवन से होती है। प्रभु उपासक का रक्षण करते हैं। वासनाओं के आक्रमण से बचाकर उसे सोमरक्षण के योग्य बनाते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीविराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गिरि-नदि के संपर्क में विप्रों का निर्माण

उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत॥ २८॥

(१) ('गृणाति' इति गिरिः) **गिरीणाम्**=ज्ञान का उपदेश करनेवाले गुरुओं के **उपह्वरे**=सान्निध्य में **च**=तथा **नदीनाम्**=स्तोताओं के **संगथे**-संग में **धिया**-बुद्धिपूर्वक कर्मों के द्वारा **विप्रः अजायत**=एक ज्ञानी पुरुष का प्रादुर्भाव होता है। (२) ज्ञानी गुरुओं का तथा प्रभु के उपासक स्तोताओं का सम्पर्क एक युवक को कमियों से बचाकर उत्कृष्ट जीवनवाला बनाता है।

भावार्थ-हमारा सम्पर्क ज्ञानियों व भक्तों के साथ हो। यह सम्पर्क ही हमें उत्कृष्ट जीवनवाला बनायेगा। हम विप्र बन सकेंगे।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

समुद्रम्-उद्वतः

अतः समुद्रमुद्वतश्चिकित्वाँ अव पश्यति। यतो विपान एजति॥ २९॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार **यतः**-क्योंकि एक युवक ज्ञानी गुरुओं व प्रभु स्तोताओं के सम्पर्क में **विपानः**=विशेषरूप से अपना रक्षण करता हुआ **रजति**=गति करता है **अतः**=इसीलिए **चिकित्वान्**=ज्ञानी बनता है। यह उत्तम संग उसे विषय वासनाओं में फँसने से बचाता है तथा उसकी ज्ञान वृद्धि का कारण बनता है। (२) यह ज्ञान को प्राप्त करता हुआ **समुद्रम्**=(स+मुद्) उस आनन्दमय प्रभु को **अवपश्यति**=अन्दर हृदयदेश में देखता है और **उद्वतः**=इन उत्तम लोकों को देखता है। एक-एक लोक में उसे उस प्रभु की महिमा दिखती है। प्रत्येक लोक का रचना

सौन्दर्य उसके हृदय में प्रभु की महिमा को अंकित करनेवाला होता है।

भावार्थ–ज्ञानियों के सम्पर्क में विषयों से अपने को बचाते हुए चलेंगे तो हम भी ज्ञानी बनेंगे। प्रभु का ज्ञान प्राप्त करेंगे, प्रभु से रचित इन उत्कृष्ट लोकों का ज्ञान प्राप्त करेंगे॥

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वासरं ज्योतिः

आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम्। परो यदिध्यते दिवा॥ ३०॥

(१) **यत्**=जब **दिवा**=ज्ञान के प्रकाश के द्वारा **परः**=वह परम प्रभु **इध्यते**=अपने हृदयदेशों में समिद्ध किया जाता है **आत इत्**=तब ही **प्रत्नस्य रेतसः**=उस सनातन शक्ति की **वासरं ज्योतिः**=सबको बसानेवाली व अन्धकार को विनष्ट करनेवाली ज्योति को **पश्यन्ति**=देखते हैं। (२) हृदय में प्रभु का प्रकाश होने पर वह प्रभु एक सनातन शक्ति व अन्धकार विनाशक ज्योति के रूप में दिखता है। यह उपासक भी अपने जीवन में शक्ति व ज्योति के सम्पादन का यत्न करता है। यह यत्न ही प्रभु की सच्ची उपासना होती है।

भावार्थ–प्रभु का ध्यान करनेवाले प्रभु को एक सनातन शक्ति के रूप में व वासर ज्योति के रूप में देखते हैं। स्वयं भी शक्ति व ज्ञान से सम्पन्न होने का यत्न करते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीविराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

मति-पौंस्य-वृष्ण्य

कण्वास इन्द्र ते मतिं विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम्। उतो शविष्ठ वृष्ण्यम्॥ ३१॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **विश्वे कण्वासः**=सब मेधावी पुरुष **ते**=आप से दी जानेवाली **मतिम्**=बुद्धि को तथा **पौंस्यम्**=पुरुषार्थ को **वर्धन्ति**=बढ़ाते हैं। प्रभु की उपासना के मार्ग में चलनेवाले लोग बुद्धि और पौरुष के बढ़ाने के लिये सदा यत्नशील होते हैं। (२) हे **शविष्ठ**=सर्वोत्तम शक्ति-सम्पन्न प्रभो! **उत**=और **उ**=निश्चय से ये मेधावी पुरुष **वृष्ण्यम्**=अपने वीर्य को बढ़ाते हैं। वीर्य को बढ़ाने का भाव शरीर में इसे सुरक्षित रखने से ही है। प्रकृति प्रवण पुरुष भोगों की ओर झुककर वीर्य का विनाश कर बैठता है, प्रभु-भक्त वीर्य का रक्षण करता है। यह वीर्यरक्षण उसकी मनोवृत्ति व मस्तिष्क दोनों को सुन्दर बनाता है।

भावार्थ–मेधावी पुरुष प्रभु का उपासन करते हुए 'बुद्धि-पौरुष व वीर्य' का वर्धन करते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

स्तुति द्वारा मति का वर्धन

इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव। उत प्र वर्धया मतिम्॥ ३२॥

(१) हे **इन्द्र**–परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **मे**=मेरे से की जानेवाली **इमां सुष्टुतिं**=इस उत्तम स्तुति को **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक सेवन करिये। मेरे से किया जानेवाला स्तवन मुझे आपका प्रिय बनाये। मैं आपका ही भक्त बनूँ, हे प्रभो! **माम्**=मुझे **सु अव**=अच्छी प्रकार रक्षित करिये। आप से रक्षित हुआ-हुआ मैं वासनाओं व रोगों का शिकार न होऊँ। (२) **उत**=और आप **मतिम्**=मेरी बुद्धि को **प्रवर्धया**=बढ़ाइये। इस बुद्धि के द्वारा मैं सदा ठीक मार्ग पर चलता हुआ अपना रक्षण कर पाऊँ।

भावार्थ–प्रभु-स्तवन करते हुए हम प्रभु के प्रिय बनें, प्रभु द्वारा रक्षित हों। प्रभु हमारी बुद्धि का वर्धन करें। यह बुद्धि ही तो मुझे रक्षण के योग्य बनायेगी।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

तुभ्यं उत जीवसे

उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः। विप्रा अतक्ष्म जीवसे॥ ३३॥

(१) हे **प्रवृद्ध**=सब गुणों के दृष्टिकोण से बढ़े हुए, **वज्रिवः**=वज्रहस्त प्रभो! **विप्राः**–अपना पूरण करनेवाले **वयम्**=हम **तुभ्यम्**=आप की प्राप्ति के लिये **उत**–तथा **जीवसे**–दीर्घ-जीवन के लिये **ब्रह्मण्या**=ज्ञान में उत्तम वाणियों को **अतक्ष्म**–करते हैं। (२) ये उत्तम वाणियाँ हमारे ज्ञान को बढ़ाती हुई हमारे जीवन को उत्तम बनाती हैं तथा हमें आपकी प्राप्ति का पात्र बनाती हैं।

भावार्थ–ज्ञान की वाणियों का सम्पादन ही वह मार्ग है जिससे कि हम अपने जीवन को उत्कृष्ट बनाते हैं और प्रभु को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सदा प्रभु चिन्तन

अभि कण्वा अनूषतापो न प्रवता यतीः। इन्द्रं वनन्वती मतिः॥ ३४॥

(१) **कण्वाः**=मेधावी पुरुष **आपः न**=जलों के समान **प्रवता**=निम्न मार्ग से **यतीः**=जाते हुए, नम्रता से सब कार्यों को करते हुए, **अभि अनूषत**=प्रातः-सायं प्रभु का स्तवन करते हैं। (२) इन मेधावी पुरुषों की **मतिः**=बुद्धि **इन्द्रं वनन्वती**=परमैश्वर्यशाली प्रभु का सम्भजन करती हुई होती है। यह सदा प्रभु का चिन्तन करते हैं।

भावार्थ–मेधावी पुरुष प्रातः-सायं प्रभु का स्मरण करते हैं। इनकी बुद्धि प्रभु का ही सम्भजन करती है।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'अनुत्तमन्यु-अजर' प्रभु

इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः। अनुत्तमन्युमजरम्॥ ३५॥

(१) **इव**–जैसे **सिन्धवः**=नदियाँ **समुद्रम्**–समुद्र का वर्धन करती हैं, इसी प्रकार **उक्थानि**=स्तोत्र हमारे हृदयों में **इन्द्रम्**=प्रभु को **वावृधुः**-बढ़ाते हैं। जितना-जितना हम प्रभु का स्तवन करते हैं, उतना-उतना प्रभु का भाव हमारे में वृद्धि को प्राप्त होता है। (२) उस प्रभु को ये स्तोत्र बढ़ाते हैं, जो **अनुत्तमन्युम्**=(अनुत्त=अप्रेरित) अप्रेरित ज्ञानवाले हैं, स्वाभाविक ज्ञानवाले हैं, किसी और से जो ज्ञान को नहीं प्राप्त करते तथा **अजरम्**=कभी जीर्ण होनेवाले नहीं। प्रभु की शक्ति कभी जीर्ण नहीं होती। इस प्रकार प्रभु को स्मरण करते हुए हम भी ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

भावार्थ–प्रभु का स्तवन हमारे में प्रभु के भाव को बढ़ाता है, प्रभु ज्ञानस्वरूप हैं, अजीर्ण शक्तिवाले हैं। हम भी इस रूप में प्रभु का स्मरण करते हुए 'ज्ञानी व सशक्त' बनने के लिये यत्नशील होते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

हर्यत हरि

आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम्। इममिन्द्र सुतं पिब॥ ३६॥

(१) हे प्रभो! **परावतः**=सुदूर देश की यात्रा के उद्देश्य से **हर्यताभ्यां हरिभ्याम्**=गतिशील व तेजस्विता से कान्त (सुन्दर) इन्द्रियाश्वों से **नः**=हमें **आयाहि**=आप प्राप्त होइये। इन उत्तम ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप अश्वों से हम सुदूरस्थ लक्ष्य पर पहुँचनेवाले बनें। (२) इन इन्द्रियाश्वों को 'हर्यत' बनाने के लिये हे **इन्द्र**=शत्रु विद्रावक प्रभो! **इमम्**=इस **सुतम्**=उत्पन्न सोम को **पिब**=हमारे शरीर में ही पीनेवाले होइये यह सुरक्षित सोम ही इन्द्रियों को सशक्त बनता है।

भावार्थ—सुदूर लक्ष्य पर पहुँचाने के लिये प्रभु हमें गतिशील कान्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करायें। इन्हें गतिशील कान्त बनाने के लिये सोम को शरीर में ही सुरक्षित करें।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वाजसातये

त्वामिद् वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः। हवन्ते वाजसातये॥ ३७॥

(१) हे **वृत्रहन्तम**=वासना को अधिक से अधिक विनष्ट करनेवाले प्रभो! **वृक्तबर्हिषः**=जिन्होंने हृदयक्षेत्र से वासना के घास-फूस को उखाड़ फेंका है ऐसे **जनासः**=लोग **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिये **त्वां इत**=आपको ही **हवन्ते**=पुकारते हैं। (२) प्रभु का आराधन ही हमारी वासनाओं को विनष्ट करता है और इस प्रकार हमें सबल बनाता है।

भावार्थ—हम प्रभु को पुकारें, प्रभु हमारी वासना को विनष्ट करेंगे और हमें शक्ति-सम्पन्न करेंगे।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

तेरे अनुकूल (त्वा अनु)

अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न वर्त्येतशम्। अनु सुवानास इन्दवः॥ ३८॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार जब वृक्तबर्हिष् लोग शक्ति प्राप्ति के लिये प्रभु को पुकारते हैं तो **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी **त्वा अनु वर्ति**=तेरे अनुकूल वर्तनवाले होते हैं। इस प्रकार तेरे अनुकूल वर्तनवाले होते हैं **न**=जैसे **चक्रम्**=रथ **एतशम्**=(अनु) घोड़े के पीछे आता है। उस उपासक का मस्तिष्करूप द्युलोक तथा शरीररूप पृथिवी लोक दोनों ही इसके प्रति अनुकूलता के लिये हुए होते हैं। (२) **सुवानासः**=उत्पन्न होते हुए **इन्दवः**=सोमकण भी **अनु**=अनुकूलतावाले होते हैं। अर्थात् उनकी शरीर में ही ऊर्ध्वगति होकर शरीर की शोभा के वे कारण बनते हैं।

भावार्थ—वृक्तबर्हिष् उपासकों के शरीर व मस्तिष्क बड़े ठीक होते हैं। सोमकण इनके शरीर में सुरक्षित रहते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'स्वर्णर शर्यणावान्' प्रभु की उपासना में

मन्दस्वा सु स्वर्णर उतेन्द्र शर्यणावति। मत्स्वा विवस्वतो मती॥ ३९॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **स्वर्णर**=प्रकाश की ओर ले चलनेवाले उस प्रभु की उपासना में **सुमन्दस्व**=उत्तम आनन्दवाला हो। **उत**=और **शर्यणावति**=सब काम, क्रोध, लोभ

आदि शत्रुओं का हिंसन करनेवाले उस प्रभु में आनन्द का अनुभव कर। (२) **विवस्वतः**=ज्ञान रश्मियोंवाले, ज्ञान-रश्मियों द्वारा अन्धकार को दूर करनेवाले प्रभु की **मती**-इस बुद्धि में, प्रभु के दिये गये वेदज्ञान में **मत्स्वा**=आनन्द को ग्रहण कर।

भावार्थ-हम प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमें प्रकाश की ओर ले चलेंगे तथा हमारे वासना रूप शत्रुओं का संहार करेंगे। प्रभु से दिये गये वेदज्ञान में ही हम आनन्द को लें।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वृत्रहा सोमपातमः

वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत्। वृत्रहा सोमपातमः॥ ४०॥

(१) **द्यवि उप**-वासना विनाश से पवित्र हुए-हुए प्रकाशमय हृदय में **वावृधानः**=वृद्धि को प्राप्त होता हुआ **वृषा**-हमारे लिये शक्ति का सेचन करनेवाला **वज्री**-वज्रहस्त प्रभु **अरारेवीत्**-खूब ही ज्ञानोपदेश को करता है। पवित्र हृदय पुरुषों में प्रभु प्रेरणा सुनायी पड़ती ही है। (२) ये प्रभु **वृत्रहा** ज्ञान की आवरणभूत वासना का विनाश करते हैं और **सोमपातमः**=अधिक से अधिक सोम को शरीर में सुरक्षित करते हैं। वासना ही सोमरक्षण में महान् विघ्न है। उसे दूर करके प्रभु हमारे सोम का रक्षण करके हमें शक्ति-सम्पन्न बनाते हैं।

भावार्थ-पवित्र हृदय में प्रभु का प्रकाश अधिकाधिक बढ़ता चलता है। प्रभु वासना का विनाश करते हैं व सोम का रक्षण करते हैं। सोमरक्षण के द्वारा प्रभु हमारे जीवनों में शक्ति का सेचन करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पूर्वजा ऋषि

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा। इन्द्र चोष्कूयसे वसु॥ ४१॥

(१) हे प्रभो! आप **हि**-निश्चय से **ऋषिः**-तत्त्वद्रष्टा हैं। **पूर्वजाः असि**-बनने से पहले ही हैं 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे'। **एकः**=आप अद्वितीय हैं, **ओजसा ईशानः**=ओजस्विता के कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के शासक हैं। (२) हे **इन्द्र**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप ही **वसु**-सब धनों को **चोष्कूयसे**-देते हैं। जीवन के लिये आवश्यक सब धन आप से ही प्राप्त कराये जाते हैं।

भावार्थ-प्रभु तत्त्वद्रष्टा सदा से वर्तमान व ईशान हैं। प्रभु ही सब वसुओं को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'प्रभु, यज्ञों व सात्त्विक अन्न' की ओर

अस्माकं त्वा सुताँ उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः। शतं वहन्तु हरयः॥ ४२॥

(१) हे प्रभो! **अस्माकम्**-हमारे ये **वीतपृष्ठाः**=चमकती पीठवाले, अर्थात् तेजस्वी **हरयः**= इन्द्रियाश्व **शतम्**-शतवर्षपर्यन्त **त्वा उप**=आपके समीप **वहन्तु**-ले चलनेवाले हों। अर्थात् हम इन इन्द्रियाश्वों द्वारा आपकी उपासन करनेवाले बनें। **सुतान् उप**=नाना यज्ञों के समीप ये हमें प्राप्त करनेवाले हों। इनके द्वारा हम सदा यज्ञों को करते रहें। (२) ये इन्द्रियाश्व **प्रयः अभि**-उत्तम सात्त्विक अन्न की ओर हमें ले चलें। इस सात्त्विक अन्न का सेवन करते हुए ये इन्द्रियाश्व हमें सात्त्विक वृत्तिवाला बनायें।

भावार्थ—हमारी इन्द्रियाँ प्रभु की ओर यज्ञों की ओर व सात्त्विक अन्न की ओर झुकाववाली हों।

ऋषिः—वत्सः काण्वः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृद् गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

प्रभु-स्तवन व ज्ञान प्राप्ति

इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम्। कण्वा उक्थेन वावृधुः ॥ ४३ ॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **इमाम्**-इस **पूर्व्याम्**-सृष्टि के प्रारम्भ में हमारे से दी जानेवाली **मधोः**=अत्यन्त मधुर, जीवन को मधुर बनानेवाली **घृतस्य**=ज्ञानदीप्ति को **पिप्युषीम्**=आप्यायित करनेवाली **धियम्**-बुद्धि को, वेदज्ञान को **कण्वः**=मेधावी पुरुष **उक्थेन**=स्तोत्रों के द्वारा **सु वावृधुः**-सम्यक् अपने अन्दर बढ़ानेवाले होते हैं। (२) प्रभु स्तवन से हृदय की शुद्धि होती है और बुद्धि की तीव्रता होती है। इस हृदय शुद्धि व बुद्धि की तीव्रता से ज्ञान का सम्यक् वर्धन होता है। यह ज्ञान ही जीवन को मधुर बनाता है।

भावार्थ—सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु से दिया जानेवाला ज्ञान जीवन के माधुर्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस ज्ञान को मेधावी पुरुष प्रभु-स्तवन से शुद्ध हृदय व तीव्र बुद्धि बनकर प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—आर्षीविराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

इन्द्र का वरण

इन्द्रमिद्विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः। इन्द्रं सनिष्युरूतये ॥ ४४ ॥

(१) **विमहीनाम्**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमियों के **मेधे**=सम्पर्क के निमित्त **मर्त्यः**=मनुष्य **इन्द्रं इत्**=उस प्रभु का ही **वृणीत**=वरण करे। योगमार्ग में अगली-अगली भूमि अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रभु की उपासना हमें इन भूमियों पर पहुँचने में सहायक होती है। (२) **सनिष्युः**=सब ऐश्वर्यों के सम्भजन की कामनावाला पुरुष भी **ऊतये**=रक्षण के लिये **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को वरे। प्रभु के अनुग्रह से ही ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं और वे ऐश्वर्य हमारे पतन का कारण नहीं बनते।

भावार्थ—प्रभु की उपासना हमें योग की अगली-अगली भूमियों में पहुँचायेगी। यह उपासना ही हमें ऐश्वर्य की स्थिति में पतन से बचायेगी।

ऋषिः—वत्सः काण्वः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृद् गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

प्रियमेधस्तुता हरी

अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी। सोमपेयाय वक्षतः ॥ ४५ ॥

(१) हे **पुरुष्टुत**=बहुतों से स्तुत प्रभो! **हरी**=ये इन्द्रियाश्व **त्वा**=आपको **अर्वाञ्चम्**=अन्दर हृदयदेश में **वक्षतः**=धारण करते हैं। वे इन्द्रियाश्व आपका धारण करते हैं जो **प्रियमेधस्तुता**=यज्ञ व स्तुति के साथ प्रेमवाले हैं। (२) ये इन्द्रियाश्व यज्ञों व स्तवन में प्रवृत्त हुए-हुए वासनाओं से बचे रहते हैं। वासनाओं का शिकार न होने से ही ये **सोमपेयाय**=सोम के पान के लिये होते हैं। सोमरक्षण ही जीवन में सब उन्नतियों का मूल बनता है।

भावार्थ—जब इन्द्रियाँ यज्ञों व स्तवन में प्रवृत्त होती हैं, तो हृदय में प्रभु को धारण करने के कारण वासनाओं के आक्रमण से बची रहती हैं और सोम का पान करनेवाली होती हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—तिरिन्दिरस्य पारशव्यस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—आर्षीविराड्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

तिरिन्दिर पर्शु

शतमहं तिरिन्दिरे सहस्रं पर्शावा ददे। राधांसि याद्वानाम्॥ ४६॥

(१) प्रभु सर्वत्र तिरोहित रूप से विद्यमान हैं, तथा परमैश्वर्यशाली हैं, सो 'तिरिन्दिर' हैं। 'पर्शुः' (पशु) सर्वद्रष्टा हैं। इस **तिरिन्द्रि**–हृदयगुहा में तिरोहित परमैश्वर्यशाली प्रभु में **पर्शौ**=उस सर्वद्रष्टा प्रभु में **अहम्**=मैं **याद्वानाम्**–यत्नशील पुरुषों के **शतं सहस्रम्**=सैंकड़ों व हजारों **राधांसि**–ऐश्वर्यों को **आददे**–ग्रहण करता हूँ। (२) प्रभु का स्मरण करता हुआ मैं यत्नशील बना रहता हूँ और कार्य-साधक धनों को प्राप्त करनेवाला होता हूँ।

भावार्थ–प्रभु तिरोहित रूप से सर्वत्र विद्यमान परमैश्वर्यशाली व सर्वद्रष्टा हैं। इनका स्मरण करता हुआ मैं आवश्यक धनों को जुटानेवाला बनता हूँ।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—तिरिन्दिरस्य पारशव्यस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—पादनिचृद्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

पज्र-समान्

त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम्। ददुष्पज्राय साम्ने॥ ४७॥

(१) ज्ञान धन आदि का अर्जन करनेवाला 'पज्र' है, शान्त स्वभाव का व्यक्ति 'सामन्' है। इस **पज्राय साम्ने**-ज्ञान आदि के अर्जक शान्त स्वभाव पुरुष के लिये सब देव **अर्वताम्**=(अर्व् हिंसायाम् to kill) रोग आदि का संहार करनेवाले प्राणों के **त्रीणि शतानि**=तीन सौ को **ददुः**=देते हैं। सब प्राकृतिक देव उसकी अनुकूलतावाले होते हुए इसे दीर्घजीवी बनाते हैं। यह 'पज्र सामन्' तीन सौ वर्षों तक जीनेवाला होता है। (२) इस 'पज्र सामन्' को **वेद** =ज्ञानी पुरुष **गोनाम्**=ज्ञान की वाणियों के **दश सहस्रा**=इन दस हजारों को प्राप्त कराते हैं। ऋग्वेद की इन वाणियों द्वारा सब विज्ञान को प्राप्त करके यह 'पज्र सामन्' खूब ही अभ्युदय को प्राप्त करनेवाला होता है।

भावार्थ–ज्ञान व धन आदि का अर्जन करनेवाले शान्त स्वभाव के बनकर हम तीन सौ वर्ष के दीर्घ जीवन को और इन सहस्रों ज्ञान वाणियों को प्राप्त हों।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—तिरिन्दिरस्य पारशव्यस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

'दिवम्, उष्ट्रान्, चतुर्युजः'

उदानट् ककुहो दिवमुष्ट्राञ्चतुर्युजो ददत्। श्रवसा याद्वं जनम्॥ ४८॥

(१) **ककुहः**=सब गुणों के दृष्टिकोण से शिखर पर वर्तमान सर्वश्रेष्ठ प्रभु **श्रवसा**=ज्ञान के द्वारा **याद्वं जनम्**–यत्नशील मनुष्य को **उदानट्**–उत्कर्ष को प्राप्त कराते हैं। (२) इस उत्कर्ष को प्राप्त कराने के लिये ही प्रभु उसे **दिवम्**–ज्ञान को **ददत्**=देते हैं। **उष्ट्रान्**=(उष दाहे) ज्ञानाग्नि के द्वारा वासना दहन शक्तियों को प्राप्त कराते हैं तथा **चतुर्युजः** (ददत्)=धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों को उसके लिये देते हैं।

भावार्थ–प्रभु सर्वश्रेष्ठ हैं। वे यत्नशील उपासक को 'ज्ञान, दोष दहन शक्ति व धर्मार्थ काम मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों के लिये यत्नशीलता' प्राप्त कराके उन्नत करते हैं।

इस प्रकार ज्ञान द्वारा निर्दोष जीवनवाला बनकर यह फिर (पुनः) प्रभु का प्रिय (वत्स) बनता है। सो 'पुनर्वत्सः' कहलाता है। यह 'काण्व' मेधावी है। यह 'पुनर्वत्स काण्व' ही अगले सूक्त का ऋषि है। अपने जीवन के उत्कर्ष के लिये यह प्राणसाधना करता हुआ 'मरुतों' (प्राणों) का आराधन करता है-

७. [सप्तमं सूक्तम्]

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

त्रिष्टुभ् इष्

प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत्। वि पर्वतेषु राजथ॥ १॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **यद्**=जब **विप्रः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाला व्यक्ति **वः**=आपके द्वारा **त्रिष्टुभम्**='काम-क्रोध-लोभ' तीनों को रोक देनेवाली (त्रि स्तुभ्) **इषम्**=प्रभु प्रेरणा को **प्र अक्षरत्**=अपने में प्रकर्षेण संचलित करता है, अर्थात् प्राणायाम द्वारा शुद्ध हृदय में प्रभु प्रेरणा को सुनने का प्रयत्न करता है, तो आप इन **पर्वतेषु**=(पर्व पूरणे) अपना पूरण करनेवाले लोगों में **विराजथ**=विशेषरूप से शोभायमान होते हो। इन प्राणसाधकों में प्राण विशिष्ट शोभावाले होते हैं। अर्थात् इनका जीवन बहुत ही सुन्दर बन जाता है। (२) प्राणसाधना 'शरीर, हृदय व मस्तिष्क' तीनों को क्रमशः नीरोग, निर्मल व तीव्र बनाती है। यही पुरुष प्रभु प्रेरणा को सुनने का पात्र बनता है। प्रभु प्रेरणा उसके 'काम-क्रोध-लोभ' आदि असुरभावों को विनष्ट करनेवाली होती है।

भावार्थ-प्राणसाधन से पवित्र हुए-हुए हृदयों में प्रभु प्रेरणा सुनाई पड़ती है। वह इसके (काम-क्रोध-लोभरूप) तीनों दोषों को रोकनेवाली होती है।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अविद्या पर्वत विदारण

यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम्। नि पर्वता अहासत॥ २॥

(१) हे मरुतो (प्राणो)! **यत्**=जब **अङ्ग**=शीघ्र ही **तविषीयवः**=बल को जोड़ने की कामनावाले होते हुए **शुभ्राः**=जीवन को उज्ज्वल बनानेवाले आप **यामं अचिध्वम्**=संयम का संचय करते हो, जितेन्द्रियता की वृद्धि करते हो तो **पर्वताः**-अविद्या पर्वत **नि अहासत**=निश्चय से दूर कर दिये जाते हैं। (२) प्राणसाधक के मार्ग में अविद्या पर्वत रुकावट नहीं बने रहते।

भावार्थ-प्राणसाधना से जितेन्द्रिय बनकर हम अविद्या को विनष्ट करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

वाश्रासः पृश्निमातरः

उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः। धुक्षन्त पिप्युषीमिषम्॥ ३॥

(१) ये साधक लोग **वायुभिः**=इन प्राणों के द्वारा, प्राणसाधना के द्वारा **उदीरयन्त**=ऊर्ध्वगतिवाले होते हैं। **वाश्रासः**=प्रभु के नामों का उच्चारण करते हैं। **पृश्निमातरः**=प्रकाश की किरणों का अपने अन्दर निर्माण करनेवाले होते हैं। (२) ये **पिप्युषीम्**=जीवन को आप्यायित करनेवाले **इषम्**=अन्न को **धुक्षन्त**=अपने में पूरित करते हैं। प्राणसाधना के साथ इस सात्त्विक अन्न का सेवन इनको योग मार्ग में आगे बढ़ानेवाला होता है।

भावार्थ-प्राणायाम के साथ सात्त्विक अन्न का सेवन करते हुए ये साधक प्रभु के नामों का

उच्चारण करते हैं और स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान-रश्मियों का वर्धन करते हैं।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

मिहं वपन्ति, पर्वतान् प्रवेपयन्ति

वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान्। यद्यामं यान्ति वायुभिः॥ ४॥

(१) **यद्**-जब **वायुभिः**-इन प्राणों के द्वारा **यामं यान्ति**-जितेन्द्रियता को (याम control) प्राप्त करते हैं, तो **मरुतः**-ये प्राणसाधना करनेवाले पुरुष **मिहं वपन्ति**-अंग-प्रत्यंग में शक्ति का सेचन करते हैं और **पर्वतान् प्रवेपयन्ति**-अविद्या पर्वतों को कम्पित करके दूर करते हैं। (२) प्राणसाधना हमें इन्द्रियों को वशीभूत करने में समर्थ करती है। यह जितेन्द्रियता सोम का रक्षण करती है। सोमरक्षण से शरीर शक्ति-सम्पन्न बनता है तो मस्तिष्क का अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है।

भावार्थ-प्राणसाधना द्वारा जितेन्द्रिय बनकर हम सोमरक्षण करते हुए शरीर को शक्ति-सम्पन्न तथा मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त बनाते हैं।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

महे शुष्माय

नि यद्यामाय वो गिरिर्नि सिन्धवो विधर्मणे। महे शुष्माय येमिरे॥ ५॥

(१) **यद्**-जब एक व्यक्ति **वः यामाय**=हे प्राणो! आपके संयम के लिये होता है तो **गिरिः**-(गृणाति) ज्ञान का उपदेष्टा बनता है। उस समय **सिन्धवः**-ये ज्ञान प्रवाह **नि**-निश्चय से उसके **विधर्मणे**-विशिष्ट धारण के लिये होते हैं। प्राणसाधना से ज्ञानदीप्ति बढ़ती है। (२) हे प्राणो! आप **महे शुष्माय**-महनीय शत्रु-शोषक बल के लिये **नियेमिरे**=संयत किये जाते हैं। प्राणसाधना के द्वारा वह बल प्राप्त होता है, जो शत्रुओं का शोषण करनेवाला होता है।

भावार्थ-प्राणसाधना हमारे ज्ञान व बल का वर्धन करती है।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रातः-सायं प्राणसाधना

युष्माँ उ नक्तमूतये युष्मान्दिवा हवामहे। युष्मान्प्रयत्यध्वरे॥ ६॥

(१) हे प्राणो! **युष्मान् उ**-आपको ही **नक्तम्**-रात्रि में **ऊतये**-रक्षण के लिये हम **हवामहे**-पुकारते हैं। **युष्मान्**-आपको ही **दिवा**=दिन में रक्षण के लिये पुकारते हैं। प्रातः-सायं प्राणसाधना करते हुए हम वासनाओं व रोगों के आक्रमण से अपना रक्षण करनेवाले होते हैं। (२) हे प्राणो! **युष्मान्**-आपको ही हम **अध्वरे प्रयति**=यज्ञ के चलते हुए होने पर रक्षण के लिये पुकारते हैं। यह जीवनयज्ञ प्राणों द्वारा ही रक्षित होता हुआ चलता है। वस्तुतः प्राणसाधना से ही यह यज्ञ बना रहता है। प्राणसाधना के अभाव में जीवन की वह पवित्रता स्थिर नहीं रहती।

भावार्थ-हम प्रातः-सायं प्राणसाधना करते हुए रोगों व वासनाओं से अपने को आक्रान्त न होने दें और इस प्रकार अपने जीवन को एक पवित्र यज्ञ का रूप दे सकें।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अरुणप्सवः चित्राः

उदु त्ये अरुणप्सवश्चित्रा यामेभिरीरते। वाश्रा अधि ष्णुना दिवः॥ ७॥

(१) **त्ये**=वे प्राणसाधना करनेवाले पुरुष **उ**=निश्चय से **अरुणप्सवः**=तेजस्वी (हलकी लालिमावाले) रूपवाले होते हैं। **चित्राः**=अद्भुत जीवनवाले व (चित्) ज्ञान को देनेवाले होते हैं। **यामेभिः**=संयमों के द्वारा **उद् ईरते**=उन्नति के मार्ग पर चलते हैं। (२) **वाश्राः**=ये प्रभु के नामों का उच्चारण करनेवाले होते हैं। **दिवः**=ज्ञान के **स्नुना अधि**=शिखर के साथ शोभायमान होते हैं। ज्ञान के शिखर पर स्थित हुए-हुए ये व्यक्ति सदा प्रभु-स्मरण में प्रवृत्त रहते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से 'तेजस्विता, ज्ञान, संयमवृत्ति व प्रभु-प्रवणता' प्राप्त होती है।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ओजस्विता-ज्ञान-रश्मियाँ

सृजन्ति॑ र॒श्मिमोज॑सा॒ पन्थां॒ सूर्या॑य॒ यात॑वे। ते भा॒नुभि॒र्वि त॑स्थिरे॥ ८॥

(१) प्राणसाधना के होने पर ये प्राण **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **रश्मिम्**=ज्ञान की रश्मियों को **सृजन्ति**=हमारे अन्दर उत्पन्न करते हैं। तथा **सूर्याय**=सहस्रार चक्र (सूर्य चक्र) की ओर **यातवे**=जाने के लिये **पन्थाम्**=मार्ग को बनाते हैं। इस सहस्रार चक्र में पहुँचने पर ही सत्य का ही पोषण करनेवाली प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। (२) इस प्रकार **ते**=वे प्राणसाधक पुरुष **भानुभिः**=प्रकाश की किरणों के साथ **वितस्थिरे**=जीवन में विशिष्ट स्थितिवाले होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें ओजस्विता के साथ ज्ञान रश्मियों को प्राप्त कराती है। हम मस्तिष्क में स्थित सूर्य चक्र में पहुँचकर 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' को प्राप्त करते हैं। हमारा जीवन विशिष्ट दीप्तियोंवाला होता है।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ज्ञान-स्तवन-प्रार्थना

इ॒मां मे॑ मरुतो॒ गिर॑मि॒मं स्तोम॑मृभुक्षणः। इ॒मं मे॑ वनता॒ हव॑म्॥ ९॥

(१) **मरुतः**=हे प्राणो! **इमां मे गिरम्**=इस मेरी ज्ञान की वाणी को **वनता**=सेवन करो। हे **ऋभुक्षणः**=विशाल दीप्ति में निवास करनेवाले प्राणो, ज्ञान को विशाल बनानेवाले प्राणो! **इमं स्तोमं (वनता)**=इस मेरे स्तुति समूह का सेवन करो। प्राणसाधना के द्वारा मैं ज्ञान की वाणियों की ओर झुकाववाला बनूँ तथा प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाला बनूँ। (२) हे प्राणो! **मे**=मेरी **इमं इहवम्**=इस पुकार को, प्रार्थना का **वनत**=सेवन करो। प्राणसाधना के द्वारा मैं प्रार्थना की वृत्तिवाला बनूँ।

भावार्थ—प्राणसाधना मुझे 'ज्ञान, स्तवन व प्रभु प्रार्थना' की ओर झुकाववाला बनाये।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

त्रीणि सरांसि

त्रीणि॒ सरां॑सि॒ पृश्न॑यो दुदु॒ह्रे व॒ज्रिणे॒ मधु॑। उत्सं॒ कव॑न्धमु॒द्रिण॑म्॥ १०॥

(१) हे प्राण 'पृश्नयः' कहलाते हैं क्योंकि ज्ञानदीप्ति का ये कारण बनते हैं। ये प्राण **वज्रिणे**=क्रियाशील पुरुष के लिये **त्रीणि सरांसि**='प्रकृति, जीव व परमात्म' सम्बन्धी तीन ज्ञान प्रवाहों को **दुदुह्रे**=प्रपूरित करते हैं। इन ज्ञान प्रवाहों के द्वारा वे इसके जीवन में **मधु**=माधुर्य का दोहन करते हैं। (२) ये प्राण उस **उद्रिणम्**=ज्ञान जल से पूर्ण **उत्सम्**=स्रोत को प्रपूरित करते हैं जो **कवन्धम्**=हमारे जीवनों में उस आनन्दमय (क) प्रभु को हमारे साथ बाँधने (वन्ध) वाला होता

है।

भावार्थ—प्राणसाधना से 'प्रकृति, जीव व परमात्मा' का ज्ञान प्राप्त करके हम अपने जीवनों को मधुर बना पाते हैं और अन्ततः यह ज्ञान हमें प्रभु का सम्पर्क प्राप्त कराता है।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

दिवः सुम्नायन्तः

मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे। आ तू न उप गन्तन॥ ११॥

(१) हे **मरुतः**-प्राणो! **यत् ह**=जब निश्चय से **दिवः सुम्नायन्तः** ज्ञान के सुख की कामना करते हुए हम **वः हवामहे**-आपको पुकारते हैं, **तु** तो आप **नः**-हमें **आ उपगन्तन**=सर्वथा समीपता से प्राप्त होवो। (२) प्राणसाधना से ही बुद्धि की तीव्रता होकर ज्ञान का सुख प्राप्त होता है। प्राणसाधना के अभाव में ज्ञान एकदम अरुचिकर प्रतीत होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से बुद्धि तीव्र होती है। बुद्धि की तीव्रता के होने पर हमें ज्ञान प्राप्ति में आनन्द का अनुभव होता है।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'सुदानु रुद्र ऋभुक्षा प्रचेतस्' प्राण

यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे। उत प्रचेतसो मदे॥ १२॥

(१) हे प्राणो! **यूयम्**-आप **हि**-निश्चय से **सुदानवः**-(दाप् लवने) अच्छी प्रकार वासनाओं का विच्छेद करनेवाले **स्थ**=हो। **रुद्राः**-(रुत् द्र) रोगों को भगानेवाले हो तथा **दमे**-इस शरीर गृह में अथवा दमन के होने पर **ऋभुक्षणः**=विशाल ज्योति में निवास करनेवाले हो। प्राण शरीर को नीरोग बनाते हैं, मन को निर्मल तथा बुद्धि को तीव्र बनाते हैं। (२) **उत**=और **मदे**-हर्ष के निमित्त **प्रचेतसः**=प्रकृष्ट चेतनावाले होते हो। प्रकृष्ट चेतना को प्राप्त कराके ही आप हमारे जीवनों को उल्लासमय बनाते हो।

भावार्थ—प्राण 'वासनाओं को काटनेवाले, रोगों को भगानेवाले, विशाल ज्ञान दीप्ति में निवासवाले व प्रकृष्ट चेतना को देनेवाले' हैं।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'मदच्युत् पुरुक्षु विश्वधायस्' धन

आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम्। इयर्ता मरुतो दिवः॥ १३॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! आप **दिवः**-ज्ञान के प्रकाशवाले हो। आपकी साधना से ही ज्ञानदीप्ति बढ़ती है। (२) आप **नः**=हमारे लिये **रयिम्**-उस धन को **आ इयर्त**-सर्वथा प्राप्त कराओ जो **मदच्युतम्**=अभिमान को हमारे से दूर रखनेवाला है, **पुरुक्षुम्**=पालक पूरक अन्नोंवाला है तथा **विश्वधायसम्**=सबका धारण करनेवाला है। (२) धन में तीन ही दोष हैं—(क) अभिमान का पैदा हो जाना, (ख) भोगवृत्ति में पड़कर स्वादिष्ठ भोजनों में फँस जाना, (ग) अपनी ही भोग-सामग्री को बढ़ाते हुए धन का अपने सुख के लिये ही व्यय करना। प्राणसाधना के होने पर हम इन तीनों दोषों से बचे रहेंगे। यह साधना हमें धन का मद न होने देगी, हम पालक व पूरक सात्त्विक अन्नों का ही सेवन करेंगे। हम धन का विनियोग लोक हित के कार्यों में करेंगे।

भावार्थ—प्राणसाधना प्रकाश को प्राप्त कराती हुई हमें धन के साथ 'निरभिमानता, भोगों में

अनासक्ति व लोकहित प्रवृत्ति' देती है।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

जितेन्द्रियता-सोमरक्षण-आनन्द

अधीव यद्गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम्। सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः॥ १४॥

(१) हे **शुभ्राः**=हमारे जीवनों को शुभ्र बनानेवाले प्राणो! **यद्**=जब **गिरीणाम्**=इन ज्ञान की वाणियों के अन्दर विचरनेवाले ज्ञानी पुरुषों के जीवन में **अधि इव**=खूब अधिकता से **यामम्**=संयम का **अचिध्वम्**=संचय करते हो, तो **सुवानैः**=उत्पन्न किये जाते हुए इन **इन्दुभिः**=सोमकणों से **मन्दध्वे**=आनन्दित करते हो। (२) प्राणसाधना से इन ज्ञानी पुरुषों का जीवन खूब ही संयमवाला होता है। यह संयम सोमरक्षण का साधन बनता है। सुरक्षित सोम जीवन को 'नीरोग, निर्मल व दीप्त' बनाकर आनन्दमय बनाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से 'जितेन्द्रियता, सोमरक्षण व आनन्द' की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—पादनिचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्राणरक्षण व ज्ञान का मनन

एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः। अदाभ्यस्य मन्मभिः॥ १५॥

(१) **एतावतः**=इतने से, अर्थात् गतमन्त्र के अनुसार क्योंकि ये मरुत् (प्राण) हमें इन सोमकणों के रक्षण के द्वारा आनन्दित करते हैं, इसलिए **एषाम्**=इन प्राणों के **सुम्नम्**=रक्षण को **भिक्षेत**=माँगे। 'प्राणों का रक्षण हमें प्राप्त हो' ऐसी कामना उपासक करे। (२) **अदाभ्यस्य**=उस अहिंसनीय प्रभु के **मन्मभिः**=दिये गये इन ज्ञानों के साथ हम प्राणों के रक्षण की कामना करें। ये प्रभु से दिये जानेवाले ज्ञान हमें प्राप्त हों। और प्राणायाम द्वारा प्राणों की साधना करते हुए हम अपना रक्षण कर पायें। प्राणसाधना से ही शरीर में सोम का रक्षण होगा। उसके रक्षण से ही सब रक्षणों का सम्भव होगा।

भावार्थ—हम प्राणसाधना करें और प्रभु से दिये गये इन ज्ञानों को प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अक्षित उत्स

ये द्रप्साइव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः। उत्सं दुहन्तो अक्षितम्॥ १६॥

(१) **ये**=जो **द्रप्साः इव**=जल-बिन्दुओं के समान **वृष्टिभिः**=शक्तियों के सेचन के द्वारा (जैसे जल-बिन्दु भूमि को सिक्त करते हैं, इसी प्रकार ये रेतःकण (द्रप्स) शक्ति का सेचन करते हैं) **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **अनु धमन्ति**=अनुकूलता से शब्दयुक्त करते हैं अथवा अनुकूलता से निर्मित करते हैं (cast=ढालना)। शरीर में ये रेतःकण शक्ति का निर्माण करते हैं और मस्तिष्क में इनके द्वारा ही ज्ञान का सञ्चार किया जाता है। (२) ये द्रप्स ही, ये शक्तिकण ही **अक्षितम्**=कभी क्षीण न होनेवाले **उत्सम्**=ज्ञान के स्रोत को **दुहन्तः**=हमारे अन्दर पूरित करते हैं। ज्ञानाग्नि का ईंधन ये ही बनते हैं। इनके द्वारा ही बुद्धि सूक्ष्म होकर ज्ञान का ग्रहण करनेवाली बनती है।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा शरीर में सुरक्षित सोमकण हमारे शरीर व मस्तिष्क का अनुकूलता से निर्माण करते हैं और हमारे जीवनों में न क्षीण होनेवाले ज्ञानस्रोत को प्रवाहित करते हैं।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उदु स्वानेभिरीरत उद्रथैरुदु वायुभिः। उत्स्तोमैः पृश्निमातरः॥ १७॥

(१) **पृश्निमातरः**=प्राणसाधना के द्वारा ज्ञानरश्मियों का अपने अन्दर निर्माण करनेवाले लोग **स्वानेभिः**=इन ज्ञान की वाणियों के उच्चारण के द्वारा **उ**=निश्चय से **उदीरते**=उन्नत होते हैं। ये साधक **रथैः**=इन शरीर-रथों से भी **उद्**=ऊपर उठते हैं। इनका ठीक प्रयोग करते हुए जीवन में उन्नत होते हैं। (२) **उ**=और ये साधक **वायुभिः** (वा गतौ) इन गतिशील इन्द्रियाश्वों के द्वारा **उत्** उन्नत होते हैं, वायुसम वेगवाले इन्द्रियाश्व इन्हें आगे और आगे ले चलते हैं। **स्तोमैः**=प्रभु के स्तोत्रों के द्वारा **उत्**=ये उन्नत होते हैं। वस्तुतः प्रभु का स्तवन करते हुए ही ये सब कार्यों को करते हैं। इनके शरीररथ ज्ञान की वाणियों से जुड़े हुए हैं, तो इनकी इन्द्रियों से होनेवाले सब कर्म प्रभु-स्तवनों से।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा (क) हम शरीर-रथों को दृढ़ बनायें, (ख) इन शरीर-रथों को ज्ञान की वाणियों के प्रकाश से युक्त करें, (ग) इन्द्रियाँ हमारी सतत कर्त्तव्यकर्मपरायण हों, (घ) हमारे कर्म प्रभु-स्तवन के साथ चलें।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'तुर्वश, यदु, कण्व, धनस्पृत्'

येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम्। राये सु तस्य धीमहि॥ १८॥

(१) हे मरुतो (प्राणो)! **येन**=जिस मार्ग से आप **तुर्वशम्**=त्वरा से शत्रुओं को वश में करनेवाले, **यदुम्**=यत्नशील मनुष्य को **आव**=रक्षित करते हो। **येन**=जिस मार्ग से **धनस्पृतम्**=धन के देनेवाले **कण्वम्**=मेधावी पुरुष को रक्षित करते हो। हम भी **राये**=ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये **तस्य**=उस उपाय का **सुधीमहि**=सम्यक् धारण करते हैं। (२) वस्तुतः प्राणसाधना ही हमें 'तुर्वश, यदु, कण्व व धनस्पृत्' बनाती है। प्राणसाधना के द्वारा ही हम उस मार्ग पर चलने में भी समर्थ होते हैं जिस पर कि चलकर हम ऐश्वर्यों को प्राप्त करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना करते हुए हम शत्रुओं को वश में करनेवाले, यत्नशील, मेधावी व धन के दाता बनें। ये प्राणसाधना ही हमें धन प्राप्ति की योग्यता प्राप्त कराये।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'सुदानवः' मरुतः

इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः। वर्धान्काण्वस्य मन्मभिः॥ १९॥

(१) ये मरुत् (प्राण) 'सुदानु' हैं, सब उत्तमताओं को देनेवाले हैं, अथवा सब बुराइयों का खण्डन करनेवाले हैं (दाप् लवने)। हे **सुदानवः**=सुदानु प्राणो! **उ**=निश्चय से **इमाः**=ये **वः**=आपकी साधना के द्वारा प्राप्त होनेवाली, **इषः**=प्रेरणा **घृतं न**=ज्ञान की दीप्ति की तरह **पिप्युषीः**=आप्यायित करनेवाली हैं। प्राणसाधना के होने पर बुद्धि की तीव्रता से ज्ञान की वृद्धि होती है और हृदय की पवित्रता से अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा सुनाई पड़ती है। (२) ये ज्ञान दीप्तियाँ व प्रेरणायें **काण्वस्य**=इस मेधावी पुरुष के **मन्मभिः**=स्तोत्रों के साथ **वर्धान्**=वृद्धि को प्राप्त होती हैं। एक समझदार साधक प्रभु का स्तवन करता है और प्राणसाधना के द्वारा अपने ज्ञान को बढ़ाता हुआ प्रभु प्रेरणा को सुननेवाला बनता है।

भावार्थ–प्राण सुदानु हैं, बुराइयों का खण्डन करनेवाले हैं। ये ज्ञानदीप्तिवाला को बढ़ाते हैं, अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा को हमें सुनाते हैं। तथा हमें प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाला बनाते हैं।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'वृक्तबर्हिषः' मरुतः

क्व॑ नू॒नं सु॑दानवो॒ मद॑था वृक्तबर्हिषः। ब्र॒ह्मा को वः॑ सपर्यति॥ २०॥

(१) हे **सुदानवः**=सब उत्तमताओं को देनेवाले प्राणो! आप **नूनम्**=निश्चय से **क्व**=कहाँ, किस स्थिति में हमें **मदथा**=आनन्दित करते हो? तभी तो जब कि आप **वृक्तबर्हिषः**=हमारे हृदय क्षेत्रों से वासना के घास-फूस को उखाड़नेवाले होते हो। हृदयों को निर्मल करके आप आनन्द के देनेवाले होते हो। (२) **कः वः सपर्यति**=कौन आपका पूजन करता है? उत्तर देते हुए कहते हैं कि वस्तुतः वही आपका पूजन करता है जो **ब्रह्मा**=सात्त्विक पुरुषों में भी उत्तम सात्त्विक बनता है, चतुर्वेदवेत्ता होता है, ज्ञान के उच्चतम शिखर पर पहुँचता है।

भावार्थ–प्राणसाधना के दो परिणाम हैं–हृदयक्षेत्र से वासनाओं का उखाड़ा जाना तथा मस्तिष्क का ज्ञानोज्ज्वल होना।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सोम-ऋत के शर्ध

न॒हि ष्म॒ यद्ध॑ वः पु॒रा स्तोमे॑भिर्वृक्तबर्हिषः। शर्धाँ॑ ऋ॒तस्य॒ जिन्व॑थ॥ २१॥

(१) हे **वृक्तबर्हिषः**=हृदयक्षेत्र से वासना के घास-फूस को उखाड़ देनेवाले प्राणो! आप उन **ऋतस्य**=ऋत के, यज्ञ के व सत्य के **शर्धान्**=बलों को **स्तोमेभिः**=स्तुतियों के द्वारा **जिन्वथ**=प्राप्त कराते हो, **यत् ह**–जो निश्चय से **वः पुरा नहि स्म**–आपकी साधना से पूर्व नहीं होते। (२) प्राणसाधना के होने पर हमारे जीवन से असत्य दूर हो जाता है। प्राणापान को 'नासत्या' कहा ही है, 'न असत्या'=जिनके कारण असत्य नहीं रहता। प्राणसाधना से ही स्तुति वृत्ति उत्पन्न होती है। यह असत्य से दूर रहनेवाला स्तोता शत्रुओं को कुचलनेवाले बलों को प्राप्त करता है।

भावार्थ–प्राणसाधना से प्रभु-स्तवन की वृत्ति जागती है तथा सत्य का बल प्राप्त होता है।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

समु॒ त्ये म॑ह॒तीर॒पः सं क्षो॒णी समु॒ सूर्य॑म्। सं वज्रं॑ पर्व॒शो द॑धुः॥ २२॥

(१) **त्ये**=गत मन्त्र के अनुसार प्राणसाधना से 'प्रभु-स्तवन की वृत्ति तथा सत्य के बल को' अपनानेवाले लोग **उ**=निश्चय से **महनीः अपः**=महत्त्वपूर्ण रेतःकणरूप जलों को **संदधुः**=धारण करते हैं। प्राणसाधना ही रेतःकणों के रक्षण का कारण बनती है। रेतःकणों के रक्षण के द्वारा **क्षोणी**=इस शरीररूप पृथिवी को **सम्**=धारण करते हैं **उ**=और **सूर्यम्**=सूर्य को **सम्**=धारण करते हैं। अध्यात्म में यह सूर्य 'ज्ञान का सूर्य' है। इस सूर्य के ये धारण करनेवाले होते हैं। (२) ये लोग इस प्रकार 'रेतःकणों, शरीर तथा ज्ञानसूर्य' को धारण करके **पर्वशः**=एक-एक पर्व में **वज्रं दधुः**=क्रियाशीलतारूप वज्र को धारण करते हैं। इनके सब अंग क्रियाशील होते हैं। ये जीवन को क्रियामय बनाये रखते हैं।

भावार्थ–प्राणसाधना से 'रेतःकणों का रक्षण होकर, शरीर की दृढ़ता, ज्ञानसूर्य का उदय तथा क्रियाशीलता' प्राप्त होती है।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वःङ्क देवता—मरुतःङ्क छन्दः—निचृद्गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

'वृत्र तथा पर्वतों' पर आक्रमण

वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वताँ अराजिनः। चक्राणा वृष्णि पौंस्यम्॥ २३॥

(१) ये मरुत् (प्राण) **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना पर **पर्वशः**=पर्व-पर्व पर **वियुयु**=(या प्रापणे invade) आक्रमण करते हैं। वासना पर आक्रमण करके **अराजिनः**=न चमकनेवाले **पर्वतान्**=अविद्य पर्वतों पर **वि (ययुः)**=आक्रमण करनेवाले होते हैं। प्राणसाधना से वासना विनाश के द्वारा सुरक्षित रेतःकण ज्ञानाग्नि का दीपन करते हैं और अविद्या पर्वत को छिन्न-भिन्न करते हैं। (२) ये मरुत् हमारे जीवनों में **वृष्णि**=सुखों के वर्षण करनेवाले **पौंस्यम्**=बल को **चक्राणाः**=करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से (क) वासना का विनाश होता है, (ख) अविद्या का विध्वंस होता है तथा (ग) बल की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वःङ्क देवता—मरुतःङ्क छन्दः—निचृद्गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

शुष्म-क्रतु (शक्ति-प्रज्ञान)

अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम्। अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये॥ २४॥

(१) **युध्यतः**=वासनाओं से युद्ध करते हुए **त्रितस्य**=मेधा से तीर्णतम (नि० ४।१।६), अर्थात् अत्यन्त मेधावी पुरुष के **शुष्मम्**=शत्रु-शोषक बल को ये प्राण **अनु आवन्**=अनुकूलता से रक्षित करते हैं। **उत**=और **क्रतुम्**=इसके प्रज्ञान का रक्षण करते हैं। (२) **वृत्रतूर्ये**=वासना विनाशवाले संग्राम में ये प्राण **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **अनु**=अनुकूलता से रक्षित करते हैं।

भावार्थ—जिस समय मेधावी पुरुष वासनाओं से युद्ध करता है तो ये प्राण उसके बल व प्रज्ञान का रक्षण करते हैं। इन्द्र इन प्राणों की सहायता से ही वासना का संहार कर पाता है।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वःङ्क देवता—मरुतःङ्क छन्दः—निचृद्गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

शुभ्र जीवन

विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन्हिरण्ययीः। शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये॥ २५॥

(१) 'मरुत्'-प्राण हैं। प्राणसाधना करनेवाले पुरुष भी मरुत् कहलाते हैं। ये मरुत् 'विद्युद् हस्ताः'=विद्युत् से बने हाथोंवाले, अर्थात् शीघ्रता से कार्य करनेवाले, **अभिद्यवः**=सब ओर से दीप्तिवाले, तेजस्वी **शुभ्राः**=निर्मल जीवनवाले होते हैं। इनके मनों में राग-द्वेष आदि का मल नहीं होता। (२) ये प्राणसाधक पुरुष **शीर्षन्**=अपने सिरों पर **हिरण्ययीः**=ज्योतिर्मय **शिप्राः**=शिरस्त्राणों को **व्यञ्जत**=प्रकट करते हैं और **श्रिये**=शोभा के लिये होते हैं। योद्धाओं ने सिरों के रक्षण के लिये शिरस्त्राण (टोपियो) धारण किये होते हैं। इन प्राणसाधकों ने भी मस्तिष्क में ज्ञानरूप शिरस्त्राण को ही मानो स्थापित किया होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से (क) हाथ विद्युत् के समान शीघ्रता से कार्यों को करते हैं, (ख) शरीर सब ओर दीप्तिवाला, तेजस्वी बनता है, (ग) मस्तिष्क में ज्ञानरूप शिरस्त्राण की स्थापना होती है, (घ) इन साधकों के हृदय निर्मल होते हैं।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सूर्य द्वार से आगे बढ़ना

उशना यत्परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन। द्यौर्न चक्रदद्भिया॥ २६॥

(१) **उशनाः**=प्रभु प्राप्ति की कामनावाला व्यक्ति **यत्**=जब **परावतः उक्ष्णः**=उस सुदूर सूर्य के **रन्ध्रम्**=(छिद्र) द्वार को **अयातन**=प्राप्त होता है तो **द्यौः न**=प्रकाशमय जीवनवाला होता हुआ 'विरज' होता हुआ **अभिया**=कहीं पतन न हो जाये इस भय से **चक्रद्**=प्रभु का आह्वान करता है। (२) साधना में उन्नत होता हुआ पुरुष शरीर में सब से निचले 'मूलाधार चक्र' से ऊपर उठता हुआ सब से ऊपर 'सूर्य चक्र' (सहस्रार चक्र) में पहुँचता है तो अद्भुत सिद्धियों को प्राप्त करता है। यहाँ सिद्धियों में फँस जाने का अधिक से अधिक भय होता है। इस भय से यह प्रभु का आह्वान करता है कि हे प्रभो! मैं इन सिद्धियों में आसक्त न होकर आपकी ओर आगे और आगे बढ़ता ही जाऊँ। यदि नहीं फँसता तो अमृत प्रभु को प्राप्त करता ही है।

भावार्थ—हम प्रभु प्राप्ति की प्रबल कामनावाले बनकर प्राणसाधना के द्वारा शरीरस्थ सूर्य द्वार से ऊपर उठें। 'सिद्धियों में न गिर जायें' सो प्रभु का आराधन करें। प्रकाशमय जीवनवाले बनें।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

यज्ञ-वीर्य-ज्योति

आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः। देवास उप गन्तन॥ २७॥

(१) हे **देवासः**=दिव्य गुणों को उत्पन्न करनेवाले प्राणो! आप **नः**=हमारे लिये **मखस्य दावने**=यज्ञों के देने के निमित्त, हमारे में यज्ञिय भावनाओं को जन्म देने के लिये **आ उपगन्तन**=सर्वथा प्राप्त होवो। इस प्राणसाधना के द्वारा ही यज्ञिय भावना का उदय होता है। (२) हे प्राणो! **हिरण्यपाणिभिः**=(हिरण्यं वै वीर्यं, हिरण्यं वै ज्योतिः) वीर्य व ज्योति को, शक्ति व प्रकाश को हाथ में लिये हुए **अश्वैः**=इन्द्रियाश्वों से आप हमें प्राप्त होवो। प्राणसाधना से कर्मेन्द्रियाँ शक्तिशाली बनती हैं और ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञानदीप्त होती हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से यज्ञिय वृत्ति का जन्म होता है। यह साधना हमारी इन्द्रियों को उत्तम बनाती है।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

रोहितः प्रष्टिः

यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः। यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः॥ २८॥

(१) **यद्**=जब **एषाम्**=इन प्राणसाधकों के **रथे**=शरीर-रथ में **पृषतीः**=इन इन्द्रिय मृगों को, इन्द्रियरूप मृगों को वह **रोहितः**=सब दृष्टिकोणों से बढ़ा हुआ **प्रष्टिः**=द्रष्टा प्रभु (अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति) **वहति**=प्राप्त कराता है, अर्थात् प्रभु इनका नियन्ता बनता है, तो ये साधक **शुभ्राः**=शुभ्र जीवनवाले बनकर **यान्ति**=गतिशील होते हैं। **अपः**=रेतःकणरूप जलों को **रिणन्**=अपने अन्दर प्रेरित करते हैं। (२) हमारे इस शरीर-रथ का नियन्ता प्रभु बनें। वह द्रष्टा प्रभु जब हमारे इन इन्द्रिय मृगों के नियन्ता बनते हैं, तो हमारे जीवन में किसी प्रकार की मलिनता नहीं आती। जीवन शुभ्र बन जाता है। उस समय रेतःकणों की ऊर्ध्वगति होकर जीवन 'नीरोग, निर्मल व दीप्त' बनता है।

भावार्थ–प्रभु हमारे इन्द्रिय मृगों के नियन्ता बनें। ऐसा होने पर हमारे जीवन शुभ्र बनेंगे। शक्तिकण शरीर में ही प्रेरित होंगे।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—आर्षोविराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सब चक्रों का ठीक होना

सुषोमे शर्यणावत्यार्जीके पस्त्यावति। ययुर्निचक्रया नरः॥ २९॥

(१) **नरः**–उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोग इस शरीर गृह में **निचक्रया**–नियमित चक्रसमूह से **ययुः**=गति करते हैं। इनका शरीरों में मूलाधार चक्र से सहस्रार चक्र तक सब आठों चक्र अपना-अपना कार्य ठीक रूप से करते हैं प्राणसाधना ही इन चक्रों की गति को ठीक रखती है। (२) 'कैसे शरीर गृह में ये गति करते हैं?' इसको स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि **सुषोमे**=(सु-सोमे) उत्तम सोमवाले। प्राणसाधना से वीर्य शुद्ध बना रहता है, इसकी ऊर्ध्वगति होती है। **शर्यणावति**= संहारवाले, इस शरीर गृह में रोगकृमियों के वासनाओं का संहार हो जाता है। **आर्जीके**=जिस शरीर गृह में शक्ति का खूब उपार्जन हुआ है। **पस्त्यावति**–जिस शरीर गृह में सब पस्त्य (cells) उत्तम होते हैं।

भावार्थ–शरीर वही अच्छा है जिसमें सोम का रक्षण हो, रोगकृमि व वासनाओं का संहार हो, शक्ति का उपार्जन हो तथा सब घटक (cells) ठीक हो। इसमें आठों चक्रों की गति ठीक हो।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्राणसाधक की आतुरता

कुदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम्। मार्डीकेभिर्नाधमानम्॥ ३०॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! आप **इत्था**=सत्यरूप में **हवमानम्**=पुकारते हुए **विप्रम्**=इस अपने पूरण करनेवाले पुरुष को **कदा**=कब **गच्छाथ**=प्राप्त होते हो। (२) **मार्डीकेभिः**=उस (मृडीकस्य शिवस्य इमानि) आनन्दमय प्रभु के नामों से **नाधमानम्**=याचना करते हुए इस विप्र को आप कब प्राप्त होवोगे? प्राणसाधना करते हुए प्रभु के नामों का उच्चारण साधना में सहायक हो जाता है।

भावार्थ–प्राणसाधना करता हुआ पुरुष प्रभु के नामों का उच्चारण करे तथा उसे साधना के लिये एक आतुरता-सी हो।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रभु की ओर ही चलना

कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन। को वः सखित्व ओहते॥ ३१॥

(१) हे **कधप्रियः**=प्रभु-स्तवन के प्रिय पुरुषो! **यत्**–जब **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की ओर **अजहातन**=तुम चलते हो (हा गतौ), तो **नूनम्**=निश्चय से यह गमन **कत् ह**=(कं तनोति इति कत्) आनन्द का विस्तार करनेवाला होता है। (२) **कः**=वह आनन्दमय प्रभु ही **वः सखित्वे**=तुम्हारी मित्रता में **ओहते**=प्राप्त हो जाता है। उस आनन्दस्वरूप के प्राप्त होने पर आनन्द ही आनन्द हो जाता है।

भावार्थ–प्रभु-स्तवन करते हुए हम प्रभु की ओर चलें, हम प्रभु के मित्र बन पायें।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

वज्रहस्तैः हिरण्यवाशीभिः

स॒हो षु ण॒ो व॒ज्रह॑स्तैः॒ कण्वा॑सो अ॒ग्निं म॒रुद्भिः॑। स्तु॒षे हिर॑ण्यवाशीभिः॥ ३२॥

(१) **नः**=हमारे में **कणवासः**=जो भी मेधावी पुरुष हैं, वे **अग्नि सु स्तुषे**=उस अग्रेणी प्रभु का उत्तमता से स्तवन करनेवाले होते हों। (२) इस स्तवन को वे **मरुद्भिः सह**=इन प्राणों के साथ ही करते हैं। प्राणसाधना करते हुए वे प्रभु-नामोच्चारण करते हैं। ये प्राण **वज्रहस्तैः**=क्रियाशीलतारूप वज्र को हाथ में लिये हुए हैं, तथा **हिरण्यवाशीभिः**=हितरमणीय ज्योतिर्मयी वाणीवाले हैं। प्राणसाधना के द्वारा शक्ति का वर्धन होकर यह साधक क्रियाशील बनता है तथा ज्ञानाग्नि की दीप्ति से सदा हितरमणीय वाणी का ही उच्चारण करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना के साथ हम प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त हों। इससे हमारे हाथ उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होंगे तथा वाणी सदा हितरमणीय वचनों का उच्चारण करनेवाली होगी।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—आर्षीविराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

वृष्णः, प्रयज्यून्, चित्रवाजान्

ओ षु वृष्णः॒ प्रय॑ज्यू॒ना नव्य॑से सुवि॒ताय॑। व॒वृ॒ताय। व॒वृत्यां॒ चि॒त्रवा॑जान्॥ ३३॥

(१) मैं **वृष्णः**=शक्ति का सेचन करनेवाले, **प्रयज्यून्**=प्रकृष्ट कर्मों में संगत होनेवाले व हमें निकृष्ट वस्तुओं से संगत करनेवाले, **चित्रवाजान्**=अद्भुत बलोंवाले प्राणों को **उ**=निश्चय से **सु**=अच्छी प्रकार आप **वृत्याम्**=अपनी ओर आवृत्त करें। (२) मैं इन प्राणों को अपने जीवन में इसलिए आवृत्त करूँ कि **आनव्यसे सुविताय**=सर्वथा स्तुत्य सुवित के लिये मैं होऊँ। अर्थात् मैं स्तुत्य सुमार्ग पर ही चलनेवाला बनूँ।

भावार्थ—प्राण हमारे में शक्ति का सेचन करते हैं, उत्तम बातों की ओर हमें प्रेरित करते हैं, अद्भुत शक्तियों को प्राप्त कराते हैं। प्राणसाधना से हम सदा स्तुत्य सुमार्ग पर (आक्रमण करते हैं) चलते हैं।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

गिरयः, पर्शानासः, मन्यमानाः, पर्वताः

गि॒रय॑श्चि॒न्नि जि॑हते॒ पर्शा॑नासो॒ मन्य॑मानाः। पर्व॑ताश्चि॒न्नि ये॑मिरे॥ ३४॥

(१) **गिरयः**=(गृणाति) प्रभु के नामों का उच्चारण करनेवाले ये उपासक **चित्**=निश्चय से **निजिहते**=नम्रता से गतिवाले होते हैं। **पर्शानासः**=सदा ज्ञानवाणियों के सम्पर्कवाले होते हैं। **मन्यमानाः**=प्रभु का चिन्तन करनेवाले होते हैं। (२) **पर्वताः**=(पर्व पूरणे) ये अपना पूरण करनेवाले, न्यूनताओं को दूर करनेवाले, व्यक्ति **चित्**=निश्चय से **नियेमिरे**=नियमित जीवनवाले होते हैं। ये इन्द्रियों व मन का नियमन करके कार्यों में प्रवृत्त होते हैं।

भावार्थ—हम प्राणसाधना द्वारा 'ज्ञान, प्रभु सम्पर्क, मनन व पूरण' को प्राप्त हों। जीवन में इन्द्रियों का नियमन करते हुए नम्रता से चलें।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

योगसाधना व युक्ताहार-विहारता

आक्ष्ण॒यावा॑नो वहन्त्य॒न्तरि॑क्षेण॒ पत॑तः। धाता॑रः स्तुव॒ते वयः॑॥ ३५॥

(१) ये प्राण **स्तुवते**–स्तुति करनेवाले के लिये **वयः**–उत्कृष्ट जीवन को **आवहन्ति**=प्राप्त कराते हैं। जो प्रभु-स्मरणपूर्वक इस प्राणसाधना में प्रवृत्त होता है, वह नीरोग, निर्मल व तीव्र बुद्धियुक्त जीवन को प्राप्त करता है। (२) ये प्राण **आक्ष्णयावानः**–(अक्ष्ण) अखण्ड गतिवाले हैं। और **अन्तरिक्षेण**=मध्य मार्ग से **पततः**=चलते हुए पुरुष का **धातारः**–धारण करनेवाले हैं। प्राणसाधना के साथ युक्ताहार विहारवाला होना आवश्यक है।

भावार्थ–प्राण निरन्तर चल रहे हैं। ये युक्ताहार विहार पुरुष के लिये उत्कृष्ट जीवन को धारित करते हैं। स्तोता के लिये उत्कृष्ट जीवन को देते हैं।

ऋषिः—पुनर्वत्सः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पूर्व्यः छन्दः

अ॒ग्निर्हि जानि॑ पू॒र्व्यश्छन्दो॒ न सूरो॑ अ॒र्चिषा॑। ते भा॒नुभि॒र्वि त॑स्थिरे॥ ३६ ॥

(१) **अग्निः**=यह अग्रेणी प्रभु **हि**–निश्चय से **जानि**–हमारे हृदयों में प्रादुर्भूत होता है। **पूर्व्यः**= यह सृष्टि से पहले होनेवाला है। **छन्दः**–(छादयिता) उपासक का रक्षण करनेवाला है। **अर्चिषा**=अपनी दीप्ति से **सूरः न**–सूर्य के समान है। (२) **ते**=वे प्राणसाधना द्वारा हृदयों में इस प्रभु का दर्शन करनेवाले लोग **भानुभिः**=ज्ञानदीप्तियों के साथ **तिस्थिरे**–विशेषरूप से स्थित होते हैं। ये प्रकाशमय जीवनवाले बनते हैं।

भावार्थ–प्राणसाधना से हृदयों में प्रभु का प्रकाश होता है। इस प्रभु-प्रेरणा से हृदय जगमगा उठता है।

इस प्रभु के प्रादुर्भाव से ये उपासक 'सध्वंस'=वासनाओं के ध्वंस करनेवाले होते हैं। ये मेधावी 'काण्व' तो हैं ही। ये 'अश्विनौ'=प्राणापान का आराधन करते हुए कहते हैं–

८. [अष्टमं सूक्तम्]

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

दस्त्रा हिरण्यवर्तनी

आ नो॒ विश्वा॑भिरू॒तिभि॒रश्वि॑ना गच्छ॑तं युवम्। दस्रा॒ हिर॑ण्यवर्तनी॒ पिब॑तं सो॒म्यं मधु॥ १ ॥

(१) हे **अश्विना**–प्राणापानो! **युवम्**=आप **नः**=हमें **आगच्छतम्**=प्राप्त होवो। **विश्वाभिः ऊतिभिः**=सब रक्षणों के साथ आप हमें प्राप्त होवो। ये प्राणापान शरीर को रोगों से बचाते हैं, तो मन को मलों से, वासनाओं से बचाते हैं और बुद्धि को मलिन न होने देकर दीप्त बनाते हैं। (२) हे प्राणापानो! आप **दस्त्रा**=सब मलों का उपक्षय करनेवाले हो। **हिरण्यवर्तनी**=हितरमणीय व ज्योतिर्मय मार्गवाले हो। आपकी आराधना करनेवाला कभी मलिन मार्ग का आक्रमण नहीं करता। आप **सोम्यं मधु**=सोम सम्बन्धी मधु का, सोमरूप सारभूत वस्तु का, **पिबतम्**=पान करो। यह सुरक्षित सोम ही शरीर को नीरोग तथा बुद्धि को दीप्त बनाता है।

भावार्थ–प्राणापान सब प्रकार का रक्षण प्राप्त कराते हैं। ये मलों का उपक्षय करके हमें ज्योतिर्मय मार्ग से ले चलते हैं। शरीर में सोम का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

कवी गम्भीरचेतसा

आ नू॒नं या॑तमश्विना॒ रथे॑न॒ सूर्य॑त्वचा। भु॒जी हिर॑ण्यपेशसा॒ कवी॒ गम्भी॑रचेतसा॥ २ ॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **नूनम्**=निश्चय से **सूर्यत्वचा रथेन**=सूर्य के समान कान्तियुक्त आवरणवाले, अर्थात् तेजस्वी **रथेन**=शरीर-रथ से **आयातम्**=हमें प्राप्त होवो। प्राणसाधना इस शरीर को सूर्यसम तेजस्वी बनाये। (२) ये प्राणापान **भुजी**=हमारा पालन करनेवाले हैं (शरीर)। **हिरण्यपेशसा**=ज्योतिर्मयरूपवाले हैं। **कवी**=हमें क्रान्तदर्शी, तीव्र बुद्धिवाला बनाते हैं। तथा **गम्भीरचेतसा**=गम्भीर चित्तवाले हैं। प्राणसाधक पुरुष चित्त की गम्भीरता को प्राप्त करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर तेजस्वी होता है। ये प्राण हमारा पालन करते हैं, 'ज्योति, बुद्धि व गम्भीर चित्त' को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

दोष-वर्जन

आ यातं नहुषस्पर्यान्तरिक्षात्सुवृक्तिभिः। पिबाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतम्॥ ३॥

(१) **नहुषः**=(नह बन्धने) औरों के साथ अपने को बाँधकर चलनेवाले इस निःस्वार्थ मनुष्य के **अन्तरिक्षात् परि**=हृदयान्तरिक्ष से (परिः पञ्चम्यर्थानुवादी) **सुवृक्तिभिः**=सुष्ठु दोष वर्जन के हेतु से **आयातम्**=आप प्राप्त होवो। प्राणसाधना के द्वारा ही हृदय दोषों से शून्य बनता है। (२) इस दोष शून्यता के होने पर हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **कण्वानाम्**=इन मेधावी पुरुषों के **सवने**=जीवनयज्ञ में **सुतम्**=उत्पन्न इस **मधु**=ओषधियों के सारभूत सोम को **पिबाथः**=शरीर में ही पीनेवाले होवो। शरीर में व्याप्त सोम ही सब दोषों के दूरीकरण का साधन बनता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से हृदयान्तरिक्ष से सब वासना दोषों का निराकरण हो जाता है। शरीर में प्राण ही सोम को सुरक्षित करते हैं।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—आर्षीविराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

सोम्य मधु का पान

आ नो यातं दिवस्पर्यान्तरिक्षादधप्रिया। पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु॥ ४॥

(१) हे **अधप्रिया**=(कधप्रिया) प्रभु-स्तवन के प्रति प्रीति को उत्पन्न करनेवाले प्राणापानो! **नः**=हमें **दिवः परि आयातम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक के हेतु से **आयातम्**=प्राप्त होवो। **अन्तरिक्षात् आ (यातम्)**=हृदयान्तरिक्ष के हेतु से प्राप्त होवो। आप ही हमारे मस्तिष्करूप द्युलोक को दीप्त बनाते हो और आप ही हृदयान्तरिक्ष को पवित्र करते हो। (२) **कण्वस्य पुत्रः**=मेधावी का पुत्र, अर्थात् अत्यन्त मेधावी पुरुष **इह**=इस जीवन में **वाम्**=आपके लिये इस **सोम्यं मधु**=सोम सम्बन्धी सारभूत वस्तु को **सुषाव**=उत्पन्न करता है। प्राणसाधना द्वारा ही शरीर में इस मधु के पान का सम्भव होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना मस्तिष्क को दीप्त बनाती है, हृदय को निर्मल करती है, शरीर में सोम का रक्षण करती है।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

ज्ञान-स्तवन व कर्म

आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये। स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा॥ ५॥

(१) ('श्रूयते इति श्रुत्, उपगता श्रुत् यस्मिन्') हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **उपश्रुति**=इस ज्ञानयज्ञ में **नः**=हमें **आयातम्**=प्राप्त होवो। आप **सोमपीतये**=सोम के पान के लिये होवो। आप

के द्वारा सोम (वीर्य) शरीर में ही व्याप्त किया जाये। (२) हे प्राणापानो! आप **स्वाहा**=(सु आ हा) सम्यक् समन्तात् दोषों का वर्जन करनेवाले हो। **स्तोमस्य वर्धना**=स्तुति समूह का हमारे में वर्धन करनेवाले हो। **कवी**-हमें क्रान्तदर्शी बनाते हो। **प्रधीतिभिः**=प्रकृष्ट कर्मों के द्वारा **नरा**-हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले हो।

भावार्थ-प्राणसाधना से 'ज्ञान-स्तवन व उत्तम कर्मों' का वर्धन होता है।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

प्रभु-स्तवन व रक्षण

यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा। आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम॥ ६॥

(१) हे **नरा**-उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणापानो! **यत् चित् हि**=जब ही **ऋषयः**=ये तत्त्वद्रष्टा गतिशील पुरुष **वाम्**=आपको **पुरः**-सब से पहले **अवसे**=रक्षा के लिये **जुहूरे**=पुकारते हैं, तो आप **आयातम्**=आते हो। (२) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **मम**=मेरी **इमां सुष्ठुतिम्**=इस उत्तम स्तुति को **आगतम्**=प्राप्त होवो। मैं आपका उत्तम स्तवन करनेवाला बनूँ। प्राणों का उत्तम स्तवन 'प्राणायाम' ही है। प्राणायाम के होने पर प्रभु-स्तवन की वृत्ति उत्पन्न होती है। ये प्राण रोग आदि से हमारा रक्षण करते हैं।

भावार्थ-प्राणसाधना हमें प्रभु-स्तवन की ओर प्रवृत्त करती है और रोग आदि से हमारा रक्षण करती है।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—आर्षीविराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

स्वर्विदा-हवनश्रुता

दिवश्चिद्रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा। धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता॥ ७॥

(१) हे **स्वर्विदा**=प्रकाश को प्राप्त करानेवाले प्राणापानो! **दिवः चित्**-मस्तिष्करूप द्युलोक के दृष्टिकोण से तथा **रोचनात् अधि**=वासनामल से रहित अतएव चमकते हुए हृदयान्तरिक्ष के दृष्टिकोण से **नः आगन्तम्**=हमें प्राप्त होवो। प्राणसाधना के द्वारा हमारा मस्तिष्क व हृदय दोनों ही उत्तम बनें। (२) हे प्राणापानो! आप **धीभिः**=बुद्धियों के द्वारा **वत्सप्रचेतसा**=अपने प्रिय आराधक को प्रकृष्ट ज्ञानवाला बनाते हो। और **स्तोमेभिः**=स्तुतियों के द्वारा **हवनश्रुता**=प्रभु की पुकार को सुननेवाले होते हो। प्राणसाधना से मस्तिष्क ज्ञान परिपूर्ण बनता है तथा प्रभु-स्तवन करते हुए हम हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुन पाते हैं।

भावार्थ-प्राणसाधना से प्रकाश प्राप्त होता है। मस्तिष्क व हृदय दोनों निर्मल हो जाते हैं। मस्तिष्क ज्ञानदीप्ति से चमक उठता है तो पवित्र हृदय में प्रभु की प्रेरणा पड़ती है।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—आर्षीविराड्नुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

दिव्य गुण विकास व ज्ञान का वर्धन

किमन्ये पर्यासतेऽस्मत्स्तोमेभिरश्विना। पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत्॥ ८॥

(१) **अश्विना**=हे प्राणापानो! **अस्मत् स्तोमेभिः**-हमारी इन स्तुतियों के द्वारा **किम्**=क्या ही **अन्ये**=विलक्षण दिव्यगुण **पर्यासते**=हमारे में चारों ओर स्थित होते हैं। प्रभु-स्तवन के साथ प्राणसाधना के होने पर हमारा जीवन दिव्य गुणों से युक्त बनता है। (२) इसीलिए यह **कण्वस्य पुत्रः**=मेधावी का पुत्र अत्यन्त मेधावी, **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा, **वत्सः**=(वदति) ज्ञान की वाणियों का

उच्चारण करनेवाला पुरुष **गीर्भिः**=इन ज्ञान वाणियों के हेतु से **वां अवीवृधत्**=आपका वर्धन करता है।

भावार्थ–प्राणसाधना से जीवन में अद्भुत दिव्यगुणों का विकास होता है तथा ज्ञान का वर्धन होता है।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

अरि प्रा वृत्रहन्तमा

आ वां विप्र इहावसेऽ ह्वत्स्तोमेभिरश्विना। अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा॥ ९॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **विप्रः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाला व्यक्ति **इह**=यहाँ **अवसे**=रक्षण के लिये **स्तोमेभिः**=स्तुतियों के द्वारा **वाम्**=आप दोनों को **आ अह्वत्**=सर्वथा पुकारता है। आपकी आराधना ही उसे रोगों व वासनाओं से अपना रक्षण करने में समर्थ करती है, आपकी आराधना से ही वह अपना पूरण कर पाता है। (२) **अरि प्रा**=आप दोषरहित हो, दोषों को दूर करनेवाले हो। **वृत्रहन्तमा**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को अधिक से अधिक नष्ट करनेवाले हो। **ता**–वे आप दोनों **नः**–हमारे लिये **मयोभुवा**=कल्याण को उत्पन्न करनेवाले **भूतम्**=होइये।

भावार्थ–प्राणसाधना ही जीवन में हमें रोगों व वासनाओं के आक्रमण से बचाती है। ये प्राणापान हमारे जीवनों को निर्दोष वासनाशून्य व कल्याणमय बनाते हैं।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—आर्षीविराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

योषणा का अश्विनी देवों के रथ पर अधिष्ठान

आ यद्वां योषणा रथमतिष्ठद्वाजिनीवसू। विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम्॥ १०॥

(१) हे **वाजिनीवसू**=शक्ति व ज्ञानरूप धनवाले प्राणापानो! **यद्**=जब **वाम्**=आपकी साधनावाले **रथम्**=इस शरीर–रथ पर **योषणा**=सब बुराइयों का अमिश्रण व अच्छाइयों का मिश्रण करनेवाली यह वेदवाणी (सूर्या) **आतिष्ठतः**=अधिष्ठित होती है। तो हे **अश्विना**=प्राणापानो! **युवम्**=आप **विश्वानि**=सब **धीतानि**=अभिलषितों को **प्र अगच्छतम्**=प्राप्त हो जाते हो। (२) प्राणसाधना से ज्ञानदीप्ति होने के कारण यह शरीर–रथ 'सूर्या' (बुद्धि का प्रकाश) का अधिष्ठान बनता है। उस समय कोई अभिलषित वस्तु अप्राप्य नहीं रहती।

भावार्थ–प्राणसाधना से ज्ञान की दीप्ति होती है और सब अभिलषित पूर्ण होते हैं।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—आर्षीविराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

माधुर्ययुक्त वचन का शंसन

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना। वत्सो वां मधुमद्वचोऽशंसीत्काव्यः कविः॥ ११॥

(१) **अतः**=गत मन्त्र के अनुसार इस प्राणसाधना से सब अभिलषित पूर्ण होते हैं, सो **सहस्रनिर्णिजा**=हजारों प्रकार से शुद्ध बने इस **रथेन**=शरीर–रथ से **आयातम्**=आप हमें प्राप्त होवो। (२) हे **अश्विना**=प्राणापानो! वत्सः=ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाला **काव्यम्**=(काव्यं अस्त्र अस्ति) प्रभु के अजरामर वेद काव्य को अपनानेवाला **कविः**=क्रान्तप्रज्ञ स्तोता **वाम्**=आपके प्रति **मधुमत् वचः**=माधुर्ययुक्त वचन का **अशंसीत्**=शासन करता है। वस्तुतः प्राणसाधना करनेवाला कटुवचनों का कभी प्रयोग नहीं करता।

भावार्थ–प्राणसाधना से शरीर-रथ सब प्रकार से परिशुद्ध बनता है। ज्ञान वृद्धि व वाणी का माधुर्य प्राप्त होता है।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

पुरुमन्द्रा पुरूवसू

पुरुमन्द्रा पुरूवसू मनोतरा रयीणाम्। स्तोमं मे अश्विनाविममभि वह्नी अनूषाताम्॥ १२॥

(१) ये **अश्विनौ**=प्राणापानो **पुरुमन्द्रा**=खूब ही आह्लादित करनेवाले हैं। **पुरूवसू** पालक व पूरक धनों को प्राप्त करानेवाले हैं। **रयीणाम्**-सब ऐश्वर्यों के मनोतरा (मन्तारौ दातारौ सा०)-देनेवाले हैं। (२) ये **अश्विनौ**-प्राणापान **वह्नी**-मुझे लक्ष्य-स्थान पर पहुँचानेवाले हैं। ये **मे**-मेरे **इमं सोमम्**-इस स्तोम को **अभि अनूषाताम्**=प्रातः-सायं उच्चारित करायें। हम प्राणसाधना करते हुए प्रातः-सायं प्रभु स्तवन की वृत्तिवाले बनें।

भावार्थ–प्राणसाधना हमें 'आनन्द, वसु व रयि' को प्राप्त कराती है। ये हमें स्तुति की वृत्तिवाला बनाती है और हमें लक्ष्य-स्थान की ओर ले चलती है।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—आर्षीविराड्नुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

उत्तम धन, समय पर अनिन्दित कर्म

आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया। कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे॥ १३॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **नः**-हमारे लिये **विश्वानि**=सब **अह्रया**=(अलज्जाहेतूनि) अलज्जा कर **राधांसि**=धनों को **आधत्तम्**-धारण करो। अर्थात् प्राणसाधना करते हुए हम इस प्रकार उत्तम उपायों से धनों का अर्जन करें कि हमें किसी प्रकार से लज्जित न होना पड़े, शुद्ध ही मार्गों से हम धनार्जन करें। (२) हे प्राणापानो! आप **नः**=हमें **ऋत्वियावतः**=(ऋतौ भवं ऋत्वियं) ऋतु पर कर्म करनेवाला **कृतम्**=बनाओ। हम सब कार्य समय पर करें। **नः**=हमें **निदे**=निन्दात्मक कर्म के लिये **मा रीरधतम्**=मत सिद्ध करो। हम इस प्रकार इन्द्रियों के पराधीन न हो जायें कि निन्दनीय कर्मों में प्रवृत्त हो जायें।

भावार्थ–प्राणसाधना करते हुए हम (१) उत्तम कर्मों से धनार्जन करें, (२) सब कर्मों को ऋतु के अनुसार समय पर करनेवाले बनें, (३) निन्दात्मक कर्मों में प्रवृत्त न हों।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

(सुदूर में व समीप में) रेचक व पूरक (प्राणायाम)

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अध्यम्बरे। अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना॥ १४॥

(१) हे **नासत्या**=(न+असत्या) हमारे जीवनों से असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! **यत्**-जब **परावति**=सुदूर देश में **स्थः**=तुम होते हो, अर्थात् 'रेचक' प्राणायाम में जब शरीर से तुम्हारी स्थिति दूर होती है। **यद्वा**=या जब **अम्बरे अधि**=यहाँ समीप ही (अन्तिके सा०) हृदयदेश में होते हैं, 'पूरक' के समय जब हृदय में ही आपका परिपूरण होता है। तो **अतः**=इस रेचक व पूरक प्रक्रिया के द्वारा आप इस शरीर-रथ को **सहस्रनिर्णिजा**=हजारों प्रकार से शुद्ध कर डालते हो। (२) इस **सहस्रनिर्णिक् रथेन**-शरीर रथ से हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **आयातम्**=हमें प्राप्त होवो। पूरक प्राणायाम में शुद्ध वायु को फेफड़ों में भरकर, हम रेचक में अशुद्ध वायु को बाहिर फेंकने की करते हैं। इस प्रकार शरीर का शोधन होता चलता है।

भावार्थ—रेचक व पूरक प्राणायाम के द्वारा हम इस शरीर-रथ को सर्वथा शुद्ध बनायें।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

सहस्त्रनिर्णिजं-घृतश्चुतम्

यो वां नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत्। तस्मै सहस्त्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्चुतम्॥ १५॥

(१) हे **नासत्यो**=सब असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! **यः**=जो **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा **वत्सः**=वेदवाणियों का उच्चारण करनेवाला पुरुष **गीर्भिः**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुतिवाणियों के द्वारा **वाम्**=आपका **अवीवृधत्**=वर्धन करते हैं। **तस्मै**=उसके लिये आप **इषम्**=प्रभु की उस प्रेरणा का **धत्तम्**=धारण करते हो, जो **सहस्त्रनिर्णिजम्**=हजारों प्रकार से हमारा शोधन करनेवाली है तथा **घृतश्चुतम्**=ज्ञानदीप्ति को हमारे में क्षरित करनेवाली है। (२) जब एक व्यक्ति प्राणसाधना द्वारा अपने हृदय को शुद्ध करता है, तो वहाँ हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा सुनाई पड़ती है। यह प्रेरणा हमारे जीवनों का शोधन करती है (सहस्त्रनिर्णिजम्) और हमारे ज्ञान को बढ़ाती है।

भावार्थ—हम प्राणसाधना द्वारा शुद्ध हुए-हुए हृदय में प्रभु प्रेरणा को सुनें। यह प्रेरणा हमारे जीवन का शोधन करती है और हमारे ज्ञान को बढ़ाती है।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

बल-प्राण-ज्ञान

प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुतमश्विना यच्छतं युवम्। यो वां सुम्नाय तुष्टवद्वसूयाद्दानुनस्पती॥ १६॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **युवम्**=आप **अस्मै**=इस साधक के लिये **घृतश्चुतम्**=ज्ञान को क्षरित करनेवाले **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को **प्रयच्छतम्**=दो। अर्थात् आपका साधक शरीर में बल को, प्राणशक्ति को तथा ज्ञान को प्राप्त करे। (२) **यः**=जो **वाम्**=आपका **तुष्टवत्**=स्तवन करे, वह **सुम्नाय**=आप से दिये गये रक्षण को प्राप्त करे। हे **दानुनस्पती**=सब दानों के स्वामी प्राणापानो! वही **वसूयात्**=वसुओं को प्राप्त करने की कामनावाला हो।

भावार्थ—प्राणसाधना से 'बल-प्राणशक्ति-ज्ञान' प्राप्त होता है। ये प्राण हमारे लिये रक्षक बनते हैं और सब वसुओं को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—आर्षीविराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

रिशादसा-पुरुभुजा

आ नो गन्तं रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा। कृतं नः सुश्रियो नरेमा दातमभिष्टये॥ १७॥

(१) हे **रिशादसा**=हमारे हिंसक काम-क्रोध आदि शत्रुओं को खा जानेवाले प्राणापानो! **नः**=हमारे **इमम्**=इस **स्तोमम्**=स्तुति समूह को **आगन्तम्**=आप प्राप्त होवो। आप **पुरुभुता**=बहुतों के पालन व पोषण करनेवाले हो। हमारा पालन, पूरण व रोगों से रक्षण करनेवाले हो। (२) हे **नरा**=हमें उन्नति-पथ पर ले चलनेवाले प्राणापानो! आप **नः**=हमें **सुश्रियः**=उत्तम श्रीवाला **कृतम्**=करिये। **इमा**=इन सब वसुओं को **अभिष्टये**=अभि प्राप्ति के लिये, अभीष्ट सुख की प्राप्ति के लिये **दातम्**=दीजिये।

भावार्थ—प्राणापान शत्रुओं का हिंसन करनेवाले हैं, हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं। हमें ये उत्तम श्रीवाला बनाते हैं। ये हमें सब इष्टों को प्राप्त करायें।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

'यज्ञों के रक्षक' प्राणापान

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत। राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु॥ १८॥

(१) हे प्राणापानो! **प्रियमेधाः**=यज्ञप्रिय लोग **विश्वाभिः ऊतिभिः**=सब रक्षणों के हेतु से **वाम्**=आपको **आ अहूषत**=सर्वथा पुकारते हैं। प्राणापान ने ही रक्षण का कार्य करना है। इनसे रक्षित होने पर ही सब यज्ञ चलते हैं। (२) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **यामहूतिषु**-(यामः=संयमः) संयम की पुकारोंवाले यज्ञों में **अध्वराणां राजन्तौ**=सब हिंसारहित कर्मों में आप ही दीप्त होते हो। प्राणसाधना से ही हम इन्द्रियों व मन का संयम कर पाते हैं। तभी हमारे जीवन में सब अध्वरों का प्रवर्तन होता है।

भावार्थ-प्राणापान ही हमारे सब यज्ञों का रक्षण करते हैं। यह साधना ही हमें संयमी बनाती है।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

मयोभुवा-शम्भुवा

आ नो गन्तं मयोभुवाश्विना शंभुवा युवम्। यो वां विपन्यू धीतिभिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत्॥ १९॥

(१) हे **मयोभुवा**-(मयसः=सुखस्य भावयितारौ) सुख के उत्पन्न करनेवाले **अश्विना**=प्राणापानो! **नः**-हमें आगन्तम्=प्राप्त होइये। **युवम्**-आप **शम्भुवा**=सब रोगों के शमन को उत्पन्न करनेवाले हो। (२) हे **विपन्यू**-विशेषरूप से स्तुति के योग्य प्राणापानो! **यः**=जो **वत्सः**=वेदवाणियों का उच्चारण करनेवाला यह ज्ञानी पुरुष है, वह **धीतिभिः**=उत्तम यज्ञादि क्रियाओं से तथा **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों से **वां अवीवृधत्**-आपका वर्धन करता है।

भावार्थ-प्राणसाधक को चाहिये कि यह यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त रहे, स्वाध्याय को अपनाये (धीतिभिः, गीर्भिः)। इस प्रकार प्राण उसे सुखी व नीरोग बनायेंगे।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

'कण्व मेधातिथि वशदशव्रज गोशर्य'

याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम्। याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा॥ २०॥

(१) हे उत्तम स्त्री पुरुषो, सेनापति-सभापति आदि जनो! आप लोग **याभिः**=जिन उपायों से **कण्वं**=विद्वान् **मेधातिथिम् अवतम्**=अन्नादि सत्कार योग्य अतिथि की रक्षा करते और **याभिः**-जिन क्रियाओं से **दश-व्रजम्**=दशों दिशाओं में जानेवाले मार्गों से युक्त **वशं**-वश करने योग्य राष्ट्रजन या मन आदि को वश करते हो, और **याभिः**-जिन सैन्यादि से **गो-शर्यम्**='गो' अर्थात् धनुष की डोरी और 'शर' बाण इनके चलाने में कुशल सैन्य व गो-भूमि के हिंसक, कृषकादि की **आवतम्**=रक्षा करते **ताभिः**=उनसे ही हे **नरा**=नायक पुरुषो! **नः अवतम्**=हमारी रक्षा करो।

भावार्थ-हे देवो! तुमने जिन सुरक्षा के साधनों से उत्तम मेधावाले ज्ञानी के पशुओं की रक्षा की थी, उन्हीं साधनों से हमारी भी रक्षा करो।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराडार्ष्यनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

त्रसदस्युमावतम्

याभिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्व्ये धने। ताभिः ष्व१स्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये॥ २१॥

याभिः=जिन उपायों से **धने कृत्व्ये**=धन की रक्षा के लिये **त्रसदस्युम्**=रक्षक रखते हो, **ताभिः**=उनसे हे **अश्विना**=राष्ट्राध्यक्षो **वाजसातये**=अन्नादि के लाभ के लिए **अस्मान्**=हमारी **सु प्र**=अच्छी प्रकार **अवतम्**=रक्षा कीजिए।

भावार्थ—राज्याधिकारी अपने धन के समान प्रजाधन की भी रक्षा करें।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

पुरुस्पृहा

प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना। पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा॥ २२॥

हे **अश्विना**=प्राणापानो! **स्तोमाः**=स्तुति योग्य कार्य **सुवृक्तयः**=उत्तम **गिरः**=वाणियों **वाम्**=आप दोनों को **प्र वर्धन्तु**=खूब बढ़ावें। **ता**=वे **पुरुत्रा**=बहुतों के रक्षक **वृत्रहन्तमा**=पापनाशक **नः**=हमारे **पुरुस्पृहा**=बहुतों के प्रेमपात्र **भूतम्**=होवो।

भावार्थ—प्राणापान हमारे श्रेष्ठ कार्यों तथा श्रेष्ठ वाणियों को बढ़ावें, जिससे हम सर्वप्रिय बनें।

ऋषिः—सध्वंसः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—आर्षीविराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

त्रीणि पदानि

त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सान्ति गुहा परः। कवी ऋतस्य पत्मभिरर्वाग्जीवेभ्यस्परि॥ २३॥

त्रीणि पदानि=तीन स्थान **अश्विनोः**=प्राणापान की **गुहा**=बुद्धि में **परः**=उत्तम **आविः सान्ति**=प्रकट होते हैं। **ऋतस्य**=सत्य ज्ञान के **पत्मभिः**=तीनों पदों से **अर्वाक्**=साक्षात् **कवी**=क्रान्तिदर्शी **जीवेभ्यः परि**=जीवों के हितार्थ होवें।

भावार्थ—प्राणसाधना से निर्मलीभूत हृदय में तीनों ज्ञान की वाणियों का प्रकाश होता है। ये प्राणापान हमें क्रान्तदर्शी बनाते हैं। ऋत के मार्ग से चलाते हैं और शरीर के अन्दर गति करते हुए सब दोषों का वर्जन करनेवाले होते हैं।

'शशकर्णः काण्वः' अगले सूक्त का ऋषि है। 'शशः कर्णो यस्य'=प्लुतगतिवाला है कान जिसका। अर्थात् जो कान से खूब काम करता है, 'बहुश्रुत' बनता है। सुनता बहुत है, बोलता कम है। यह 'अश्विनौ' का आराधन करता हुआ कहता है—

९. [नवमं सूक्तम्]

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

अवृकं पृथु छर्दिः

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे। प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः॥ १॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **युवम्**=आप **नूनम्**=निश्चय से **वत्सस्य**=ज्ञान व स्तुति वाणियों का उच्चारण करनेवाले इस अपने प्रिय साधक के **अवसे**=रक्षण के लिये **आगन्तम्**=आइये। प्राणापान ही हमें रोगों व वासनाओं के आक्रमण से बचाते हैं। (२) **अस्मै**=इस वत्स के लिये

छर्दिः-ऐसे शरीर गृह को **प्रयच्छतम्**=दीजिये, जो **अवृकम्**=बाधक शत्रुओं से रहित है। तथा **पृथु** विशाल है अर्थात् जिस शरीर गृह में वासनाओं व रोगों का प्रवेश नहीं, तथा जो विस्तृत शक्तियोंवाला है। ऐसे शरीर गृह को प्राप्त कराने के लिये **याः**=जो **अरातयः**=शत्रु हैं उन्हें **युयुतम्**-पृथक् करिये।

भावार्थ—प्राणापान हमारा रक्षण करें हमें रोगों की बाधाओं से रहित, विस्मृत शक्तिवाले शरीर गृह को प्राप्त करायें। हमारे काम-क्रोध-लोभरूप शत्रुओं को हमारे से पृथक् करें।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'सन्तोष-ज्ञान व स्वास्थ्य' रूप धन

यदन्तरिक्षे यद्दिवि यत्पञ्च मानुषाँ अनु। नृम्णं तद्धत्तमश्विना॥ २॥

(१) मानव जीवन को सुखी करनेवाला धन 'नृम्ण' कहलाता है। हे **अश्विना**=प्राणापानो! **यत्**=जो **नृम्णम्**=धन **अन्तरिक्षे**-हृदयान्तरिक्ष में होता है। अर्थात् जो सन्तोष-आत्मतृप्ति-रूप धन हृदय में निवास करता है, **तत्**=उस धन को **धत्तम्**-हमारे लिये धारण करिये। प्राणसाधना से हृदय निर्मल होता है, चित्तवृत्ति बाह्य धनों के लिये बहुत लालायित नहीं होती। इस प्रकार हृदय में एक सन्तोष के आनन्द का अनुभव होता है। (२) **यत्**=जो **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञान-धन है, उसे आप हमारे लिये धारण करिये। प्राणसाधना से काम-वासना का विनाश होकर ज्ञानदीप्ति प्राप्त होती है। (२) हे प्राणापानो! **यत्**-जो **पञ्च**=पाँच, **मानुषान्**-मानव सम्बन्धी वस्तुओं के **अनु**=अनुकूलतावाला धन है, उसे आप हमारे लिये प्राप्त कराइये मानव सम्बन्धी पाँच वस्तुएँ सर्वप्रथम शरीर के बनानेवाले पाँच महाभूत हैं 'पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश'। फिर पाँच प्राण हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ व पाँच 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार व हृदय' हैं। इन सब के अनुकूल धनों को ये प्राणापान हमारे लिये प्राप्त करायें।

भावार्थ—हृदय के सन्तोषरूप धन को, मस्तिष्क के ज्ञानरूप धन को तथा मानव पञ्चकों के पूर्ण स्वास्थ्यरूप धन को ये प्राणापान हमारे लिये प्राप्त करायें।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'प्राण महत्व-चिन्तन'

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः। एवेत्काण्वस्य बोधतम्॥ ३॥

(१) ये **विप्रासः**=जो अपना पूरण करनेवाले ज्ञानी पुरुष हैं वे हे **अश्विना**=प्राणापानो! **वाम्**=आपके **दसांसि**-वीरतापूर्ण कर्मों का **परिमामृशुः**=चिन्तन करते हैं। इन कर्मों का चिन्तन करते हुए जिन शुभ कर्मों का (परिमामृशुः) स्पर्श करते हैं, आपकी साधना के कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। (२) **एवा इत्**=ऐसा होने पर ही अर्थात् जब यह आपकी साधना में प्रवृत्त होता है तभी **काण्वस्य**=इस मेधावी पुरुष का आप **बोधतम्**=ध्यान करते हो। समझदार व्यक्ति प्राणों का रक्षण करता है, प्राण उसका रक्षण करते हैं।

भावार्थ—हम प्राणों के महत्त्व को समझते हुए प्राणसाधना में प्रवृत्त हों और इन प्राणों द्वारा शक्ति-सम्पन्न बनें।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

घर्म-सोम

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते। अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः॥ ४॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **अयम्**=यह **वाम्**=आपका **घर्मः**=तेज **स्तोमेन**=प्रभु-स्तवन के साथ **परिषिच्यते**=शरीर में चारों ओर सिक्त होता है। जब प्रभु-स्तवन के साथ प्राणसाधना चलती है, तो शरीर में सब अंग तेजस्विता से सिक्त होते हैं। (२) हे **वाजिनीवसू**=शक्तिरूप धनोंवाले प्राणापानो! **अयम्**=यह **वाम्**=आपका, आपके द्वारा शरीर में सुरक्षित होनेवाला, **सोमः**=सोम (वीर्य शक्ति) **मधुमान्**=जीवन को मधुर बनाने वाला है। **येन**=जिस सोम के द्वारा **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को **चिकेतथः**=आप हन्तव्य रूप में जानते हो। (हन्तव्यतया जानीथः, हिन्दी में भी यह शब्द प्रयोग 'अच्छा, मैं तुझे समझ लूँगा' इस रूप में होता है)। सोम शक्ति के रक्षण से ही वासनाओं का विनाश होकर ज्ञान की वृद्धि होती है।

भावार्थ-प्रभु-स्तवन के साथ प्राणसाधना के चलने पर शरीर में तेजस्विता व सोम का रक्षण होता है।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—ककुबुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

(जल व ओषधि का सेवन) वानस्पतिक भोजन

यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम्। तेन माविष्टमश्विना॥ ५॥

(१) हे **पुरुदंससा**=पालक व पूरक कर्मोंवाले **अश्विना**=प्राणापानो! **यत्**=जो तेज (घर्म) आप **अप्सु**=जलों का प्रयोग होने पर **यद् वनस्पतौ**=जो वनस्पतियों का प्रयोग होने पर तथा **यत् ओषधीषु**=जो तेज आप ओषधियों का प्रयोग होने पर **कृतम्**=उत्पन्न करते हो। **तेन**=उस तेज से **मा अविष्टम्**=मेरा रक्षण करो। (२) यहाँ 'अप्सु, वनस्पतौ, ओषधीषु' इन शब्दों का प्रयोग स्पष्ट प्रतिपादन कर रहा है कि योगसाधना में खान-पान की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। प्राणायाम के साथ मनुष्य का शाकभोजी होना आवश्यक है। सादा खान-पान योगसाधना में सहायक होता है।

भावार्थ-हम जलों व ओषधियों के प्रयोग के साथ प्राणापान की साधना करते हुए तेजस्वी बनें और अपना रक्षण करें।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

भुरण्यथः-भिषज्यथः

यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथः।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः॥ ६॥

(१) हे **नासत्या**=हमारे जीवनों से सब असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! आप **यत्**=जब **भुरण्यथः**=हमारे सब रोगों की चिकित्सा करते हो, तो **अयम्**=यह **वाम्**=आपका **वत्सः**=प्रिय आराधक **मतिभिः**=केवल ज्ञानों से **न विन्धते**=आपको प्राप्त नहीं करता। **हि**=निश्चय से आप **हविष्मन्तम्**=दानपूर्वक अदन करनेवाले व्यक्ति को **गच्छथः**=प्राप्त होते हो। (२) प्राणसाधना करनेवाला पुरुष यह अच्छी तरह समझ लेता है कि ये प्राणापान हमारा पालन करते हैं, ये ही हमारे सब रोगों को दूर करते हैं। ऐसा समझता हुआ यह पुरुष केवल प्राणों का स्तवन ही नहीं करता रहता। यह इस स्तवन के साथ त्यागपूर्वक अदन की वृत्तिवाला बनकर प्राणसाधना में प्रवृत्त होता है। 'हविष्मान्' बनता है।

भावार्थ-प्राणापान हमारा पालन करते हैं, सब रोगों की चिकित्सा करते हैं। इनका हम स्तवन करें तथा त्यागपूर्वक अदनवाले बनकर हम प्राणसाधना में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

मधुमत्तमं घर्मम्

आ नूनम॒श्विनो॒र्ऋषि॑: स्तोमं॑ चिकेत वा॒मया॑। आ सोमं॒ मधु॑मत्तमं घ॒र्मं सि॑ञ्चा॒दथ॑र्वणि॥ ७॥

(१) **ऋषिः**-तत्त्वद्रष्टा-ज्ञानी पुरुष **नूनम्**-निश्चय से **अश्विनोः स्तोमम्**=प्राणापान के स्तवन को **वामया**=सुन्दर वाणी के द्वारा **आचिकेत**-सर्वथा करने के लिये जानता है। प्राणापान का स्तवन करता हुआ प्राणसाधना में प्रवृत्त होता है। (२) इस प्राणसाधना में प्रवृत्त होने के द्वारा यह ऋषि **अथर्वणि** (न थर्वति=चरति)-न डाँवाडोल होनेवाले चित्त के होने पर **सोमम्**=सोम शक्ति को **आसिञ्चात्**-अपने शरीर में ही सर्वतः सिक्त करता है। यह सोम **मधुमत्तमम्**=जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाला है और **घर्मम्**-यह तेजस्विता ही तेजस्विता है, अपने रक्षक को तेजस्वी बनानेवाला है।

भावार्थ-हम प्राणापान के लाभों का स्तवन करते हुए प्राणसाधना द्वारा सोम की शरीर में ऊर्ध्वगति करनेवाले हों। यह सोम हमें माधुर्य व तेज प्राप्त करायेगा।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

रघुवर्तनिं रथम्

आ नूनं र॒घुव॑र्तनिं॒ रथं॑ तिष्ठाथो अश्विना। आ वां॒ स्तोमा॑ इ॒मे मम॒ नभो॒ न चु॑च्यवीरत॥ ८॥

(१) हे **अश्विना**-प्राणापानो! **नूनम्**-निश्चय से **रघुवर्तनिं (लघुगमनं)**=शीघ्र गतिवाले इस **रथम्**=शरीर-रथ पर आप **आतिष्ठाथः** स्थित होते हो। प्राणसाधना के द्वारा यह शरीर-रथ आलस्यशून्य (स्फूर्तिवाला) बनता है। (२) सो **इमे**-ये **मम**-मेरे, मेरे से किये जानेवाले **सोमाः**=स्तुति समूह **नभः न**=सूर्य के समान तेजस्वी **वाम्**=आपको **आचुच्यवीरत**=अभिगत होते हैं। मैं प्राणापान का स्तवन करता हुआ प्राणसाधना में प्रवृत्त होता हूँ। यह प्राणसाधना मुझे सूर्य की तरह तेजस्वी बनाती है।

भावार्थ-प्राणसाधना से शरीर में स्फूर्ति आ जाती है। यह प्राणसाधना हमें सूर्यसम तेजस्वी बनाती है।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—पादनिचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

उक्थैः-वाणीभिः

यद॒द्य वां॑ नासत्यो॒क्थैरा॑चुच्यु॒वीम॑हि। यद्वा॒ वाणी॑भिरश्विने॒वेत्का॒ण्वस्य॑ बोधतम्॥ ९॥

(१) हे **नासत्या**-हमारे जीवनों से असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! **यत्**=जब **अद्य**-आज हम **उक्थैः**-स्तोत्रों के द्वारा **वाम्**=आपको **आचुच्युवीमहि**-अपने अन्दर प्राप्त करायें। **वा**-अथवा **यद्**=जब **वाणीभिः**-इन ज्ञान की वाणियों के द्वारा आपको अपने में प्राप्त करायें, तो हे **अश्विना**=प्राणापानो! **काण्वस्य इव**=समझदार मेधावी पुरुष की तरह **इत्**=निश्चय से **बोधतम्**=हमारा ध्यान करो। हम आपके अनुग्रह से समझदार बनें। (२) प्राणसाधना में प्रगति के लिये प्रभु-स्तवन (उक्थ) व स्वाध्याय (वाणी) सहायक होते हैं। वस्तुतः इनके द्वारा ही प्राणसाधना में हम प्रगति कर पाते हैं। साधित प्राण हमारी बुद्धि का वर्धन करते हुए हमारा रक्षण करते हैं।

भावार्थ-हम प्रभु-स्तवन व स्वाध्याय द्वारा प्राणों की साधना में प्रगति करने में समर्थ हों। साधित प्राण हमारी बुद्धि का वर्धन करते हुए हमारा रक्षण करें।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—आर्षीनिचृत्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

'कक्षीवान्-पृथी वैन्य'

यद्वां कक्षीवाँ उत यद्व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव।
पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम्॥ १०॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **यद्**=जब **वाम्**=आपको **कक्षीवान्**=बद्ध कक्ष्यावाला (one who has girded up one's loins) कमरकसे हुए, दृढ़ निश्चयी पुरुष **जुहाव**=पुकारता है, **उत**=और **यद्**=जब **व्यश्वः**=विशिष्ट इन्द्रियाश्वोंवाला पुरुष पुकारता है और **यद्**=जब **वाम्**=आपको **दीर्घतमाः**=तमोगुण को विदीर्ण करनेवाला **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा पुरुष पुकारता है। और अन्ततः **यद्**=जब **वैन्यः**=लोकहित की प्रबल कामनावाला (वनेतिः चर्मन्तकर्मा) **पृथी**=अत्यन्त विस्तारवाला, सारी वसुधा ही को अपना कुटुम्ब बना लेनेवाला आपको पुकारता है। तो हे प्राणापानो! आप **अतः**=इस प्रार्थना व आराधना के द्वारा **सादनेषु एव इत्**=यज्ञ गृहों में ही **चेतयेथाम्**=चेतना युक्त करते हो। अर्थात् आप इन आराधकों को सदा यज्ञशील बनाते हो। (२) हमारा जीवन प्रथमाश्रम में 'कक्षीवान्' का जीवन हो, जीवनयात्रा में आगे बढ़ने के लिये दृढ़ निश्चयी पुरुष का जीवन हो। 'कक्षीवान्' शब्द की भावना ही ब्रह्मचर्य सूक्त में 'मेखलया' शब्द से व्यक्त हुई हैं। द्वितीयाश्रम में हमें 'व्यश्व' बनना है, विशिष्ट इन्द्रियाश्वोंवाला हमें इन्द्रियाश्वों को विषयों की घास चरने में ही व्यस्त नहीं रहने देना। तृतीयाश्रम में तप व स्वाध्याय के द्वारा तमोगुण का विदारण करके 'दीर्घतमा' बनना है। चतुर्थ में सर्वलोकहित की कामना करते हुए अधिक से अधिक व्यापक परिवारवाला (वसुधारूप परिवारवाला) 'पृथी वैन्य' बन जाना है। ये सब बातें हो तभी सकेंगी जब हम प्राणसाधना में प्रवृत्त होंगे। प्राणसाधना से जीवन यज्ञमय रहेगा, अन्यथा यह भोग-प्रधान बन जायेगा।

भावार्थ—हम प्राणसाधना करते हुए 'कक्षीवान्, व्यश्व, दीर्घतमा व पृथी वैन्य' बनें।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—त्रिपादविराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

छर्दिष्या-तनूपा

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा। वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम्॥ ११॥

(१) हे प्राणापानो! आप **छर्दिष्पाः**=हमारे शरीरगृह के रक्षक होते हुए **यातम्**=हमें प्राप्त होवो। **उत**=और **नः**=हमारे लिये **परस्पाः**=अतिशयेन रक्षक **भूतम्**=होइये। **जगत्पाः**=इस संसार के आप रक्षक हों, **उत**=और **नः**=हमारे **तनूपा**=शरीरों के आप रक्षक बनें। (२) **तोकाय तनयाय**=हमारे पुत्र-पौत्रों के लिये भी **वर्तिः**=रथमार्ग को **यातम्**=प्राप्त कराइये, अर्थात् वे सदा सन्मार्ग पर चलनेवाले हों।

भावार्थ—प्राणसाधना हमारा सब प्रकार से रक्षण करनेवाली हो। हमारे पुत्र-पौत्रों को भी यह सन्मार्ग पर ले चलनेवाली बने।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥

इन्द्र-वायु-आदित्य-विष्णु

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः॥ १२॥

(१) प्राणसाधना हमें जितेन्द्रिय बनाती है। इस बात को इस रूप में कहते हैं कि हे **अश्विना**=प्राणापानो! आपकी साधना के होने पर समय आता है **यत्**=जब कि **इन्द्रेण**=जितेन्द्रिय पुरुष के साथ **सरथं याथः**=समान रथ में गति करते हो। शरीर ही रथ है। इसमें जितेन्द्रिय पुरुष का प्राणों के साथ निवास होता है। **यद् वा**=अथवा आप **वायुना**=वायु के साथ (वा गतौ) गतिशील पुरुष के साथ **सं ओकसा**=समान गृहवाले **भवथः**=होते हो। अर्थात् प्राणसाधना हमारे जीवनों को बड़ा क्रियाशील बनाती है। (२) हे प्राणापानो! **यत्**=जब आप **ऋभुभिः**=(उरु भान्ति, ऋतेनभान्ति) खूब ज्ञान-ज्योति से दीप्त होनेवाले **आदित्येभिः**=सब ज्ञानों का आदान करनेवाले पुरुषों के साथ **सजोषसा**=प्रीतियुक्त होते हो, **यद् वा**=अथवा आप **विष्णो**=व्यापक उन्नति करनेवाले पुरुष के **विक्रमणेषु**=(त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुः०) विक्रमणों में, तीन पदों में **तिष्ठथः**=स्थित होते हो। शरीर को 'तैजस' बनाना ही इस विष्णु का प्रथम पद है। मन को 'वैश्वानर' (=सब मनुष्यों के हित की भावनावाला) बनाना दूसरा पद है। मस्तिष्क को 'प्राज्ञ' बनाना तीसरा) ये सब पद प्राणसाधना से ही रखे जाते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें 'जितेन्द्रिय, क्रियाशील, ज्ञानदीप्त व व्यापक उन्नतिवाला (विष्णु)' बनाती है।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

श्रेष्ठं अवः

यदुद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये। यत्पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः॥ १३॥

(१) **यत्**=जब **अद्य**=आज **अहम्**=मैं **अश्विनौ**=प्राणापान का **हुवेय**=आह्वान करूँ, यदि मैं प्राणसाधना में प्रवृत्त होऊँ, तो ये प्राणापान **वाजसातये**=मुझे शक्ति को प्राप्त कराने के लिये हों। (२) **यत्**=क्योंकि प्राणसाधना से **पृत्सु**=संग्रामों में **तुर्वणे**=शत्रुओं के हिंसन के निमित्त **सहः**=बल प्राप्त होता है, **तत्**=सो **अश्विनोः**=इन प्राणापान का **अवः**=रक्षण **श्रेष्ठम्**=श्रेष्ठ है।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा शक्ति प्राप्त होती है। शक्ति से शत्रुओं का मर्षण होता है। इस प्रकार प्राणों द्वारा प्राप्त होनेवाला रक्षण श्रेष्ठ है।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'तुर्वश-यदु-कण्व'

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ॥ १४॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणपानो! आप **नूनम्**=निश्चय से **आयातम्**=हमें प्राप्त होवो। **इमा**=ये **हव्यानि**=हव्य पदार्थ, यज्ञशेष के रूप में सेवन किये जानेवाले पदार्थ **वां हिता**=आपके लिये निहित हुए हैं। हव्य पदार्थों का सेवन प्राणसाधना के लिये बड़ा सहायक होता है। (२) **अथः इमे**=ये अब **वाम्**=आपके **सोमासः**=सोमकण आपके द्वारा रक्षित होनेवाले सोमकण **तुर्वशे अधि**=शत्रुओं को त्वरा से वश में करनेवाले पुरुष में होते हैं। **यदौ**=यत्नशील पुरुष में, सदा क्रिया में तत्पर पुरुष में इनका निवास होता है। **इमे**=ये सोमकण **कण्वेषु**=मेधावी पुरुषों में निवास करते हैं। प्राणसाधना ही सोमरक्षण के द्वारा हमें 'तुर्वश, यदु वा कण्व' बनाती है।

भावार्थ—प्राणसाधना के साथ हव्य पदार्थों का ही सेवन अभीष्ट है। प्राणसाधना से सोम की शरीर में ऊर्ध्वगति होती है। तब हम 'शत्रुओं को वश में करनेवाले यत्नशील व मेधावी' बन

पाते हैं।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—निचृद्बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

'वत्स विमद'

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम्। तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम्॥ १५॥

(१) प्राणापान वासना को विनष्ट करके ज्ञानदीप्ति का साधन बनते हैं, सो इन्हें 'प्रचेतसा' कहा गया है। हे **नासत्या**=हमारे जीवनों से असत्य को दूर करनेवाले प्राणापानो! **यत्**=जो **पराके**=दूर देश के विषय में तथा **अर्वाके**=समीप क्षेत्र के विषय में **भेषजम्**=औषध **अस्ति**=है। **तेन**=उस औषध के साथ, हे **प्रचेतसा**=प्रकृष्ट ज्ञान के साधनभूत प्राणापानो! **नूनम्**=निश्चय से **वत्साय**=इस ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाले **विमदाय**=मद व अभिमान से शून्य जीवनवाले इस ऋषि के लिये **छर्दिः**=सुरक्षित गृह को प्राप्त कराओ। (२) यह शरीर ही 'सुरक्षित गृह' है। जब इसमें प्रथम ड्योढ़ी के रूप में स्थित अन्नमयकोश नीरोग होता है तथा तृतीय ड्योढ़ी के रूप में स्थित मनोमयकोश वासनाशून्य होता है तो यह शरीर गृह बड़ा सुन्दर बनता है। इसे ऐसा बनाने के लिये प्राणसाधना ही साधन है। यही प्राणों का 'अर्वाक व पराक' क्षेत्र के विषय में भेषज है। ये प्राण रोगों व वासनाओं पर आक्रमण करके इस गृह को दृढ़ व प्रकाशमय बनाते हैं। प्राणापान ऐसे शरीर गृह को 'वत्स विमद' के लिये प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर के रोग दूर होंगे और मन की वासनायें नष्ट होंगी। इस प्रकार यह शरीर गृह बड़ा सुन्दर बनेगा।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—आर्च्यनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

मतिं रतिम्

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः। व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः॥ १६॥

(१) **अहम्**=मैं **अश्विनोः**=प्राणापान की **वाचा**=स्तुतिरूप वाणी के द्वारा **देव्या साकम्**=इस प्रकाशमयी ज्ञानवाणी के साथ **प्र अभुत्सि**=प्रबुद्ध हो उठा हूँ। जब प्राणापान के स्तवन व साधन में मैं प्रवृत्त होता हूँ तो मैं ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करता हूँ। (२) हे **देवि**=प्रकाशमयी ज्ञान वाणि! तू **आ**=(गच्छ) हमें प्राप्त हो और **मतिं व्यावः**=हमारी बुद्धि को अज्ञानान्धकारों के आवरणों से रहित कर। तथा **मर्त्येभ्यः**=मनुष्यों के लिये **रातिं वि (आवः**=यच्छ)=धनों को देनेवाली हो।

भावार्थ—प्राणसाधक ज्ञानदीप्ति को तथा आवश्यक धनों को प्राप्त करता है।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

प्रातःकालीन कार्यक्रम

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि। प्र यज्ञहोतरानुषक्प्र मदाय श्रवो बृहत्॥ १७॥

(१) हे **उषः**=उषाकाल की देवि! **अश्विना प्रबोधयः**=तू प्राणापान को हमारे में प्रबुद्ध कर। अर्थात् हम प्रातः प्रबुद्ध होकर प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। हे **देवि**=प्रकाशयुक्त **सूनृते**=प्रिय सत्य वाणीवाली उषे! **महि**=(मह पूजायाम्) पूजा को **प्र (बोधय)**=हमारे में प्रबुद्ध कर। हम प्रातः प्रबुद्ध होकर प्रभु की उपासना में प्रवृत्त हों। (२) हे **आनुषक्**=निरन्तर **यज्ञहोतः**=यज्ञों में हव्यों को आहुत करनेवाली! तू **प्र**=हमें प्रबुद्ध कर। हम प्रातः यज्ञों को करनेवाले हों। हे उषे! तू **मदाय**=आनन्द को प्राप्त कराने के लिये **बृहत् श्रवः**=बहुत उत्कृष्ट ज्ञान को **प्र**=हमारे में प्रबुद्ध कर।

भावार्थ–हम प्रातः जागकर प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। प्राणसाधना के साथ 'प्रभु-पूजन-यज्ञ व स्वाध्याय' को करें।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

नृपाय्यं वर्तिः

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे। आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम्॥ १८॥

(१) हे **उषः**-उषाकाल की देवि! **यत्**=जब **भानुना**-दीप्ति के साथ **यासि**-तू प्राप्त होती है और **सूर्येण संरोचसे**=सूर्य के साथ सम्यक् दीप्त हो उठती है तो **ह**=निश्चय से **अयम्**-यह **अश्विनोः**-प्राणापान का **रथः**=शरीररूप रथ वह शरीर जिसमें प्राणसाधना प्रवृत्त हुई है, **नृपाय्यं वर्तिः**-मनुष्यों की रक्षा करनेवाले मार्ग पर **आयाति**=गतिवाला होता है। अर्थात् हम उसी मार्ग पर चलना प्रारम्भ करते हैं जो हमें सदा सुरक्षित रखता है, जिस मार्ग पर चलते हुए हम विषयों में फँसकर विनष्ट नहीं हो जाते। (२) 'अश्विनोः रथः' शब्द इस भाव को सुव्यक्त कर रहे हैं कि हमें प्रातः प्रबुद्ध होकर प्राणसाधना में अवश्य प्रवृत्त होना है। यह साधना ही हमारे जीवन में मलिनताओं को न आने देगी। प्राणसाधक सदा 'नृपाय्य वर्ति' से शरीर-रथ को ले चलता है।

भावार्थ–उषा के होते ही हम प्रबुद्ध होकर प्राणसाधना के लिये उद्यत हों। सदा उस मार्ग का आक्रमण करें, जो मनुष्यों का रक्षण करनेवाला है।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

सोमरक्षण व ज्ञानवाणियों का उच्चारण

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः। यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना॥ १९॥

(१) **यद्**=जब **आपीतासः**=शरीर में समन्तात् पिये गये **अंशवः**=सोमकण, **ऊधभिः गावः न**=अपने ऊधसों से गौवों की तरह **दुह्रे**=ज्ञान दुग्ध का हमारे अन्दर दोहन करते हैं। सोमरक्षण से ही बुद्धि की तीव्रता होकर, ज्ञान की वृद्धि होती है। (२) **यद् वा**=और जब **अश्विना**-प्राणापानों के द्वारा (भ्याम्-आ) **देवयन्तः** दिव्यगुणों की कामनावाले लोग **वाणीः**-इन ज्ञान की वाणियों का **प्र अनूषत**=प्रकर्षेण उच्चारण करते हैं। तभी गत मन्त्र के अनुसार यह प्राणापान का रथ उस मार्ग पर चलता है, जो मनुष्यों का रक्षण करनेवाला होता है।

भावार्थ–प्राणसाधना से सोमरक्षण होकर बुद्धि की तीव्रता प्राप्त होती है। उसी समय ज्ञान की वाणियों का उच्चारण होता है।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'द्युम्न-शवस्-शर्म-दक्ष'

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे। प्र दक्षाय प्रचेतसा॥ २०॥

(१) हे **प्रचेतसा**=प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त करानेवाले प्राणापानो! आप हमारी **द्युम्नाय**=ज्ञान-ज्योति के लिये **प्र (भवतम्)**=होवो। **शवसे**-बल के लिये **प्र (भवतम्)**=होवो। (२) इसी प्रकार **नृषाह्याय**-शत्रु नायकों का, काम-क्रोध-लोभरूप शत्रु सेनापतियों का पराभव करनेवाले **शर्मणे**-सुख के लिये **प्र (भवतम्)**=होइये और **दक्षाय**=(growth) सब प्रकार की उन्नति के लिये **प्र (भवतम्)**=होइये।

भावार्थ–प्राणसाधना द्वारा हमें 'ज्ञान-बल शत्रु पराजय जनित सुख व विकास' प्राप्त हो।

ऋषिः—शशकर्णः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

धीभिः-सुम्नेभिः

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः। यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या॥ २१॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **यत्**=क्योंकि **धीभिः**=बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले कर्मों के द्वारा **पितुः योनाः**=उस परमपिता प्रभु के गृह में **निषीदथः**=आसीन होते हो, अर्थात् आपकी साधना के द्वारा मल-क्षय व ज्ञानदीप्ति होकर प्रभु का दर्शन होता है। **यद् वा**=अथवा **सुम्नेभिः**=स्तोत्रों के द्वारा आप ब्रह्मलोक में निवास कराते हो, सो **उक्थ्या**=आप स्तुत्य होते हो।

भावार्थ–प्राणसाधना से बुद्धि का विकास होता है, स्तुति की प्रवृत्ति जागरित होती है। ये बुद्धि व स्तुति हमें प्रभु को प्राप्त करानेवाली होती हैं।

यह प्रभु का स्तवन करनेवाला 'प्रगाथ' कहलाता है। यह 'काण्व'=अत्यन्त मेधावी तो है ही। यह अगले सूक्त का ऋषि है। यह 'अश्विनौ' का आराधन करता हुआ कहता है कि–

१०. [दशमं सूक्तम्]

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—आर्चीस्वराड्बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

यज्ञ-ज्ञान व प्रभु का उपासन

यत्स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद्वादो रोचने दिवः। यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना॥ १॥

(१) वैदिक संस्कृति में यह पृथिवी 'देव-यजनी' कही गयी है, यह देवों के यज्ञ करने का स्थान है। 'दीर्घ अस्थताः प्रसप्रानः यज्ञगृहाः यस्मिन्'। हे **अश्विना**=प्राणापानो! **यत्**=यदि आप **दीर्घप्रसद्मनि**=इस विस्तृत यज्ञ गृहोंवाले पृथिवीलोक में **स्थः**=हो। **यद् वा**=अथवा यदि **अदः**=उस **दिवः**=द्युलोक के **रोचने**=दीप्त स्थान में आप हो। **यद् वा**=अथवा यदि **समुद्रे अधि**=(स मुद्) आनन्द से युक्त हृदयान्तरिक्ष में **आकृते**=बनाये हुए **गृहे**=घर में हो **अतः**=इस दृष्टिकोण से हे प्राणापानो! आप हमें **आयातम्**=प्राप्त होवो। (२) प्राणसाधना करनेवाला पुरुष अपने गृह को यज्ञगृह बनाने का प्रयत्न करता है। उसे यह स्मरण रहता है कि 'हविर्धानम्' अग्निहोत्र का कमरा उसके घर का प्रमुख कमरा होता है। यह प्राणसाधक ज्ञान दीप्त मस्तिष्करूप द्युलोक में निवास करता है। तथा यह साधक अपने हृदय को प्रभु का गृह (मन्दिर) बनाने का प्रयत्न करता है।

भावार्थ–प्राणसाधक का घर 'यज्ञ-घर' बनता है, इसका मस्तिष्क दीप्त होता है, और इसका हृदय प्रभु का निवास-स्थान बनता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

'यज्ञ-ज्ञान व दिव्य गुण'

यद्वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत्काण्वस्य बोधतम्।
बृहस्पतिं विश्वान्देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा॥ २॥

(१) हे प्राणापानो! आप **यद्**=जब **वा**=निश्चय से **मनवे**=विचारशील पुरुष के लिये **यज्ञम्**=यज्ञ को **संमिमिक्षथुः**=सिक्त करते हो, इसके जीवन को यज्ञमय बना देते हो, तो उस समय **एवा इत्**=इस प्रकार निश्चय से **काण्वस्य**=इस मेधावी पुरुष का **बोधतम्**=पूरी तरह ध्यान करते हो, इसका रक्षण करते हो। (२) हे **आशुहेषसा**=इन्द्रियाश्वों को शीघ्रता से कार्यों में प्रेरित करनेवाले **अश्विना**=प्राणापानो! **अहम्**=मैं आपकी साधना द्वारा **बृहस्पतिम्**=ज्ञान के अधिष्ठातृदेव प्रभु को

हुवे-पुकारता हूँ। इस ज्ञान के द्वारा **विश्वान् देवान्**-सब देवों को पुकारता हूँ और **इन्द्राविष्णू** सब देवों में भी विशेषकर इन्द्र और विष्णु को पुकारता हूँ। सब दिव्यगुणों को धारण करता हुआ विशेषतया जितेन्द्रियता व व्यापकता के धारण का प्रयत्न करता हूँ।

भावार्थ-हमारा जीवन यज्ञमय बने। हम प्राणसाधना करते हुए 'ज्ञान, दिव्यगुणों, जितेन्द्रियता व उदारता' की ओर झुकें।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—आर्चीभुरिगनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

सुदंससा-गृभेकृता

त्या न्व१श्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता। ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम्॥ ३॥

(१) **त्या**-उन **अश्विना**=प्राणापान को **हुवे**=पुकारता हूँ, जो **सुदंससा**-शोभन कर्मवाले हैं। **गृभे**=सद्गुणों के ग्रहण के लिये **कृता**=किये गये हैं। इन प्राणों की साधना के द्वारा ही हम यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रेरित होते हैं और सद्गुणों के ग्रहण करनेवाले बनते हैं। (२) **ययोः**-जिन प्राणों में **नः**=हमारा **सख्यम्**=मित्रभाव **प्र अस्ति**=प्रकर्षेण है, वे प्राणापान ही **देवेषु अधि**=दिव्यगुणों में **आप्यम्**=मित्रता के कारण बनते हैं। प्राणसाधना के द्वारा ही हम सब दिव्यगुणों को अपने में विकसित कर पाते हैं।

भावार्थ-प्राणसाधना द्वारा हम उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होते हैं और सद्गुणों को ग्रहण कर पाते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—आर्चीभुरिक् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'यज्ञ स्तवन सोमरक्षण व आत्मधारण शक्ति'

ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः।
ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु॥ ४॥

(१) वे प्राणापान **ययोः अधि**-जिन में **यज्ञाः**-यज्ञ **प्र सन्ति**-प्रकर्षेण निवास करते हैं जिनकी साधना के होने पर **असूरे**-स्तोतृरहित स्थान में भी **सूरयः**=स्तोता लोग **सन्ति**=हो जाते हैं। अर्थात् ये प्राणापान हमें यज्ञों में प्रवृत्त करते हैं और इनकी साधना के द्वारा हमारे में स्तुति की वृत्ति उत्पन्न होती है। (२) **ता**=वे प्राणापान **अध्वरस्य यज्ञस्य**=हिंसारहित यज्ञों के **प्रचेतसा**=प्रकर्षेण चेतानेवाले होते हैं। **यः**=जो प्राणापान **स्वधाभिः**=आत्मधारण शक्तियों के हेतु से **सोम्यं मधु**=सोम सम्बन्धी मधु का **पिबतः**-पान करते हैं। शरीर में सोम को सुरक्षित करके ये प्राणापान ही हमें आत्मधारण शक्ति प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ-प्राणसाधना के होने पर जीवन में 'यज्ञ, प्रभु-स्तवन, सोमरक्षण व आत्मधारण शक्ति' का प्रादुर्भाव होता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'द्रुह्यु अनु तुर्वश यदु'

यदद्याश्विनावपाग्यत्प्राक्स्थो वाजिनीवसू। यद् द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम्॥ ५॥

(१) हे **वाजिनीवसू**=शक्ति रूप धनवाले **अश्विना**=प्राणापानो! **यत्**=जो आप **अद्य**=आज **अपाक्**=अधः प्रदेश में **स्थः**=हो व **यत्**-जो **प्राक्स्थः**=ऊपरले प्रदेश में हो, **वाम्**-आपको **हुवे**=मैं पुकारता हूँ, आप **मा आगतम्**=मुझे प्राप्त होवो। अपान का कार्यक्षेत्र नीचे है और प्राणों

का ऊपर। मैं इन दोनों का (आह्वान) करता हूँ। ये मुझे प्राप्त हों। अपान द्वारा दोष निराकरण का कार्य हो, प्राण के द्वारा मेरे में बल संचार का कार्य चले। (२) अब **यद्**=जब **द्रुह्यवि**=(द्रुह जिघांसायाम्) काम-क्रोध-लोभ का संहार करनेवाले में आप होते हो, **अनवि**=प्राणशक्ति सम्पन्न में आप होते हो, **तुर्वशे**-त्वरा से शत्रुओं को वश में करनेवाले में आप होते हो तथा **यदौ**=यत्नशील पुरुष में आप होते हो। ऐसे आपको मैं पुकारता हूँ। आपकी आराधना ही वस्तुतः मुझे 'द्रुह्यु, अनु, तुर्वश व यदु' बनाती है।

भावार्थ-प्राणापान का कार्य क्रमशः प्राग्भाग में व अपाग्भाग में चलता है। ये हमें 'शत्रुओं का संहार करनेवाला, प्राणशक्ति सम्पन्न व यत्नशील' बनाते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—आर्षीस्वराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

स्वधा

यदुन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद्वेमे रोदसी अनु। यद्वा स्वधाभिरधितिष्ठथो रथमत आ यातमश्विना॥ ६॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **यत्**=क्योंकि **अन्तरिक्षे पतथः**=हृदयान्तरिक्ष गतिवाले होते हो और **पुरुयुजा**=खूब ही हमारा पालन करनेवाले होते हो, **अतः**=इसलिए **आयातम्**=आप हमें प्राप्त होओ। प्राणापान ही हृदय में गति करते हुए हमारा पालन करते हैं। (२) और हे प्राणापानो! आप ही **यद्वा**=क्योंकि निश्चय से **इमे रोदसी अनु**=इन द्यावापृथिवी के, मस्तिष्क व शरीर के अनुकूल होते हो। आप ही मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त बनाते हो तथा शरीर को शक्ति-सम्पन्न करते हो। **यद्वा**-और क्योंकि आप ही **स्वधाभिः**=आत्मधारण शक्तियों के साथ **रथं अधितिष्ठथः**=शरीर-रथ में अधिष्ठित होते हो, इसलिए आप हमें प्राप्त होवो।

भावार्थ-प्राणसाधना से 'हृदयान्तरिक्ष, मस्तिष्क व शरीर' सब उत्तम बनते हैं। प्राणसाधना ही आत्मधारण शक्ति को प्राप्त कराती है।

इस प्रकार 'हृदय, शरीर व मस्तिष्क' सभी को उत्तम बनानेवाला यह साधक प्रभु का प्रिय 'वत्स' होता है। यह अत्यन्त मेधावी 'काण्व' है। यह अग्नि नाम से प्रभु की उपासना करता है-

११. [एकादशं सूक्तम्]

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—आर्चीभुरिग्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'व्रतपा-देव-ईड्य' प्रभु

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**=आप **व्रतपाः असि**=ब्रह्माण्ड में कार्य कर रहे सब नियमों के पालक हैं। सूर्य, चन्द्र व सभी नक्षत्र आदि पिण्ड आप से बनाये नियमों के अनुसार मार्ग का आक्रमण कर रहे हैं। (२) आप ही **मर्त्येषु**=इन सब मनुष्यों में भी **आ**=सब ओर **देवः**=प्रकाश को प्राप्त करानेवाले हैं। हृदयस्थरूपेण सभी को आप प्रेरणा देते हुए मार्ग का दर्शन कराते हैं। (३) **त्वम्**=आप ही **आ**=चारों ओर **यज्ञेषु**=यज्ञों के अन्दर **ईड्यः**=स्तुति के योग्य हैं वस्तुतः आप से प्राप्त करायी गयी प्रेरणा व शक्ति से ही यज्ञ पूर्ण हुआ करते हैं।

भावार्थ-सारे ब्रह्माण्ड को नियम में चलानेवाले वे प्रभु हैं। हृदयस्थरूपेण सब मनुष्यों को प्रभु ही प्रकाश प्राप्त कराते हैं। सब यज्ञों में प्रभु ही उपास्य हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—वर्धमानागायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'युद्धों में व यज्ञों में' उपास्य प्रभु

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य। अग्ने रथीरध्वराणाम्॥ २॥

(१) हे **सहन्त्य**-शत्रुओं का अभिभव करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप ही **विथेषु**=संग्रामों में (विदथ: battle) **प्रशस्यः**-प्रशंसा के योग्य होते हैं। आप से ही शक्ति को प्राप्त करके हम शत्रुओं का शातन (=संहार) कर पाते हैं। (२) हे **अग्ने**-अग्रेणी प्रभो! आप ही **अध्वराणाम्**-सब हिंसारहित यज्ञात्मक कर्मों के **रथी**:=प्रणेता हैं। आप के रक्षण में ही सब यज्ञ पूर्ण हुआ करते हैं।

भावार्थ-प्रभु कृपा से ही संग्रामों में विजय प्राप्त होती है और प्रभु के रक्षण से ही सब यज्ञ पूर्ण होते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'द्वेष व अदान' से दूर

स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः। अदेवीरग्ने अरातीः॥ ३॥

(१) हे **जातवेदः**=सब के अन्दर वर्तमान (जाते जाते विद्यते) सर्वज्ञ (जातं जातं वेत्ति) प्रभो! **स त्वम्**=वे आप **अस्मत्**-हमारे से **द्विषः**-द्वेष की भावनाओं को **अपयुयोधि**=सुदूर पृथक् करिये। सब में आपकी उपस्थिति को देखते हुए हम द्वेष की भावना से दूर रहें। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **अदेवाः**=दिव्य भावनाओं की विनाशक **अरातीः**=अदान की वृत्तियों को भी हमारे से दूर करिये।

भावार्थ-प्रभु-स्मरण करते हुए हम द्वेष व अदान (कृपणता) की वृत्ति से दूर रहें।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

रिपु से किया गया 'यज्ञ' यज्ञ नहीं

अन्ति चित्सन्तमह यज्ञं मर्तस्य रिपोः। नोप वेषि जातवेदः॥ ४॥

(१) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! आप **अन्ति चित् सन्तम्**-अत्यन्त समीप होते हुए भी, अर्थात् अतिप्रिय होते हुए भी **यज्ञम्**=यज्ञ को **अह**=निश्चय से **न उपवेषि**=नहीं चाहते। यह यज्ञ आपको प्रिय नहीं होता, यदि यह **रिपोः मर्तस्य**-शत्रुभूत मनुष्य का होता है। अर्थात् जो मनुष्य औरों के साथ शत्रुता करता रहता है, उसका यज्ञ आपको प्रिय नहीं होता। (२) यज्ञों के द्वारा प्रभु-पूजन अवश्य होता है 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'। परन्तु इन यज्ञों को करते हुए हमें देववृत्ति का बनना है। हम पड़ोसियों के साथ वैरभाव रखते हुए यज्ञों से प्रभु को रिझा नहीं सकते।

भावार्थ-हम देववृत्ति के बनकर, शत्रुता को तिलाञ्जलि देकर यज्ञों को करें। ये ही यज्ञ हमें प्रभु का प्रिय बनायेंगे।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'अमर्त्य जातवेदस्' का स्मरण

मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे। विप्रासो जातवेदसः॥ ५॥

(१) **मर्ताः**-मरणधर्मा होते हुए हम **अमर्त्यस्य**=अमर आपके **नाम**=नाम को **भूरि मनामहे**=खूब ही मनन का विषय बनाते हैं। वस्तुतः अमर्त्य स्वरूप में आपका चिन्तन करते हुए हम भी 'अमर्त्य' बनने के लिये यत्नशील होते हैं। (२) हे प्रभो! **विप्रासः**-अपना विशेषरूप से पूरण करने

का प्रयत्न करनेवाले हम **जातवेदसः**=सर्वज्ञ आपका स्मरण करते हैं। सर्वज्ञरूप में आपका स्मरण करते हुए हम भी अधिक से अधिक ज्ञानी बनने का यत्न करते हैं। यह ज्ञान ही हमारी न्यूनताओं को दूर करके हमारे पूरण का साधन बनता है।

भावार्थ—हम प्रभु को 'अमर्त्य जातवेदा' के रूप में स्मरण करते हुये अधिक से अधिक ज्ञान को प्राप्त करें और इस ज्ञान के द्वारा सब कमियों को भस्म करते हुए अमर्त्य बनने के लिये यत्नशील हों।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अवस् व ऊति

विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये। अग्निं गीर्भिर्हवामहे॥ ६॥

(१) **विप्रासः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले हम **विप्रम्**=हमारा पूरण करनेवाले ज्ञानी प्रभु को **अवसे**=(fame, wealth) यश व धन के लिये **हवामहे**=पुकारते हैं। यश को प्राप्त करने के लिये हमें अपना पूरण करने की प्रेरणा मिले। धन के द्वारा हम पूर्ति के सब साधनों को जुटानेवाले हों। (२) हम **मर्तासः**=मरणधर्मा पुरुष **ऊतये**=रक्षण के लिये **देवम्**–उन रोगों व वासनाओं को जीतने की कामनावाले प्रभु को पुकारते हैं। प्रभु ही हमारे रोगों व हमारी वासनाओं को विनष्ट करते हैं। (३) हम **गीर्भिः**=ज्ञान वाणियों के द्वारा **अग्निम्**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्रभु को पुकारते हैं। प्रभु हमें ज्ञान देते हैं और इस प्रकार हमें उन्नत करते हैं।

भावार्थ—प्रभु से हम यश, धन व रक्षण प्राप्त करें। प्रभु ज्ञान की वाणियों के द्वारा हमें निरन्तर उन्नत करते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

स्तवन-मन का नियमन-मोक्ष

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्। अग्ने त्वांकामया गिरा॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **ते वत्सः**=आपका प्रिय यह साधक **परमात् चित् सधस्थात्**= सर्वोत्कृष्ट सह-स्थानरूप मोक्ष से, इस मोक्ष को प्राप्त करने के हेतु से **मनः आयमत्**=मन को सर्वथा वश में करता है। (२) हे प्रभो! **त्वां कामया**–आपको ही चाहनेवाली **गिरा**=स्तुति वाणी के द्वारा यह साधक मन को वश में करता है। यह मन का नियमन ही सर्वमहान् साधना है। प्रभु की स्तुति वाणियों का उच्चारण मनोनिरोध का साधन बनता है। निरुद्ध मन मोक्ष को प्राप्त करानेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु–स्तवन मनोनिरोध का उपाय बने। निरुद्ध मन मोक्ष प्राप्ति का कारण हो।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

संग्राम विजय

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः। समत्सु त्वा हवामहे॥ ८॥

(१) हे प्रभो! आप **हि**–निश्चय से **पुरुजा**=इन बहुत स्थानों में **सदृङ् असि**=समान रूप से दिखनेवाले हैं। सर्वत्र समान रूप से आपकी स्थिति है। आप **विश्वाः**=सब **विशः अनु**=प्रजाओं का लक्ष्य करके **प्रभुः**=प्रभाव को पैदा करनेवाले हैं। सब को शक्ति देनेवाले आप ही हैं। (२) **समत्सु**=संग्रामों में **त्वा हवामहे**=हम आपको ही पुकारते हैं। आपने ही इन संग्रामों में हमें विजय

प्राप्त करानी है, आपकी शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर ही उपासक काम-क्रोध आदि शत्रुओं को पराजित कर पाता है।

भावार्थ-प्रभु सर्वत्र समान रूप से स्थित हैं, सब प्रजाओं को शक्ति प्राप्त कराते हैं, संग्रामों में हम प्रभु को ही पुकारते हैं, प्रभु ही तो हमें विजयी बनायेंगे।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'चित्रराधस्' प्रभु का आवाहन

स॒मत्स्व॒ग्निमव॑से वाज॒यन्तो॑ हवामहे। वाजे॑षु चि॒त्रराध॑सम्॥ ९ ॥

(१) **समत्सु**-संग्रामों में **वाजयन्तः**-बल की कामनावाले होते हुए हम **अवसे**=यश (fame) के लिये, विजय श्री को प्राप्त करने के लिये **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु को **हवामहे**=पुकारते हैं। प्रभु ने ही तो हमें इन संग्रामों में इस विजय श्री को प्राप्त कराना है। (२) **वाजेषु**=संग्रामों में **चित्रराधसम्**=चायनीय, अद्भुत-धन को प्राप्त करानेवाले प्रभु को हम पुकारते हैं। प्रभु ही हमें इन संग्रामों में अद्भुत सफलताओं को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ-हम उस चित्रराधस् अद्भुत धनों के स्वामी प्रभु का आवाहन करते हैं। ये प्रभु ही हमें युद्धों में विजय प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

मैं प्रभु का शरीर बनूँ

प्र॒त्नो हि क॒मीड्यो॑ अध्व॒रेषु॑ स॒नाच्च॒ होता॒ नव्य॑श्च॒ सत्सि॑।
स्वां चा॑ग्ने त॒न्वं॑ पि॒प्रय॑स्वा॒स्मभ्यं॑ च॒ सौभ॑ग॒मा य॑जस्व॥ १० ॥

(१) हे प्रभो! आप **प्रत्नः**=सनातन पुरुष हैं। **हि**=निश्चय से **कम्**=आनन्दस्वरूप हैं। **ईड्यः**=स्तुति के योग्य हैं। **च**=और **सनात्**=सदा से **अध्वरेषु**=इन हिंसारहित कर्मों में **होता**=होता है, हमारे लिये सब कुछ देनेवाले हैं (हु दाने)। आप के द्वारा ही हम इन अध्वरों को कर पाते हैं। **च**=और **नव्यः सत्सि**=स्तुत्य होते हुए आप हमारे हृदयों में आसीन होते हैं। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **स्वां तन्वम्**=अपने इस शरीरभूत मुझ को **च**=अवश्य **पिप्रयस्व**=प्रीणित करिये। आप से सब प्रकार के स्वास्थ्य को प्राप्त करके मैं तृप्ति का अनुभव करूँ। **च**=और हे प्रभो! आप **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **सौभगम्**=सुभगत्व को **आयजस्व**=सर्वथा संगत करिये। आपके अनुग्रह से मैं 'समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान व वैराग्य' रूप भग को प्राप्त करनेवाला बनूँ।

भावार्थ-प्रभु ही सदा से ईड्य व स्तुत्य हैं। मैं प्रभु का शरीर बनूँ, प्रभु को अपनी आत्मा समझूँ। प्रभु मेरे लिये सभी सौभाग्यों को प्राप्त करायें।

प्रभु के उपासन से अपना पूरण करता हुआ मैं 'पर्वत' बनूँ। पर्वत बननेवाला ही 'काण्व'-मेधावी है। यह इन्द्र का आराधन करता हुआ कहता है-

१२. [द्वादशं सूक्तम्]

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'सोमपातमः' मदः

य इ॑न्द्र सोम॒पात॑मो॒ मदः॑ शविष्ठ॒ चेत॑ति। येना॒ हंसि॒ न्य१॒॑त्रिणं॒ तमी॑महे॥ १ ॥

(१) हे **शविष्ठ**-अतिशयेन शक्तिशालिन् **इन्द्र**=सब शत्रुओं के विदारक प्रभो! **यः**=जो

सोमपातमः=अतिशेयन सोम का पान करनेवाला **मदः**=उल्लास **चेतति**=जाना जाता है, **तम्**=उस मद को **ईमहे**=हम माँगते हैं। अर्थात् हम प्रभु की उपासना करते हुए सोमरक्षण से होनेवाले मद को प्राप्त हों। (२) हे इन्द्र! हमें आप उस सोमरक्षण जनित मद को प्राप्त कराइये **येन**=जिससे कि आप **अत्रिणम्**=(अद भक्षणे) हमें खा ही जानेवाली वासनाओं को **निर्हंसि**=निश्चय से विनष्ट करते हैं। सोमरक्षण से शरीरस्थ रोगों के नाश की तरह हृदयस्थ वासनाओं का भी विनाश होता है।

भावार्थ–प्रभु–स्मरण द्वारा हम सोम का रक्षण करते हुए उल्लासमय जीवनवाले हों और हमारा विनाश करनेवाली वासनाओं को सुदूर विनष्ट कर डालें।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

दशग्व-समुद्र

येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम्। येना समुद्रमाविथा तमीमहे॥ २॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित **येन**=जिस 'सोमपातम मद' से, हे प्रभो! आप **दशग्वम्**=दसवें दश तक जानेवाले, अर्थात् सौ वर्ष तक दीर्घ जीवन को प्राप्त करनेवाले इस आराधक को **आविथ**=रक्षित करते हो **तं ईमहे**=उस मद को हम आप से माँगते हैं। सोमरक्षण के द्वारा उल्लासमय होते हुए हम शतवर्ष जीवी बनें। (२) हे प्रभो! आप जिस मद से **अध्रिगुम्**=अधृतगमनवाले, मार्ग पर चलते समय वासना रूप विघ्नों से न रुक जानेवाले पुरुष को रक्षित करते हो, उसे हम चाहते हैं। जिस मद से आप **वेपयन्तम्**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले पुरुष को रक्षित करते हो, और जिससे **स्वर्णरम्**=प्रकाश की ओर अपने को ले जानेवाले पुरुष को आप रक्षित करते हो, उस मद को हम चाहते हैं। (३) हम उस मद को चाहते हैं **येना**=जिससे आप **समुद्रम्**=(स+मुद्) आनन्दित रहनेवाले पुरुष को रक्षित करते हैं।

भावार्थ–सोमरक्षण से जनित उल्लास हमें दीर्घजीवी, अधृतगमन, शत्रुओं को कम्पित करनेवाला, प्रकाश की ओर चलनेवाला व आनन्दमय मनोवृत्तिवाला बनाता है।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

सोमरक्षण के चार लाभ

येन सिन्धुं महीरपो रथाँइव प्रचोदयः। पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे॥ ३॥

(१) **येन**=जिस सोमपानजनित मद से, हे प्रभो! **सिन्धुम्**=ज्ञान नदी को, **महीः अपः**=महत्त्वपूर्ण कर्मों को **रथान् इव**=शरीर–रथों को जैसे लक्ष्य की ओर उसी प्रकार **प्रचोदयः**=आप प्रेरित करते हो **तं ईमहे**=उस मद की हम याचना करते हैं। अर्थात् यह सोमपानजनित मद (क) हमारे अन्दर ज्ञानेन्द्रियों को प्रवाहित करता है, (ख) इससे हमारे कर्म उत्तम होते हैं, (ग) हमारे शरीर–रथ लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। (२) हम इसलिए इस सोमपानजनित मद की साधना करते हैं कि **ऋतस्य**=यज्ञ के व सत्य के **पन्थां यातवे**=मार्ग पर हम चलनेवाले हों।

भावार्थ–सोमरक्षण के चार लाभ हैं–ज्ञान प्राप्ति, उत्तम कर्म, शरीर–रथ का लक्ष्य की ओर बढ़ना तथा ऋत के मार्ग का आक्रमण।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्रभु-स्तवन के तीन लाभ

इमं स्तोममभिष्टये घृतं पूतमद्रिवः। येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ॥ ४॥

(१) हे **अद्रिवः**-आदरणीय प्रभो! **इमं स्तोमम्**-इस स्तोत्र को आप हमें प्राप्त कराइये। यह स्तोत्र **अभिष्टये**=हमारे इष्टों की प्राप्ति के लिये हो। **घृतं न पूतम्**-यह स्तोम घृत के समान पवित्र हो। घृत जैसे मलों के क्षरण के द्वारा शरीर को दीप्त करता है, इसी प्रकार यह स्तोम हमारे मानस मलों को दूर करके हमें दीप्त-ज्ञानवाला बनाये। (२) हे प्रभो! हमें वह स्तोम प्राप्त कराइये, **येन**-जिससे **नु**-अब **सद्यः**-शीघ्र ही **ओजसा**-ओजस्विता के साथ **ववक्षिथ**-(वहसि) आप हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाते हैं।

भावार्थ-प्रभु स्तवन इष्ट को प्राप्त कराता है, हमें पवित्र दीप्त जीवनवाला बनाता है, और ओजस्विता को देता हुआ लक्ष्य-स्थान की ओर ले चलता है।

ऋषिः — पर्वतः काण्वः॥ **देवता** — इन्द्रः॥ **छन्दः** — उष्णिक्॥ **स्वरः** — ऋषभः॥

हृदय में स्तुति तरंगों का उत्थान

इ॒मं जु॑षस्व गिर्वणः समु॒द्रइ॑व पिन्वते। इन्द्र॒ विश्वा॑भिरू॒तिभि॒र्व॒वक्षि॑थ॥ ५॥

(१) हे **गिर्वणः** ज्ञान की वाणियों के द्वारा सम्भजनीय प्रभो! **इमं जुषस्व**=इस हमारे से की जानेवाली स्तुति का सेवन करिये, यह आपके लिये प्रिय हो। यह स्तुति **समुद्रः इव**-समुद्र की तरह **पिन्वते**-वृद्धि को प्राप्त होती है। चन्द्रोदय से जैसे समुद्र में ज्वार आती है, उसी प्रकार आपका चिन्तन मेरे में स्तुति तरंगों के उत्थान का कारण बनता है। (२) हे **इन्द्र**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **विश्वाभिः ऊतिभिः**-सब रक्षणों के साथ आप **ववक्षिथ**=(वहसि) हमारे लिये सब ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हो।

भावार्थ-प्रभु का चिन्तन हमारे हृदयों में प्रभु-स्तवन की वृत्ति को अधिकाधिक बढ़ाये। प्रभु हमें रक्षणों व ऐश्वर्यों को प्राप्त करायें।

ऋषिः — पर्वतः काण्वः॥ **देवता** — इन्द्रः॥ **छन्दः** — उष्णिक्॥ **स्वरः** — ऋषभः॥

प्रभु के साथ मित्रता

यो नो॑ दे॒वः प॑रा॒वतः॑ सखित्व॒नाय॑ माम॒हे। दि॒वो न वृ॒ष्टिं प्र॒थय॑न्व॒वक्षि॑थ॥ ६॥

(१) **यः**=जो **देवः**=प्रकाशमय प्रभु **परावतः**-दूर से दूर देश में वर्तमान हैं, सर्वत्र जिनकी सत्ता है। वह प्रभु **नः**-हमारे लिये **सखित्वनाय**-मित्र-भाव के लिये **मामहे**=पूजित होते हैं। (२) हे प्रभो! आप **दिवः वृष्टिं न**-द्युलोक से वर्षा के समान **प्रथयन्**=हमारे लिये सब ऐश्वर्यों का विस्तार करते हुए **ववक्षिथ**=(वहसि) ऐश्वर्यों को हमें प्राप्त कराते हो।

भावार्थ-हम प्रभु-स्तवन द्वारा प्रभु मैत्री के लिये यत्नशील हों। प्रभु प्राप्ति में ही सब ऐश्वर्यों की प्राप्ति है।

ऋषिः — पर्वतः काण्वः॥ **देवता** — इन्द्रः॥ **छन्दः** — आर्षीविराडुष्णिक्॥ **स्वरः** — ऋषभः॥

केतवः-वज्रः

व॒वक्षु॑रस्य के॒तव॑ उ॒त वज्रो॒ गभ॑स्त्योः। यत्सूर्यो॒ न रोद॑सी॒ अव॑र्धयत्॥ ७॥

(१) **अस्य**-इस प्रभु के **केतवः**=प्रज्ञान **ववक्षुः**-हमारे लिये कल्याणों को प्राप्त कराते हैं। **उत**-और **गभस्त्योः**-बाहुवों में **वज्रः**-यह क्रियाशीलता रूप वज्र कल्याण को प्राप्त कराता है। अर्थात् प्रभु प्रदत्त प्रज्ञान को प्राप्त करके, तदनुसार क्रियाशील जीवनवाले बनकर ही हम कल्याण को प्राप्त करते हैं। (२) **यत्**=जब **सूर्यः न**-सूर्य के समान वे प्रभु (आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्) **रोदसी अवर्धयत्**=हमारे द्यावापृथिवी का, मस्तिष्क व शरीर का वर्धन करते हैं। प्रभु का प्रज्ञान

हमारे मस्तिष्क को दीप्त करता है, तो यह वज्र (क्रियाशीलता) हमारे शरीर को सबल बनाता है।

भावार्थ–ज्ञान व क्रियाशीलता ही उत्थान के प्रमुख साधन हैं। मस्तिष्क में प्रज्ञान, हाथों में क्रियाशीलता रूप वज्र ही हमारा लक्ष्य हो।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

महिषासुर विनाश

यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः। आदित्त इन्द्रियं महि प्र वावृधे॥ ८॥

(१) हे **प्रवृद्ध**=सब दृष्टिकोणों से बढ़े हुए, प्रत्येक गुण की चरमसीमा रूप **सत्पते**=उत्तमताओं के रक्षक प्रभो! **यदि**=यदि **सहस्रम्**=इन अनेक संख्याओंवाले **महिषान्**=महान् आसुरभावों को **अघः**=नष्ट करते हैं। **आत् इत्**=तब ही **ते**=आपका दिया हुआ यह **इन्द्रिय**=बल **महि प्रवावृधे**=खूब वृद्धि को प्राप्त करता है। (२) जब उपासक प्रभु का चिन्तन करता है तो वह प्रभु की शक्ति से शक्ति सम्पन्न होकर आसुरभावों को विनष्ट कर पाता है। यह आसुरभाव विनाश उसकी वास्तविक शक्ति का कारण बनता है।

भावार्थ–प्रभु-स्तवन से हम आसुरभावों का विनाश करते हुए शक्ति का वर्धन करें।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

अर्शसान-दहन

इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभिर्न्यर्शसानमोषति। अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे॥ ९॥

(१) **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **सूर्यस्य**=ज्ञानसूर्य की **रश्मिभिः**=किरणों से **अर्शसानम्**=राक्षसीभावों को **नि ओषति**=नितरां दग्ध करता है। इस प्रकार दग्ध करता है कि **इव**=जैसे **अग्निः वना**=आग वनों को दग्ध करती है। ज्ञानाग्नि में सब वासनाओं के झाड़ी-झंकाड़ जाल जाते हैं। (२) **सासहिः**=यह राक्षसीभावों को कुचलनेवाला पुरुष **प्रवावृधे**=खूब ही वृद्धि को प्राप्त होता है। राक्षसीभावों का विनाश ज्ञानवृद्धि द्वारा ही होता है।

भावार्थ–हम जितेन्द्रिय बनकर ज्ञान को बढ़ाते हुए, आसुरीभावों को विनष्ट करनेवाले बनें।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'ऋत्वियावती नवीयसी' धीतिः

इयं त ऋत्वियावती धीतिरेति नवीयसी। सपर्यन्ती पुरुप्रिया मिमीत इत्॥ १०॥

(१) **इयम्**=यह **ते धीतिः**=आपकी स्तुति **एति**=मुझे प्राप्त होती है। मैं आपका स्तवन करनेवाला बनता हूँ। वह स्तुति मुझे प्राप्त होती है जो **ऋत्वियावती**=ऋत्विय कर्मों से युक्त है, अर्थात् आपके स्तवन के साथ मैं समय-समय पर किये जाने योग्य कर्मों को करनेवाला होता हूँ। अतएव यह स्तुति **नवीयसी**=मेरे जीवन को प्रशस्यतर बनानेवाली होती है (नव=नु स्तुतौ)। (२) यह स्तुति **सपर्यन्ती**=आपका पूजन करती हुई, **पुरुप्रिया**=खूब ही प्रीणित करनेवाली होती है और **इत्**=निश्चय से **मिमीते**=हमारे जीवनों का उत्तम निर्माण करती है।

भावार्थ–कर्त्तव्य कर्मों से युक्त प्रभु-स्तवन हमारे जीवनों को प्रशस्त बनाता है।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

गर्भो यज्ञस्य, देवयुः

गर्भो यज्ञस्य देवयुः क्रतुं पुनीत आनुषक्। स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत्॥ ११॥

(१) **यज्ञस्य गर्भः**=यज्ञ का ग्रहण करनेवाला, सदा यज्ञशील, **देवयुः**=दिव्य गुणों को अपने साथ जोड़ने की कामनावाला यह स्तोता **आनुषक्**-निरन्तर **क्रतुम्**=अपनी शक्ति व प्रज्ञान को **पुनीते** पवित्र करता है सदा यज्ञों में प्रवृत्त रहने से उसकी शक्ति बढ़ती है और प्रभु प्राप्ति की कामना उसे ज्ञानदीप्त बनाती है। (२) यह व्यक्ति **इन्द्रस्य**-उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **स्तोमैः**-स्तोत्रों से **वावृधे**-वृद्धि को प्राप्त करता है और **इत्**-निश्चय से **मिमीते**=अपने जीवन का निर्माण करता है। प्रभु का स्तवन उसे प्रभु जैसा बनने की प्रेरणा देता है और इस प्रकार उसके जीवन का सुन्दर निर्माण होता है।

भावार्थ–हम यज्ञशील बनें, दिव्यगुणों को अपनाने की कामना करें, प्रभु स्तवन में प्रवृत्त हों। यही जीवन–निर्माण का मार्ग है।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

मित्रस्य सनिः पप्रथे

सनिर्मित्रस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये। प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत्॥ १२॥

(१) **मित्रस्य**-उस 'प्रमीतेः त्रायते'-पापों से बचानेवाले प्रभु का **सनिः**=सम्भजन करनेवाला **पप्रथे**=विस्तृत होता है, अपनी शक्तियों का यह विस्तार करनेवाला होता है। **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **सोमस्य पीतये**–सोम के पान के लिये होता है, अर्थात् सोम को अपने अन्दर सुरक्षित करता है। इस सोमरक्षण के द्वारा ही तो उसकी शक्तियों का विस्तार होता है। (२) इस **सुन्वते**=सोम का सम्पादन करनेवाले के लिये **वाशी**=यह वेदवाणी **प्राची इव**-(प्राङ् अञ्चति) आगे और आगे गतिवाली होती है। वेदवाणी इस सुन्वन् पुरुष की वृद्धि का कारण बनती है। यह वेदवाणी **इत्**-निश्चय से **मिमीते**=इसके जीवन का निर्माण करती है।

भावार्थ–प्रभु का सम्भजन करनेवाला अपनी शक्तियों का विस्तार करता है। यह जितेन्द्रिय पुरुष सोम का अपने अन्दर रक्षण करता है। वेदवाणी इसके जीवन में अग्रगति का कारण बनती है।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीविराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

विप्र-उक्थवाहस्-आयु

यं विप्रा उक्थवाहसोऽभिप्रमन्दुरायवः। घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत्॥ १३॥

(१) **यम्**=जिस ज्ञान को **विप्राः**–अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले, **उक्थवाहसः**-स्तोत्रों का धारण करनेवाले **आयवः**=गतिशील मनुष्य **अभिप्रमन्दुः**=प्रशंसित करते हैं, जिस ज्ञान की महिमा का प्रतिपादन ये 'विप्र–उक्थवाहस्-आयु' करते हैं, मैं उस **घृतं न**–घृत के समान 'मलक्षरण व दीप्ति' को प्राप्त करानेवाले ज्ञान को **आसनि**–अपने मुख में **पिप्ये**=आप्यायित करता हूँ। उस ज्ञान को अपने में आप्यायित करता हूँ, **यत्**=जो **ऋतस्य**=सत्य का है। (२) प्रभु से दिया गया वेदज्ञान 'सत्य ज्ञान' है, इसे मैं अपने अन्दर बढ़ाने का प्रयत्न करता हूँ। बढ़ा तभी पाता हूँ जब मैं 'विप्र उक्थवाहस् व आयु' बनता हूँ।

भावार्थ–हमारे में अपना पूरण करने की वृत्ति हो, स्तुति को हम करनेवाले बनें, गतिशील हों। ऐसा होने पर हम सत्य ज्ञान को देनेवाली वेदवाणी को धारण करेंगे। यह हमारे मलों का क्षरण करती हुई हमें दीप्त जीवनवाला बनायेगी।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

पुरुप्रशस्त सोम

उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत्। पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत्॥ १४॥

(१) **उत**-और **अदितिः**=(अ-दितिः, दो अवखण्डने) व्रतमय जीवनवाला, व्रतों को न तोड़नेवाला यह पुरुष **स्वराजे**=स्वयं देदीप्यमान, किसी अन्य से दीप्ति को न प्राप्त करनेवाले **इन्द्राय**=शत्रुओं के विद्रावक प्रभु के लिये **स्तोमम्**-स्तुति को **जीजनत्**=उत्पन्न करता है, स्तुति को करनेवाला बनता है। (२) उस सोम को अपने में प्रादुर्भूत करता है **यत् ऋतस्य**=जो उस सत्यस्वरूप प्रभु का है और **पुरुप्रशस्तम्**=अत्यन्त प्रशस्त है। **ऊतये**=जो स्तोम रक्षण के लिये होता है। यह स्तोम स्तोता को वासनाओं व रोगों के आक्रमण से बचाता है।

भावार्थ-हम प्रभु का स्तवन करें। यह स्तुति हमारा रक्षण करेगी और हमें अतिप्रशस्त जीवनवाला बनायेगी।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

ऊतये-प्रशस्तये

अभि वह्नय ऊतयेऽनूषत प्रशस्तये। न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत्॥ १५॥

(१) **वह्नयः**=(वह प्रापणे) अपने को उन्नतिपथ पर आगे और आगे प्राप्त करानेवाले उपासक **अभि अनूषत**=प्रातः-सायं प्रभु का स्तवन करते हैं। और इस स्तवन के द्वारा **उतये**=अपने रक्षण के लिये होते हैं और **प्रशस्तये**=अपने जीवन को प्रशस्त बनाने के लिये होते हैं। (२) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! इस स्तुति के कारण **हरी**=हमारे ये इन्द्रियाश्व **विव्रता न**=शास्त्र विरुद्ध व्रतोंवाले नहीं होते। **यत्**=जब ये इन्द्रियाश्व **ऋतस्य**=ऋत के हो जाते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ सत्य ज्ञान को प्राप्त करनेवाली व कर्मेन्द्रियाँ सत्य कर्मोंवाली होती हैं। ऐसी स्थिति में ये कभी विव्रत नहीं होती।

भावार्थ-प्रभु-स्तवन रक्षण व जीवन को प्रशस्त बनाने के लिये होता है। इस स्तवन से इन्द्रियाश्व सत्यमार्ग पर चलते हुए कभी शास्त्र विरुद्ध व्रतोंवाले नहीं होते।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

विष्णु त्रित व आप्त्य

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये। यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः॥ १६॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जब आप **विष्णवि**=(विष् व्याप्तौ) व्यापक उदार हृदयवाले पुरुष में **सोमम्**=सोम को **सं मन्दसे**-प्रशंसित करते हैं। **यद्वा**=अथवा **घ**=निश्चय से **त्रिते**=(त्रीन् तनोति) 'ज्ञान, कर्म, उपासना' तीनों का विस्तार करनेवाले में आप सोम को प्रशंसित करते हैं, **आप्त्ये**=आप्तों में उत्तम पुरुषों में आप इस सोम को प्रशंसित करते हैं। अर्थात् यह सोमरक्षण ही उन्हें 'विष्णु, त्रित व आप्त्य' बनाता है। एक पुरुष में उदारता (विष्णु) 'ज्ञान, कर्म, उपासना' तीनों के विस्तार (त्रित) व आप्तता को देखकर और इन बातों को सोममूलक जानकर लोग सोम का प्रशंसन तो करेंगे ही। (२) **यद् वा**=अथवा हे इन्द्र! आप **मरुत्सु**-इन प्राणसाधक पुरुषों में **इन्दुभिः**=इन सुरक्षित सोमकणों से **संमन्दसे**=(To shine) चमकते हैं। सोमकणों का संरक्षण ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है, यह बुद्धि को तीव्र बनाता है। इस तीव्र बुद्धि से प्रभु का दर्शन

होता है।

भावार्थ–सोमरक्षण से हम उदार हृदय, ज्ञान, कर्म, उपासना का विस्तार करनेवाले व आप्त बनते हैं। प्राणसाधना के होने पर सुरक्षित हुआ हुआ सोम ही हमें प्रभु-दर्शन के योग्य बनाता है।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

परावति-समुद्रे

यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे। अस्माकमित्सुते रणा समिन्दुभिः॥ १७॥

(१) हे **शक्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **यद् वा**=अथवा आप **परावति**=पराविद्यावाले में ब्रह्मविद्या को प्राप्त करनेवाले में तथा **समुद्रे**=(स+मुद्) सदा आनन्दमय स्वभाववाले पुरुष में **अधिमन्दसे**=(shine) आधिक्येन चमकते हैं। प्रभु प्राप्ति का उपाय 'पराविद्या में रुचिवाला होना' तथा 'सदा प्रसन्न रहने का प्रयत्न करना' है। (२) हे प्रभो! **अस्माकम्**=हमारी **इत्**=निश्चय से **सुते**=इस सोम सम्पादन रूप क्रिया के होने पर **इन्दुभिः**=सोमकणों के द्वारा **संरण** हमारे अन्दर रमणवाले होइये। यह सोमरक्षण हमें आपके दर्शन का पात्र बनाये।

भावार्थ–प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि–(क) हम पराविद्या में रुचिवाले हों, (ख) सदा आनन्दमय रहें, (ग) सोम को अपने अन्दर सुरक्षित करने के लिये यत्नशील हों।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'सन्वन् यजमान' की वृद्धि

यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते। उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः॥ १८॥

(१) हे **सत्पते**=उत्तम कर्मों के रक्षक प्रभो! आप **यद् वा**=निश्चय से **सुन्वतः**=सोम का सम्पादन करनेवाले, अपने अन्दर सोम को सुरक्षित करनेवाले **यजमानस्य**=यज्ञशील पुरुष के **वृधः**=बढ़ानेवाले **असि**=हैं। इस यज्ञशील सोमी पुरुष को आप सदा बढ़ाते हैं। (२) **वा**=अथवा उसके आप बढ़ानेवाले हैं **यस्य**=जिसके **उक्थे**=स्तोत्र में आप **इन्दुभिः**=सोमकणों के द्वारा **संरण्यसि**=सम्यक् प्रीतिवाले होते हैं। जो भी स्तोता सोमकणों का रक्षण करता हुआ प्रभु-स्तवन करता है, वह प्रभु का प्रिय बनता है। प्रभु का स्तोत्र उसके लिये प्रभु प्रीति का कारण बनता है।

भावार्थ–प्रभु सोमरक्षक यज्ञशील पुरुष का वर्धन करते हैं। सोमरक्षक स्तोता से किया जानेवाला स्तवन प्रभु को प्रिय होता है।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीविराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

यज्ञया तुर्वणे

देवंदेवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि। अधा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः॥ १९॥

(१) **देवम्**=उस प्रकाशमय **वः देवम्**=तुम्हें प्रकाशित करनेवाले **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली (वः) **इन्द्र**=तुम्हें ऐश्वर्यों को प्राप्त करानेवाले प्रभु को **अवसे**=रक्षण के लिये **गृणीषणि**=स्तुत करता हूँ। (२) **अधा**=अब **तुर्वणे**=शत्रुओं का हिंसन करनेवाले **यज्ञाय**=पूजनीय प्रभु के लिये **व्यानशुः**=मेरी स्तुतियाँ व्याप्त होती है।

भावार्थ–प्रभु-स्तवन से हमारा जीवन प्रकाशमय बनता है (देवम्), ऐश्वर्यशाली होता है (इन्द्रम्), यह स्तवन हमें रोगों व वासनाओं से बचाता है (अवसे), हमारे शत्रुओं का हिंसन करता है (तुर्वणे)।

ऋषिः—पर्वतः काण्वःॐ देवता—इन्द्रःॐ छन्दः—निचृदुष्णिक्ॐ स्वरः—ऋषभःॐ

यज्ञ-सोम-होत्रा

यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमेभिः सोमपातमम्। होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशुः॥ २०॥

(१) **यज्ञवाहसम्**=सब यज्ञों के प्राप्त करानेवाले उस प्रभु को **यज्ञेभिः**=यज्ञों से **वावृधुः**=बढ़ाते हैं और **व्यानशुः**=प्राप्त करते हैं। यज्ञों से दिव्य भाव का उत्तरोत्तर वर्धन होता है और अन्ततः हम यज्ञों को प्राप्त करानेवाले प्रभु को प्राप्त करते हैं। (२) **सोमेभिः**=सोमों के रक्षण के द्वारा **सोमपातमम्**=अधिक से अधिक सोम का रक्षण करनेवाले उस प्रभु को हम अपने अन्दर बढ़ाते हैं और उसे प्राप्त करते हैं। (३) यज्ञों के द्वारा वासनाओं का विनाश होता है, यज्ञशील पुरुष वासनाओं से बचा रहकर सोम का रक्षण करता है। सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि दीप्त होती है। ये दीप्त ज्ञानाग्निवाले पुरुष **होत्राभिः**=ज्ञान की वाणियों से **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को अपने अन्दर बढ़ाते हैं और अन्ततः प्रभु को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ–हम यज्ञशील हों, यह यज्ञशीलता हमें वासनाओं से बचाये। सोमरक्षण द्वारा दीप्त ज्ञानाग्निवाले होकर हम स्तोतों द्वारा उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की महिमा का वर्धन करें और प्रभु को प्राप्त होनेवाले हों।

ऋषिः—पर्वतः काण्वःॐ देवता—इन्द्रःॐ छन्दः—निचृदुष्णिक्ॐ स्वरः—ऋषभःॐ

प्रणीतयः-प्रशस्तयः

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः। विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः॥ २१॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार स्तुतिवाणियों से प्रभु का अपने में वर्धन करनेवाले व प्रभु को प्राप्त करनेवाले अनुभव करते हैं कि **अस्य**=इस प्रभु की **प्रणीतयः**=प्रणीतियाँ, उत्कृष्ट मार्ग पर अपने सखा को ले चलने के क्रम, **महीः**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। **उत**=और **प्रशस्तयः**=प्रभु की प्रशस्तियाँ–स्तुतियाँ **पूर्वीः**=हमारा पालन व पूरण करनेवाली हैं। इन स्तुति–वाणियों से हमें जीवन के उत्कृष्ट मार्ग की प्रेरणा मिलती है। (२) इस प्रभु के स्तोता **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिये **विश्वा वसूनि**=सब वसु **व्यानशुः**=विशेष रूप से प्राप्त होते हैं। दाश्वान् पुरुष प्रभु के प्रति अपने को दे डालनेवाला यह उपासक, सब वसुओं को प्राप्त करता है।

भावार्थ–हम प्रभु प्रेरणा के अनुसार चलें। प्रभु का शंसन करें। प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाले बनें। हम सब वसुओं (धनों) को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—पर्वतः काण्वःॐ देवता—इन्द्रःॐ छन्दः—उष्णिक्ॐ स्वरः—ऋषभःॐ

प्रभु-स्मरण-ओजस्विता-वासना विनाश

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः। इन्द्रं वाणीरनूषता समोजसे॥ २२॥

(१) **देवासः**=देववृत्ति के पुरुष **वृत्राय हन्तवे**=वृत्र के, ज्ञान की आवरणभूत वासना के विनाश के लिये **इन्द्रम्**=उस शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु को **पुरः दधिरे**=अपने आगे स्थापित करते हैं। सदा उस इन्द्र का स्मरण करते हैं, यह स्मरण ही उन्हें वासनाओं से आक्रान्त नहीं होने देता। (२) **इन्द्रम्**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु को ही **वाणीः**=इन की स्तुति–वाणियाँ **अनूषत**=स्तुत करती हैं। यह स्तवन **सं ओजसे**=समीचीन ओज के लिये होता है। स्तवन के द्वारा उत्पन्न ओज ही इन्हें वासनारूप शत्रुओं के विनाश के योग्य बनाता है।

भावार्थ–स्तवन के द्वारा प्रभु के ओज से ओजस्वी बनकर हम वासनारूप शत्रुओं का विनाश कर पाते हैं।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्रभु महिमा स्मरण व ओजस्विता की प्राप्ति

महान्तं महिना वयं स्तोमेभिर्हवनश्रुतम्। अर्कैरभि प्र णोनुमः समोजसे॥ २३॥

(१) **महिना**=अपनी महिमा से **महान्तम्**-महान् उस प्रभु को **वयम्**=हम **स्तोमेभिः**=स्तोत्रों के द्वारा **अभि प्रणोनुमः**=बारम्बार स्तुत करते हैं। यह प्रभु-स्तवन ही हमें भी महान् बनाता है। (२) उस **हवनश्रुतम्**=उपासक की पुकार को सुननेवाले प्रभु को **अर्कैः**=स्तुति साधन मन्त्रों के द्वारा हम स्तुत करते हैं। यह स्तवन ही **सं ओजसे**=समीचीन ओज के लिये होता है। इस ओज से ओजस्वी बनकर हम वासना विनाश के द्वारा प्रभु को पानेवाले बनते हैं।

भावार्थ–हम प्रभु-स्तवन करते हुए प्रभु की महिमा का स्मरण करते हैं, ओजस्वी बनकर वासनाओं का विनाश कर पाते हैं।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्रभु की व्याप्ति व दीप्ति

न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम्। अमादिदस्य तित्विषे समोजसः॥ २४॥

(१) प्रभु वे हैं **यम्**=जिनको **रोदसी**-ये द्यावापृथिवी **न विविक्तः**=अपने से पृथक् नहीं कर पाते। प्रभु सम्पूर्ण द्यावापृथिवी में व्याप्त हैं, कोई स्थान नहीं जहाँ कि प्रभु न हों। **वज्रिणम्**=उस वज्रहस्त शासक प्रभु को **अन्तरिक्षाणि**=(अन्तराक्षान्तानि) द्यावापृथिवी के बीच में रहनेवाले ये सब लोक-लोकान्तर **न**=पृथक् नहीं कर पाते। प्रभु इन लोकों में हैं, ये लोक प्रभु में हैं। (२) **अस्य**-इस **ओजसः**=ओज के पुञ्ज प्रभु की **अमात्**-ओजस्विता से **इत्**=ही **संतित्विषे**=सब लोक-लोकान्तर सम्यक् दीप्त होते हैं। सब लोकों को दीप्त करनेवाले वे प्रभु हैं। मुझे भी प्रभु से ही दीप्ति प्राप्त होगी।

भावार्थ–वे सर्वव्यापक प्रभु ही अपनी व्याप्ति से सब पिण्डों को दीप्त कर रहे हैं।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

संग्राम विजय

यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः। आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः॥ २५॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **यत्**-जब **पृतनाज्ये**=संग्राम में **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **त्वा**=आपको **पुरः दधिरे**=आगे स्थापित करते हैं। **आत् इत्**=तब शीघ्र ही **हर्यता**=ये गतिशील **हरी**=इन्द्रियाश्व **ते ववक्षतुः**=हमें आपके समीप प्राप्त कराते हैं। (२) संसार में वासनाओं के संग्राम में विजय प्राप्ति प्रभु कृपा से ही होती है। प्रभु ही वस्तुतः हमारे वासनारूप शत्रुओं का विनाश करते हैं। इस वासना विनाश से निर्मल हुई-हुई इन्द्रियाँ हमें प्रभु के समीप प्राप्त कराती हैं।

भावार्थ–देवता प्रभु के उपासन से वासना संग्राम में विजयी बनते हैं। निर्मल इन्द्रियाश्व हमें प्रभु के समीप प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'नदीवृत्'-वृत्र का वर्त्य

यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधीः। आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः॥ २६॥

(१) हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! **यदा**=जब **नदीवृतम्**=इस ज्ञानजल के प्रवाहवाली सरस्वती नदी को आवृत कर लेनेवाले इस **वृत्रम्**=काम-वासना रूप वृत्र को **शवसा**=शक्ति के द्वारा **अवधीः**=आप विनष्ट करते हैं। **आत् इत्**=तब ही शीघ्र **हर्यता हरी**=ये गतिशील इन्द्रियाश्व **ते ववक्षतुः**=आपके समीप हमें प्राप्त कराते हैं। (२) प्रभु की प्राप्ति में अज्ञान का आवरण ही विघातक बना हुआ है। इस आवरण के हटते ही हम प्रभु का दर्शन कर पाते हैं। यह आवरण ही 'वृत्र' है, वासना है। प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर हम इस वासना को विनष्ट करें। इसके नष्ट होते ही सरस्वती नदी का ज्ञानजल हमारे जीवनों को निर्मल कर डालेगा। उस समय हमारे ये इन्द्रियाश्व सन्मार्ग से आगे बढ़ते हुए हमें प्रभु के समीप प्राप्त करायेंगे।

भावार्थ–प्रभु की उपासना हमें शक्ति-सम्पन्न बनायेगी। हम वासना का विनाश करके ज्ञान को अपने में प्रवाहित कर पायेंगे। उस समय हमारे इन्द्रियाश्व उस मार्ग से चलेंगे, जिससे कि हम प्रभु के समीप और समीप पहुँचते जायेंगे।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

विष्णु के तीन कदम

यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे। आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः॥ २७॥

(१) **यदा**=जब **विष्णुः**=यह उदारवृत्ति का पुरुष (विष् व्याप्तौ) **ते ओजसा**=हे प्रभो! आप के ओज से, बल से **त्रीणि पदा विचक्रमे**=तीन पदों को रखता है। अर्थात् आपकी उपासना से आपके सम्पर्क में आता हुआ शक्तिशाली बनकर शरीर में तेजस्वी, मन में सब के प्रति हित की भावनावाला व मस्तिष्क में प्राज्ञ बनता है **आत् इत्**=तब शीघ्र ही **हर्यता हरी**=ये गतिशील इन्द्रियाश्व **ते ववक्षतुः**=आपके समीप हमें प्राप्त कराते हैं। (२) प्रभु की उपासना से पूर्व जीव उन्नति न कर सकने के कारण 'वामन' (बौना)-सा होता है। प्रभु की उपासना उसे 'विष्णु' (व्यापक) बनाती है। यह शरीर में तैजस, मन में वैश्वानर व मस्तिष्क में प्राज्ञ बनता है। यही इसके तीन पद हैं। यह पुरुष अपनी इन्द्रियों से सत्कर्मों को करता हुआ प्रभु के समीप प्राप्त होता है।

भावार्थ–हम उदारवृत्ति के बनते हुए जीवन में तीन पदों को रखें। तैजस, वैश्वानर व प्राज्ञ बनें। इन्द्रियों से सन्मार्ग का आक्रमण करते हुए प्रभु के समीप प्राप्त हों।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

इन्द्रिय संयम द्वारा भुवन संयम

यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे। आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे॥ २८॥

(१) **यदा**=जब **ते**=तेरे ये **हर्यता हरी**=गतिशील इन्द्रियाश्व **दिवे दिवे**=प्रतिदिन **वावृधाते**=वृद्धि को प्राप्त होते हैं, अर्थात् इन इन्द्रियाश्वों को जब तू वश में करके दिन व दिन आगे और आगे बढ़ता है। **आत् इत्**=तब ही शीघ्र **ते**=तेरे द्वारा **विश्वा भुवनानि**=सब भुवन **येमिरे**=नियम में किये जाते हैं। (२) जितेन्द्रिय पुरुष ही सब भुवन को वश में करने में समर्थ होता है।

भावार्थ—जब इन्द्रियों के संयम के द्वारा हम आगे और आगे बढ़ते हैं तो सब भुवनो का संयम करनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

मारुतीः विशः

यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे। आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे॥ २९॥

(१) हे **इन्द्र**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यदा**-जब **ते**-आपकी ये **मारुतीः विशः**-प्राणसाधक प्रजायें **तुभ्यम्**=आपकी प्राप्ति के लिये **नियेमिरे**-अपने को नियम में करनेवाली होती हैं। **आत् इत्**=तब शीघ्र ही **ते**-वे अपने को वश में करनेवाले लोग **विश्वा भुवनानि**=सब भुवनों को **येमिरे**=वशीभूत करनेवाले होते हैं। (२) प्राणसाधना के द्वारा इन्द्रियों का संयम होता है। यह संयमी पुरुष प्रभु को प्राप्त करने का अधिकारी होता है। यह सब भुवनों को भी वश में कर पाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा अपना संयम करते हुए हम सबको वश में करनेवाले हों और प्रभु प्राप्ति के अधिकारी बनें।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

ज्ञानसूर्योदय

यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः। आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे॥ ३०॥

(१) **यदा**=जब **अमुम्**=उस **सूर्यम्**-ज्ञानसूर्य को **दिवि**-मस्तिष्करूप द्युलोक में **शुक्रं ज्योतिः**=देदीप्यमान ज्ञान ज्योति को **अधारयः**-धारण करता है। **आत् इत्**-तब शीघ्र ही **ते**=तेरे द्वारा **विश्वा भुवनानि**=सब भुवन **येमिरे**=वश में किये जाते हैं। (२) ज्ञानसूर्योदय के होने पर सब अन्धकार विनष्ट हो जाता है। उस अन्धकार के विनाश के साथ सब वासनाओं का विलय हो जाता है, इस वासना विलय से मनुष्य पूर्ण संयमी होकर सब भुवनों को वश में कर पाता है।

भावार्थ—हम मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञानसूर्य का धारण करें। यह ज्ञानसूर्य हमें सब भुवनों को वशीभूत करने में समर्थ करे। अथवा ज्ञान-सूर्योदय के होने पर हम आत्मसंयम के द्वारा सर्वसंयमी बनते हैं।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

धीतिभिः सुष्टुतिम्

इमां त इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः। जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे॥ ३१॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **विप्रः**=यह ज्ञानी पुरुष **इमाम्**-इस **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को **धीतिभिः**=उत्तम कर्मों के साथ **ते इयर्ति**=आपके प्रति प्रेरित करता है। अर्थात् यह विप्र उत्तम कर्मों को करता हुआ प्रभु का स्तवन करता है। (२) उसी प्रकार यह स्तुति को प्रेरित करता है **इव**=जैसे **पदा**=पैरों को **पिप्रतीम्**=पूर्ण करती हुई **जामिम्**-बहिन को **प्राध्वरे**-प्रकृष्ट गृहस्थ यज्ञ में प्रेरित करता है। सप्तपदी में सात पैरों को रखती हुई बहिन को भाई उत्तम गृहस्थ में प्रवेश कराता है। इसी प्रकार एक विप्र उत्तम स्तुति को प्रभु के प्रति प्रेरित करता है।

भावार्थ—हम उत्तम कर्मों के साथ प्रभु-स्तवन करते हुए अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले बनें।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'प्रिय धाम' की प्राप्ति

यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन्। नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे॥ ३२॥

(१) **यद्**=जब **अस्य**=इस प्रभु के **प्रिये धामनि**=प्रिय धाम के निमित्त **समीचीनासः**=सम्यक् गति करते हुए ये उपासक **अस्वरन्**=उस प्रभु के गुणों का उच्चारण करते हैं। वस्तुतः प्रभु प्राप्ति का मार्ग तो यही है कि हम (क) प्रभु का स्तवन करें, (ख) और सदा उत्तम मार्ग पर चलें। (२) उत्तम मार्ग में चलने का भाव यह है कि **नाभा**=हम सदा नाभि में निवास करें। 'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः'=यज्ञ ही भुवन की नाभि है। **यज्ञस्य दोहना**=सदा यज्ञों का दोहन करनेवाले हों। **प्राध्वरे**=प्रकृष्ट हिंसा रहित कर्मों में हमारी गति हो।

भावार्थ—प्रभु के प्रिय धाम की प्राप्ति का उपाय यह है कि हम प्रभु-स्तवन करते हुए सदा यज्ञादि उत्तम कर्मों में गतिवाले हों।

ऋषिः—पर्वतः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—आर्चीस्वराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'सुवीर्य-स्वश्व्य-सुगव्य'

सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः। होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे॥ ३३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **नः**=हमारे लिये **सुवीर्यम्**=उत्तम वीर्य को, **स्वश्व्यम्**=उत्तम कर्मेन्द्रिय समूह को तथा **सुगव्यम्**=उत्तम ज्ञानेन्द्रिय समूह को **दद्धि**=दीजिये। गत मन्त्र के अनुसार सदा प्रभु-स्तवनपूर्वक उत्तम कर्मों को करने से हमें 'सुवीर्य-स्वश्व्य व सुगव्य' की प्राप्ति होती है। (२) हे प्रभो! आप **होता इव**=एक होता के समान **प्राध्वरे**=प्रकृष्ट हिंसारहित कर्मों में हमारी गति के होने पर **पूर्व चित्तये**=हमारे लिये पालक व पूरक चित्ति के लिये हों। हमें आप उस ज्ञान को दें, जो हमारा पालन व पूरण करनेवाला हो।

भावार्थ—हम प्रभु के अनुग्रह से यज्ञादि उत्तम कर्मों में चलते हुए सदा पालक व पूरक ज्ञान को प्राप्त करें। प्रभु हमारे लिये 'सुवीर्य, स्वश्व्य व सुगव्य' को दें।

अपने जीवन को अध्वरों में पवित्र करनेवाला यह व्यक्ति अपने पवित्र जीवन से औरों को भी पवित्र करता है सो 'नारद' (नारं नरसमूहं दायति) कहलाता है। यह 'काण्व' अत्यन्त मेधावी नारद इन्द्र का स्तवन करता हुआ कहता है कि—

तृतीयोऽनुवाकः

१३. [त्रयोदशं सूक्तम्]

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

प्रशस्त 'बल व प्रज्ञान'

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम्। विदे वृधस्य दक्षसो महान्हि षः॥ १॥

(१) **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **सोमेषु सुतेषु**=सोम के उत्पन्न होने पर, शरीर में शक्तिकणों के रक्षण के होने पर **उक्थ्यम्**=प्रशंसनीय **क्रतुम्**=प्रज्ञान व शक्ति को **पुनीते**=पवित्र करता है। प्रभु ने शरीर में सोम को उत्पन्न किया है। इस सोम के रक्षण के होने पर शरीर में बल का वर्धन होता है, तो मस्तिष्क में ज्ञान का। इस प्रकार जीवन प्रशस्त बनता है। (२) ये प्रभु **वृधस्य**=वृद्धि के कारणभूत **दक्षसः**=बल के **विदे**=प्राप्त कराने के लिये होते हैं। वस्तुतः **सः**=वे

प्रभु **हि**=निश्चय से **महान्**=बड़े हैं। प्रभु की महिमा अनन्त है। हम प्रभु का स्मरण करें। प्रभु स्मरण हमें वासनाओं के आक्रमण से बचायेगा और हम सोमरक्षण के द्वारा प्रशस्त बल व प्रज्ञान को प्राप्त करेंगे।

भावार्थ–प्रभु सुरक्षित सोम के द्वारा हमारे लिये प्रशस्त 'बल व प्रज्ञान' को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

सुपारः सुश्रवस्तमः

स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः। सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित्॥ २॥

(१) **सः**=वे प्रभु **प्रथमे**=इस अत्यन्त विस्तृत **व्योमनि**=आकाश में व **देवानां सदने**-देववृत्ति के पुरुषों के गृहों में स्थित हुए-हुए **वृधः**=वर्धन को करनेवाले हैं। प्रभु आकाश की तरह व्यापक हैं, वस्तुतः प्रभु ही आकाश हैं। देववृत्ति के पुरुषों के घरों में प्रभु का निवास है। ये प्रभु ही वस्तुतः उन्हें देव बनाते हैं। (२) प्रभु **सुपारः**=अच्छी प्रकार हमें सब विघ्नों से पार करनेवाले हैं। **सुश्रवस्तमः**-उत्तम ज्ञानवाले हैं, उत्तम ज्ञान को देनेवाले हैं। और सारे **अप्सुजित्**=सम्यक् कर्मों में विजय को प्राप्त करानेवाले हैं। सब कर्म प्रभु के अनुग्रह से ही पूर्ण होते हैं।

भावार्थ–प्रभु आकाश में सर्वत्र व्याप्त हैं। देव गृहों में प्रभु का निवास है। ये प्रभु ही सब विघ्नों से पार करनेवाले, उत्तम ज्ञान को देनेवाले व कर्मों में विजय को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः– **नारदः काण्वः**॥ देवता–**इन्द्रः**॥ छन्दः–**उष्णिक्**॥ स्वरः–**ऋषभः**॥

वाजसातये-वृधे

तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम्। भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे॥ ३॥

(१) मैं **तम्**=उस **शुष्मिणम्**-शत्रु-शोषक बल को प्राप्त करानेवाले **इन्द्र** सर्वशक्तिमान् प्रभु को **भराय**=संग्राम के लिये **वाजसातये**-शक्ति को प्राप्त कराने के लिये **अह्वे**=पुकारता हूँ। प्रभु ही वह शक्ति देते हैं, जिससे कि हम संग्राम में विजयी हो पाते हैं। (२) **सुम्ने**-सुख प्राप्ति के निमित्त आप **नः**-हमारे **अन्तमः सखा**-अन्तिकम मित्र **भव**-होइये। इस मित्रता के द्वारा **वृधे**=हमारे वर्धन के लिये होइये। 'सुम्ने' शब्द का अर्थ स्तोत्र होता है। हम आपका स्तवन करें, तो आप हमारे मित्र होकर हमारी वृद्धि का कारण बनिये।

भावार्थ–प्रभु शक्ति प्राप्त कराते हैं, यह शक्ति ही हमें संग्राम में विजयी बनाती है। हम प्रभु का स्तवन करते हैं, तो हमारे मित्र होते हुए हमारी वृद्धि का कारण बनते हैं।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

वसुवर्षण व हृदय दीपन

इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः। मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि॥ ४॥

(१) हे **गिर्वणः**=(गीर्भिः वननीय) ज्ञान की वाणियों से उपासनीय **इन्द्र**–परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सुन्वतः**=सृष्टियज्ञ को करते हुए **ते**=तेरी **इयं रातिः**=यह दान क्रिया **क्षरति**-मेघवत् सुखों का वर्षण करनेवाली होती है। प्रभु सब वसुओं का वर्षण करते हैं। (२) **मन्दानः**-अपनी राति से आनन्दित करते हुए आप **अस्य बर्हिषः**-इस वासनाशून्य हृदय के **विराजसि**=विशिष्ट रूप से दीप्त करनेवाले होते हो।

भावार्थ–उपासक के लिये प्रभु की दान क्रिया निरन्तर वसुओं का वर्षण करनेवाली होती

है। वासना शून्य हृदय में आसीन होते हुए आप उस हृदय को दीप्त करते हैं।

ऋषिः-**नारदः काण्वः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः-**ऋषभः** ॥

'चित्रं स्वर्विदं' रयिम्

नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत्त्वा सुन्वन्त ईमहे। रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम्॥ ५ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नूनम्**=निश्चय से **नः**=हमारे लिये **तत्**=उस धन को **दद्धि**=दीजिये, **यत्**=जिसे **सुन्वन्तः**=अपने अन्दर सोम का सम्पादन करते हुए हम **त्वा ईमहे**=आप से माँगते हैं। (२) हे प्रभो! **नः**=हमारे लिये **रयिं आभर**=उस धन को प्राप्त कराइये जो **चित्रम्**=(चित्) चेतना को देनेवाला है, ज्ञान का बढ़ानेवाला है और **स्वर्विदम्**=स्वर्ग को प्राप्त करानेवाला है। जिस धन के द्वारा हमारा घर स्वर्ग बनता है और जिससे हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है।

भावार्थ-प्रभु हमें उस धन को प्राप्त करायें, जो ज्ञान प्राप्ति के साधनों को जुटाने में सहायक हो, तथा जो हमें आवश्यक भोग्य पदार्थों को प्राप्त कराके सुखमय जीवनवाला बनाये।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

विचर्षणिः

स्तोता यत्ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद्गिरः। वयाइवानु रोहते जुषन्त यत्॥ ६ ॥

(१) हे प्रभो! **यत्**=जब यह साधक **ते स्तोता**=आपका स्तवन करनेवाला होता है, तो यह **विचर्षणिः**=विशेषेण द्रष्टा बनता है, संसार के सब पदार्थों को ठीक रूप में देखता है। अब यह **गिरः**=ज्ञान की वाणियों को **अति प्रशर्धयत्**=अतिशयेन शत्रु प्रसहनशील करता है। अर्थात् सदा ज्ञान की वाणियों के अध्ययन में लगा रहकर काम-क्रोध आदि शत्रुओं से अपने को आक्रान्त नहीं होने देता। (२) **यत्**=जब ये साधक **जुषन्त**=प्रीतिपूर्वक इन वाणियों का सेवन करते हैं तो **वयाः इव**=वृक्ष की शाखाओं की तरह **अनुरोहते**=अनुकूलता से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। जैसे वृक्ष की शाखायें ऊपर और ऊपर फैलती चलती हैं, उसी प्रकार इस स्तोता में उस स्तुत्य प्रभु के गुणों का वर्धन होता चलता है।

भावार्थ-प्रभु-स्तवन हमारे दृष्टिकोण को ठीक बनाता है, हमारे जीवन में ज्ञान की वाणियाँ काम-क्रोध आदि शत्रुओं का वर्धन करनेवाली होती हैं, हमारे में दिव्यगुणों का उत्तरोत्तर वर्धन होता है।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

ज्ञान का प्रकाश

प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुर्हवम्। मदेमदे ववक्षिथा सुकृत्वने॥ ७ ॥

(१) हे प्रभो! आप **प्रत्नवत्**=प्राचीनकाल की तरह, अर्थात् जैसा आप सदा से करते आ रहे हैं, उसी प्रकार **गिरः जनय**=ज्ञान की वाणियों को हमारे में प्रादुर्भूत करिये। हृदयस्थ आपके द्वारा हमें ज्ञान की वाणियों का प्रकाश प्राप्त हो। **जरितुः**=स्तोता की **हवम्**=पुकार को **शृणुधि**=आप सुनिये। स्तोता की प्रार्थना आप द्वारा सुनी जाये। (२) हे प्रभो! आप **मदे मदे**=सोम के रक्षण से उत्पन्न मद (=उल्लास) के होने पर **सुकृत्वने**=इस शुभ कर्म करनेवाले के लिये **ववक्षिथ**=सब इष्ट वस्तुओं को प्राप्त कराते हैं। सोमरक्षण से हमारी वृत्ति शुभ बनती है, यह शुभवृत्ति हमें शुभ

कर्मों को कराती है। ये शुभ कर्म शुभ फलों का साधन बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से हमारे हृदयों में ज्ञान की वाणियों का प्रकाश हो। हमारी प्रार्थना प्रभु से सुनी जाये। हम सोमरक्षण द्वारा शुभ कर्मों को करते हुए शुभ ही फलों को प्राप्त करें।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

उत्कृष्ट बुद्धि की प्राप्ति

क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः। अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः॥ ८॥

(१) **अस्य**-इस प्रभु की **सूनृताः**-प्रिय सत्य वाणियाँ **क्रीडन्ति**=इस प्रकार विहरण करती हैं, **न**=जैसे **प्रवता यतीः आपः**=निम्न मार्ग से गति करते हुए जल। हमें प्रभु की वेदवाणियाँ प्राप्त होती हैं, तब हम नम्र-विनीत-झुके हुए (निम्न प्रवत्) बनते हैं। (२) **अया**=इस **धिया**=बुद्धि के हेतु से **यः उच्यते**-जिसकी प्रार्थना की जाती है, वह प्रभु ही **दिवः पतिः**=ज्ञान का स्वामी है। उस ज्ञान के स्वामी से ही हम उत्कृष्ट बुद्धि की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु की प्रार्थना करते हैं। प्रभु हमें उत्कृष्ट बुद्धि प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

नमोवृधैः अवस्युभिः

उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद्वशी। नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण॥ ९॥

(१) **उत उ**=निश्चय से **यः**=जो आप **पतिः उच्यते**=संसार के स्वामी कहे जाते हैं। वे आप **कृष्टीनाम्**=सब मनुष्यों के **एकः इत्**=अकेले ही **वशी**-वश में करनेवाले हैं। सब के आप ही शासक हैं। (२) **नमोवृधैः**=नमन की भावना को उत्तरोत्तर अपने में बढ़ानेवाले, **अवस्युभिः**-रक्षणेच्छु पुरुषों के साथ जो भी व्यक्ति रोगों व वासनाओं से अपना रक्षण करते हैं, उन पुरुषों के साथ **सुते**=सोम का सम्पादन होने पर आप **रण**-(रमस्व) आनन्द का अनुभव कीजिये। अर्थात् ये लोग आपकी प्रीति के पात्र बनें।

भावार्थ—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के शासक प्रभु के वे व्यक्ति प्रिय होते हैं, जो (क) नम्रता को धारण करते हैं, (ख) अपने शरीरों को रोगों से तथा मनों को वासनाओं के आक्रमण से बचाते हैं, (ग) तथा शरीर में सोम शक्ति (वीर्य शक्ति) का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'श्रुत विपश्चित्' प्रभु का स्तवन

स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा। गन्तारा दाशुषो गृहं नमस्विनः॥ १०॥

(१) उस प्रभु का तू **स्तुहि**=स्तवन करे, जो **श्रुतम्**-सर्वत्र वेदवाणियों में सुने जाते हैं, तथा **विपश्चितम्**=ज्ञानी हैं, सम्पूर्ण ज्ञान के निधान हैं। (२) उस प्रभु का तू स्तवन कर **यस्य**-जिस **प्रसक्षिणा**=वासनारूप शत्रुओं का अभिभव करनेवाले **हरी**-इन्द्रियाश्व, ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्व **नमस्विनः**-नमस्कार की भावनावाले **दाशुषः**=दाश्वान् यज्ञशील पुरुष के **गृहम्**-शरीरगृह को **गन्तारा**=प्राप्त होते हैं। अर्थात् प्रभु इस यज्ञशील आराधक को उन उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं, जो वासनारूप शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु के प्रति नमन की भावनावाले हों। दाश्वान् (यज्ञशील) बनें। प्रभु कृपा से हमें वासनाओं से अनाक्रान्त इन्द्रियाँ प्राप्त होंगी।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'सशक्त कार्यकारिणी' इन्द्रियाँ

तूतुजानो महेमतेऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः। आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते॥ ११॥

(१) हे **महेमते**=(महते फलाय मतिर्यस्य) महान् फल के लिये बुद्धिवाले प्रभो! अर्थात् महान् मोक्षरूप फल को प्राप्त कराने के लिये बुद्धि को देनेवाले प्रभो! **तूतुजानः**=हमारे शत्रुओं का सहार करते हुए आप उन **अश्वेभिः**=इन्द्रियाश्वों के साथ **यज्ञं आयाहि**-हमारे जीवनयज्ञ में प्राप्त होइये, जो **प्रुषितप्सुभिः**=शक्ति से सिक्त रूपवाले, स्निग्धरूपवाले हैं व **आशुभिः**=शीघ्रता से अपने कर्मों का व्यापन करनेवाले हैं। (२) **ते**-तेरे इस उपासक के लिये **इत् हि**=निश्चय से **शाम्**=शान्ति प्राप्त हो। वस्तुतः जीवन में शान्ति तभी प्राप्त होती है जब कि इन्द्रियाँ उत्तम हों। 'सुख' का शब्दार्थ इन्द्रियों का उत्तम होना (सु) ही तो है। प्रभु कृपा से हमें वे इन्द्रियाँ प्राप्त हों जो सुरक्षित सोम के द्वारा शक्ति के सेचनवाली हों, तथा अपने कार्यों में शीघ्रता से व्याप्त होनेवाली हों।

भावार्थ-वे बुद्धि को देनेवाले प्रभु हमारे लिये सशक्त कर्मों में व्याप्त होनेवाली इन्द्रियों को दें, जिससे कि हमारा जीवन निरुपद्रव व शान्तिवाला हो।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

रयि-श्रवस्

इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय। श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम्॥ १२॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन्! **शविष्ठ**=निरतिशय शक्तिवाले सर्वशक्तिमन्! **सत्पते**=सज्जनों के रक्षक प्रभो! आप **गृणत्सु**=स्तुति-वचनों का उच्चारण करनेवालों में **रयिं धारय**=ऐश्वर्य का धारण करिये। उस ऐश्वर्य का धारण करिये जो इन स्तोताओं को भी शक्तिशाली व सत्कर्मों का पालक बनाये। (२) हे प्रभो! आप **सूरिभ्यः**=इन ज्ञानी पुरुषों के लिये **श्रवः**=उस ज्ञान को प्राप्त कराइये, जो **अमृतम्**=अमृतत्व को, नीरोगता को देनेवाला हो, तथा **वसुत्वनम्**=उत्तम निवास का कारण बने।

भावार्थ-प्रभु हमें उस ऐश्वर्य को प्राप्त करायें, जो बल व उत्तमता का जनक हो। प्रभु उस ज्ञान को दें, जो नीरोगता व उत्तम निवास का साधन बने।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

प्रातः व मध्याह्न में प्रभु-स्तवन

हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यन्दिने दिवः। जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि॥ १३॥

(१) हे इन्द्र=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सूरे उदिते**=सूर्योदय के होने पर **त्वा हवे**=आप को मैं पुकारता हूँ। इसी प्रकार **दिवः**=दिन के **मध्यन्दिने**=मध्य भाग में, दुपहर के समय **हवे**=मैं आपको पुकारता हूँ। जीवनरूप दिन के प्रथम २४ वर्ष प्रातःकाल हैं, अगले ४४ वर्ष मध्याह्न हैं। इन में हम प्रभु का स्तवन करते हुए प्रभु के प्रिय बनते हैं। (२) स्तवन किये जाते हुए हे प्रभो! आप **जुषाणः**=प्रीयमाण होते हुए **सप्तिभिः**=इन इन्द्रियाश्वों के साथ **नः आगहि**=हमें प्राप्त होइये। आपका स्तवन हमारी इन्द्रियों को पवित्र बनानेवाला हो। जीवन के प्रातः व मध्याह्न में यदि हम इन्द्रियों को पवित्र रख सके, तो जीवन के सायंकाल में तो ये इन्द्रियाश्व शान्त बने ही रहेंगे।

भावार्थ-प्रभु का स्तवन हमारे इन्द्रियाश्वों को निर्मल बनानेवाला हो।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'पूर्व्य तन्तु' का तनन

आ तू गहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः। तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं यथा विदे॥ १४॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि तू **आगहि तु**-आ तो, अर्थात् प्रभु की ओर चलनेवाला बन। **प्र द्रव**=और शीघ्रता से अपने कर्त्तव्य कर्मों को करनेवाला हो। **गोमतः**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले, इन्द्रियों के प्रशस्त बनानेवाले **सुतस्य**=उत्पन्न हुए-हुए सोम का **मत्स्वा**-तू आनन्द ले। इस सोम के रक्षण के द्वारा जीवन में उल्लासवाला बन। (२) **पूर्व्यम्**=सृष्टि के प्रारम्भ में ही दिये गये **तन्तुं तनुष्व**-यज्ञ तन्तु का विस्तार करनेवाला बन। इसलिए तू इस यज्ञ तन्तु का विस्तार कर कि **यथा विदे**=ठीक यथार्थ वस्तुओं का तू ग्रहण कर सके।

भावार्थ-हम प्रभु की ओर चलें। कर्त्तव्य कर्मों को स्फूर्ति के साथ करनेवाले हों। सोमरक्षण द्वारा इन्द्रियों को प्रशस्त बनायें। यज्ञशील हों।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

अन्धसः अविता इत् असि

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्। यद्वा समुद्रे अन्धसोऽवितेदसि॥ १५॥

(१) हे **शक्र**-सर्वशक्तिमन् प्रभो! **यत्**=जो आप **परावति**=सुदूर द्युलोक में **असि**=हैं। हे **वृत्रहन्**=वासना को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **यत्**-जो आप **अर्वावति**-इस समीप के पृथ्वीलोक में हैं। **यद् वा**-अथवा जो आप **समुद्रे**=इस अन्तरिक्षलोकरूप समुद्र में हैं। आप **इत्**=निश्चय से **अन्धसः**=इस आध्यातत्व सोम के द्वारा **अविता असि**-हमारा रक्षण करनेवाले हैं। (२) वे सर्वव्यापक प्रभु इन सब लोकों में निवास करनेवाले प्राणियों का सोम के द्वारा रक्षण करते हैं। शरीर में उत्पन्न हुई-हुई सोम शक्ति शरीर में सुरक्षित होने पर सब रोगों से बचाती है। सोमरक्षण के द्वारा हम मृत्यु को अपने से दूर रखते हैं।

भावार्थ-द्युलोकस्थ, अन्तरिक्षस्थ, पृथिवीस्थ सब प्राणियों के रक्षण के लिये प्रभु ने सोम-शक्ति का स्थापन किया है।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

गिरः-इन्दवः

इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्दवः। इन्द्रे हविष्मतीर्विशो अराणिषुः॥ १६॥

(१) **नः**=हमारी **गिरः**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुति-वाणियाँ **इन्द्रं वर्धन्तु**-उस परमैश्वर्यशाली प्रभु का वर्धन करें, प्रभु के गुणों का गायन करें, उसकी महिमा का सर्वत्र प्रकाश करें। **सुतासः**=शरीर में उत्पन्न हुए हुए **इन्दवः**=सोमकण **इन्द्रम्**-उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को हमारे अन्दर बढ़ायें। अर्थात् सोमरक्षण के द्वारा तीव्र बुद्धि बनकर हम प्रभु का दर्शन करनेवाले बनें। (२) **हविष्मतीः**=प्रशस्त हविवाली, अर्थात् त्यागपूर्वक अदन करनेवाली **विशः**-प्रजायें **इन्द्रे**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु में **अराणिषुः**=(अरंसिषुः) रमण करती हैं। प्रभु को न भूलती हुई, प्रभु में स्थित हुई-हुई ये प्रजायें एक अवर्णनीय आनन्द का अनुभव करती हैं।

भावार्थ-हम ज्ञान की वाणियों द्वारा प्रभु का वर्धन करें। सोमरक्षण द्वारा तीव्र बुद्धि बनकर प्रभु का दर्शन करें। त्यागवृत्तिवाले बनकर प्रभु में स्थित हुए-हुए आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

प्रभु-महिमा का गायन व आत्मरक्षण

तमिद्विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः। इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन्वया इव॥ १७॥

(१) **अवस्यवः**=रक्षण की कामनावाले **विप्राः**=ज्ञानी पुरुष **प्रवत्वतीभिः**=उत्कर्ष की ओर ले जानेवाले **ऊतिभिः**=रक्षणों के हेतु से **इत्**=निश्चयपूर्वक **तं इत्**=उस प्रभु को ही **अवर्धयन्**=अपने अन्दर बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। प्रभु का स्तवन करते हैं और प्रभु के गुणों को धारण करने के लिये यत्नशील होते हैं। (२) **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **क्षोणीः**=पृथिवी पर निवास करनेवाले सब मनुष्य **अवर्धयन्**=बढ़ाते हैं। **वयाः इव**=ये सब लोक-लोकान्तर उस प्रभुरूप वृक्ष की शाखाओं की तरह हैं। ये सब शाखायें जैसे उस वृक्ष की महिमा को बढ़ाती हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य उस प्रभु की महिमा का वर्धन करते हैं।

भावार्थ—ज्ञानी रक्षणेच्छु पुरुष प्रभु की महिमा का गायन करते हैं। यह महिमा का गायन ही हमारा रक्षण करता है और हमें उत्कर्ष की ओर ले जाता है।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

त्रिकद्रुकेषु चेतनम्

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत। तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम्॥ १८॥

(१) **त्रिकद्रुकेषु**=(कदि आह्वाने) प्रातः, मध्याह्न व सायं तीनों आह्वान कालों में **चेतनम्**=उपासकों की चेतना को बढ़ानेवाले **यज्ञम्**=उपास्य प्रभु को **देवासः**=देववृत्ति के पुरुष **अत्नत**=अपने अन्दर निरुद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। जितना-जितना प्रभु का स्मरण करते हैं, उतना-उतना ही अपनी चेतना को ये बढ़ानेवाले होते हैं। (२) **नः गिरः**=हमारी ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुति-वाणियाँ **इत्**=निश्चय से **तम्**=उस **सदावृधम्**=सदा से बढ़े हुए प्रभु को ही **वर्धन्तु**=बढ़ायें। अर्थात् हम सदा प्रभु का स्मरण करनेवाले बनें। प्रभु-स्तवन ही हमारी वृद्धि का कारण बनता है।

भावार्थ—हम जीवन के प्रातः, मध्याह्न व सायं में अर्थात् आजीवन प्रभु का स्मरण करनेवाले बनें। यह स्मरण ही हमारी चेतना को ठीक रखेगा। अन्यथा हम विस्मृति में डूबकर कुछ का कुछ करते रहेंगे।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

शुचिः पावकः अद्भुतः

स्तोता यत्ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे। शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः॥ १९॥

(१) हे प्रभो! **यत्**=जब **ते स्तोता**=यह जीव आपका स्तोता बनता है, तो **अनुव्रतः**=आपके अनुकूल व्रतवाला होता है। आप सर्वज्ञ हैं, यह भी ज्ञानी बनने का प्रयत्न करता है। आप दयालु हैं, यह भी दया को अपनाने का प्रयत्न करता है। और **ऋतुथा**=समय-समय पर **उक्थानि दधे**=आपके स्तोत्रों का धारण करता है। (२) यह स्तोता **शुचिः**=अपने को पवित्र बनाता है। **पावकः**=औरों को भी पवित्र जीवनवाला करता है, इस प्रकार बना हुआ **सः**=यह स्तोता **अद्भुतः उच्यते**=सब से अद्भुत जीवनवाला कहाता है। सब कोई इसे आश्चर्य से देखते हैं। इसे वे महापुरुष के रूप में देखते हैं।

भावार्थ—प्रभु का स्तोता स्तवन करता हुआ प्रभु के गुणों को धारण करता है। इस प्रकार पवित्र बनता है, पवित्र करनेवाला होता है। अद्भुत जीवनवाला होता है।

ऋषिः — नारदः काण्वः॥ देवता — इन्द्रः॥ छन्दः — उष्णिक्॥ स्वरः — ऋषभः॥

सर्वदीपक प्रभु

तदिद्रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु। मनो यत्रा वि तद्दधुर्विचेतसः॥ २०॥

(१) **प्रत्नेषु धामसु**=इन पुराणे, सनातन **धामसु**-पृथिवी आदि लोकों में **रुद्रस्य**=सब दुःखों के द्रावक प्रभु का **इत्**-ही **तत् यह्वम्**=वह महान् बल **चेतति**-जाना जाता है। ये पृथिवी आदि लोक उसी के बल से बलवाले हो रहे हैं। (२) उस रुद्र की दीप्ति व बल से ये सब पिण्ड दीप्त व दृढ़ हो रहे हैं, **यत्रा**-जिस प्रभु में **विचेतसः**-विशिष्ट ज्ञानवाले पुरुष **तत् मनः**-अपने उस मन को **विदधुः**=विशेषरूप से धारण करते हैं। सब ज्ञानी उस प्रभु का ही ध्यान करते हैं, जिस प्रभु का बल सब पिण्डों को धारण करता है।

भावार्थ—सब सूर्य आदि पिण्डों को प्रभु का तेज ही दीप्त कर रहा है। ज्ञानी पुरुष इस प्रभु में ही अपने मन को निरुद्ध करते हैं।

ऋषिः — नारदः काण्वः॥ देवता — इन्द्रः॥ छन्दः — निचृदुष्णिक्॥ स्वरः — ऋषभः॥

प्रभु की मित्रता

यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यन्धसः। येन विश्वा अति द्विषो अतारिम॥ २१॥

(१) हे प्रभो! **यदि**=यदि **मे सख्यम्**=मेरी मित्रता को **आवरः**-आप स्वीकार करते हैं, तो **इमस्य**-इस **अन्धसः**-सोम शक्ति का (वीर्य का) **पाहि**=मेरे अन्दर रक्षण करते हैं। प्रभु की मित्रता वासना-विनाश का कारण बनकर सोमरक्षण का साधन बनती है। (२) **येन**=जिस सोमरक्षण के द्वारा **विश्वाः**=सब अन्दर घुस आनेवाले **द्विषः**-रोगों व ईर्ष्या-द्वेष आदि दुर्भावों को **अति अतारिम**=हम पार कर जाते हैं।

भावार्थ—प्रभु की मित्रता हमें सोमरक्षण के योग्य बनाती है। सोमरक्षण के द्वारा हम रोगों व दुर्भावों को नष्ट कर पाते हैं।

ऋषिः — नारदः काण्वः॥ देवता — इन्द्रः॥ छन्दः — निचृदुष्णिक्॥ स्वरः — ऋषभः॥

कदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शन्तमः। कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः॥ २२॥

(१) प्रभु प्राप्ति के लिये आतुरता को अनुभव करता हुआ स्तोता कहता है कि हे **गिर्वणः**-ज्ञान की वाणियों से सम्भजनीय **इन्द्र**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **कदा**-कब **ते स्तोता**-आपका यह स्तवन करनेवाला उपासक **शन्तमः भवाति**=शान्त जीवनवाला होता है? अर्थात् आपका स्तवन करता हुआ कब मैं शान्ति को प्राप्त करूँगा? (२) **कदा**=कब आप **नः**=हमें **गव्ये**=ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी तथा **अश्व्ये**=कर्मेन्द्रिय सम्बन्धी **वसौ दधः**=वसु में धारण करोगे? अर्थात् कब आपकी कृपा से हमें उत्तम कर्मेन्द्रियाँ व उत्तम ज्ञानेन्द्रियाँ प्राप्त होंगी?

भावार्थ—प्रभु के स्तवन से शान्ति मिलती है और इन्द्रियाँ प्रशस्त बनती हैं।

ऋषिः — नारदः काण्वः॥ देवता — इन्द्रः॥ छन्दः — उष्णिक्॥ स्वरः — ऋषभः॥

'सुष्टुता वृषणा' हरी

उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथम्। अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे॥ २३॥

(१) **उत**=और **अजुर्यस्य**=कभी जीर्ण न होनेवाले **ते**=आपके, आप से दिये हुए **सुष्टुता**=उत्तम स्तुतिवाले **वृषणा**=शक्तिशाली **हरी**=इन्द्रियाश्व **रथम्**=इस शरीर रथ को **वहतः**-लक्ष्य की ओर

ले चलते हैं। (२) उस रथ को ले चलते हैं **यम्**=जिसको **मदिन्तमम्**=आनन्दमय आप से **ईमहे**=हम माँगते हैं ('ईमहे' क्रियादि कर्मक है) आनन्दमय प्रभु से हम उत्तम शरीर-रथ की याचना करते हैं। उस प्रभु से दिया गया यह शरीर-रथ हमारे आनन्द का साधन बनता है।

भावार्थ-प्रभु हमें न जीर्ण होनेवाला व आनन्द को प्राप्त करानेवाला शरीर-रथ प्राप्त कराते हैं। शक्तिशाली प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को देते हैं।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

अथ द्विता

तमीमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः। नि बर्हिषि प्रिये सदुदध द्विता॥ २४॥

(१) **तम्**=उस **पुरुष्टुतम्**=बहुतों से स्तुति किये गये **यह्वम्**=महान् प्रभु को **प्रत्नाभिः**=सनातन, सदा से चले आ रहे **ऊतिभिः**=रक्षणों के हेतु से **ईमहे**=याचना करते हैं। प्रभु सदा से जीवों का रक्षण करते ही हैं। प्रभु से इसी रक्षण की हम याचना करते हैं। (२) वे प्रभु **प्रिये**-तृप्त व कान्त **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **निसदत्**=विराजमान हों। और **अध**-अब **द्वितः**=हमारी शक्ति व ज्ञान का विस्तार होता है। 'द्वौ तनोति) प्रभु की हृदय में उपस्थिति हमें मार्ग भ्रष्ट नहीं होने देती। परिणामतः मार्ग पर चलते हुए हम ज्ञान व शक्ति का विस्तार करते हैं।

भावार्थ-प्रभु हमारा रक्षण करते हैं। प्रभु के हृदय में आसीन होने पर हमारा मस्तिष्क ज्ञान परिपूर्ण होता है, तो शरीर शक्ति-सम्पन्न बन जाता है।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

आआध्यापित करनेवाली प्रेरणा

वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः। धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः॥ २५॥

(१) हे **पुरुष्टुत**=बहुतों से स्तुति किये गये प्रभो! आप **ऋषि स्तुताभिः**=तत्त्वद्रष्टा पुरुषों से प्रशंसित **ऊतिभिः**=रक्षणों के द्वारा **सु वर्धस्व**=हमें सम्यक् बढ़ानेवाले होइये। स्तुति के द्वारा हम प्रभु की रक्षा के पात्र बनते हैं। (२) हे प्रभो! आप **पिप्युषीम्**=हमारा आप्यायन (=वर्धन) करनेवाली **इषम्**=प्रेरणा को **धुक्षस्व**=हमारे में प्रपूरित करिये। हम आपकी प्रेरणा को प्राप्त करें, इस प्रेरणा के अनुसार मार्ग पर चलते हुए हम उन्नति व वृद्धि को प्राप्त करते हैं। हे प्रभो! आप हमें प्रेरणा प्राप्त कराइये **च**=और **नः**-हमें **अव**=रक्षित करिये। आपकी प्रेरणा हमें वासना आदि के आक्रमण से बचानेवाली हो।

भावार्थ-हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमें रक्षण प्राप्त करायें और उत्तम प्रेरणा देते हुए हमें सुरक्षित करें।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'मनोयुज्' धी

इन्द्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्रिवः। ऋतादियर्मि ते धियं मनोयुजम्॥ २६॥

(१) हे **अद्रिवः**=वज्रहस्त (अद्रिः वज्रम्) अथवा आदरणीय **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! (आद्रियते) **त्वम्**=आप **स्तुवतः**=स्तुति करनेवाले के **इत्था**=सचमुच **अविता असि इत्**=रक्षक ही हैं। आपका स्तोता वासनाओं का शिकार नहीं होता। आपका स्मरण वासनाओं व रोगों के आक्रमण से बचानेवाला होता है। (२) मैं **ते**=आपके, आप से दिये गये **ऋतात्**=इस सत्य वेदज्ञान से **मनोयुजम्**=मन को युक्त करनेवाली **धियम्**=बुद्धि को, मनीषा को **इयर्मि**=अपने अन्दर प्रेरित

करता हूँ। मुझे आपके इस सत्य वेदज्ञान के अध्ययन से वह बुद्धि प्राप्त होती है जो मेरे मन को विक्षिप्तावस्था से हटाकर निरुद्धावस्था में लानेवाली होती है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन करनेवाले का रक्षण करते हैं। यह स्तोता वेदज्ञान के द्वारा उस बुद्धि को प्राप्त करता है जो उसके मन को भटकने से बचाती है।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'सधमाद्या प्रतद्वसू' हरी

इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये। हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर॥ २७॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **इह**=हमारे जीवन में, शरीर-रथ में **त्या हरी**=उन इन्द्रियाश्वों को **युजानः**=युक्त करते हुए **सोमपीतये**=सोम के पान के लिये, सोम के रक्षण के लिये **अभिस्वर**=(अभिगच्छ) हमें प्राप्त होइये। प्रभु की प्राप्ति में वासनाओं का उत्थान नहीं होता। परिणामतः सोमरक्षण सम्भव होता है। (२) इन्द्रियाश्व **सधमाद्या**—साथ रहते हुये हमें आनन्दित करनेवाले हों, भटकनेवाले न हों। तथा **प्रतद्वसू**=प्राप्त वसू (विस्तीर्णधनौ) प्राप्त धन हों। कर्मेन्द्रियाँ शक्ति-सम्पन्न हों, तो ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान-सम्पन्न। शक्ति व ज्ञान ही इन इन्द्रियाश्वों की सम्पत्ति है।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारे इन्द्रियाश्व न भटकनेवाले हों तथा 'शक्ति व ज्ञान' रूप धन से युक्त हों। प्रभु हमें प्राप्त हों, जिससे हम वासनाओं से अनाक्रान्त रहकर सोम का रक्षण कर सकें।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'नीरोग-श्री सम्पन्न' जीवन

अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम्। उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः॥ २८॥

(१) **ये**=जो भी व्यक्ति **तव अभि स्वरन्तु** (त्वाम् अभि०)=आपकी ओर आनेवाले होते हैं, वे **रुद्रासः**=रोगों को दूर भगानेवाले होते हैं तथा **श्रियम्**—शोभा का **सक्षत**=सेवन करते हैं। इनका जीवन बड़ी शोभावाला होता है। (२) **उत उ**—और निश्चय से **महत्वतीः**=प्रशस्त प्राणोंवाली, प्राणसाधना में प्रवृत्त होनेवाली **विशः**—प्रजायें **प्रयः अभि**=सात्त्विक अन्नों की ओर ही गतिवाली होती हैं। प्राणायाम के साथ युक्ताहार-विहार तो आवश्यक ही है।

भावार्थ—प्रभु का उपासक नीरोग, शोभावाला तथा प्राणसाधना को करता हुआ सात्त्विक अन्नों का सेवन करता है।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति

इमा अस्य प्रतूर्तयः पदं जुषन्त यद्दिवि। नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे॥ २९॥

(१) **इमाः अस्य** ये इसकी प्रजायें **प्रतूर्तयः**—प्रकर्षेण शत्रुओं की हिंसक होती हैं। **यत्**—क्योंकि **दिवि**—द्युलोक में, प्रकाशमय लोक में **पदं जुषन्त**—पद को प्रीतिपूर्वक रखती हैं। अर्थात् प्रभु के उपासक लोग ज्ञान-प्रधान जीवन बिताते हैं और काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं का संहार करनेवाले होते हैं। (२) **यथा विदे**=यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिये **यज्ञस्य**—उस पूजनीय प्रभु की **नाभा**=(नह बन्धने) बन्धुता में **सन्दधुः**—अपने को स्थापित करते हैं। प्रभु के सम्पर्क में ही सत्यज्ञान का प्रकाश हृदयों में हुआ करता है।

भावार्थ—प्रभु के उपासक ज्ञानप्रधान जीवन बिताते हुए काम-क्रोध आदि शत्रुओं का संहार करते हैं। ये प्रभु की बन्धुता में निवास करते हुए सत्य ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—आर्षीविराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

यज्ञ का महत्त्व

अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे। मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य॥ ३०॥

(१) **अयम्**=यह उपासक **प्राचि**=(प्र-अञ्च्) प्रकृष्ट गति, उन्नति के साधनभूत **अध्वरे**=हिंसारहित कर्मों के **प्रयति**=प्रकर्षेण चलने पर **दीर्घाय चक्षसे**=दीर्घ ज्ञान के लिये होता है। अर्थात् यज्ञों को करता हुआ दीर्घ दृष्टिवाला बनता है। (२) यह **विचक्ष्य**=विशेषरूप से देखकर अर्थात् विचार करके **आनुषक्**=निरन्तर **यज्ञं मिमीते**=यज्ञ को करनेवाला होता है। वह यह समझ लेता है कि यह यज्ञ ही इष्टकामधुक् है तथा यज्ञ से ही यह लोक व परलोक कल्याणमय बनता है।

भावार्थ—यज्ञों को करते हुए हम दीर्घ दृष्टिवाले बनें। यज्ञों के महत्त्व को समझकर हम निरन्तर यज्ञशील बनें।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

वृषा रथः

वृषायमिन्द्र ते रथ उतो ते वृषणा हरी। वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः॥ ३१॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **अयं ते रथः**=यह आपका शरीररूप-रथ **वृषा**=सुखों का सेचन करनेवाला है। **उत उ**=और निश्चय से **ते हरी**=आपसे हमारे लिये प्राप्त कराये गये ये इन्द्रियाश्व **वृषणा**=सुखों का वर्षण करनेवाले हैं। (२) हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व बलवाले प्रभो! **त्वं वृषा**=आप हमारे पर सुखों का वर्षण करते हैं। **हवः**=आपकी पुकार, आपकी आराधना **वृषा**=हमारे पर सुखों का वर्षण करनेवाली है।

भावार्थ—प्रभु ने हमें यह सुखों के वर्षक शरीर-रथ व इन्द्रियाश्व प्राप्त कराये हैं। प्रभु तो सुख देनेवाले हैं ही, प्रभु की आराधना हमें सुखी करती है।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

वृषा ग्रावा

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः। वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः॥ ३२॥

(१) हे प्रभो! यह **ग्रावा**='अश्माभवतु नस्तनूः' आप से दिया गया पाषाणवत् दृढ़ शरीर **वृषा**=सुखों का वर्षण करनेवाला हो। **मदः**=आप की आराधना से प्राप्त होनेवाला उल्लास **वृषा**-सुखवर्षक हो। **अयं सुतः सोमः**=यह उत्पन्न हुआ-हुआ सोम (वीर्य) **वृषा**=सब अंगों को दृढ़ बनाता हुआ सुखकर हो। (२) हे प्रभो! **यज्ञः**=वे यज्ञ **वृषा**=सुखकर हों **यं इन्वसि**=जिनकी आप हमारे लिये प्रेरणा देते हैं तथा **हवः**=आपकी पुकार, आपकी आराधना **वृषा**=हमारे पर सुखों का वर्षण करनेवाली हो।

भावार्थ—'यह पाषाणतुल्य दृढ़ शरीर, प्रभु की आराधना से प्राप्त उल्लास, शरीर में उत्पन्न हुआ-हुआ सोम तथा प्रभु से प्रेरित यज्ञ व प्रभु की आराधना' ये सब हमारे लिये सुखों के वर्षक हों।

ऋषिः—नारदः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

वृषा हवः

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः। वावन्थ हि प्रतिष्टुतिं वृषा हवः॥ ३३॥

(१) हे **वज्रिन्**-वज्रहस्त प्रभो! मैं **चित्राभिः ऊतिभिः**-अद्भुत रक्षणों के हेतु से **वृषणं त्वा**=शक्तिशाली व सुखवर्षक आप को **वृषा**-शक्तिशाली बनता हुआ **हुवे**=पुकारता हूँ। (२) आप **हि**-निश्चय से **प्रतिष्टुतिम्**-आपको लक्ष्य करके की गई स्तुति को **वावन्थ**=सेवन करते हैं। यह मेरे द्वारा की गई स्तुति मुझे आपका प्रिय बनाती है। **हवः वृषा**=आपकी पुकार, आपकी आराधना, हमारे पर सुखों का वर्षण करनेवाली होती है।

भावार्थ-हम उस सुखवर्षक प्रभु का आराधन करें। यही प्रभु के अद्भुत रक्षणों को प्राप्त करने का मार्ग है। हम प्रतिदिन प्रभु-स्तवन करते हुए प्रभु के प्रिय बनें। यह प्रभु का आराधन हमें सुखी करेगा।

प्रभु की आराधना करता हुआ यह व्यक्ति गौओं व अश्वों को, ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को उत्तम बना पाता है। गौवों के विषय में उत्तम कथनवाला अश्वों को विषय में उत्तम कथनवाला यह 'गोषूक्ती व अश्वसूक्ती' बनता है। ये दोनों काण्वायन-अत्यन्त मेधावी हैं। इन्द्र नाम से प्रभु-स्मरण करते हुए कहते हैं-

१४. [चतुर्दशं सूक्तम्]

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—विराड्गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

प्रभु-स्तवन व ऐश्वर्य

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्। स्तोता मे गोषखा स्यात्॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यथा**=जैसे **त्वम्**-आप **एकः इत्**-अद्वितीय ही **वस्वः**-सम्पूर्ण धनों के ईश हैं, **यद्**-यदि **अहम्**-मैं भी इसी प्रकार **ईशीय**=इन धनों का ईश होता, तो **मे स्तोता**-मेरा स्तोता **गोषखा स्यात्**-गौओं सहित होता। अर्थात् उसे गवादिक धन की किसी प्रकार से कमी न रहती। (२) एक सामान्य धनी पुरुष का स्तोता भी आवश्यक धनों को प्राप्त कर लेता है, तो क्या प्रभु का उपासक भूखा मरेगा? प्रभु का उपासक पुरुषार्थ करता है और प्रभु में पूर्ण विश्वास रखता है। यह विश्वास ही उसके जीवन के उल्लास का रहस्य होता है।

भावार्थ-प्रभु के उपासक को जीवन के लिये आवश्यक चीजों की कभी कमी नहीं रहती।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—निचृद्गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

दित्सेयं-शिक्षेयम्

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम्॥ २॥

(१) हे **शचीपते**-सब शक्तियों के स्वामिन् प्रभो! **यद् अहम्**=जब मैं **गोपतिः**=गौवों का स्वामी **स्याम्**=होऊँ, अर्थात् धन-सम्पन्न बनूँ तो **अस्मै**=इस **मनीषिणे**-मन को वश में करनेवाले प्राज्ञ मनुष्य के लिये **दित्सेयम्**-देने की कामना करूँ और **शिक्षेयम्**-प्रार्थित धन को अवश्य दूँ। (२) हे प्रभो! मैं आपका सेवक बनकर आप से दिये गये धन का ठीक प्रकार से वितरण करनेवाला बनूँ। सब धन को आपका समझता हुआ मैं उस धन को आपके भक्तों में ही वितरण करनेवाला बनूँ।

भावार्थ-हम प्रभु के अनुग्रह से धन-सम्पन्न हों, तो उस धन को पात्र पुरुषों में वितीर्ण करनेवाले बनें।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

वेद-धेनु

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते। गामश्वं पिप्युषी दुहे॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते धेनुः**=आपकी यह वेदवाणीरूपी गौ **सूनृता**=(सु ऊन् ऋत) उत्तम दु:ख का परिहाण करनेवाले सत्य ज्ञान-दुग्ध को देनेवाली है। सब सत्य ज्ञानों का यह कोश है। (२) यह **पिप्युषी**=अपने ज्ञान-दुग्ध द्वारा आप्यायन (=वर्धन) करनेवाली वेद-धेनु **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिये तथा **सुन्वते**=अपने शरीर में सोम का अभिषव करनेवाले पुरुष के लिये **गाम्**=ज्ञानेन्द्रियों को तथा **अश्वम्**=कर्मेन्द्रियों को **दुहे**-प्रपूरित करती है। यह वेद-धेनु अपने ज्ञानदुग्ध के द्वारा ज्ञानेन्द्रियों का पोषण करती है, तो यज्ञों की प्रेरणा देती हुई कर्मेन्द्रियों को सबल बनाती है।

भावार्थ-वेद सब सत्य ज्ञानों को देता हुआ हमारी ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों का पोषण करता है।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—निचृद्गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

प्रभु का अहिंसित ऐश्वर्य

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः। यद्दित्ससि स्तुतो मघम्॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **न देवः**=न तो कोई प्राकृतिक शक्ति और **न मर्त्यः**=न ही कोई मनुष्य **ते**=आपके **राधसः**=ऐश्वर्य का, धन का **वर्ता**=निवारक **अस्ति**=है। आपकी ऐश्वर्यशालिनता का किसी से भी प्रतिबन्ध नहीं किया जा सकता। (२) आपके उस ऐश्वर्य का कोई भी निवारण नहीं कर पाता **यत् मघम्**=जिस ऐश्वर्य को **स्तुतः**=स्तुति किये गये आप, इस स्तोता के लिये **दित्ससि**=देने की कामनावाले होते हैं। प्रभु का स्तोता वही है जो प्रभु के निर्देश के अनुसार यज्ञिय कर्मों में प्रवृत्त रहता है। इन कर्म-प्रवृत्त मनुष्यों को प्रभु जीवन के लिये आवश्यक धन अवश्य प्राप्त कराते ही हैं।

भावार्थ-प्रभु स्तोता के लिये धन प्राप्त कराते हैं, तो इस धन को कोई हिंसित नहीं कर पाता।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—निचृद्गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत्

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि॥ ५॥

(१) प्रभु का सच्चा स्तवन यज्ञों के द्वारा ही होता है 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'। यह **यज्ञः**-यज्ञ लोकहित के लिये किया जानेवाला कर्म **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को **अवर्धयत्**=बढ़ाता है। यज्ञों से सब प्रकार से उत्थान ही उत्थान होता है। (२) ये यज्ञ इस इन्द्र का वर्धन तब करते हैं **यद्**=जब यह **भूमिम्**=इस शरीररूप पृथिवी को **व्यवर्तयत्**=विशिष्ट वर्तनवाला करता है। शरीर को सदा उत्तम कर्मों में ही प्रेरित करता है। इसे स्वस्थ रखता हुआ कार्य-क्षम बनाये रखता है तथा **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **ओपशम्**=ज्ञानरूप शिरोभूषण को **चक्राणः**=करनेवाला होता है। शरीर में शक्ति तथा मस्तिष्क में ज्ञान का धारण करके यह यज्ञों में प्रवृत्त रहता है। ये यज्ञ इसका वर्धन करते हैं।

भावार्थ—हम पृथिवीरूप शरीर को शक्ति-सम्पन्न करके विशिष्ट वर्तनवाला बनायें। मस्तिष्क ज्ञानाभरण से भूषित करें। इन शक्ति व ज्ञान के द्वारा यज्ञों को करें। ये यज्ञ हमारे वर्धन का कारण बनेंगे।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

सब धनों के विजेता प्रभु

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः। ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **ते**=आपसे प्राप्त कराये जानेवाले **ऊतिम्**=रक्षण को **आवृणीमहे**=वरते हैं। आपके रक्षण को प्राप्त करके ही तो हम सब प्रकार से उन्नति कर सकेंगे। (२) उन आपके रक्षण का हम वरण करते हैं, जो आप **वावृधानस्य**=खूब ही वृद्धि को प्राप्त हैं तथा उपासकों का सदा वर्धन करनेवाले हैं। तथा **विश्वा धनानि जिग्युषः**=सब धनों का विजय करते हैं। आप ही हमारे लिये इन धनों का विजय करके हमें सदा रक्षण के योग्य बनाते हैं। ये धन ही ठीक प्रकार से उपयुक्त होकर हमारी बुद्धि का हेतु बनते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु के रक्षण का वरण करते हैं। ये प्रभु सदा हमारा वर्धन कर रहे हैं और हमारे लिये धनों का विजय करते हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—निचृद्गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

वल का भेदन

व्य१ न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद्वलम्॥ ७॥

(१) **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **यद्**=जब **वलम्**=ज्ञान पर परदे के रूप में आ जानेवाली इस वासना को **अभिनद्**=विदीर्ण करता है, तो **सोमस्य मदे**=सोमरक्षण से जनित उल्लास के होने पर **अन्तरिक्षम्**=हृदयान्तरिक्ष को **रोचना**=ज्ञानदीप्तियों से **व्यतिरत्**=बढ़ाता है। (२) बल व वृत्र पर्यायवाची शब्द हैं। काम-वासना को ये नाम इसलिये दिये गये हैं कि यह वासना ज्ञान पर परदा-सा डाल देनी है। इस वासना के विनष्ट होने पर शरीर में सोम का रक्षण होता है और हृदयान्तरिक्ष ज्ञान दीप्तियों से चमक उठता है, सुरक्षित सोम ही तो ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष वासना को विनष्ट करके सोम का रक्षण करता हुआ ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है। इसका हृदयान्तरिक्ष ज्ञान दीप्त हो उठता है।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

गाः उदाजत्

उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्॥ ८॥

(१) प्रभु **अंगिरोभ्यः**=सोमरक्षण द्वारा अंग-प्रत्यंग में रस का संचार करनेवाले पुरुषों के लिये **गाः**=इन्द्रियों को **उद् आजत्**=विषयों के चक्र से बाहिर प्रेरित करते हैं। (२) **गुहा सतीः**=अविद्या की गुफा में वर्तमान इन्द्रियरूप गौवों को **आविष्कृण्वन्**=गुफा से निकाल कर प्रकट करने के निमित्त **वलम्**=बलासुर को, इस कामनारूप शत्रु को **अर्वाञ्चं नुनुदे**=अधोमुख प्रेरित करते हैं, अर्थात् इस बलासुर को विनष्ट करके इन्द्रियों को अज्ञानान्धकार से मुक्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु अंगिरा के लिये वासना को विनष्ट करके इन्द्रिय रूप गौओं को अज्ञानान्धकार की गुफा से बाहिर ले आते हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

स्थिराणि, न पराणुदे

इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च। स्थिराणि न पराणुदे॥ ९॥

(१) **इन्द्रेण**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के द्वारा **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक की **रोचना**=दीप्तियाँ **दृढ्हानि**=दृढ़ की जाती हैं **च**=और **दृंहितानि**=वर्धित होती है। प्रभु हमारे ज्ञानों को स्थिर व वर्धित करते हैं। (२) **स्थिराणि**=ये स्थिर ज्ञान **न पराणुदे**=वासनारूप शत्रुओं से धकेलने योग्य नहीं होते। वस्तुतः ज्ञान निर्मल होता है, तो वासना से अभिभूत हो जाता है। प्रबल ज्ञान कभी भी वासनाओं का शिकार नहीं होता।

भावार्थ—प्रभु हमारे मस्तिष्क के ज्ञानों को दृढ़ करते हैं। ये दृढ़ ज्ञान वासना से अभिभूत न होकर वासना को दग्ध करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

भक्ति की तरंगों का आनन्दोल्लास

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते। वि ते मदा अराजिषुः॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आपका **स्तोमः**=स्तुति समूह मेरे अन्दर इस प्रकार **अजिरायते**—क्षिप्रगामी के समान आचरण करता है, **इव**=जैसे **अदन्**=हर्ष का अनुभव करती हुई, मस्त होती हुई **अपाम् ऊर्मिः**=जल की तरंग शीघ्र गतिवाली होती है। जैसे समुद्र तरंगों से तरंगति होता है, इसी प्रकार हमारा मानस समुद्र भक्ति की तरंगों से तरंगित होता है। (२) हे प्रभो! **ते मदाः**=तेरी भक्ति से उत्पन्न हुए-हुए आनन्दोल्लास **वि अराजिषुः**=विशिष्ट रूप से दीप्त होते हैं।

भावार्थ—हमारा हृदय भक्ति की तरंगों से तरंगित होता है। ये तरंगें हमारे हृदयों को आनन्दोल्लसित करती हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

स्तोतृणां भद्रकृत्

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः। स्तोतृणामुत भद्रकृत्॥ ११॥

(१) हे **इन्द्र**=प्रभो! **त्वं हि**=आप ही **स्तोमवर्धनः असि**=हमारे स्तुति समूह का वर्धन करनेवाले हैं। आप ही **उक्थवर्धनः**=ऊँचे से गायन के योग्य उत्तम वचनों के बढ़ानेवाले हैं। (२) **उत**= और **स्तोतृणाम्**=इन स्तोताओं के **भद्रकृत्**=कल्याण को करनेवाले हैं। प्रभु का स्तोता प्रभु के गुणों को अपने अन्दर धारण करने की प्रेरणा को प्राप्त करता हुआ कल्याम का भागी होता है।

भावार्थ—हम प्रभु के स्तोता बनें। यही कल्याण का मार्ग है।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रभु की उपासना व यज्ञ

इन्द्रमित्केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः। उप यज्ञं सुराधसम्॥ १२॥

(१) **इन्द्रम्**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु को **इत्**—निश्चय से **केशिना**=प्रकाश की रश्मियोंवाले **हरी**=इन्द्रियाश्व **सोमपेयाय**=सोम का पान करने के लिये **वक्षतः**=धारण करते हैं। प्रभु का स्मरण ही हमें इस योग्य बनाता है कि हम सोम का शरीर में रक्षण कर सकें। (२)

ये इन्द्रियाश्व हमें **सुराधसम्**-उत्तम ऐश्वर्यों के प्राप्त करानेवाले **यज्ञम् उप**-यज्ञ के समीप प्राप्त कराते हैं। इन यज्ञों में प्रवृत्त रहकर ही हम वासनाओं के आक्रमण से बचे रहते हैं। यह वासनारहित जीवन ही सोमरक्षण के योग्य होता है।

भावार्थ-हम इन्द्रियों को प्रभु की उपासना व यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त करें। यही मार्ग है, जिससे कि हम वासनाओं का शिकार न होंगे और सोम का रक्षण कर सकेंगे।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ‌ङ्क **देवता**—इन्द्रः‌ङ्क **छन्दः**—गायत्री‌ङ्क **स्वरः**—षड्जः‌ङ्क

नमुचि के सिर का उद् वर्तन

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः। विश्वा यदजयः स्पृधः॥ १३॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **अपां फेनेन**=कर्मों के वर्धन के द्वारा ही **नमुचेः**=नमुचि के पीछा न छोड़नेवाली (न+मुच्) अहंकार की वासना के **शिरः**=सिर को **उद् अवर्तयः**=उद्वृत्त कर देता है। इस वासनारूप नमुचि के सिर का छेदन कर्मों के वर्धन के द्वारा ही होता है। निरन्तर कर्मों में लगे रहकर ही हम वासना को जीत पाते हैं। (२) यह वह समय होता है **यत्**=जब कि तू **विश्वाः**=सब **स्पृधः**=शत्रु-सैन्यों को **अजयः**-पराजित करनेवाला होता है। काम क्रोध-लोभ आदि सब अन्तःशत्रुओं का पराभव इस 'अपां फेन'=कर्मवर्धन से ही होता है।

भावार्थ-निरन्तर कर्मों में लगे रहकर हम अहंभाव से काम-क्रोध-लोभ आदि से ऊपर उठ पाते हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ‌ङ्क **देवता**—इन्द्रः‌ङ्क **छन्दः**—गायत्री‌ङ्क **स्वरः**—षड्जः‌ङ्क

दस्युओं का अवधूनन

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः। अव दस्यूँरधूनुथाः॥ १४॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **दस्यून्**=दास्यव वृत्तियों को, राक्षसीभावों को **अव अधूनुथाः**=कम्पित करके अपने से दूर करता है। (२) उन सब दस्युवृत्तियों को तू अपने से दूर करता है जो **मायाभिः**=छल-छिद्रों के साथ **उत् सिसृप्सतः**=खूब फैलती हैं और **द्यां आरुरुक्षतः**=मस्तिष्करूप द्युलोक में आरुढ़ होने की कामना करती हैं, मस्तिष्क में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेती हैं।

भावार्थ-हम जितेन्द्रिय बनकर उन सब दस्युवृत्तियों को अपने से दूर करें, जो छल-छिद्र से युक्त हैं तथा मस्तिष्क को अपने वश में कर लेती हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ‌ङ्क **देवता**—इन्द्रः‌ङ्क **छन्दः**—निचृद्गायत्री‌ङ्क **स्वरः**—षड्जः‌ङ्क

असुन्वा संसद् का विनाश

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः। सोमपा उत्तरो भवन्॥ १५॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप हमारे जीवनों में **असुन्वाम्**=अपने अन्दर सोम का अभिषव न करनेवाली, सोम का रक्षण न करनेवाली **संसदम्**=आसुरभावों की सभा को **विषूचीम्**-विविध विरुद्ध दिशाओं में गतिवाली को **व्यनाशयः**-विनष्ट करते हैं। प्रभु की उपासना से आसुरी वृत्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं। ये आसुरी वृत्तियाँ शरीर में सोम-रक्षण के अनुकूल नहीं होतीं। (२) इन आसुरी वृत्तियों के विनाश के द्वारा वे प्रभु **सोमपाः**=हमारे अन्दर सोम का रक्षण करते हैं। इस सोमरक्षण के द्वारा **उत्तरः भवन्**-हमारे जीवनों में प्रभु ऊपर और ऊपर होते

हैं, अर्थात् हम प्रभु की ओर अधिकाधिक झुकाववाले बनते हैं।

भावार्थ–प्रभु की उपासना से आसुरी भाव विनष्ट होते हैं। इनके विनाश से शरीर में सोम का रक्षण होता है और हमारा प्रभु की उपासना के प्रति झुकाव बढ़ता है।

अगले सूक्त के 'ऋषि देवता' भी इसी प्रकार हैं। सो वही विषय प्रस्तुत है–

१५. [पञ्चदशं सूक्तम्]

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'पुरुहूत पुरुष्टुत' प्रभु का गान

तम्व॒भि प्र गा॑यत पुरुहू॒तं पु॑रुष्टु॒तम्। इन्द्रं॑ गी॒र्भिस्त॑वि॒षमा वि॑वासत॥ १॥

(१) **तम्**=उस **पुरुहूतम्**=बहुतों से पुकारे जानेवाले **पुरुष्टुतम्**=खूब स्तुति किये जानेवाले प्रभु का **उ**=ही **अभिप्रगायत**=प्रातः-सायं गुणगान करो। यह गायन ही आसुर वृत्तियों को तुम्हारे से दूर भगानेवाला होगा। (२) उस **तविषम्**=महान् सर्वशक्तिमान् **इन्द्रम्**=प्रभु को ही **गीर्भिः**=ज्ञानपूर्वक उच्चारित स्तुति वाणियों से **आविवासत**=परिचरित करो, पूजो। यह प्रभु-पूजन ही हमें शत्रुओं के आक्रमण से बचायेगा। इसी से हम मार्ग पर आगे बढ़ते हुए लक्ष्य स्थान पर पहुँचेंगे।

भावार्थ–प्रभु का गायन, प्रभु का पूजन ही हमें प्रभु के समान महान् व बलवान् बनायेगा।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् प्रभु की सर्वाधार हैं

यस्य॑ द्वि॒बर्ह॑सो बृ॒हत्सहो॑ दा॒धार॒ रोद॑सी। गि॒रीँरज्राँ॑ अ॒पः स्व॑र्वृषत्व॒ना॥ २॥

(१) **यस्य**=जिस **द्विबर्हसः**=ज्ञान और शक्ति दोनों दृष्टिकोणों से बढ़े हुए प्रभु का **बृहत् सहः**=महान् बल **रोदसी**=द्यावापृथिवी का **दाधार**=धारण करता है। वे प्रभु ही **वृषत्वना**=अपने वीर्य व सामर्थ्य से **गिरीन्**=पर्वतों को, **अज्रान्**=खेतों को (मैदानों को), **अपः**=जलों को तथा **स्वः**=प्रकाश को धारण करते हैं। (२) वस्तुतः प्रभु ही सर्वाधार हैं। सर्वशक्तिमान् व सर्वज्ञ होने से सब चीजों का वे ठीक रूप में धारण कर रहे हैं। प्रभु का उपासक भी ज्ञान और शक्ति को बढ़ाता हुआ अपने जीवन में मस्तिष्क व शरीर दोनों का सुन्दरता से धारण करता है।

भावार्थ–वे सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् प्रभु अपने सामर्थ्य से सारे ब्रह्माण्ड को धारण कर रहे हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

विजयी बल, श्रवणीय ज्ञान

स रा॑जसि पुरुष्टु॒तँ एको॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नसे। इन्द्र॒ जैत्रा॑ श्रव॒स्या॑ च॒ यन्त॑वे॥ ३॥

(१) हे **पुरुष्टुत**=बहुतों से स्तुत प्रभो! **सः**=वे आप **राजसि**=सारे ब्रह्माण्ड के शासक हैं। **एकः**=बिना किसी अन्य की सहायता के अकेले ही **वृत्राणि**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **जिघ्नसे**=नष्ट करते हैं। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप वासनाओं को विनष्ट करके हमारे लिये **जैत्रा**=विजय के साधनभूत बलों को **च**=तथा **श्रवस्या**=श्रवणीय ज्ञानों को **यन्तवे**=देने के लिये होते हैं।

भावार्थ–हम प्रभु का ही स्तवन करें। प्रभु हमारी वासनाओं को विनष्ट करके हमारे लिये जैत्र बल व श्रवणीय ज्ञान को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'लोककृत्नु-हरिश्रि' मद

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम्। उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम्॥ ४॥

(१) हे प्रभो! **तम्**=उस **ते**-आपके द्वारा जिसकी व्यवस्था की गई है, उस सोम के रक्षण से उत्पन्न **मदम्**=उल्लास की **गृणीमसि**-हम प्रशंसा करते हैं। यह मद **वृषणम्**-हमें शक्तिशाली बनानेवाला है **पृत्सु**=संग्रामों में **सासहिम्**=शत्रुओं का पराभव करनेवाला है। (२) उ-और निश्चय से **लोककृत्नुम्**=यह मद हमारे जीवनों में प्रकाश को करनेवाला है। हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! यह मद **हरिश्रियम्**=इन्द्रियों की श्री का कारण होता है। सब इन्द्रियाँ इसी से दीप्ति को प्राप्त करती हैं।

भावार्थ-प्रभु के उपासन से सोमरक्षण होकर हमें वह उल्लास प्राप्त होता है, जो हमें शक्तिशाली बनाता है, संग्राम में विजयी करता है, प्रकाश को प्राप्त कराता है और इन्द्रियों की श्री को बढ़ाता है।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

आयवे-मनवे

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ। मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि॥ ५॥

(१) हे प्रभो! गत मन्त्र में वर्णित **येन**=जिस सोमपान जनित मद से **आयवे**=गतिशील व्यक्ति के लिये **च**=और **मनवे**=विचारशील पुरुष के लिये **ज्योतींषि**=ज्योतियों को **विवेदिथ**=प्राप्त कराते हैं। **अस्य**=इस **बर्हिषः**=वृद्धि के कारणभूत सोम का **विराजसि**=विशेषरूप से दीपन करते हैं। इस सोम के दीपन से ही **मन्दानः**=आप इन जीवों को आनन्दित करते हैं। (२) सोमरक्षण के लिये आवश्यक है कि हम 'आयु' बनें, गतिशील बनें। तथा 'मनु' विचारशील हों। उत्तम कर्मों में लगे रहना और स्वाध्यायशील होना ही हमें सोमरक्षण के योग्य बनाता है। रक्षित सोम ही सब वृद्धियों का कारण बनता है। यही जीवन में आनन्द का भी हेतु बनता है।

भावार्थ-हम गतिशील व विचारशील बनकर सोम का रक्षण करें। यह सुरक्षित सोम वृद्धि व आनन्द का कारण बनेगा।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'वृषपत्नीः अपः' जय

तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा। वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे॥ ६॥

(१) हे प्रभो! **अद्या चित्**=आज भी **पूर्वथा**-पहले की तरह इस सृष्टि में भी उसी प्रकार जैसे पूर्व सृष्टि में **उक्थिनः**=स्तोता लोग **ते**=आप के **तत्**=उस सोमपान जनित बल का **अनुष्टुवन्ति**=स्तवन करते हैं। यह सोमरक्षण से जनित मद वस्तुतः प्रशस्यतम है। यही सब वृद्धियों व उन्नतियों का मूल है। (२) हे प्रभो! आप हमारे लिये **दिवे दिवे**=प्रतिदिन **अपः**=रेतःकणरूप जलों का **जया**=विजय करिये। ये रेतःकणरूप जल ही **वृषपत्नीः**=शक्तिशाली पुरुषों से रक्षणीय हैं। 'वृष' शब्द का अर्थ धर्म भी है। ये सोमकण ही हमारे जीवन में धर्म का रक्षण करते हैं 'वृषपत्नी' हैं।

भावार्थ-प्रभु ने सोमरक्षण से उत्पन्न होनेवाले बल व मद की अद्भुत ही व्यवस्था की है।

प्रभु के अनुग्रह से हम इन रेतःकणरूप जलों का सदा विजय करें। ये रेतःकणरूप जल ही सब शक्तिशाली पुरुषों से रक्षणीय हैं, ये ही हमारे जीवनों में धर्म का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

शुष्म-क्रतु-वज्र-इन्द्रिय

तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव शुष्ममुत क्रतुम्। वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम्॥ ७॥

(१) हे उपासक! **धिषणा**=यह स्तुति **तव**=तेरी **त्यत्**=उस **इन्द्रियम्**=इन्द्रियों की शक्ति को **शिशाति**=तीक्ष्ण करती है। **उत**=और यह स्तुति **तव**=तेरे **बृहत्**=वृद्धि के कारणभूत **शुष्मम्**=शत्रु-शोषक बल को और **क्रतुम्**=प्रज्ञान को बढ़ाती है। (२) इन्द्रियशक्ति, शत्रु-शोषक बल व अज्ञान का वर्धन करती हुई यह स्तुति **वरेण्यम्**=वरणीय, चाहने योग्य **वज्रम्**=क्रियाशीलता को बढ़ानेवाली होती है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन से हमारा जीवन 'शक्ति-प्रज्ञान व क्रियाशीलता' वाला होता है। यह स्तुति हमारी इन्द्रियों की शक्ति का वर्धन करती है।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'पृथिवी, द्युलोक, जल व पर्वतों' द्वारा प्रभु-स्तवन

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः। त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे॥ ८॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **द्यौः**=यह द्युलोक **तव**=आपके **पौंस्यम्**=बल को **वर्धति**=बढ़ाता है, अर्थात् आपकी शक्ति का सूचन करता है। **पृथिवी**=यह पृथिवी आपके **श्रवः**=यश को बढ़ाती है। पृथिवी आपकी महिमा का ख्यापन करती है। (२) **आपः**=ये जल **पर्वतासः च**=और पर्वत **त्वां हिन्विरे**=आपको ही प्राप्त कराते हैं। इन समुद्रस्थ अनन्त से जलों को व गगनचुम्बी पर्वत शिखरों को देखकर आपकी महिमा का ही स्मरण होता है।

भावार्थ—यह आकाश और यह पृथिवी ये समुद्रजल व पर्वत सभी प्रभु की महिमा का प्रकाश कर रहे हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

उपासक का जीवन

त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः। त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम्॥ ९॥

(१) हे प्रभो! वास्तव में **त्वाम्**=आपका **गृणाति**=स्तवन वही करता है जो **विष्णुः**=व्यापक व उदारवृत्तिवाला बनता है, **बृहन्**=वृद्धि को करनेवाला होता है, **क्षयः**=उत्तम निवास व गतिवाला बनता है, **मित्रः**=सब के प्रति स्नेहवाला होता है और **वरुणः**=द्वेष का निवारण करनेवाला होता है प्रभु का वास्तविक स्तवन तो यही है कि हम इस प्रकार के जीवनवाले बनें। (२) हे प्रभो! **त्वाम्**=आपकी **अनु**=अनुकूलता को करता हुआ यह **मारुतं शर्धः**=प्राणों का बल **मदति**=(मादयति)=आनन्द का अनुभव कराता है। प्राणसाधना से चित्तवृत्ति की एकाग्रता होकर प्रभु में प्रीति बढ़ती है और एक अद्भुत आनन्द का अनुभव होता है।

भावार्थ—प्रभु का उपासक 'उदार, वृद्धि को प्राप्त होता हुआ, उत्तम निवास व गतिवाला, सब का मित्र व निर्द्वेष' होता है। यह प्राणसाधना को करता हुआ चित्तवृत्ति की एकाग्रता के द्वारा प्रभु प्राप्ति के आनन्द को पाता है।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

वृषा-मंहिष्ठः

त्वं वृषा जनानां मंहिष्ठ इन्द्र जज्ञिषे। सत्रा विश्वा स्वपत्यानि दधिषे॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **जनानाम्**=इन उपासक लोगों के **वृषा**=सुखों का वर्षण करनेवाले व **मंहिष्ठः**=दातृतम, सब आवश्यक ऐश्वर्यों के देनेवाले **जज्ञिषे**=होते हैं। **सत्रा** एकदम इकट्ठे हो, **विश्वा**-सब **स्वपत्यानि**-शोभन अपतन की हेतुभूत चीजों को **दधिषे**-धारण करते हैं। हम प्रभु का उपासन करते हैं, तो प्रभु हमें उन सब पदार्थों को प्राप्त कराते हैं, जो हमारे अपतन का कारण बनते हैं।

भावार्थ-प्रभु ही सुखों के वर्षक हैं, दातृतम हैं, सब अपतन साधक वस्तुओं का धारण करानेवाले हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

वृत्र-तोशन

सत्रा त्वं पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि तोशसे। नान्य इन्द्रात्करणं भूय इन्वति॥ ११॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप ही **पुरुष्टुत**-पालक व पूरक स्तुतिवाले हैं, आपकी स्तुति स्तोता का पालन व पूरण करती है। आप **सत्रा**-एकदम ही **एकः**-बिना किसी अन्य की सहायता के **वृत्राणि**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **तोशसे**=विनष्ट करते हैं। (२) **इन्द्रात् अन्यः**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु से भिन्न और कोई **भूयः**=अधिक **करणम्**=शत्रुवधादि कर्मों को **न इन्वति**-व्याप्त नहीं करता है। वासना-विनाश आदि महान् कर्मों को करनेवाले प्रभु ही हैं।

भावार्थ-प्रभु ही उपासक के काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्रभु-स्तवन व प्रकाश प्राप्ति

यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये। अस्माकेभिर्नृभिरत्रा स्वर्जय॥ १२॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **यत्**-जब **मन्मशः**=उस-उस स्तोत्र के द्वारा **त्वा**-आपको **नाना**-बहुत प्रकार से **ऊतये**=रक्षण के लिये **हवन्ते**=पुकारते हैं। तो **अत्रा**-यहाँ इस जीवन-संग्राम में **अस्माकेभिः नृभिः**=हमारे उन्नति-पथ पर चलनेवाले लोगों के द्वारा **स्वः**-प्रकाश व सुख का **जय**=विजय करिये। (२) जीवन वस्तुतः एक प्रबल संग्राम है। नाना वासनाओं का आक्रमण होता रहता है और उन वासनाओं का शिकार होकर हम 'ज्ञान व सुख' को खो बैठते हैं। प्रभु ही इस संग्राम में हमारे रक्षक होते हैं। इस रक्षण के लिये स्तोता प्रभु को पुकारता है। यह पुकार ही यहाँ 'मन्म' शब्द से कही गयी है।

भावार्थ-हम रक्षण के लिये प्रभु को पुकारते हैं। प्रभु रक्षण को प्राप्त करके हम सुख व प्रकाश (स्वः) को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

विश्वा रूपाण्याविशन्

अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशन्। इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम्॥ १३॥

(१) प्रभु कहते हैं कि हे स्तोतः! तू **नः**-हमारे इन **विश्वा रूपाणि**=सब रूपों में

आविशन्=प्रवेश करता हुआ, अर्थात् सब प्राणियों के जीवन के साथ अपने जीवन को मिलाता हुआ **महे क्षयाय**=महान् निवास व गति के लिये **अरम्**=समर्थ हो। सब के साथ अपने को एक करता हुआ अपने जीवन को सुन्दर बना। (२) उन **शचीपतिम्**=सब शक्तियों व प्रज्ञानों के स्वामी **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **जैत्राय**=विजय के लिये **हर्षया**=हर्षित कर। अपने कर्मों से हम प्रभु को प्रीणित करनेवाले बनें। प्रभु हमें विजयी बनायेंगे। सर्वमहान् कर्म यही है कि हम सब प्राणियों के साथ एक होने का प्रयत्न करें।

भावार्थ—सब प्राणियों के साथ अपने को एक करते हुए हम उत्तम निवासवाले बनें। शक्ति व प्रज्ञानों के स्वामी प्रभु को अपने कर्मों से प्रसन्न करते हुए सदा विजयी बनें।

यह सब प्राणियों के साथ अपने को एक करनेवाला व्यक्ति भौतिक सुखों से ऊपर उठकर पवित्र हृदय बनने का प्रयत्न करता है। सो 'इरिम्बिठि' कहलाता है, 'बिठ' अन्तरिक्ष की ओर 'इर' गति करनेवाला। भूलोक से ऊपर उठकर यह अन्तरिक्षलोक में गतिवाला होता है। भौतिक भोगों में न फँसना ही समझदारी है, एवं यह 'काण्व' है। यह 'इरम्बिठि काण्व' कहता है कि—

१६. [षोडशं सूक्तम्]

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'नरं-नृषाहं-मंहिष्ठम्'

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः। नरं नृषाहं मंहिष्ठम्॥ १ ॥

(१) **गीर्भिः**=इन ज्ञान-वाणियों के द्वारा उस **नव्यम्**=स्तुत्य **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **प्रस्तोत**=स्तुत करो जो **चर्षणीनां सम्राजम्**=श्रमशील तत्त्वद्रष्टा पुरुषों के दीप्त करनेवाले हैं। (२) उस प्रभु का स्तवन करो जो **नरम्**=हमें नेतृत्व देनेवाले हैं, उन्नतिपथ पर आगे ले चलनेवाले हैं। **नृषाहम्**=शत्रुभूत मनुष्यों का पराभव करनेवाले हैं। **मंहिष्ठम्**=दातृतम हैं, हमारे लिये सब उन्नति-साधनों को प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—हम उस श्रमशील तत्त्वद्रष्टा पुरुषों को दीप्ति के प्राप्त करानेवाले स्तुत्य प्रभु का स्तवन करें। प्रभु ही हमें उन्नतिपथ पर ले चलते हैं। प्रभु ही हमारे शत्रुओं का पराभव करते हैं। प्रभु ही हमारे लिये सर्वोत्तम दाता है।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

उक्थानि-श्रवस्या

यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या। अपामवो न समुद्रे॥ २ ॥

(१) उस प्रभु का स्तवन करो, **यस्मिन्**=जिस प्रभु में **उक्थानि**=स्तोत्र **रण्यन्ति**=रमण करते हैं **च**=और **विश्वानि**=सब **श्रवस्या**=कीर्तियाँ रमण करती हैं। सब स्तोत्र उस प्रभु के हैं सब यश उस प्रभु के हैं। (२) ये सब स्तोत्र व कीर्तियाँ प्रभु में इस प्रकार रमण करती हैं, **न**=जैसे **समुद्रे**=समुद्र में **अपाम्**=जलों के **अवः**=प्रवाह। जैसे जलों की तरंगें समुद्र में ही रम जाती हैं उसी प्रकार सब स्तोत्र व कीर्तियाँ प्रभु में ही रम जाती हैं।

भावार्थ—हम उस प्रभु का स्तवन करें, जो सब स्तोत्रों व यशों के रमण-स्थान हैं।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ज्येष्ठराद् प्रभु का स्तवन

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्। महो वाजिनं सनिभ्यः॥ ३॥

(१) **तम्**=उस प्रभु को **सुष्टुत्या**=उत्तम स्तुति से **आविवासे**-पूजित करता हूँ। जो प्रभु **ज्येष्ठराजम्**=द्युलोक के ज्येष्ठ देव सूर्य में, अन्तरिक्ष के ज्येष्ठ देव विद्युत् में तथा पृथिवी के ज्येष्ठ देव अग्नि में दीप्त हो रहे हैं। इन सबको वे प्रभु ही तो दीप्ति प्राप्त करा रहे हैं। (२) उस प्रभु का मैं स्तवन करता हूँ जो **भरे**=संग्राम में **महः**-महान् वृत्रवध आदि कर्मों के **कृत्नुम्**=करनेवाले हैं। जो प्रभु **सनिभ्यः**=सम्भजनशील पुरुषों के लिये **वाजिनम्**=बल को देनेवाले हैं।

भावार्थ-प्रभु का हम पूजन करें, जो प्रभु सूर्य आदि को दीप्ति के देनेवाले हैं, संग्राम में वृत्रवध आदि कर्मों के करनेवाले हैं तथा उपासकों के लिये शक्ति को देनेवाले हैं।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु-दर्शन का अद्भुत आनन्द

यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुत्राः। हर्षुमन्तः शूरसातौ॥ ४॥

(१) उस प्रभु का मैं उत्तम स्तुति से पूजन करता हूँ **यस्य मदाः**=जिसके उल्लास, जिसके दर्शन से भक्त हृदय में उत्पन्न हुए हुए उल्लास **अनूनाः**=सब न्यूनताओं से रहित होते हैं, **गभीराः**-गाम्भीर्य को लिये हुए होते हैं। ये उल्लास **उरवः**-विशाल व **तरुत्राः**=वासनाओं से तरानेवाले होते हैं। (२) ये प्रभु-दर्शन जनित उल्लास **शूरसातौ**=शूरों से सम्भजनीय संग्रामों में **हर्षुमन्तः**=हर्ष को प्राप्त करानेवाले होते हैं।

भावार्थ-प्रभु-दर्शन जनित उल्लास न्यूनताओं को दूर करनेवाले, गाम्भीर्य को लिये हुए, विशाल व वासनाओं से तरानेवाले व संग्रामों में हर्ष को देनेवाले होते हैं।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु मित्रता में विजय

तमिद्धनेषु हितेष्वधिवाकाय हवन्ते। येषामिन्द्रस्ते जयन्ति॥ ५॥

(१) **तं इत्**-उस प्रभु को ही **हितेषु धनेषु**-हितकर धनों के निमित्त **अधिवाकाय**=अधिक्येन उपदेश देने के लिये **हवन्ते**=पुकारते हैं। प्रभु ही तो हमें हितकर धनों की प्राप्ति के निमित्त उत्तम ज्ञानोपदेश करते हैं। (२) इस जीवन संग्राम में **येषां इन्द्रः**=जिनके वे प्रभु हैं **ते जयन्ति**-वे विजयी होते हैं। प्रभु की मित्रता में ही विजय है। प्रकृति की ओर जाना, प्रकृति में फँस जाना ही पराजय का कारण बनता है।

भावार्थ-हृदयस्थ प्रभु से प्रेरणा को प्राप्त करके ही हम सुपथ से हितकर धनों का अर्जन करनेवाले बनेंगे। जो प्रभु के बनते हैं, वे सदा विजयी होते हैं।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

च्यौत्नैः, कृतेभिः

तमिच्च्यौत्नैरार्यन्ति तं कृतेभिश्चर्षणयः। एष इन्द्रो वरिवस्कृत्॥ ६॥

(१) वे **चर्षणयः**=श्रमशील तत्त्वद्रष्टा पुरुष **तं इत्**=उस प्रभु को ही **च्यौत्नैः**=शत्रुओं को च्युत करनेवाले बलों के हेतु से **आर्यन्ति**=प्राप्त होते हैं। प्रभु ने ही वस्तुतः वह बल प्राप्त कराना

है, जिससे हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं का पराजय कर पाते हैं। **तम्**=उस प्रभु को ही **कृतेभिः**= पुण्य कर्मों के हेतु से प्राप्त होते हैं। प्रभु की उपासना ही हमारा झुकाव पुण्यकर्मों की ओर रखती है। (२) **एषः**=यह **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु ही **वरिवः कृत्**=सब धनों का करनेवाला है। उपासकों के लिये सब ऐश्वर्यों को प्रभु ही प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ–हम प्रभु उपासना से च्यौत्न=शत्रु च्युत और पुण्य कर्मा बनें।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

'ब्रह्मा-ऋषि-पुरुहूत'

इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरू पुरुहूतः। महान्महीभिः शचीभिः ॥ ७ ॥

(१) **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **ब्रह्मा**=(great) महान् हैं। **इन्द्रः**=वे प्रभु ही **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा हैं। **इन्द्रः**=वे प्रभु ही **पुरु**=खूब ही **पुरुहूतः**=बहुतों से पुकारे जाते हैं। अन्त में सब प्रभु को ही पुकारते हैं। (२) वे प्रभु **महीभिः शचीभिः**=महान् शक्तियों व प्रज्ञानों से **महान्**=पूजनीय हैं।

भावार्थ–वे परमैश्वर्यशाली प्रभु ही 'ब्रह्मा, ऋषि व पुरुहूत' हैं। वे महान् शक्तियों व प्रज्ञानों से सचमुच महान् हैं, पूजनीय हैं।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

एकः सन् 'अभिभूतिः'

स स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः। एकश्चित्सन्नभिभूतिः ॥ ८ ॥

(१) **सः**=वे प्रभु ही **स्तोम्यः**-स्तुति के योग्य हैं **सः**=वे ही **हव्यः**=पुकारने के योग्य हैं। **सत्यः**=सत्यस्वरूप हैं। **सत्वा**=शत्रुओं का सादन (विनाश) करनेवाले हैं। **तुविकूर्मिः**=सृष्टि-उत्पत्ति धारण व प्रलय आदि महान् कर्मों के करनेवाले हैं। (२) **एकः सन्**=अकेले होते हुए भी **चित्**=निश्चय से **अभिभूतिः**=सब शत्रुओं का अभिभव करनेवाले हैं। उपासक प्रभु की शक्ति से ही काम-क्रोध आदि का पराजय कर पाता है।

भावार्थ–प्रभु ही उपास्य हैं। प्रभु ही हमारे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का पराभव करते हैं।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

'ऋग् यजु साम' मन्त्रों द्वारा प्रभु का गायन

तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः। इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥ ९ ॥

(१) **चर्षणयः**=तत्त्वद्रष्टा पुरुष **तम्**=उस प्रभु को ही **अर्केभिः**=स्तुति साधन ऋचाओं से **वर्धन्ति**=बढ़ाते हैं। **तम्**=उस प्रभु को ही **सामभिः**=साम-मन्त्रों से स्तुत करते हैं और **तम्**=उस प्रभु को ही **गायत्रैः**=गायन करनेवाले का त्राण करनेवाले यजु-मन्त्रों से याद करते हैं। (२) **क्षितयः**=इस शरीर में उत्तमता से निवास करते हुए गतिशील पुरुष **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **वर्धन्ति**=बढ़ाते हैं।

भावार्थ–ऋचाओं, यजु व साम मन्त्रों से प्रभु का ही गायन होता है। उत्तम निवास व गतिवाले मनुष्य प्रभु का ही वर्धन करते हैं।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

धन प्रणयन-ज्योतिष्करण-शत्रु-मर्षण

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु। सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १० ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार मनुष्य उस प्रभु का स्तवन करते हैं जो **वस्यः अच्छा**-प्रशस्त धन को ओर **प्रणेतारम्**-ले जानेवाले हैं। और **समत्सु**-संग्रामों में **ज्योतिः**-प्रशस्त ज्ञान को **कर्तारम्**=करनेवाले हैं। इस ज्ञानाग्नि के द्वारा ही तो शत्रु भस्म होते हैं। (२) ये प्रभु ही **युधा**=युद्ध के द्वारा **अमित्रान्**=शत्रुओं को **सासह्वांसम्**=कुचल देनेवाले हैं।

भावार्थ-प्रभु प्रशस्त धन को प्राप्त कराते हैं। संग्राम में ज्ञानाग्नि द्वारा शत्रुओं को भस्म करते हैं। युद्ध द्वारा शत्रुओं को कुचल देते हैं।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'पप्रिः' इन्द्रः (पारयाति)

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः। इन्द्रो विश्वा अति द्विषः॥ ११॥

(१) **सः**-वह **पप्रिः**-पूरयिता, न्यूनताओं को दूर करके हमारा पूरण करनेवाले **इन्द्रः**-सर्वशत्रु-विनाशक प्रभु **नः**-हमें **स्वस्ति**=कल्याणपूर्वक **पारयाति**-इस भवसागर से पार करते हैं। उसी प्रकार पार करते हैं, जैसे **नावा**=एक नाविक नाव द्वारा हमें नदी से पार करता है। (२) वे **पुरुहूतः**=बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभु हमें **विश्वाः**=सब **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं से **अति**-पार ले जानेवाले हैं। जीवन की साधना में सब से बड़ी बात यही है कि हम द्वेष से ऊपर उठें।

भावार्थ-प्रभु हमें द्वेष आदि अशुभ वृत्तियों से दूर करते हुए कल्याण प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

दशस्या च गातुया च

स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च। अच्छा च नः सुम्नं नेषि॥ १२॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सः त्वम्**=वे आप **नः**-हमें **वाजेभिः**-बलों के साथ **दशस्य च**=धनों को भी दीजिये **गातुय च**-और हमें उत्तम सुख का मार्ग दिखाइये (मार्गम् इच्छ)। (२) **च**=और हे प्रभो! इस प्रकाश व शक्ति के साथ धनों को देते हुए तथा मार्ग पर ले चलते हुए आप **नः**=हमें **सुम्नं अच्छा**-सुख की ओर अथवा स्तवन की ओर **नेषि**=ले चलिये।

भावार्थ-हम प्रभु कृपा से शक्ति व धन को प्राप्त करते हुए मार्ग पर चलें और सुख को प्राप्त करें।

अगले सूक्त के ऋषि देवता भी 'इरिम्बिठि काण्व' व 'इन्द्र' ही हैं-

१७. [सप्तदशं सूक्तम्]

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

हृदयासन पर प्रभु को आसीन करना

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **आयाहि**-आइये। **ते**-आपकी प्राप्ति के लिये **हि**=ही हमने **सुषुमा**=इस सोम का सवन किया है। **इमं सोमं पिब**=इस सोम का आप इस शरीर में ही पान करिये आपकी उपासना ही हमें वासनाओं से बचाकर सोमरक्षण के योग्य बनाती है। (२) इस प्रकार सोमरक्षण के होने पर **इदम्**=इस **मम**-मेरे **बर्हिः**=हृदयासन पर **आसदः**=आप विराजिये। सोमरक्षण से यह हृदयान्तरिक्ष सब वासनाओं के धूम से रहित होकर दीप्त हो उठता है। इस पवित्र हृदय में प्रभु का वास होता है।

भावार्थ–हमें प्रभु प्राप्त हों। प्रभु-स्मरण द्वारा हम सोम का रक्षण कर पायें। यह सोमरक्षण हमारे हृदय को पवित्र बना दे।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'ब्रह्मयुजा केशिना' हरी

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना। उप ब्रह्माणि नः शृणु॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**–परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **केशिना**-प्रकाश की रश्मियोंवाले, **ब्रह्मयुजा**=ज्ञान वाणियों के साथ सम्पर्कवाले **हरी**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्व **त्वा**=आपको **आवहताम्**=हमें प्राप्त करायें। (२) हे प्रभो! **नः**=हमारे **ब्रह्माणि**=ज्ञानपूर्वक किये गये स्तोत्रों को आप **उपशृणु**= समीपता से सुनिये।

भावार्थ–हमारी इन्द्रियाँ प्रकाश व ज्ञान की ओर चलती हुई हमें प्रभु को प्राप्त करायें, हमारे मुख से प्रभु के स्तोत्र ही उच्चारित हों।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ब्रह्माणः, सोमिनः, सुतावन्तः

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः। सुतावन्तो हवामहे॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **ब्रह्माणः**=ज्ञान की वाणियोंवाले **वयम्**=हम **युजा**=आप के साथ मिलानेवाली स्तुति के द्वारा **त्वा**=आपको **हवामहे**=पुकारते हैं। हे **इन्द्र**=हमारे शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **सोमपाम्**=हमारे सोम (वीर्य) का रक्षण करनेवाले आपको हम **सोमिनः**=प्रशस्त सोमवाले होते हुए इस सोम को वासनाओं से मलिन न होने देते हुए पुकारते हैं। (२) **सुतावन्तः**=प्रशस्त यज्ञों (सुतं-सवः) वाले होते हुए हम आपको पुकारते हैं।

भावार्थ–प्रभु का वास्तविक स्तवन ज्ञानी, सोमरक्षक यज्ञशील पुरुष ही करते हैं।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

यज्ञ-स्तुति-सोमरक्षण

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप। पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः॥ ४॥

(१) **सुतावतः**=प्रशस्त यज्ञों (सुतं=सवः) वाले **नः**=हमें **आयाहि**=प्राप्त होइये। यज्ञों को करते हुए हम प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनें। हे प्रभो! आप **अस्माकम्**=हमारी, हमारे से की जानेवाली **सुष्टुतीः**=उत्तम स्तुतियों को **उप**=समीपता से प्राप्त होइये। हमारे से किये जानेवाले स्तवन हमें आपके समीप प्राप्त करायें। (२) हे **सुशिप्रिन्**=उत्तम हनु व नासिकावाले, उत्तम हनुओं व नासिका को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **अन्धसः**-इस आध्यातव्य सोम का **पिबा**=पान करिये। आपके अनुग्रह से सात्त्विक भोजनों का सम्यक् चर्वण करते हुए तथा प्राणसाधना करते हुए हम सोम को शरीर में ही सुरक्षित कर पायें।

भावार्थ–'यज्ञ-स्तुति व सोमरक्षण' हमें प्रभु के समीप प्राप्त करानेवाले हों।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गृभाय जिह्वया मधु

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु। गृभाय जिह्वया मधु॥ ५॥

(१) प्रभु उपासक को कहते हैं कि मैं **ते**-तेरे **कुक्ष्योः**-उदर के दायें व बायें भागों में इस सोम को **आसिञ्चामि**-आसिक्त करता हूँ। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ यह सोम **गात्रा अनु विधावतु**=सब अंगों को अनुकूलता से प्राप्त हो और उन अंगों का शोधन करनेवाला हो। (२) इस सोमरक्षण के द्वारा तू **जिह्वया**=जिह्वा से **मधु गृभाय**=माधुर्य का ग्रहण कर। जिह्वा से तू सदा शुभ शब्दों को ही बोलनेवाला हो। सोमरक्षण तुझे मधुरभाषी बनाये।

भावार्थ-हम सोम को शरीर में सुरक्षित करते हुए अंग-प्रत्यंग को शुद्ध बनायें, हमारी जिह्वा सदा मधुर शब्द बोलनेवाली हो।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

स्वादुः-मधुमान्-शम्

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वे३ तव। सोमः शमस्तु ते हृदे॥ ६॥

(१) यह शरीर में सुरक्षित सोम **संसुदे**-सम्यक् उत्तम दान करनेवाले **ते**=तेरे लिये **स्वादुः अस्तु**=जीवन को मधुर बनानेवाला हो। **तव तन्वे**-तेरे शरीर के लिये यह **मधुमान्**=माधुर्य को लिये हुए हो, अर्थात् तेरे जीवन की सब क्रियाओं को यह मधुर बना दे। (२) यह **सोमः**-सोम **ते हृदे**=तेरे हृदय के लिये **शं अस्तु**-शान्ति को देनेवाला हो। सुरक्षित सोम हमें शान्तचित्त बनाये।

भावार्थ-सुररिक्षत सोम जीवन को आनन्दयुक्त मधुर व शान्त हृदय बनाता है।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'पत्नियों के समान सुरक्षित' सोम

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः। प्र सोम इन्द्र सर्पतु॥ ७॥

(१) हे **विचर्षणे**=विद्रष्टः तत्त्व के द्रष्टा **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **उ**=निश्चय से **अयं सोमः**= यह सोम (वीर्य) **त्वा प्रसर्पतु**-तुझे समीपता से प्राप्त हो, तेरे शरीर में ही यह गतिवाला हो। (२) यह सोम तत्त्वद्रष्टा जितेन्द्रिय पुरुष के अन्दर इस प्रकार सुरक्षित हो, **इव**=जैसे **जनीः**=जाया-पत्नी-शुक्ल वस्त्रों से अभिसंवृत होती है। शुक्ल वस्त्रों से अभिसंवृत पत्नी की तरह यह सोम शुक्ल भावनाओं से अभिसंवृत हो। शुक्ल भावनाओं से अभिसंवृत सोम ही शरीर में सुरक्षित रहता है।

भावार्थ-हम जितेन्द्रिय बनते हुए, शरीर में सोम को शुक्लभावनारूप वस्त्रों से अभिसंवृत करके रक्षित करनेवाले हों।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

तुविग्रीव-वपोदर-सुबाहु

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते॥ ८॥

(१) **अन्धसः**=आध्यातव्य सोम के **मदे**=मद में, सोमरक्षण से जनित उल्लास में यह सोमी पुरुष **सुबाहुः**=उत्तम बाहुवाला बनता है, इसकी भुजाओं में शक्ति होती है। **वपोदर**-इसका उदर सोम के बीज को अपने अन्दर ही बोनेवाला होता है (वप्-बोना), अर्थात् यह सोम को अपने में ही सुरक्षित रखनेवाला होता है। **तुविग्रीवः**=महान् ग्रीवावाला होता है, उच्च ज्ञान से विभूषित कण्ठवाला होता है। (२) **इन्द्रः**-यह जितेन्द्रिय पुरुष **वृत्राणि**-ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **जिघ्नते**=नष्ट करनेवाला होता है।

भावार्थ-जितेन्द्रिय पुरुष वासनाओं को विनष्ट करके सोम का रक्षण करता है। यह सुरक्षित

सोम उसे शक्तिशाली, सद्गुणों के बीजों को बोनेवाला व उच्च ज्ञान से अलंकृत कण्ठवाला बनाता है।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पुरः प्रेहि

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा। वृत्राणि वृत्रहञ्जहि॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **त्वम्**=तू **पुरः प्रेहि**=आगे और आगे चलनेवाला बन। **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा **विश्वस्य**=हमारे न चाहते हुए भी अन्दर घुस आनेवाले इन काम-क्रोध का तू **ईशानः**=शासक बनता है। इन्हें पूर्णतया संयत करनेवाला होता है। (२) हे **वृत्रहन्**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करनेवाले! तू **वृत्राणि**=इन वासनाओं को विनष्ट कर।

भावार्थ—हम निरन्तर आगे बढ़े, काम-क्रोध आदि के शासक हों, इन्हें पूर्णरूप से वश में करें। इन आवरणभूत वासनाओं को दूर करें।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

संयम से वसु प्राप्ति

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि। यजमानाय सुन्वते॥ १०॥

(१) हे प्रभो! **ते अङ्कुशः**=आपका यह नियमन **दीर्घः**=(दॄ विदारणे) सब अन्धकारों का विदारण करनेवाला हो। आपकी उपासना से प्राप्त संयम का भाव हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करे। (२) यह अंकुश (संयम का भाव) ही वह उपाय है। **येना**=जिससे आप **यजमानाय**=यज्ञशील **सुन्वते**=सोम का अपने में सम्पादन करनेवाले के लिये **वसु प्रयच्छसि**=धन को देते हैं, निवास को उत्तम बनाने के लिये आवश्यक तत्त्वों को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—उपासक का जीवन संयत बनाता है। इससे वह यज्ञशील व सोमरक्षक बनता हुआ वसु (जीवनधन) को प्राप्त करता है।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

क्रियाशीलता व सोमपान

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि। एहीमस्य द्रवा पिब॥ ११॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **अयं सोमः**=यह सोम **ते**=तेरे लिये **अधि बर्हिषि**=इस वासनाशून्य हृदय में **निपूतः**=नितरां पवित्र हुआ है। वासनायें ही सोम को अपवित्र करती हैं। वासनाओं के अभाव में यह सोम पवित्र बना रहता है। (२) **एहि**=आ, और **ईम्**=निश्चय से **द्रव**=गतिशील बन सदा अकर्मण्यता से दूर रह और **अस्य पिब**=इस सोम का पान कर।

भावार्थ—हृदय को वासनाओं से आक्रान्त न होने देते हुए हम सोम का रक्षण करें। क्रियाशील बनकर सोम को शरीर में ही व्याप्त करने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

आखण्डल का आह्वान

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः। आखण्डल प्र हूयसे॥ १२॥

(१) हे **शाचिगो**=शक्तिशाली इन्द्रियों को प्राप्त करानेवाले (गावः इन्द्रियाणि), **शाचिपूजन**=शक्ति के द्वारा उपासनीय प्रभो! **अयम्**=यह सोम **ते रणाय**=आप के अन्दर रमण के लिये

सुतः-उत्पन्न हुआ है। इसका रक्षण करके मैं आपका दर्शन कर पाता हूँ और आनन्द का अनुभव करता हूँ। (२) हे **आखण्डल**=सर्वतः वासनाओं का खण्डन करनेवाले प्रभो! **प्रहूयसे**=हमारे से आप ही पुकारे जाते हैं। आपने ही तो इन वासनाओं पर मुझे विजय प्राप्त करानी है।

भावार्थ–प्रभु हमें शक्तिशाली इन्द्रियाँ प्राप्त कराते हैं। शक्ति के द्वारा ही प्रभु का पूजन होता है। इस शक्ति के लिये सोम का रक्षण आवश्यक है। सोमरक्षण के लिये हम प्रभु को पुकारते हैं।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'कुण्डपाय्य' में मन का धारण

यस्ते॑ शृङ्गवृषो नपा॒त्प्रण॑पात्कुण्ड॒पाय्यः॑। न्य॑स्मिन्दध्र॒ आ मनः॑॥ १३॥

(१) 'कुण्डपाय्य' एक यज्ञ है जिसमें कुण्ड के द्वारा सोम का पान होता है। यहाँ 'कुण्ड' का भाव वासनाओं के दहन से है (कुडि दाहे)। वासना दहन के द्वारा शरीर में सोम का रक्षण होता है। यही 'कुण्डपाय्य' यज्ञ है। प्रभु 'शृंगवृष्' हैं, (शृणन्ति–शृंग) ज्ञानरश्मियों द्वारा सुखों का वर्षण करनेवाले हैं। हे **शृंगवृषः नपात्**–प्रभु के पुत्र, अर्थात् प्रभु की आज्ञा में चलनेवाले और अतएव **प्रणपात्**=प्रकर्षेण अपना पतन न होने देनेवाले जीव! **यः**=जो **ते**-तेरा **कुण्डपाय्यः**= वासनादहन द्वारा सोमपानरूप यज्ञ है। **अस्मिन्**=इस यज्ञ में **मनः**=तेरा मन **आनिदध्रे**–सर्वथा निहित हो। (२) तू सोम को शरीर में पीने के लिये मन में दृढ़ निश्चय कर। इसके लिये तू उस प्रभु का सच्चा पुत्र बन जो ज्ञानरश्मियों द्वारा तेरे पर सुखों का वर्षण करते हैं। तू अपने को गिरने न दे। 'कुण्डपाय्य' यज्ञ में ही तेरा मन स्थापित हो।

भावार्थ–हम प्रभु के सच्चे पुत्र बनें। वासनाओं को दग्ध करते हुए सोम का रक्षण करें।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आसुरीबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

इन्द्रः मुनीनां सखा

वास्तो॑ष्पते ध्रु॒वा स्थूणांस॑त्रं सो॒म्याना॑म्। द्र॒प्सो भे॒त्ता पु॒रां शाश्व॑तीना॒मिन्द्रो॒ मुनी॑नां॒ सखा॑॥ १४॥

(१) हे **वास्तोष्पते**–गृहपते, हमारे शरीररूप गृहों के रक्षक प्रभो! **स्थूणा**-इस गृह का आधारभूत स्तम्भ, अर्थात् मेरुदण्ड **ध्रुवा**–ध्रुव हो। हमारा मेरुदण्ड (रीढ की हड्डी) सदा ठीक बना रहे। **सोम्यानाम्**=सोम का रक्षण करनेवाले हमारा **अंसत्रम्**–स्कन्धों का त्रायक (रक्षक) बल सदा ध्रुव हो। अर्थात् कन्धे इत्यादि सब अंग सबल बने रहें। (२) वह **द्रप्सः**=आनन्दमय व प्रकाश का देनेवाला, **शश्वतीनाम्**=बहुत-सी **पुरां भेत्ता**=असुरों की नगरियों का ध्वंसक **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **मुनीनाम्**=हम मननशील, मौन रहनेवाले (कम बोलनेवाले) पुरुषों का **सखा**–मित्र हो।

भावार्थ–प्रभु हमारे शरीर गृहों का रक्षण करें। हम सोम्य (सोमरक्षक) बनकर सबल बने रहें। वे प्रभु हमारे मित्र हों। प्रभु की मित्रता में मैं आसुरभावों को दूर कर पाऊँ। विचारशील मुनि बनूँ।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्षीभुरिग्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'पृदाकु-सानुः'

पृदा॑कुसानुर्यज॒तो ग॒वेष॑ण॒ एकः॒ सन्न॒भि भूय॑सः।
भूर्णि॒मश्वं॑ नयत्तु॒जा पु॒रो गृ॒भेन्द्रं॒ सोम॑स्य पी॒तये॑॥ १५॥

(१) वे प्रभु **पृदाकुसानुः**–(पृ+दाकु+सानु) पालन-पोषण के लिये सब वस्तुओं के देनेवालों

के शिखर पर हैं। अर्थात् दातृ-शिरोमणि हैं। **यजतः**=पूजनीय हैं। **गवेषणः**=(गवामेषयिता) ज्ञान की वाणियों के प्राप्त करानेवाले हैं। **एकः सन्**=अकेले होते हुए **भूयसः**=बहुत शत्रुओं को **अभि (भवति)**=अभिभूत करनेवाले हैं। (२) ये प्रभु **भूर्णिम्**=हमारा भरण करनेवाले **अश्वम्**=इन्द्रियाश्व को **नयत्**=प्राप्त कराते हैं। **तुजा** वासना शत्रुओं के हिंसन के द्वारा तथा **गृभा**=उत्तम गुणों के ग्रहण के द्वारा **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **पुरः**=(नयत्) आगे प्राप्त कराते हैं और **सोमस्य पीतये**=इसके सोम के पान (रक्षण) के लिये होते हैं। सोमरक्षण द्वारा ही तो प्रभु इसे उन्नत करते हैं।

भावार्थ-प्रभु सर्वोत्तम दाता हैं, पूजनीय हैं, इन्द्रियों के प्राप्त करानेवाले हैं, वासनारूप शत्रुओं का अभिभव करनेवाले हैं। ये प्रभु उत्तम इन्द्रियों को प्राप्त कराते हैं, वासना विनाश द्वारा आगे ले चलते हैं, सोम का रक्षण करते हैं।

इरिम्बिठि काण्व ही अगले सूक्त में आदित्यों से प्रकाश को प्राप्त करने के लिये कहता है-

१८. [अष्टादशं सूक्तम्]

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

आदित्यों की प्रेरणाएँ

इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः। आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि॥ १॥

(१) प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करनेवाले विद्वान् 'वसु' हैं। 'प्रकृति-जीव' का ज्ञान प्राप्त करनेवाले 'रुद्र' कहलाते हैं और 'प्रकृति-जीव-परमात्मा' का ज्ञान प्राप्त करनेवाले ये विद्वान् 'आदित्य' हैं। **मर्त्यः**=मनुष्य **एषां आदित्यानाम्**=इन आदित्यों के **इदम्**=इस **हनूनम्**=निश्चय से **अपूर्व्यम्**=अद्भुत **सुम्नम्**=अनुग्रह व रक्षण को **भिक्षेत**=माँगे। (२) **सवीमनि**=सदा इन आदित्यों की प्रेरणा में चलने का प्रयत्न करे। इस प्रेरणा में चलने से ही हम भी आदित्य बन पायेंगे।

भावार्थ-हम आदित्य विद्वानों की प्रेरणा में चलते हुए उनके अनुग्रह को प्राप्त कर सकें। यही मार्ग है।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

अहिंसित मार्ग

अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम्। अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः॥ २॥

(१) **एषां आदित्यानाम्**=इन अदिति के पुत्रों के **पन्थाः**=मार्ग **अनर्वाणः**=अहिंसित होते हैं। **हि**=निश्चय से इनके मार्ग **अदब्धाः सन्ति**=पवित्र व सत्य हैं। (२) इन आदित्यों के मार्ग **पायवः**=हमारा रक्षण करनेवाले हैं, और **सुगेवृधः**=सुख में वृद्धि को करनेवाले हैं।

भावार्थ-हम सदा आदित्यों के मार्ग पर ही चलनेवाले हों। यह मार्ग अहिंसित, पवित्र, रक्षक व सुखवर्धक है।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'सविता-भग-वरुण-मित्र-अर्यमा' का आराधन

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा। शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे॥ ३॥

(१) '**सविता**'=उत्पादक है, निर्माण की देवता है। '**भगः**'-ऐश्वर्य की देवता है। '**वरुणः**'=निर्द्वेषता की सूचना देता है। '**मित्रः**'=सब के प्रति स्नेहवाला है और '**अर्यमा**'=काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं का नियमन करनेवाला है। (२) ये सब के सब देव **नः**=हमारे लिये **तत्**=उस

सप्रथः=विस्तारवाले **शर्म**-सुख को **सुयच्छन्तु**-सम्यक् दें, **यत् ईमहे**=जिस की हम याचना करते हैं। वस्तुतः जीवन का वास्तविक सुख सविता आदि देवों की आराधना में ही है। इनकी आराधना का स्वरूप यही है कि हम निर्माणात्मक कार्यों में प्रवृत्त हों, सुपथ से ऐश्वर्य का सम्पादन करें, निर्द्वेष बनें, सब के प्रति स्नेहवाले हों, काम क्रोध आदि शत्रुओं का नियमन करें।

भावार्थ-हम सविता आदि देवों का आराधन करते हुए सुख के भागी बनें।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

देवी अदिति

देवेभिर्देव्यदितेऽरिष्टभर्मन्ना गहि। स्मत्सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः॥ ४॥

(१) 'अदिति' स्वास्थ्य की देवता है 'न दितिः यस्याः' (दिति-खण्डन)। यह स्वास्थ्य दिव्य गुणों को जन्म देता है, सो यह अदिति 'देवी' है, यास्क ने इसे 'अदीना देवमाता' कहा है। यह स्वास्थ्य हमें दीनता से ऊपर उठाता है, हमारे अन्दर दिव्य गुणों को जन्म देता है। अहिंसित भरणवाली होने से यह 'अरिष्ट-भर्मा' है। मन्त्र में कहते हैं कि हे **अरिष्टभर्मन्**=अहिंसित भरणवाली, **देवि**=दिव्य गुणों को जन्म देनेवाली **अदिते**-स्वास्थ्य की देवि! तू **देवेभिः**=दिव्यगुणों के साथ **आगहि**=हमें प्राप्त हो। (२) हे **पुरुप्रिये**-खूब ही प्रीणित करनेवाले (सारा आनन्द स्वास्थ्य में ही तो है) अदिते! तू **स्मत्**-प्रशस्त **सूरिभिः**-विद्वानों के साथ **सुशर्मभिः**-उत्तम रक्षण को प्राप्त करानेवाले ज्ञानी पुरुषों के साथ हमें प्राप्त हो।

भावार्थ-हम स्वस्थ बनें। यह स्वास्थ्य हमें दिव्य गुणों की ओर प्रेरित करे और हम प्रशस्त ज्ञानियों के सम्पर्क में सुरक्षित जीवनवाले हों।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

द्वेष व पाप से दूर

ते हि पुत्रासो अदितेर्विदुर्द्वेषांसि योतवे। अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः॥ ५॥

(१) **ते**=वे **अदितेः पुत्रासः**=अदिति के पुत्र आदित्य विद्वान् **हि**=निश्चय से **द्वेषांसि**-द्वेषों को **योतवे**=पृथक् करने के लिये **विदुः**=जानते हैं। वे हमें ऐसे मार्ग से ले चलते हैं कि हम द्वेष की भावना में नहीं फँसते, द्वेष आदि की ओर हमारा झुकाव ही नहीं रहता। (२) वे आदित्य **उरुचक्रयः**-खूब ही क्रियाशील जीवनवाले होते हैं। **अनेहसः**-निष्पाप होते हैं। ये विद्वान् **अंहोः चित्**=पाप से हमें पृथक् करना जानते हैं।

भावार्थ-हम आदित्य विद्वानों के सम्पर्क में चलें। ये हमें द्वेष व पाप से दूर करेंगे।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'अद्वयाः' अदितिः

अदितिर्नो दिवा पशुमदितिर्नक्तमद्वयाः। अदितिः पात्वंहसः सदावृधा॥ ६॥

(१) 'अदिति' स्वास्थ्य की देवता है। स्वस्थ पुरुष काम-क्रोध आदि का भी शिकार नहीं होता यह अदिति 'अद्वयाः' है, 'अन्दर कुछ और बाहिर कुछ' इस प्रकार के कपट से वह रहित है। यह **अदितिः**=स्वास्थ्य की देवता **दिवा**=दिन में **नः**=हमारे इन **पशुम्**='कामः पशुः, क्रोधः पशुः' काम-क्रोध आदि पशुतुल्य वृत्तियों को **पातु**=रक्षित करे, जैसे शेर को पिञ्जरे में बन्द रखते हैं, इसी प्रकार इन्हें नियन्त्रण में रखे। **अदितिः**-यह स्वास्थ्य की देवता **अद्वयाः**=हमें कपटरहित बनाती हुई **नक्तम्**=रात्रि में **पातु**-हमारे पशुओं का रक्षण करे, इन्हें बद्ध रखे। (२) **सदावृधा**=सदा

वृद्धि का कारण होती हुई यह **अदितिः**=स्वास्थ्य की देवता **अंहसः पातु**=हमें पाप से बचाये।

भावार्थ—हम स्वस्थ बनें। यह स्वास्थ्य हमारे काम-क्रोध को दिन-रात नियन्त्रण में रखे और हमें पापों की ओर न जाने दे।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

मतिः+अदितिः=बुद्धि व स्वास्थ्य

उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्या गमत्। सा शन्ताति मयस्करदप स्रिधः॥ ७॥

(१) **उत**=और **दिवा**=इस दिन **नः**=हमें **स्या**=वह **मतिः**=बुद्धि और **अदितिः**=स्वास्थ्य **ऊत्या**=रक्षण के हेतु से **आगमत्**=प्राप्त हो। हम शरीर में स्वस्थ हों, मस्तिष्क में खूब ज्ञान-सम्पन्न हों। (२) **सा**=वह मति और **अदिति**=बुद्धि व स्वास्थ्य **शन्ताति**=शान्ति का विस्तार करनेवाला **मयः करत्**=आरोग्यता व कल्याण को करनेवाला हो। **स्रिधः**=बाधक शत्रुओं को **अप**=हमारे से दूर करे।

भावार्थ—हम प्रतिदिन बुद्धि-सम्पन्न व स्वस्थ बनते हुए अपना रक्षण कर पायें, शान्त जीवनवाले हों, कल्याण को प्राप्त करें तथा बाधक शत्रुओं को दूर करें।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

अश्विना

उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना। युयुयातामितो रपो अप स्रिधः॥ ८॥

(१) **उत**=और **त्या**=वे **अश्विना**=प्राणापान **दैव्या भिषजा**=उस महान् देव प्रभु के द्वारा शरीर में स्थापित (देवस्य इमौ) वैद्य हैं। ये वैद्य **नः**=हमारे लिये **शम्**=रोगों के शमन को **करतः**=करते हैं। (२) ये प्राणापान **इतः**=यहाँ से **रपः**=पाप को, दोष को **युयुयात्मा**=पृथक् करें तथा **स्रिधः**=बाधक शत्रुओं को **अप**=(गमयतम्) दूर करें।

भावार्थ—प्राणायाम द्वारा वशीभूत प्राणायाम सब शारीरिक दोषों को दूर करते हैं। (रपः) काम-क्रोध आदि बाधक शत्रुओं को भी हमारे से पृथक् करते हैं। इस प्रकार हमारे जीवनों में ये शान्ति का कारण बनते हैं।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निसूर्यानिलाः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

शान्ति

शमग्निरग्निभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः। शं वातो वात्वरपा अप स्रिधः॥ ९॥

अग्निः=अग्नि **अग्निभिः**=आग्नेय पदार्थों से **न**=हमें **शं करत्**=शान्ति प्रदान करे। **सूर्य**=सूर्य **नः**=हमारे लिये **तपतु**=शान्ति से तपे। **वातः**=वायु **अरपाः**=नीरोग **वातु**=बहे। **स्रिधः अप**=रोग दूर हों।

भावार्थ—अग्नि, सूर्य, वायु हमें शान्तिदायक हों।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

आदित्यासः

अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम्। आदित्यासो युयोतना नो अंहसः॥ १०॥

हे **आदित्यासः**=बुद्धि व स्वास्थ के देवो! **अमीवाम्**=रोगों को **अप**=दूर करो। **स्रिधम् अप**=दुःखों को दूर करो। **दुर्मतिम् अप**=दुर्बुद्धि को दूर करो। **नः अंहसः युयोतन**=हमारे पापों

को दूर करो।

भावार्थ–हम रोग, दुःख, दुर्बुद्धि तथा पापों से बचें।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

विश्ववेदसः

युयोता शरुमस्मदाँ आदित्यास उतामतिम्। ऋधग्द्वेषः कृणुत विश्ववेदसः॥ ११॥

हे **विश्ववेदसः**–सर्वज्ञ प्रभो! आप **अस्मत**–हमारे **शरुम्**=हिंस्र भाव को **अमतिम्**–निर्बुद्धि को **युयोत**=दूर करो **उत** तथा **द्वेषः**–द्वेष को **ऋधक् कृणुत**=अलग करो।

भावार्थ–वह सर्वज्ञ हमारे हिंसक भाव, निर्बुद्धि तथा द्वेषता को दूर करे।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

सुदानव

तत्सु नः शर्म यच्छतादित्या यन्मुमोचति। एनस्वन्तं चिदेनसः सुदानवः॥ १२॥

हे **आदित्याः**=विद्वानो! **सुदानवः**–दानवीरो! **यत**–जो **एनस्वन्तम् चित्**=पापी को **एनसः**–पाप से **मुमोचति**–छुड़ाता है, **तत्**=उस **शर्म**–सुख को **नः**=हमें **यच्छत**–दीजिए।

भावार्थ–हम पाप कर्म छोड़कर सुखी होवें।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

रिरिषीष्ट

यो नः कश्चिद्रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः। स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः॥ १३॥

(१) **यः कश्चित् मर्त्यः**=जो कोई मनुष्य **रक्षस्त्वेन**=अपनी राक्षसी प्रवृत्ति के कारण **नः**=हमें **रिरिक्षति**=(जिहिंसिषति) मारना चाहता है। **सः**–वह **जनः**=मनुष्य **स्वैः एवैः**=अपनी ही इन गतियों से **युः**=दुःख को प्राप्त होता हुआ **रिरिषीष्ट**–हिंसित हो जाये। (२) पापी का पापकर्म उसी को हानि करनेवाला हो। हम उन कर्मों से व्यर्थ में परेशान न हों।

भावार्थ–पापी का पापकर्म उसी के पतन का कारण बने। हम उसके दुष्कर्म का शिकार न हों। सामान्यतः समझदारी से चलते हुए हम इन राक्षसी भावों को सफल न होने दें।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'दुर्हणावान्-द्वयु' दुःशंस

समित्तमघमश्नवद्दुःशंसं मर्त्यं रिपुम्। यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः॥ १४॥

(१) **तम्**–उस **दुःशंसम्**=अशुभ का शंसन करनेवाले औरों के अशुभ को चाहनेवाले, **रिपुं मर्त्यम्**=औरों का विदारण करनेवाले मनुष्य को **इत्**–ही **अघम्**=वह पाप व कष्ट **सं अश्नवत्**=सम्यक् व्याप्त करे, **यः**=जो **अस्मत्रा**=हमारे विषय में **दुर्हणावान्**=बुरी तरह से हनन करनेवाला है और **द्वयुः उप**=(जायते) दो प्रकार का, अन्दर कुछ और बाहिर कुछ, अर्थात् छल–छिद्रवाला होता है। (२) वस्तुतः जो औरों का बुरा चाहता है, उसका स्वयं ही बुरा होता है। वस्तुतः न तो हमें 'दुर्हणावान्' बनना चाहिये और न ही 'द्वयु'।

भावार्थ–हम न तो औरों का हनन करनेवाले हों, ना ही छल-छिद्र से वर्तें। ये बातें हमारी अकीर्ति का कारण बनेंगी। उस अघ के शिकार हम ही होंगे।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ देवता—आदित्याः॥ छन्दः—पादनिचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

संसार में समझदार बनना

पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम्। उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः॥ १५॥

(१) हे **देवाः**-देववृत्ति के पुरुषो! आप **पाकत्रास्थन**=परिपक्व ज्ञानवाले होवो, परिपक्व बुद्धिवाले बनो। अपरिपक्व ज्ञानवाला मनुष्य सदा दुःखी होता है। (२) हे **वसवः**=अपने निवास को उत्तम बनानेवाले ज्ञानी पुरुषो! आप **हृत्सु**=अपने हृदयों में **द्वयुं च**=छल-छिद्रवाले पुरुष को व **अद्वयुं च**=निष्कपट **मर्त्यम्**=मनुष्य को **उप जानीथ**=जानते हो। यह ठीक है कि आप छली के छल की उद्घोषणा नहीं करते फिरते। परन्तु उसको ठीक रूप में जानकर उसके धोखे में नहीं आते।

भावार्थ—हम परिपक्व ज्ञानवाले बनें। छली के छल को अपने हृदय में जानते अवश्य हों। इस प्रकार धोखे से बचकर अपने निवास को उत्तम बनायें।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ देवता—आदित्याः॥ छन्दः—पादनिचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'पर्वत-जल व द्युलोक और पृथ्वीलोक' की अनुकूलता

आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे। द्यावाक्षामारे अस्मद्रपस्कृतम्॥ १६॥

(१) हम **पर्वतानाम्**=पर्वतों के **उत**=और **अपाम्**=जलों के **शर्म**=सुख को **आवृणीमहे**= सर्वथा वरते हैं। हमें पर्वतों व जलों से कल्याण ही कल्याण प्राप्त हो। (२) हे **द्यावाक्षामा**=द्युलोक व पृथ्वीलोक **अस्मद्**-हमारे से **रपः**=पाप को व दोष को **आरे कृतम्**=दूर करिये। सारा ब्रह्माण्ड हमारे साथ अनुकूलतावाला हो और हमारा जीवन बड़ा निर्दोष बने।

भावार्थ—पर्वत, जल, द्युलोक व पृथ्वीलोक सब हमारे साथ अनुकूलतावाले हों और परिणामतः हमारा जीवन निर्दोष बने।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ देवता—आदित्याः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

वसुओं का भद्र शर्म

ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः। अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन॥ १७॥

(१) हे **वसवः**=जीवन में निवास को उत्तम बनानेवाले वसुओ! **ते**=वे आप **नः**=हमें **युष्माकम्**=आपके **भद्रेण शर्मणा**=कल्याणकर रक्षण से **विश्वानि दुरिता**=सब दुरितों के **अति पिपर्तन**-पार ले जावो, **नावा**=जैसे नाव से नदी के पार ले जाते हैं। (२) वसुओं का 'भद्र शर्म'=कल्याणकर रक्षण हमारे लिये इस भव जलधि को तैरने के लिये नौका के समान हो जाये।

भावार्थ—हम जीवन को उत्तम बनानेवाले वसुओं के भद्रशर्म से इस भवजलधि को ऐसे तैर जायें, जैसे कि नाव से नदी को तैर जाते हैं।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ देवता—आदित्याः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'द्राघीय आयुः'

तुचे तनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे। आदित्यासः सुमहसः कृणोतन॥ १८॥

(१) हे **सुमहसः**=उत्तम तेजवाले **आदित्यासः**=आदित्य विद्वानो! आप अपने ज्ञानोपदेश से **तुचे**=हमारे पुत्रों के लिये **तनाय**=पौत्रों के लिये तथा **नः जीवसे**=हमारे उत्तम जीवन के लिये **तत्**=उस **द्राधीयः आयुः**=दीर्घजीवन को **सुकृणोतन**-सम्यक् करिये। (२) हम इन विद्वानों के

सम्पर्क में उस उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करें, जो हमारे लिये तथा हमारे पुत्र-पौत्रों के लिये दीर्घजीवन का कारण बने।

भावार्थ—हम तेजस्वी आदित्य विद्वानों से ज्ञान को प्राप्त करके दीर्घजीवनवाले बनें।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

यज्ञ हमें आदित्यों के कृपा पात्र बनायें

यज्ञो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मृळत। युष्मे इद्वो अपि ष्मसि सजात्ये॥ १९॥

(१) हे **आदित्याः**=सूर्यसम ज्ञानरश्मियों को फैलानेवाले विद्वानो! **वः**=आपका **अन्तरः**=अन्तिकतम, अत्यन्त प्रिय यह **यज्ञ**=यज्ञ **हीडः**=गन्तव्य व प्राप्तव्य **अस्ति**=हुआ है। अर्थात् आपके ज्ञानोपदेश से हमने यह यज्ञमार्ग अपनाया है। **मृडत**=आप हमारे जीवन को सुखी करिये। (२) हम **युष्मे इत्**=आप में ही निवासवाले हों। सदा आपके सम्पर्क में रहें। **वः सजात्ये**=आपके बन्धुत्व में **अपि स्मसि**=भी हो पायें। इस यज्ञमार्ग पर चलते हुए हम आपके बन जायें।

भावार्थ—हम आदित्य विद्वानों के सम्पर्क में आकर यज्ञमार्ग को स्वीकार करें। इस प्रकार इन आदित्यों की कृपा के पात्र हों, उन्हीं के वर्ग में सम्मिलित हो जायें।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्राणायाम तथा 'स्नेह व निर्द्वेषता' की साधना

बृहद्वरूथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना। मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये॥ २०॥

(१) **मरुताम्**=प्राणों का **वरूथम्**=दोष निवारक बल **बृहत्**=महान् है। हम उस **त्रातारं देवम्**=रक्षक देव प्रभु से **अश्विना**=इन प्राणापानों की ही **ईमहे**=याचना करते हैं। इन प्राणापान के द्वारा हमारा जीवन सबल व निर्दोष बनेगा। (२) हम **मित्रम्**=स्नेह की देवता व **वरुणम्**=निर्द्वेषता की देवता से **स्वस्तये**=कल्याण के लिये (ईमहे) याचना करते हैं। हमारे जीवन में प्राणसाधना के साथ स्नेह व निर्द्वेषता की साधना चले।

भावार्थ—प्राणसाधना से हमारी प्राणापान शक्ति प्रबल हो, इससे हमारे शरीर निर्दोष व सबल बनें। हम स्नेह व निर्द्वेषता को अपनाते हुए कल्याण के भागी हों।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

त्रिवरूथं छर्दिः

अनेहो मित्रार्यमन्नृवद्वरुण शंस्यम्। त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः॥ २१॥

(१) हे **मित्र**=स्नेह की देवते! **अर्यमन्**=शत्रु नियमन की देवते! (अरीन् यच्छति), **वरुण**=निर्द्वेषता की देवते! तथा **मरुतः**=प्राणो! आप सब **नः**=हमारे लिये **छर्दिः**=ऐसे गृह को दीजिये, जो **अनेहः**=पापशून्य हो, **नृवत्**=उन्नतिशील पुत्र-पौत्रोंवाला हो, **शंस्यम्**=प्रभु-शंसन में उत्तम हो और अतएव शंसनीय हो। (२) ऐसा गृह दीजिये जो **त्रिवरूथम्**=शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक तीनों दोषों का निवारण करनेवाला हो। हमारे घरों में सभी इन त्रिविध दोषों से रहित प्रशस्त जीवनवाले हों।

भावार्थ—हम 'स्नेह निर्द्वेषता' व 'काम आदि के नियमन' की साधना को करते हुए प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। इससे हमारे घर पापशून्य, उत्तम सङ्गतिवाले, प्रशस्त व 'शरीर, मन व बुद्धि' सम्बन्धी दोषों से रहित होंगे।

ऋषिः—इरिम्बिठिः काण्वः॥ देवता—आदित्याः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

मृत्युबन्धवः मनवः

ये चिद्धि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि। प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन॥ २२॥

(१) हे **आदित्याः**=सूर्य के समान ज्ञानरश्मियों को फैलानेवाले विद्वानो! **ये चित् हि**=जो निश्चय से हम **मनवः स्मसि**=विचारशील बनते हैं और **मृत्युबन्धवः**=मृत्यु के बन्धु होते हैं, अर्थात् मृत्यु को कभी भूलते नहीं हैं। तो आप **नः**=हमारे **जीवसे**=उत्तम जीवन के लिये **आयुः**= आयुष्य को **प्र सु तिरेतन**=खूब बढ़ाइये। (२) दीर्घजीवन का मार्ग यही है कि हम सदा सब कार्यों को विचारपूर्वक करें तथा मृत्यु को कभी भूलें नहीं। यह भी आवश्यक है कि मृत्यु की चिन्ता ही न करते रहें, मृत्यु को अपना बन्धु ही समझें।

भावार्थ—मृत्यु के अविस्मरण से सदा सुपथ पर चलते हुए, विचारशील बनकर हम दीर्घजीवी बनें।

यह मृत्यु को न भूलनेवाला व्यक्ति अपने में अच्छाइयों का भरण करता हुआ 'सोभरि' बनता है। यह मेधावी तो है ही 'काण्व'। यह 'अग्नि' नाम से प्रभु का स्तवन करता है—

१९. [एकोनविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

सन्ध्या व अग्निहोत्र

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे। देवत्रा हव्यमोहिरे॥ १॥

(१) **तम्**=उस **देवम्**=प्रकाशमय प्रभु की **गूर्धय**=स्तुत करो। जो प्रभु **स्वर्णरम्**=प्रकाशमय व सुखमय लोक की ओर हमें ले चलनेवाले हैं। **अरतिम्**=जो प्रभु (ऋ गतौ) सर्वत्र गतिवाले हैं अथवा (अ-रतिम्) कहीं भी आसक्त नहीं। (२) **देवासः**=देववृत्ति के लोग इस प्रभु का **दधन्विरे**=धारण करते हैं, प्रभु का ध्यान करते हैं। और **देवत्रा**=वायु आगे देवों में **हव्यम्**=हव्य पदार्थों को **ओहिरे**=प्राप्त कराते हैं। अग्निहोत्र में घृत व हव्य पदार्थों की आहुति देते हैं। अग्नि के द्वारा छोटे-छोटे कणों में विभक्त होकर ये पदार्थ सब वायु आदि देवों में पहुँचते हैं।

भावार्थ—देववृत्ति के व्यक्ति उस प्रकाशमय प्रभु की उपासना करते हैं और अग्निहोत्र को नियम से करते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराट् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

विभूतराति-चित्तशोचिष्-पूर्व्य

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीळिष्व यन्तुरम्।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम्॥ २॥

(१) हे **विप्र**=मेधाविन् स्तोतः! तू **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु की **ईडिष्व**=स्तुत कर। जो प्रभु **विभूतरातिम्**=व्यापक प्रभूत दानवाले हैं और **चित्रशोचिषम्**=अद्भुत ज्ञान दीप्तिवाले हैं। प्रभु तुझे धन भी प्राप्त करायेंगे और ज्ञान भी देंगे। (२) हे **सोभरे**=अपना उत्तमता से भरण करनेवाले मेधाविन्! तू उस प्रभु का स्तवन कर, जो **अस्य**=इस **सोम्यस्य**=सोम के द्वारा **साध्म**=सोमरक्षण से चलनेवाले **मेधस्य**=जीवनयज्ञ के **यन्तुरम्**=नियामक हैं। **अध्वराय**=इस जीवनयज्ञ को सुन्दरता से पूर्ण करने के लिये **ईम्**=निश्चय से **पूर्व्यम्**=उस पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम प्रभु को

प्र (ईडिष्व)=प्रकर्षेण स्तुत कर।

भावार्थ–प्रभु का स्तवन करो। प्रभु ही जीवन यज्ञ की पूर्ति के लिये सब दानों को देते हैं, ज्ञान को प्राप्त कराते हैं, हमारी कमियों को दूर करते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'यजिष्ठ-देव-अमर्त्य' प्रभु

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **यजिष्ठम्**–अतिशयेन पूज्य **त्वा**=आपका **ववृमहे**=हम वरण करते हैं। जो आप **देवम्**=प्रकाशमय हैं, **देवत्रा होतारम्**=देवों में इस प्रकाश को देनेवाले हैं (हु दाने)। सूर्य आदि देव आपकी दीप्ति से ही तो दीप्त होते हैं। **अमर्त्यम्**=अविनाशी हैं। (२) हम उस प्रभु का वरण करते हैं जो **अस्य यज्ञस्य**=इस हमारे जीवनयज्ञ के **सुक्रतुम्**=(सुष्ठु कर्तारम्) उत्तमता से सम्पादित करनेवाले हैं, जीवन यज्ञ का संचालन प्रभु के द्वारा ही तो होता है।

भावार्थ–हम प्रभु का ही वरण करें। यही प्रकाश प्राप्ति व अविनाश का मार्ग है। प्रभु ही जीवनयज्ञ को पूर्ण करते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'मित्र वरुण व आपः' का सुख

ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषम्।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि॥ ४॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार हम उस प्रभु का (ववृमहे) वरण करते हैं, जो **ऊर्जः नपातं**=शक्ति को न गिरने देनेवाले हैं। **सुभगम्**=शोभन धनवाले हैं। **सुदीदितिम्**=उत्तम दीप्ति से युक्त हैं तथा **श्रेष्ठशोचिषम्** अति प्रशस्त तेजवाले हैं। (२) **सः**=वे प्रभु **नः**=हमें **मित्रस्य**=स्नेह की देवता के तथा **वरुणस्य**=निर्द्वेषता की देवता के **सुम्नम्**=सुख को **यक्षते**=देते हैं (खज् दाने)। हमें स्नेह व निर्द्वेषतावाला बनाकर प्रीतियुक्त करते हैं। **सः**=वे प्रभु ही **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक के निमित्त **अपां सुम्नम्**=(आपः रेतो भूत्वा०) रेतःकणों के सुख को प्राप्त कराते हैं। सुरक्षित रेतःकण ही हमारी ज्ञानाग्नि का ईंधन बनते हैं और ज्ञानाग्नि को दीप्त करते हैं। दीप्त ज्ञानाग्नि ही जीवन के सब वास्तविक सुखों के मूल में है।

भावार्थ–प्रभु हमारी शक्ति को नष्ट नहीं होने देते। शोभन धन व दीप्तिवाले वे प्रभु हमें तेजस्वी बनाते हैं। प्रभु का उपासक सब के प्रति स्नेहवाला व निर्द्वेष होता है। यह शक्तिकणों का रक्षण करके दीप्त ज्ञानाग्निवाला बनता है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—ककुबुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्रभु के प्रति अर्पण

यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये। यो नमसा स्वध्वरः॥ ५॥

(१) **यः मर्तः**=जो मनुष्य **समिधा**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा, **यः**=जो **आहुती**=आहुति के द्वारा दानपूर्वक अदन के द्वारा तथा **यः**=जो **वेदेन**=वेदाध्ययन के द्वारा **अग्नये ददाश**=उस अग्रेणी प्रभु के लिये अपने को दे डालता है। **यः**=जो **नमसा**=नमन के द्वारा उस प्रभु के प्रति अपने को देता है। वह **स्वध्वरः**=उत्तम जीवनयज्ञवाला होता है। (२) प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाला व्यक्ति

जीवन के अन्दर ज्ञानदीप्ति को, त्यागपूर्वक अदन की वृत्ति को, वेदाध्ययन को तथा नमन को लाने के लिये यत्नशील होता है। प्रभु इसके जीवनयज्ञ को बड़ा सुन्दर बना देते हैं।

भावार्थ—हम ज्ञान, त्याग, वेदाध्ययन व नमन को अपनाकर प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें, प्रभु के अनुग्रह से सुन्दर जीवनयज्ञवाले हों।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृत् पंक्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

आधिदैविक व आधिभौतिक कष्टों से दूर

तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः।
न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत्॥ ६॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार जो प्रभु के प्रति अपना अर्पण करता है, **तस्य इत्**=उसके ही **आशवः**=शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाले **अर्वन्तः**=इन्द्रियाश्व **रंहयन्ते**=कर्त्तव्य कर्मों में तीव्र गतिवाले होते हैं। **तस्य**=उसी का **यशः**=यश **द्युम्नितमम्**=अधिक से अधिक दीप्तिवाला होता है। इसका जीवन यशस्वी व ज्ञान की दीप्तिवाला होता है। (२) **तम्**=इस प्रभु के उपासक को **कुतश्चन**=कहीं से भी **देवकृतम्**=सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, विद्युत् आदि देवों से उत्पन्न हुआ-हुआ **अंहः**=कष्ट **नशत्**=नहीं प्राप्त होता और **न**=न ही **मर्त्यकृतम्**=मनुष्यों से उत्पन्न हुआ-हुआ कष्ट प्राप्त होता है। अर्थात् यह उपासक प्राकृतिक जगत् व जैविक जगत् की अनुकूलता को प्राप्त करता है और शान्त सुखी जीवनवाला होता है। ऐसी स्थिति में सब इन्द्रियाँ व बुद्धि अपना-अपना कार्य ठीक से करती हैं। सो इस उपासक को अध्यात्म कष्टों से भी पीड़ा नहीं प्राप्त होती। त्रिविध कष्टों से ऊपर उठकर यह प्रभु के अधिकाधिक समीप होता जाता है।

भावार्थ—प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाले को न आधिदैविक कष्ट प्राप्त होते हैं, न आधिभौतिक। यह उत्तम इन्द्रियों व बुद्धिवाला बनकर अध्यात्म कष्टों से भी ऊपर उठ जाता है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

स्वग्नयः

स्वग्नयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जां पते। सुवीरस्त्वमस्मयुः॥ ७॥

(१) हे **सहसः सूनो**=बल के पुत्र, बल के पुञ्ज **ऊर्जाम्पते**=बलों व प्राणशक्तियों के स्वामिन् प्रभो! हम **वः**=आपके **अग्निभिः**=उत्तम मातारूप दक्षिणाग्नि, उत्तम पिता रूप गार्हपत्य अग्नि तथा उत्तम आचार्यरूप आहवनीयाग्नि से **स्वग्नयः स्याम**=उत्तम यज्ञाग्नियोंवाले बनें। इन माता, पिता व आचार्य से पालित-पोषित व शिक्षित होकर हम सदा यज्ञ आदि उत्तम कार्यों को करनेवाले बनें। (२) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **सुवीरः**=उत्तम वीर सन्तानों को प्राप्त करानेवाले हैं (शोभना वीराः यस्मात्)। **अस्मयुः**=सदा हमें चाहनेवाले होइये, अर्थात् हम आपके प्रिय बन सकें।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से उत्तम माता, पिता, आचार्यरूप अग्नियों को प्राप्त करके हम उत्तम यज्ञादि कर्मों की ओर झुकाववाले बनें। हम उत्तम सन्तानोंवाले हों और प्रभु के प्रिय हों।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—आर्चीभुरिक्पंक्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

अतिथिर्न, रथो न

प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियोऽग्नी रथो न वेद्यः।
त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस्त्वं राजा रयीणाम्॥ ८॥

(१) **प्रशंसमानः**-प्रकर्षेण शंसन, ज्ञानोपदेश करते हुए **अतिथिः न**=अतिथि की तरह आप **मित्रियः**=इन स्नेही स्तोताओं के हित करनेवाले हैं। **अग्निः**=अग्रेणी होते हुए आप **रथः न**=रथ के समान **वेद्यः**=जानने योग्य हैं। रथ जैसे लक्ष्य-स्थान पर ले जाता है, इसी प्रकार आप हमें लक्ष्य-स्थान पर ले जानेवाले हैं। (२) **त्वे**-आप में **क्षेमासः**-(क्षि निवासगत्योः) निवास व गति करनेवाले **अपि**-भी **साधवः सन्ति**=कार्यों को सिद्ध करनेवाले होते हैं, प्रभु स्मरणपूर्वक गति करनेवाले व्यक्ति साधुत्व को प्राप्त करते हैं। **त्वम्**=आप **रयीणां राजा**=सब धनों व ऐश्वर्यों को स्वामी हैं।

भावार्थ-प्रभु अतिथि के समान ज्ञानोपदेश करते हुए हमारा हित करते हैं। रथ के समान हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचानेवाले हैं। प्रभु में निवास करनेवाला साधुत्व को प्राप्त करता है। प्रभु ही सब धनों के स्वामी हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

दाश्वध्वर-प्रशंस्य

सो अद्धा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः। स धीभिरस्तु सनिता॥ ९॥

(१) हे **अग्ने**-परमात्मन्! **सः मर्तः**=वह मनुष्य जो गत मन्त्र के अनुसार आप में निवास करता हुआ गतिवाला होता है वह **अद्धा**-सचमुच निःसन्देह **दाश्वध्वरः**=यज्ञों में दानशील होता है। हे **सुभग**-उत्तम ऐश्वर्यवाले प्रभो! **सः**=यह आप में निवास करनेवाला व्यक्ति ही **प्रशंस्यः**=प्रशस्त जीवनवाला होता है। (२) **सः**=वह मनुष्य ही **धीभिः**=उत्तम प्रज्ञानों व कर्मों से **सनिता**=सम्भजनशील होता है, अर्थात् उत्तम कर्मों व प्रज्ञानोंवाला बनता है।

भावार्थ-हम प्रभु में निवास करते हुए सदा यज्ञों में दानशील हों, प्रशस्त जीवनवाले बनें और उत्तम कर्मों व प्रज्ञानोंवाले हों।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—सतः पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

क्षयद्वीरः

यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते।
सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम्॥ १०॥

(१) हे प्रभो! **यस्य अध्वराय**=जिसके जीवनयज्ञ के रक्षण के लिये **त्वम्**=आप **ऊर्ध्वः तिष्ठसि**=ऊपर स्थित होते हैं, सदा उद्यत होते हैं, **सः**=वह **क्षयद्वीरः**-निवास करते हैं वीर जिसके यहाँ, अर्थात् वीर सन्तानोंवाला बनता है। **साधते**=यह सब कार्यों को सिद्ध करनेवाला होता है। (२) **सः**=वह **अर्वद्भिः**-प्रशस्त इन्द्रियाश्वों से **सनिता**=सम्भजनशील होता है। **सः**=वह **विपन्युभिः**=(नि० ३।१५ विपन्यु=मेधावी) मेधावी पुरुषों से **कृतम्**=किये हुए कर्मों को **सनिता**=सम्भजनशील होता है। अर्थात् मेधावी पुरुषों की तरह कर्मों को करता है। **सः**-वह **शूरैः**-शूरवीरों से **कृतम्**-किये हुए कर्मों को **सनिता**=सम्भजनशील होता है। अर्थात् शूरों की तरह कार्यों को करता है। इसके व्यवहार में कायरता नहीं होती।

भावार्थ-प्रभु जब हमारे जीवनयज्ञ के रक्षक होते हैं तो हम (क) वीर सन्तानोंवाले होते हैं, (ख) कार्यों को सिद्ध करते हैं, (ग) प्रशस्त इन्द्रियोंवाले बनते हैं, (घ) तथा मेधावी व शूर पुरुषों के कार्यों को करते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

उपासना व अग्निहोत्र (स्तोमं चनः)

यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः। हव्या वा वेविषद्विषः॥ ११॥

(१) **यस्य गृहे**=जिसके घर में **अग्निः**=वह अग्रेणी प्रभु **स्तोमम्**=स्तुति समूह को धारण करता है और जिसके घर में **विश्ववार्यः**=सब से वरने के योग्य यह अग्निः=यज्ञकुण्ड में स्थापित आहवनीय **स्तोमं चनः**=अन्न को **दधीत**=धारण करती है। अर्थात् जिसके घर में प्रभु की उपासना व अग्निहोत्र नियम से होता है, वह **वपुः**=सब बुराइयों का वपन (छेदन) करनेवाला होता है। प्रभु की उपासना उसके मानस मलों का अपहरण करती है, तो अग्निहोत्र उसके शारीरिक दोषों को दूर करता है। (२) यह पुरुष **विषः**=वायु आदि व्याप्त देवों को **वा**=निश्चय से **हव्या**=सब हव्य पदार्थों को **वेविषद्**=प्राप्त कराता है। इस प्रकार यह सब देवों की पवित्रता व ऋतुओं की अनुकूलता का साधक होता हुआ, लोक-कल्याण में प्रवृत्त होता है।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना करें तथा अग्निहोत्री बनें। इस प्रकार हम सब बुराइयों का छेदन कर पायेंगे।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृत्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

स्तोता-यष्टा-तत्त्ववेत्ता

विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु।
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः॥ १२॥

(१) हे **सहसो यहो**=बल के पुत्र, बल के पुञ्ज (सर्वशक्तिमन्) **वसो**=सब को निवास देनेवाले प्रभो! इस **स्तुवतः**=स्तुति करते हुए **विप्रस्य**=ज्ञानी पुरुष के **वा**=तथा **रातिषु**=दान के कार्यों में **मक्षूतमस्य**=शीघ्रतम पुरुष के **विविदुषः**=इस तत्त्वज्ञानी के **वचः**=वचनों को **अवः देवम्**=द्युलोक नीचे तथा **उपरिमर्त्यम्**=मर्त्यलोक के ऊपर, अर्थात् सर्वत्र व्याप्त **कृधि**=करिये। (२) इस तत्त्वज्ञानी के वचनों को सब कोई सुने। और उसकी तरह ही प्रभु-स्तवन को करनेवाला, यज्ञशील व ज्ञानी बनने का प्रयत्न करे।

भावार्थ—स्तोता-यज्ञशील ज्ञानियों के ज्ञानोपदेश सर्वत्र पहुँचें। उनसे प्रेरणा को प्राप्त करके लोग भी वैसा बनने के लिये यत्नशील हों।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—पुरउष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

हव्यदातिभिः-नमोभिः-गिरा

यो अग्निं हव्यदातिभिर्नमोभिर्वा सुदक्षमाविवासति। गिरा वाजिरशोचिषम्॥ १३॥

(१) **यः**=जो **सुदक्षम्**=शोभन बलवाले व उन्नति के कारणभूत **अग्निम्**=अग्नि को, अग्रेणी प्रभु को **हव्यदातिभिः**=हव्यों के देने के द्वारा, अर्थात् यज्ञों के द्वारा **वा**=तथा **नमोभिः**=नमस्कारों के द्वारा **आविवासति**=पूजित करता है, वह भी अग्नि बनता है, आगे बढ़नेवाला होता है तथा **सुदक्ष**=शोभन बलवाला बनता है। (२) **वा**=या जो **गिरा**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुति वाणियों के द्वारा **अजिर शोचिषम्**=गति द्वारा सब बुराइयों को परे फेंकनेवाले तेज से युक्त प्रभु का उपासन करता है (अज गतिक्षेपणयोः) यह उपासक इस उपासना से तेजस्वी बनकर सब बुराइयों को परे फेंकनेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु का उपासन 'यज्ञों नमस्कारों व ज्ञान वाणियों' द्वारा होता है। उपासक 'आगे बढ़नेवाला, उत्तम बलवाला व गति के द्वारा बुराइयों को परे फेंकनेवाले तेजवाला' होता है।

ऋषिः — सोभरिः काण्वः ॥ देवता — अग्निः ॥ छन्दः — पं- ॥ स्वरः — पञ्चमः ॥

धीभिः-द्युम्नैः (बुद्धि-विद्या)

स॒मिधा॒ यो निशि॑ती॒ दाश॒ददि॑तिं॒ धाम॑भिरस्य॒ मर्त्यः॑।

विश्वेत्स धी॒भिः सु॒भगो॒ जनाँ॒ अति॑ द्यु॒म्नैरु॒द्नइ॑व तारिषत्॥ १४॥

(१) **यः मर्त्यः**=जो मनुष्य **अस्य**=इस अग्रेणी प्रभु के **धामभिः**=तेजों की प्राप्ति के हेतु से **निशिती**=प्रज्वलन हेतुभूत **समिधा**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा **अदितिं दाशत्**=अदीना देवमाता के प्रति अपना अर्पण करता है। अर्थात् जब मनुष्य अपने अन्दर उस ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करता है जो वासनाओं को दग्ध करती है और प्रभु के तेजों को प्राप्त कराती है, तो वह अपने जीवन को दिव्यगुणों के उत्पादन के योग्य बना पाता है। (२) **सः**=वह पुरुष **धीभिः**=उत्तम कर्मों के द्वारा व बुद्धियों के द्वारा **सुभगः**=उत्तम ऐश्वर्यवाला होता हुआ **द्युम्नैः**=ज्ञान ज्योतियों से **विश्वा इत्**=सब ही **जनान्**=लोगों को **अतितारिषत्**=अतिक्रमण कर जाता है, **इव**=जैसे कोई व्यक्ति **उद्नः**=जल से पार हो जाता है।

भावार्थ—हम अपने अन्दर ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करें। यही हमें प्रभु के तेजों को प्राप्त करायेगी, दिव्यगुणों का हमारे अन्दर वर्धन करेगी। बुद्धि व विद्या का सम्पादन करते हुए सब से आगे बढ़ जायेंगे (अति समं क्राम)।

ऋषिः — सोभरिः काण्वः ॥ देवता — अग्निः ॥ छन्दः — निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः — ऋषभः ॥

शत्रु-पराभावक 'द्युम्न'

तद॑ग्ने द्यु॒म्नमा भ॑र॒ यत्सा॒सह॒त्सद॑ने॒ कं चि॑द॒त्रिण॑म्। म॒न्युं जन॑स्य दू॒ढ्यः॑॥ १५॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **तद्**=उस **द्युम्नम्**=ज्ञानज्योति को **आभर**=हमारे में भरिये **यत्**=जो **सदने**=इस शरीर गृह में आ जानेवाले **कञ्चिद्**=किसी भी **अत्रिणम्**=हमें खा जानेवाले राक्षसी भाव को **सासहत्**=पराभूत कर दे, कुचल दे। (२) और उस ज्ञान-ज्योति को दीजिये जो **दूढ्यः**=दुर्बुद्धि **जनस्य**=मनुष्य के **मन्युम्**=क्रोध को परभूत कर दे, अर्थात् दुर्बुद्धि मनुष्य की इस ज्ञानी के ज्ञान से प्रभावित होकर क्रोध को न करनेवाला हो जाये।

भावार्थ—हम ज्ञान ज्योति के द्वारा वासनाओं को पराभूत करनेवाले बनें। दुर्बुद्धि जनों के क्रोध का भी विलापन करनेवाले हों।

ऋषिः — सोभरिः काण्वः ॥ देवता — अग्निः ॥ छन्दः — निचृत् पं- ॥ स्वरः — पञ्चमः ॥

वह 'बल'

येन॒ चष्टे॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा येन॒ नास॑त्या॒ भगः॑।

व॒यं तत्ते॒ शव॑सा गातु॒वित्त॑मा॒ इन्द्र॑त्वोता विधेमहि॥ १६॥

(१) **येन शवसा**=जिस बल के द्वारा **वरुणः**=निर्द्वेषता की देवता **चष्टे**=हमारे जीवन को प्रकाशित करती है, **मित्रः**=स्नेह की देवता तथा **अर्यमा**=(अरीन् यच्छति) शत्रु नियमन की देवता हमारे जीवन को प्रकाशमय करती है। **येन**=जिस बल के द्वारा **नासत्या**=अश्विनी देव, अर्थात् प्राणापान तथा **भगः**=ऐश्वर्य की देवता हमारे जीवन को प्रकाशमय बनाती है। **वयम्**=हम

ते=आपके **तत्**=उस बल को **विधेमहि**=परिचरित करते हैं, पूजते हैं। हम इस बल का पूजन करते हैं, यह बल ही हमारे जीवन में 'वरुण' आदि देवों के निवास का कारण बनता है। (२) इसी बल से हम, हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **त्वोताः**=आप के द्वारा रक्षित होते हैं और **गातुवित्तमाः**=अधिक से अधिक मार्ग को प्राप्त करनेवाले होते हैं। यह बल ही हमें मार्गभ्रष्ट नहीं होने देता।

भावार्थ–हम बल का सम्पादन करते हुए 'निर्द्वेष, स्नेहवाले, शत्रु-नियन्ता, प्राणापान की शक्ति से सम्पन्न, ऐश्वर्यशाली व मार्ग पर चलनेवाले' बनें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

नृचक्षा-सुक्रतु

ते घेदग्ने स्वाध्योऽ३ ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसम्। विप्रासो देव सुक्रतुम्॥ १७॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **ते**=वे **घा इत्**=ही निश्चय से **स्वाध्यः**=उत्तम ध्यानवाले होते हैं, **ये**=जो हे **विप्र**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाले प्रभो! **त्वा**=आपको **निदधिरे**=अपने हृदयों में धारण करते हैं। (२) हे **देव**–प्रकाशमय प्रभो! उत्तम ध्याता वे ही हैं जो **विप्रासः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले, अपनी न्यूनताओं को दूर करनेवाले होते हुए, **नृचक्षसम्**=सब मनुष्यों का ध्यान करनेवाले **सुक्रतुम्**=उत्तम कर्मों व प्रज्ञानोंवाले आपको अपने हृदयों में धारण करते हैं। आपका ध्यान करते हुए ये स्वयं भी 'नृचक्षा व सुक्रतु' बनने का ध्यान करते हैं।

भावार्थ–प्रभु का हृदय में धारण करनेवाला ही उत्तम ध्याता है। यह 'नृचक्षा व सुक्रतु' बनता है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पादनिचृत् पंक्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

यज्ञ-सोम सम्पादन=ऐश्वर्य का विजय

त इद्वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि।
त इद्वाजेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे॥ १८॥

(१) हे **सुभग**=उत्तम ऐश्वर्योंवाले प्रभो! **ये**=जो लोग **त्वे**=आपके विषय में **कामम्**=इच्छा को **न्येरिरे**-प्रेरित करते हैं, अर्थात् आपको प्राप्त करने की कामनावाले होते हैं, **ते इत्**=वे ही **वेदिम्**=वेदि को, यज्ञभूमि को **चक्रिरे**=बनाते हैं। **ते**=वे ही **आहुतिम्**=(चक्रिरे) वहाँ यज्ञाग्नि में आहुतियों को करते हैं। **ते**=वे **दिवि**=ज्ञान के प्रकाश के निमित्त **सोतुम्**=सोम के सम्पादन के लिये प्रवृत्त होते हैं। सोमरक्षण के द्वारा ही तो वे अपनी ज्ञानाग्नि को दीप्त कर पायेंगे। इस प्रकार प्रभु प्राप्ति की कामनावाले पुरुष यज्ञशील होते हैं और सोम का सम्पादन करते हैं। (२) **ते**=वे यज्ञशील व सोम का सम्पादन करनेवाले व्यक्ति **इत्**=ही **वाजेभिः**=शक्तियों के द्वारा व त्यागों के द्वारा (वाज=sacrifice) **महद्**=महान् **धनम्**=धन का **जिग्युः**=विजय करते हैं।

भावार्थ–प्रभु प्राप्ति की कामनावाले लोग यज्ञशील व सोम का सम्पादन करते हैं। ये ही त्याग व शक्ति के द्वारा महान् धन का विजय करते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—ककुबुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

चार बातें

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः॥ १९॥

(१) **नः**-हमारे लिये **आहुतः**-जिसके प्रति अपना अर्पण किया गया है वह **अग्निः**-माता, पिता, आचार्यरूप अग्नि **भद्रः**-कल्याणकर हो। हम माता, पिता, आचार्य के प्रति पूर्णरूप से अपना अर्पण करनेवाले हों और ये हमारा कल्याण करनेवाले हों। **रातिः**=दान की प्रक्रिया **भद्रा**=हमारे लिये कल्याणकर हो, इस दान से हमारी बुराइयों का छेदन होकर हमारा जीवन शुद्ध बने। (२) हे **सुभग**-उत्तम ऐश्वर्यवाले प्रभो! **अध्वरः**=हिंसारहित यज्ञरूप कर्म **भद्रः**-हमारा कल्याण करें। **उत**-और **प्रशस्तयः**=प्रभु के प्रशंसन, स्तवन **भद्राः**-हमारे लिये कल्याणकर हों।

भावार्थ-हम माता, पिता, आचार्य के प्रति अपने अर्पण से जीवन को प्रारम्भ करें। गृहस्थ में दान देनेवाले बनें। वानप्रस्थ की साधना में यज्ञात्मक कर्म करते हुए संन्यस्त होकर सतत प्रभु-शंसन में प्रवृत्त रहें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

संग्राम में उत्तम मन के द्वारा विजय

भ॒द्रं मनः॑ कृणुष्व वृत्र॒तूर्ये॒ येना॑ स॒मत्सु॑ सा॒सहः॑।
अव॑ स्थि॒रा त॑नुहि॒ भूरि॒ शर्ध॑तां व॒नेमा॑ ते अ॒भिष्टि॑भिः ॥ २० ॥

(१) हे प्रभो! आप **वृत्रतूर्ये**-संग्राम में, काम, क्रोध, लोभ आदि के साथ चलनेवाले अध्यात्म-संग्राम में हमारे **मनः**-मन को **भद्रं कृणुष्व**=कल्याणयुक्त करिये। हमारा मन ऐसा बने **येन**-जिससे **समत्सु**=संग्रामों में **सासहः**-हम इन शत्रुओं का पराभव कर पायें। (२) **शर्धताम्**=हमारा प्रसहन (पराभव) करते हुए इन काम-क्रोध आदि के **भूरि**=खूब ही **स्थिरा**-दृढ़ भी धनुषों को **अवतनुहि**=अवनत करिये, ज्यारहित करिये, आक्रमण के अयोग्य कर दीजिये। **ते**=आपके **अभिष्टिभिः**=अभ्येषण (प्राप्ति) साधन स्तोत्रों से हम **वनेम**-उत्कृष्ट धनों का सम्भजन करें।

भावार्थ-प्रभु अध्यात्म-संग्रामों में हमारे मनों को इस प्रकार भद्र बनायें, कि हम इन संग्रामों में शत्रुओं को जीत ही पायें। शत्रुओं के धनुषों को आप ढीला करिये। हम प्रभु प्राप्ति के साधनभूत स्तोत्रों से उत्तम धनों का सम्भजन करें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'दूत, अरति, यजिष्ठ, हव्यवाहन' प्रभु

ईळे॑ गि॒रा मनु॑र्हितं॒ यं दे॒वा दू॒तम॑र॒तिं न्ये॑रि॒रे। यजि॑ष्ठं हव्य॒वाह॑नम्॥ २१ ॥

(१) मैं **गिरा**=स्तुति वाणियों के द्वारा **मनुर्हितम्**=विचारशील पुरुष के द्वारा हृदय में स्थापित किये गये प्रभु को **ईडे**-उपासित करता हूँ। **यम्**-जिस को **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **न्येरिदे**=प्राप्त होते हैं। (२) उस प्रभु की उपासना करता हूँ जो **दूतम्**=ज्ञान का सन्देश देनेवाले हैं, **अरतिम्**=स्वामी (अर्य) हैं अथवा (अ रतिम्) अनासक्त हैं। **यजिष्ठम्**=अधिक से अधिक पूज्य हैं और **हव्यवाहनम्**=हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ-हम प्रभु का उपासन करें। विचारशील देववृत्ति के पुरुष प्रभु को प्राप्त किया करते हैं। प्रभु ज्ञान का सन्देश देनेवाले अनासक्त सर्वाधिक पूज्य व सब हव्य पदार्थों के प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराट् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

यज्ञों से सुवीर्य-प्राप्ति

तिग्मजम्भाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्नये।
यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यमग्निर्घृतेभिराहुतः॥ २२॥

(१) **तिग्मजम्भाय**=तीक्ष्ण दंष्ट्राओंवाले, **तरुणाय**=सब रोगों से तरानेवाले, **राजते**=चमकते हुए **अग्नये**=अग्नि के लिये **प्रयः**=हविर्लक्षण अन्न को **गायसि**=तू प्राप्त कराता है। प्रभु जीव को अग्निहोत्र की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि यह अग्नि रोगकृमियों के लिये बड़ा तीक्ष्ण दंष्ट्र है, तुम्हें रोगों से तरानेवाला है। इसके लिये हविर्द्रव्यों को प्राप्त करा के तुम स्वस्थ व राजमान (चमकते हुए) बनोगे। (२) **यः अग्निः**=जो अग्नि है, वह **सूनृताभिः**=प्रिय सत्य मन्त्रात्मक वाणियों से तथा **घृतेभिः**=घृतों से **आहुतः**=आहुत हुआ-हुआ **सुवीर्यं पिंशते**=स्तोता के साथ उत्तम शक्ति को आभूषित करता है। इन यज्ञों में प्रवृत्त होने से मन्त्रात्मक वाणियों का उच्चारण व त्याग की वृत्ति का उदय होता रहता है। परिणामतः वासनामय जीवन नहीं बनता। सोमरक्षण होकर जीवन सुन्दरतम बनता है।

भावार्थ—हम अग्निहोत्र आदि यज्ञों में प्रवृत्त हों। ये यज्ञ जहाँ हमें नीरोग बनायेंगे, वहाँ हमारे साथ उत्तम शक्ति का सम्पर्क करेंगे।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

असुर इव निर्णिजम् (प्रभु की तरह)

यदी घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च। असुरइव निर्णिजम्॥ २३॥

(१) **यदि**=यदि **अग्निः**=प्रगतिशील जीव **घृतेभिः**=ज्ञानदीप्तियों से **आहुतः**=समन्तात् हुत होता है, और **वाशीम्**=अपनी प्रभु गुणगान की ध्वनि का **उत् च अव च**=आरोह व अवरोह पूर्वक **भरते**=भरण करता है, तो यह अग्नि **असुरः इव**=उस प्राणशक्ति का संचार करनेवाले ब्रह्म की तरह **निर्णिजम्**=रूप को धारण करता है। (२) हम अपने अन्दर ज्ञान की निरन्तर आहुतियाँ दें तथा प्रभु के गुणों का गायन करें तभी हम प्रभु को प्राप्त करेंगे। प्रभु की तरह ही चमक उठेंगे।

भावार्थ—ज्ञान व स्तवन हमें प्रभु धारण के योग्य बनाते हैं। उस समय हम भी उस ब्रह्म की तरह दीप्त रूपवाले हो उठते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—आर्चीस्वराड् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

देव

यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगन्धिना।
विवासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः॥ २४॥

(१) **योः**=जो **हव्यानि**=हव्य पदार्थों को **ऐरयत**=अग्नि द्वारा वायु आदि देवों में प्रेरित करता है, अर्थात् सदा यज्ञशील होता है। **मनुः**=विचारशील बनता है व **हितः**=सबका हित करनेवाला होता है। सदा **सुगन्धिना आसा**=उत्तम सुगन्धित शब्दों से युक्त मुखवाला होता है, यही पुरुष **देवः**=देव है। (२) यह **वार्याणि**=सदा वरणीय वस्तुओं व धनों को **विवासते**=विशेषरूप से धारण करता है। **स्वध्वरः**=उन वार्य वस्तुओं के द्वारा उत्तम हिंसारहित यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त होता है। **होता**=सदा दानपूर्वक अदन करनेवाला बनता है। **देवः**=प्रकाशमय जीवनवाला व

अमर्त्यः=नीरोग होता है।

भावार्थ—देव वह होता है जो यज्ञशील, विचारक, हितकर, मधुरभाषी है। यह वरणीय धनों को प्राप्त करके यज्ञशील, दाता, प्रकाशमय जीवनवाला व नीरोग बनता है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

अमर्त्य

यद॑ग्ने मर्त्य॒स्त्वं स्याम॒हं मि॑त्रमहो॒ अम॑र्त्यः। सह॑सः सूनवाहुत॥ २५॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी, **मित्रमहः**=मृत्यु से बचाने वाले तेज से युक्त, **सहसः सूनो**=शक्ति के पुञ्ज, **आहुत**=समनगत् दानोंवाले प्रभो! **यत्**=यदि **अहम्**=मैं **मर्त्यः**=मरणधर्मा पुरुष **त्वं स्याम्**=तू हो जाऊँ तो फिर **अमर्त्यः**=तेरे समान ही अमर्त्य बन जाऊँ। (२) अमर्त्य बनने का भाव यह है कि इस जीवन में नीरोग होना और फिर जन्म-मरण के चक्र से ऊपर उठ जाना। यह सब होगा तभी जब हम अग्रगतिवाले बनें, तेजस्वी हों, बल का सम्पादन करें व त्यागशील बनें।

भावार्थ—हम 'अग्ने, मित्रमहः, सहसः सूनो, आहुत' शब्दों से प्रभु का स्मरण करते हुए प्रभु जैसे बनें। इस प्रकार हम मर्त्यता से अमर्त्यता में प्रवेश कर जायेंगे।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराड्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'अभिशस्ति व पाप' के लिये प्रार्थना नहीं

न त्वा॑ रासीया॒भिश॑स्तये वसो॒ न पा॑प॒त्वाय॑ सन्त्य।
न मे॑ स्तो॒ताम॑ती॒वा न दुर्हि॑तः॒ स्याद॑ग्ने॒ न पा॒पया॑॥ २६॥

(१) हे **वसो**=वसानेवाले प्रभो! **त्वा**=आपको **अभिशस्तये**=किसी के भी हिंसन के लिये **न रासीय**=व्यर्थ की प्रार्थना न करता रहूँ। हे **सन्त्य**=सम्भजनीय प्रभो! **पापत्वाय**=किसी पाप कर्म के लिये भी **न रासीय**=न प्रार्थना करूँ। (२) हे **मे अग्ने**=मेरे अग्रेणी प्रभो! यह आपका **स्तोता**=उपासक **न अमतीवा**=न दुर्बुद्धि हो **न दुर्हितः**=न बुरे कर्मों में स्थापित हो, **न पापया स्यात्**=न पाप बुद्धि से बाधित हो। आपका स्तवन करता हुआ मैं सुबुद्धि बनूँ, सदा सत्कार्यों में प्रवृत्त रहूँ, कभी भी पाप बुद्धि से बाधित न होऊँ।

भावार्थ—हम कभी भी किसी की हिंसा के लिये व पाप के लिये प्रार्थना न करें। प्रभु के उपासक बनते हुए सुबुद्धि व सत्कार्य प्रवृत्त हों और पाप से दूर रहें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—भुरिगार्चीविराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

यज्ञाग्नि का सुभरण

पि॒तुर्न पु॒त्रः सुभृ॑तो दुरो॒ण आ दे॒वाँ ए॑तु॒ प्र णो॑ ह॒विः॥ २७॥

(१) **पितुः पुत्रः न**=पिता से जिस प्रकार पुत्र का सुभरण किया जाता है, इसी प्रकार यह यज्ञिय अग्नि **दुरोणे**=घर में **सुभृतः**=हमारे से सम्यक् धारण की जाये। (२) **नः**=हमारी **हविः**=अग्नि में डाली गयी आहुति **देवान्**=वायु आदि देवों को **आ एतु**=समन्तात् प्राप्त हो। अग्नि इन हविर्द्रव्यों को सूक्ष्म कणों में विभक्त करके सारे वायुमण्डल में फैलानेवाला हो।

भावार्थ—हम घरों में यज्ञाग्नि का इस प्रकार भरण करें जैसे पिता पुत्र का भरण करता है। इसे हम अपना मुख्य कर्त्तव्य समझें। यह यज्ञ ही सब वायुमण्डल को पवित्र करता है व हमारे लिये नीरोग बनाता है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

प्रभु के बनें, प्रकृति में न फँसें

तवाहमग्न ऊतिभिर्नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वसो। सदा देवस्य मर्त्यः॥ २८॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **अहम्**=मैं **तव**=आपकी **नेदिष्ठाभिः**=अन्तिकतम **ऊतिभिः**=रक्षणों से **जोषम्**=प्रीतिपूर्वक कर्त्तव्य कर्मों के सेवन को **आसचेय**=अपने साथ जोड़नेवाला बनूँ। आपसे रक्षित हुआ-हुआ प्रीतिपूर्वक कर्त्तव्य कर्मों में लगा रहूँ। (२) हे **वसो**=वसानेवाले प्रभो! मैं **सदा**=सदा **देवस्य**=दिव्य गुणों के पुञ्ज प्रकाशमय आपका ही **मर्त्यः**=मनुष्य बना रहूँ। इसी प्रकार मैं उत्तम निवासवाला बन पाऊँगा।

भावार्थ—प्रभु से रक्षित होकर हम कर्त्तव्य कर्मों में तत्पर रहें। सदा उस देव के बनें, प्रकृति में फँस न जायें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराट् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

'ऋतु-राति-प्रशस्ति'

तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभिः।
त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे॥ २९॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **क्रत्वा**=कर्म व प्रज्ञान के द्वारा **तव सनेयम्**=आपका सम्भजन करूँ। अर्थात् यज्ञ आदि कर्मों में प्रवृत्त होकर और प्रज्ञान को प्राप्त करके आपका उपासक बनूँ। **रातिभिः**=दान की क्रियाओं से **तव**=आपका सम्भजन करूँ। तथा **प्रशस्तिभिः**=स्तुतियों के द्वारा **तव**=आपका सम्भजन करूँ। एवं प्रभु का उपासन 'कर्म, प्रज्ञान, दान व स्तवन' से होता है। (२) हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **त्वां इत्**=आपको ही **प्रमतिं आहुः**=प्रकृष्ट बुद्धिवाला कहते हैं। हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप इस प्रमति को, प्रकृष्ट बुद्धि को **मम दातवे**=मेरे लिये देने के लिये **हर्षस्व**=प्रसन्न होइये इस प्रमति के द्वारा ही तो मैं अपने निवास को उत्तम बना पाऊँगा।

भावार्थ—हम 'कर्म-प्रज्ञान, दान व स्तवन' से प्रभु का शंसन करें। प्रभु से प्रकृष्ट प्रज्ञा को पाकर अपने निवास को उत्तम बनायें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—ककुबुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

प्रभु के 'सुवीर-वाजभर्मभिः' रक्षण

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः। यस्य त्वं सख्यमावरः॥ ३०॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **यस्य**=जिस भी उपासक की **सख्यम्**=मित्रता का **आवरः**=आप वरण करते हैं, **सः**=वह **तव ऊतिभिः**=आपके रक्षणों के द्वारा **प्रतिरते**=अतिशयेन वृद्धि को प्राप्त करता है। (२) ये आपके रक्षण **सुवीराभिः**=हमें उत्तम वीर सन्तानों को प्राप्त करानेवाले हैं, तथा **वाजभर्मभिः**=हमारे शक्ति का भरण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु की मित्रता में, प्रभु के रक्षणों के द्वारा उत्तम सन्तानों व शक्ति को प्राप्त करके हम वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृत् पं-॥ स्वरः—पञ्चमः॥

यक्ष (केनोपनिषद्)

तव॑ द्र॒प्सो नील॑वान्वा॒श ऋ॒त्विय॒ इन्धा॑नः सिष्ण॒वा द॑दे।

त्वं म॒ही॒नामु॒षसा॑मसि प्रि॒यः क्ष॒पो वस्तु॑षु राजसि॥ ३१ ॥

(१) हे **सिष्णो**-अपने प्रकाश से हमारे ध्यान को अपनी ओर खेंचनेवाले प्रभो! **तव द्रप्सः**=आपका ज्योतिष्कण (spark) **नीलवान्**=(नील) एक शुभ उद्घोषणावाला है। **वाशः**-यह एक पुकार है। **ऋत्वियः**=यह पुकार उस समय के अनुकूल होती है। **इन्धानः**=मैं अपने अन्दर ज्ञान को दीप्त करता हुआ **आददे**=इस पुकार का ग्रहण करता हूँ। (२) आप मेरे जीवन में **महीनाम्**-पूजा के लिये उचित **उषसाम्**=उषाकालों के तो **प्रियः असि**=प्रिय हैं ही। अर्थात् उषाकालों में तो मैं आपका स्मरण करता ही हूँ। आप **क्षपः**=रात्रि व **वस्तुषु**=दिनों में (**वस्तु**) **राजसि**=मेरे जीवन में चमकते हैं। अर्थात् मैं दिन-रात आपका स्मरण करता हूँ। यह सदा आपका स्मरण ही मेरे जीवन को पवित्र व प्रकाशमय बनाता है। (३) सर्वत्र प्रभु की ज्योति चमक रही है। विचारक को यह ज्योति अपनी ओर आकृष्ट करती है। वह सदा उस प्रभु का स्मरण करता हुआ अपने जीवन को निरभिमान बना पाता है।

भावार्थ-मेरे जीवन में प्रभु की ज्योति चमके प्रभु के ज्योतिष्कण से आकृष्ट होऊँ। दिन-रात प्रभु को स्मरण करता हुआ इस ज्योतिष्कण को लेने का प्रयत्न करूँ।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

सहस्रमुष्कं-स्वभिष्टि-सम्राट्-त्रासदस्यव

तमाग॑न्म॒ सोभ॑रयः स॒हस्र॑मुष्कं स्वभि॒ष्टिमव॑से। स॒म्राजं॒ त्रास॑दस्यवम्॥ ३२ ॥

(१) **सोभरयः**-अपना उत्तमता से भरण करनेवाले हम **तम्**=उस अग्रेणी प्रभु को **अवसे**=रक्षण के लिये **आगन्म**=प्राप्त होते हैं। जो प्रभु **सहस्रमुष्कम्**=अनन्त तेजवाले हैं (तमांसि मुष्णन्ति=मुष्क), **स्वभिष्टिम्**=सम्यक् अभ्येषणीय हैं। ये प्रभु ही जानने योग्य व प्रार्थना करने योग्य हैं। (२) उस प्रभु को हम प्राप्त होते हैं जो **सम्राजम्**=सम्यक् देदीप्यमान हैं और **त्रासदस्यवम्**=दास्यव भावों को भयभीत करनेवाले हैं। जिनके तेज की अग्नि में 'काम-क्रोध-लोभ' आदि दास्यव भाव दग्ध हो जाते हैं।

भावार्थ-प्रभु 'सहस्रमुष्क, स्वभिष्टि, सम्राट् व त्रासदस्यव' हैं। इन प्रभु को रक्षण के लिये हम प्राप्त हों।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—पादनिचृत्पं-॥ स्वरः—पञ्चमः॥

शुभ-क्षत्र

यस्य॑ ते अग्ने अ॒न्ये अ॒ग्नय॑ उप॒क्षितो॑ व॒याइ॑व।

विपो॒ न द्यु॒म्ना नि यु॑वे॒ जना॑नां॒ तव॑ क्ष॒त्राणि॑ व॒र्धय॑न्॥ ३३ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **यस्य**-जिन **ते**-आपके **अन्ये**=दूसरे **अग्नयः**=माता, पिता व आचार्यरूप अग्नियाँ **उपक्षितः**=समीप रहनेवाले हैं, **वयाः इव**=इस प्रकार समीप रहनेवाले हैं जैसे शाखायें वृक्ष के समीप होती हैं, शाखा जब तक वृक्ष के साथ है तब तक उसमें भी रस का संचार होता रहता है, अलग होते ही वह सूख जाती है। इसी प्रकार संसार की सब अग्नियाँ उस महान्

अग्नि प्रभु से ही अग्नित्व को प्राप्त होती हैं। प्रभु से अलग होते ही उनका अग्नित्व समाप्त हो जाता है। (२) मैं इन अग्नियों के प्रति अपना अर्पण करता हुआ, इनकी आज्ञा में चलता हुआ **तव क्षत्राणि**=आपके बलों को **वर्धयन्**=अपने में बढ़ाता हुआ, **विपः न**=मेधावी स्तोताओं की तरह **जनानाम्**=लोगों के **द्युम्ना**=यज्ञों को **नियुवे**=नितरां प्राप्त होता हूँ। अर्थात् लोगों में यशस्वी जीवनवाला बनता हूँ।

भावार्थ-प्रभु महान् अग्नि हैं, इनकी उपासना से अन्यत्र अग्नित्व की प्राप्ति होती है। इन माता, पिता, आचार्यरूप अग्नियों के सान्निध्य से हम भी बल-सम्पन्न व यशस्वी जीवनवाले बनते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्यः॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'आदित्य-अद्रुक्-सुदानु'

यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यम्। मघोनां विश्वेषां सुदानवः॥ ३४॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित उस महान् अग्नि (प्रभु) की उपेक्षित् अन्य अग्नियों को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि हे अग्नियो! **यं मर्त्यम्**=जिस मनुष्य को आप **पारं नयथ**=सब अशिवों के पार ले जाते हो। ये मनुष्य **आदित्यासः**=उत्कृष्ट ज्ञान का आदान करनेवाले, ज्ञानों से सूर्य की तरह चमकनेवाले बनते हैं। **अद्रुहः**=ये द्रोह की भावना से रहित होते हैं तथा **विश्वेषां मघोनाम्**=सब यज्ञशील पुरुषों में **सुदानवः**=खूब ही अधिक दानशील होते हैं। (२) उत्तम माता, पिता व आचार्य को प्राप्त करके ये युवक ज्ञान के दृष्टिकोण से सूर्य की तरह चमकनेवाले आदित्य बनते हैं। मन के दृष्टिकोण से ये द्रोह की भावना से रहित होते हैं तथा खूब ही यज्ञों में दान की प्रवृत्तिवाले बनते हैं। मस्तिष्क में 'आदित्य', मन में 'अध्रुक्', हाथों में 'सुदानु' होते हैं।

भावार्थ-हम उत्तम माता, पिता व आचार्य के सम्पर्क में 'आदित्य, अध्रुक् व सुदानु' बनें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—आदित्यः॥ **छन्दः**—स्वराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

वरुण, मित्र, अर्यमा

यूयं राजानः कं चिच्चर्षणीसहः क्षयन्तं मानुषाँ अनु।
वयं ते वो वरुण मित्रार्यमन्त्स्यामेदृतस्य रथ्यः॥ ३५॥

(१) हे **वरुण**=निर्द्वेषता की देवते! **मित्र**=स्नेह की देवते! तथा **अर्यमन्**=(अरीन् यच्छति) काम-क्रोध आदि को नियंत्रित करनेवाली देवते! **ते वयम्**=वे हम **वः**=आपके ही हों, आप तीनों की आराधना करनेवाले हों और **इत्**=निश्चय से **ऋतस्य**=यज्ञ आदि ऋत (ठीक) कर्मों के ही **रथ्यः**=प्रणेता **स्याम**=हों। (२) हे **यूयम्**=मित्र व अर्यमन्! आप सब **राजानः**=हमारे जीवनों को दीप्त बनानेवाले हो। **चर्षणीसहः**=हमारे शत्रुभूत मनुष्यों का पराभव करनेवाले हो। हम 'स्नेह, निर्द्वेषता व संयम' से शत्रुओं की शत्रुता को समाप्त करनेवाले बनते हैं। हे वरुण मित्र अर्यमन्! आप **मानुषान् क्षयन्तम्**=सब मनुष्यों को उत्तम निवास व गति देनेवाले, अर्थात् सब के हित में प्रवृत्त **कञ्चित्**=किसी विरल व्यक्ति के **अनु**=अनुकूल होते हो। कोई विरल पुरुष ही 'वरुण, मित्र व अर्यमा' की आराधना करता हुआ सब के हित में प्रवृत्त होता है।

भावार्थ-हम 'निर्द्वेषता, स्नेह व संयम' के धारण करनेवाले बनकर यज्ञ आदि उत्तम कर्मों के प्रणेता हों। इनकी आराधना से शत्रुओं की शत्रुता को दूर करें। सब के हित में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—त्रसदस्योर्दानस्तुतिः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

पौरुकुत्स्यः त्रसदस्युः

अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम्। मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः॥ ३६॥

(१) **पौरुकुत्स्यः**=पुरुकुत्स का सन्तान, अर्थात् बड़ा पुरुकुत्सः=खूब ही वासनाओं का संहार करनेवाले (कुक्ष हिंसायाम्) **त्रसदस्युः**=दास्यव भावनाओं को भयभीत करनेवाले जिनके हृदयस्थ होने पर दास्यव भावनायें उत्पन्न ही नहीं होती वे प्रभु **मे**=मेरे लिये **बधूनाम्**=ज्ञान का वहन करनेवाली **पञ्चाशतम्**=(पञ्च, शतम्) शत वर्ष पर्यन्त ठीक कार्य करनेवाली पाँच ज्ञानेन्द्रियों को **अदात्**=देते हैं। (२) ये प्रभु **मंहिष्ठः**=दातृतम हैं, सर्वोत्तम दाता हैं। **अर्यः**=स्वामी हैं। **सत्पतिः**=सब सत्कार्यों के रक्षक हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे लिये वासनाओं के संहार के द्वारा शतवर्षपर्यन्त चलनेवाली पाँच ज्ञानवाहिनी ज्ञानेन्द्रियों को देते हैं। वस्तुतः यह प्रभु का महान् दान है। वे प्रभु ही स्वामी हैं, सब सत्कार्यों के रक्षक हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—त्रसदस्योर्दानस्तुतिः॥ छन्दः—विराट् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

'प्रयियु, वयियु, सुवास्तु'

उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि।
तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता भुवद्वसुर्दियानां पतिः॥ ३७॥

(१) **उत**=और **मे**=मेरे लिये वे प्रभु **प्रयियोः**=जीवनयात्रा के लिये आवश्यक धन के (प्रयायते अनेन) **प्रणेता**=प्राप्त करानेवाले हैं। **वयियोः**=(ऊयते येन) जिससे कर्म तन्तु का विस्तार किया जाता है उस ज्ञानरूप वस्त्र के **प्रणेता**=देनेवाले हैं। तथा **सुवास्त्वाः**=उत्तम शरीर गृह के देनेवाले हैं। वे **तिसृणाम्**=तीनों **सप्ततीनाम्**=सर्पणशील जीवन में निरन्तर बढ़नेवाले काम, क्रोध व लोभ के **अधि तुग्वनि**=आधिक्येन हिंसन के निमित्त प्रभु ही 'वयियु, सुवास्तु व प्रयियु' के देनेवाले हैं। वे कर्मतन्तु के विस्तारक ज्ञान को देकर प्रभु मुझे 'काम' से ऊपर उठाते हैं। उत्तम निवास के हेतुभूत इस शरीर गृह को देकर 'क्रोध' से दूर करते हैं तथा 'प्रयियु'-आवश्यक धन को देकर 'लोभ' से परे करते हैं। (२) वे प्रभु ही **श्यावः**=(श्यैङ् गतौ) सब कार्यों के संचालक हैं। **भुवद्वसुः**=सब वसुओं के भावयिता (उत्पादक) हैं तथा **दियानां पतिः**=दानशील पुरुषों के रक्षक हैं। प्रभु का इस प्रकार स्मरण करते हुए हम इन तीनों सप्ततियों का तीनों सर्पणशील 'काम क्रोध-लोभ' का शमन कर सकें।

भावार्थ—प्रभु ही धन-कर्मतन्तु विस्तारक ज्ञान तथा उत्तम शरीर गृह को देकर हमें काम-क्रोध-लोभ से दूर करते हैं। हम प्रभु का इस रूप में स्मरण करें, कि प्रभु ही सब कार्यों के सञ्चालक, धनों के उत्पादक व दानों के स्वामी हैं।

अगले सूक्त में 'सोभरि' मरुतों का स्तवन करते हैं। मरुत् 'अध्यात्म' में प्राण हैं, 'अधिदैवत' रूप में ये वायु हैं, 'आधिभौतिक' क्षेत्र में ये सैनिक हैं—

२०. [विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—ककुबुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

स्थिरा चित् नमयिष्णवः

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः। स्थिरा चिन्नमयिष्णवः॥ १॥

(१) हे प्राणो! **आगन्त**=तुम हमें प्राप्त होवो। **मा रिषण्यत**=हमें किसी भी रोग आदि से हिंसित न होने दो। **प्रस्थावानः**=निरन्तर प्रस्थानवाले, निरन्तर गतिशील आप **मा अपस्थात**=हमारे से दूर मत होवो। **समन्यवः**=आप सब, प्राण, अपान, व्यान आदि भेद से अनेक रूपों में काम करनेवाले, **समन्यवः**=समानरूप से तेजस्वी होवो (spirit, mettle, courage)। (२) हे प्राणो! आप **स्थिरा चित्**=बड़े दृढ़मूल भी 'रोग व काम-क्रोध-लोभ' आदि शत्रुओं को **नमयिष्णवः**=झुका देनेवाले होवो। आपकी कार्यशक्ति से हम नीरोग बनें।

भावार्थ-प्राणशक्ति हमें नीरोग व शान्त जीवनवाला बनाती है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—सतः पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

वीडुपविभिः-सुदीतिभिः

वी॒ळु॒प॒विभि॑र्मरुत ऋभुक्षण॒ आ रु॑द्रासः सुदी॒तिभिः॑।
इ॒षा नो॑ अ॒द्या ग॑ता पुरुस्पृहो य॒ज्ञमा सो॑भरी॒यवः॑॥ २॥

(१) हे **ऋभुक्षणः**=(उरुभासमान निवासाः) खूब दीप्त निवासवाले, **रुद्रासः**=रोगों का द्रावण करनेवाले **मरुतः**=प्राणो! **वीडुपविभिः**=दृढ़ रथनेमियोंवाले **सुदीतिभिः**=उत्तम दीप्तियों से युक्त शरीररथों से **आगत**=हमें प्राप्त होवो। आपकी साधना से यह शरीररथ दृढ़ व दीप्तिमय बने। (२) हे **पुरुस्पृहः**=खूब ही स्पृहणीय, **सोभरीयवः**=मुझे सोभरि (=उत्तम भरणवाला) बनाने की कामनावाले मरुतो! **अद्य**=आज **नः यज्ञम्**=हमारे जीवनयज्ञ में **इषा**=उत्तम प्रेरणा के हेतु से **आगत**=प्राप्त होवो। आपकी साधना से ही तो हृदय की शुद्धि होने पर अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा सुन पड़ती है।

भावार्थ-प्राणसाधना से हमारे शरीर दृढ़ व दीप्त बनें। हमें इस जीवनयज्ञ में प्रभु की प्रेरणा सुनाई पड़े। तदनुसार कार्य करते हुए हम 'सोभरि' बनें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्राणों का 'उग्र शुष्म'

वि॒द्मा हि रु॒द्रिया॑णां॒ शुष्म॑मु॒ग्रं म॒रुतां॒ शिमी॑वताम्। विष्णो॑रे॒षस्य॑ मी॒ळ्हुषा॑म्॥ ३॥

(१) हम **रुद्रियाणाम्**=रोगों को दूर करनेवालों में उत्तम **शिमीवताम्**=प्रशस्त कर्मोंवाले प्राणों के **उग्रम्**=तेजस्वी **शुष्मम्**=शत्रु-शोषक बल को **हि**=निश्चय से **विद्म**=जानते हैं। प्राण रोगों को दूर करते हैं, हमें प्रशस्त कर्मों में प्रवृत्त करते हैं और शत्रु-शोषक तेज प्राप्त कराते हैं। (२) हम उन प्राणों के बल को जानते हैं, जो **एषस्यः**= अभ्येषणीय=चाहने योग्य **विष्णोः**=व्यापक रेतःकण रूप जलों के **मीढुषाम्**=शरीर में सेचन करनेवाले हैं। प्राणसाधना से शरीर में रेतःकणों की ऊर्ध्वगति होती है, ये रेतःकण शरीर में रुधिर के साथ सर्वत्र व्याप्त होते हैं।

भावार्थ-प्राणसाधना से (क) रोग दूर होते हैं, (ख) प्रशस्त कर्मों को हम सिद्ध करते हैं, (ग) रेतःकणों को शरीर में ही व्याप्त करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—विराट् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

शुभ्रखादयः-स्वभानवः

वि द्वी॒पानि॒ पाप॑त॒न्तिष्ठ॑द्दु॒च्छुनो॒भे यु॑जन्त॒ रोद॑सी।
प्र धन्वा॒न्यैरत शुभ्रखादयो॒ यदेज॑थ स्वभानवः॥ ४॥

(१) हे **शुभ्रखादयः**=चमकते हुए आयुधोंवाले, **स्वभानवः**=अपनी दीप्तिवाले, अर्थात् बिना वेश के स्वयं भी तेजस्विता से चमकनेवाले वीर सैनिको! **यद्**=जब **एजथ**=आप हिलते हो, गतिमय होते हो तो **द्वीपानि विपापतन्**=द्वीप के द्वीप हिल उठते हैं। **तिष्ठत्**=सब स्थान वृक्ष आदि **दुच्छुना**=बुरी तरह से हिल जाते हैं (शुन् To move)। ये सैनिक चलते हैं तो पृथिवी से उठी धूलि आकाश तक पहुँचती है। इस प्रकार ये सैनिक **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी को **युजन्त**=मिला-सा देते हैं। (२) हे सैनिको! आप **धन्वानि**=इन मरुस्थलों को **प्र ऐरत**=प्रकर्षेण गतिवाला करते हो। मरुस्थल अपने रेत को कहीं का कहीं पहुँचा देते हैं। सारा रेगिस्तान कम्पित-सा हो उठता है।

भावार्थ—दीप्त अस्त्रों से सुसज्जित, तेजस्विता से दीप्त सैनिक जब चलते हैं, तो सारा प्रदेश ही चल-सा पड़ता है, सब स्थावर चीजें हिल जाती हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—ककुबुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

सैनिकों की गति से भूमि का भी काँप उठना

अच्युता चिद्वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः। भूमिर्यामेषु रेजते॥ ५॥

(१) हे सैनिको! **वः**=आपके **अज्मन्**='संग्रामे गमने सति' संग्राम में गति के होने पर **अच्युता चित् पर्वतासः**=कभी न हिलनेवाले पर्वत भी तथा **वनस्पतिः**=सब वृक्ष **आनानदति**=हिल जाने पर शब्दायमान हो उठते हैं। (२) **यामेषु**=आपकी गतियों के होने पर **भूमिः**=सम्पूर्ण पृथिवी ही **रेजते**=काँप उठती है।

भावार्थ—सैनिकों की हलचल से पर्वत, वनस्पति व सारी भूमि ही शब्दायमान हो उठती है और हिल पड़ती है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—पादनिचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

सैनिकों के लिये द्युलोक भी मार्ग छोड़ देता है

अमाय वो मरुतो यातवे द्यौर्जिहीत उत्तरा बृहत्।
यत्रा नरो देदिशते तनूष्वा त्वक्षांसि बाह्वोजसः॥ ६॥

(१) हे **मरुतः**=सैनिको! **वः**=तुम्हारे **अमाय**=बल के लिये व **यातवे**=गति के लिये **द्यौः**=यह द्युलोक **बृहत्**=खूब ही **उत्तरा**=उद्गततर होकर **जिहीते**=गतिवाला होता है। मानो द्युलोक भी इन सैनिकों के लिये मार्ग छोड़ देता है। (२) यह वहाँ होता है, **यत्रा**=जहाँ कि **बाह्वोजसः**=बाहुओं में बलवाले, सबल भुजाओंवाले, **नरः**=आगे और आगे बढ़नेवाले ये सैनिक **तनुषू**=अपने शरीरों पर **त्वक्षांसि**=दीप्त आयुधों को **आदेदिशते**=आदिष्ट करते हैं, धारण करते हैं।

भावार्थ—अस्त्रों से सुसज्जित वीरों की सेना के चलने पर द्युलोक भी मानो उनके लिये मार्ग को छोड़ देता है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—ककुबुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

वृषप्सवः-अह्रुतप्सवः

स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः। वहन्ते अह्रुतप्सवः॥ ७॥

(१) **त्वेषाः नरः**=ये दीप्त अग्रगामी सैनिक **स्वधां अनु**=आत्मधारण शक्ति के अनुसार **महि**=महान् **श्रियम्**=शोभा को **वहन्ते**=धारण करते हैं। ये अपने धारण के लिये किसी दूसरे पर

आश्रित नहीं होते। ये औरों का, सारे राष्ट्र का धारण करते हैं। (२) ये सैनिक **अमवन्तः**=बल सम्पन्न होते हैं। **वृषप्सवः**=शक्ति सिक्त रूपवाले होते हैं, बड़े तेजस्वी प्रतीत होते हैं। **अह्रुतप्सवः**=अकुटिलरूप होते हैं, छल-छिद्र की भावना से रहित होते हुए शुद्ध हृदय से देश के रक्षक होते हैं। अपने स्वार्थ के लिये कभी देश-द्रोह नहीं करते है।

भावार्थ-सैनिकों की शोभा अद्भुत ही होती है। ये बलवान् तेजस्वी व निश्छल वृत्ति से देश की सेवा करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—निचृत्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

गोभिः वाणः अज्यते (इषे, भुजे, स्परसे)

गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये।
गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु॥ ८॥

(१) **सोभरीणाम्**=उत्तमता से अपने 'शरीर, मन व बुद्धि' का भरण करनेवालों के **रथे**=इस शरीररथ में **हिरण्यये कोशे**=ज्योतिर्मय कोश में, ज्ञानोज्ज्वल हृदयदेश में **गोभिः**=इन ज्ञान की वाणियों के द्वारा **वाणः**=उस प्रभु की वाणी **अज्यते**=प्रकट होती है। इन वेद-वाणियों का स्वाध्याय प्रभु की वाणी के सुनने में सहायक होता है। (२) **गोबन्धवः**=ज्ञान की वाणियों को हमारे साथ बाँधनेवाले, **सुजातासः**=उत्तम विकासवाले, **महान्तः**=महनीय, ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्राण हमारे जीवनों में **इषे**=प्रभु-प्रेरणा को सुनने के लिये होते हैं, ये **भुजे**=हमारे पालन के लिये होते हैं और **नु**=निश्चय से **नः**=हमारे **स्परसे**=(प्रीत्यै बलाय च) बलवर्धन व प्रीति के लिये होते हैं।

भावार्थ-स्वाध्याय हृदयदेश में प्रभु की वाणी के सुनने में सहायक होता है। प्राणसाधना से हृदय में प्रेरणा सुनाई पड़ती है, शरीर का पालन ठीक से होता है तथा बल व प्रीति का अनुभव होता है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

हव्य पदार्थों का सेवन व प्राणवर्धन

प्रति वो वृषदञ्जयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वम्। हव्या वृषप्रयाव्णे॥ ९॥

(१) हे **वृषदञ्जयः**=सुखों के वर्षक सोम से अपने को सिक्त करनेवाले साधको! आप **वः**=तुम्हारे **वृष्णे**=शक्ति का सेचन करनेवाले, **वृषप्रयाव्णे**=शक्तिशाली गतियोंवाले **मारुताय शर्धाय**=इन प्राणों के बल के लिये **हव्या**=हव्य पदार्थों को **प्रतिभरध्वम्**=प्रतिदिन धारण करनेवाले होवो। (२) हव्य पदार्थों का सेवन ही प्राण शक्ति की वृद्धि का कारण बनता है। साधित हुए-हुए ये प्राण शरीर में शक्ति का सेचन करते हैं। और हमारी सब गतियों को शक्ति-सम्पन्न बनाते हैं।

भावार्थ-हम हव्य पदार्थों का सेवन करते हुए अपने में प्राणों की शक्ति का भरण करें। ये प्राण हमारी क्रियाओं को शक्ति सम्पन्न करेंगे।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—सतः पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

'वृषणश्व-वृषप्सु-वृषनाभि' रथ

वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना।
आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो वीतये गत॥ १०॥

(१) हे **नरः**-हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले **मरुतः**=प्राणो! आप **रथेन**-उस शरीर रथ के हेतु से **नः**-हमारे इन **हव्या**=हव्य पदार्थों के **वीतये**-भक्षण के लिये **वृथा**-अनायास ही **आगत**-प्राप्त होवो। **न**-जिस प्रकार **पक्षिणः**-उत्तम पँखोंवाले **श्येनासः**-श्येन (बाज) पक्षी प्राप्त होते हैं। श्येन चिड़िया आदि का शिकार करते हैं और ये प्राण रोगों का। (२) प्राण रोगों को समाप्त करके हमें उस शरीररथ से युक्त करते हैं जो **वृषणश्वेन**=शक्तिशाली इन्द्रियाश्वोंवाला है, **वृषप्सुना**=तेजस्वी रूपवाला है तथा **वृषनाभिना**-शक्तिशाली नाभिवाला है, जिसमें सब नाड़ियों का बन्धन-स्थान बड़ा दृढ़ है।

भावार्थ-प्राणशक्ति के वर्धन के लिये हव्य पदार्थों का सेवन करने पर हमारा शरीररथ शक्तिशाली इन्द्रियाश्वोंवाला, तेजरूपवाला व शक्तिशाली नाड़ी-बन्धनवाला बनता है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

वीर सैनिकों का समान वेष (uniform)

समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु। दविद्युतत्यृष्टयः॥ ११॥

(१) **ऐषाम्**=इन वीर सैनिकों का **अञ्जि**-रूप व्यञ्जक पोशाक **समानम्**-समान है। सब समान वेष को धारण किये हुए हैं (uniform)। इन की **बाहुषु अधि**=भुजाओं पर **रुक्मासः**=सोने के बने दीप्त अंगद (भूषणविशेष व पदक) **विभ्राजन्ते**=विशेषरूप से चमक रहे हैं। (२) इन के हाथों में **ऋष्टयः**=शत्रु-नाशक अस्त्र **दविद्युतति**-चमकते हैं। इन की चमक शत्रुओं की आँखों को चुँधियानेवाली होती है।

भावार्थ-वीर सेनानी समान वेष में खूब ही रोबीले प्रतीत होते हैं। इन की भुजाओं पर स्वर्ण के पदक तथा हाथों में शत्रु-नाशक अस्त्र इन की दीप्ति को बढ़ानेवाले होते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—पादनिचृत्पं-॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

वीर सैनिक व देश की श्री का वर्धन

त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः॥ १२॥

(१) **ते**=वे युद्धभूमि में प्राणों को त्यागनेवाले सैनिक **उग्रासः**=बड़े उद्‌गूर्ण बलवाले, बढ़े हुए बलवाले हैं। **वृषणः**=शक्तिशाली हैं। **उग्रबाहवः**=बड़ी तेजस्वी भुजाओंवाले हैं। ये **तानूषु**=अपने शरीरों के रक्षक के विषय में **नकिः येतिरे**-कभी प्रयत्न नहीं करते। अपने सबल शरीरों को देश के लिये आहुत करने के लिये ये तैयार पर तैयार होते हैं। (२) इनके **रथेषु**=रथों पर **स्थिरा धन्वानि**=दृढ़ धनुष व **आयुध**=अन्य युद्ध के अस्त्र होते हैं। वस्तुतः हे सैनिको! **वः**=आपके **अनीकेषु अधि**-सेनाओं के अग्रभागों में ही **श्रियः**-राष्ट्र की सब सम्पत्तियों का निवास है।

भावार्थ-तेजस्वी सैनिक देशरक्षा के लिये प्राणत्याग करते हुए भयभीत नहीं होते। अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित रथों पर आरूढ़ होकर शत्रु विजय करते हुए ये देश की 'श्री' की अभिवृद्धि का कारण बनते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'सप्रथः त्वेषं' नाम

येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद्भुजे। वयो न पित्र्यं सहः॥ १३॥

(१) **येषाम्**=जिन **शश्वताम्**=(शश ह्रुतगतौ) तीव्र गतिवाले मरुतों (सैनिकों) का **त्वेषम्**=दीप्त **नाम**=शत्रुओं को नमानेवाला बल **अर्णः न**- समुद्र जल के समान **सप्रथः**=विस्तार से युक्त है, विस्तार से ही क्या युक्त है? **एकं इत्**=अद्वितीय ही है। यह बल **भुजे**=राष्ट्र के पालन के लिये होता है। (२) **वयः न**=आयुष्य की तरह **सहः**=इनका शत्रुमर्षक बल **पित्र्यम्**=पिता के कार्य के करने में उत्तम होता है, अर्थात् इन सैनिकों का आयुष्य व बल राष्ट्ररक्षण में ही विनियुक्त होता है पिता जैसे परिवार का रक्षण करता है, इसी प्रकार ये सैनिक अपने जीवन व बल से राष्ट्र का रक्षण करते हैं।

भावार्थ-तीव्र गतिवाले सैनिकों का बल विस्तृत व दीप्त होता है। यह राष्ट्र रक्षण में विनियुक्त होता है। इनका आयुष्य व बल राष्ट्र के लिये वही काम करता है, जो पिता परिवार के लिये किया करता है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—आर्चीभुरिक्पं- ः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

सैनिकों का समादर

तान्वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनाम्।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम्॥ १४॥

(१) **तान मरुतः**=गत मन्त्र में वर्णित राष्ट्र रक्षक वीर सैनिकों का **वन्दस्व**=तू वन्दन कर। **तान् उपस्तु हि**=उनकी स्तुति कर, इनकी उचित प्रशंसा का हम गायन करें। **धुनीनां तेषां हि**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले उन सैनिकों में निश्चय से, **चरमः न**=कोई पिछला नहीं, सब एक से एक बढ़ करके हैं। **अराणां (न)**=जिस प्रकार चक्र में लगे दण्ड सब समान ही होते हैं, कोई पहला व कोई पिछला नहीं होता। इसी प्रकार ये सैनिक सब एक दूसरे से बढ़कर के हैं। (२) वस्तुतः राष्ट्र में जो भी उन्नति व शान्ति दिखती है, **तद्**=यह सब **एषां दाना**=इनके (दाप लवने) शत्रु-खण्डनात्मक कार्य के द्वारा ही होती है। यह राष्ट्र जो भी दिखता है, **तद्**=वह सब **एषाम्**=इनकी **मह्ना**=महिमा से ही दिखता है। राष्ट्र की सब उन्नति के मूल में ये राष्ट्र रक्षक मरुत् ही होते हैं।

भावार्थ-हम सैनिकों का वन्दन करें, इनकी उचित प्रशंसा करें। इन शत्रु-कम्पक सैनिकों में सब एक दूसरे से बढ़कर हैं। राष्ट्र की सब उन्नति के मूल में इनका ही शत्रु-खण्डनात्मक कार्य है, इनकी महिमा से राष्ट्र खड़ा है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्राणसाधना व सुभगता

सुभगः स व ऊतिष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु। यो वा नूनमुतासति॥ १५॥

(१) हे **मरुतः**=शरीरस्थ प्राणो! जो मनुष्य **पूर्वासु व्युष्टिषु**=जीवन के प्रारम्भिक (व्युष्टि= Day-break) प्रातःकालों में, अर्थात् आयुष्य के प्रथम वर्षों में, **वः**=आपके **ऊतिषु**=रक्षणों में **आस**=रहता है व वीर्य रक्षण द्वारा दीप्ति को प्राप्त करता है (अस दीप्तौ), **सः**=वह पुरुष **सुभगः**= उत्तम भाग्यवाला होता है। (२) **उत**=और **यः**=जो **वा**=निश्चय से **नूनम्**=अब भी जीवन के माध्यन्दिन सवन व तृतीय सवन में भी आपके रक्षणों में **असति**=रहता है, वह अतिशयेन सौभाग्यवान् होता है। प्राणसाधना ही तो वीर्य की ऊर्ध्वगति का कारण बनती है। इसी से मनुष्य सब सौभाग्यों का आश्रय स्थान होता है।

भावार्थ–हम जीवन के प्रातःकाल में ही प्राणों की साधना करते हुए वीर्य की ऊर्ध्वगति के द्वारा जीवन में सौभाग्य सम्पन्न बनें। जीवन के मध्याह्न व सायंकाल में भी यह प्राणसाधना व वीर्यरक्षण का हेतु बने।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—सतः पर्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

द्युम्न-वाज-सुम्न

यस्य॑ वा यूयं प्रति॑ वाजिनो॑ नर॒ आ ह॒व्या वी॒तये॑ ग॒थ।

अ॒भि ष द्यु॒म्नैरु॒त वाज॑सातिभिः सु॒म्ना वो॑ धूतयो नशत्॥ १६॥

(१) हे **वाजिनः**=शक्तिशाली **नरः**=उन्नतिपथ पर हमें ले चलनेवाले प्राणो! **यस्य**=जिस भी मनुष्य के **न**=निश्चय से **हव्य**=हव्य पदार्थों को ही **वीतये**=खाने के लिये **यूयम्**=आप **प्रति आगथ**=प्रतिदिन प्राप्त होते हो। अर्थात् जो मनुष्य सात्त्विक अन्नों का ही सेवन करता हुआ आपका वर्धन करता है **सः**=वह **वा**=आपकी **द्युम्नैः**=ज्ञान-ज्योतियों से **अभिनशत्**=व्याप्त होता है। (२) **उत**=और वह पुरुष **वाजसातिभिः**=शक्तियों के सम्भजन से युक्त होता है। हे **धूतयः**=शत्रुओं से कम्पित करनेवाले प्राणो! रोगों व वासनाओं को नष्ट करनेवाले प्राणो! यह व्यक्ति **वः**=आपके **सुम्ना**=सब सुखों व रक्षणों को **नशत्**=प्राप्त होता है।

भावार्थ–हम प्राणसाधना के साथ सात्त्विक भोजन को अपनायें, तो ज्ञान शक्ति व सब सुखों को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'रुद्रस्य सूनवः-युवानः' (मरुतः)

यथा॑ रु॒द्रस्य॑ सू॒नवो॑ दि॒वो वश॒न्त्यसु॑रस्य वे॒धसः॑। युवा॑न॒स्तथेद॑सत्॥ १७॥

(१) **यथा**=जैसे **रुद्रस्य सूनवः**=रोगों के द्रावयिता के पुत्र, अर्थात् खूब ही रोगों का द्रावण करनेवाले, प्राण **वशन्ति**=चाहते हैं, **इत्**=निश्चय से तथा **असत्**=वैसा ही हो जाता है। अर्थात् शरीर में शासन प्राणों का है। (२) ये प्राण **दिवः**=ज्ञान के प्रकाश के तथा **असुरस्य**=(असून् एति) प्राणशक्ति का संचार करनेवाले सोम के **वेधसः**=(विधातारः) कर्ता हैं। इन प्राणों ने ही शक्ति की ऊर्ध्वगति करनी है, तथा उस सुरक्षित सोम को ज्ञानाग्नि का ईंधन बनाकर ज्ञानाग्नि को दीप्त करना है। और इस प्रकार ये प्राण **युवानः**=(यु मिश्रणामिश्रणयोः) सब बुराइयों को पृथक् करनेवाले व सब अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले हैं।

भावार्थ–शरीर में प्राण रोगों को दूर भगानेवाले, ज्ञान व सोम के कर्ता तथा सब बुराइयों को दूर करके सब अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—विराट्पर्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

वस्यसा हृदा (उप आववृध्वम्)

ये चार्ह॑न्ति म॒रुतः॑ सु॒दान॑वः॒ स्मन्मी॒ळ्हुष॒श्चर॑न्ति॒ ये।

अत॑श्चि॒दा न॒ उप॒ वस्य॑सा हृ॒दा युवा॑न॒ आ व॑वृध्वम्॥ १८॥

(१) **ये**=जो **सुदानवः**=उत्तम दानशील पुरुष अथवा वासनाओं का छेदन करनेवाले पुरुष (दाप् लवने) **मरुतः**=इन प्राणों का **अर्हन्ति**=पूजन करते हैं, अर्थात् प्राणसाधना में प्रवृत्त होते हैं। **च**=और **ये**=जो **स्मत्**=प्रशस्त रूप से **मीढुषः**=शरीर में शक्ति का सेचन करनेवाले प्राणों को

चरन्ति=उत्तम हवियों से पूजित करते हैं, अर्थात् प्राणवर्धक हव्य पदार्थों का ही सेवन करते हैं। **अतः**=सो **चित्**=निश्चय से **नः**=हम दोनों, प्राणसाधना द्वारा पूजन करनेवाले तथा हव्य पदार्थों के सेवन से प्राणवर्धन करनेवाले, लोगों को **आ**=लक्ष्य करके **वस्यसा**=वसुमत्तम, अतिशयेन वसुओंवाले, **हृदा**=हृदय से **उप आववृध्वम्**=(उपेत्य अभिसंभजत) प्राप्त होवो। अर्थात् हमें अतिशयेन उत्तम हृदय प्राप्त कराओ। हमारा हृदय वासनाओं से शून्य होकर दिव्य गुणों का निवास-स्थान बने। (२) **युवानः**=हे प्राणो! आप सब बुराइयों को पृथक् करनेवाले व अच्छाइयों को मिलानेवाले हो। इस प्रकार आप ही हमारे हृदयों को पवित्र बनाते हो।

भावार्थ—हम प्राणसाधना में प्रवृत्त हों, हव्य पदार्थों के सेवन से प्राणशक्ति को बढ़ायें। ये प्राण हमें प्रशस्त हृदय प्राप्त करायेंगे। ये सब बुराइयों को दूर करनेवाले व अच्छाइयों को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—ककुबुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'युवा-वृषा-पावक' प्राण

यून ऊ षु नविष्ठया वृष्णः पावकाँ अभि सोभरे गिरा। गाय गाईव चर्कृषत्॥ १९॥

(१) हे **सोभरे**=अपना उत्तम प्रकार से भरण करनेवाले! तू **उ**=निश्चय से **यूनः**=बुराइयों को दूर करनेवाले और अच्छाइयों का मेल करनेवाले (यु मिश्रणामिश्रणयोः), इसी उद्देश्य से **वृष्णः**=शक्ति का शरीर में सेचन करनेवाले **पावकान्**=जीवनों को पवित्र करनेवाले प्राणों को **सुनविष्ठया**=अतिशयेन स्तुत्य **गिरा**=वाणी से **अभिगाय**=स्तुत कर। प्राणों के महत्त्व का स्मरण कर। (२) उसी प्रकार तू प्राणों का गायन कर, **इव**=जैसे **चर्कृषत्**=खेती करता हुआ व्यक्ति (यूनः वृष्णः) **गाः**=युवा शक्तिशाली बैलों का शंसन करता है। इन बैलों के द्वारा उसका खेती का कार्य सुचारुरूपेण चलता है, इसी प्रकार युवा-वृषा-पावक प्राणों के द्वारा शरीर क्षेत्र का कार्य चला करता है।

भावार्थ—हम प्राणसाधना के द्वारा प्राणों को शक्तिशाली बनायें। ये प्राण हमारे जीवनों से सब बुराइयों को दूर करके उन्हें पवित्र बनायेंगे।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'वृषा-चन्द्र-सुश्रवस्तम' मरुत् (सैनिक)

साहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु।
वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा वन्दस्व मरुतो अह॥ २०॥

(१) **ये**=जो (मरुत्=) सैनिक **साहाः**=शत्रुओं का पराभव करनेवाले **सन्ति**=हैं। **विश्वासु**=सब **होतृषु**=आह्वानशील जिन में एक दूसरे को ललकारा जा रहा है, ऐसे **पृत्सु**=संग्रामों में **मुष्टिहा इव**=एक मल्ल की तरह (मुक्के के प्रहार से मारनेवाले की तरह) **हव्यः**=पुकारने योग्य होते हैं। संग्रामों में इन शत्रुमर्षक सैनिकों ने ही तो विजय प्राप्त करनी होती है। (२) इन **वृष्णः**=शक्तिशाली **चन्द्रान् न**=(न=इव) जैसे आह्लादमय हैं, प्रसन्नता से युक्त हैं उसी प्रकार **सुश्रवस्तमान्**=अतिशयेन कीर्ति से सम्पन्न **मरुतः**=सैनिकों को **अह**=निश्चय से **वन्दस्व**=वन्दित कर। इन वीर सैनिकों को उचित आदर दिया जाये। ये वीर सैनिक शक्तिशाली होते हुए प्रसन्नता पूर्वक युद्धों में प्राणत्याग के लिये उद्यत रहते हैं। इन्हें सन्मान मिलना ही चाहिये।

भावार्थ—युद्ध के समय सैनिकों की ही पुकार होती है। इन शक्तिशाली प्रसन्न मनवाले कीर्ति-सम्पन्न सैनिकों का हमें समादर करना आवश्यक है।

ऋषिः — सोभरिः काण्वः॥ देवता — मरुतः॥ छन्दः — निचृदुष्णिक्॥ स्वरः — ऋषभः॥

समन्यवः-सबन्धवः

गावश्चिद्धा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः। रिहते ककुभो मिथः॥ २१॥

(१) **मरुतः**-एक राष्ट्र के सैनिक **चिद् घा**-निश्चय से **समन्यवः**-देश के शत्रुओं के प्रति रोष से भरे होते हैं। **गावः**-(गच्छन्ति) प्रचण्ड रोष में ये शत्रु के प्रति जानेवाले होते हैं। इस प्रचण्ड मन्यु के कारण ही इनके आक्रमण में प्रचण्डता आती है। (२) ये सैनिक **सजात्येन**=समान जातित्व (nationality) के कारण **सबन्धवः**-सबन्धु होते हैं, परस्पर बन्धुत्ववाले होते हैं। आपस में ये एक होकर अपना व्यापार करते हैं। (३) **मिथः**-परस्पर एकत्व के कारण ही ये **ककुभः रिहते**=दिशाओं को चाटनेवाले होते हैं (रिह आस्वादने) दिग्विजयी बनते हैं। शत्रुओं का उच्चाटन करते हुए ये दिशाओं के अन्त तक पहुँचते हैं।

भावार्थ-एक राष्ट्र के सैनिक शत्रु के प्रति रोषवाले होते हुए शत्रु पर आक्रमण करते हैं। ये एक जातीयता (भारतीयता आदि nationalities) के कारण परस्पर बन्धुत्व से पूर्ण होते हैं। इस एकता से सबल बनकर ये दिग्विजयी बनते हैं।

ऋषिः — सोभरिः काण्वः॥ देवता — मरुतः॥ छन्दः — सतः पङ्क्तिः॥ स्वरः — पञ्चमः॥

नृतवः-रुक्मवक्षसः

मर्तश्चिद्वो नृतवो रुक्मवक्षस उप भ्रातृत्वमायति।
अधि नो गात मरुतः सदा हि व आपित्वमस्ति निध्रुवि॥ २२॥

(१) हे **रुक्मवक्षसः**-बाहुवों पर स्वर्ण के पदकों को धारण करनेवाले, वीरता के सूचक पदकों से युक्त भुजाओंवाले, **नृतवः**-रणांगण में नृत्य करनेवाले **मरुतः**-वीर सैनिको! **मर्तः चित्**-एक राष्ट्र का सामान्य मनुष्य भी **वः**-आपके **भ्रातृत्वम्**-भ्रातृत्व को **उपायति**=समीपता से प्राप्त होता है। आप एक सामान्य मनुष्य को भी रक्षित करने के लिये यत्नशील होते हो। (२) हे सैनिको! **नः**=हमारे लिये **अधिगात**-आधिक्येन गतिवाले होवो। **वः**-आपका **आपित्वम्**=बन्धुत्व **हि**=ही **सदा**=हमेशा **निध्रुवि**=राष्ट्र की ध्रुवता का कारण **अस्ति**=है। आपका यह बन्धुत्व ही राष्ट्र का रक्षक होता है।

भावार्थ-राष्ट्र के सैनिक राष्ट्र के प्रत्येक पुरुष में भ्रातृत्व को अनुभव करते हैं। इन सैनिकों का यह मित्रभाव ही राष्ट्र का रक्षण करता है। ये राष्ट्र रक्षण के लिये रणांगण में नृत्य करनेवाले होते हैं।

ऋषिः — सोभरिः काण्वः॥ देवता — मरुतः॥ छन्दः — ककुबुष्णिक्॥ स्वरः — ऋषभः॥

'मारुत भेषज'

मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः। यूयं सखायः सप्तयः॥ २३॥

(१) शरीर में प्राण ही सब रोगों का औषध हैं। ये ही सब रोगों का उच्छेद करनेवाले हैं। हे **सुदानवः**=उत्तमता से रोगों का दान (दाप् लवने) छेदन करनेवाले **मरुतः**=प्राणो! **नः**-हमारे लिये **मारुतस्य भेषजस्य**-इस प्राणसम्बन्धी औषध का **आवहत**-प्रापण करो। हमारे लिये इस मारुत औषध को प्राप्त कराओ। इस आपकी औषध ने ही तो सब रोगों को मारना है। (२) **यूयम्**=आप ही हमारे **सखायः**=सच्चे मित्र हैं, **सप्तयः**=शरीर की प्रत्येक नाड़ी में सर्पणशील हैं।

आपने ही सब मलों का उच्छेदन करके शोधन करना है।

भावार्थ—प्राण ही सब रोगों के मुख्य औषध हैं। प्राणशक्ति के अभाव हमें सब अन्य औषध व्यर्थ हैं। ये प्राण ही हमारे सखा हैं, शरीर में सर्वत्र संचारवाले हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'ज्ञान-नीरोगता-शक्ति-शत्रुराहित्य'

याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविम्।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः॥ २४॥

(१) हे प्राणो! आप **याभिः**=जिन **ऊतिभिः**=रक्षणों से **सिन्धुम्**-ज्ञान के समुद्रभूत आचार्य का **अवथ**=रक्षण करते हो (तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे)। **याभिः**=जिन रक्षणों से सब रोगकृमियों का **तूर्वथ**=हिंसन करते हो। **याभिः**=जिन रक्षणों से **क्रिविम्**=क्रियाशील पुरुष को **दशस्यथ**=सब शक्तियों को प्राप्त कराते हो (प्राणसाधना के द्वारा क्रियाशीलता का वर्धन होकर शक्ति की वृद्धि होती है) उन रक्षणों से **नः**=हमारे लिये **मयः**=कल्याण करें **भूत**=(भू प्राप्तौ, प्रापयत) प्राप्त कराओ। (२) हे प्राणो! आप **मयोभुवः**=सब कल्याणों के प्राप्त करानेवाले हो। और **शिवाभिः**=(उतिभिः) कल्याणकर रक्षणों के द्वारा **असचद्विषः**=(असक्तद्विषः) शत्रुओं को हमारे से पृथक् करनेवाले हो।

भावार्थ—प्राणसाधना से (क) ज्ञान की वृद्धि होती है, (ख) रोगरूप शत्रुओं का हिंसन होता है, (ग) क्रियाशीलता की वृद्धि होकर शक्ति की वृद्धि होती है, (घ) काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं का हमारे साथ सम्बन्ध नहीं रहता।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'सिन्धु, असिक्नी, समुद्र व पर्वतों' का स्वास्थ्य

यत्सिन्धौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः। यत्पर्वतेषु भेषजम्॥ २५॥

(१) **सिन्धौ**=रक्त-रुधिर की प्रवाहिका नाड़ियों के विषय में **यत्**=जो **भेषजम्**=औषध है, **असिक्न्याम्**=नीलरक्तवाहिनी नाड़ियों के विषय में **यत्**=जो (भेषजम्=) औषध है। **समुद्रेषु**=रक्त के सरोवर भूत हृदय-फुफ्फुस आदि के विषय में **यत्**=जो औषध है। और **यत्**=जो औषध **पर्वतेषु**=अस्थि पर्वरूप पर्वतों के विषय में है। वह सब औषध इस **सुबर्हिषः**=रोगों का खूब ही उद्बर्हण करनेवाले **मरुतः**=प्राणों का है ('मरुतः' षष्ठी लेनी है)। (२) 'सिन्धु, असिह्नी, समुद्र व पर्वतों' के दोषों को प्राण ही दूर कर पाते हैं। इनके लिये औषध इतने प्रभावजनक नहीं होते। प्राणसाधना के होने पर उभयविध नाड़ियों के, हृदय व फुष्फुस के तथा मेरुदण्ड आदि पर्वतों के दोष दूर हो जाते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना के होने पर नाड़ियां, फुफ्फुस व मेरुदण्ड आदि सब स्वस्थ रहते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

रोगशमन

विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः॥ २६॥

(१) हे प्राणो! आप **विश्वं पश्यन्तः**=हमारे सब अंगों का ध्यान करते हुए **तनूषु**=शरीरों

में **आविभृथ**-समन्तात् सब शक्तियों का धारण करो। **तेन**=सब शक्तियों के धारण के द्वारा **नः**-हमारे लिये **अधिवोचत**=आधिक्येन ज्ञान का उपदेश करो। सब शक्तियों के ठीक होने पर ज्ञानेन्द्रियाँ, मन व मस्तिष्क भी ठीक कार्य करेंगे और परिणामतः ज्ञानवृद्धि होगी ही। (२) हे **मरुतः**-प्राणो! **आतुरस्य**=व्याधि पीड़ित अंग के **रपः**-दोष का **क्षमा**-(क्षरन्तिः) शमन हो। और **नः**=हमारे **विह्रुतम्**=कुटिल हुए-हुए अंग को **पुनः**=फिर **इष्कर्त**=(निःशेषेण सम्पूर्ण कुरुत) सम्पूर्ण करनेवाले होवो।

भावार्थ-प्राणसाधना के होने पर प्राण शरीर के सब अंगों की शक्तियों को ठीक रखते हैं, हमारे ज्ञान का वर्धन करते हैं। रोग का शमन करते हैं। विकृत अंग को फिर से ठीक कर देते हैं।

अगले सूक्त में 'सोभरि काण्व' इन्द्र का स्तवन करते हैं-

२१. [एकविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'स्थूरं चित्रं' हवामहे

व॒यमु॑ त्वाम॑पूर्व्य स्थू॒रं न कच्चि॒द्भर॑न्तोऽव॒स्यवः॑। वाजे॑ चि॒त्रं ह॑वामहे॥ १॥

(१) हे **अपूर्व्य**-अद्भुत, अनुमय दिव्यगुणोंवाले प्रभो! **अवस्यवः**=रक्षण की कामनावाले **वयम्**-हम **उ**=निश्चय से **कच्चित्**=किसी **स्थूरं न**=दृढ़ आश्रय के समान **त्वाम्**-आपको **भरन्तः**= अपने में भरण करनेवाले होते हैं, आपका हम धारण करते हैं। आपका धारण ही हमारी शक्तियों व रक्षण का साधन बनता है। (२) **वाजे**=सब संग्रामों में **चित्रम्**=अद्भुत शक्ति-सम्पन्न आपको ही हम **हवामहे**=पुकारते हैं। आपके द्वारा ही शक्ति सम्पन्न होकर हम संग्रामों में विजयी बन पायेंगे।

भावार्थ-प्रभु ही इस संसार संघर्ष में हमारे दृढ़ आश्रय हैं। वे ही हमें संग्रामों में विजयी बनानेवाले हैं। उन अद्भुत शक्ति सम्पन्न प्रभु को हम पुकारते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'अवितारं' ववृमहे

उप॑ त्वा॒ कर्म॑न्नू॒तये॒ स नो॒ युवो॒ग्रश्च॑क्राम॒ यो धृ॒षत्।
त्वामिद्ध्य॑वि॒तारं॑ ववृ॒महे॒ सखा॑य इन्द्र सान॒सिम्॥ २॥

(१) हे प्रभो! **कर्मन्**=इन यज्ञादि कर्मों में **ऊतये**=रक्षण के लिये हम **त्वा उप**=आपके समीप प्राप्त होते हैं। **यः**=जो प्रभु **धृषत्**=शत्रुओं का धर्षण करते हैं, **सः**=वे **युवा**=बुराइयों को दूर करके अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले **उग्रः**=तेजस्वी प्रभु **नः**=हमें **चक्राम**=प्राप्त हों व उत्साहयुक्त करें। (२) हे **इन्द्र**-शत्रुओं का विद्रावण (पराभव) करनेवाले प्रभो! **अवितारम्**=रक्षक **त्वाम्**=आपको **इत् ही**-ही **ववृमहे**-हम वरते हैं। **सखायः**=सखा बनते हुए हम **सानसिम्**=सम्भजनीय आपको ही प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

भावार्थ-हम रक्षण के लिये यज्ञादि कर्मों में प्रभु को ही प्राप्त होते हैं। वे शत्रुधर्षक तेजस्वी प्रभु ही हमें उत्साहयुक्त करते हैं। रक्षक प्रभु का ही हम वरण करते हैं। मित्र बनकर उस सम्भजनीय प्रभु का ही उपासन करते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

अश्वपते-गोपते-उर्वरापते

आ याहीम इन्दवोऽश्वपते गोपत उर्वरापते। सोमं सोमपते पिब॥ ३॥

(१) प्रभो! **आयाहि**=आप हमें प्राप्त होइये। **इमे इन्दवः**=ये सोमकण हमारे शरीरों में उत्पन्न हुए-हुए हैं। हे **सोमपते**=सोम का रक्षण करनेवाले प्रभो! **सोमं पिब**=इस सोम का पान कीजिये। इस सोम का आपने ही तो रक्षण करना है। (२) हे **आश्वपते**=उत्तम कर्मेन्द्रियरूप अश्वों के रक्षक प्रभो! **उर्वरा**=नये-नये विचारों को सोचनेवाली उर्वरा बुद्धि के रक्षक प्रभो! आप ही सोमरक्षण द्वारा हमें उत्तम इन्द्रियों व बुद्धि को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हे प्रभो! आपने ही शरीर में सोम के उत्पादन की व्यवस्था की है। आप ही इसके रक्षण के द्वारा हमारे लिये उत्तम कर्मेन्द्रियों, उत्तम ज्ञानेन्द्रियों व उर्वरा बुद्धि को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

अबन्धवः बन्धुमन्तं (येमिम)

वयं हि त्वा बन्धुमन्तमबन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि विश्वेभिः सोमपीतये॥ ४॥

(१) **अबन्धवः**=अपने को विषय-वासनाओं में न बन्धने देनेवाले, **विप्रासः**=अपनी न्यूनताओं को दूर करके पूरण करनेवाले **वयम्**=हम **हि**=निश्चय से **बन्धुमन्तम्**=सारे संसार को अपने में बान्धनेवाले **त्वा**=आपको, हे **इन्द्र**=शत्रु विद्रावक प्रभो! **येमिम**=अपने साथ बाँधने का प्रयत्न करते हैं। हम आपको अपना बन्धु बनाने का प्रयत्न करते हैं। (२) हे **वृषभ**=शक्तिशालिन् प्रभो! **या**=जो **ते**=आपके **धामानि**=तेज हैं, **तेभिः विश्वेभिः**=उन सब तेजों से आप **सोमपीतये**=हमारे सोम-रक्षण के लिये **आगहि**=आइये। आपके बन्धुत्व में सोम का रक्षण करते हुए हम भी शक्ति-सम्पन्न बन पायें।

भावार्थ—हम विषय-वासनाओं से अबद्ध बनकर उस सबको नियम में बाँधनेवाले प्रभु को अपने साथ बान्धते हैं। प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न बनते हैं और सोम का रक्षण कर पाते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—ककुबुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

सोम में आसीन होना

सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे। अभि त्वामिन्द्र नोनुमः॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **ते**=आपके इस **मधौ**=सब ओषधियों के सारभूत सोम में **सीदन्तः**=स्थित होते हुए, अर्थात् भोजन के रूप में ग्रहण किये हुए द्रव्यों के अन्तिम सार इस सोम (वीर्य) को सुरक्षित करते हुए, हम **त्वाम्**=आपको **अभिनोनुमः**=प्रातः-सायं खूब ही स्तुत करते हैं। आपका स्तवन ही तो हमें वासनाओं से बचाकर सोमरक्षण के योग्य बनाता है। (२) उस सोम में हम स्थित होते हैं, जो **गोश्रीते**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा परिपक्व होता है, अर्थात् स्वाध्याय के द्वारा शरीर में सुरक्षित रहकर जीवन का ठीक से परिपाक करनेवाला होता है। **मदिरे**=जो सोम मद व उल्लास का जनक है तथा **विवक्षणे**=हमारी विशिष्ट उन्नति का कारण बनता है (वक्ष् To grow)। इस सोम में हम इस प्रकार स्थित हों, **यथा**=जैसे **वयः**=पक्षी वृक्ष पर स्थित होते हैं। यह सोम ही वस्तुतः हमारे जीवन का आधार है।

भावार्थ—हे प्रभो! हम शरीर में उत्पन्न सोम को अपने जीवन का आधार बनाते हैं। इसके रक्षण के उद्देश्य से आपका स्तवन करते हैं, जिससे हम विनाशक वासनाओं से बचे रहें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

स्तवन द्वारा दीप्ति की प्राप्ति

अच्छा च त्वैना नमसा वदामसि किं मुहुश्चिद्वि दीधयः।
सन्ति कामासो हरिवो ददिष्ट्वं स्मो वयं सन्ति नो धियः॥ ६॥

(१) हे प्रभो! **त्वा**=आपके **अच्छ**=प्रति **एना नमसा**-इस नमन के द्वारा **वदामसि**-स्तुति-वचनों का उच्चारण करते हैं **च**=और **मुहुः चित्**-फिर भी आप **किं विदीधयः**-कुछ अद्भुत ही प्रकार से हमारे जीवनों में दीप्त करते हो। हम आपका स्तवन करते हैं, आप हमें दीप्त जीवनवाला बनाते हो। (२) हे **हरिवः**-प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **कामासः सन्ति**-हमारी नाना प्रकार की कामनायें हैं और **त्वं ददिः**-आप सदा देनेवाले हैं, देना आपका स्वभाव ही है। इसलिए **वयं स्मः**-हम आपके सान्निध्य में हैं और **नः धियः सन्ति**-हमारी बुद्धियाँ हैं। आपकी समीपता से दूर होने पर ही बुद्धि का भ्रंश हुआ करता है। आपके समीप रहते हुए हम प्रशस्त बुद्धिवाले ही बने रहें।

भावार्थ—हम नम्रता से प्रभु का स्तवन करते हैं, प्रभु हमारे जीवनों को दीप्त बनाते हैं। प्रभु ही हमारी सब कामनाओं को पूर्ण करते हैं। हम प्रभु के समीप रहते हैं, प्रभु हमें बुद्धि प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—ककुबुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

नवीन जीवन

नूत्ना इदिन्द्र ते वयमूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः। विद्मा पुरा परीणसः॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वयम्**-हम **ते**=आपके **ऊती**=रक्षण के द्वारा **नूत्नाः इत्**-निश्चय से एकदम नवीन जीवनवाले ही **अभूम**=हो गये हैं। आपके रक्षण में सब वासनाओं से बचकर हम अपने जीवन को पवित्र व उज्ज्वल बना पाये हैं। (२) हे **अद्रिवः**=आदरणीय अथवा वज्रहस्त प्रभो! **पुरा**-पहले हम **परीणसः**-सर्वत्र व्याप्त महान् **ते** आपके विषय में **नहि नू**-नहीं ही **विद्म**=जानते थे। आज आपके रक्षण इस जीवन के अद्भुत परिवर्तन से हम आपकी महिमा का कुछ आभास पा सके हैं।

भावार्थ—प्रभु के रक्षण से जीवन में एक नवीन पवित्रता व उज्ज्वलता आ जाती है। यह हमें प्रभु की महिमा का कुछ आभास कराती है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

प्रभु का 'सखित्वं-भोज्यम्'

विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्य१मा ते ता वज्रिन्नीमहे।
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति॥ ८॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **ते सखित्वम्**=आपकी मित्रता को **उत**=तथा **भोज्यम्**=पालन के कारणभूत धन को **विद्म**=हम जानते हैं। हे **वज्रिन्**-वज्रहस्त प्रभो! हम **ता**=उन सखित्व और धन को **आ ईमहे**-सर्वथा याचित करते हैं। आपके सखित्व और और धन

को प्राप्त करके ही हम जीवनयात्रा में सफलता से आगे बढ़ पायेंगे। (२) **उत**=और हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! हे **सुशिप्र**=शोभन शिरस्त्राणवाले प्रभो! ज्ञान के द्वारा मस्तिष्क का रक्षण करनेवाले प्रभो! आप **उ**=निश्चय से **समस्मिन्**=सब **गोमति वाजे**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले बल में **नः**=हमें **आशिशीहि**=समन्तात् तीक्ष्ण कीजिये। हमें प्रशस्त इन्द्रियोंवाले बल को प्राप्त कराइये।

भावार्थ-हम प्रभु की मित्रता व पालक धन को प्राप्त करें। प्रभु हमें प्रशस्त इन्द्रियोंवाले बल को दें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—ककुबुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

सब प्रशस्त वसुओं के प्रापक प्रभु

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे। सखाय इन्द्रमूतये॥ ९॥

(१) **यः**=जो प्रभु **नः**=हमारे लिये **इदं इदम्**=ये और ये सब दर्शनीयतया विद्यमान **वस्यः**=प्रशस्त वसुओं को **पुरा**=पहले **प्र आनिनाय**=प्रकर्षेण प्राप्त कराते हैं, **तम्**=उस **वः**=तुम्हारे प्रभु को **उ**=ही **स्तुषे**=स्तुत करता हूँ। (२) हे **सखायः**=मित्रो! मैं **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **ऊतये**=रक्षण के लिये स्तुत करता हूँ। ये प्रभु ही सब वसुओं को प्राप्त कराके हमारा रक्षण करते हैं।

भावार्थ-प्रभु ही हमारे लिये सब प्रशस्त वसुओं को प्राप्त कराते हैं। इन प्रभु का ही मैं स्तवन करता हूँ। यह स्तवन ही मेरे रक्षण का साधन हो जाता है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराट्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

सच्चा स्तोता=सदा प्रसन्न

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम्॥ १०॥

(१) **हर्यश्वम्**=सब अज्ञानों व पापों का हरण करनेवाले (हरि) इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले, **सत्पतिम्**=श्रेष्ठ कर्मों के रक्षक, **चर्षणीसहम्**=शत्रुभूत मनुष्यों का पराभव करनेवाले प्रभु को **सः**=वह **हि**=ही (स्तुषे) **स्म**=स्तुत करता है ('स्तुषे' क्रिया गत मन्त्र से अनुवृत्त है) **यः**=जो **अमन्दत**=सदा प्रसन्न रहता है। प्रभु जिस भी स्थिति में रखें, उसी स्थिति में प्रसन्न रहना ही प्रभु का सच्चा स्तोता बनना है। (२) **सः मघवा**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु ही **तु**=तो **नः स्तोतृभ्यः**=हम स्तोताओं के लिये **शतम्**=शतवर्षपर्यन्त सुचारूरूपेण कार्य करनेवाले **गव्यम्**=ज्ञानेन्द्रिय समूह को तथा **अश्वथम्**=कर्मेन्द्रिय समूह को **आवयति**=(प्रापयति) प्राप्त कराते हैं। इन इन्द्रियों के द्वारा हमारा जीवन बड़ा सुन्दर बना रहता है, इन्हीं की ठीक स्थिति व क्रिया पर सम्पूर्ण सुख निर्भर है (सु+ख)।

भावार्थ-'हम सदा प्रसन्न रहें'। यही वस्तुतः प्रभु का सच्चा स्तवन है। प्रभु हमारे लिये सौ वर्ष तक चलनेवाले इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—ककुबुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्रभु की मैत्री व सज्जन संग

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि। संस्थे जनस्य गोमतः॥ ११॥

(१) हे **वृषभ**-शक्तिशालिन् प्रभो! **त्वया युजा**=तुझ साथी के साथ **वयम्** हम **हस्वित्**=निश्चय से **श्वसन्तम्**-हमारे सामने फुँकार मारते हुए 'काम-क्रोध' आदि शत्रुओं को **प्रति ब्रुवीमहि**-प्रत्याहूत करते हैं। ललकारते हुए शत्रुओं की ललकार को स्वीकार करते हैं। आप को साथी पाकर हम भयङ्कर से भयङ्कर शत्रु का सामना कर पाते हैं। (२) इस जीवन में **गोमतः**-प्रशस्त इन्द्रियोंवाले **जनस्य**-व्यक्ति के **संस्थे**-समीप संस्थान में हम इन शत्रुओं को आहूत करते हैं। इन सज्जनों का संग हमें काम-क्रोध आदि को जीतने के लिये सतत प्रेरणा प्राप्त कराता है।

भावार्थ-प्रभु की मित्रता में व सज्जनों के संग में हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं का पराभव करनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

कारिणः-दूढ्यः (जयेम)

जयेम कारे पुरुहूत कारिणोऽभि तिष्ठेम दूढ्यः।
नृभिर्वृत्रं हन्याम शूशुयाम चावेरिन्द्र प्र णो धियः॥ १२॥

(१) हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जाने योग्य प्रभो! हम आपकी सहायता से **कारिणः**-(कृ हिंसायाम्) हमारा हिंसन करनेवाले 'काम-क्रोध-लोभ' आदि शत्रुओं को **कारे**-संग्राम में **जयेम**-जीतें। तथा **दूढ्यः**-दुर्बुद्धियों को भी **अभितिष्ठेम**-पराजित करनेवाले हों। (२) **नृभिः**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणों के द्वारा **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को **हन्याम**=नष्ट करें। **च**=और **शूशुयाम**-अपनी शक्तियों का वर्धन करें। हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **नः धियः**=हमारी बुद्धियों को **प्र अवेः**=प्रकर्षेण रक्षित करिये। क्रम यही है-(क) वासना-विनाश, (ख) शक्तिवर्धन, (ग) तथा बुद्धियों का विकास।

भावार्थ-हम प्रभु की उपासना से हिंसा करनेवाले काम-क्रोध-लोभ को तथा दुर्बुद्धियों को दूर कर पायें। वासना-विनाश के द्वारा हमारी शक्तियों का वर्धन हो तथा हम बुद्धि को सुरक्षित कर पायें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

युधा इत् आपित्वं इच्छसे

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि। युधेदापित्वमिच्छसे॥ १३॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **त्वम्**=आप **अभ्रातृव्यः**=शत्रुरहित **असि**=हैं। तथा **जनुषा**=पूर्णरूप से शक्तियों के प्रादुर्भाव के द्वारा **सनात्**=सदा से ही **अना**=अनेतृक व **अनापिः**=अबन्धु **असि**-हैं। आप सबके नेता हैं, आपका कोई और नेता नहीं। आपके समान शक्तियोंवाला कोई और नहीं, सो समानता के अभाव में आपका कोई बन्धु भी नहीं। (२) आप उपासकों के मित्र अवश्य होते हैं। परन्तु **युधा**-युद्ध के द्वारा **इत्**-ही **आपित्वम्**=मित्रभाव को **इच्छसे**=चाहते हैं। अर्थात् जब एक व्यक्ति 'काम-क्रोध-लोभ' आदि से युद्ध करता है, इन्हें जीतने का प्रयत्न करता है, तभी प्रभु इसके मित्र होते हैं। प्रभु जितनी पूर्णता कठिन है, परन्तु उस पूर्णता की ओर चलनेवाला ही प्रभु की मित्रता का पात्र होता है।

भावार्थ-प्रभु शत्रुरहित हैं। प्रभु का कोई नेता नहीं, वे सब के नेता हैं। समानता के द्वारा कोई प्रभु का बन्धु नहीं, प्रभु की बराबरी का नहीं। जो भी काम-क्रोध आदि से संघर्ष करता है वही प्रभु का मित्र बन पाता है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—पादनिचृत्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

सम्पत्ति विस्मारक है, विपत्ति स्मारक

नकीं रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे॥ १४॥

(१) हे प्रभो! आप **रेवन्तम्**=धनवान् को, यज्ञ आदि में धन का विनियोग न करनेवाले पुरुष को **सख्याय**=मित्रता के लिये **नकिः विन्दसे**=नहीं प्राप्त करते। ऐसे व्यक्ति के आप कभी मित्र नहीं होते। **ते**=वे **सुराश्वः**=(सुर ऐश्वर्ये) ऐश्वर्य से फूलनेवाले लोग **पीयन्ति**=अध्वर से विपरीत हिंसात्मक कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। खूब अभिमान में फूले हुए ये लोग प्रभु को भूल जाते हैं। (२) **यदा**=जब आप **नदनुं कृणोषि**=गर्जना करते हैं, अर्थात् जब जरा भूकम्प-सा आता है तो सब सम्पत्ति हिलती-सी प्रतीत होती है, तो आप **समूहसि**=(change, modify) उनके जीवन में परिर्वतन लाते हैं। **श्रात् इत्**=उस समय ही **पिता इव हूयसे**=पिता के समान आप पुकारे जाते हैं। वे धनी व्याकुलता के होने पर थोड़े परिवर्तित जीवनवाले होते हैं और प्रभु की ओर झुकाववाले हो जाते हैं।

भावार्थ–प्रभु धनी के मित्र नहीं होते। ये धनी तो धन के मद में फूले हुए हिंसात्मक कर्मों में प्रवृत्त रहते हैं। जब कभी सम्पत्ति विनष्ट होने लगती है, तो ये व्याकुल होकर प्रभु की ओर झुकते हैं और पिता की तरह प्रभु को पुकारते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

अमाजुरः-मूरासः

मा ते अमाजुरो यथा मूरास इन्द्र सख्ये त्वावतः। नि षदाम सचा सुते॥ १५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! हम **ते**=वे **अमाजुरः**=घर में ही जीर्ण हो जानेवाले **मा**=न हों **यथा**=जैसे **मूरासः**=सामान्यतः मूढ मनुष्य होते हैं। जीवन भर गृहस्थ के चक्कर में ही न पड़े रहें। अर्थात् पुत्रों के पालन व पोषण से निवृत्त होकर, सन्तान के सन्तान हो जाने पर निवृत्त हो जायें। (२) हमारी कामना तो यह है कि हम **त्वावतः**=आप जैसे की **सख्ये**=मित्रता में **निषदाम**=आसीन हों। आपकी उपासना करनेवाले बनें। **सुते**=इस उत्पन्न जगत् में **सचा**=सदा आपके साथ मिलकर चलनेवाले हों। गृहस्थ से ऊपर उठकर वनस्थ हो सदा स्वाध्याय आदि में तत्पर रहकर आपके उपासक बनें।

भावार्थ–हम घर में ही जीर्ण हो जानेवाले मूढ़ न बनें। पुत्रों के पालन के बाद वनस्थ होकर प्रभु की मित्रता में आसीन होने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृत्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

किसी ओर से माँगें

मा ते गोदत्र निरराम राधस इन्द्र मा ते गृहामहि।
दृळ्हा चिदर्यः प्र मृशाभ्या भर न ते दामान आदभे॥ १६॥

(१) हे **गोदत्र**=सब ज्ञान की वाणियों व इन्द्रियों को देनेवाले प्रभो! हम **ते राधसः**=आपके ऐश्वर्य से **मामत निरराम**=(निर्गमाम) पृथक् हों, सदा आपसे ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाले हों। हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते**=तेरे होते हुए हम **मा गृहामहि**=औरों से लेनेवाले न हों। सदा

देनेवाले बनें, लेनेवाले नहीं। (२) **अर्यः**=स्वामी होते हुए आप **चित्** निश्चय से **दृढा**-स्थिर ऐश्वर्यों को **प्रमृश**-हमारे लिये सोचिये। हमें ऐसा ज्ञान दीजिये कि हम स्थिर ऐश्वर्यों को प्राप्त करनेवाले हों। **अभि आभर**=हमें इन ऐश्वर्यो से भर दीजिये। **ते**=आपकी **दामानः**=दान क्रियायें **न आदभे**-कभी हिंसित नहीं होती। आप से प्राप्त धनों को हम भी देनेवाले बनें।

भावार्थ-हमें सदा प्रभु के अनुग्रह से धन प्राप्त हो, हम कभी औरों से माँगें नहीं। हमारे धन स्थिर हों। प्रभु के दान के हम सदा पात्र बने रहें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—चित्रस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

इन्द्रः-सरस्वती

इन्द्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु। त्वं वा चित्र दाशुषे॥ १७॥

(१) **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु '**वा घा इत्**'=ही निश्चय से **इयत् मघम्**=इतने धन को **ददिः**=देनेवाला होता है। **वा**=अथवा **सरस्वती**=यह ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता **सुभगा**-हमारे लिये उत्तम ऐश्वर्यों का कारण बनती है। प्रभु की उपासना करते हुए जब हम ज्ञान के उपासक बनते हैं, तो हम ऐश्वर्यों को प्राप्त करनेवाले बनते हैं। (२) हे **चित्र**=(चित्) ज्ञान के देनेवाले प्रभो! **त्वम्**-आप **वा ही दाशुषे**-इस आत्मसमर्पण करनेवाले मनुष्य के लिये **वसु**=निवास के लिये आवश्यक उत्तम धनों के **ददिः**=देनेवाले हैं।

भावार्थ-हम प्रभु का उपासन करें, स्वाध्याय में प्रवृत्त हों। प्रभु हमारे लिये सब आवश्यक धनों को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—चित्रस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—निचृत्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

राजा-राजकाः

चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु।
पर्जन्यइव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत्॥ १८॥

(१) **चित्रः**-यह ज्ञान के देनेवाला (चित्-र) प्रभु **इत्**-ही **राजा**-सब धनों का स्वामी है। **अन्यके**=इस प्रभु से अतिरिक्त **यके**=जो भी स्वामी हैं वे **सरस्वतीं अनु**-अपने-अपने ज्ञान के अनुपात में **राजकाः**=छोटे-छोटे राजा ही हैं। प्रभु की तुलना में मनुष्य का स्वामित्व क्या? यद्यपि मनुष्यों में अपने ज्ञान के अनुपात में कुछ 'राजत्व' होता है, परन्तु प्रभु की तुलना में वह राजत्व अत्यन्त तुच्छ होता है। (२) ये प्रभु तो **सहस्रं अयुता**=हजारों व लाखों को **ददत्**=देते हुए इस प्रकार मनुष्य को धनों से आच्छादित कर देते हैं, **इव**=जैसे **पर्जन्यः**-बादल **वृष्ट्या**=वृष्टि से **ततनत् हि**=सम्पूर्ण भूमि को फैला देता है। वृष्टि के होने पर सर्वत्र भूमि पर पानी ही पानी दृष्टिगोचर होने लगता है, इसी प्रकार प्रभु धन की वर्षा करते हैं।

भावार्थ-प्रभु ही राजा हैं और तो 'राजक' ही हैं (छोटे छोटे राजा)। प्रभु हमें धनों से इस प्रकार आच्छादित कर देते हैं, जैसे मेघ वृष्टि से भूमि को।

अगले सूक्त में 'सोभरि' 'अश्विनौ'-प्राणापान का स्तवन करते हैं-

२२. [द्वाविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सुहवा रुद्रवर्तनी (अश्विना)

ओ त्यमह्व आ रथमद्या दंसिष्ठमूतये। यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः॥ १॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **अद्य**=आज **त्यम्**=उस **आदंसिष्ठम्**=अत्यन्त दर्शनीय व उत्तम कर्मोंवाले **रथम्**=शरीररूप रथ को **उ**=ही **आ अह्वे**=सर्वथा पुकारता हूँ, **यम्**=जिस रथ पर आप **सूर्यायै**=सूर्य के लिये **आतस्थथुः**=स्थित होते हो। मुझे भी ऐसा शरीर-रथ मिले, जिसके द्वारा मैं शत्रुओं का संहार करता हुआ ज्ञान वृद्धि से ब्रह्म को प्राप्त होनेवाला बनूँ। (२) हे प्राणापानो! आप **सुहवा**-शोभनवालों का आह्वान करनेवाले हों, सब शुभों को शरीर में प्राप्त कराते हो। **रुद्रवर्तनी**-(रुत्+द्र+वर्तनि) आपका मार्ग सब रोगों का द्रावण करनेवाला है। सब रोगों को दूर भगाते हुए आप **ऊतये**=रक्षण के लिये होते हो।

भावार्थ-प्राणसाधना के द्वारा यह शरीर-रथ दर्शनीय व उत्तम कर्मोंवाला बनता है। प्राणापान इस शरीर में शोभनता का आह्वान करते हैं, रोगों को दूर करते हैं तथा सूर्यसम ज्ञान-ज्योति को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराट् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

उत्तम शरीर-रथ

पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम्।
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसम्॥ २॥

(१) प्राणापान के उस शरीर-रथ को पुकारता हूँ (अह्वे) जो **पूर्वापुषम्**=सर्वप्रथम (पूर्व) पोषणवाला है। **सुहवम्**=शोभन चीजों के आह्वानवाला है। **पुरुस्पृहम्**=बहुतों से स्पृहणीय है। **भुज्युम्**=उत्तम पालनवाला है **वाजेषु पूर्व्यम्**=सब शक्तियों में सर्वप्रथम स्थान में स्थित होनेवाला है, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ शक्ति-सम्पन्न है। (२) उस शरीर-रथ को मैं पुकारता हूँ जो **रचनावन्तम्**=उत्तम भजनवाला है अथवा उत्तम प्रेमवाला है तथा **सुमतिभिः**-कल्याणी मतियों के द्वारा **विद्वेषसम्**=द्वेषशून्य है तथा **अनेहसम्**=सब प्रकार के पापों से रहित है। हे **सोभरे**=अपना उत्तम भरण करनेवाले ऋषे! तू ऐसे ही शरीर-रथ का स्तवन कर व ऐसे ही शरीर-रथ को प्राप्त करने के लिये यत्नशील हो।

भावार्थ-प्राणसाधना के द्वारा हमारा यह शरीर-रथ 'पुष्ट, शक्तिशाली, प्रभु-भजन व प्रेमवाला, सुमति सम्पन्न, द्वेषशून्य व निष्पाप' बने।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

प्रभु-नमन व यज्ञशीलता

इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम्॥ ३॥

(१) **इह**=इस जीवन में हम **त्या**=उन **पुरु-भू-तमा**=अतिशयेन बहुत भी शत्रुओं का पराभव करनेवाले **देवा**=जीवन को प्रकाशमय बनानेवाले **अश्विना**=प्राणापानों को **नमोभिः**=प्रभु के प्रति नमनों के द्वारा **अर्वाचीना**=हमारे अभिमुख प्राप्त होनेवाला **करामहे**=करते हैं। ये प्राणापान ही **स्ववसे**=हमारे उत्तम रक्षण के लिये होते हैं। प्रभु का आराधन हमारी प्राणशक्ति के वर्धन में सहायक होता है। (२) ये प्राणापान **दाशुषः**=दाश्वान के, यज्ञशील पुरुष के **गृहम्**=शरीररूप गृह को **गन्तारा**=प्राप्त होनेवाले होते हैं। यज्ञशीलता भी प्राणापान की शक्ति की वृद्धि में सहायक है।

भावार्थ-हम प्रभु-नमन व यज्ञशीलता के द्वारा प्राणापान की शक्ति का वर्धन करें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वःञ्ज देवता—अश्विनौञ्ज छन्दः—सतः पं-ःञ्ज स्वरः—पञ्चमःञ्ज

एक चक्र मस्तिष्क (द्योलोक) की ओर तो दूसरा शरीर (पृथिवी) की ओर

युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु॥ ४॥

(१) हे अश्विनी देवो, प्राणापानो! **युवोः**=आपके **रथस्य**=इस शरीर-रथ का **चक्रम्**=एक चक्र तो **परि ईयते**=(द्यां) सुदूर मस्तिष्करूप द्युलोक में गतिवाला होता है। अर्थात् आप अपनी गति के द्वारा मस्तिष्करूप द्युलोक को बड़ा सुन्दर बनाते हो। **वाम्**=आपका **अन्यत्**=दूसरा चक्र **ईर्मा**=भुजाओं को **इषण्यति**=(गच्छति) जाता है। अर्थात् आप की दूसरी गति इस शरीर में भुजाओं की शक्ति का वर्धन करती है। प्राणसाधना से मस्तिष्क का ठीक रूप में विकास होकर प्रकाश की वृद्धि होती है और भुजाओं की शक्ति बढ़ती है। प्राणायाम से ज्ञान व बल दोनों का वर्धन होता है। (२) हे प्राणापानो! **शुभस्पती**=(शुभस्=उदक=रेतस्) आप शरीर में रेतःकण रूप जलों के रक्षक हो। और इस प्रकार **वाम्**=आपकी **सुमतिः**=कल्याणीमति रेतःकणों से प्रदीप्त हुई-हुई बुद्धि **अस्मान् अच्छा**=हमारी ओर इस प्रकार **आधावतु**=सर्वथा दौड़ती हुई प्राप्त हो, **इव**=जैसे **धेनुः**=नव प्रसूता गौ बछड़े की ओर आती है।

भावार्थ—प्राणसाधना से ज्ञान व बल का वर्धन होता है। प्राणसाधना से शरीर में सोम का रक्षण होकर सुमति की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वःञ्ज देवता—अश्विनौञ्ज छन्दः—निचृद्बृहतीञ्ज स्वरः—मध्यमःञ्ज

'त्रिबन्धुर-हिरण्याभीशु' रथ

रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना। परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतम्॥ ५॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **यः**=जो **वाम्**=आपका **रथः**=शरीररूप रथ **त्रिबन्धुरः**=तीनों 'शरीर, मन व बुद्धि' के सौन्दर्यवाला है तथा **हिरण्याभीशुः**=ज्योतिर्मय मनरूप लगामवाला है, वह **द्यावापृथिवी**=इस मस्तिष्करूप द्युलोक को तथा शरीररूप पृथिवी को **परिभूषति**=सर्वतः ज्ञान व शक्ति आदि से सुभूषित करता है। प्राणापान के द्वारा यह प्रभु से जीवनयात्रा की पूर्ति के लिये दिया गया रथ सुन्दर ही सुन्दर बन जाता है। शरीर, मन व बुद्धि का सौन्दर्य प्राणसाधना पर ही निर्भर करता है। (२) हे **नासत्या**=सब असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! यह रथ **श्रुतः**=बुद्धि के द्वारा खूब ही ज्ञान-सम्पन्न बना है। **तेन**=उस रथ से **आगतम्**=आप हमें प्राप्त होइये। प्राणसाधना से यह शरीर-रथ सुन्दरतम बनता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर में जहाँ किसी प्रकार का रोग नहीं रहता, मन सब मलों से रहित हो जाता है और बुद्धि सब कुण्ठाओं से ऊपर उठकर सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय का ग्रहण करती है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वःञ्ज देवता—अश्विनौञ्ज छन्दः—निचृत् पं-ःञ्ज स्वरः—पञ्चमःञ्ज

यव का उत्पादन

दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि॥ ६॥

(१) हे प्राणापानो! आप **मनवे**=विचारशील पुरुष के लिये **पूर्व्यम्**=सृष्टि के प्रारम्भ में दिये

गये, अथवा पालन व पूरण में उत्तम ज्ञान को **दशस्यन्ता**=देते हुए, **दिवि**=इस ज्ञान के प्रकाश के निमित्त **यवम्**=यव को, जौ को **वृकेण**=हल के द्वारा **कर्षथः**=उपजाते हो। 'प्राणापानौ व्रीहियवौ दिवस्पुत्रौ अमर्त्यौ' 'यवे ह प्राण आहितः अपानो व्रीहिराहितः' आदि मन्त्र भागों में प्राणापान का व्रीहि व यव के साथ सम्बन्ध स्पष्ट है। इन्हें दिवस्पुत्र कहा गया है। यहाँ यही बात 'दिव् के निमित्त यव की कृषि करने' के द्वारा कही गयी है। (२) **ता वाम्**=उन आपको हे **अश्विना**=प्राणापानो! **अद्य**=आज **प्रस्तुवीमहि**=हम स्तुत करते हैं। आप सब दोषों को दूर करने के द्वारा **सुमतिभिः**=कल्याणी मतियों को उत्पन्न करते हुए **शुभस्पती**=(शुभस्=उदक=रेतस्) शरीर में रेतःकणों के रक्षक होते हो। वस्तुतः यव का भोजन भी रेतःकणों के रक्षण में सहायक होता है।

भावार्थ—प्राणापान विचारशील पुरुष के लिये प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त कराते हैं। ये शरीर में शुभ विचारों की उत्पत्ति के द्वारा रेतःकणों को सुरक्षित करते हैं। प्राणसाधक के लिये यव-भोजन अनुकूल होता है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—पथ्याबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

ऋत का मार्ग व बल वृद्धि

उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः। येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः॥ ७॥

(१) हे **वाजिनीवसू**=(वाजिनी=अन्न) अन्न ही है धन जिनका अथवा शक्तिरूप धनवाले (वाजिनं) प्राणापानो! आप **ऋतस्य पथिभिः**=ऋत से मार्गों के हेतु से **नः**=हमारे **उप यातम्**=समीप प्राप्त होवो। प्राणसाधना के द्वारा दोषों का दहन होकर मनुष्य ऋत के मार्ग को अपनानेवाला बनता है। (२) उन ऋत के मार्गों के हेतु से आप हमें प्राप्त होवो **येभिः**=जिन के द्वारा **तृक्षिम्**=इस गतिशील पुरुष को **त्रासदस्यवम्**=गतिशीलता के कारण सब बुराइयाँ जिससे भयभीत होकर दूर रहती हैं, इस पुरुष को, हे **वृषणा**=शक्तिशाली प्राणापानो! आप **महे क्षत्राय**=महान् बल के लिये **जिन्वथः**=प्रीणित करते हो।

भावार्थ—प्राणसाधना से दोषों का दहन होकर मनुष्य ऋत के मार्ग पर चलता है। इस प्रकार ऋत के मार्ग पर चलने से उसके जीवन में महान् बल की वृद्धि होती है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

'वृषणवसू' (प्राणापान)

अयं वामद्रिभिः सुतः सोमो नरा वृषणवसू। आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे॥ ८॥

(१) हे **नरा**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले, **वृषणवसू**=शक्ति रूप धनोंवाले प्राणापानो! **अद्रिभिः**=उपासकों के द्वारा **वाम्**=आपके लिये **अयम्**=यह **सोमः**=सोम **सुतः**=उत्पन्न किया गया है। प्राणसाधना से सोम की शरीर में ऊर्ध्वगति होती है, और सुरक्षित सोम के द्वारा प्राणशक्ति का वर्धन होता है। (२) हे प्राणापानो! आप **सोमपीतये**=इस सोम के रक्षण के लिये **आयातम्**=आइये, आपने ही तो इस सोम की शरीर में ऊर्ध्वगति करनी है। **आपः दाशुषः**=दाश्वान् पुरुष के **गृहे**=घर में **पिबतम्**=इस सोम को पीनेवाले होइये। यह शरीर ही घर है। 'दाश्वान्' पुरुष वह है जिसका जीवन दानपूर्वक भोगवाला, अर्थात् यज्ञशील हो। यह पुरुष ही भोगवाद से ऊपर उठने के कारण सोम का रक्षण कर पाता है।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना करते हुए प्राणसाधना में प्रवृत्त होंगे और दानशील बने रहेंगे, तो भोग वृत्ति से ऊपर उठने के कारण सोम का शरीर में रक्षण कर पायेंगे।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

पीवरीः इषः (हृदय में प्रभु प्रेरणा का योग)

आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू। युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥ ९ ॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **हि**=निश्चय से **रथे आरुहतम्**=इस शरीरूप रथ पर आरूढ़ होइये। अर्थात् इस शरीर में प्राणापान की साधना निरन्तर चले, यह प्राणापान का ही रथ बन जाये। (२) हे **वृषण्वसू**=शक्तिरूप धनोंवाले प्राणापानो! आप इस शरीर में **हिरण्यये कोशे**=ज्योतिर्मय मनोमय कोश में **पीवरीः**=(पावयितृणि सा०) पवित्रता को उत्पन्न करनेवाली **इषः**=प्रेरणाओं को **युञ्जाथाम्**=जोड़नेवाले होइये। प्राणसाधना से पवित्र हुए-हुए हृदय में ही प्रभु-प्रेरणाओं के सुनने का सम्भव होता है।

भावार्थ—हम प्राणसाधना को नियम से करें। प्राणसाधना से पवित्रीभूत हृदय में प्रभु प्रेरणा का श्रवण होता है। ये प्रेरणायें हमारे जीवनों को और पवित्र बनाती हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—सतः पंक्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

भिषज्यतं यद् आतुरम्

याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषसम्।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम्॥ १० ॥

(१) **याभिः**=जिन रक्षणों के द्वारा **पक्थम्**=ज्ञानाग्नि में अपने को परिपक्व करनेवाले को आप **अवथः**=रक्षित करते हो। **याभिः**=जिन रक्षणों से **अध्रिगुम्**=अधृत गमनवाले, न्याय मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़नेवाले व्यक्ति का आप रक्षण करते हो। और **याभिः**=जिन रक्षणों से **बभ्रुम्**=भरण करनेवाले को पालन-पोषण करनेवाले को व **विजोषसम्**=विशिष्ट प्रीति से कर्त्तव्यों का सेवन करनेवाले को रक्षित करते हो। हे **अश्विना**=प्राणापानो! **ताभिः**=उन रक्षणों के साथ **नः**=हमें **मक्षू**=शीघ्र, **तूयम्**=त्वरा के साथ **आगतम्**=प्राप्त होवो। प्राणापान ही वस्तुतः हमें 'पक्थ-अध्रिगु-बभ्रु व विजोषस' बनाते हैं। (२) हे प्राणापानो! आप हमें प्राप्त होवो और **यद्**=जो भी हमारा अंग-प्रत्यंग **आतुरम्**=रुग्ण हो, उसे **भिषज्यतम्**=चिकित्सित करो। प्राणापान ही सर्वमहान् वैद्य हैं, ये सब रोगों को दूर करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से हम 'परिपक्व ज्ञानवाले, न्याय मार्ग पर आगे बढ़नेवाले, ठीक से भरण-पोषण करनेवाले व प्रीतिपूर्वक कर्त्तव्य का सेवन करनेवाले' बनते हैं। ये प्राणापान सब रुग्ण अंगों को नीरोग बनाते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

वयं गीर्भिः विपन्यवः

यदध्रिगावो अध्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे। वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥ ११ ॥

(१) **यद्**=जब **अध्रिगावः**=अधृतज्ञान की वाणियोंवाली, न रुकी हुई ज्ञान की वाणियोंवाले, नियमित रूप से स्वाध्याय में प्रवृत्त हम **अह्नः**=दिन के **इदा चित्**=इस समय **अध्रिगू**=अधृतगमनवाले, संग्राम में न रुकी हुई गतिवाले **अश्विना**=प्राणापानों को **हवामहे**=पुकारते हैं। अर्थात् स्वाध्याय आदि में विघातक शत्रुओं के काम-क्रोध-लोभ आदि के विजयार्थ हम प्राणसाधना में प्रवृत्त होते हैं। (२) इस प्रकार प्राणसाधना में प्रवृत्त हुए-हुए **वयम्**=हम **गीर्भिः**=इन ज्ञान वाणियों के द्वारा **विपन्यवः**=विशिष्ट रूप से प्रभु-स्तवन करनेवाले होते हैं। वस्तुतः प्रभु का सच्चा स्तवन यही है

कि हम ज्ञान की वाणियों का अध्ययन करें और उनके निर्देशानुसार अपना व्यवहार करें।

भावार्थ—हम नियमित रूप से स्वाध्यायशील हों। स्वाध्याय विरोधी शत्रुओं को प्राणसाधना द्वारा दूर करें। ज्ञान की वाणियों द्वारा ही प्रभु का स्तवन करें, इनके अनुसार अपना व्यवहार करें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृत्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'हवं (विश्वप्सुं विश्ववार्यम्)' आयातम्

ताभिरा यातं वृषणोप मे हवं विश्वप्सुं विश्ववार्यम्।
इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा याभिः क्रिविं वावृधुस्ताभिरा गतम्॥ १२॥

(१) हे **वृषणा**=शक्तिशाली प्राणापानो! आप **ताभिः**=उन रक्षणों के साथ **मे हवम्**=मेरी पुकार को सुनकर **उप आयातम्**=मुझे समीपता से प्राप्त होवो। यह पुकार (प्रार्थना) ही तो **विश्वप्सुम्**=सब सुन्दर रूपोंवाली व **विश्ववार्यम्**=सब वरणीय वस्तुओंवाली है। प्रार्थना से ही तो मैं सब अंग-प्रत्यंगों को सुरूप बना सकूँगा, यह प्रार्थना ही मेरे लिये सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त करानेवाली होगी। (२) **इषा**=प्रभु प्रेरणा के द्वारा **नरा**=आप हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले हो। इस प्रकार **मंहिष्ठा**=हमारे लिये सर्वमहान् दाता हो और **पुरुभूतमा**=अधिक से अधिक शत्रुओं का पराभव करनेवाले हो। हे प्राणापानो! **याभिः**=जिन रक्षणों से **क्रिविम्**=क्रियाशील व्यक्ति को **वावृधुः**=आप बढ़ाते हो **ताभिः**=उन रक्षणों से **आगतम्**=आप हमें प्राप्त होवो।

भावार्थ—मेरी प्रार्थना के साथ हे प्राणापानो! आप मुझे प्राप्त होवो। आप प्रार्थनाशील व क्रियाशील को प्राप्त होते ही हो।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्राणापान का स्तवन व इनके लिये याचना

ताविदा चिदहानां तावश्विना वन्दमान उप ब्रुवे। ता ऊ नमोभिरीमहे॥ १३॥

(१) **अहानाम्**=दिनों के **इदा चित्**=इस समय में **तौ अश्विना**=उन शत्रुओं के पराभव करनेवाले (पुरु भूतमा) प्राणापान को **उपब्रुवे**=वर्णित करता हूँ। **वन्दमानः**=प्रभु वन्दना करता हुआ **तौ**=उनसे ही याचना करता हूँ। (२) **उ**=निश्चय से **नमोभिः**=प्रभु के प्रति नमन के साथ **तौ**=उन प्राणापान को ही माँगता हूँ। प्रभु से यही याचना करता हूँ कि मेरी प्राणापान शक्ति सदा वृद्धि को प्राप्त हो। इन प्राणापान ने ही तो मेरे 'शरीर, मन व बुद्धि' को अनातुर बनाना है।

भावार्थ—हम प्राणापान के गुणों का स्तवन करें। वन्दन व नमन करते हुए प्रभु से प्राणापान की ही याचना करें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—भुरिक्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

शुभस्पती-रुद्रवर्तनी (अश्विना)

ताविद्दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन्रुद्रवर्तनी।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम्॥ १४॥

(१) **तौ इत्**=उन प्राणापान को ही **दोषा**=रात्रि में, **ता**=उनकी ही **उषसि**=उषा में याचना करता हूँ। **शुभस्पती**=रेतःकणरूप जलों के रक्षक **ता**=वे प्राणापान ही **यामन्**=इस जीवनमार्ग में **रुद्रवर्तनी**=रोगों के द्रावक मार्गवाले हैं, अर्थात् ये प्राणापान ही रोगों को दूर करनेवाले हैं। (२) हे **वाजिनीवसू**=शक्तिरूप धनवाले **रुद्रौ**=रोगद्रावक प्राणापानो! आप **नः**=हमें **रिपवे**=हमारा

विदारण करनेवाले **मर्ताय**=मृत्यु के कारणभूत काम, क्रोध व लोभ के लिये **मा परः अतिख्यतम्**-परित्यक्त न कर दीजिये, इनके हमें वशीभूत मत होने दीजिये।

भावार्थ-प्राणापान रेत:कणों के रक्षण के द्वारा रोगों के द्रावक हैं। ये हमें काम-क्रोध आदि का शिकार नहीं होने देते।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

सुग्म्याय सक्षणी (अश्विना)

आ सुग्म्याय सुग्म्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी। हुवे पितेव सोभरी॥ १५॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **सुग्म्याय**-सुख के लिये **सक्षणी**-सेवनीय हो (To be associated weth)। आप **वा**-निश्चय से **रथेन**-इस शरीर-रथ के द्वारा हमारे जीवनों में **सुगम्यम्**=सुख को **आ प्रातः**=सर्वथा पूरित करते हो (प्रा पूरणे)। (२) **पिता इव हुवे**-पुत्र से पिता की तरह आप मेरे से पुकारे जाते हो। **सोभरी**-आप हमारा उसी प्रकार उत्तम भरण करनेवाले हो, जैसे पिता पुत्र का भरण करता है।

भावार्थ-प्राणापान का आराधन सुख प्राप्ति के लिये आवश्यक है। आराधित हुए-हुए प्राणापान हमारे जीवन को सुखी बनाते हैं। ये हमारे से इसी प्रकार पुकारने योग्य हैं, जैसे पुत्रों से पिता।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृत् पं-ः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

वृषणा-मदच्युता (अश्विना)

मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुंगमाभिरूतिभिः।
आरात्ताच्चिद्भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा॥ १६॥

(१) हे प्राणापानो! आप **मनोजवसा**-मन के समान वेगवाले हो, मन के समान शक्तिशाली हो। **वृषणा**=हमारे शरीरों में शक्ति का सेचन करनेवाले हो। **मदच्युता**=अहंकाररूप शत्रु का विनाश करनेवाले हो, **पुरुभोजसा**-खूब ही पालन व पोषण करनेवाले हो। (२) आप **ऊतिभिः**=अपने रक्षणों के द्वारा **अस्मे अवसे**-हमारे रक्षण के लिये **आरात्तात् चित्**-समीप ही **भूतम्**=होइये। उन रक्षणों के साथ हमारे समीप होइये जो **मक्षुंगमाभिः**=शीघ्र गतिवाले हैं तथा **पूर्वीभिः**=हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं अथवा सर्वोत्कृष्ट हैं।

भावार्थ-प्राणापान अतिशयित शक्तिवाले हैं। ये हमें शक्ति-सम्पन्न बनाते हैं, परन्तु अहंकार वाला नहीं होने देते। इनके रक्षण हमें गतिशील व न्यूनताओं से रहित (पूर्वी) बनाते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

मधुपातमा नरा (अश्विना)

आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा। गोमद्दस्रा हिरण्यवत्॥ १७॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **नः**=हमारे लिये **अश्वावदत्**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाले (अश्नुवते कर्मसु) **वर्तिः**-शरीर गृह को **आ यासिष्टम्**=सर्वथा प्राप्त कराओ। आप **मधुपातमा**=शरीर में अतिशयेन सोम (मधु) का रक्षण करनेवाले हैं और इस प्रकार **नरा**-हमें उन्नतिपथ पर आगे और आगे ले चलनेवाले हैं। (२) हे **दस्रा**=सब दुःखों व दारिद्र्यों का उपक्षय करनेवाले प्राणापानो! आप हमारे लिये **गोमत्**=(गमयन्ति अर्थान्) प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाले तथा **हिरण्यवत्**=(हिरण्यं वै

ज्योति:) ज्योतिर्मय ज्ञान की ज्योतिवाले शरीर गृह को प्राप्त कराइये।

भावार्थ–प्राणसाधना से शरीर में सोम का रक्षण होकर सब प्रकार की उन्नति होती है। ये हमारे शरीर को 'उत्तम कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों व ज्ञान–ज्योति' वाला बनाते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः ॥ **देवता**—अश्विनौ ॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः ॥ **स्वरः**—पञ्चमः ॥

सुवीर्यम्-विश्वा वामानि

सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि॥ १८॥

(१) **अस्मिन्**=इस **वाम्**=आपके **आयाने**=आने पर हम **सुवीर्यम्**–उत्तम वीर्य का **धीमहिः**= धारण करें। जो **सुप्रावर्गम्**=सम्यक् शत्रुओं का वर्जन करनेवाला है। **सुष्ठु**=अच्छी प्रकार **वार्यम्**=वरने के योग्य है। रक्षस्विना **अनाधृष्टम्**=प्रबल राक्षसी भावों से भी न धर्षणीय है। (२) हे **वाजिनीवसू**=शक्तिरूप धनवाले प्राणापानो! हम आपके आने पर **विश्वाः**=सब **वामानि**=सुन्दर वस्तुओं को (आधीमहि)=सर्वथा धारण करनेवाले हों।

भावार्थ–प्राणसाधना के द्वारा हम उत्तम वीर्य (शक्ति) तथा सब सुन्दर वस्तुओं को धारण करनेवाले बनें।

यह सुवीर्य को धारण करनेवाला व्यक्ति अत्यन्त उत्कृष्ट इन्द्रियरूप अश्वोंवाला बनता है, सो 'वैयश्व' कहलाता है। सबके प्रति सह अनुभूति (sympathy) वाला होने से यह 'विश्वमनाः' नामवाला होता है। यह 'अग्नि' नाम से प्रभु का स्मरण करता हुआ कहता है कि–

२३. [त्रयोविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक् ॥ **स्वरः**—ऋषभः ॥

प्रतीव्यं ईडिष्व

ईळिष्वा हि प्रतीव्यं१ यजस्व जातवेदसम्। चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम्॥ १॥

(१) उस प्रभु का तू **ईडिष्व**=स्तवन कर, जो **हि**=निश्चय से **प्रतीव्यम्**=(प्रति+वी) काम–क्रोध आदि शत्रुओं के प्रति जानेवाले हैं, उन पर आक्रमण करनेवाले हैं। 'काम' स्मर है, या सदा सांसारिक विषयों के प्रति हमें उत्कण्ठित करता है। पर प्रभु 'स्मर–हर' हैं। इस काम–वासना का विनाश करनेवाले हैं। इन **जातवेदसम्**=सर्वज्ञ प्रभु का **यजस्व**=तू पूजन कर, इन प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाला बन। प्रभु के ज्ञान से ज्ञान–सम्पन्न बनकर तू ज्ञानाग्नि में वासनाओं का विध्वंस कर पायेगा। (२) वे प्रभु **चरिष्णुधूमम्**=गति के स्वभाववाले व सब दुर्भावों को कम्पित करके दूर करनेवाले हैं। गतिमयता ही वस्तुतः वासनाओं के आक्रमण से बचने का मार्ग है। इस 'चरिष्णु धूम' का यजन करता हुआ उपासक भी सदा क्रियाशील होता है, अतएव वासनाओं के आक्रमण से बचा रहता है। **अगृभीत शोचिषम्**=इस प्रभु की ज्ञानदीप्ति कभी भी किसी आवरण से गृभीत नहीं होती, अनावृत्त ज्योतिवाले वे प्रभु सदा ही दीप्त हैं। इनका उपासक भी अपनी ज्ञान–ज्योति को 'काम–वासना' रूप वृत्त से आवृत नहीं होने देता।

भावार्थ–हम प्रभु का उपासन इस रूप में करें कि वे प्रतीव्य हैं, हमारी वासनाओं पर आक्रमण करके उन्हें नष्ट करनेवाले हैं। **जातवेदसम्**=सर्वज्ञ हैं। चरिष्णुधूम हैं, स्वाभाविक क्रियावाले व वासनाओं को कम्पित करके दूर करनेवाले हैं। **आगृभीत शोचिम्**=अनावृत ज्ञान–

ज्योतिवाले हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'विश्वचर्षणि व विश्वमना' बनना

दामानं विश्वचर्षणेऽग्निं विश्वमनो गिरा। उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम्॥ २॥

(१) हे **विश्व-चर्षणे**-सर्वत्र प्रविष्ट, सर्वव्यापक प्रभु का दर्शन करनेवाले, **विश्वमनः**-व्यापक प्रभु में ही मन को लगानेवाले उपासक! उस **अग्निम्** अग्रेणी प्रभु को **गिरा**=इन ज्ञान की वाणियों से **स्तुषे**-स्तुत कर। प्रभु का स्तवन ही तेरी उन्नति का कारण बनेगा। (२) **उत**=और उस प्रभु का तू स्तवन कर जो **वि-स्पर्धसः**-विगत मात्सर्यवाले 'विश्वमना' पुरुषों के लिये **रथानाम्**-उत्तम शरीररूप रथों के **दामानम्**-देनेवाले हैं। इन उत्तम शरीर रथों द्वारा वे प्रभु ही हमें जीवन यात्रा की पूर्ति के लिये सक्षम बनाते हैं।

भावार्थ-उस प्रभु को देखनेवाले व तद्गत मनवाले बनकर हम प्रभु का स्तवन करें। हमारे लिये प्रभु उन उत्तम शरीररथों को प्राप्त कराते हैं, जिनके द्वारा हम जीवनयात्रा को अत्यन्त सुन्दरता से पूर्ण करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'खान-पान' का नियन्त्रण

येषामाबाध ऋग्मिय इषः पृक्षश्च निग्रभे। उपविदा वह्निर्विन्दते वसु॥ ३॥

(१) **येषाम्**-जिन उपासकों के ये प्रभु **आवाधः**-समन्तात् शत्रुओं का बाधन करनेवाले होते हैं, वे प्रभु **ऋग्मियः**-उन उपासकों द्वारा ऋचाओं से अर्चनीय होते हैं, स्तुति के योग्य होते हैं। ये प्रभु इन उपासकों के **इषः**=पेय द्रव्यों को **च**-तथा **पृक्षः**-(food) भोज्य द्रव्यों को **निग्रभे**-नियन्त्रित करते हैं। अर्थात् इनके खान-पान को बड़ा मर्यादित करते हैं। (२) ये **वह्निः**-सब आवश्यक द्रव्यों को प्राप्त करानेवाले प्रभु **उपविदा**-उपवेदन व ज्ञान के साथ **वसु**-धन को **विन्दते**-(वेदयति) प्राप्त कराते हैं। प्रभु धन देते हैं। धन के साथ धन के उपयोग के विषय में ज्ञान भी देते हैं।

भावार्थ-जो प्रभु का स्तवन करते हैं, प्रभु उन्हें मर्यादित खान-पानवाला बनाते हैं। और ज्ञान के साथ धन को भी प्राप्त कराते हैं। ताकि ये उपासक धन से जीवन यात्रा में आगे बढ़ पायें और ज्ञान के द्वारा धन की हानियों से बचे रहें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'तपुर्जम्भस्य-सुद्युत्-गणश्री'

उदस्य शोचिरस्थाद्दीदियुषो व्यजरम्। तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः॥ ४॥

(१) **अस्य**-गत मन्त्र में वर्णित **दीदियुषः**=ज्ञान-ज्योति से देदीप्यमान उपासक की **अजरम्**=न जीर्ण होनेवाली **शोचिः**-दीप्ति **वि उद् अस्थात्**-विशेषरूप से उत्थित होती है, यह उपासक 'स्वास्थ्य नैर्मल्य व बुद्धि की तीव्रता' के द्वारा जीवन में चमक उठता है। (२) उस उपासक की ज्योति चमक उठती है, जो **तपुर्जम्भस्य**-तपस्वी दंष्ट्रावाला है, अर्थात् जिसके दाँत खान-पान की क्रिया में अत्यन्त तपस्वी हैं। जो सात्त्विक भोजन को ही मात्रा में ग्रहण करता है। **सुद्युतः**=स्वाध्याय के द्वारा अत्यन्त द्युतिमय जीवनवाला बनता है। तथा **गणश्रियः**-जो शरीरस्थ सब गणों की शोभावाला है, जिसके पञ्चभूत, पञ्च प्राण, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण

पञ्चक (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, हृदय) सभी शोभा-सम्पन्न हैं।

भावार्थ-हम तपस्वी दाँतोंवाले, स्वाध्यायशील व सब शरीरस्थ इन्द्रिय आदि के गणों को श्री-सम्पन्न बनानेवाले हों। हम स्थिर ज्योति से चमक उठेंगे।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

सामर्थ्य व ज्ञानदीप्ति (कृपा-भासा)

उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा। अभिख्या भासा बृहता शुशुक्वनिः॥ ५॥

(१) हे **स्वध्वर**=उत्तम यज्ञात्मक कर्मों को करनेवाले तू **उ**=निश्चय से **उत्तिष्ठ**=उठ खड़ा हो, लेटा न रह। आलस्य को छोड़कर कर्मों में प्रवृत्त हो। **स्तवानः**=स्तुति करता हुआ तू **देव्या**=उस देदीप्यमान प्रभु के **कृपा**-सामर्थ्य से **शुशुक्वनिः**=चमकनेवाला हो। तुझे उस प्रभु की शक्ति प्राप्त हो। (२) न केवल शक्ति से, अपितु **बृहता**=वृद्धि की कारणभूत **अभिख्या**=सर्वतः प्रकाश को करनेवाली **भासा**=ज्ञानदीप्ति से तू दीप्त बन।

भावार्थ-हम आलस्य को परे फेंक कर यज्ञ आदि कर्मों में प्रवृत्त हों। प्रभु-स्तवन करते हुए प्रभु के सामर्थ्य व ज्ञान दीप्ति से दीप्त बनें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

दूतः-हव्यवाहनः

अग्ने याहि सुशस्तिभिर्हव्या जुह्वान आनुषक्। यथा दूतो बभूथ हव्यवाहनः॥ ६॥

(१) हे **अग्ने**-अग्रेणी प्रभो! आप **सुशस्तिभिः**=उत्तम ज्ञान के शंसनों के साथ **याहि**=हमें प्राप्त होइये, हम आपकी उपासना करें और हृदयस्थ आप से उत्तम प्रेरणात्मक ज्ञानों को प्राप्त करें। आप हमारे लिये **आनुषक्**=निरन्तर **हव्या जुह्वानः**=हव्य पदार्थों के देनेवाले हों। (२) हे प्रभो! आप ऐसा अनुग्रह करिये **यथा**=जिस से आप हमारे लिये **दूतः**=ज्ञान के सन्देश को देनेवाले व **हव्य वाहनः**=हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले हों।

भावार्थ-हम प्रभु के उपासक बनें। प्रभु हमारे लिये ज्ञान के सन्देश को प्राप्त करायेंगे और हव्य (पवित्र) पदार्थों के देनेवाले होंगे।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

उसी का शंसन, उसी का स्तवन

अग्निं वः पूर्व्यं हुवे होतारं चर्षणीनाम्। तमया वाचा गृणे तमु वः स्तुषे॥ ७॥

(१) मैं **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु को **वः पूर्व्यम्**=जो तुम मनुष्यों के पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम हैं, **हुवे**=पुकारता हूँ। उस प्रभु को पुकारता हूँ जो **चर्षणीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के लिये **होतारम्**=सब पदार्थों के देनेवाले हैं। प्रभु ही इनके सब यज्ञों को पूर्ण किया करते हैं। (२) **तम्**=उस प्रभु को मैं **अया वाचा**=इस वाणी से **गृणे**=शंसित करता हूँ, इन ज्ञान की वाणियों के द्वारा मैं प्रभु का ही शंसन करता हूँ। **तं उ**=उस प्रभु को ही **वः**=तुम्हारे लिये **स्तुषे**=स्तुत करता हूँ। घर में जब माता-पिता प्रभु का स्तवन करते हैं तो सन्तानों में भी प्रभु का कुछ विचार उत्पन्न होता है। यह स्तवन सन्तानों को भी प्रभु की ओर ले चलता है।

भावार्थ-हम प्रभु का ही शंसन करें, प्रभु का ही स्तवन करें। वे प्रभु ही हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं, व हमारे यज्ञों को सिद्ध करनेवाले हैं।

ऋषि·—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

यज्ञों द्वारा हृदय में अद्भुत क्रतु प्रभु का स्थापन

यज्ञेभिरद्भुतक्रतुं यं कृपा सूदयन्त इत्। मित्रं न जने सुधितमृतावनि॥ ८॥

(१) **अद्भुत क्रतुम्**-अनुपम (अपूर्व) शक्तिवाले **यम्**-जिस प्रभु को **यज्ञेभिः**-यज्ञों के द्वारा **कृपा**=सामर्थ्य प्राप्ति के हेतु से **सूदयन्ते इत्**=अपने अन्दर निश्चय से प्रेरित करते हैं। प्रभु की शक्ति अनन्त है। इन प्रभु को यज्ञों के द्वारा हम अपने हृदयों में देखनेवाले बनते हैं और परिणामतः प्रभु की शक्ति से अपने को शक्ति-सम्पन्न कर पाते हैं। (२) उस प्रभु को हम अपने अन्दर प्रेरित करते हैं, देखने का प्रयत्न करते हैं, जो **ऋतावनि जने**=यज्ञशील मनुष्यों में नियमित आचरणवाले मनुष्यों में **मित्रं न**-मित्र के समान **सुधितम्**-सम्यक् स्थापित होते हैं। हम जब यज्ञशील व नियमित जीवनवाले बनते हैं, तो प्रभु को हृदयस्थ मित्र के रूप में पाते हैं।

भावार्थ-यज्ञ प्रवृत्त मनुष्यों को प्रभु प्राप्त होते हैं। परिणामतः ये यज्ञशील व्यक्ति प्रभु की शक्ति से शक्ति सम्पन्न बनते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'यज्ञों-ज्ञान की वाणियों व नमन' के द्वारा प्रभु का उपासन

ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा। उपो एनं जुजुषुर्नमसस्पदे॥ ९॥

(१) **ऋतायवः**=यज्ञशील पुरुष **ऋतावानम्**-सब यज्ञों के रक्षक **यज्ञस्य साधनम्**=सब यज्ञों के सिद्ध करनेवाले प्रभु को **गिरा**=ज्ञान की वाणियों से **जुजुषुः**=प्रीतिपूर्वक सेवित करते हैं। (२) **एनं उ**=इस प्रभु को ही **नमसः पदे**-नमन के स्थान में, नम्रतापूर्वक ध्यान करने के स्थल में **उपजुजुषुः**=समीपता से उपासित करते हैं।

भावार्थ-यज्ञों के द्वारा, ज्ञान की वाणियों के द्वारा तथा ध्यान में नमन के द्वारा प्रभु का ही उपासन होता है। कर्मकाण्ड (ऋतायवः) ज्ञानकाण्ड (गिरा) उपासना काण्ड (नमसस्पदे) ये सब उपासना ही हो जाते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

अंगिरस्तम-यशस्तम

अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः। होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः॥ १०॥

(१) **नः**=हमारे **संयतः**=संयम पूर्वक किये गये, दीक्षा को ग्रहण कर किये गये **यज्ञासः**-यज्ञ **अंगिरस्तम**=उस महान् अंगिरा की **अच्छा**-ओर उस अंग-प्रत्यंग में रस का संचार करनेवाले प्रभु की ओर **यन्तु**=जानेवाले हों। ये यज्ञ हमें प्रभु को प्राप्त करानेवाले हों। (२) उस प्रभु को प्राप्त करानेवाले हों, **यः**=जो **विक्षु**-सब प्रजाओं में स्थित हुए-हुए **होता अस्ति**-सब यज्ञों के करनेवाले हैं तथा **अयशस्तमः**=चारों ओर यशस्वितम हैं, सर्वत्र जिनकी महिमा फैली हुई है। सब उत्तम कर्म उस प्रभु की प्रेरणा व शक्ति से ही तो हो रहे हैं।

भावार्थ-हमें सब यज्ञ प्रभु की ओर ले चलनेवाले हों। इन यज्ञों को वस्तुतः प्रभु ही तो कर रहे होते हैं। वे प्रभु अंगिरस्तम हैं, यशस्तम हैं। हमें भी वे ऐसा ही बनायेंगे।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

ज्ञान-शक्ति

अग्ने तव त्ये अजरेन्धानासो बृहद्भाः। अश्वाइव वृषणस्तविषीयवः॥ ११॥

(१) हे **अजर**=कभी जीर्ण न होनेवाले, सदा वृद्ध **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **तव**=आपके **त्ये**=वे उपासक **इन्धानासः**=अपने अन्दर ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाले होते हैं। परिणामतः **बृहद्भाः**=अत्यन्त बढ़ी हुई ज्ञान ज्योतिवाले होते हैं। (२) ये आपके उपासक **अश्वाः इव**=घोड़े के समान **वृषणः**=शक्तिशाली होते हैं और **तविषीयवः**=(बलं आचरन्तः) सबलता से सब कर्मों को करनेवाले होते हैं। इनके कर्म निर्बल नहीं होते, वीर्यवत्तर होते हैं।

भावार्थ–प्रभु के उपासक ज्ञानाग्नि को दीप्त करके बढ़ी हुई ज्ञान-ज्योतिवाले होते हैं, घोड़ों की तरह सबल होते हैं, इनके सब कर्म भी सबल होते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—पादनिचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

सुवीर्यं 'रयिम्'

स त्वं न ऊर्जां पते रयिं रास्व सुवीर्यम्। प्राव नस्तोके तनये समत्स्वा॥ १२॥

(१) हे **ऊर्जांपते**=बलों व प्राणशक्तियों के स्वामिन्! **सः त्वम्**=वे आप **नः**=हमारे लिये **सुवीर्यम्**=उत्तम वीर्य (पराक्रम) से युक्त **रयिम्**–ऐश्वर्य को **नः**=हमारे लिये **रास्व**=दीजिये। (२) इस प्रकार शक्तियुक्त धन को देकर आप **नः**=हमें **तोके**=सन्तानों) के विषय में **तनये**=पौत्रों के विषय में तथा **समत्सु**=इन जीवन-संग्रामों में **आ**=सर्वथा **प्राव**=प्रकर्षेण रक्षित करिये। आप से रक्षण को प्राप्त करके ही हम अपने सन्तानों को उत्तम बना पायेंगे और इस संसार संग्राम में विजयी हो सकेंगे।

भावार्थ–प्रभु हमें उत्तम शक्तियुक्त धन को प्राप्त करायें। वे हमें सन्तानों को उत्तम बनाने में समर्थ करें तथा जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करायें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

प्रभु-प्रसादन से राक्षसी भावों का विनाश

यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि। विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति॥ १३॥

(१) **यद्**=जब **वा उ**=निश्चय से **विश्पतिः**=सब प्रजाओं के रक्षक प्रभु **शितः**=तनूकृत होते हैं, अर्थात् जब हम अन्नमय आदि कोशों के आवरणों को हटाकर, 'मुञ्जाद् इव इषीकां' मूञ्ज से अलग करके जैसे सींक को, इसी प्रकार प्रभु को देखते हैं और जब वे प्रभु **सुप्रीतः**=कर्त्तव्यपालन के द्वारा हमारे पर प्रीतिवाले होते हैं, तो वे **अग्निः**=अग्रेणी प्रभु **मनुषः विशि**=विचारशील पुरुष के इस शरीररूप गृह में **विश्वा इत्**=सब ही **रक्षांसि**–राक्षसी भावों को **प्रतिसेधति**=प्रतिषिद्ध करनेवाले होते हैं। (२) अन्नमय आदि कोशों का आवरण आ जाने से आत्मा स्थूल-सा प्रतीत होता है, इसी में आत्मा का व्यवहार होने लगता है। इन आवरणों को हटाते जायें तो मानो आत्मा तनूकृत होता चलता है। यही 'शितः' शब्द की भावना है। उत्तम कर्मों से हम इस आत्म स्थित प्रभु को प्रसन्न करते हैं। प्रभु हमारे सब राक्षसी भावों का विनाश करते हैं।

भावार्थ–प्रभु सब प्रजाओं के स्वामी हैं। जब हम प्रभु को उनके सूक्ष्मरूप में देख पाते हैं और स्वकर्त्तव्य कर्मों के करने के द्वारा उनकी आराधना कर पाते हैं, तो प्रभु हमारी सब अशुभ वृत्तियों को दूर कर देते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

मायावी राक्षसों का दहन

श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते। नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह॥ १४॥

(१) हे **वीर**-शत्रुओं के कम्पक, **विश्पते**=इस प्रकार प्रजाओं के रक्षक **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **मे**=मेरे से किये जानेवाले इस **नवस्य**-(नव गतौ) मुझे गतिमय जीवनवाला बनानेवाले **स्तोमस्य**-स्तोम का **श्रुष्टी**-श्रवण करके आप **मायिनः रक्षसः**-इन मायावी राक्षसी भावों को **तपुषा**-अपने तापक तेज से **निदह**-नितरां दग्ध कर दीजिये। (२) प्रभु का स्तवन जहाँ हमारे सामने एक उच्च लक्ष्य को उपस्थित करके विशिष्ट गति को पैदा करता है, वहाँ हमें यह स्तवन प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न बनाता है। यह प्रभु का तापक तेज सब राक्षसी भावों को दग्ध कर देता है।

भावार्थ-हम प्रभु का स्तवन करें। यह स्तवन हमें गतिमय व शक्ति-सम्पन्न बनायेगा। यह शक्ति सब मायावी राक्षसी वृत्तियों को शीर्ण करनेवाली होगी।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

कामदेव 'स्मर' है, तो प्रभु 'स्मर-हर' हैं

न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः। यो अग्नये ददाश हव्यदातिभिः॥ १५॥

(१) **यः**-जो भी उपासक **हव्यदातिभिः** हव्यों के देने के द्वारा, यज्ञशीलता के द्वारा भोगवृत्ति से ऊपर उठने के द्वारा **अग्नये**=उस अग्रेणी प्रभु के लिये **ददाश**-अपना अर्पण कर देता है। जितना-जितना हम भोगों से ऊपर उठते हैं उतना-उतना ही प्रभु के उपासक बनते हैं। **तस्य**=उस उपासक का यह **रिपुः**-हमें विदीर्ण कर देनेवाला **मर्त्यः**-मार, काम (देव) **मायया चन**-अपनी पूरी माया से भी **न ईशीत**=ईश नहीं बन पाता।

भावार्थ-यज्ञशीलता से हम प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाले बनें। ऐसी स्थिति में यह कामदेव हमें अपना शिकार न बना पायेगा।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

उक्षण्युः-व्यश्वः

व्यश्वस्त्वा वसुविदमुक्षण्युरप्रीणादृषिः। महो राये तमु त्वा समिधीमहि॥ १६॥

(१) हे प्रभो! **वसुविदम्**-सब वसुओं के प्राप्त करानेवाले **त्वा**=आपको यह **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा उपासक **अप्रीणात्**=प्रसन्न कर पाता है, जो **व्यश्वः**-विशिष्ट इन्द्रियाश्वोंवाला बनता है, जो अपनी इन्द्रियों को भोगों में नहीं फँसने देता और इस प्रकार इनकी शक्ति को क्षीण नहीं होने देता। जो **उक्षण्युः**=सर्वसुखों के सेचक आपकी ही प्राप्ति की कामनावाला होता है। (२) हम भी **तं त्वा उ**-उन आप को ही **महः राये**=महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये **समिधीमहि**-अपने अन्दर समिद्ध करते हैं। अपने हृदयों में आपके प्रकाश को देखने का प्रयत्न करते हुए हम भी महान् ऐश्वर्य के भागी बनते हैं।

भावार्थ-प्रभु को प्रीणित वही कर पाता है जो-(क) अपने इन्द्रियाश्वों को भोग से दूर रखकर सबल बनाये रखता है, (ख) जो सर्वसुख सेचक प्रभु की प्राप्ति की ही कामनावाला होता है, (ग) जो तत्त्वद्रष्टा बनता है। इस प्रभु के प्रीणन में ही महान् ऐश्वर्य का लाभ है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

उशनाः काव्यः

उशना काव्यस्त्वा नि होतारमसादयत्। आयजिं त्वा मनवे जातवेदसम्॥ १७॥

(१) हे प्रभो! **उशनाः**=आपकी प्राप्ति की प्रबल कामनावाला **काव्यः**=यह क्रान्तप्रज्ञ तत्त्वदर्शी पुरुष **होतारम्**=सब ऐश्वर्यों के देनेवाले **त्वा**=आपको **नि असादयत्**=नम्रता से अपने हृदयासन पर बिठाता है। (२) उन **त्वा**=आपको अपने हृदयासन पर बिठाता है जो आप **आयजिम्**=समन्तात् सब पदार्थों में पूज्य हैं, जिन आपकी महिमा प्रत्येक पदार्थ में दिखती है। जो आप **मनवे**=विचारशील पुरुष के लिये **जातवेदसम्**=(जाते-जाते विद्यते) प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान हो रहे हैं। एक विचारशील पुरुष को प्रत्येक पदार्थ में आपकी सत्ता का अनुभव होता है। वह पृथिवी में 'पुण्य गन्ध' के रूप में, जलों में 'रस' रूप में, अग्नि में 'तेज' के रूप में, वायु में 'गति' के रूप में व आकाश में 'शब्द' के रूप में आपको देखता है।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति की प्रबल कामनावाले तत्त्वद्रष्टा बनकर हम सर्वत्र उस प्रभु की सत्ता को देखने का प्रयत्न करें। ये प्रभु ही 'आयजि' हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्रथमः यज्ञियः

विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत। श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः॥ १८॥

(१) हे अग्ने! **विश्वे**=सब **देवासः**=देव वृत्ति के पुरुष **सजोषसः**=समान रूप से प्रीतिवाले होकर उपासना करते हुए **हि**=निश्चय से **त्वा**=आपको **दूतं अक्रत**=ज्ञान का सन्देश प्राप्त करानेवाला बनाते हैं। अर्थात् आप की उपासना करते हुए हृदयस्थ आपके द्वारा ज्ञान को प्राप्त करने के लिये यत्नशील होते हैं। (२) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! आप ही **श्रुष्टी**=शीघ्र **प्रथमः**=सर्वमुख्य **यज्ञियः**=उपासनीय **भुवः**=होते हैं। सब को आपकी ही उपासना करनी योग्य है। आपकी उपासना से ही पवित्र हृदय बनकर हम आपके द्वारा ज्ञान-सन्देश को सुननेवाले बनते हैं।

भावार्थ—देव वृत्ति के पुरुष परस्पर मिलकर प्रीतिपूर्वक प्रभु का उपासन करते हैं। इस प्रकार प्रभु से ज्ञान-सन्देश को प्राप्त करनेवाले होते हैं। प्रभु ही सर्वमुख्य उपासनीय हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

अमृतं-पावकम्

इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः। पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसम्॥ १९॥

(१) **वीरः मर्त्यः**=शत्रुओं को, काम-क्रोध आदि को कम्पित करके दूर करनेवाला मनुष्य **धा**=निश्चय से **इमम्**=इस **अमृतम्**=अविनाशी प्रभु को **दूतम्**=ज्ञान के सन्देश का प्रापक **कृण्वीत**=करता है। प्रभु की उपासना करता हुआ पवित्र हृदय में प्रभु के सन्देश को सुनता है। (२) उस प्रभु को अपने लिये ज्ञान-सन्देश का प्राप्त करानेवाला बनाता है जो **पापकम्**=पवित्र करनेवाले हैं। **कृष्ण-वर्तनिम्**=सब पापों (कृष्ण) को नष्ट करनेवाले हैं (वर्तनिं-उलटनेवाले) अथवा आकर्षक (कृष्णा) मार्ग (वर्तनि) वाले हैं और **विहायसम्**=महान् हैं, आकाशवत् व्यापक हैं।

भावार्थ—प्रभु पावक हैं। हम प्रभु की उपासना करते हुए इस अमृत प्रभु को ही अपना ज्ञान-सन्देश प्रापक बनायें। हृदयस्थ प्रभु से ज्ञान की प्रेरणा को प्राप्त करें। ज्ञान-सन्देश द्वारा पवित्र करते हुए प्रभु ही हमें अमृत बनाते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

प्रत्नमीड्यम्

तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषम्। विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम्॥ २०॥

(१) **यतस्रुचः**=(वाग् वै स्रुचः श० ६।३।१।८) संयत वाणीवाले होते हुए हम **तम्**=उस प्रभु को **हुवेम**=पुकारते हैं। जो प्रभु **सुभासम्**=उत्तम दीप्तिवाले हैं और **शुक्रशोचिषम्**=देदीप्यमान ज्ञान-ज्योतिवाले हैं। (२) उस प्रभु को हम संयतवाक् बनकर स्तुत करते हैं, जो **विशाम्**=सब प्रजाओं के **अग्निम्**=अग्रेणी हैं, **अजरम्**=कभी जीर्ण होनेवाले नहीं, **प्रत्नम्**=सनातन हैं और **ईड्यम्**=स्तुति के योग्य हैं।

भावार्थ—वाणी का संयम करते हुए हम प्रभु का आराधन करते हैं, तो प्रभु हमारी ज्ञानदीप्ति व पवित्रता को बढ़ानेवाले होते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

भूरि षोषं, वीरवद् यशः

यो अस्मै हव्यदातिभिराहुतिं मर्तोऽविधत्। भूरि पोषं स धत्ते वीरवद्यशः॥ २१॥

(१) **यः मर्तः**=जो मनुष्य **अस्मै**=इस प्रभु के लिये **हव्यदातिभिः**=हव्य पदार्थों के दान के द्वारा, यज्ञशीलता के द्वारा भोगवृत्ति से ऊपर उठने के द्वारा **आहुतिम्**=अपने अर्पण को (हु दाने) **अविधत्**=करता है, **सः**=वह **भूरि**=खूब ही **षोषम्**=पोषण को **धत्ते**=धारण करता है। जैसे माता के प्रति अर्पित हुआ-हुआ बालक माता से पोषण को प्राप्त करता है, उसी प्रकार जब हम प्रभु के प्रति अपना अर्पण करते हैं, तो प्रभु हमारा समुचित पोषण करते हैं। (२) यह प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाला व्यक्ति **वीरवत्**=प्रशस्त वीर सन्तानोंवाले **यशः**=यश को धारण करता है। प्रभु इसे उत्तम सन्तानों को प्राप्त कराते हैं तथा यशस्वी जीवनवाला बनाते हैं।

भावार्थ—भोगवृत्ति से ऊपर उठकर त्याग वृत्तिवाले बनकर हम प्रभु का पूजन करते हैं, प्रभु के प्रति अपना अर्पण करते हैं। प्रभु हमारा खूब ही पोषण करते हैं और वीर सन्तानों के साथ यशस्वी जीवन को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

हविष्मती स्रुक्

प्रथमं जातवेदसमग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम्। प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती॥ २२॥

(१) 'स्रुक्' वाणी है (वाग्वै स्रुचः श० ६।३।१।८) यह **स्रुक्**=वाणी **हविष्मती**=हविवाली होती हुई, त्यागपूर्वक अदन के स्वभाववाली होती हुई, **नमसा**=नमस्कार के साथ **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु की **प्रति एति**=ओर जानेवाला होती है। अर्थात् प्रभु का ही स्तवन करती है। (२) उस प्रभु का जो **प्रथमम्**=सर्वत्र व्यापक हैं (प्रथ विस्तारे), **जातवेदसम्**=(जाते-जाते=विद्यते) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान हैं, **अग्निम्**=अग्रेणी हैं और **यज्ञेषु पूर्व्यम्**=यज्ञों के होने पर पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम हैं।

भावार्थ—हमारी वाणी त्याग पूर्वक अदन करती हुई नमस्कार के साथ प्रभु की अर्चना करनेवाली हो। ये प्रभु हमें यज्ञों में प्रवृत्त करके हमारा उत्तमता से पालन करते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—पादनिचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

स्वाध्याय-प्रशस्तेन्द्रियता-त्यागवृत्ति=उपासना

आभिर्विधेमाग्रये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत्। मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे॥ २३॥

(१) **आभिः**=इन **ज्येष्ठाभिः**=प्रशस्यतम वेदवाणियों से हम **व्यश्ववत्**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों-वाले पुरुष की तरह **अग्नये**=उस अग्रेणी प्रभु के लिये **विधेम**=पूजन करते हैं। वस्तुतः 'स्वाध्याय में अतिरिक्त समय को बिताना और इस प्रकार प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाला बनना' ही प्रभु का सच्चा पूजन है। (२) **मंहिष्ठाभिः**=(मंहतेर्दानकर्मणः) अधिक से अधिक दान की भावनावाली, अतिशयित त्याग की भावनावाली, **मतिभिः**-बुद्धियों से हम **शुक्रशोचिषे**=अतिशयेन देदीप्यमान ज्ञान की ज्योतिवाले उस प्रभु का उपासन करते हैं। त्याग की भावना ही हमारी बुद्धियों को स्वस्थ बनाती है। स्वस्थ बुद्धि ज्ञानदीप्ति का साधन बनती है।

भावार्थ-वेदवाणियों का स्वाध्याय करते हुए हम प्रशस्तेन्द्रिय बनें। अतिशयेन त्याग की वृत्तिवाली बुद्धिवाले हों। यही प्रभु का सच्चा उपासन है, यही ज्ञानदीप्ति की प्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—आर्चीस्वराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

यज्ञशीलता-तत्त्वदर्शन-प्रशस्तेन्द्रियता=उपासना

नूनमर्च विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत्। ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये॥ २४॥

(१) 'यूप' शब्द यज्ञस्तम्भ के लिये प्रयुक्त होता है। 'स्थूर यूप' वह व्यक्ति है, जिसके यज्ञस्तम्भ बड़े दृढ़ हैं। जो यज्ञशील है, जिसने यज्ञों के लिये समुचित यज्ञस्थली का घर में निर्माण किया है, वेद के आदेश के अनुसार सर्वप्रथम कक्ष 'हविर्धानं' ही बनाया है। यह 'स्थूर यूप' प्रभु का उपासक है 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'। इस **स्थूरयूपवत्**=यज्ञशील पुरुष की तरह **नूनम्**=निश्चय से **विहायसे**=उस आकाशवत् व्यापक महान् प्रभु के लिये **स्तोमेभिः**=स्तुतियों के द्वारा **अर्च**=अर्चना कर। (२) हे **ऋषे**=तत्त्वद्रष्टः! **वैयश्व**=विशिष्ट इन्द्रियाश्वोंवाले उपासक तू **दम्याय**=तुम्हारे गृह का हित करनेवाले उस **अग्नये**=अग्रेणी प्रभु के लिये अर्चना करनेवाला बन।

भावार्थ-प्रभु का उपासक यह है जो (क) यज्ञशील है (स्थूरयूप), (ख) तत्त्वद्रष्टा बनता है (ऋषि), (ग) इन्द्रियाश्वों को प्रशस्त बनाता है (वैयश्व)। ये प्रभु उपासक के गृह का कल्याण करते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

मानुषाणां अतिथिं, वनस्पतीनां सूनुम्

अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम्। विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते॥ २५॥

(१) **विप्राः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले, अपनी कमियों को दूर करनेवाले, ज्ञानी पुरुष **प्रत्नम्**=उस सनातन **अग्निम्**=अग्रेणी प्रभु को **अवसे**=रक्षण के लिये **ईडते**=स्तुत करते हैं। इस स्तोता विप्र का प्रभु रक्षण करते ही हैं, इसे काम-क्रोध-लोभ आदि के आक्रमण से बचाते हैं। (२) उस प्रभु को उपासित करते हैं जो **मानुषाणाम्**=विचारशील पुरुषों का **अतिथिम्**=अतिथि है, अतिथिवत् पूज्य है। तथा **वनस्पतीनाम्**=(वन=A ray of light) ज्ञान-रश्मियों के रक्षक पुरुषों का **सूनुम्**=(षू प्रेरणे) प्रेरक है। विचारशील पुरुष सदा प्रभु का पूजन करते हैं और ज्ञानरश्मियों का रक्षण करनेवाले पुरुष प्रभु-प्रेरणा को सुन पाते हैं।

भावार्थ–विप्र रक्षण के लिये प्रभु की आराधना करते हैं। विचारशील पुरुष प्रभु को अतिथिवत् पूजते हैं और ज्ञानरश्मियों का रक्षण करनेवाले पुरुष प्रभु की प्रेरणा को सुना करते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

महान् अधिष्ठाता

महो विश्वाँ अभि षतोऽभि हव्यानि मानुषा। अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि॥ २६॥

(१) **अभि**–चारों ओर **सतः**=विद्यमान **महः विश्वान्**=महान् विश्वों को (लोकों को) आप **निषत्सि**–निश्चय से अधिष्ठित करते हैं। तथा **मानुषा**=विचारशील पुरुषों से किये जानेवाले **हव्यानि**=हवि प्रदान (यज्ञ) आदि कर्मों को भी आप ही **अभि (निषत्सि)**=अधिष्ठित करते हो। सब लोकों में व्याप्त हुए-हुए आप उनका धारण व नियमन कर रहे हैं। आप ही इन विचारशील पुरुषों के यज्ञों को सिद्ध करते हैं। (२) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **नमसा**=नमस् के द्वारा, जब भी उपासक आपके प्रति नमन को धारण करता है तो आप **बर्हिषि**=उसके वासनाशून्य हृदय में **अधि निषत्सि**=आधिक्येन स्थित होते हैं, वह उपासक हृदय में आपका दर्शन कर पाता है।

भावार्थ–प्रभु सब लोकों के नियामक हैं, सब यज्ञों के अधिष्ठाता हैं, विनीत पुरुष के हृदय में स्थित होते हैं, वहाँ प्रभु का दर्शन होता है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'सुवीर्य सुसन्तान व सुयशा' बनानेवाला धन

वंस्वा नो वार्या पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः। सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः॥ २७॥

(१) हे प्रभो! आप **नः**=हमारे लिये **वार्या**=वरणीय धनों को **वंस्वा**=दीजिये। और **पुरुस्पृहः**=बहुतों से स्पृहणीय (चाहने योग्य) **रायः**=धनों को **पुरुवंस्व**=खूब ही दीजिये। (२) उस धन को दीजिये जो **सुवीर्यस्य**=उत्तम शक्ति से युक्त है, **प्रजावतः**=उत्तम सन्तानोंवाला है तथा **यशस्वतः**=मुझे यशस्वान् बनानेवाला है। अर्थात् जिस धन के द्वारा भोगों में फँसकर मैं निर्बल नहीं हो जाता, जिस धन के द्वारा मेरे सन्तान बिगड़ नहीं जाते तथा जिस धन से मैं उत्तम कर्मों को करता हुआ यशस्वी जीवनवाला होता हूँ।

भावार्थ–प्रभु हमारे लिये सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त करायें। उस स्पृहणीय धन को भी प्राप्त करायें, जो मुझे सुवीर्य-सुसन्तान व सुयश बनाये।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

शान्त व क्रियाशील

त्वं वरो सुषाम्णेऽग्ने जनाय चोदय। सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते॥ २८॥

(१) हे **अग्ने**–अग्रेणी प्रभो! **त्वं वरः**=आप ही वरणीय हैं, श्रेष्ठ हैं। आप **सुषाम्णे जनाय**=उत्तम सामवाले, शान्तिवाले **जनाय**–व्यक्ति के लिये **रातिम्**–धन के दान को **चोदय**=प्रेरित कीजिये। (२) हे **वसो**=हमारे निवासों को उत्तम बनानेवाले **यविष्ठ**=बुराई को अधिक से अधिक दूर करनेवाले प्रभो! आप **शश्वते**–प्लुत गतिवाले, स्फूर्तिवाले क्रियाशील व्यक्ति के लिये **सदा**=हमेशा (रातिं चोदय) धनों को प्रेरित करते हैं।

भावार्थ–प्रभु शान्त व क्रियाशील व्यक्ति के लिये, शान्तिपूर्वक कर्त्तव्य में लगे व्यक्ति के लिये, धनों के दान को प्रेरित करते हैं। ये धन उनकी उन्नति के लिये, उनके निवास को उत्तम बनाने के लिये व बुराइयों को दूर करने के लिये होते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

गोमतीः इषः-महः रायः सातिम्

त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः। महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि॥ २९॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**=आप **हि**=ही **सुप्रतूः असि**=अच्छी प्रकार शत्रुओं का संहार करनेवाले (तुर्व्) हैं। **त्वम्**=आप **नः**=हमारे लिये **गोमतीः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाली **इषः**=प्रेरणाओं को **अपावृधि**=वासना के आवरण को हटाकर प्राप्त करानेवाले होइये। (२) हे प्रभो! आप **महः रायः**=महान् ऐश्वर्य के **सातिम्**=दान को (अपावृधि)=हमारे लिये आवरण हटाकर प्राप्त कराइये।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से काम-क्रोध आदि शत्रुओं के विनाश के द्वारा हम प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाली प्रेरणाओं को व महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

पूतदक्षसा (मित्रावरुणा)

अग्ने त्वं यशा अस्या मित्रावरुणा वह। ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा॥ ३०॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **यशाः असि**=यशस्वी ही यशस्वी हैं। आप हमारे लिये भी **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को **आवह**=प्राप्त कराइये। ये स्नेह व निर्द्वेषता के भाव मुझे भी यशस्वी बनायें। (२) ये मित्र और वरुण **ऋतावाना**=ऋतवाले, यज्ञवाले हैं। हमारे जीवनों में ऋत का रक्षण करते हैं। **सम्राजा**=ये हमारे जीवनों को सम्यग् राजमान (दीप्त) बनाते हैं। **पूतदक्षसा**=हमारे बलों को पवित्र करते हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना से स्नेह व निर्द्वेषता को धारण करके हम ऋत का धारण करें, दीप्त जीवनवाले बनें, शुद्ध बलवाले हों।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'विश्वमना वैयश्व' ही है। यह 'इन्द्र' नाम से प्रभु का स्तवन करता है—

२४. [चतुर्विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

नृतम्-धृष्णु

सखाय आ शिषामहि ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे। स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे॥ १॥

(१) **सखायः**=हे मित्रो! हम **वज्रिणे**=वज्रहस्त **इन्द्राय**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु के लिये **ब्रह्म**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **आशिषामहि**=आदरपूर्वक गुणों का वर्णन करते हैं। उस प्रभु के गुणों का का वर्णन करते हुए उन गुणों को धारण करने के लिये यत्नशील होते हैं। (२) **वः**=तुम सब के **नृतमाय**=नेतृतम-सर्वोत्तम नेता **धृष्णवे**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले प्रभु के लिये **उ**=ही **सु**=सम्यक् **स्तुषे**=स्तुति करता हूँ। मैं प्रभु-स्तवन करता हूँ, प्रभु मेरे शत्रुओं का धर्षण करते हैं।

भावार्थ—वे प्रभु वज्रहस्त होकर हमारे शत्रुओं का धर्षण करते हैं, वे हमारे सर्वोत्तम नेता हैं। हम सब मिलकर प्रभु के गुणों का ही वर्णन करें। उन्हें धारण करने के लिये यत्नशील हों। इस प्रकार सच्चे स्तोता बनें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः **देवता**—इन्द्रः **छन्दः**—उष्णिक् **स्वरः**—ऋषभः

वासना-विनाश व ऐश्वर्यदान

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा। मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि॥ २॥

(१) हे प्रभो! आप **शवसा**=बल के द्वारा **हि**=निश्चयपूर्वक **श्रुतः असि**=प्रसिद्ध हैं। **वृत्रहत्येन**=वासना के विनाश के द्वारा आप 'वृत्र-हा'-'वृत्रहा' नामवाले हैं। आप ही ज्ञान की आवरणभूत वासना का विनाश करते हैं। (२) हे **शूर**-शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! आप **मघैः**-ऐश्वर्यों से **मघोनः**-सब ऐश्वर्यशालियों को **अति**-लांघ करके **दाशसि**-देनेवाले हैं। किसी भी अन्य धनी ने क्या देना? देनेवाले आप ही हैं।

भावार्थ-प्रभु बल के द्वारा वासनारूप शत्रु का संहार करनेवाले हैं। इस प्रकार वे प्रभु हमारी अध्यात्म उन्नति का कारण बनते हैं। वे प्रभु ही सब ऐश्वर्यों को देकर हमारी ऐहिक उन्नति के साधक होते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः **देवता**—इन्द्रः **छन्दः**—उष्णिक् **स्वरः**—ऋषभः

वसुः-ददिः

स नः स्तवान आ भर रयिं चित्रश्रवस्तमम्। निरेके चिद्यो हरिवो वसुर्ददिः॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **सः**-वे आप **स्तवानः**-स्तुति किये जाते हुए **नः**-हमारे लिये **चित्रश्रवस्तमम्**-अद्भुत ज्ञान व यश को प्राप्त करानेवाले **रयिम्**-धन को **आभर**-दीजिये। आप से दिया गया धन इस प्रकार विनियुक्त हो कि यह ज्ञान की वृद्धि करनेवाला हो तथा हमारे यश को बढ़ानेवाला हो। (२) हे **हरिवः**-प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! उस धन को दीजिये **यः**-जो **चित्**-निश्चय से **निरेके**-निर्गमन में ही हो, अर्थात् जो सदा दान में विनियुक्त होता रहे। हे प्रभो! आप ही **वसुः**-हमें बसानेवाले हैं। धनों को देकर तथा दान की वृत्ति को प्राप्त कराके आप हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले हैं। **ददिः**-सब कुछ देनेवाले आप ही तो हैं।

भावार्थ-प्रभु वह धन देते हैं, जो हमारे ज्ञान व यश की वृद्धि का कारण बनता है, जो दान में विनियुक्त होता है। प्रभु इस प्रकार हमारे निवास को उत्तम बनाते हैं। सब कुछ देनेवाले प्रभु ही तो हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः **देवता**—इन्द्रः **छन्दः**—उष्णिक् **स्वरः**—ऋषभः

'निरेक प्रिय' धन

आ निरेकमुत प्रियमिन्द्र दर्षि जनानाम्। धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **जनानाम्**=लोगों के **निरेकम्**=जिसका सदा दान में विनियोग होता है (विरेचनात् वा निर्गमनाद्वा) **उत**-और **प्रियम्**=जो प्रीणन का कारण बनता है उस धन को **आदर्षि**=(आदृ=To desire) चाहिये, लोगों के लिये इस 'निरेक प्रिय' धन की कामना करिये। (२) हे **धृष्णो**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले प्रभो! **स्तवमाना**=स्तुति किये जाते हुए आप **धृषता**=शत्रुधर्षक सामर्थ्य के साथ **आभर**=हमारे लिये धन का पोषण करिये। हम धनों को प्राप्त करें। पर साथ ही हमारे मन शत्रुधर्षक सामर्थ्यवाले हों जिससे उन धनों के कारण हम वैषयिक वृत्तिवाले न हो जायें।

भावार्थ-प्रभु हमें वह धन प्राप्त करायें, जो दान में विनियुक्त हो, प्रीति का कारण बने। तथा साथ ही प्रभु हमें शत्रुधर्षक सामर्थ्य को भी दें ताकि उस धन से हम विषयों की ओर बह

न जायें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

आमुरः-परिबाधः

न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरन्त आमुरः। न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु॥ ५॥

(१) हे प्रभो! **आमुरः**=संग्राम में आभिमुख्येन मरनेवाले व्यक्ति **ते**=आपके **न सव्यम्**=न तो बायें हाथ को **न दक्षिणं हस्तम्**=और न ही दायें हाथ को **वरन्त**=रोकते हैं। अर्थात् इनके लिये आप दोनों हाथों से धनों को देनेवाले होते हैं। (२) हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **गविष्टिषु**=ज्ञान की वाणियों के अन्वेषणात्मक यज्ञों में चलनेवाले और अतएव **परिबाधः**=समन्तात् शत्रुओं का बाधन करनेवाले लोग **न**=आपके हाथों को रोकते नहीं। इनके लिये भी आप सब ऐश्वर्यों के देनेवाले होते हैं। गविष्टियों में चलना, स्वाध्याय में प्रवृत्त रहना, **अन्तः**=शत्रुओं के बाधन का सर्वोत्तम साधन है। इन व्यक्तियों के लिये प्रभु सब धनों को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम संग्राम में पीठ न दिखानेवाले, रणांगण में प्राण परित्याग करनेवाले बनें। हम स्वाध्याय प्रवृत्त होकर समन्तात् काम-क्रोध आदि शत्रुओं का बाधन करें। प्रभु हमारे लिये सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'कामं-मनः' आपृण

आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋणोम्यद्रिवः। आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण॥ ६॥

(१) हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! मैं **त्वा**=आपको **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **ऋणोमि**=सर्वथा प्राप्त होता हूँ। उसी प्रकार प्राप्त होता हूँ, **इव**=जैसे एक ग्वाला **गोभिः**=गौवों के साथ **व्रजम्**=एक गौओं के बाड़े को प्राप्त होता है। मैं भी सब इन्द्रियरूप गौवों को नियन्त्रित करके आपके समीप प्राप्त होता हूँ। (२) हे प्रभो! आप **जरितुः**=स्तोता की **कामम्**=अभिलाषा को **आपृण**=पूर्ण करिये तथा **मनः**=इसके मन को **स्म**=अवश्य **आपृण**=पूरण करिये।

भावार्थ—हम स्तुति वाणियों से प्रभु की ओर जानेवाले हों। प्रभु हमारी कामनाओं को पूर्ण करेंगे और हमारे मनों की न्यूनताओं को दूर करके उनका पूरण करेंगे।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

विश्वमना

विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम। उग्र प्रणेतरधि षू वसो गहि॥ ७॥

(१) हे **वृत्रहन्तम**=वासनाओं का अतिशयेन विनाश करनेवाले प्रभो! आप **नः**=हमें **विश्वमनसः**=सारे विश्व के साथ जिसने अपने मन को जोड़ा हुआ है, उस पुरुष की **धिया**=बुद्धि के साथ **विश्वानि**=सब धनों को प्राप्त कराइये (आगहि)। हम वासनाओं से ऊपर उठकर सब के प्रति प्रीतियुक्त मनवाले होते हुए बुद्धि के साथ सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करें। (२) हे **उग्र**=तेजस्विन्! **प्रणेतः**=प्रकृष्ट नेतृत्व को देनेवाले! **वसो**=हमारे निवासों को उत्तम बनानेवाले प्रभो! आप हमें **सु**=अच्छी प्रकार **अधिगहि**=ग्रहण करिये, हम आपके प्रिय बन पायें।

भावार्थ—वासनाओं से ऊपर उठकर हम 'विश्वमना' बनें। हम 'तेजस्वी, प्रकृष्ट नेता, हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले' प्रभु के प्रिय बनें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'स्तुत्य-स्पृहणीय-कार्यसाधक' धन

वयं ते अस्य वृत्रहन्विद्याम शूर नव्यसः। वसोः स्पार्हस्य पुरुहूत राधसः॥ ८॥

(१) हे **वृत्रहन्**=वासनाओं को विनष्ट करनेवाले, **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **ते**=आपके **अस्य**=इस **नव्यसः**=अतिशयेन स्तुत्य धन को **विद्याम**=प्राप्त करें (विद् लाभे) अथवा जानें। अर्थात् हमें धन प्राप्त हो और हम धन का उत्तम ही विनियोग करें। (२) हे **पुरुहूत**-बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभो! हम आपके **स्पार्हस्य**=स्पृहणीय **राधसः**-कार्यसाधक **वसोः**-धन का (रिद्याम) लाभ प्राप्त करें (विद् लाभे)। अर्थात् हमें स्पृहणीय कार्यसाधक धन प्राप्त हो।

भावार्थ-प्रभु के अनुग्रह से हमें 'स्तुत्य स्पृहणीय कार्यसाधक' धन प्राप्त हो।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

अपरीतं शवः, अमृक्ता रातिः

इन्द्र यथा ह्यस्ति तेऽपरीतं नृतो शवः। अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुषे॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**-शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! हे **नृतो**-सम्पूर्ण संसार को नृत्य करानेवाले प्रभो! **यथा**-जैसे **ते शवः**=आपका बल **हि**=निश्चय से **अपरीतं अस्ति**=शत्रुओं से अपरिगत, अव्याप्त होता है, अर्थात् कोई भी आप के बल को अभिभूत नहीं कर पाता। उसी प्रकार **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभो! **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिये, दानशील पुरुष के लिये **रातिः**-आपका दान **अमृक्ता**=अहिंसित है। अर्थात् दानशील के लिये आपका दान सदा प्रवृत्त रहता ही है। (२) प्रभु अपने उपासक के लिये उस शक्ति को प्राप्त कराते हैं जो किसी भी शत्रु से अभिभूत नहीं होती, तथा प्रभु इस उपासक के लिये उस धन के दान को करते हैं, जो सदा होता ही रहता है। यह धन का दान कभी समाप्त नहीं होता।

भावार्थ-उस सर्वशक्तिमान् प्रभु का बल शत्रुओं से अभिभूत नहीं होता। उस प्रभु का धन का दान दाश्वान् पुरुष के लिये सदा होता ही है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

राधसे-मघत्तये

आ वृषस्व महामह महे नृतम राधसे। दृळ्हश्चिद् दृह्य मघवन्मघत्तये॥ १०॥

(१) हे **महामह**=महान् पूजनीय **नृतम**=नेतृतम, सर्वोत्तम नेतः प्रभो! आप **महे राधसे**=महान् ऐश्वर्य के लिये **आवृषस्व**-हमें शक्तिशाली बनाइये। आपका पूजन करते हुए, आपसे प्रदर्शित पथ के पथिक बनते हुए शक्तिशाली बनकर हम महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करें। (२) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **दृढः चित् (दृढानि)**=दृढ़ भी शत्रु-दुर्गों को **दृह्य**=विदीर्ण कीजिये, जिससे **मघत्तये**=हम ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकें। 'काम-क्रोध-लोभ' रूप आसुरभावों के दुर्गों के नष्ट होने पर ही वास्तविक ऐश्वर्य का लाभ होता है।

भावार्थ-प्रभु हमें शक्ति दें कि हम ऐश्वर्य को सिद्ध कर सकें। दृढ़ भी शत्रु-दुर्गों को विदीर्ण करके हम वास्तविक ऐश्वर्य को प्राप्त करें, काम-क्रोध-लोभ को पराजित करके हम 'शरीर, मन व मस्तिष्क' के स्वास्थ्य को सिद्ध करें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

प्रभु से ही याचना

नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशसः। मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः॥ ११॥

(१) हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! **नः आशसः**=हमारी कामनायें, आशंसन, अभिलाषायें **त्वत्**=आप से **अन्यत्र**=और जगह **नू चित्**=नहीं ही **जग्मुः**-जायें। अर्थात् हम अपनी सब अभिलाषायें आप के सामने ही प्रकट करें। (२) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **नः**=हमारे लिये **ऊतिभिः**=रक्षणों के साथ **तव**=आपके **तत्**=उस ऐश्वर्य को **शग्धि**=दीजिये (देहि)।

भावार्थ—हम प्रभु से ही याचना करें। प्रभु रक्षणों के साथ हमें सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

धन-ज्ञान व बल

नह्यं१ङ्ग नृतो त्वदन्यं विन्दामि राधसे। राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः॥ १२॥

(१) हे **नृतो**=सम्पूर्ण संसार को नृत्य करानेवाले, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के संचालक प्रभो! **त्वद् अन्यम्**=आप से भिन्न किसी अन्य को **राधसे**=ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये **न हि**=नहीं ही **विन्दामि**=प्राप्त करता हूँ। आप ही को सब ऐश्वर्यों के देनेवाला जानता हूँ। (२) हे **अंग**=गतिशील प्रभो! हे **गिर्वणः**-ज्ञान की वाणियों से उपासनीय प्रभो! मैं **राये**=धन के लिये, **द्युम्नाय**=ज्ञान-ज्योति के लिये **च**=और **शवसे**=बल के लिये आप को ही प्राप्त करता हूँ। आप ही तो मेरे लिये सब धनों, ज्ञानों व बलों के प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे लिये 'धन, ज्ञान व बल' प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

सोमरक्षण व धन-प्राप्ति

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु। प्र राधसा चोदयाते महित्वना॥ १३॥

(१) हे जीवो! **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये **इन्दुम्**=सोम को **आसिञ्चत**=शरीर में ही चारों ओर सिक्त करो। वस्तुतः ये प्रभु ही **सोम्यम्**=सोम सम्बन्धी **मधु**=इस सारभूत जीवन को मधुर बनानेवाली वस्तु को **पिबाति**=शरीर में ही पीनेवाले व सुरक्षित करनेवाले हैं। प्रभु-स्मरण से ही सोम का रक्षण होता है। (२) ये प्रभु ही **महित्वना**=अपनी महिमा से **राधसा**=कार्यसिद्धि के उद्देश्य से सब धनों को **प्रचोदयाते**=हमारे में प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये हम सोम को शरीर में ही सुरक्षित करें। वस्तुतः प्रभु ही सोम को सुरक्षित करते हैं और हमारे लिये कार्यसाधक धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—पादनिचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

स्तुति करता हुआ 'अश्व्य'

उपो हरीणां पतिं दक्षं पृञ्चन्तमब्रवम्। नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य॥ १४॥

(१) मैं **हरीणां पतिम्**=सब दुःखों का हरण करनेवाले इन्द्रियाश्वों के स्वामी, **दक्षम्**=हमारे बलों का वर्धन करनेवाले **पृञ्चन्तम्**=सर्वत्र सम्पृक्त, सर्वव्यापक प्रभु का **उ**=निश्चय से **उप अब्रवम्**=समीपता से उच्चारण करूँ, प्रभु के गुणों का गायन करूँ। (२) हे प्रभो! आप **स्तुवतः**=स्तुति करते हुए **अश्वस्य**=उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाले की स्तुति को **नूनम्**=निश्चय से **श्रुधि**=सुनिये। जो भी

व्यक्ति इन्द्रियाश्वों को उत्तम बनाता है, उसके स्तुति वचनों को प्रभु अवश्य सुनते हैं। इन्द्रियों को उत्तम बनाने के लिये जो यत्नशील नहीं, उसका स्तवन व्यर्थ ही है।

भावार्थ–स्तोता के इन्द्रियाश्वों को प्रभु उत्तम बनाते हैं। उसके बल का वर्धन करते हैं। उसके साथ प्रभु का सम्पर्क बढ़ता है। हम इन्द्रियाश्वों को उत्तम बनाने के लिये यत्नशील हों, तभी हमारा स्तवन सार्थक होगा।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

वीरता-ऐश्वर्य-गतिशीलता व कल्याण

नह्य१ङ्ग पुरा चन जज्ञे वीरतरस्त्वत्। नकी राया नैवथा न भन्दना॥ १५॥

(१) हे **अंग**=गतिशील प्रभो! **पुराचन**=आज तक पहले कभी भी **त्वत्**=आप से **वीरतरः**=अधिक वीर **न हि**=नहीं ही **जज्ञे**=हुआ। प्रभु सर्वोपरि वीर हैं। प्रभु ही हमारे सब शत्रुओं को कम्पित करनेवाले हैं। (२) हे प्रभो! **नकिः राया**=तो ही धन के दृष्टिकोण से आप से अधिक कोई हुआ है। **न एवथा**=न गतिशीलता के दृष्टिकोण से आप से कोई अधिक है और **न**=न ही **भन्दना**=कल्याण व सुख के दृष्टिकोण से कोई आप से अधिक हुआ है।

भावार्थ–प्रभु ही 'वीरता, ऐश्वर्य, गतिशीलता व कल्याण' के स्रोत हैं। इन दृष्टिकोणों से कोई भी प्रभु से अधिक नहीं है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

कर्मठ ही सच्चा उपासक है

एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः। एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः॥ १६॥

(१) हे **अध्वर्यो**=यज्ञशील पुरुष! तू **इत् वा उ**=निश्चय से **मध्वः अन्धसः**=माधुर्य का संचार करनेवाले सोम (वीर्य) से भी **मदिन्तरम्**-अधिक आनन्दित करनेवाले उस प्रभु को **आसिञ्च**=अपने में सिक्त कर। प्रभु की उपासना का भाव तेरी नस-नस में व्याप्त हो जाये। (२) वह **वीरः**=शत्रुओं को विशेषरूप से कम्पित करके दूर करनेवाला, **सदावृधः**=सदा वृद्धि को प्राप्त हुआ-हुआ प्रभु **एवा हि**=गतिशीलता के द्वारा ही **स्तवते**=स्तुति किया जाता है। अर्थात् क्रियाशील पुरुष ही प्रभु का सच्चा उपासक है।

भावार्थ–शरीर में सुरक्षित सोम उल्लास का कारण होता है। प्रभु का हृदय में धारण उससे भी अधिक आनन्दित करनेवाला होता है। उस 'वीर सदावृध्' प्रभु का सच्चा उपासक वही है जो क्रियाशील है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

न शवसा, न भन्दना

इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम्। उदानंश शवसा न भन्दना॥ १७॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन्! **हरीणां स्थातः**=इन्द्रियाश्वों के अधिष्ठाता प्रभो! **ते**=आपकी **पूर्व्यस्तुतिम्**=पालन व पूरण करनेवाली बातों में सर्वोत्तम इस स्तुति को **नकिः उदानंश**=कोई भी अति व्याप्त नहीं कर पाता, कोई भी व्यक्ति आपकी स्तुति का अतिक्रमण करने में समर्थ नहीं होता। (२) **न शवसा**=न तो बल से आपको कोई अतिक्रान्त करता है और **न भन्दना**=न कल्याण व सुख से कोई आपको लांघनेवाला है।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करते हैं। यह स्तुति हमारी न्यूनताओं को दूर करके हमारा पूरण करती है। प्रभु हमें 'बल, कल्याण व सुख' प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'शक्तियों के स्वामी-यज्ञों से वर्धनीय' प्रभु

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः। अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम्॥ १८॥

(१) **श्रवस्यवः**=ज्ञान व यश की कामनावाले हम **तम्**-उस **वः**=तुम सब के **वाजानाम्**=बलों के **पतिम्**=स्वामी प्रभु को **अहूमहि**=पुकारते हैं। प्रभु हमारी सब इन्द्रियों के बल का वर्धन करके हमारे ज्ञान व शक्ति का वर्धन करते हैं। इस प्रकार हमारा जीवन यशस्वी बनता है। (२) हम उस प्रभु को पुकारते हैं जो **अप्रायुभिः**=प्रमाद से रहित **यज्ञेभिः**=यज्ञों से **वावृधेन्यम्**=वर्धनीय हैं। जब हम प्रमादशून्य होकर यज्ञों में प्रवृत्त होते हैं, तो प्रभु का प्रकाश हमारे में निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता है।

भावार्थ—प्रभु सब शक्तियों के स्वामी हैं। यज्ञों के द्वारा प्रभु का प्रकाश हमारे में होता है। इस प्रभु को ज्ञानी व यशस्वी बनने के लिये हम पुकारते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—आर्चीस्वराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'स्तोम्य नर' प्रभु का स्तवन

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम्। कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत्॥ १९॥

(१) हे **सखायः**=मित्रो! **एत उ**-निश्चय से आओ। **नु**=अब उस **स्तोम्यम्**=स्तुति के योग्य **नरम्**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् प्रभु का **स्तवाम**=स्तवन करें। यह सम्मिलित प्रार्थना हमें प्रभु के अधिक और अधिक समीप लानेवाली हो। (२) हम उस प्रभु का स्तवन करें **यः**=जो **एकः इत्**=अकेले ही **विश्वः कृष्टीः**=सब मनुष्यों को **अभ्यस्ति**=अभिभूत करनेवाले हैं। हमारे सब शत्रुओं का पराजय ये प्रभु ही तो करेंगे।

भावार्थ—हम सब मित्र मिलकर प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमारे सब शत्रुओं का अभिभव करके हमें उन्नतिपथ पर ले चलेंगे।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'घृत व मधु' से भी अधिक मधुर वचन

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः। घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत॥ २०॥

(१) **अगोरुधाय**=(गाः न रुणद्धि) ज्ञान की वाणियों को न रोकनेवाले, निरन्तर ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करानेवाले, **गविषे**=हमारे लिये (गावः इन्द्रियाणि) उत्तम इन्द्रियों को प्रेरित करनेवाले और इस प्रकार **द्युक्षाय**-प्रकाश में निवास करानेवाले प्रभु के लिये, ऐसे प्रभु की प्राप्ति के लिये **दस्म्यम्**=दुःख का नाश करनेवालों में उत्तम **वचः**=वचन को **वोचत**=बोलो। दुःखियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दुःखनिवारक वचनों को बोलनेवाला ही उस प्रभु को प्राप्त करता है जो निरन्तर ज्ञान की वाणियों व उत्तम इन्द्रियों को प्राप्त कराके हमें प्रकाश में निवासवाला बनाते हैं। (२) हे मनुष्यो! प्रभु की प्राप्ति के लिये **घृतात् स्वादीयः**=घृत से भी अधिक स्वादिष्ट **च**=तथा **मधुनः**=शहद से भी अधिक मधुर वचन (बोचत=) बोलो। कटुवचन दूसरे के हृदय को काटते हुए अन्तःस्थित प्रभु के भी निरादर का कारण बनते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु प्राप्ति के लिये 'दुःखनाशक, घृत से भी स्वादिष्ट और शहद से भी अधिक मधुर' वचनों को बोलें। ये प्रभु ज्ञान की वाणियों व उत्तम इन्द्रियों को प्राप्त कराके हमारे लिये प्रकाश को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

अनन्त 'वीर्य-ऐश्वर्य-ज्ञान व दान' वाले प्रभु

यस्यामितानि वीर्या॒३॑ न राधः॒ पर्येतवे। ज्योति॒र्न विश्व॑म॒भ्यस्ति॒ दक्षि॑णा॥ २१॥

(१) **यस्य**-जिस प्रभु के **वीर्या**=वृत्रवध आदि पराक्रम के कार्य **अमितानि**=अगणित हैं, अपरिमित हैं, अनन्त शक्तिवाले वे प्रभु हैं। उस प्रभु का **राधः**-ऐश्वर्य **पर्येतवे न**-चारों ओर से घेरे जाने योग्य नहीं है। अनन्त है उस प्रभु का ऐश्वर्य। (२) **ज्योतिः न**=प्रकाश की तरह **दक्षिणा**=उस प्रभु का दान भी **विश्वम्**=सम्पूर्ण संसार को **अभ्यस्ति**=अभिभूत करनेवाला है। उस प्रभु की ज्योति व उस प्रभु का दान निरतिशय है, सर्वातिशायी है, सब से अधिक है।

भावार्थ—प्रभु का पराक्रम व ऐश्वर्य अनन्त है। वे प्रभु अपनी ज्योति व अपने दान से सभी को अभिभूत करनेवाले हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'अनूर्मि-वाजी-यम' प्रभु का स्तवन

स्तुहीन्द्रं॑ व्यश्व॒वदनू॑र्मिं वा॒जिनं॒ यम॑म्। अ॒र्यो गयं॒ मंह॑मानं॒ वि दा॒शुषे॑॥ २२॥

(१) **व्यश्ववत्**-व्यश्व की तरह उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाले पुरुष की तरह तू **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु का **स्तुहि**=स्तवन कर, जो **अनूर्मिम्**-(ऊर्मि) शोक-मोह, जरा-मृत्यु व क्षुत् पिपासा रूप ऊर्मियों से रहित हैं 'शोकमोहौ जरामृत्यू क्षुत् पिपासे षडूर्मयः'। उस प्रभु में शोक-मोह आदि किसी भी दुर्बलता का निवास नहीं। **वाजिनम्**-जो प्रभु शक्तिशाली हैं और **यमम्**=सर्वनियन्ता हैं। इस प्रभु का स्तवन करता हुआ स्तोता भी दुर्बलताओं से ऊपर उठने का प्रयत्न करता है, शक्तिशाली बनता है और अपना संयम करनेवाला होता है। (२) उस प्रभु का हम स्तवन करें जो **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिये, प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाले पुरुष के लिये **अर्यः**=काम-क्रोध-लोभरूप शत्रुओं के **गयम्**-गृह को **विमंहमानम्**-विशेषरूप से प्राप्त कराता है। काम ने आज तक इन्द्रियों में अपना निवास बनाया हुआ था, क्रोध ने मन को अपनाया हुआ था और लोभ ने बुद्धि पर अधिकार किया हुआ था। प्रभु इन सब को दूर करके यह शरीर गृह दाश्वान् को प्राप्त कराते हैं। उपासक के जीवन में काम-क्रोध लोभ का निवास नहीं रहता।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन से हम शोक-मोह आदि से ऊपर उठते हैं, शक्तिशाली व संयमी बनते हैं। हमारा शरीर काम-क्रोध-लोभ का घर नहीं बना रहता।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'दशमं नवम्' (स्तुहि)

एवा नूनमुप॑ स्तुहि॒ वैय॑श्व दश॒मं नव॑म्। सुवि॑द्वांसं च॒र्कृत्यं॑ च॒रणी॑नाम्॥ २३॥

(१) **एवा**=गतिशीलता के द्वारा, स्वकर्त्तव्य कर्म में लगे रहने के द्वारा, हे **वैयश्व**=विशिष्ट इन्द्रियाश्वोंवाले स्तोता! तू **नूनम्**-निश्चय से **उपस्तुहि**=उस प्रभु का स्तवन कर, जो प्रभु **दशमम्**=(दश्यत्से शत्रवः अनेन) हमारे शत्रुओं का विध्वंस करनेवाले हैं अतएव **नवम्**-स्तुत्य हैं (नु स्तुतौ)। (२) उस प्रभु का तू स्तवन कर जो **सुविद्वांसम्**=उत्तम ज्ञानी हैं व **चरणीनाम्**=कर्त्तव्य

कर्मों के आचरण में तत्पर मनुष्यों के **चर्कृत्यम्**=फिर-फिर नमस्कार करने योग्य हैं। यह प्रभु नमस्कार ही तो उन्हें शक्ति देता है।

भावार्थ-उस 'शत्रु-विध्वंसक-स्तुत्य-सुविद्वान्-नमस्कर्तव्य' प्रभु का हम स्तवन करें। यह स्तवन ही हमें उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाला व कर्त्तव्य कर्मक्षम बनायेगा।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्रभु-स्मरण व दुर्वृत्तिभङ्ग

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम्। अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव॥ २४॥

(१) हे **वज्रहस्त**=वज्र को हाथ में लिये हुए प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **निर्ऋतीनाम्**=उपद्रवचारी राक्षसी भावों के **परिवृजम्**=परिवर्जन को, हमारे से पृथक् करने को **वेत्था**=जानते हैं। आपका स्मरण व स्तवन होते ही हमारे हृदयों को राक्षसी भाव छोड़कर चले जाते हैं। (२) इसी प्रकार आप इन राक्षसी भावों के परिवर्जन को जानते हैं, **इव**=जिस प्रकार **शुन्ध्युः**=यह सब अन्धकार का शोधन कर देनेवाला सूर्य **अहरहः**=प्रतिदिन **परिपदाम्**=आहार के लिये चारों ओर गतिवाले पशु-पक्षियों के स्वस्थान परिवर्जन को जानता है। सूर्योदय होते ही सब पक्षी घोंसलों को छोड़कर इधर-उधर निकल जाते हैं। इसी प्रकार प्रभु-स्मरण होते ही राक्षसी भाव हृदयों को छोड़ जाते हैं।

भावार्थ-प्रभु-स्मरण राक्षसी भावों को दूर भगा देता है। इनको दूर रखने के लिये दिन-रात प्रभु-स्मरण आवश्यक है। सूर्यास्त होने पर पक्षी जैसे घोंसलों में लौट आते हैं, इसी प्रकार प्रभु का विस्मरण होते ही राक्षसी भावों के लौट आने की आशंका होती है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्रभु-रक्षण के द्वारा ज्ञान व शक्ति का विस्तार

तदिन्द्राव आ भर येना दंसिष्ठ कृत्वने। द्विता कुत्साय शिश्नथो नि चोदय॥ २५॥

(१) हे **दंसिष्ठ**=शत्रुओं का उपक्षय करनेवाले **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **येन**=जिस रक्षण के द्वारा आप **कृत्वने**=कर्त्तव्य कर्मों को करनेवाले पुरुष का पालन करते हैं, **तद् अवः**=उस रक्षण को हमारे लिये **आभर**=प्राप्त कराइये। (२) आप अपने रक्षण के द्वारा **कुत्साय**=वासनाओं का संहार करनेवाले इस पुरुष के लिये **द्विता**=ज्ञान व शक्ति के विस्तार के हेतु से (द्वौ तनोति) **शिश्नथः**=शत्रुओं का संहार करते हैं। शत्रुओं के संहार के द्वारा उसके ज्ञान व सामर्थ्य का वर्धन करते हैं। हमारे लिये भी उस रक्षण को **नि चोदय**=नितरां प्रेरित करिये। आप के इस रक्षण के द्वारा हम शत्रुओं से अनाक्रान्त होकर ज्ञान व शक्ति का वर्धन कर पायें।

भावार्थ-प्रभु कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति का रक्षण करते हैं। वासनाओं का संहार करनेवाला पुरुष प्रभु-रक्षण को प्राप्त करता है। प्रभु से रक्षित व्यक्ति वासनाओं से आक्रान्त न होकर ज्ञान व शक्ति का विस्तार कर पाता है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

अभिमान विजय

तमु त्वा नूनमीमहे नव्यं दंसिष्ठ सन्यसे। स त्वं नो विश्वा अभिमातीः सक्षणिः॥ २६॥

(१) हे **नव्य**=स्तुत्य **दंसिष्ठ**=शत्रुओं का उपक्षय करनेवाले प्रभो! **तं त्वा उ नूनम्**=उन आपको ही निश्चय से **संन्यसे**=सब कामनाओं के त्याग के लिये **ईमहे**=याचना करते हैं। (२)

सः=वे **त्वम्**-आप ही **नः**-हमारे **विश्वाः**=सब **अभिमातीः**-शत्रुओं को, अभिमान आदि आसुरभावों को **सक्षणिः**=पराभूत करनेवाले हैं।

भावार्थ–प्रभु उपासक की कामनाओं व अभिमान आदि आसुर भावों का विनाश करते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

विनाशक पाप से छुटकारा

य ऋक्षादंहसो मुचद्यो वार्यात्सप्त सिन्धुषु। वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः॥ २७॥

यः-जो प्रभु **ऋक्षान्**-(ऋन् मनुष्यान् क्षणोति) मनुष्यों का संहार करनेवाले **अंहसः**=पाप से **मुचत्**-मुक्त करते हैं। **यः वा**-या जो **सप्त सिन्धुषु**=सातों समुद्रों में होनेवाले धनों को स्तोताओं के लिये **अर्यात्**=प्रेरित करते हैं। हे **तुविनृम्ण**=महान् धन व बल वाले प्रभो! वे आप **दासस्य**=हमारा उपक्षय करनेवाले इस वासनारूप शत्रु के **वधः**=वध साधन आयुध को **नीनमः**=नत करते हैं, झुका देते हैं। यह दास हमारा उपक्षय नहीं कर पाता।

भावार्थ–प्रभु पापों से मुक्त करके हमें सब ऐश्वर्यों को देते हैं। हमारा उपक्षय करनेवाली वासना को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—वरोः सौषाम्णस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

पति-पत्नी की दानशीलता

यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिम्। व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति॥ २८॥

(१) यहाँ मन्त्र में पति-पत्नी को 'वरु व सुभगा' कहा गया है। पति वरु है, श्रेष्ठ मार्ग का वरण करनेवाला है, प्रकृति की अपेक्षा प्रभु के मार्ग पर चलनेवाला है। पत्नी घर को सौभाग्य-सम्पन्न बनानेवाली है। इनके लिये कहते हैं कि हे **वरो**=श्रेष्ठ मार्ग का वरण करनेवाले गृह स्वामिन्! तू **यथा**=जैसे **सुषाम्णे**=उत्तम शान्त स्वभाववाले उपासकों के लिये **सनिभ्यः**=संविभावा के लिये **रयिं आवहः**=धन को प्राप्त कराता है। इसी प्रकार हे **वाजिनीवति**=उत्तम अन्नोंवाली **सुभगे**-घर को सौभाग्य सम्पन्न बनानेवाली पत्नि! तू भी **व्यश्वेभ्यः**-उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाले पुरुषों के लिये धन को देनेवाली होती है। (२) वस्तुतः घर में अपने अपने कर्त्तव्य कर्मों को करने के द्वारा घर को उत्तम बनाते हुए पति-पत्नी दोनों का ही कर्त्तव्य है कि उत्तम पुरुषों के लिये उत्तम कार्यों के लिये सदा दान करते ही रहें।

भावार्थ–पति उत्तम मार्ग का वरण करता हुआ घर को ऐश्वर्य-सम्पन्न बनाये तथा पत्नी घर में अन्न की कमी न होने देती हुई घर को सौभाग्य-सम्पन्न रखे। दोनों सदा उत्तम पुरुषों को उत्तम कार्यों के लिये धन देते रहें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—वरोः सौषाम्णस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'व्यश्व सोमी' के लिये दान

आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वाँ एतु सोमिनः। स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत्॥ २९॥

(१) **नार्यस्य**=अतिशयेन नरहितकारी पुरुष (नर्यस्य अपत्यम्) की **दक्षिणा**=दान **व्यश्वान्**=विशिष्ट इन्द्रियाश्ववाले **सोमिनः**-सोमरक्षक पुरुषों को **आ एतु**-सर्वथा प्राप्त हो। गत मन्त्र का

'वरु' ही यहाँ नार्य है। यह उन पुरुषों के लिये दान करता है जो उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाले व सोमरक्षक (संयमी जीवनवाले) हैं। (२) इन दानों से नार्य का धन घट नहीं जाता। अपितु उसका **राधः**= ऐश्वर्य **स्थूरम्**=(स्थूलं) और अधिक बढ़ा हुआ **शतवत्**=सैंकड़ों की संख्यावाला **च**=व **सहस्रवत्**= सहस्रों की संख्यावाला होता है।

भावार्थ—हम परोपकार की वृत्तिवाले बनकर उत्तम इन्द्रियोंवाले संयमी पुरुषों के लिये दान को दें। हमारा यह दिया हुआ दान हमारे ऐश्वर्य को सैंकड़ों व हजारों गुणा बढ़ानेवाला होगा।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—वरोः सौषाम्णस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

गोमती पर अवस्थान

यत्त्वा पृच्छादीजानः कुहया कुहयाकृते। एषो अपश्रितो वलो गोमतीमव तिष्ठति॥ ३०॥

(१) हे **कुहया कुहयाकृते**=(कुहया-कुहया कृतिः यस्य) हे आश्चर्यों और आश्चर्यों को करनेवाले, जादू भरे ब्रह्माण्ड को बनानेवाले प्रभो! **यत्**=जब **ईजानः**=यज्ञशील पुरुष **त्वा पृच्छात्**= आपके विषय में जिज्ञासावाला होता है, तो **एषः**=यह **अपश्रितः**=विषय-वासनाओं से दूर हुआ-हुआ **वलः**=(वरः) काम-क्रोध-लोभ का निवारण करनेवाला जिज्ञासु **गोमतीम्**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाली वेदमाता के समीप **अवतिष्ठति**=अवस्थित होता है, नम्रता से स्थित होता है। (२) संसार को आश्चर्यमय रचनाओं से भरा हुआ देखकर उपासक प्रभु विषयक जिज्ञासावाला बनता है। यह जिज्ञासा उसे विषय-वासनाओं से ऊपर उठाती है। काम-क्रोध-लोभ से दूर होता हुआ यह उपासक स्वाध्याय प्रवृत्त होता है। इस स्वाध्याय के द्वारा यह अपने जीवन को और अधिक पवित्र करता हुआ प्रभु-दर्शन करनेवाला बनता है।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनें। हमारे में प्रभु-विषयक जिज्ञासा हो। यह जिज्ञासा हमें सत्पथ पर प्रवृत्त करेगी। हम स्वाध्यायशील बनकर वेदमाता के चरणों में स्थित होकर पिता प्रभु के प्रिय बन पायेंगे।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'विश्वमना वैयश्व' ही है। यह मित्रावरुणौ की आराधना करता है। 'मित्रावरुणा' का भाव स्नेह व निर्द्वेषता का धारण करना है। ये प्राणापान का भी द्योतन करते हैं—

२५. [पञ्चविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'संसार के रक्षक' मित्रावरुण

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया। ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा॥ १॥

(१) **ता**=वे **वाम्**=आप दोनों (युवां) स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! **विश्वस्य गोपा**=संसार के रक्षक हो। स्नेह व निर्द्वेषता के अभाव में संसार का विनाश है। **देवा**=ये प्रकाशमय हैं, **देवेषु यज्ञिया**=सब दिव्यगुणों में संगतिकरण योग्य हैं। (२) **ऋतावाना**=ये स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमारे जीवनों में ऋत का रक्षण करनेवाले हैं। **पूतदक्षसा**=हमारे बलों को पवित्र बनानेवाले हैं। हे विश्वमना वैयश्व! तू **यजसे**=इनका अपने साथ मेल करता है। इन भावों को अपनाकर ही वस्तुतः तू 'विश्वमना वैयश्व' बनता है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव ही संसार के रक्षक हैं, प्रकाशमय हैं, सब दिव्यगुणों में श्रेष्ठ व संगतिकरण योग्य हैं, हमारे जीवनों में ऋत का रक्षण करते हैं और हमारे बलों को पवित्र बनाते हैं।

ऋषिः —विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः** —निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः** —ऋषभः॥

'सुजाता-तनया-धृतव्रता'

मि॒त्रा त॒ना न र॒थ्या॒३ वरु॑णो॒ यश्च॑ सु॒क्रतुः॑। स॒नात्सु॑जा॒ता तन॑या धृ॒तव्र॑ता॥ २॥

(१) **मित्रा**=स्नेह का भाव, जो **न**=जैसे **तना**=शक्तियों का विस्तार करनेवाला है, उसी प्रकार **रथ्या**=शरीररूप रथ को उत्तमता से ले चलनेवाला है। **यः च**=और जो **वरुणः**=निर्द्वेषता का भाव है, व **सुक्रतुः**-उत्तम प्रज्ञान व शक्तिवाला है। स्नेह से शक्ति वृद्धि होती है और शरीर रथ का उत्तम संचालन होता है। निर्द्वेषता से ज्ञान व शक्ति का वर्धन होता है। (२) ये मित्र और वरुण **सनात्**=सदा से **सुजाता**=उत्तम विकासवाले हैं, **तनया**=शक्तियों का विस्तार करनेवाले हैं और **धृतव्रता**=व्रतों का धारण करनेवाले हैं। स्नेह व निर्द्वेषता से उत्तम विकास-शक्तियों का विस्तार व पुण्य कर्मों का धारण होता है।

भावार्थ-स्नेह यदि हमारी शक्तियों का विस्तार करता है और शरीर-रथ का उत्तम संचालन करता है, तो निर्द्वेषता का भाव हमें **सुक्रतु**-उत्तम कर्मों व प्रज्ञानवाला बनाता है। ये स्नेह व निर्द्वेषता के भाव उत्तम विकासवाले, शक्तियों का विस्तार करनेवाले व पुण्य कर्मों के धारक हैं।

ऋषिः —विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः** —विराडुष्णिक्॥ **स्वरः** —ऋषभः॥

अक्षिति माता से मित्रावरुणौ का जन्म

ता मा॒ता वि॒श्ववे॑दसासु॒र्या॑य॒ प्रम॑हसा। म॒ही ज॑जा॒नादि॑ति॒र्ऋ॒ताव॑री॥ ३॥

(१) **ता**-उन मित्र और वरुण को **ऋतावरी**=ऋत का रक्षण करनेवाली **मही**=महनीय **अदितिः माता**=अदीना देवमाता, स्वास्थ्य की देवता (अ+दिति-अखण्डन, स्वास्थ्य का न टूटना) **जजान**=उत्पन्न करती है। स्वस्थ मनुष्य ही स्नेह व निर्द्वेषता के भावों का धारण करनेवाला होता है। अस्वास्थ्य मनुष्य को चिड़चिड़ा बना देता है। (२) ये मित्र और वरुण **विश्ववेदसा**=सम्पूर्ण आन्तर धनों को प्राप्त करानेवाले हैं और **प्रमहसा**=प्रकृष्ट तेजवाले हैं। स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर सब दिव्यगुण, सारी दैवी सम्पत्ति प्राप्त होती है और हम तेजस्विता का अपने में रक्षण करनेवाले होते हैं। अदिति माता इसलिए मित्रावरुणौ को जन्म देती है कि **असुर्याय**=आसुर भावों का विनाशक बल हमें प्राप्त हो।

भावार्थ-स्वास्थ्य हमारे जीवनों में स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को जन्म देता है। इन स्नेह व निर्द्वेषता के भावों से सम्पूर्ण दैवी सम्पत्ति प्राप्त होती है और प्रकृष्ट तेज प्राप्त होता है। ये मित्रावरुण सब आसुर भावों के विनाशक बल को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः —विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः** —उष्णिक्॥ **स्वरः** —ऋषभः॥

सम्राजा देवौ असुरा

म॒हान्ता॑ मि॒त्रावरु॑णा स॒म्राजा॑ दे॒वावसु॑रा। ऋ॒तावा॑ना॒वृ॒तमा घो॑षतो बृ॒हत्॥ ४॥

(१) **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के भाव **महान्ता**=महान् हैं, महिमावाले हैं, पूज्य हैं। **सम्राजा**=ये जीवन को सम्यक् राजमान (दीप्त) बनाते हैं। **देवौ**=प्रकाशमय हैं और **असुरा**=प्राणशक्ति का संचार करनेवाले हैं। द्वेष प्राणशक्ति के ह्रास का कारण होता है। (२) **ऋतावानौ**=ऋत का रक्षण करनेवाले ये मित्र और वरुण **बृहत् ऋतम्**=वृद्धि के कारणभूत ऋत को **आघोषतः**=हमारे जीवन में उच्चारित करते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता के भावों से हमारा जीवन **ऋतमय**=यज्ञमय बनता है।

भावार्थ–स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमारे जीवनों को यज्ञमय बनाते हैं। इन यज्ञों के द्वारा ये हमें दीप्त, दिव्यगुणयुक्त व प्राणशक्ति सम्पन्न करते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः ॥ **देवता**—मित्रावरुणौ ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक् ॥ **स्वरः**—ऋषभः ॥

'शक्ति को न गिरने देनेवाले, उन्नति के प्रेरक' मित्रावरुणौ

नपाता शवसो महः सूनू दक्षस्य सुक्रतू। सृप्रदानू इषो वास्त्वधि क्षितः ॥ ५ ॥

(१) वे मित्र और वरुण=स्नेह व निर्द्वेषता के भाव **महः शवसः नपातः**=महान् बल के न नष्ट होने देनेवाले हैं। **दक्षस्य सूनू**=उन्नति के प्रेरक हैं (दक्ष् To grow)। **सुक्रतू**=शोभन प्रज्ञानों व कर्मोंवाले हैं। (२) **इषः**-प्रभु प्रेरणा को प्राप्त कराने के द्वारा **सृप्रदानू**=विस्तृत रूप में वासनाओं का **लवन**=खण्डन करनेवाले हैं (दाप् लवने)। ये मित्र और वरुण **वास्तु अधि**=इस शरीर गृह में **क्षितः**=निवास करते हैं।

भावार्थ–मेरे जीवन में स्नेह व निर्द्वेषता शक्ति को नष्ट नहीं होने देते, उन्नति का कारण बनते हैं। ये उत्तम शक्ति व प्रज्ञान को उत्पन्न करते हैं। प्रभु प्रेरणा के द्वारा वासनाओं को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः ॥ **देवता**—मित्रावरुणौ ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक् ॥ **स्वरः**—ऋषभः ॥

सब धन, दिव्य व पार्थिव प्रेरणायें, आनन्द की वृष्टि

सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः। नभस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः ॥ ६ ॥

(१) **या**=जो आप हे मित्र और वरुण! **दानूनि**=सब देय धनों को **संयेमथुः**=हमारे लिये देते हो, उन **वाम्**=आपको **दिव्याः**=मस्तिष्करूप द्युलोक सम्बन्धी तथा **पार्थिवीः**=शरीररूप पृथिवी सम्बन्धी **इषः**=प्रेरणायें **आचरन्तु**=प्राप्त हों। अर्थात् स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर हृदयस्थ प्रभु के द्वारा मस्तिष्क व शरीर को ठीक बनाये रखने के लिये प्रेरणायें प्राप्त होती हैं। (२) इन प्रेरणाओं को प्राप्त करने पर और तदनुसार जीवन को बनाने पर **नभस्वतीः**=धर्ममेघ समाधि में मस्तिष्करूप आकाश से होनेवाली **वृष्टयः**=आनन्द की वर्षायें **आचरन्तु**=हमें सर्वथा प्राप्त हों।

भावार्थ–स्नेह व निर्द्वेषता से सब दैवी सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। मस्तिष्क व शरीर सम्बन्धी प्रेरणायें हृदयस्थ प्रभु से हमारे लिये दी जाती हैं। और अन्ततः धर्ममेघ समाधि में पहुँचकर हम आनन्द की वृष्टियों का अनुभव करते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः ॥ **देवता**—मित्रावरुणौ ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक् ॥ **स्वरः**—ऋषभः ॥

यज्ञ-दीप्ति-नम्रता

अधि या बृहतो दिवोऽऽभि यूथेव पश्यतः। ऋतावाना सम्राजा नमसे हिता ॥ ७ ॥

(१) **या**=जो मित्र और वरुण हैं, स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हैं, ये **बृहतः दिवः**=महान् दिव्यगुणों को हमारे जीवनों में **अधि पश्यतः**=आधिक्येन देखते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमारे में दिव्यगुणों को जन्म देते हैं। इस प्रकार ये दिव्यगुणों का ध्यान करते हैं, **इव**=जैसे पालक लोग **यूथा अभि**=गौओं आदि के झुण्डों को देखते हैं। (२) ये मित्र और वरुण **ऋतावाना**=ऋत का, यज्ञ का रक्षण करनेवाले हैं, **सम्राजा**=हमारे जीवनों को सम्यक् दीप्त करनेवाले हैं। और **नमसे हिता**=नमन के लिये हितकर हैं। अर्थात् स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमारे में अभिमान को नहीं उत्पन्न होने देते।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता से (क) दिव्यगुणों की उत्पत्ति होती है, (ख) ऋत का रक्षण होता है, (ग) जीवन देदीप्यमान बनता है और (घ) नम्रता व निरभिमानता की स्थापना होती है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

ऋतावाना, धृतव्रता, क्षत्रिया

ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू। धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः॥ ८॥

(१) **ऋतावाना**=ऋत का, यज्ञ का रक्षण करनेवाले मित्र और वरुण (स्नेह व निर्द्वेषता के भाव) **साम्राज्याय**=जीवन को सम्यक् दीप्त करने के लिये **निषेदतुः**=निषण्ण होते हैं। हमारे जीवनों में स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर दीप्ति प्राप्त होती है। ये **सुक्रतू**-शोभन कर्मों व प्रज्ञानोंवाले हैं। (२) ये मित्र और वरुण **धृतव्रता**=व्रतों व पुण्यों का धारण करनेवाले हैं, **क्षत्रिया**=सब क्षतों से हमारा त्राण (रक्षण) करनेवाले हैं। **क्षत्रं आशतुः** ये शरीर में बल का व्यापन करते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता के अभाव में विष उत्पन्न होकर शरीर की शक्ति का ह्रास करते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता से शरीर में दीप्ति प्रज्ञान व उत्तम कर्मों की स्थिति होती है। हम पुण्य कर्मों को करते हुए बल का व्यापन करते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

सन्मार्गदर्शक 'मित्रावरुणौ'

अक्ष्णश्चिद्गातुवित्तरानुल्बणेन चक्षसा। नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः॥ ९॥

(१) ये मित्र और वरुण=स्नेह व निर्द्वेषता के भाव **अक्ष्णः चित्**=आँखों से भी अधिक **गातुवित्तरा**=मार्ग को जाननेवाले हैं। स्नेह व निर्द्वेषता ठीक ही मार्ग को दिखाते हैं। द्वेष में मनुष्य गलत सोचता है। (२) ये स्नेह व निर्द्वेषता **अनुल्बणेन चक्षसा चित्**=न दुःसह तेजवाली सौम्य दृष्टि से ही अथवा अनुरवण-अदुःखद-वचनों से ही (चक्ष् व्यक्तायां वाचि) **निमिषन्ता**=सब व्यवहारों को करते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता में कटुता का स्थान नहीं रहता। (३) ये स्नेह व निर्द्वेषता **निचिरा**=नितरां चिरन्तन होते हुए, अर्थात् दीर्घायुष्यवाले होते हुए **निचिक्यतुः**=(पूजितौ बभूवतुः सा०) सत्कार के योग्य होते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता से दीर्घायुष्य प्राप्त होता है तथा जीवन सत्करणीय बनता है। लोग ऐसे जीवन को आदर की दृष्टि से देखते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता से (१) हमें जीवन का ठीक मार्ग दिखता है, (२) हमारे सब व्यवहार मधुर होते हैं, (३) दीर्घ सत्करणीय जीवन प्राप्त होता है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

अदितिः-नासत्या-मरुतः

उत नो देव्यदितिरुरुष्यन्तां नासत्या। उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः॥ १०॥

(१) **उत**=और **देवी**=दिव्यगुणों की जननी **अदितिः**=स्वास्थ्य की देवता **नः**=हमें **उरुष्यताम्**= रक्षित करे यह अदिति ही 'मित्र और वरुण' को जन्म देकर, स्नेह व निर्द्वेषता को उत्पन्न करके, हमारा रक्षण करती है। **नासत्या**=सब असत्यों को दूर करनेवाले अश्विनीदेव हमारा रक्षण करें। (२) **वृद्धशवसः**=बढ़े हुए बलवाले **मरुतः**=प्राण **उरुष्यन्तु**=हमारा रक्षण करें।

भावार्थ—'दिव्यगुणों को जन्म देनेवाली स्वास्थ्य की देवता, प्राणापान तथा शरीर में कार्य करनेवाले अन्य प्राण' ये सब हमारा रक्षण करें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

शरीररूप नाव का रक्षण

ते नो नावमुरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवः। अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि॥ ११॥

(१) हे मरुतो-प्राणो! **सुदानवः**=सम्यक् वासनाओं को खण्डित करनेवाले **ते**=वे आप **नः**=हमारी **नावम्**=नौका को, इस जीवन-यात्रा की पूर्णता की साधनभूत शरीररूप नाव को **दिवा नक्तम्**=दिन-रात **उरुष्यत**=रक्षित करो। (२) हम **अरिष्यन्तः**=अहिंसित होते हुए **पायुभिः**=रक्षक प्राणों से **निसचेमहि**=नितरां समवेत हों।

भावार्थ—प्राण ही सुदानु हैं, सम्यक् वासनारूप शत्रुओं का खण्डन करनेवाले हैं। ये हमारी शरीररूप नाव का रक्षण करें। हम इन रक्षक प्राणों के साथ सदा समवेत हों।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

अरिष्यन्तः (अहिंसा धर्म का पालन करनेवाले)

अघ्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे। श्रुधि स्वयावन्त्सिन्धो पूर्वचित्तये॥ १२॥

(१) **वयम्**=हम **अरिष्यन्तः**=किसी की हिंसा न करते हुए **अघ्नते**=उस अहिंसक, **विष्णवे**=सर्वव्यापक व सर्वाधार, **सुदानवे**=यज्ञय दानशील **पूर्वचित्तये**=पूर्ण ज्ञानी प्रभु के लिये हों। उस प्रभु का स्तवन करें। प्रभु के स्तवन का सर्वोत्तम प्रकार यही है कि हम अहिंसक बनें, किसी का बुरा न करें। (२) हे **स्वयावन्**=अपने सामर्थ्य से सब गतियों को करनेवाले, **सिन्धो**= आनन्द रस के सागर अथवा स्तोताओं के प्रति सब धनों को प्रवाहित करनेवाले (स्यन्दनशील) प्रभो! **श्रुधि**=आप हमारी प्रार्थना को सुनिये। प्रभु से हमारी प्रार्थना तभी सुनी जायेगी जब कि हम भी 'स्वयावा व सिन्धु' बनने का प्रयत्न करेंगे।

भावार्थ—हम अहिंसक बनकर अहिंसक प्रभु के सच्चे स्तोता बनें। अपना कार्य अपने आप करनेवाले व धनों का दान करनेवाले बनें जिससे हमारी प्रार्थना सुनी जाये।

सूचना-'अरिष्यन्तः' का भाव वासनाओं से हिंसित न होते हुए भी है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—मित्रावरुणौ॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'वार्य, वरिष्ठ, गोपयत्य' धन

तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम्। मित्रो यत्पान्ति वरुणो यदर्यमा॥ १३॥

(१) हम **तत्**=उस **वार्यम्**=वरने के योग्य, **वरिष्ठम्**=उरुत्तर-विशाल **गोपयत्यम्**=सब के रक्षक धन को **वृणीमहे**=वरते हैं। ऐसा ही धन चाहते हैं, जो सचमुच श्रेष्ठ विशाल व सर्वरक्षक हो। (२) उस धन को हम चाहते हैं **यत्**=जिसे **मित्रः**=सब के साथ स्नेह करनेवाले **वरुणः**=व निर्द्वेषता की भावनावाले व्यक्ति **पान्ति**=रक्षित करते हैं। उस धन को **यत्**=जिसे **अर्यमा**=काम-क्रोध-लोभ को वश में करनेवाले व्यक्ति सुरक्षित करते हैं।

भावार्थ—हमें वरणीय विशाल सर्वरक्षक धन प्राप्त हो। हम स्नेहवाले निर्द्वेष व काम-क्रोध आदि को वश में करनेवाले व्यक्तियों से रक्षित धन को प्राप्त करें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—मित्रावरुणौ॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'स्वास्थ्य व प्रसाद' रूप धन का रक्षण

उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना। इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सजोषसः॥ १४॥

(१) **उत**=और **नः**-हमारे **तत्**=उस धन को **अपां सिन्धुः**=शक्ति कणों को हमारे में प्रवाहित करनेवाली देवता सुरक्षित करे। **तत्**=उस धन को **मरुतः**=प्राण तथा **अश्विना**=सूर्य और चन्द्र (दायां व बायां स्वर) सुरक्षित करें। स्पष्ट है कि यह धन स्वास्थ्य का धन है। इसे ये सब देव सुरक्षित करें। (२) **इन्द्रः**=जितेन्द्रियता की देवता तथा **विष्णुः**=व्यापकता, उदारता का भाव उस धन को सुरक्षित करे। ये सब देव **सजोषसः**-समान रूप से प्रीतिवाले होते हुए हमारे लिये **मीढ्वांसः**=सुखों का सेचन करनेवाले हैं।

भावार्थ-हम शक्तिकणों का रक्षण करें, प्राणसाधना में प्रवृत्त हों, दायें व बायें नासा के स्वर को (सूर्य-चन्द्र) ठीक रखें। जितेन्द्रिय व उदार हृदय बनें। ये सब देव हमारे स्वास्थ्य व प्रसाद रूप धन का रक्षण करेंगे।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

शत्रु के अभिमान को कुचलना

ते हि ष्मा वनुषो नरोऽभिमातिं कयस्य चित्। तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः॥ १५॥

(१) **ते**=वे **हि**=ही **ष्मा**=निश्चय से **वनुषः नरः**=प्रभु का सम्भजन करनेवाले, उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य हैं, जो **कयस्य चित्**=किसी भी शत्रु के **अभिमतिम्**=अभिमान को **प्रतिघ्नन्ति**=विनष्ट कर देते हैं। सब शत्रुओं को वशीभूत करना ही प्रभु का सच्चा सम्भजन है। (२) ये **भूर्णयः**=ठीक प्रकार से पोषण करनेवाले लोग इन 'काम-क्रोध-लोभ' आदि शत्रुओं की सत्ता को इस प्रकार विनष्ट करते हैं, **न**-जैसे **तिग्मं क्षोदः**=तीव्र वेगवाला जल-प्रवाह सामने आये वृक्षों को उखाड़ फेंकता है।

भावार्थ-प्रभु के सच्चे उपासक उन्नतिशील मनुष्य वही हैं, जो काम-क्रोध-लोभ के वेग को समाप्त करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

विश्पतिः

अयमेक इत्था पुरूरु चष्टे वि विश्पतिः। तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि॥ १६॥

(१) **अयम्**=यह प्रभु **एकः**=अकेला ही **इत्था**=सचमुच **पुरू**=(पुरूणि) बहुत **उरु**=(उरूणि) विशाल लोकों को **विचष्टे**=विशेषरूप से प्रकाशित करता है। **विश्पतिः**=वही सब प्रजाओं का स्वामी है, वही सब का रक्षक है। (२) **तस्य व्रतानि**=उस प्रभु के व्रतों के **अनु चरामसि**=अनुकूल आचरण करते हैं। **वः**=तुम सब के हित के लिये प्रभु के व्रतों का हम पालन करते हैं। 'सबका पालन करना, व सब का रक्षण' ही प्रभु का सर्वमहान् व्रत है। इस व्रत का पालन ही प्रभु प्राप्ति का उपाय है।

भावार्थ-प्रभु अकेले ही सब विशाल लोकों का प्रकाशन कर रहे हैं। प्रभु ही सब प्रजाओं के रक्षक हैं। हम भी प्रभु के व्रतों का अनुचरण करते हुए सर्वहित में प्रवृत्त होते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

मित्र और वरुण के व्रतों का पालन

अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम। मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत्॥ १७॥

(१) (साम्राज्यम् अस्य अस्मि) **साम्राज्यस्य**=इस सृष्टिरूप सत्य साम्राज्यवाले (इन्द्रः सत्यः सम्राट्) **मित्रस्य**=पापों से बचानेवाले (प्रमीतेः त्रायते) अथवा सब के प्रति स्नेह करनेवाले प्रभु के

पूर्वाणि=पालन व पूरण करनेवाले अथवा पूर्णता को लिये हुए **ओक्या**=गृह हितकारी नियमों को **अनु सश्चिम**=पालित करें। प्रभु से निर्दिष्ट नियमों के अनुसार ही घरों में वर्तें। नियमानुकूल वर्तन ही गृहों का कल्याण करेगा। (२) **दीर्घश्रुत्**=(दीर्घश्रुतः) उस दीर्घदर्शी सर्वज्ञ **वरुण**=पापों व द्वेषों से निवारित करनेवाले प्रभु के **व्रता**=कर्मों का हम अनुकरण करें। वरुण के व्रतों का पालन करते हुए हम कभी बन्धन में न पड़ेंगे।

भावार्थ-हम उस सब के मित्र सम्राट् के गृह हितकारी नियमों का पालन करते हुए घरों को उत्तम बनायें। उस सर्वज्ञ वरुण के व्रतों का पालन करते हुए सब बन्धनों से ऊपर उठें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्रभु की महिमा का सर्वत्र दर्शन

परि यो रश्मिना दिवोऽन्तान्ममे पृथिव्याः। उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा॥ १८॥

(१) **यः**=जो प्रभु हैं, वे **दिवः**=द्युलोक के तथा **पृथिव्याः**=पृथिवीलोक के **अन्तान्**=अन्तों को **रश्मिना**=अपने तेज से **परिममे**=(परिमिनोति) मापते हैं, अपने प्रकाश से द्युलोक व पृथिवीलोक के अन्तों को अवभासित करते हैं। (२) वे प्रभु **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी को **महित्वा**=अपनी महिमा से **आपप्रौ**=पूरित करते हैं। इन द्यावापृथिवी में सर्वत्र प्रभु की महिमा का प्रकाश हो रहा है।

भावार्थ-प्रभु द्युलोक, पृथिवीलोक को अपने प्रकाश से प्रकाशित कर रहे हैं। इन लोकों में सर्वत्र प्रभु की महिमा का प्रकाश हो रहा है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्रभु ही 'सूर्य' हैं, प्रभु ही 'अग्नि'

उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः। अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः॥ १९

(१) **स्यः**=वे प्रभु **सूर्यः**=सूर्य हैं। और **दिवः शरणे**=इस देदीप्यमान आदित्य के गृह में, अर्थात् द्युलोक में **ज्योतिः उदयंस्त**=प्रकाश को उदित करते हैं। सम्पूर्ण द्युलोक को प्रभु ही अवभासित करते हैं। यह सूर्य व ये सब नक्षत्र प्रभु के प्रकाश से ही तो प्रकाशित हो रहे हैं। सूर्य के भी सूर्य प्रभु ही हैं। (२) ये प्रभु ही **अग्निः न**=इस अग्निदेव के समान **शुक्रः**=देदीप्यमान हैं। **समिधानः**=स्तोताओं से अपने हृदयों में समिद्ध किये जाते हैं और **आहुतः**=(आ हुते यस्य) सर्वत्र दानोंवाले हैं। और अन्ततः सब प्रभु के प्रति ही अपना अर्पण करते हैं।

भावार्थ-प्रभु ही सूर्य के रूप में द्युलोक को अवभासित करते हैं। प्रभु ही अग्नि के रूप में समिद्ध व आहुत होते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्रभु रूप महान् बन

वचो दीर्घप्रसद्मनीशे वाजस्य गोमतः। ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने॥ २०॥

(१) **दीर्घप्रसद्मनि**=इस महान् प्रकृष्ट भवनभूत, सब के शरण दाता प्रभु के विषय में **वचः**=स्तुति-वचनों का उच्चारण कर। ये प्रभु ही **गोमतः**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले व प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाले बल को **ईशे**=ईश हैं। प्रभु ही प्रशस्त इन्द्रियों को, ज्ञान को व बल को देते हैं। (२) वे प्रभु **हि**=ही **अविषस्य**=सब प्रकार के विषैले प्रभावों से रहित **पित्वः**=अन्न के **दावने**=देने में **ईशे**=ईश हैं। प्रभु ही अमृततुल्य पोषक अन्नों को भी प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ–प्रभु ही महान् भवन हैं, सब की शरण हैं। ये प्रभु ही प्रशस्त इन्द्रियों को, ज्ञान व शक्ति को तथा निर्विघ्न अन्न को देने में समर्थ हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्रभु-स्तवन व दानशीलता

तत्सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे। भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा॥ २१॥

(१) मैं **दोषावस्तोः**=दिन-रात **उभे रोदसीः**-इन दोनों द्यावापृथिवी के **तत्**=उस **सूर्यम्**=प्रकाशक प्रभु को **उपब्रेव**=उपासना में स्थित होकर स्तुत करता हूँ। प्रभु ही तो इन द्युलोक व पृथिवीलोक के अन्तों को अपनी रश्मियों से अवभासित कर रहे हैं। (२) हे प्रभो! आप **सदा**-हमेशा **अस्मान्**=हमें **भोजेषु**-पालन करनेवाले पुरुषों में **अभि उत चर**-उत्कृष्ट गतिवाला करिये, उन्नत करिये। हम भोजों में उत्कृष्ट भोज बनें, खूब दानशील हों।

भावार्थ–हम द्यावापृथिवी में सर्वत्र प्रभु के प्रकाश को देखते हुए प्रभु का गुणगान करें। प्रभु हमें उत्कृष्ट दानशील बनायें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'ऋज्रः रजत-युक्त' रथ

ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे। रथं युक्तमसनाम सुषामणि॥ २२॥

(१) यह शरीर रथ है, जो प्रभु से जीवनयात्रा की पूर्ति के लिये दिया जाता है। प्रभु कहते हैं कि **उक्षण्यायने**–उक्षण में, शरीर में ही शक्ति के सेचन में, उत्तम पुरुष में, अर्थात् उत्पन्न वीर्यशक्ति को जो प्राणायाम आदि के द्वारा शरीर में ही सिक्त करता है, उस पुरुष में हम **ऋज्रम्**=ऋजुमार्ग से गति करनेवाले इस **रथम्**=शरीररथ को **असनाम**=(सन् To bestow) देते हैं। शक्ति को शरीर में सिक्त करनेवाला पुरुष कुटिल स्वभाव नहीं होता। (२) **हरयाणे**=काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं का हरण करनेवाले में, इनको हरा देनेवाले में **रजतम्**=रजत सदृश देदीप्यमान, तेजस्वी अथवा रञ्जनात्मक रथ को हम देते हैं। हरयाण का रथ दीप्त व सब का रञ्जन करनेवाला होता है। यह किसी को अपने व्यवहार से पीड़ित नहीं करता। (३) **सुषामणि**=शोभन सामवाले, शान्तवृत्तिवाले व उत्तम स्तोत्रोंवाले पुरुष में **युक्तम**=(रथं असनाम) साम्य बुद्धि से युक्त रथ को देते हैं। सुषामा पुरुष साम्य बुद्धि से युक्त होकर स्थितप्रज्ञ बन जाता है। यह डाँवाडोल नहीं होता।

भावार्थ–उक्षण्यायन का रथ ऋज्र होता है। हरयाण का रजत तथा सुषामा का रथ शोभायुक्त होता है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—आर्च्युष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

इन्द्रियाश्व कैसे?

ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना। उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा॥ २३॥

(१) गत मन्त्र में उत्तम शरीररथ का वर्णन किया था। प्रस्तुत मन्त्र में उत्तम इन्द्रियाश्वों का उल्लेख करते हैं, **मे**=मेरे **ता**=वे ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप अश्व **हरीणाम्**=हरित वर्ण दीप्त (हरि=A ray of light) **अश्व्यानाम्**-अश्व संघों के बीच में **नितोशना**=शत्रुओं का बाधन करनेवाले हैं। ये मेरे इन्द्रियाश्व काम रूप शत्रु से आक्रान्त नहीं होते। (२) **उत**=और **उ**=निश्चय से **नु**=अब **ये अश्व कृत्व्यानाम्**-कर्त्तव्य कर्मों के करने में कुशल अश्वों में कुशल होते हुए शत्रुओं के बाधक होते हैं। ये **नृवाहसा**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोगों को लक्ष्य-स्थान पर ले जानेवाले हैं।

भावार्थ—हमारे इन्द्रियाश्व काम आदि शत्रुओं के बाधक, कर्त्तव्य कर्मों को करने में कुशल व नरों को लक्ष्य-स्थान पर ले जानेवाले हों।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

वाजिनौ अर्वन्तौ

स्मदभीशू कशावन्ता विप्रा नविष्ठया मती। महो वाजिनावर्वन्ता सचासनम्॥ २४॥

(१) **स्मद् अभीशू**=शोभन शरीर की कान्तिवाले अथवा शोभन लगामवाले, **कशावन्ता**=अर्थों को प्रकाशक शुभ वाणीवाले, **विप्रा**=विशेषरूप से पूरण करनेवाले, मेधाविता से युक्त इन्द्रियाश्वों को **नविष्ठया मती**=अत्यन्त स्तुत्य बुद्धि के साथ **सचा**=साथ-साथ **असनम्**=प्राप्त करता हूँ। (२) ये इन्द्रियाश्व **महः वाजिनौ**=बड़े शक्तिशाली व **अर्वन्ता**=वासनाओं का संहार करनेवाले हैं। इन इन्द्रियाश्वों के द्वारा ही तो मैं लक्ष्य-स्थान पर पहुँचूँगा।

भावार्थ—हमारे इन्द्रियाश्व प्रशस्त लगामवाले, प्रशस्त शब्दोंवाले, पूरण को करनेवाले, शक्तिशाली व वासनाओं का संहार करनेवाले हों। इनको मैं स्तुत्य बुद्धि के साथ प्राप्त करता हूँ।

अगले सूक्त का भी ऋषि 'विश्वमना वैयश्व' ही है—

२६. [षड्विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

अतूर्तदक्षा (अश्विना)

युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु। अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू॥ १॥

(१) हे अश्विनौ (प्राणापानो)! **युवोः**=आप के निश्चय से **रथम्**=इस शरीररूप रथ को **सु हुवे**=सम्यक् पुकारता हूँ। **सूरिषु**=ज्ञानी पुरुषों में **सधस्तुत्याय**=मिलकर स्तुति करने योग्य उस प्रभु की प्राप्ति के लिये। प्रभु की प्राप्ति इस प्राणापान के रथ के द्वारा ही होती है। अर्थात् प्राणायाम द्वारा चित्तवृत्ति निरोध के होने पर ही प्रभु का साक्षात्कार होता है। इस प्रभु का ज्ञानी लोग मिलकर स्तवन करते हैं। (२) ये प्राणापान **अतूर्तदक्षा**=अहिंसित बलवाले, **वृषणा**=शक्तिशाली व **वृषण्वसू**=सुखों के वर्षक धनवाले हैं। प्राणसाधना के द्वारा वह बल प्राप्त होता है, जो किन्हीं भी आन्तर शत्रुओं से हिंसित नहीं होता। ये हमें बलवान् बनाते हैं और उन सब वसुओं को प्राप्त कराते हैं, जो हमारे जीवन में सुखों का वर्षण करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना के होने पर ज्ञानी पुरुष मिलकर प्रभु का स्तवन करते हैं। ये प्राणापान अहिंसित बलवाले, शक्तिशाली व सुखवर्षक वसुओंवाले हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

वृषणा वृषण्वसू

युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या। अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू॥ २॥

(१) हे **नासत्या**=असत्य से रहित अश्विनीदेवो-प्राणापानो! **युवम्**=आप **उ**=निश्चय से **वरा**=वरने के योग्य हो। आपकी साधना ही मनुष्य का महान् कर्त्तव्य है। आप **सुषाम्णे**=उत्तम साम-शान्ति व उपासना वाले पुरुष के लिये **महे तने**=शक्तियों के महान् विस्तार के लिये होते हो। (२) हे प्राणापानो! आप **वृषणा**=शक्तिशाली हो, **वृषण्वसू**=सुखवर्षक वसुओंवाले हो। **अवोभिः याथः**=सब रक्षणों के हेतु से आप हमें प्राप्त होते हो। शरीर में शक्ति की ऊर्ध्वगति

करके 'शरीर, मन व बुद्धि' का आप ही रक्षण करते हो।

भावार्थ—मनुष्य को इस जीवन में प्राणसाधना का ही वरण करना चाहिये। यही उसकी शक्तियों के विस्तार को करेगी। यही उसका सर्वथा रक्षण करेगी।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

इषः इषयन्तौ (अश्विनौ)

ता वा॒मद्य ह॑वामहे ह॒व्येभि॑र्वाजिनीवसू। पू॒र्वीरि॒ष इ॒षय॑न्ता॒वति॑ क्ष॒पः॥ ३॥

(१) हे **वाजिनीवसू**=शक्तिरूप धनोंवाले प्राणापानो! **ता वाम्**=उन आपको **अद्य**=आज **हव्येभिः**=हव्य पदार्थों के साथ **हवामहे**=हम पुकारते हैं। प्राणसाधना के साथ हव्य पदार्थों का सेवन आवश्यक है। आराधित प्राणापान हमारे लिये शक्तिरूप धनों को प्राप्त कराते हैं। (२) उन आपको हम पुकारते हैं, जो आप **अतिक्षपः**=(क्षपायाः अति क्रमे) अज्ञान रात्रि के समाप्त होने पर **पूर्वीः**=हमारा पालन व पूरण करनेवाली **इषः**=प्रभु प्रेरणाओं को **इषयन्तौ**=हमारे लिये प्रेरित करते हो, प्राणसाधना से अज्ञानान्धकार का विनाश होता है। हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणायें सुनाई पड़ती हैं। ये प्रेरणायें हमारा पालन व पूरण करती हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना के साथ यज्ञिय सात्त्विक आहार का ही सेवन करना चाहिये। ये प्राणापान अज्ञानान्धकार का ध्वंस करके हमें प्रभु प्रेरणा के सुनने के योग्य बनाते हैं, ये प्रेरणायें ही हमारा पालन व पूरण करती हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'श्रुत वाहिष्ठ' रथ

आ वां॒ वाहि॑ष्ठो अश्विना॒ रथो॑ यातु श्रु॒तो न॑रा। उप॒ स्तोमा॑न्तु॒रस्य॑ दर्शथः श्रि॒ये॥ ४॥

(१) हे **नरा**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले **अश्विना**=प्राणापानो! **वाम्**=आपका **वाहिष्ठः**-जीवनयात्रा में उत्तमता से आगे और आगे ले चलनेवाला **श्रुतः**=प्रसिद्ध अथवा ज्ञान के श्रवण से युक्त **रथः**=यह शरीररथ **आयातु**=हमें प्राप्त हो। प्राणसाधना के होने पर यह शरीरस्थ बड़ा दृढ़ बना रहता है, यह ज्ञानाग्नि से प्रकाशमय बन जाता है। यह श्रुत वाहिष्ठ रथ हमारी जीवनयात्रा की पूर्ति का उत्तम साधन बनता है। (२) हे अश्विनौ! आप **तुरस्य**=वासनाओं का संहार करनेवाले प्रभु की **स्तोमान्**=स्तुतियों का **उपदर्शथः**=हमें ज्ञान कराते हो, हमें स्तुति की वृत्ति का बनाते हो। **श्रिये**-जिससे हमारा जीवन शोभावाला हो। प्राणसाधक पुरुष प्रभु-स्तवन करता हुआ जीवन को बड़ा शोभामय बनाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से यह शरीर-रथ 'वाहिष्ठ व श्रुत' बनता है, दृढ़ प्रकाशमय। प्राणसाधक प्रभु-स्तवन करता हुआ जीवन को श्री-सम्पन्न बनाता है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

जुहुराणा चित् मन्येथाम्

जु॒हु॒रा॒णा चि॑दश्वि॒ना म॑न्येथां वृषणवसू। यु॒वं हि रु॑द्रा॒ पर्ष॑थो॒ अति॒ द्विषः॑॥ ५॥

(१) हे **वषणवसू**-सुखवर्षक वसुओं को प्राप्त करानेवाले **अश्विना**=प्राणापानो! आप **जुहुराणा चित्**=शरीर में नस-नाड़ियों में टेढ़ी-मेढ़ी (crooked) गति करते हुए भी **मन्येथाम्**=हमें ज्ञान की वृद्धिवाला करते हो। प्राण ज्ञान प्रकार से विविध नाड़ियों में से कुञ्चित गतिवाले होते हैं। ये प्राण शक्ति की ऊर्ध्वगति द्वारा ज्ञानाग्नि के दीपन का कारण बनते हैं। (२) **युवम्**=आप

हि=ही **रुद्रा**=सब रोगों को दूर भगानेवाले हो। **द्विषः अतिपर्षथः**=द्वेष की भावनाओं से हमें पार करते हो। (हतम्) द्वेष की भावनाओं को आप विनष्ट करते हो।

भावार्थ–प्राणापान शरीर नाड़ीचक्र में टेढ़ी–मेढ़ी गति से घूमते हुए भी हमारी ज्ञान वृद्धि का कारण बनते हैं और द्वेष की भावनाओं को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसःङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—उष्णिक्ङ्क **स्वरः**—ऋषभःङ्क

धियञ्जिन्वा-मधुवर्णा-शुभस्पती

दस्रा हि विश्वमानुषङ्मक्षूभिः परिदीयथः। धियंजिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती॥ ६॥

(१) हे प्राणापानो! आप **दस्रा हि**=निश्चय से शत्रुओं का उपक्षय करनेवाले हो। **विश्वम्**=सब व्यक्तियों को **आनुषक्**=निरन्तर **मक्षूभिः**=शीघ्रगामी इन्द्रियाश्वों के साथ **परिदीयथः**=समन्तात् प्राप्त होते हैं, प्राणसाधना से वासनारूप शत्रुओं का विनाश होता है और ये प्राणापान इन्द्रियों को शक्ति–सम्पन्न बनाकर कार्यों में त्वरित गतिवाला करते हैं। (२) हे प्राणापानो! आप **धियञ्जिन्वा**= बुद्धियों को प्रेरित करनेवाले हो। प्राणसाधना से बुद्धि सूक्ष्म और सूक्ष्मतर बनती चलती है। **मधुवर्णा**–ये प्राणापान अत्यन्त मधुरवर्णवाले कान्तिमान् हैं। शरीर को ये शक्ति रक्षण द्वारा 'मधुवर्ण' बनाते हैं। **शुभस्पती**=ये शरीर में रेतःकणरूप जलों के रक्षक हैं। इस रेतःकण रूप जल के रक्षण के द्वारा ही ये 'धियञ्जिन्वा' व 'मधुवर्णा' होते हैं, वीर्यशक्ति ही बुद्धि को तीव्र व शरीर को तेजस्वी बनाता है।

भावार्थ–प्राणापान वासनाविलय के द्वारा तीव्र गतिवाले इन्द्रियाश्वों के साथ हमें प्राप्त होते हैं। ये बुद्धि को प्रेरित करते हैं, शरीर को कान्ति–सम्पन्न बनाते हैं, शरीर में रेतःकणों का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसःङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—उष्णिक्ङ्क **स्वरः**—ऋषभःङ्क

राया विश्वपुषा सह

उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह। मघवाना सुवीरावनपच्युता॥ ७॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **नः**=हमें **विश्वपुषा राया सह**=सब का पोषण करनेवाले धन के साथ **उपयातम्**=प्राप्त होवो। प्राणसाधक धनार्जन करता है, यह धन केवल उसका पोषण न करके सबका पोषण करनेवाला होता है। (२) हे अश्विना! आप **मघवाना**=सब ऐश्वर्योंवाले हो। **सुवीरा**=उत्तम वीर हो। **अनपच्युता**=शत्रुओं से अनपच्यावनीय हों, शत्रु आप को आक्रान्त नहीं कर पाते। प्राणसाधना के होने पर शरीर में रोगों व वासनाओं का प्रवेश नहीं हो पाता।

भावार्थ–प्राणसाधना हमें सर्वपोषक धन को प्राप्त कराती है। प्राणापान 'ऐश्वर्य, वीरता व शत्रुओं से अपराजेयता' वाले हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसःङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—विराडुष्णिक्ङ्क **स्वरः**—ऋषभःङ्क

देवेभिः सचनस्तमा

आ मे अस्य प्रतीव्यश्मिन्द्रनासत्या गतम्। देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा॥ ८॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आपके अनुग्रह से **अस्य**=इस **मे**=मेरे **प्रतीव्यम्**=यज्ञ को (पुनः पुनः वियन्ति देवाः अन्त हवीषि) जीवनयज्ञ को **नासत्या**=प्राणापान **आगतम्**=प्राप्त हों। हमारी यह प्राणसाधना प्रतिदिन प्रवृत्त रहे। (२) **देवा**–ये प्राणापान प्रकाशमय हैं, ज्ञानाग्नि को दीप्त

करनेवाले हैं। ये **अद्य**-आज **देवेभिः**-दिव्य गुणों को धारण करनेवाले पुरुषों से **सचनस्तमा**=अतिशयेन समवेतव्य हैं, सेवनीय हैं। इनके आराधन से ही तो दिव्यता प्राप्त होती है।

भावार्थ-प्राणसाधना प्रतिदिन करनी ही चाहिये। ये प्राणापान जीवन को प्रकाशमय व दिव्यता सम्पन्न करते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्राणसाधना के तीन लाभ

वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो व्यश्ववत्। सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम्॥ ९॥

(१) हे प्राणापानो! **वयम्**-हम **उक्षण्यन्तः**-शरीर में शक्ति के सेचन की कामना करते हुए **हि**=निश्चय से **वाम्**=आपको **हवामहे**=पुकारते हैं। आपके द्वारा ही तो हम इस वीर्यशक्ति को शरीर में सिक्त कर पायेंगे। हम आपको **व्यश्ववत्**-'व्यश्व' की तरह पुकारते हैं। (२) हे **विप्रौ**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाले प्राणापानो! आप **सुमतिभिः**-कल्याणी मतियों के साथ **इह**=इस जीवनयज्ञ में हमें **उपागतम्**=समीपता से प्राप्त होवो। प्राणसाधना के द्वारा शक्ति का सेचन होकर बुद्धि की सूक्ष्मता भी प्राप्त होती है।

भावार्थ-प्राणसाधना से (क) शरीर में शक्ति का सुरक्षण होगा, (ख) हमारे इन्द्रियाश्व उत्तम बनेंगे, (ग) हमारी बुद्धि सूक्ष्म होगी।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

कुवित्ते श्रवतो हवम्

अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित्ते श्रवतो हवम्। नेदीयसः कूळयातः पणीँरुत॥ १०॥

(१) हे **ऋषे**-तत्त्वद्रष्टः पुरुष! तू **अश्विना**=प्राणापान को **सुस्तुहि**-सम्यक् स्तुत कर। ये प्राणापान **ते**=तेरी **हवम्**=पुकार को **कुवित्**=खूब ही **श्रवतः**=सुनते हैं। हमारी कामनाओं को प्राणापान ही तो पूर्ण करते हैं। (२) ये प्राणापान **नेदीयसः**=अपने अन्तिकतम उपासकों को **उत**=और **पणीन्**=सब व्यवहारों को प्रभु-स्तवन पूर्वक करनेवालों को **कूळयातः**=सुरक्षित करते हैं।

भावार्थ-जीवन में यह प्राणसाधना सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है। यह अपने अन्तिकतम उपासकों को सुरक्षित करती है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

स्नेह-निर्द्वेषता व संयम

वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः। सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा॥ ११॥

(१) हे **नरा**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणापानो! **वैयश्वस्य**-व्यश्व पुत्र, अर्थात् अत्यन्त विशिष्ट इन्द्रियाश्वोंवाले **मे**=मेरी प्रार्थना को **श्रुतम्**=आप सुनो। **उत**=और **उ**=निश्चय से **मे अस्य वेदथः**=मेरी इस प्रकार को **वेदथः**-आप जानो। अर्थात् मेरी आराधना व्यर्थ न जाये। आपकी इस आराधना से ही मैं अपने इन्द्रियाश्वों को विषयों से अनाक्रान्त व पवित्र बना पाऊँगा। (२) आपकी आराधना से ही मेरे जीवन में **मित्रः वरुणः**=स्नेह व निर्द्वेषता के भाव **सजोषसा**=प्रीतिपूर्वक संगत हों। आपकी आराधना से ही **अर्यमा**=(अदीन् यच्छति) काम-क्रोध-लोभ का संयम मुझे प्राप्त हो।

भावार्थ–प्राणसाधना से मेरे जीवन में 'स्नेह, निर्द्वेषता व संयम' के दिव्यभावों का वास होता है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

युवादत्त 'धिषणा', युवानीत 'शक्ति'

युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः। अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम्॥ १२॥

(१) हे **दिष्ण्या**=(धिषणार्हौ) स्तुति के योग्य अथवा उत्तम बुद्धि को प्राप्त करानेवाले (धिषणा=बुद्धि) **वृषणा**=शक्ति का शरीर में सेचन करनेवाले प्राणापानो! **युवादत्तस्य**=आप से दिये जानेवाले ज्ञान को तथा **युवानीतस्य**=आप से आनीत (प्राप्त करायी जानेवाली) शक्ति को **सूरिभिः**=ज्ञानी स्तोताओं के सम्पर्क के द्वारा **अहरहः**=प्रतिदिन **मह्यम्**=मेरे लिये **शिक्षतम्**=दीजिये। (२) ज्ञानी स्तोताओं के सम्पर्क में हम भी ज्ञान की रुचिवाले बनेंगे तथा विषय वासनाओं में न फँसने के कारण शक्ति को प्राप्त करनेवाले होंगे। ज्ञानी स्तोताओं के सम्पर्क की ओर झुकाव इस प्राणापान की साधना से ही होगा। एवं यह साधना हमें ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करानेवाली बनेगी।

भावार्थ–हे प्राणापानो! हम आप से दत्त ज्ञान को तथा आप से प्राप्त करायी गयी शक्ति को ज्ञानियों के सम्पर्क में रहते हुए प्राप्त करें।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्राणसाधना से आवृत जीवन

यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव। सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना॥ १३॥

(१) **यः**=जो भी व्यक्ति हे प्राणापानो! **वाम्**=आपके **यज्ञेभिः**=यज्ञों से, पूजनों से **आवृतः**=समन्तात् इस प्रकार आवृत होता है, **इव**=जैसे **अधिवस्त्रा वधूः**=उत्कृष्ट वस्त्रों को धारण किये हुए वधू। हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप उसे **सपर्यन्ता**=अभीष्ट ज्ञान व शक्ति के दान से पूजित करते हुए **शुभे चक्राते**=सदा मंगल कार्यों में व्यापृत करते हो। (२) मनुष्य प्राण-साधना से अपने जीवन को इस प्रकार आवृत कर ले, जैसे एक वधू वस्त्रों से अपने शरीर को आवृत करती है। वधू की शोभा अपने अंगों को वस्त्रों से आवृत किये हुए होने में ही है। इसी प्रकार मनुष्य की शोभा इसी में है कि वह अपने प्रत्येक दिन को प्राणसाधना से आवृत कर ले, प्रातः भी प्राणसाधना, सायं भी प्राणसाधना। ये प्राणापान ज्ञान व शक्ति आदि इष्ट पदार्थों को प्राप्त करायेंगे और हमें सदा शुभ वृत्तिवाला बनायेंगे।

भावार्थ–प्राणसाधना हमारे जीवन की रक्षिका बन जाये। यह हमें ज्ञान व शक्ति आदि अभीष्ट वस्तुओं को प्राप्त कराती हुई सदा शुभ कार्यों में प्रवृत्त रखेगी।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

अश्विनीदेवों का सोमपान

यो वामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम्। वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू॥ १४॥

(१) **यः**=जो भी **उरुव्यचस्तमम्**=अतिशयेन शक्तियों के विस्तारवाले, **नृपाय्यम्**=उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणापानों से पातव्य सोम को (वीर्य शक्ति को) **वाम्**=आपके लिये देना **चिकेतति**=जानता है, अर्थात् जो आपकी साधना के द्वारा सोम को शरीर में ही सुरक्षित करना जानता है। हे प्राणापानो! **अस्मयू**=हमारे हित की कामनावाले आप उस पुरुष के **वर्तिः**=इस शरीर

गृह को **परियातम्**-प्राप्त होवो। (२) जो व्यक्ति यह समझता है कि सोमरक्षण द्वारा अधिक से अधिक शक्तियों का विस्तार होगा तथा जो यह जानता है कि प्राणसाधना से ही सोम का शरीर में रक्षण होगा यह अवश्य प्राणसाधना में प्रवृत्त होता है। यही प्राणापान का हमारे शरीर गृह में प्राप्त होना है। इससे सोम शरीर में ही सुरक्षित होता है। यही अश्विनो देवों का सोमपान है।

भावार्थ-हमारे हित की कामनावाले प्राणापान हमारे शरीर गृह में प्राप्त हों। हम इनके पूजन के द्वारा सोम को शरीर में ही सुरक्षित करनेवाले बनें। शरीर में सुरक्षित सोम सब शक्तियों के विस्तार का कारण बने।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

प्राणसाधना व प्रभु-दर्शन

अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम्। विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा॥ १५॥

(१) **असम्भ्यम्**=हमारे लिये हे **वृषण्वसू**=सुखों के वर्षणशील धनोंवाले प्राणापानो! आप **नृपाय्यम्**=उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले आप द्वारा पातव्य सोम का लक्ष्य करके **वर्तिः**=हमारे शरीर गृह को **सुयातम्**-सम्यक् प्राप्त होवो। हमारे शरीर गृह में प्राणापान की साधना चलेगी तो सोम का भी रक्षण होगा और सोमरक्षण द्वारा सब सुख वर्षक धन प्राप्त होंगे। (२) हे प्राणापानो! जैसे **विषुद्रुहा**=(वि सु द्रुहन्ति अनेन) शर के द्वारा व्याध मृग को अपने समीप प्राप्त कराता है, इसी प्रकार हे प्राणापानो! आप **गिरा**=ज्ञान की वाणियों के साथ **यज्ञम्**=उस उपासनीय प्रभु को **ऊहथुः**=हमारे समीप प्राप्त कराते हो। प्राणसाधना से ज्ञानवृद्धि होती है और विवेकख्याति के द्वारा आत्मदर्शन होता है। यह साधक प्राणों द्वारा मन को वशीभूत करके आत्मदर्शन करनेवाला बनता है।

भावार्थ-प्राणसाधना से ज्ञानवृद्धि होकर उस उपासनीय प्रभु का दर्शन होता है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्राणापान का स्तोम 'वाहिष्ठ' है

वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा। युवाभ्यां भूत्वश्विना॥ १६॥

(१) हे प्राणापानो! **वां स्तोमः**-आपका यह स्तवन **हवानाम्**=स्तोमों में **वाहिष्ठः**=वोढृतम है। प्राणापान की साधना ही सर्वोत्तम स्तुति है। प्राणापान चित्तवृत्ति का निरोध करके हमें प्रभु प्रवण करता है। एवं प्राणापान का स्तवन प्रभु का स्तवन हो जाता है, यह हमें प्रभु तक ले जाता है। हे **नरा**=उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणापानो! यह स्तोम **दूतः**-दूत बनता है, ज्ञान-सन्देश को प्राप्त करानेवाला होता है और **हुवत्**=हमारे हृदयों में आसीन होने के लिये प्रभु को पुकारता है। (२) सो हे **अश्विना**=प्राणापानो! हमारा स्तोम तो **युवाभ्यां भूतु**=आपके लिये ही हो। हम आपकी ही आराधना करें। यह आराधना ही हमारे लिये वाहिष्ठ होगी, हमें अतिशयेन प्रभु के समीप प्राप्त करानेवाली होगी।

भावार्थ-प्राणापान का स्तवन सर्वोत्तम स्तवन है, यह हमें प्रभु के अतिशयेन समीप पहुँचानेवाला है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्राणापान ने मेरी प्रार्थना को कब सुना?

यद्दो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे। श्रुतमिन्मे अमर्त्या॥ १७॥

(१) प्राणसाधना से शरीर में शक्ति का रक्षण होता है। यह सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। इसी बात को इस प्रकार कहते हैं कि हे प्राणापानो! **यद्**-जब आप **अदः**=उस **दिवः**=ज्ञान के **क्रर्णवे**=समुद्र में **मदथः**=आनन्द का अनुभव करते हो। तब ही यह कहा जा सकता है कि आपने **मे**=मेरी प्रार्थना को **इत्**=निश्चय से **श्रुतम्**=सुना। (२) ये प्राणापान चित्तवृत्ति के निरोध के द्वारा हृदय को बड़ा पवित्र बनाते हैं। उस पवित्र हृदय में प्रभु प्रेरणा सुनाई पड़ती है। मन्त्र में कहते हैं कि **यद**=जब **इषः**=प्रेरणा के **गृहे**=गृहभूत हृदय में आप **वा**=निश्चय से **मदथः**=आनन्दित होते हो तो हे **अमर्त्या**=हमें न मरने देनेवाले व विषय-वासनाओं का शिकार न होने देनेवाले प्राणापानो! आप मेरी प्रार्थना को सुनते हो।

भावार्थ-प्राणसाधना का यही फल है कि ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और साधक ज्ञानार्णव में तैरता हुआ आनन्द का अनुभव करता है। इसी प्रकार पवित्र हृदय में प्रभु प्रेरणा को सुनता हुआ यह साधक वासनाओं का शिकार नहीं हो जाता।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्राणसाधक पुरुष व स्त्री

उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम्। सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः॥ १८॥

(१) हे प्राणापानो! **उत**=और निश्चय से **स्या**=वह स्त्री **वाम्**=आपकी है, आपकी उपासना करनेवाली है जो **श्वेत-या-वरी**=शुद्ध मार्ग से गति करनेवाली है और **नदीनाम्**=समृद्धियों की **वाहिष्ठा**=वोढ़तमा बनती है। प्राणसाधिका स्त्री का जीवन शुद्ध व समृद्ध बनता है। (२) प्राणसाधक पुरुष, हे प्राणापानो! जो पुरुष आपकी साधना करता है, वह **सिन्धुः**=(सिनाति दधाति च) शक्ति को अपने में बाँधनेवाला होता है और इस प्रकार अपना धारण करनेवाला बनता है। यह **हिरण्यवर्तनिः**=ज्योतिर्मय मार्गवाला होता है। स्वाध्याय द्वारा अपनी ज्ञान-ज्योति को बढ़ानेवाला होता है।

भावार्थ-प्राणसाधना से 'शुद्धता, ऐश्वर्य, शक्ति व ज्योति' प्राप्त होती है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सुकीर्ति, सुबुद्धि व सुशीलता

स्मदेतया सुकीर्त्याश्विना श्वेतया धिया। वहेथे शुभ्रयावाना॥ १९॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **एतया सुकीर्त्या**=(चित्त=रत) विविध रंगोंवाली, अर्थात् नाना उत्तम कर्मों से विविध कार्यक्षेत्रों में प्राप्त होनेवाली, उत्तम कीर्ति से तथा **श्वेतया**=निर्मल वासनाओं से अभावृत **धिया**=बुद्धि से **स्मत्**=(सुमत्=शोभनम्) बड़ी शोभा के साथ **वहेथे**=हमें जीवनयात्रा में ले चलते हो। प्राणसाधना के द्वारा बुद्धि की तीव्रता व हृदय की निर्मलता के कारण सब कार्य उत्तम होते हैं। परिणामतः जीवन बड़ा यशस्वी होता है। (२) हे प्राणापानो! आप **शुभ्रयावाना**=जीवन में हमें बड़े शुभ्र (उज्ज्वल) मार्ग से ले चलते हो, हमारे शील को बड़ा शोभन बना देते हो।

भावार्थ-प्राणसाधना से 'सुकीर्ति, सुबुद्धि व सुशीलता' की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—वायुः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

शुद्ध वायु के सम्पर्क के लाभ

युक्ष्वा हि त्वं रथासहा युवस्व पोष्या वसो। आन्नो वायो मधु पिबास्माकं सवना गहि॥ २०॥

(१) 'वायु' ही प्राणरूप होकर नासिका में प्रवेश करता है। सो अब वायु से आराधना करते हैं कि हे वायो! **त्वम्**=तू **हि**-निश्चय से **रथासहा**-शरीर-रथ के वहन में समर्थ इन्द्रियाश्वों को **युक्ष्वा**=शरीर-रथ में जोत। हे **वसो**=वसानेवाले वायुदेव! तू **पोष्या**=उत्तम पोषणवाले दृढ़ अंगों को **युवस्व**=इस शरीर में मिश्रित कर (मिला)। इस शरीर-रथ का एक-एक अंग दृढ़ हो। (२) **आत्**-अब, हे वायो! **नः**=हमारे **मधु**-सब ओषधियों के सारभूत, भोजन से रस-रुधिर आदि क्रम से उत्पन्न हुए-हुए अत्यन्त सारभूत सोम को तू **पिब**-पी, शरीर में ही व्याप्त कर। **अस्माकम्**=हमारे **सवना**=जीवन के 'प्रातः, मध्याह्न व सायं' के तीनों सवनों में **आगहि**-तू हमें प्राप्त हो। हम सदा शुद्ध वायु के सम्पर्क में होते हुए तीनों सवनों में सोम का पान करें, वीर्य का रक्षण करें।

भावार्थ-शुद्ध वायु का सम्पर्क, शुद्ध वायु में होनेवाला प्राणायाम, हमारी इन्द्रियों को सशक्त बनाये, अंगों को दृढ़ करे, सोम को शरीर में सुरक्षित करे तथा दीर्घजीवन प्राप्त कराये।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः‌ **देवता**—वायुः‌ **छन्दः**—निचृद्गायत्री‌ **स्वरः**—षड्जः

त्वष्टा का जामाता (वायु)

तव॑ वायवृतस्पते त्वष्टु॑र्जामातरद्भुत। अवां॒स्या वृ॑णीमहे॥ २१॥

(१) हे **वायो**=वायुदेव! हम **तव**=आपके **आवांसि**=रक्षणों को **आवृणीमहे**-सर्वथा वरते हैं। सदा शुद्ध वायु के सम्पर्क में होते हुए, शुद्ध वायु में प्राणायाम करते हुए, सब शक्तियों का रक्षण कर पाते हैं। (२) हे वायो! आप **ऋतस्पते**=रेतःकण रूप जलों के रक्षक हो, प्राणायाम के द्वारा इन शक्तिकणों की ऊर्ध्वगति होती है। **त्वष्टुः जामातः**-संसार के निर्माता प्रभु की पुत्री के तुम रक्षक हो। वायु हमारे जीवनों में 'संज्ञा' का रक्षण करती है, वायु के बन्द होते ही चेतना समाप्त हो जाती है। **अद्भुत**-हे वायो! हमारे जीवनों के लिये तुम अद्भुत ही हो, वस्तुतः तुम्हीं जीवन हो।

भावार्थ-वायु शरीर में रेतःकण रूप जलों का रक्षक है। जीवन में इसका अद्भुत ही स्थान है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः‌ **देवता**—वायुः‌ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्‌ **स्वरः**—ऋषभः

सुतावन्तः-द्युम्नाः-जनासः

त्वष्टु॑र्जामा॑तरं व॒यमीशा॑नं रा॒य ईमहे। सु॒ताव॑न्तो वा॒युं द्यु॒म्ना जना॑सः॥ २२॥

(१) **त्वष्टुः जामातरम्**=प्रजापति की, संसार निर्माता प्रभु की अवि (रक्षण शक्ति) के रक्षक, **ईशानम्**=इस प्रकार सब के ईशान (स्वामी) **वायुम्**=वायुदेव से हम **रायः ईमहे**=धनों की याचना करते हैं। वायु से सब ऐश्वर्यों को माँगते हैं। (२) इस प्रकार वायु के प्रिय होते हुए हम **सुतावन्तः**=शरीर में उत्पन्न प्रशस्त सोमवाले होते हैं। **द्युम्नाः**-ज्ञान ज्योति को प्राप्त करते हैं। **जनासः**=अपनी सब शक्तियों का विकास कर पाते हैं।

भावार्थ-वायु के रक्षण में हम प्रशस्त सोम शक्तिवाले, ज्ञान-ज्योतिवाले व शक्तियों के प्रादुर्भाववाले बनते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः‌ **देवता**—वायुः‌ **छन्दः**—विराडुष्णिक्‌ **स्वरः**—ऋषभः

ज्ञान-उत्तम इन्द्रियाश्व-तेजस्विता

वायो॑ या॒हि शि॒वा दि॒वो वह॑स्वा॒ सु स्वश्व्य॑म्। वह॑स्व म॒हः पृ॑थु॒पक्ष॑सा॒ रथे॑॥ २३॥

(१) **वायो**=हे वायुदेव! **दिवः**=द्युलोक के, मस्तिष्करूप द्युलोक के **शिवा**=कल्याणकर ज्ञानों को **याहि**=प्राप्त करा। तू **स्वश्व्यम्**=उत्तम इन्द्रियाश्व समूह को **सुवहस्व**=सम्यक् प्राप्त करानेवाला हो। (२) **रक्षे**=इस शरीर-रथ में **महः**=तेजस्विता को **वहस्व**=प्राप्त करा। तथा **पृथुपक्षसा**=विशाल ज्ञान व शक्ति के परिग्रहोंवाले (पक्ष परिग्रहे) इन्द्रियाश्वों को संयुक्त कर।

भावार्थ-शुद्ध वायु का सम्पर्क मस्तिष्क को दीप्त करके ज्ञान-वृद्धि का कारण बनता है, इन्द्रियाश्वों को उत्तम बनाता है, तथा तेजस्विता को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—वायुः॥ **छन्दः**—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

दृढ़ शरीर व उत्तम इन्द्रियाश्व

त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे। ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना॥ २४॥

(१) हे वायो! **त्वां हि**=तुझे ही **नृषदनेषु**=मनुष्यों से बैठने योग्य इन यज्ञगृहों में, यज्ञों के अवसर पर **हूमहे**=पुकारते हैं। यज्ञों का मुख्य उद्देश्य वायु शुद्धि ही तो होता है। उस वायु को हम पुकारते हैं। जो **सुप्सरस्तमम्**=अतिशयेन शोभन रूपवाला है। यह वायु स्वास्थ्य के द्वारा सुन्दर रूप को प्राप्त कराता है। (२) हे वायो! तुझे **मंहना**=स्तुति के द्वारा पुकारते हैं जो तू **ग्रावाण न**=ग्रावा के समान **अश्वपृष्ठ**=अश्वों का पृष्ठ है। शरीर को तू ग्रावा (पत्थर) के समान दृढ़ बनाता है और इन्द्रियाश्वों का तो तू आधार ही है। वायु ही शरीर व इन्द्रियों को स्वस्थ करता है।

भावार्थ-यज्ञों द्वारा वायु को पवित्र करते हुए हम दृढ़ शरीरों व उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः॥ **देवता**—वायुः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वाजान् अपः धियः

स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः। कृधि वाजाँ अपो धियः॥ २५॥

(१) हे **देव**=सब न्यूनताओं व रोगों को पराजित करनेवाले **वायो**=वायुदेव! **सः त्वम्**=वह तू **नः**=हमें **मनसा**=उत्तम मन के द्वारा **मन्दानः**=आनन्दित करनेवाला हो। **अग्रियः**=तेरा ही सब देवों में प्रमुख स्थान है, तू सर्वश्रेष्ठ है। (२) तू हमारे जीवनों में **वाजान्**=शक्तियों को **कृधि**=कर। **अपः**=रेतःकण रूप जलों को तू करनेवाला हो। **धियः**=बुद्धियों का तू सम्पादन कर।

भावार्थ-वायु का देवों में प्रथम स्थान है, यह हमारे जीवनों में शक्ति, बुद्धि व रेतःकणों को जन्म देता है।

वायु के आराधन से उत्कृष्ट मन को प्राप्त करके यह 'मनु' बनता है। प्रकाश की किरणोंवाला होता हुआ यह 'वैवस्वत' होता है। यह 'मनु वैवस्वत' ही अगले सूक्त का ऋषि है-

२७. [सप्तविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

प्राणसाधना-स्वाध्याय-देव-सम्पर्क

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे। ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यम्॥ १॥

(१) **उक्थे**=स्तोत्रों के होने पर **अग्निः पुरोहितः**=वह अग्रेणी प्रभु सामने ही स्थापित होता है। हम स्तोत्रों के द्वारा प्रभु का दर्शन करनेवाले बनते हैं। **अध्वरे**=इस जीवनयज्ञ में **ग्रावाणः**=उपदेष्टा

लोग (गृधन्ति) ज्ञानोपदेष्टा गुरु **बर्हिः**-हमारी वासनाओं का उद्बर्हण करनेवाले होते हैं। हमारे जीवनों को वासनाशून्य बनाते हैं। (२) मैं **ऋचा**=स्तुति के द्वारा **मरुतः**=प्राणों से, **ब्रह्मणस्पतिम्**=ज्ञान के स्वामी प्रभु से, **देवान्**=सब ज्ञानी पुरुषों से व सूर्य आदि देवों से **वरेण्यं अवः**=वरण करने योग्य रक्षण को **यामि**-(याचामि) याचना करता हूँ। प्राणसाधना (मरुतः), स्वाध्याय (ब्रह्मणस्पतिं) व देवों का सम्पर्क (देवान्) मेरे जीवन को अतिशयेन सुरक्षित करनेवाले होते हैं।

भावार्थ-स्तोत्रों द्वारा हम प्रभु-दर्शन का प्रयत्न करें। ज्ञानी गुरुओं के सम्पर्क में वासनाओं का उद्बर्हण कर पायें। प्राणसाधना, स्वाध्याय व देव-सम्पर्क हमारे जीवनों को रोगों व वासनाओं के आक्रमण से बचायें।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

स्थावर जंगम जगत् की अनुकूलता

आ प॒शुं गा॑सि पृथि॒वीं वन॒स्पती॑नु॒षासा॒ नक्त॒मोष॑धीः।
विश्वे॑ च नो वसवो विश्ववेदसो धी॒नां भू॑त प्रावि॒तारः॑॥ २॥

(१) हे अग्ने! आप हमारे जीवनों में **पशुम्**-गौ आदि पशुओं को, **पृथिवीम्**-इस भूमि माता को **वनस्पतीन्**=ज्ञान रश्मियों की रक्षक इन वनस्पतियों को, बुद्धि को कायम रखनेवाली वनस्पतियों को **ओषधीः**=(ओषः सोमः धीयते यासु) अपने अन्दर दोषों के दग्ध करनेवाले सोम (वीर्य) को धारण करनेवाली ओषधियों को **उषासानक्तम्**-दिन-रात **आगासि**-प्राप्त कराते हो व स्तुत करते हो। हम इनके ठीक प्रयोग से जीवन को उज्ज्वल बना पाते हैं। (२) **च**=और हे **विश्ववेदसः**=सम्पूर्ण ज्ञान धनोंवाले **विश्वे वसवः**-सब वसुओं! जीवन के निवास को उत्तम बनानेवाले ज्ञानियो! **नः**=हमारी **धीनाम्**=बुद्धियों के आप **प्रावितारः**-प्रकृष्ट रक्षक **भूत**=होवो। आप से दिये जानेवाले ज्ञान से हमारी बुद्धियाँ ठीक बनी रहें।

भावार्थ-सब पशु, पृथिवी आदि पदार्थ हमारे जीवन को उज्ज्वल बनायें। सब देव ज्ञान द्वारा हमारी बुद्धियों को प्रीणित करनेवाले हों।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—शङ्कुमती बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

यज्ञ की महिमा

प्र सू न॑ एत्वध्व॒रो३॒॑ऽग्ना दे॒वेषु॑ पू॒र्व्यः। आ॒दि॒त्येषु॒ प्र वरु॑णे धृ॒तव्र॑ते म॒रुत्सु॑ वि॒श्वभा॑नुषु॥ ३॥

(१) **नः**=हमें वह **पूर्व्यः**-पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम **अध्वरः**=यज्ञात्मक कर्म **प्र सु एतु**-प्रकर्षेण सम्यक् प्राप्त हो। जो यज्ञ **अग्ना**=(अग्रेणी) अग्रेणी पुरुष में होता है, निरन्तर उन्नतिपथ पर आगे बढ़नेवाला पुरुष जिस यज्ञ को करता है, वह यज्ञ हमें प्राप्त हो। इसी प्रकार **देवेषु**=देववृत्तिवाले पुरुष में जो यज्ञ होता है, वह यज्ञ हमें प्राप्त हो। उस यज्ञ को करते हुए हम भी देव बनें। (२) **आदित्येषु**=(आदानात् आदित्यः) सब स्थानों से अच्छाई को ग्रहण करनेवाले पुरुषों में जो यज्ञ होता है, वह हमें प्राप्त हो। इसी प्रकार **प्रधृत व्रते**=प्रकर्षेण व्रतों को धारण करनेवाले **वरुणे**-पापों से निवृत्त, निर्द्वेष जीवनवाले पुरुष में जो यज्ञ होता है उस यज्ञ को हम प्राप्त करें। और अन्ततः **विश्वभानुषु**-सर्वत्र प्रविष्ट तेजस्वितावाले, अंग-प्रत्यंग में तेजस्वितावाले, **मरुत्सु**=प्राणसाधक पुरुषों में जो यज्ञ होता है, वह यज्ञ हमें भी प्राप्त हो।

भावार्थ-पालक व पूरक यज्ञों को करते हुए हम 'अग्नि, देव, आदित्य, धृतव्रत वरुण व विश्वभानु मरुत्' बनें।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

अवृक छर्दि

विश्वे हि ष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवन्वृधे रिशादसः।
अरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यन्ता नोऽवृकं छर्दिः॥ ४॥

(१) **विश्वे**=सब **विश्ववेदसः**=सम्पूर्ण धनोंवाले व ज्ञानोंवाले, **रिशादसः**=हिंसक शत्रुओं को (काम-क्रोध-लोभ को) नष्ट करनेवाले देव **हि ष्मा**=निश्चय से **मनवे**=विचारशील पुरुष के लिये **वृधे भुवन्**=वृद्धि के लिये होते हैं। ऐसे देवों के सम्पर्क में आकर एक विचारशील पुरुष दिन-प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता चलता है। (२) ये **विश्ववेदसः**=सम्पूर्ण धनों व ज्ञानोंवाले देव **अरिष्टेभिः पायुभिः**=अहिंसित रक्षणों के द्वारा **नः**=हमारे लिये **अवृकम्**=(वृक) भेड़िये, उल्लू, कौवे व गीदड़ की वृत्तिवाले पुरुषों से रहित **छर्दिः**=घर को **यन्त**=प्राप्त करायें। हमारे घरों में 'बहुत खानेवाले, मूर्ख, धूर्त व कायर' व्यक्ति न हों। हम स्वयं उत्तम वृत्ति के बनें, हमारे सन्तान भी उत्तम वृत्ति के हों।

भावार्थ—ज्ञानियों के सम्पर्क में हम दिव्यता में वृद्धि को प्राप्त करें। हमारे घरों में 'मिताहारी, ज्ञानी, सरल व वीर' पुरुषों का निवास हो।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—विराड्बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

देव-सम्पर्क-प्राणसाधना-स्वास्थ्य

आ नो अद्य समनसो गन्ता विश्वे सजोषसः। ऋचा गिरा मरुतो देव्यदिते सदने पस्त्ये महि॥ ५॥

(१) हे **विश्वे**=सब देवो! आप **सजोषसः**=समानरूप से प्रीतिपूर्वक कर्त्तव्य कर्मों का सेवन करनेवाले होते हुए **समनसः**=समान चित्त होकर **नः**=हमें **अद्य**=आज **आगन्ता**=प्राप्त होवो। हमारा देवों के साथ सम्पर्क हो, जो देव मिलकर प्रीतिपूर्वक कर्त्तव्य कर्मों को करते हैं तथा समान चित्तवाले होते हैं। (२) हे **मरुतः**=प्राणो! तथा **महि**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण **देवि**=दिव्य गुणों की जननि **अदिते**=स्वास्थ्य की देवते! आप **ऋचा**=ज्ञान की वाणियों के साथ तथा **गिरा**=स्तुति-वाणियों के साथ **सदने**=हमारे बैठने के स्थान **पस्त्ये**=इस गृह में (आगन्त) आओ।

भावार्थ—देवों के सम्पर्क में हमारा जीवन चले, हम स्वस्थ बनें, प्राणसाधना में प्रवृत्त हों, स्वाध्याय तथा स्तवन की वृत्तिवाले हों।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

'इन्द्र, वरुण, तुर, नर, आदित्य'

अभि प्रिया मरुतो या वो अश्व्या हव्या मित्र प्रयाथन।
आ बर्हिरिन्द्रो वरुणस्तुरा नर आदित्यासः सदन्तु नः॥ ६॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **या**=जो **वः**=आपके **प्रिया**=प्रीति के जनक **अश्व्या**=अश्वसंघ हैं, उत्तम इन्द्रियाश्व हैं, उन्हें **अभि प्रयाथन**=हमारे सम्मुख प्राप्त कराइये। हे **मित्र**=स्नेह की देवते! तू **हव्या**=हव्य पदार्थों को, यज्ञशेष के रूप में सेवन किये जानेवाले पदार्थों को हमारे लिये प्राप्त करा। सब के प्रति स्नेहवाला पुरुष यज्ञशेष का ही सेवन करेगा। यह कभी अकेला खानेवाला नहीं हो सकता। (२) **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले व्यक्ति, **आदित्यासः**=सब अच्छाइयों का आदान करनेवाले व्यक्ति **आदसन्तु**=आसीन हों। हम हृदय में 'इन्द्र' का ध्यान करते हुए जितेन्द्रिय बनें,

'वरुण' का ध्यान करते हुए 'निर्द्वेष' बनें। हम भी 'तुर नरों' का स्मरण करते हुए शत्रु-संहार करनेवाले उन्नत पुरुष हों। तथा आदित्यों का स्मरण करते हुए आदित्य ही बनने के लिये यत्नशील हों।

भावार्थ—प्राणसाधना से हमारी इन्द्रियाँ उत्तम हों। स्नेह से पूर्ण होते हुए हम यज्ञशेष का ही सेवन करनेवाले बनें। हृदय में 'जितेन्द्रिय, निर्द्वेष, शत्रु-संहारक, गुणों का आदान करनेवाले' बनने का निश्चय करें।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः **देवता**—विश्वेदेवाः **छन्दः**—निचृद्बृहती **स्वरः**—मध्यमः

वृक्तबर्हिषः

वयं वो वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आनुषक्। सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्वदिद्धाग्नयः ॥ ७ ॥

(१) हे **वरुण**=सब पापों का निवारण करनेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **वः**=आपको **आनुषक्**=निरन्तर **हवामहे**=पुकारते हैं। वे हम आपको पुकारते हैं, जो **वृक्तबर्हिषः**='पापशून्य किया है हृदयान्तरिक्ष को जिन्होंने' ऐसे हैं। **हितप्रयसः**-'धारण किया है सात्त्विक अन्नों को जिन्होंने' ऐसे हैं। और इस प्रकार **सुतसोमासः**='उत्पन्न किया है सोम जिन्होंने' ऐसे हैं। हृदय को पापशून्य करके सात्त्विक अन्नों का सेवन करनेवाले ही सोम का रक्षण कर पाते हैं। (२) सोमरक्षण के द्वारा ये **इद्धाग्नयः**=समिद्ध ज्ञानग्नि की दीप्तिवाले हैं। ये ज्ञानाग्नि को समिद्ध करके **मनुः वत्**=विचारशील पुरुष बने हैं।

भावार्थ—प्रभु के उपासक (क) हृदय से पापों को दूर करते हैं, (ख) सात्त्विक अन्न का सेवन करते हैं, (ग) सोम का रक्षण करते हैं, (घ) ज्ञानाग्नि को दीप्त करते हैं, (ङ) विचारशील बनते हैं।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः **देवता**—विश्वेदेवाः **छन्दः**—पंक्तिः **स्वरः**—पञ्चमः

देवों व महादेव का आगमन

आ प्र यात मरुतो विष्णो अश्विना पूषन्माकीनया धिया।
इन्द्र आ यातु प्रथमः सनिष्युभिर्वृषा यो वृत्रहा गृणे ॥ ८ ॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **आ प्रयात**=आप हमें सर्वथा प्राप्त होवो। हमारे जीवन में इन मरुतों का कार्य ठीक से चलता रहे। **विष्णो**=(यज्ञो वै विष्णुः) हे यज्ञ! तू प्राप्त हो। हमारा जीवन यज्ञमय बने। हमारी वृत्ति व्यापक हो, हम केवल अपने लिये न जियें। **अश्विना**=हे **अश्विनौ**=प्राणापानौ! आप हमें प्राप्त होवो। हमारी प्राण शक्ति व अपान शक्ति ठीक बनी रहे। नासिका का दायां स्वर व बायां स्वर दोनों ठीक बने रहें। इस प्रकार हे **पूषन्**=पोषण की देवते! तू हमें प्राप्त हो। हमारा सब अंग-प्रत्यंगों का पोषण ठीक से चलता रहे। **माकीनया धिया**=मेरी बुद्धि के हेतु से ये सब देव हमें प्राप्त हों। इन सब देवों के आने से हमें सद्बुद्धि प्राप्त हो। (२) इन सब दिव्य गुणों व बुद्धि के स्थापन के होने पर **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **आयातु**=हमें प्राप्त हो। **प्रथमः**=जो प्रभु सर्वव्यापक हैं (प्रथ विस्तारे), अथवा सब से प्रथम हैं, पहिले से ही हैं। **सनिष्युभिः**=सम्भजन की कामनावाले उपासकों से **यः**=जो **वृषा**=शक्तिशाली व **वृत्रहा**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करनेवाला **गृणे**=स्तुत होता है, कहा जाता है।

भावार्थ—हम प्राणशक्ति-सम्पन्न बनें, विशाल हृदय हों, हमारे सूर्य व चन्द्र स्वर ठीक कार्य करते हैं (अश्विनौ) सब अंगों का ठीक पोषण हो। हमारी बुद्धि स्वस्थ हो। इस प्रकार हम प्रभु

प्राप्ति के पात्र बनें।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—निचृद्बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

अच्छिद्रं शर्म

वि नो॑ देवासो अद्रुहोऽच्छि॑द्रं शर्म॑ यच्छत। न यद्दूराद्व॑सवो नू चि॒दन्ति॑तो वरू॑थमाद॒धर्ष॑ति॥ ९॥

(१) **अद्रुहः**=सब प्रकार के द्रोह की भावना से रहित **देवासः**=देवो! **नः**=हमारे लिये **अच्छिद्रम्**=सब दोषों से शून्य **शर्म**=गृह को **वियच्छत**=प्राप्त कराओ। वस्तुतः हम द्रोहशून्य दिव्य वृत्तियोंवाले बनें, तो हमारे घर बड़े निर्दोष बनते हैं। (२) हे **वसवः**=हमारे निवासों को उत्तम बनानेवाले देवो! हमें उस **वरूथम्**=रक्षक गृह को प्राप्त कराओ **यत्**=जिसको **न दूरात्**=न तो दूर से **नू चित**=और न ही **अन्तितः**=समीप से कोई भी शत्रु **आदर्धर्षति**=हिंसित करता है।

भावार्थ—हमारे घर निर्दोष हों। इनमें रहनेवाले द्रोह की भावना से शून्य दिव्य वृत्तिवाले बनें। इनमें किसी प्रकार का दूर व समीप से उपस्थित होनेवाला रोग न आ जाये।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—पादनिचृत् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

सुविताय-सुम्नाय

अस्ति॒ हि वः॑ सजा॒त्यं॑ रिशादसो॒ देवा॑सो॒ अस्त्याप्यम्॑।
प्र णः॒ पूर्व॑स्मै सुवि॒ताय॑ वोचत म॒क्षू सु॒म्नाय॒ नव्य॑से॥ १०॥

(१) हे **देवासः**=देवो! **हि**=निश्चय से **वः**=आपका **सजात्यम्**=समान जातित्व **अस्ति**=है। हे **रिशादसः**=हिंसक 'काम-क्रोध-लोभ' आदि भावों के विनाशक देवो! आपका **आप्यम्**=बन्धुत्व **अस्ति**=है। दिव्य गुण सब एक जाति के हैं और एक दूसरे के साथ सम्बद्ध हैं। एक दिव्य गुण के अपनाने पर दूसरे दिव्य गुण स्वतः उसके साथ खिचे चले आते हैं। (२) हे देवो! दिव्य वृत्तिवाले पुरुषो! **नः**=हमारे लिये **पूर्वस्मै**=सर्वोत्कृष्ट **सुविताय**=सुवित के लिये (सुष्टु ईयते) अभ्युदय के लिये **प्रवोचत**=मार्ग का उपदेश करो **मक्षू**=शीघ्र **नव्यसे**=नवतर, अतिशयेन स्तुत्य **सुम्नाय**=यज्ञ के लिये उपदेश करो।

भावार्थ—दिव्यगुणों का परस्पर समान जातित्व व बन्धुत्व है। इन दिव्य गुणों से सम्पन्न पुरुष हमारे लिये अभ्युदय व स्तुत्य यज्ञों का उपदेश करें। इस सुवित व सुम्न के प्राप्त करके हम भी देव बनें।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—विराड्बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

दिव्य गुणों का धारण प्रभु-भजन

इ॒दा हि व॒ उप॑स्तुतिमि॒दा वा॒मस्य॑ भ॒क्तये॑। उप॑ वो विश्ववेदसो नम॒स्युराँ अ॒सृक्ष्यन्या॑मिव॥ ११॥

(१) हे **विश्ववेदसः**=सम्पूर्ण ज्ञानों व धनों को प्राप्त करानेवाले देवो! (विश्वं वेदः यस्मात्) मैं **इदा हि**=अभी ही **वः**=आप की **उपस्तुतिम्**=समीप आसीन होकर स्तुति को **उप आ असृक्षि**=निर्मित करता हूँ, आपका स्तवन करता हूँ। इन देवों का स्तवन हमें भी देववृत्ति का बनाता है। यह स्तवन **इदा**=अब **वामस्य**=उस सर्वोत्तम, सुन्दरतम प्रभु के **भक्तये**=भजन के लिये हो जाता है। (२) हे देवो! मैं आपकी **अन्यां इव**=असाधारण ही पहले औरों से न की गई, औरों से विलक्षण स्तुति को करता हूँ। मैं आपकी क्रियात्मक स्तुति करता हूँ, आपको अपनाता हुआ आपका स्तोता बनता हूँ। **नमस्युः**=इस स्तुति के द्वारा मैं प्रभु के प्रति नमन की भावनावाला होता

हूँ। जितना-जितना मैं दिव्य गुणों को अपनाता हूँ, उतना-उतना ही विनत बनता जाता हूँ, विनित बनना ही तो प्रभु का बनना है। यह विनीतता मुझे प्रभु के समीप पहुँचाती है।

भावार्थ-दिव्य गुणों का स्तवन करते हुए हम प्रभु के उपासक बन जायें। दिव्य गुणों का स्तवन व अपनाना ही प्रभु के प्रति नमन है।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराट्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

सूर्य के द्वारा 'सरण' की प्रेरणा

उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयोऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनोऽविश्रन्पतयिष्णवः॥ १२॥

(१) हे **सुप्रणीतयः**=उत्तम मार्ग से जीवन का प्रणयन करनेवाले, शुभ मार्ग से चलनेवाले मनुष्यो! **स्यः**=वह **वः सविता**=तुम्हें कर्मों में प्रेरणा देनेवाला सूर्य उ=निश्चय से **उद् अस्थात्**=उदय हुआ है। **ऊर्ध्वः**=यह ऊपर गतिवाला सूर्य **वरेण्यः**=वरणीय है, सम्भजनीय है। इसका सम्भजन यही है कि हम भी ऊर्ध्वगतिवाले हों। (२) इस सूर्य के उदय होते ही **द्विपादः**=दो पाँवोंवाले मनुष्य, **चतुष्पादः**=चार पाँवोंवाले पशु, **आर्थिनः**=भिन्न-भिन्न प्रयोजनोंवाले अथवा धन को चाहनेवाले लोग तथा **पतयिष्णवः**=आकाश में उत्पतनवाले ये पक्षी **नि आविश्रत्**=(स्व स्व कर्मणि निविशन्ते) अपने-अपने कार्य में निविष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ-सूर्योदय होता है। सभी मनुष्य व पशु-पक्षी अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं। सूर्य के सरण से हमें भी गतिशीलता की प्रेरणा लेनी है।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—विराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

अवसे-अभिष्टये-वाजसातये

देवंदेवं वोऽवसे देवंदेवमभिष्टये। देवंदेवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया॥ १३॥

(१) हम **अवसे**=रक्षण के लिये **वः देवं देवम्**-तुम सब के प्रकाशित करनेवाले उस देव को **हुवेम**=पुकारते हैं। उस **देवं देवम्**=देवों के भी देव महादेव प्रभु को **अभिष्टये**=काम आदि वासनाओं पर आक्रमण के लिये पुकारते हैं। कामदेव पर महादेव ही तो आक्रमण करेंगे। (२) हम **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिये **देव्या धिया**=प्रकाशमयी बुद्धि से **गृणन्तः**=स्तवन करते हुए, स्तुति-वाणियों का उच्चारण करते हुए **देवं देवम्**=उस देवाधिदेव को पुकारते हैं।

भावार्थ-उस देवाधिदेव प्रभु का आराधन रक्षण के लिये होता है, हमारी वासनाओं पर यह आक्रमण का-सा बनता है और शक्ति लाभ के लिये होता है।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

समन्यवः देवासः

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः।
ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः॥ १४॥

(१) **देवासः**='माता, पिता, आचार्य, अतिथि' आदि देव **हि ष्म**=निश्चय से **मनवे**=विचारशील पुरुष के लिये **समन्यवः**=क्रतुवाले होते हैं (मन्यु=क्रतु) प्रज्ञान व शक्ति को प्राप्त करानेवाले होते हैं। ये सब **साकम्**=मिलकर **सरातयः**=उसके ज्ञान शक्ति रूप धनों को देनेवाले होते हैं। (२) **ते**=वे सब **अद्य**-आज **नः**=हमारे लिये **वरिवोविदः**=उत्तम धनों को प्राप्त करानेवाले हों। हमारे

लिये तो देव धनों को दें ही, **अपरं तु**=और पिछले दिनों में, आगे आनेवाले दिनों में **तुचे**=हमारे सन्तानों के लिये भी ये आचार्य व अतिथिरूप देव उत्तम ज्ञान धनों को दें।

भावार्थ–माता, पिता, आचार्य, अतिथि आदि देव हमारे लिये तथा हमारे आगे आनेवाले सन्तानों के लिये भी ज्ञान व शक्तिरूप धन को प्राप्त करायें।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—आर्चीबृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

मित्र-वरुण आदि के तेज का पूजन

प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम्। न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत्॥ १५॥

(१) हे **अद्रुहः**=द्रोह की भावना से शून्य देवो! **उपस्तुतीनाम्**=(उप इत्य स्तुतिर्येषां) मिलकर स्तुति करने के योग्य **वः**=आपका **संस्थे**=मिलकर बैठने के स्थान इस यज्ञभूमि में **प्रशंसामि**=खूब ही शंसन करता हूँ। (२) हे **मित्र वरुण**=स्नेह व निर्द्वेषता की देवताओ! **यः**=जो भी पुरुष **वः**=आपके **धामभ्यः**=तेजों के लिये **अविधत्**=पूजन करता है, **तम्**=उस पुरुष को **धूर्तिः न**=हिंसा बाधित नहीं करती। मित्र व वरुण का उपासक कभी हिंसा आदि की भावनाओं का शिकार नहीं होता।

भावार्थ–हम यज्ञों में, मिलकर बैठने के स्थानों में 'मित्र व वरुण' आदि देवों का शंसन किया करें। इनका तेज हमें सब हिंसनों से बचानेवाला होगा।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

दान व सर्वतो वृद्धि

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते॥ १६॥

(१) हे देवो! **यः**=जो **वराय**=उत्कृष्ट कार्यों के लिये **वः दाशति**=आपके प्रति दान करनेवाला होता है **सः**=वह **क्षयम्**=अपने गृह को **प्रतिरते**=खूब बढ़ानेवाला होता है। यह **महीः इषः**=महत्त्वपूर्ण अन्नों को बढ़ानेवाला होता है, इसके घर में सात्त्विक भोजनों की कमी नहीं रहती। (२) यह **धर्मणाः**=धर्म के द्वारा **प्रजाभिः**=सन्तानों से **परि प्रजायते**=सर्वतः उत्तम प्रजावाला होता है। और **अरिष्टः**=अहिंसित होता हुआ **सर्वः एधते**=पूर्ण वृद्धि को प्राप्त होता है, यह 'शारीरिक स्वास्थ्य, मानस प्रसाद व बुद्धि की तीव्रता' रूप सब धनों को प्राप्त करता है।

भावार्थ–उत्तम कार्यों के लिये देवों को देनेवाला पुरुष (क) गृह को बढ़ाता है, (ख) सात्त्विक अन्नों की वहाँ कमी नहीं होती, (ग) उत्तम सन्तान को प्राप्त करता है और (घ) 'शरीर, मन, बुद्धि' सब के दृष्टिकोणों से बढ़ता है।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—विराट् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'अर्यमा मित्र व वरुण' की उपासना का फल

ऋते स विन्दते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः। अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते सजोषसः॥ १७॥

(१) **यम्**=जिसको **अर्यमा**=(अरीन् यच्छति) काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नियामक देव, **मित्रः**=स्नेह का देवता **वरुणः**–द्वेष निवारण का देव **सरातयः**–समानरूप से 'स्वास्थ्य-मनः प्रसाद व बुद्धि की तीव्रता' रूप धनों को प्राप्त करानेवाले होते हुए, **सजोषसः**=परस्पर संगत हुए-हुए **त्रायन्ते**=रक्षित करते हैं **सः**=वह **युधः ऋते**=बिना ही बाह्य युद्धों के बिना किन्हीं महान् क्लेशों

के **विन्दते**=सब आवश्यक धनों को प्राप्त करता है और **सुगेभिः**=उत्तम गन्तव्य साधनों से **अध्वनः याति**=मार्गों का आक्रमण करता है। (२) हम अपने जीवन में काम-क्रोध आदि का नियमन करते हुए 'स्नेह व निर्द्वेषता' को अपनाते हैं, तो बिना अत्यधिक आयास के हम आवश्यक धनों व जीवनयात्रा के साधनों को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ–जीवन में हमारा प्रयत्न यह हो कि हम काम–क्रोध के वशीभूत न होकर स्नेह व निर्द्वेषता से चलें। इस प्रकार हम बिना परेशानी के आवश्यक धनों व गमनसाधनों को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

अज्र में न्यञ्चन, दुर्ग में सुसरण

अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनं दुर्गे चिदा सुसरणम्।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्त्रेधन्ती वि नश्यतु॥ १८॥

(१) **अस्मै**=इस गत मन्त्र में वर्णित 'अर्यमा, मित्र व वरुण' के उपासक के लिये **अज्रे चित्**=युद्ध क्षेत्रों में भी **न्यञ्चनम्**=नितरां गमन को **कृणुथा**=करते हो। (अज्र=field) यह अर्यमा आदि का उपासक काम–क्रोध–लोभ से सदा संग्राम करता हुआ विजयी बनता है। और इसके लिये, हे अर्यमा आदि देवो! आप **दुर्गे चित्**=बड़े दुःख से गन्तव्य मार्गों में भी **आसुसरणम्**=समन्तात् सुगमता से गति को सिद्ध करते हो। (२) **एषा अशनिः**=यह शत्रु प्रयुक्त वज्र तो **अस्मात्**-इस से **नु**=निश्चय से **परा उ**=दूर ही रहता है। **सा**=वह शत्रु प्रयुक्त **अशनि अस्त्रेधन्ती**=किसी भी प्रकार से इसका हिंसन न करती हुई **विनश्यतु**=नष्ट हो जाये।

भावार्थ–'अर्यमा, मित्र व वरुण' का उपासक युद्ध भूमियों में शत्रुओं को कुचलता हुआ गमन करता है। दुर्गों में भी सुगमता से आगे बढ़ता है। इस पर शत्रुओं के वज्र का आक्रमण नहीं होता। यह वज्र किसी का हिंसन न करता हुआ विनष्ट हो जाता है।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

प्रियक्षत्रों का ऋतधारण

यदद्य सूर्य उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध। यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद्वा मध्यन्दिने दिवः॥ १९॥

(१) हे **प्रियक्षत्राः**=प्रीणवितृ बलवाले, जो बल के द्वारा रक्षणात्मक कार्यों को ही करते हैं, ऐसे देवो! **यत्**=जब **अद्य**=आज **सूर्ये उद्यति**=सूर्य के उदय होने का समय हो, उस समय **ऋतं दध**=ऋत का धारण करो। ऋत के धारण व अनृत के परित्याग के व्रत का धारण करो। 'जो ठीक है, वही मैं करूँगा' ऐसा निश्चय करो। (२) हे **विश्ववेदसः**=सम्पूर्ण धनों व ज्ञानोंवाले देवो! आप **यत्**-जब **निम्रुचि**=सूर्य के निम्रोचन का, अस्त होने का समय हो, **प्रबुधि**=उदय का समय हो, **यद्वा**=अथवा जब **दिवः मध्यन्दिने**=दिन के मध्य का समय हो, उस समय आप हमारे में ऋत का धारण करो। सब देवों के अनुग्रह से हम ऋत का धारण करनेवाले बनें। यही सम्पूर्ण धनों व ज्ञानों को प्राप्त करने का मार्ग है।

भावार्थ–हम रक्षक बलवाले बनते हुए सूर्योदय के समय ही 'ऋत' के धारण का व्रत लें। सब देव प्रातः, मध्याह्न व सायं हमारे अन्दर ऋत को स्थापित करने का अनुग्रह करें। ऋत का धारण ही हमें ज्ञानी व धनी बनायेगा।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः ॥ देवता—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

ऋतं यते, दाशुषे

यद्वाभिपित्वे असुरा ऋतं यते छर्दिर्येम वि दाशुषे।
वयं तद्वो वसवो विश्ववेदस उप स्थेयाम मध्य आ ॥ २० ॥

(१) हे **असुराः**=हमारे जीवनों में प्राणशक्ति का संचार करनेवाले (असु+र) अथवा शत्रुओं को दूर फेंकनेवाले (अस् क्षेपणे) देवो! आप **अभिपित्वे**=हमारे यज्ञों में प्राप्त होने पर **ऋतं यते**=यज्ञों की ओर गतिवाले, **यद्वा**=अथवा **दाशुषे**=दानशील पुरुष के लिये **छर्दिः वियेम**=गृह को देते हो। **वयम्**=हम **वः**=आपके **तद् मध्ये**=उस घर में **उप आ स्थेयाम**=उपासना में स्थित हों। (२) हे देवो! आप **वसवः**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले से और **विश्ववेदसः**=सम्पूर्ण धनों व ज्ञानों को प्राप्त करानेवाले हो।

भावार्थ—हम अपने गृह को उन व्यक्तियों का गृह बनायें जो ऋत की ओर चल रहे हैं, यज्ञात्मक जीवन बिता रहे हैं और दानशील हैं। सब देव हमारे निवास को उत्तम बनायेंगे और सम्पूर्ण धनों को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः ॥ देवता—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—बृहती ॥ स्वरः—मध्यमः ॥

'मनु-जुह्वान-प्रचेता'

यदद्य सूर उदिते यन्मध्यन्दिन आतुचि। वामं धत्थ मनवे विश्ववेदसो जुह्वानाय प्रचेतसे ॥ २१ ॥

(१) हे **विश्ववेदसः**=सब धनों व ज्ञानोंवाले देवो! हम यही चाहते हैं (वृणीमहे २२) **यत्**=कि **अद्य**=आज **सूरे उदिते**=सूर्य के उदय होने पर और **यत् मध्यन्दिने**=जब मध्याह्न हो उस समय **आतुचि**=सूर्य के नीलांचन काल में, अर्थात् सायं आप **वामं धत्थ**=जो भी सुन्दर है उसे धारण करिये। प्रातः, मध्याह्न व सायं, अर्थात् सदा सब देव हमारे लिये सुन्दर ही वस्तु का धारण करें। (२) उनके लिये सुन्दर वस्तु का धारण करें जो **मनवे**=अवबोधवाले, विचारवाले बनते हैं, ज्ञानी बनते हैं। उनके लिये जो **जुह्वानाय**=यज्ञशील होते हैं और **प्रचेतसे**=प्रकृष्ट-चेतनावाले होते हैं।

भावार्थ—हम 'मनु-जुह्वान-प्रचेता' बनें। प्रभु हमारे लिये सब वरणीय वस्तुओं का धारण करेंगे।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः ॥ देवता—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

बहुपाय्य-धन

वयं तद्वः सम्राज आ वृणीमहे पुत्रो न बहुपाय्यम्।
अश्याम तदादित्या जुह्वतो हविर्येन वस्योऽनशामहै ॥ २२ ॥

(१) हे **सम्राजः**=सम्यग् राजमान-दीप्यमान देवो! **वयम्**=हम **वः**=आप से **तत्**=उस धन को **आवृणीमहे**=सर्वथा वरते हैं, **येन**=जिससे **वस्यः**=अतिशयेन वसुमत्त्व को, प्रशस्त धनशालिता को **अनशामहै**=प्राप्त करते हैं। **न**=जैसे **पुत्रः**=पुत्र पिता से धन को प्राप्त करता है, इसी प्रकार हम आप से **'बहुपाय्यम्'**=बहुतों का रक्षण करनेवाले धन को वरते हैं। (२) हे **आदित्याः**=अदिति (स्वास्थ्य) के पुत्रभूत देवो! हम **तत्**=उस धन को **अश्याम**=प्राप्त करें, **येन**=जिससे **हविः जुह्वतः**=हवि को आहुत करते हुए, यज्ञशील बनते हुए हम प्रशस्त धन शालिता को प्राप्त करें।

भावार्थ–हम उस धन को प्राप्त करें जो–(क) बहुतों का रक्षण करनेवाला हो तथा (ख) जिससे कि हमें अपने यज्ञों को सिद्ध कर सकें।

अगले सूक्त के ऋषि देवता भी 'मनुर्वैवस्वत' और 'विश्वेदेवा:' ही हैं–

२८. [अष्टाविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

तेंतीस देवों से ज्ञान व शक्ति का लाभ

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन्। विदन्नह द्वितासनन्॥ १ ॥

(१) ११ देव पृथिवीस्थ हैं, ११ अन्तरिक्षस्थ देव हैं और ११ द्युलोकस्थ देव हैं। इस प्रकार ये तेंतीस देव हैं। **ये**=जो **त्रयस् परः**=तीन अधिक **त्रिंशति**=३०, अर्थात् तेंतीस **देवासः**=देव हैं। ये सब देव इन देवों से सूचित दिव्यभाव **बर्हिः असदन्**=हमारे हृदयान्तरिक्ष में **आसदन्**=आसीन हों। (२) ये सब देव **अह**=निश्चय से हमें **विदन्**=जानें, प्राप्त हों। (द्वौ तनोति–इति द्विता) ज्ञान व शक्ति दोनों के विस्तार के हेतु से ये सब देव हमें **असनन्**=सब ऐश्वर्यों के देनेवाले हों।

भावार्थ–सब दिव्य गुणों का हम धारण करें। ये देव हमारे में 'ज्ञान व शक्ति' का विस्तार करें।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

कैसे बनें ?

वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अग्नयः। पत्नीवन्तो वषट्कृताः॥ २ ॥

(१) **वरुणः**=द्वेष निवारण की देवता, **मित्रः**=स्नेह की देवता, **अर्यमा**=(अरीन् यच्छति) काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं के नियमन की देवता, **स्मद् रातिषाचः**=शोभन (स्मत् सुमत् राति, येषां, तान् सचन्ते) दानवाले यज्ञशील पुरुषों के साथ सम्बद्ध **अग्नयः**=' गार्हपत्य, आहवनीय व दक्षिणाग्नि' रूप अग्नियाँ। ये सब देव **पत्नीवन्तः**=पत्नियोंवाले होते हुए **वषट्कृताः**=हमारे से आदर दिये गये हैं, इनके प्रति हमने अपना अर्पण किया है। (२) देवों की शक्तियाँ ही देव पत्नियाँ हैं। इनके प्रति हम अपना अर्पण करें, इन्हें अपने में धारण करने के लिये यत्नशील हों। हम वरुण बनें, अर्थात् निर्द्वेषता को धारण करें। हम मित्र बनें, स्नेह को धारण करें। अर्यमा बनते हुए काम-क्रोध-लोभ का नियमन करें। यज्ञशीलों को धनों को प्रदान करनेवाली यज्ञाग्नियों का सेवन करें। सब देवपत्नियों को आदर देनेवाले होते हुए इन देवों की शक्तियों को धारण करें।

भावार्थ–हम निर्द्वेष, स्नेही, शत्रुनियन्ता, यज्ञशील व देवशक्तियों को धारण करनेवाले बनें।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

देवों द्वारा सर्वतोरक्षण

ते नो गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्था न्यक्। पुरस्तात्सर्वया विशा॥ ३ ॥

(१) **ते**=वे सब देव **अपाच्याः**–प्रतीची (पश्चिम) दिशा से **नः गोपाः**–हमारे रक्षक हों। **उदक्तः**=उत्तर दिशा से भी **ते**=वे हमारे रक्षक हों। **इत्था**=इसी प्रकार ऊर्ध्वा व दक्षिणा दिक् से भी वे हमारे रक्षक हों। (२) **न्यक्**=नीचे, अर्थात् नीची दिशा में स्थित ये अधःस्थ देव भी हमारा रक्षण करें। ये देव **सर्वया विशा**=सम्पूर्ण प्रजा के साथ **पुरस्तात्**=पूर्व दिशा से हमारा रक्षण करें।

भावार्थ–दिव्यभाव सब दिशाओं से हमारा रक्षण करनेवाले हों।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतःङ्क देवता—विश्वेदेवाःङ्क छन्दः—विराडुष्णिक्ङ्क स्वरः—ऋषभःङ्क

देवों का चाहना और वैसा हो जाना

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्तदेषां नकिरा मिनत्। अरावा चन मर्त्यः॥ ४॥

(१) **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **यथा वशन्ति**=जैसा चाहते हैं तथा **इत् असत्**=वैसा ही हो जाता है। **तेषाम्**=उनकी **तत्**=उस कामना को **नकिः आमिनत्**=कोई भी हिंसित नहीं कर पाता। (२) **अरावा चन**=अदानशील भी **मर्त्यः**=मनुष्य देवों की कामना होने पर हवि को देता ही है।

भावार्थ—देववृत्ति के पुरुष जैसा चाहते हैं वैसा ही हो जाता है, उनकी कामना को कोई हिंसित नहीं कर पाता। कृपण से कृपण व्यक्ति भी उनके कहने पर हवि को देता ही है।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतःङ्क देवता—विश्वेदेवाःङ्क छन्दः—विराड्गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

सात ऋषियों के सात आयुध

सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युम्नान्येषाम्। सप्तो अधि श्रियो धिरे॥ ५॥

(१) 'सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे' इस मन्त्रभाग के अनुसार शरीर में सात ऋषियों का धारण हुआ है। इन **सप्तानाम्**=सातों ऋषियों के **सप्त ऋषयः**=सात आयुध हैं। इन आयुधों के द्वारा ही तो ये अपना कार्य कर पायेंगे। 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' दो कान, दो नासा-छिद्र, दो आँखें व मुख ही इनके आयुध हैं। **एषाम्**=इनके **सप्त द्युम्नान्**=सात ज्ञानधन हैं। इन ज्ञानधनों की प्राप्ति के साधन ही वे कान आदि हैं। (२) **उ**=निश्चय से **सप्त**=ये सात ऋषि **श्रियः**=शोभाओं को **अधि धिरे**=आधिक्येन धारण करनेवाले होते हैं। वस्तुतः यह शरीर इन सात ऋषियों का ही आश्रम है। इस आश्रम की शोभा इनके साथ ही है।

भावार्थ—शरीर में सात ऋषि रहते हैं। सात इनके आयुध हैं जिनके द्वारा ये ज्ञानधनों को प्राप्त करते हैं। ये सात ही इस शरीर को शोभा-सम्पन्न बनाते हैं।

सूचना—मरुतों को भी सात भागों में बाँटा गया है। ये मरुत्-त्राण भी यहाँ लिये जा सकते हैं। राष्ट्रपरक अर्थ करते समय सात राज्यांग यहाँ विवक्षित होंगे 'स्वाम्यमात्य सुहृत् कोशराष्ट्र दुर्ग वलानि च' 'वैवस्वत मनु' ही अगले सूक्त का भी ऋषि है—

२९. [एकोनत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीचःङ्क देवता—विश्वेदेवाःङ्क छन्दः—आर्चीगायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

बभ्रुः एकः (सोमः)

बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युवाञ्ज्यङ्क्ते हिरण्ययम्॥ १॥

(१) वह परमात्मा **एकः**=अद्वितीय **बभ्रुः**=सबका भरण करनेवाला है, अकेला ही सबके भरण में समर्थ है। **विषुणः**=वह (विष्वगञ्चनः) सर्वतः गमनवाला है। **सूनरः**=उत्तम नेता है। सब के लिये पथप्रदर्शन करनेवाला है। (२) **युवा**=यह नित्य तरुण है, बुराइयों को दूर करनेवाला व अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाला है (यु मिश्रणामिश्रणयोः)। यह योगियों के लिये अपने **हिरण्ययम्**=ज्योतिर्मय **अञ्जि**=रूप को **अङ्क्ते**=व्यक्त करता है।

भावार्थ—प्रभु अद्वितीय भरण करनेवाले, सर्वत्र गतिवाले, उत्तम नेता व नित्य तरुण हैं। योगी लोग इनके ज्योतिर्मय रूप को देखते हैं।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीचः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—आर्चीगायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

द्योतनः-मेधिरः (अग्निः)

योनिमेक आ ससाद द्योतनोऽन्तर्देवेषु मेधिरः ॥ २ ॥

(१) वह **एकः**=अद्वितीय प्रभु **योनिम्**=मूल कारण प्रकृति को **आससाद**=अध्यक्षरूपेण अधिष्ठित करता है। उस प्रभु से अधिष्ठित प्रकृति ही तो सब लोक-लोकान्तरों को प्रसूत करती है। (२) **देवेषु अन्तः**-सब सूर्यादि देवों में **द्योतनः**=दीप्ति को देनेवाला है, तथा (देवेषु अन्तः-) सब विद्वानों में **मेधिरः**=मेधा बुद्धि को यह देनेवाला है।

भावार्थ-वह अद्वितीय प्रभु प्रकृति का अधिष्ठाता है, वह हमें सुबुद्धि प्रदान करे।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीचः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—आर्चीस्वराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'आयसी वाशी' के धारक प्रभु (त्वष्टा)

वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुविः ॥ ३ ॥

(१) **एकः**=वह अद्वितीय प्रभु **देवेषु अन्तः**=सब देवों में **निध्रुविः**=ध्रुवना से निवास करनेवाला है या नितरां गमनशील है अथवा संग्रामों में शत्रुओं के सामने अतिशयेन स्थिरतावाला है। (२) ये प्रभु **हस्ते**=हाथ में **आयसीम्**=लोहे के बने हुए **वाशीम्**=(शब्दयति आक्रन्दयति शत्रून् अनया) तक्षण साधन कुठार को **बिभर्ति**=धारण करते हैं। प्रभु इस वाशी के द्वारा शत्रुओं का तक्षण कर देते हैं।

भावार्थ-सब देवों में प्रभु का निवास है। प्रभु से ही ये देवत्व को प्राप्त कर रहे हैं। प्रभु अपनी आयसी वाशी से सब शत्रुओं का विनाश कर देते हैं।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीचः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—आर्चीस्वराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'वज्रभर्ता-वृत्रहन्ता' प्रभु (इन्द्रः)

वज्रमेको बिभर्ति हस्त आहितं तेन वृत्राणि जिघ्नते ॥ ४ ॥

(१) **एकः**=अद्वितीय प्रभु **हस्ते**=हाथ में **आहितम्**=स्थापित **वज्रम्**=वज्र को **बिभर्ति**=धारण करते हैं। (२) **तेन**=इस वज्र के द्वारा वे **वृत्राणि**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **जिघ्नते**=विनष्ट करते हैं।

भावार्थ-ज्ञान की आवरणभूत वासना को प्रभु विनष्ट कर देते हैं। वे प्रभु वज्रहस्त हैं। उपासक प्रभु का ध्यान करता है, प्रभु उसके शत्रुओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीचः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

तिग्म आयुधधारी प्रभु (रुद्रः)

तिग्ममेको बिभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः ॥ ५ ॥

(१) **एकः**=वे अद्वितीय प्रभु **हस्ते**=हाथ में **तिग्मं आयुधम्**=बड़े तीक्ष्ण अस्त्र को **बिभर्ति**=धारण करते हैं। इस आयुध के द्वारा ही तो ये सब शत्रुओं का विनाश करते हैं। (२) वे **शुचिः**=पवित्र हैं। **उग्रः**=तेजस्वी हैं। **जलाषभेषजः**=सुखकर औषधोंवाले हैं, अथवा जल रूप महान् औषधवाले हैं। जल के द्वारा हमारे सब रोगों को दूर करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु हाथ में तिग्म आयुध को लिये हुए हैं, हमारे सब शत्रुओं का संहार करके हमें पवित्र व नीरोग बनाते हैं।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीचः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—आर्चीभुरिग्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

मार्गरक्षक प्रभु (पूषा)

पथ एकः पीपाय तस्करो यथाँ एष वेद निधीनाम्॥ ६॥

(१) **एकः**=वह अद्वितीय प्रभु **पथः**=मार्गों का **पीपाय**=रक्षण करते हैं। यज्ञशीलों के स्वर्ग मार्ग का तथा पापशीलों के यातना (पीड़ा) मार्ग को रक्षित करनेवाले वे प्रभु ही हैं। (२) **यथा**=क्योंकि वे प्रभु **तस्करः**=(तद करोति) उन सबका निर्माण करनेवाले हैं, सो **एषः**=ये प्रभु **निधीनां वेद**=सब कोशों को जानते हैं, सब धनों को वे प्रभु ही प्राप्त कराते हैं (विद् लाभे)।

भावार्थ—प्रभु ही सब मार्गों के रक्षक हैं, प्रभु ही सब निधियों के वेत्ता हैं।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीचः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—आर्चीभुरिग्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

लोकत्रय विक्रान्ता प्रभु (विष्णु)

त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति॥ ७॥

(१) यह **एकः**=अद्वितीय **उरुगायः**=(उरुभिः गातव्यः) बहुतों से गाया जाता हुआ, अथवा इन विशाल लोकों में गति करनेवाला प्रभु **त्रीणि**='भूः भुवः स्वः' पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक रूप तीनों लोकों को **विचक्रमे**=सम्यक् विक्रान्त करता है। प्रभु सर्वत्र विद्यमान हैं। (२) ये वे लोक हैं, **यत्र**=जिन में **देवासः**=देववृत्ति के पुरुष **मदन्ति**=आनन्द का अनुभव करते हैं। 'वसु' भूलोक में, 'रुद्र' अन्तरिक्षलोक में तथा 'आदित्य' द्युलोक में आनन्दित होते हैं। जब हमारी अदेव वृत्ति बनती है तभी ये लोक हमें निरानन्द प्रतीत होते हैं। उस समय हम खीझते ही रहते हैं।

भावार्थ—प्रभु तीनों लोकों में गतिवाले हैं। ये लोक देववृत्तिवाले पुरुषों के लिये आनन्दप्रद हैं।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीचः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—आर्चीभुरिग्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

प्राणापान का इन्द्रियाश्वों व बुद्धि के साथ निवास

विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः॥ ८॥

(१) इस शरीर में **द्वा**=ये दो अश्विनी देव, प्राण और अपान **विभिः**=इन्द्रियाश्वों के द्वारा (वि=horse) **एकया सह**-उस (एके मुख्यान्यकेवलाः) एक मुख्य साधनभूत बुद्धि के साथ **प्रचरतः**=विचरते हैं। प्राणापान, इन्द्रियों व बुद्धि के साथ जीवनयात्रा में चलते हैं। (२) ये अश्विनी देव **प्रवासा इव**=प्रवासियों के समान **वसतः**=निवास करते हैं। वे इस संसार को अपना घर नहीं मान लेते। यहाँ वे अपने को यात्रा पर प्रवास में आया हुआ मानते हैं। उनका यहाँ व्यवहार यात्रियों की तरह ही होता है। एक यात्री कम से कम भार लेकर चलता है, ये भी अपरिग्रह की वृत्ति से चलते हैं।

भावार्थ—प्राणापान इन्द्रियों के द्वारा सब गति करते हैं। वे बुद्धिपूर्वक यहाँ प्रवास में निवास करते हैं।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीचः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—आर्चीभुरिग्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

मित्रावरुणौ (स्नेह व निर्द्वेषता)

सदो॒ द्वा च॑क्राते उ॒पमा॑ दि॒वि स॒म्राजा॑ स॒र्पिरा॑सुती॥ ९॥

(१) इस जीवनयात्रा में **द्वा**=दो मित्र और वरुण, स्नेह व निर्द्वेषता के भाव **दिवि**=सदा प्रकाशमय लोक में, स्वर्ग में **सदः चक्राते**=हमारा घर बनाते हैं, निवास करते हैं। यदि संसार में हम स्नेह व निर्द्वेषता से चलें तो जीवनयात्रा बड़ी सुखमय व निर्विघ्न रहती है। (२) ये मित्र और वरुण **उपमा**=(उप+मा) सब कुछ देनेवाले हैं। इनके होने पर 'स्वास्थ्य, शान्ति व बुद्धि' प्राप्त होती है। **सम्राजा**=ये हमारे जीवनों को सम्यक् दीप्त करते हैं। और **सर्पिरासुती**=(सर्पिः=उदकं=रेतः नि० १.१२) शरीर में रेतःकण रूप जलों को सर्वत्र आसुत करनेवाले हैं। स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर शरीर में इन वीर्यकणों का सम्यक् प्रतिष्ठान होता है। 'सर्पिस्' का अर्थ घृत भी है, घृत 'दीप्ति' का पर्याय है। रेतःकणों के रक्षण के द्वारा हमारे जीवनों में ज्ञानदीप्ति चमक उठती है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता ही इस जीवनयात्रा के मूल मन्त्र हैं, ये जीवन को स्वर्गतुल्य बना देते हैं, दीप्त कर देते हैं, शक्ति-सम्पन्न करते हैं।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीचः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराड्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

अत्रयः (काम-क्रोध-लोभ से परे)

अर्च॑न्त॒ एके॒ महि॒ साम॑ मन्वत॒ तेन॒ सूर्य॑मरोचयन्॥ १०॥

(१) **अर्चन्तः**=प्रभु का पूजन करते हुए **एके**=काम-क्रोध-लोभ को पराजित करनेवाले कई व्यक्ति **महि**=महान् **साम**=साममन्त्रों द्वारा उपासना को **मन्वत**=जानते हैं, अर्थात् साममन्त्रों द्वारा प्रभु का पूजन करते हैं। (२) **तेन**=इन साममन्त्रों द्वारा प्रभु-पूजन से **सूर्यम्**=ज्ञान के सूर्य को **अरोचयन्**=दीप्त करते हैं। प्रभु-पूजन से हमारे जीवनों में ज्ञान सूर्य का उदय होता है। हृदयस्थ प्रभु से हम ज्ञान-ज्योति को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—हम साममन्त्रों द्वारा प्रभु का उपासन करें। यह प्रभु का उपासन हमारे जीवनों में ज्ञान की ज्योति को जगायेगा।

अगला सूक्त भी 'वैवस्वत मनु' का ही है—

३०. [त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

दिव्य गुणधारण-प्रभु-पूजन

न॒हि वो॒ अस्त्य॑र्भ॒को देवा॑सो॒ न कु॑मार॒कः। विश्वे॑ स॒तोम॑हान्त॒ इत्॥ १॥

(१) हे **देवासः**=दिव्य गुणो! **वः**=तुम्हारे में से कोई भी **अर्भकः**=कम महत्त्व का **नहि अस्ति**=नहीं है। सब दिव्य गुण एक से एक बढ़कर महत्त्व रखते हैं। **न कुमारकः**=आप में से कोई भी कुत्सित उपायों से किसी का नाश करनेवाला नहीं। (२) **विश्वे**=ये सब दिव्य गुण **इत्**=निश्चय से **सतः**=उस पूर्ण स्वतन्त्र सत्ता प्रभु के **महान्तः**=(मह पूजायाम्) पूजन करनेवाले होते हैं। दिव्य गुणों का धारण ही सच्चा प्रभु-पूजन है।

भावार्थ–सब दिव्य गुण समानरूप से महत्त्वपूर्ण हैं। देव वृत्तिवाले पुरुष किसी को भी कुत्सित उपायों से मारते नहीं। इन दिव्य गुणों का धारण ही सच्चा प्रभु-पूजन है।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—पुरउष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

रिशादसः-यज्ञियासः

इति॑ स्तु॒तासो॑ अस॒था रिशादसो॒ ये स्थ त्रय॑श्च त्रिं॒शच्च॑। मनो॑र्देवा यज्ञियासः॥ २॥

(१) **इति**=इस प्रकार गत मन्त्र में वर्णित रीति से **स्तुतासः**=स्तुति किये गये, हे देवो! आप **रिशादसः**=(रिशतां हिंसतामसितारः) हिंसक शत्रुओं को हमारे से दूर करनेवाले हो। (२) **ये**=जो आप **त्रयः च त्रिंशत् च**=तीन और तीस, अर्थात् तेंतीस हो वे आप **मनोः**=मननशील व्यक्ति के **देवाः**=जीवन को द्योतित करनेवाले हो। **यज्ञियासः**=आप संगतिकरण योग्य हो या आदरणीय हो।

भावार्थ–सब दिव्य गुणों को इसी रूप में सोचना कि इनमें कोई कम आवश्यक नहीं है। ऐसा सोचने पर ये दिव्य गुण हमारे जीवन से दोषों को दूर करते हैं और उसे द्योतित (प्रकाशमय) कर देते हैं।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—विराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

मानव मार्ग से दूर न होना

ते न॑स्त्राध्वं॒ तेऽव॑त॒ त उ॑ नो॒ अधि॑ वोचत। मा नः॑ प॒थः पित्र्या॑न्मान॒वादधि॑ दू॒रं नै॑ष्ट परा॒वतः॑॥ ३॥

(१) हे **ते**=वे दिव्य गुणो! **नः**=हमें **त्राध्वम्**=रोग आदि के आक्रमण से बचाओ। **ते**=वे आप हमें **अवत**=काम-क्रोध-लोभ का शिकार होने से रक्षित करो। **ते**=वे आप **उ**=निश्चय से **नः**=हमें **अधिवोचत**=आधिक्येन ज्ञान का उपदेश करनेवाले होवो। (२) इस प्रकार ज्ञान देते हुए आप **नः**=हमें **परावतः**=सुदूर काल से चले आये **पित्र्यात्**=परम पिता प्रभु से प्राप्त **मानवात्**=मानव, मनुष्योचित **पथः अधि**=मार्ग से दूर **मा नैष्ट**=दूर न ले जाइये। दिव्य गुणों का ध्यान करते हुए हम मानवोचित मार्ग से ही गति करनेवाले हों।

भावार्थ–दिव्य गुणों का धारण हमें नीरोग व काम-क्रोध से अनाक्रान्त जीवनवाला बनाये। ये हमें ज्ञान की ओर ले चलें और मानवोचित मार्ग से दूर न ले जायें।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

देवासः वैश्वानरः

ये दे॑वास इ॒ह स्थन॒ विश्वे॑ वैश्वान॒रा उ॒त। अ॒स्मभ्यं॒ शर्म॑ स॒प्रथो॒ गवेऽश्वा॑य यच्छत॥ ४॥

(१) **ये**=जो **देवासः**=दिव्य गुण **इह स्थम**=इस हमारे जीवन में होते हैं, वे **विश्वे**=सब **वैश्वानराः**=मनुष्यों का हित करनेवाले हैं। दिव्य गुण जिस व्यक्ति के जीवन में होते हैं, उसी का कल्याण न करके सभी का कल्याण करते हैं। इनका प्रभाव उस सारे वातावरण पर ही पड़ता है। (२) **उत**=और हे देवो! आप **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **सप्रथः**=अतिशयेन विस्तारवाले **शर्म**=सुख को **यच्छत**=दीजिये। हमारे **गवे अश्वाय**=गौ, घोड़े आदि पशुओं के लिये भी ये कल्याण-कर प्रभाववाले हों। अथवा **गवे**=हमारी ज्ञानेन्द्रियों तथा **अश्वाय**=कर्मेन्द्रियों के लिये ये कल्याणकर हों।

भावार्थ–दिव्य गुणों के धारण से आसपास के सारे वातावरण पर सुखद प्रभाव होता है। ये दिव्य गुण हमारे लिये तथा हमारे गवादिक पशुओं के लिये भी सुखकर हों।

अगले सूक्त का ऋषि भी मनु वैवस्वत ही है–

३१. [एकत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—ईज्यास्तवो यजमानप्रशंसा च॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

यज्ञ के लाभ

यो यजा॑ति॒ यजा॑त॒ इत्सु॒नव॑च्च॒ पचा॑ति च। ब्र॒ह्मेदिन्द्र॑स्य चाकनत्॥ १॥

(१) **यः**=जो **यजाति**=एक बार यज्ञ करता है, वह **यजाते इत्**=फिर अवश्य यज्ञ करता ही है। यज्ञ से देखे गये लाभ उसे यज्ञ की रुचिवाला बना देते हैं। (२) यह अपने जीवन में **सुनवत्**=सोम का अभिषव करता है, वीर्य शक्ति का सम्पादन करता है, **च**=और **पचाति च**=अवश्य ही वेद के आदेश के अनुसार पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान के भोजन का परिपाक करता है। यह **इन्द्रस्य**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **ब्रह्म इत्**=इस वेदज्ञान को ही, इन वेदवाणियों के द्वारा स्तवन को ही **चाकनत्**=चाहता है। इसे स्वाध्याय व स्तवन ही रुचिकर होता है।

भावार्थ–यज्ञ करने से यज्ञ फलों के दृष्टिगोचर होने पर मनुष्य यज्ञशील ही बन जाता है। यह अपने अन्दर सोम शक्ति का सम्पादन करता है, ज्ञान के भोजन का परिपाक करता है, प्रभु के वेदज्ञान को अपनाता हुआ उन वेदवाणियों से प्रभु का स्तवन करता है।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—ईज्यास्तवो यजमानप्रशंसा च॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पुरोडाश-सोम (यज्ञशेष का सेवन-सोमरक्षण)

पु॒रो॒ळाशं॒ यो अ॒स्मै॒ सोमं॒ रर॑त आ॒शिर॑म्। पादित्तं॑ श॒क्रो अंह॑सः॥ २॥

(१) **यः**=जो प्रभु **अस्मै**=इस जीव के लिये **पुरोडाशम्**=हुतशेष को **ररते**=देते हैं। प्रभु जीव को यही आदेश करते हैं कि वह यज्ञशेष का ही सेवन करनेवाला बने। 'केवलाघो भवति केवलादी' अकेले स्वयं ही सब खा जानेवाला तो पापी होता है। और वे प्रभु **आशिरम्**=समन्तात् शरीर में रोगकृमियों के शीर्ण करनेवाले **सोमम्**=सोम शक्ति को, वीर्य को **ररते**=देते हैं। इस सोम के रक्षण से ही तो हमारे जीवन का सारा उत्त्थान होना है। (२) **शक्रः**=ये सर्वशक्तिमान् प्रभु ही **तम्**=उस यज्ञशेष का सेवन करनेवाले तथा सोम का रक्षण करनेवाले पुरुष को **अंहसः**=पाप से **पात् इत्**=अवश्य बचाते ही हैं। वस्तुतः 'यज्ञशेष का सेवन व सोमरक्षण' मनुष्य को पाप की ओर झुकने ही नहीं देते।

भावार्थ–प्रभु के आदेश के अनुसार 'यज्ञशेष का सेवन करते हुए तथा सोम का रक्षण करते हुए' हम अपने को पापों से पृथक् रखने में समर्थ हों।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—ईज्यास्तवो यजमानप्रशंसा च॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

द्युमान् रथः

तस्य॑ द्यु॒माँ अ॑स॒द्रथो॑ दे॒वजू॑तः॒ स शूशु॑वत्। विश्वा॑ व॒न्वन्न॑मि॒त्रिया॑॥ ३॥

(१) **तस्य**=उस, गत मन्त्र में वर्णित यज्ञशेष सेवी सोमरक्षक, पुरुष का **रथः**=यह शरीर-रथ **द्युमान् असत्**=ज्योतिर्मय होता है। रक्षित सोम इसकी ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है। (२) **देवजूतः**=उस महान् देव प्रभु से प्रेरणा को प्राप्त कराया गया **सः**=वह उपासक **शूशुवत्**=सब दृष्टिकोणों से वृद्धि को प्राप्त करता है। (२) यह **विश्वा**=सब, हमारे अन्दर हमारे न चाहते हुए भी घुस आनेवाली **अमित्रिया**=काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुभूत वासनाओं का **वन्वन्**=यह पराजय

करनेवाला होता है। इन वासनाओं का हिंसन करके ही तो यह बढ़ता है।

भावार्थ—यज्ञशीलता से हमारा शरीर-रथ ज्योतिर्मय होता है। यह यज्ञशील पुरुष प्रभु प्रेरणा को प्राप्त करके वृद्धि को प्राप्त होता है। यह सब शत्रुभूत वासनाओं को हिंसित करता है।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—ईज्यास्तवो यजमानप्रशंसा च॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उत्तम गौ

अस्य प्रजावती गृहेऽसश्चन्ती दिवेदिवे। इळा धेनुमती दुहे॥ ४॥

(१) **अस्य**=इस यज्ञशील पुरुष के **गृहे**=घर में **दिवे दिवे**=प्रतिदिन **इडा**=गौ **दुहे**=दुग्ध का प्रपूरण करती है। यह गौ **प्रजावती**=प्रशस्त प्रजावाली होती है, बांझ नहीं होती। **असश्चन्ती**=यह सूख नहीं जाती, दूध देती ही रहती है। **धेनुमती**=यह प्रशस्त धेनुओंवाली होती है। अर्थात् इससे उत्पन्न बछियाँ भी उत्तम दूध देनेवाली होती हैं। (२) यज्ञों का प्रभाव केवल घर के मानवों पर ही नहीं पड़ता। इन यज्ञों से उस गृह के पशु भी अधिक स्वस्थ बनते हैं। यह यज्ञ हमें प्रजा और पशु दोनों दृष्टिकोणों से बढ़ानेवाला होता है। जिस देश में यज्ञ होंगे, वहाँ मनुष्य उत्तम होंगे, तो पशु भी उत्तम होंगे। उस देश में गौएँ खूब दोग्ध्री होंगी।

भावार्थ—यज्ञशील पुरुष को 'प्रजावती, असश्चन्ती, धेनुमती' गौ की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—दम्पती॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

समनसा दम्पती

या दंपती समनसा सुनुत आ च धावतः। देवासो नित्ययाशिरा॥ ५॥

(१) **या**=जो **दम्पती**=पति-पत्नी **समनसा**=समान मनवाले होते हैं, परस्पर एक विचार के होते हैं, वे **सुनुतः**=अपने शरीरों में सोम का अभिषव करते हैं, शक्ति का सम्पादन करते हैं, **च**=और **आधावतः**=जीवन को समन्तात् शुद्ध बना लेते हैं। ये भोगवृत्ति से ऊपर उठकर पवित्र जीवन बिताते हुए उत्तम मनवाले होते हैं। (२) इनके गृह में **नित्यया**=सदा होनेवाली **आशिरा**=शत्रुओं को शीर्ण करने की प्रक्रिया से **देवासः**=देववृत्ति के ही सन्तान होते हैं। वस्तुतः सन्तानों की उत्तमता के लिये आवश्यक है कि-(क) पति-पत्नी परस्पर समान मनवाले हों, (ख) ये अपने जीवन में सोम का सम्पादन करनेवाले हैं, (ग) जीवन को शुद्ध बनायें, यह शोधन प्रक्रिया नित्य चलनेवाली हो। ऐसा होने पर सन्तान देव वृत्ति के होते ही हैं।

भावार्थ—पति-पत्नी समान मनवाले, सोम का रक्षण करनेवाले, जीवन को शुद्ध बनानेवाले हों, तो सन्तान उत्तम होते ही हैं।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—दम्पती॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उत्तम अन्न-उत्तम शक्ति

प्रति प्राशव्याँ इतः सम्यञ्चा बर्हिराशाते। न ता वाजेषु वायतः॥ ६॥

(१) जो पति-पत्नी **सम्यञ्चा**-सम्यक् मिलकर गतिवाले होते हुए **बर्हिः**=यज्ञों को **आशाते**= व्याप्त करते हैं, अर्थात् सदा यज्ञशील बनते हैं, वे **प्राशव्यान्**=खाने के योग्य उत्तम अन्नों के **प्रति इतः**=प्रति जाते हैं, इन्हें उत्तम अन्न सदा प्राप्त रहते हैं। (२) इन उत्तम अन्नों के प्रयोग के द्वारा **ता**=वे पति-पत्नी **वाजेषु**=शक्तियों में **न वायतः**=क्षीण नहीं होते।

भावार्थ—यज्ञशील पुरुषों को उत्तम अन्न प्राप्त होते हैं। इन उत्तम अन्नों से इनकी शक्ति कभी

क्षीण नहीं होती।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—दम्पती॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

यज्ञ-सुमति-ज्ञान

न देवानामपि ह्नुतः सुमतिं न जुगुक्षतः। श्रवो बृहद्विवासतः॥ ७॥

(१) ये पति-पत्नी **देवानाम्**-देवों का **न अपिह्नुतः**=कभी प्रवंचन नहीं करते देवों से दिये हुये भोजनों को देवों के लिये न देकर सबका सब स्वयं नहीं खा जाते। उनके लिये बिना दिये सब खा जानेवाले चोर ही तो होते हैं। (२) ये पति-पत्नी **सुमतिम्**=कल्याणी मति को कभी **न जुगुक्षतः**=संवृत नहीं करते। इनकी बुद्धि पर वासना का परदा नहीं पड़ता। (३) ये पति-पत्नी इस दीप्त बुद्धि से **बृहत् श्रवः**=विशाल ज्ञान को **विवासतः**=धारण करते हैं।

भावार्थ—यज्ञशील बनें। यज्ञशीलता से बुद्धि पर लोभ का परदा नहीं पड़ जाता। अनावृत बुद्धि से ज्ञान का विस्तार होता है।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—दम्पती॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सन्तान-सुखमय पूर्ण जीवन-ज्ञान

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः। उभा हिरण्यपेशसा॥ ८॥

(१) **पुत्रिणा**=प्रशस्त पुत्रोंवाले, **ता**=वे पति-पत्नी **कुमारिणा**=(कुमार क्रीडायाम्) पुत्रों व नप्ताओं से खेलते हुए (क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः) **विश्वं आयुः**=पूर्ण जीवन को **व्यश्नुतः**=प्राप्त करते हैं। (२) **उभा**=ये दोनों **हिरण्यपेशसा**=हितरमणीय ज्ञान से सुन्दर रूपवाले होते हैं।

भावार्थ—हम उत्तम सन्तानोंवाले हों। सन्तानों के साथ सुख को प्राप्त होते हुए पूर्ण जीवन को प्राप्त करें। ज्ञान से सुन्दर रूपवाले बनें।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—दम्पती॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

सन्तान निर्माण के लिये परस्पर मेल

वीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्यन्तामृताय कम्। समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः॥ ९॥

(१) **वीतिहोत्रा**=(वीतिः प्रियकरः होत्र यज्ञः ययोः) जिनको यज्ञ बड़ा प्रिय है। **कृतद्वसू**=(याचमान कृतधनौ-पात्रेषूपयुक्तधनौ) पात्रों में धनों को उपयुक्त करनेवाले, अर्थात् जो दानशील हैं। **अमृताय**=अमरण के लिये, नीरोगता के लिये **कम्**=सुखप्रद हविरूप अन्न को **दशस्यन्ता**=देवों के लिये देते हैं। (२) ये पति-पत्नी **अमृताय**=प्रजा के द्वारा अमर बने रहने के लिये **ऊधः**=योनि को तथा **रोमशम्**=रोमयुक्त (यौवन युक्त) अंग को **संहतः**=संयुक्त करते हैं। केवल सन्तान निर्माण के लिये ही इस मैथुन का प्रयोग करते हैं। और उत्तम सन्तानोंवाले ये पति-पत्नी **देवेषु**=देवों में **दुवः**=परिचर्या-उपासना को **कृणुतः**=करते हैं।

भावार्थ—आदर्श पति-पत्नी (क) यज्ञशील होते हैं, (ख) दान की वृत्तिवाले बनते हैं, (ग) नीरोगता के लिये हविरूप अन्नों को देनेवाले होते हैं। (घ) सन्तान निर्माण के लिये ही शक्ति का विनियोग करते हैं। (ङ) देवों का उपासन करते हैं।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—दम्पत्योराशिषः॥ **छन्दः**—पादनिचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पर्वतों, नदियों व प्रभु के आनन्द की प्राप्ति

आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम्। आ विष्णोः सचाभुवः॥ १०॥

(१) हम **पर्वतानाम्**=(पर्व पूरणे) अपना पूरण करने में यत्नशील, न्यूनताओं को दूर करने में लगे हुए पुरुषों के **शर्म**=सुख को **आवृणीमहे**=वरते हैं। पर्वतों को जो सुख होता है, हम भी पर्वत बनते हुए उस सुख को प्राप्त करें। (२) **नदीनाम्**=प्रभु के स्तोताओं को जो आनन्द प्राप्त होता है (नद् शब्दे) हम उस आनन्द को वरते हैं। स्तवन करते हुए हम भी 'नदि' बनते हैं और इन नदियों (स्तोताओं) के आनन्द का अनुभव करते हैं। (३) **सचाभुवः**=सदा साथ रहनेवाले **विष्णोः**=उस सर्वव्यापक प्रभु के आनन्द को **(वणीमहे)**=वरते हैं। प्रभु को अपने हृदयों में स्थित रूप में अनुभव करते हुए वाचाम् अगोचर (वर्णनातीत) आनन्द में मग्न होते हैं।

भावार्थ–आदर्श पति-पत्नियों की यही कामना होती है कि हम अपने जीवन की न्यूनताओं को दूर करके पूरण के आनन्द का अनुभव करें। प्रभु-स्तवन करते हुए स्तोताओं को प्राप्त होनेवाले आनन्द के भागी बनें। और हृदयस्थ प्रभु का दर्शन करते हुए आनन्दमग्न हो जायें।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—दम्पत्योराशिषः॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

विशाल मार्ग

एतु पूषा रयिर्भगः स्वस्ति सर्वधातमः। उरुरध्वा स्वस्तये॥ ११॥

(१) **रयिः**=धनों का देनेवाला, **भगः**=भजनीय, **सर्वधातमः**=सबका धारण करनेवाला **पूषा**=पोषक देव **आ एतु**=हमें सर्वथा प्राप्त हो और **स्वस्त**=हमारा कल्याण हो। (२) **उरुः अध्वा**=विशाल मार्ग **स्वस्तये**=हमारे अविनाश के लिये हो। हम संकुचित मार्ग से न चलते हुए विशाल मार्ग से चलें।

भावार्थ–हमें पोषक प्रभु प्राप्त हों। उनके प्राप्त होने पर हम सदा विशाल मार्ग का ही आक्रमण करेंगे। यह विशाल मार्ग पर चलना हमारे अविनाश का कारण बनेगा।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—दम्पत्योराशिषः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु-स्तवन से प्रशस्त बुद्धि व निष्पापता

अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा। आदित्यानामनेह इत्॥ १२॥

(१) **अनर्वणः**=उस हिंसा न करनेवाले व हिंसित न होनेवाले **देवस्य**=दिव्य गुणों के पुञ्ज प्रभु के **मनसा**=मनन से **विश्वः**=सब कोई **अरमतिः**=अलंकृत बुद्धिवाला होता है। प्रभु का मनन व स्तवन हमें सद्बुद्धि प्राप्त कराता है। (२) **आदित्यानाम्**=अदीना देवमाता के पुत्रों का, अर्थात् दिव्यता के धारण करनेवाले व्यक्तियों की **अनेहः**=निष्पापता **इत्**=निश्चय से इस प्रभु मनन के द्वारा ही होती है। हम भी प्रभु का मनन (ध्यान) करते हुए अलंकृत बुद्धिवाले व निष्पाप बन पायें।

भावार्थ–प्रभु का स्तवन प्रशस्त बुद्धि व निष्पापता का साधन है।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतः॥ **देवता**—दम्पत्योराशिषः॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

स्नेह, संयम, निर्द्वेषता व सत्य

यथा नो मित्रो अर्यमा वरुणः सन्ति गोपाः। सुगा ऋतस्य पन्थाः॥ १३॥

(१) **यथा**=जिस प्रकार **नः**=हमारे लिये **मित्रः**=स्नेह की देवता, **अर्यमा**=शत्रु नियमन की देवता (अरीन् यच्छति) **वरुणः**=निर्द्वेषता का भाव **गोणः**=रक्षक **सन्ति**=हैं, इसी प्रकार **ऋतस्य पन्थाः**=सत्य के मार्ग **सुगाः**=शोभनतया गन्तव्य हैं, कल्याण की ओर ले चलनेवाले हैं। (२) जीवनयात्रा में 'स्नेह, संयम व निर्द्वेषता' का धारण आवश्यक है। यही मार्ग हमारा रक्षण करेगा। सत्य के मार्ग से चलते हुए हम सदा शुभ को प्राप्त होंगे।

भावार्थ—हमारे जीवनों में 'स्नेह, संयम, निर्द्वेषता व सत्य' हों।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतःङ्क **देवता**—दम्पत्योराशिषःङ्क **छन्दः**—विराट् अनुष्टुपुङ्क **स्वरः**—गान्धारःङ्क

'वशु प्रदाता' प्रभु

अग्निं वः पूर्व्यं गिरा देवमीळे वसूनाम्। सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम्॥ १४॥

(१) **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु का **गिरा**=ज्ञान की वाणियों से **ईडे**-मैं स्तवन करता हूँ। **वः पूर्व्यम्**-जो तुम सबका पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम है, **वसूनां देवम्**-सब वसुओं का देनेवाला है। इस प्रभु का मैं स्तवन करता हूँ। (२) उस **पुरुप्रियम्**=पालक व पूरक (पुरु) तथा प्रीणित करनेवाले प्रभु को, जो **मित्रं न**-एक मित्र के समान **क्षेत्रसाधसम्**=इस हमारे शरीर रूप क्षेत्र को सिद्ध करनेवाले हैं। उस प्रभु को **सपर्यन्तः**-पूजते हुए हम वसुओं की याचना करते हैं। प्रभु ही हमारे निवास के लिये आवश्यक सब वसुओं के देनेवाले हैं।

भावार्थ—हम उस पूर्व्य अग्नि का स्तवन करें। वे अग्रेणी प्रभु ही सब वसुओं को देकर हमारे जीवनयज्ञ को सिद्ध करते हैं।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतःङ्क **देवता**—दम्पत्योराशिषःङ्क **छन्दः**—विराट् पं-ःङ्क **स्वरः**—पञ्चमःङ्क

देववान् का गतिशील रथ

मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित्।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत्॥ १५॥

(१) **देववतः**-उस देववाले प्रभु के उपासक का **रथः**-यह शरीर-रथ **मक्षू**=शीघ्र गतिवाला होता है। यह उपासक **कासुचित् पृत्सु**-किन्हीं भी शत्रु-सेनाओं में **वा**=निश्चय से **शूरः**-शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला होता है। (२) **यः यजमानः**-जो यज्ञशील पुरुष **इत्**=निश्चय से **देवानां मनः**=देवों के मन को **इयक्षति**-अपने साथ संगत करने का प्रयत्न करता है, अर्थात् अपने मन को दिव्य बनाने की कोशिष करता है। यह **इत्** निश्चय से **अयज्वनः**=अयज्ञशील पुरुषों को **अभिभुवत्**=अभिभूत करनेवाला होता है। यज्ञशील पुरुष दिव्य मनवाला बनकर अयज्ञशीलों को परास्त कर पाता है।

भावार्थ—प्रभु के उपासक का शरीर-रथ गतिशील होता है। यह उपासक संग्रामों में शत्रुओं को शीर्ण करता है। यज्ञशील बनकर दैववृत्ति का बनता है और अयज्ञशील पुरुषों को अभिभूत करनेवाला होता है।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतःङ्क **देवता**—दम्पत्योराशिषःङ्क **छन्दः**—विराट् पं-ःङ्क **स्वरः**—पञ्चमःङ्क

'यजमान-सुन्वान-देवयु'

न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत्॥ १६॥

(१) हे **यजमान**=यज्ञशील पुरुष! तू **न रिष्यसि**=हिंसित नहीं होता, तुझे वासनाएँ आक्रान्त नहीं कर पातीं। हे **सुन्वान**=अपने शरीर में सोम का सम्पादन करनेवाले पुरुष! **न**=तू हिंसित नहीं होता। हे **देवयो**-उस प्रकाशमय प्रभु को अपने साथ जोड़ने की कामनावाले पुरुष! तू **न**=हिंसित नहीं होता। 'यजमान, सुन्वान व देवयु' बनकर हम वासनाओं के आक्रमण से अपने को बचायें।

(२) **यः**=जो भी **यजमानः**=यज्ञशील बनकर **देवानां मनः**=देवों के मन को **इत्**=निश्चय से **इयक्षति**=अपने साथ संगत करने की कामना करता है, वह **इत्**=निश्चय से **अयज्वनः**=अयज्ञशील पुरुषों को **अभिभुवत्**=अभिभूत करनेवाला होता है।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनें, शरीर में सोम शक्ति का सम्पादन करें, उस देव (प्रभु) को प्राप्त करने की कामनावाले हों। ऐसा होने पर हम वासनारूप शत्रुओं से हिंसित न होंगे। यज्ञशील बनकर दिव्य मनवाले होते हुए हम अयज्ञशील पुरुषों का अभिभव करनेवाले हों। यज्ञशीलता हमें अयज्ञशीलों से ऊपर उठाये।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतःॐ **देवता**—दम्पत्योराशिषःॐ **छन्दः**—विराट् पङ्क्तिःॐ **स्वरः**—पञ्चमःॐ

यज्ञशील की सर्वोत्कृष्ट स्थिति

नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत्॥ १७॥

(१) **यः**=जो **यजमानः**=यज्ञशील बनकर **इत्**=निश्चय से **देवाना मनः**=देवों के मन को **इयक्षति**=अपने साथ संगत करने का प्रयत्न करता है, वह **इत्**=निश्चय से **अयज्वनः**=अयज्ञशील पुरुषों को **अभिभुवत्**=अभिभूत कर लेता है। (२) **तम्**=उस यजमान को **कर्मणा**=किन्हीं भी कर्मों के द्वारा **नकिः नशत्**=कोई व्याप्त (प्राप्त) नहीं कर पाता। यज्ञशीलता ही सर्वोत्तम कर्म है। कोई भी इसको **न योषत्**=स्वस्थान से च्युत नहीं कर पाता। **योषति**=यह यजमान अपने पुत्रों व धनों में रहता हुआ भी कभी उस प्रभु से पृथक् नहीं होता।

भावार्थ—यज्ञशील पुरुष दिव्य मन को प्राप्त करके सर्वोत्तम स्थिति में पहुँचता है। यह स्वस्थान से परिभ्रष्ट नहीं किया जाता। संसार में रहता हुआ भी प्रभु से पृथक् नहीं होता।

ऋषिः—मनुर्वैवस्वतःॐ **देवता**—दम्पत्योराशिषःॐ **छन्दः**—आर्चीभुरिक्पङ्क्तिःॐ **स्वरः**—पञ्चमःॐ

सुवीर्यं, आशु अश्व्यम्

असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यम्। देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत्॥ १८॥

(१) **यः यजमानः**=जो यज्ञशील पुरुष **देवानां मनः**=देवों के मन को, दिव्य गुण-सम्पन्न मन को **इत्**=निश्चय से **इयक्षति**=अपने साथ जोड़ने की कामना करता है, वह **इत्**=निश्चय ही **अयज्वनः**=अयज्ञशीलों को **अभिभुवत्**=अभिभूत कर लेता है। (२) **अत्र**=इस यजमान के जीवन में **सुवीर्यं असत्**=उत्कृष्ट वीर्य होता है, **उत**=और **त्यत्**=वह प्रसिद्ध **आशु**=शीघ्रगामी **अश्व्यम्**=इन्द्रियाश्वों का समूह होता है, यज्ञशील पुरुष उत्कृष्ट वीर्य को व स्फूर्तिमय इन्द्रिय समूह को प्राप्त करता है।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनकर मन को दिव्य गुण-सम्पन्न बनायें। इससे हमें सुवीर्य व उत्तम इन्द्रिय समूह की प्राप्ति होगी।

इन उत्तम इन्द्रियों के द्वारा हम ज्ञान-वर्धन करते हुए तथा सुवीर्य द्वारा ज्ञानाग्नि को दीप्त करते हुए 'मेधातिथि' बनते हैं, निरन्तर बुद्धि की ओर चलनेवाले। ऐसा होने पर हम 'काण्व'=कण्व पुत्र अतिशयेन मेधावी होते हैं। मेधातिथि इन्द्र का उपासन करता हुआ कहता है—

३२. [द्वात्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'इन्द्र' के कर्मों का गायन

प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया। मदे सोमस्य वोचत॥ १॥

(१) हे **कण्वाः**=मेधावी पुरुषो! तुम **सोमस्य मदे**=सोमरक्षण द्वारा उत्पन्न उल्लास के होने पर **ऋजीषिणः**=(ऋतु+इष्) सरल मार्ग की प्रेरणा देनेवाले **इन्द्रस्य**=सर्वशक्तिमान् प्रभु के **कृतानि**=कर्मों का, सृष्टि के निर्माण व धारण आदि कर्मों का **गाथया**=इन वेद वाणियों के द्वारा **प्रवोचत**=प्रकर्षेण प्रतिवादन करो। (२) प्रभु के कर्मों का गायन करते हुए हम भी उन जैसे कर्मों को ही करने का निश्चय करें। हम भी निर्माण के व धारण के कार्यों में प्रवृत्त हों। प्रभु भक्त वही है, जो प्रभु जैसा बनने का प्रयत्न करता है। वस्तुतः इसी प्रकार हम सोम का भी रक्षण कर पाते हैं।

भावार्थ—हम मेधावी बनकर सोम के मद में प्रभु के कर्मों का गायन करें, जिससे इन जैसे कर्मों में प्रवृत्त हुए-हुए हम सोम का रक्षण कर पायें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

असुरहन्ता प्रभु

यः सृबिन्दुमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम्। वधीदुग्रो रिणन्नपः॥ २॥

(१) **यः**=जो प्रभु **सृबिन्दम्**=सृ-विन्द को (सृ, विन्दति) हमारे पर आक्रमण करके हमारा विदारण कर देनेवाले क्रोध को **वधीत्**=नष्ट करते हैं, वे **उग्रः**=तेजस्वी शत्रुहन्ता प्रभु **अपः रिणन्**=शक्ति के कणों को हमारे में **रिणन्**=प्रेरित करते हैं। क्रोध आदि आसुर भावनायें वीर्यरक्षा के अनुकूल नहीं है। (२) वे प्रभु **अनर्शनिम्**=(ऋश्) जिसका नाश नहीं किया जा सकता उस काम को भी प्रभु ही भस्म करते हैं। **पिप्रुम्**=अपने को ही भरते रहने की स्वार्थभावना को भी प्रभु ही दूर करते हैं। **दाशम्**-उपक्षय कर डालनेवाली, बुद्धि को विनष्ट कर डालनेवाली लोभ वृत्ति को भी ये प्रभु ही समाप्त करते हैं और **अहीशुवम्**-(अहि शिव) साँप की तरह कुटिल गतिवाली छल-छिद्र की भावना का भी अन्त ये प्रभु ही तो करेंगे (युयोध्यस्मज्जुहुराणम्)।

भावार्थ—प्रभु हमारे 'क्रोध, काम, स्वार्थ, लोभ या छलकपट' को दूर करें और शक्ति के कणों को हमारे शरीरों में ही प्रेरित करें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अर्बुद-वेधन

न्यर्बुदस्य विष्टपं वर्ष्माणं बृहतस्तिर। कृषे तदिन्द्र पौंस्यम्॥ ३॥

(१) **बृहतः**=महान् **अर्बुदस्य**=(अहेः) आहन्ता कामदेव के **विष्टपम्**-अत्यन्त संतापक **वर्ष्माणम्**=इस सुन्दर रूप को (शरीर को) **नितिर**=विद्ध करिये। यह काम हमारे पर आक्रमण करता है। हमारे लिये इसके जीतने का सम्भव नहीं होता। इस काम का वेधन तो आपने ही करना है। यह काम सुन्दर है, पर परिणाम में अत्यन्त सन्तापक है। (२) हे **इन्द्र**=शत्रु-संहारक प्रभो! **तत् पौंस्यम्**=उस शक्ति के कर्म को **वृषे**=आप ही करते हैं। आपके लिये ही इसके संहार का सम्भव है।

भावार्थ–इस अत्यन्त शक्तिशाली सन्तापक काम के शरीर को हे प्रभो! आप ही विद्ध कर पाते हैं। हमारे लिये इसके जीतने का सम्भव नहीं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

श्रुताय-ऊतये

प्रति श्रुताय वो धृषत्तूर्णाशं न गिरेरधि। हुवे सुशिप्रमूतये॥ ४॥

(१) **वः**=तुम्हारे **श्रुताय**=ज्ञान के लिये वे प्रभु वासना को **प्रतिधृषत्**=कुचल डालते हैं। वासना ही तो ज्ञान पर परदा डाले रखती है। वासना-विनाश से ज्ञान चमक उठता है। (२) मैं **ऊतये**=रक्षण के लिये **सुशिप्रम्**=शोभन हनु व नासिका को देनेवाले उस प्रभु को **हुवे**=इस प्रकार पुकारता हूँ, **न**=जैसे **गिरेः अधि**=मेघ या पर्वत से **तूर्णाशम्**=उदक को माँगते हैं। मेघ प्यासे के लिये उदक को प्राप्त कराके उसका रक्षण करता है, इसी प्रकार प्रभु हमें उत्तम जबड़े व नासिका प्राप्त कराके हमारा रक्षण करते हैं। जबड़ों से भोजन का ठीक चर्वण होने पर रोगों की आशंका जाती रहती है, और नासिका से गहरा श्वास लेने पर (प्राणायाम करने पर) मानस दोषों का निराकरण हो जाता है।

भावार्थ–प्रभु वासना को विनष्ट करके हमारे ज्ञान का वर्धन करते हैं। उत्तम जबड़ों व नासिका छिद्रों को प्राप्त कराके प्रभु हमारा रक्षण करते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

व्रज-विदारण

स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः। पुरं न शूर दर्षसि॥ ५॥

(१) हे प्रभो! **मन्दानः**=स्तुति किये जाते हुए **सः**=वे आप **सोम्येभ्यः**=सोम का (वीर्य शक्ति का) रक्षण करनेवाले पुरुषों के लिये **गोः**=ज्ञानेन्द्रियों के तथा **अश्वस्य**=कर्मेन्द्रियों के **व्रजम्**=बाड़े को **विदर्षसि**=विदीर्ण करते हैं। इन इन्द्रियों को विषयों के बाड़े से बाहर करते हैं। प्रभु की उपासना उपासक की इन्द्रियों को विषयों में फँसने से बचाती है, और परिणामतः ये उपासक सोम का रक्षण कर पाते हैं। (२) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! आप इस विषयों की बाड़ को इस प्रकार विदीर्ण करते हैं, **न**=जैसे **पुरम्**=काम-क्रोध-लोभरूप शत्रुओं की नगरी को आप विनष्ट करते हैं।

भावार्थ–प्रभु ही उपासक की इन्द्रियों को विषयों की बाड़ से बाहर करते हैं और काम आदि शत्रुओं की नगरी का विध्वंस करते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सोमरक्षण-प्रभु-स्तवन-सात्विक अन्न सेवन

यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः। आरादुप स्वधा गहि॥ ६॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि **यदि**=यदि **मे**=मेरे **सुते**=उत्पन्न किये हुए इस सोम में **रारणः**=तू रमण करता है, **वा**=और यदि **उक्थे**=स्तोत्र में, स्तुति में रमण करता है तथा **चनः दधसे**=सात्त्विक अन्न का सेवन करता है। तो **स्वधा**=आत्मधारण शक्ति के हेतु से **आरात् उपगाहि**=हमारे अत्यन्त समीप प्राप्त होनेवाला हो (आरात्=समीप)। (२) आत्मधारणशक्ति को प्राप्त करने के लिये प्रभु का सान्निध्य आवश्यक है। प्रभु के सान्निध्य के लिये तीन बातें सहायक

होती हैं-(क) सोम का रक्षण, (ख) प्रभु का स्तवन, (ग) सात्त्विक अन्न का सेवन।

भावार्थ-हम 'सोमरक्षण, प्रभु-स्तवन व सात्त्विक अन्न के सेवन' को अपनाकर प्रभु के उपासक बनें। यही आत्मधारणशक्ति की प्राप्ति का उपाय है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सोमरक्षण द्वारा प्रीणन

व॒यं घा॑ ते॒ अपि॑ ष्मसि स्तो॒तार॑ इन्द्र गिर्वणः। त्वं नो॑ जिन्व सोमपाः॥ ७॥

(१) हे **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों से सम्भजनीय **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वयम्**=हम **घा**-निश्चय से **ते**-आपके **स्तोतारः**-स्तुति करनेवाले **स्मसि**=हैं। (२) हे **सोमपाः**-हमारे सोम का रक्षण करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**-हमें **जिन्व**=सोमरक्षण के द्वारा प्रीणित करनेवाले होइये।

भावार्थ-हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु सोमरक्षण द्वारा हमें प्रीणित करेंगे।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अविनाशक अन्न व धन

उ॒त नः॑ पि॒तुमा भ॑र संररा॒णो अवि॑क्षितम्। मघ॑व॒न्भूरि॑ ते॒ वसु॑॥ ८॥

(१) **उत**=और हे प्रभो! **संरारणः**=हमारे से की जानेवाली स्तुति में रमण करते हुए आप **नः**=हमारे लिये **अविक्षितम्**-जिससे विनाश नहीं होता उस **पितुम्**-अन्न का **आभर**=भरण करिये, हमें 'अविक्षित अन्न' को प्राप्त कराइये। (२) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते वसु**=आप से दिया जानेवाला धन **भूरि**-हमारा खूब ही पालन व पोषण करनेवाला है।

भावार्थ-प्रभु हमारे लिये अविनाशक (पोषक) अन्न को तथा धन को देनेवाले हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गोमतः, हिरण्यवतः अश्विनः

उ॒त नो॒ गोम॑तस्कृधि॒ हिर॑ण्यवतो अ॒श्विनः॑। इळा॑भिः॒ सं र॑भेमहि॥ ९॥

(१) हे प्रभो! आप **नः**-हमें **उत**-निश्चय से **गोमतः**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाला **कृधि**-करिये। **हिरण्यवतः**=(हिरण्यं वै वीर्यम्) प्रशस्त वीर्यवाला करिये तथा **अश्विनः**=उत्तम कर्मेन्द्रियरूप अश्वोंवाला करिये। इस **हिरण्य**-वीर्य के रक्षण के द्वारा ही आप हमें उत्तम ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियोंवाला बनाते हैं। (२) हे प्रभो! आप के अनुग्रह से हम **इडाभिः**-इन वेद-वाणियों के साथ **संरभेमहि**=सम्यक् उद्योगवाले हों। हमारे सब कार्य इन वेद वाणियों के अनुसार हों। वस्तुतः वीर्यरक्षण द्वारा उत्तम इन्द्रियोंवाले बनकर हम क्यों न उत्तम कार्यों में प्रवृत्त होंगे?

भावार्थ-प्रभु के अनुग्रह से (क) हम वीर्यरक्षण द्वारा प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियोंवाले बनें, (ख) तथा वेदवाणियों के अनुसार यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'बृबदुक्थ-सुप्रकरस्त्र' प्रभु

बृ॒बदु॑क्थं हवामहे सृ॒प्रक॑रस्नमू॒तये॑। साधु॑ कृ॒ण्वन्त॒मव॑से॥ १०॥

(१) हम **बृबदुक्थम्**=(बृहत् उक्थं) महान् स्तुतिवाले प्रभु को **ऊतये**-रक्षण के लिये **हवामहे**=पुकारते हैं। प्रभु का स्तवन ही हमें सब आसुर भावों के आक्रमण से बचाता है। ये प्रभु **सृप्रकरस्नम्**=प्रसृत बाहुवाले हैं, विशाल क्रियामय भुजाओंवाले हैं। प्रभु इन भुजाओं से हमारा

पालन करते हैं। वे सर्वव्यापक प्रभु 'सर्वतो बाहु' हैं, उनमें सर्वत्र भुजाओं के गुण विद्यमान हैं। (२) हम **अवसे**=पालन के लिये इस प्रभु को पुकारते हैं जो साधु **कृण्वन्तम्**=प्रत्येक वस्तु को सुन्दरता से कर रहे हैं। प्रभु के किसी भी कार्य में असौन्दर्य व अपूर्णता नहीं है। प्रभु की उपासना करते हुए हम इन वस्तुओं का ठीक प्रयोग करेंगे तो अवश्य अपना रक्षण व पालन कर पायेंगे।

भावार्थ—वे प्रभु महान् स्तुतिवाले, प्रसृत भुजाओंवाले व सब बातों को सुन्दरता से करनेवाले हैं। इन प्रभु को हम रक्षण व पालन के लिये पुकारते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'शतक्रतु-पुरूवसु' प्रभु

यः संस्थे चिच्छतक्रतुरादीं कृणोति वृत्रहा। जरितृभ्यः पुरूवसुः॥ ११॥

(१) **यः**=जो प्रभु **संस्थे**=संग्राम में **चित्**=निश्चय से **शतक्रतुः**=अनन्त कर्मों व शक्तियोंवाले होते हैं, वे **वृत्रहा**=वासना को विनष्ट करनेवाले प्रभु ही **आत्**=अब हमारे से उपासना के किये जाने पर **ईं कृणोति**=खूब ही शत्रुवध आदि कर्मों को करते हैं। (२) ये प्रभु **जरितृभ्यः**=इन स्तोताओं के लिये **पुरूवसुः**=पालक व पूरक धनों को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु उपासक को शक्ति प्राप्त कराते हैं, जिससे वह संग्राम में काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विनाश कर सके। ये प्रभु उपासक के लिये पालक व पूरक धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'शक्र-दान-वान्' प्रभु

स नः शक्रश्चिदा शकद्दानवाँ अन्तराभरः। इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः॥१२॥

(१) **सः**=वे प्रभु **शक्रः**=शक्तिशाली हैं **नः**=हमें **चित्**=भी **आशकत्**=सब प्रकार से शक्तिशाली बनाते हैं। **दान-वान्**=वे प्रभु सब कुछ देनेवाले हैं (दा दाने) अथवा शत्रुओं का खण्डन करनेवाले हैं, (दाप लवने)। **अन्तः आभरः**=वे प्रभु हमें अपने अन्दर धारण करते हैं। (२) **इन्द्रः**=वे सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले परमैश्वर्यशाली प्रभु **विश्वाभिः ऊतिभिः**=सब रक्षणों के द्वारा हमारा भरण व पोषण करते हैं।

भावार्थ—वे प्रभु हमें शक्तिशाली बनाते हैं, हमारे लिये सब कुछ देते हैं। सब रक्षणों के साथ हमारा भरण व पोषण करते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'महान् सुपार' प्रभु

यो रायो३ऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा। तमिन्द्रमभि गायत॥ १३॥

(१) **यः**=जो प्रभु **रायः वनिः**=धनों का सम्भजन करनेवाले हैं। **महान्**=पूजनीय हैं। **सुपारः**=उत्तमता से हमें यज्ञादि कर्मों की समाप्ति तक ले जाते हैं (पार कर्मसमाप्तौ)। ये प्रभु **सुन्वतः सखा**=यज्ञशील पुरुषों के मित्र हैं। (२) **तं इन्द्रम्**=उस ऐश्वर्यशाली प्रभु का **अभिगायत**=प्रातः-सायं (दिन के दोनों ओर) गायन करो। प्रभु का स्तवन करते हुए ही हम उचित धनों को प्राप्त करके यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त व सफल हो पायेंगे। ये प्रभु यज्ञशील पुरुषों के मित्र होते हैं।

भावार्थ—प्रभु धनों का उचित संविभाग करके हमें यज्ञादि कर्मों के योग्य बनाते हैं और उन कर्मों के अन्त तक पहुँचाते हैं। यज्ञशील पुरुषों के ही प्रभु मित्र हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'यन्ता-जेता-ईशान' प्रभु

आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम्। भूरेरीशानमोजसा॥ १४॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार 'तं इन्द्रं अभिगायत'=उस इन्द्र का गायन करो जो **आयन्तारम्**=समन्तात् नियमन करनेवाले हैं, सम्पूर्ण संसार को वश में करनेवाले हैं। **पृतनासु**=संग्रामों में **महि**=महान् **स्थिरम्**=स्थिर **श्रवः जितम्**=यश का विजय करनेवाले हैं। प्रभु कभी पराजित तो होते ही नहीं। (२) उस प्रभु का गायन करो जो **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा **भूरेः ईशानम्**=सब पालक व पोषक धनों के स्वामी हैं।

भावार्थ—हम उस प्रभु का गायन करें जो 'सर्वनियन्ता, संग्राम विजेता व धनों के ईशान' हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'नियन्ता-दाता' प्रभु

नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम्। नकिर्वक्ता न दादिति॥ १५॥

(१) **अस्य**=इस प्रभु की **सूनृतानाम्**=(सु+ऊन्+ऋत) उत्तम दुःखों का परिहाण करनेवाली व सत्य **शचीनाम्**=शक्तियों व प्रज्ञानों का **नकिः नियन्ता**=कोई नियन्ता (रोकनेवाला) नहीं है। प्रभु अपनी शक्ति से सबका नियमन करते हैं। प्रभु का नियन्ता कोई नहीं। (२) संसार में ऐसा **वक्ता**=कहनेवाला भी **नकिः**=कोई नहीं कि **न दात् इति**=प्रभु ने हमें नहीं दिया। प्रभु कर्मानुसार जिस भी स्थिति में हमें रखते हैं, उस स्थिति में उन्नति के लिये सब आवश्यक साधनों को प्राप्त कराते ही हैं।

भावार्थ—प्रभु सब शक्तियों व प्रज्ञानों के स्वामी हैं। हमें उन्नति के लिये सब आवश्यक साधनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'ऋणमुक्ति'

न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम्। न सोमो अप्रता पपे॥ १६॥

(१) **नूनम्**=निश्चय से **ब्रह्मणाम्**=ज्ञान का पुञ्ज बननेवाले स्वाध्यायशील पुरुषों का **ऋणं न अस्ति**=ऋषि ऋण नहीं रहता। स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान-वृद्धि करते हुए ये पुरुष ऋषि ऋण से उऋण हो जाते हैं। (२) **प्राशूनाम्**=(अश व्याप्तौ) यज्ञादि कर्मों में व्याप्त होनेवालों का देवऋण नहीं रहता। यज्ञादि के द्वारा वायु आदि देवों को शुद्ध करते हुए ये पुरुष देवऋण से उऋण हो जाते हैं। (३) **सुन्वताम्**=अपने शरीर में सोम का सम्यक् अभिषव करनेवाले, इस सुरक्षित सोम से उत्तम सन्तान को जन्म देनेवाले पुरुषों का ऋण नहीं है, उत्तम सन्तान को जन्म देकर ये व्यक्ति पितृऋण से उऋण हो जाते हैं। (४) **अप्रता**=(प्रा पूरणे) अपना पूरण न करनेवाले पुरुष से **सोमः**=सोम **न पपे**=नहीं अपने अन्दर पिया जाता। अपना पूरण करनेवाला व्यक्ति सोम को अपने अन्दर सुरक्षित करता है।

भावार्थ—हम स्वाध्याय द्वारा ज्ञानी बनकर ऋषिऋण से, यज्ञादि कर्मों में व्याप्त होकर देवऋण से तथा सोमरक्षण से उत्तम सन्तान को जन्म देकर पितृऋण से मुक्त हों। अपना पूरण करने की कामनावाले होकर सोम का रक्षण करें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

गायन-स्तवन-तप

पन्य इदुप गायत पन्यं उक्थानि शंसत। ब्रह्मा कृणोत पन्य इत्॥ १७॥

(१) **पन्ये इत्**=उस स्तुति के योग्य प्रभु के विषय में ही **उपगायत**=गायन करो। **पन्ये**=उस स्तुत्य प्रभु के विषय में ही **उक्थानि**=स्तोत्रों का **शंसत**=शंसन व उच्चारण करो। (२) **पन्ये**=उस प्रभु की प्राप्ति के निमित्त **इत्**=निश्चय से **ब्रह्मा**=विविध तपस्याओं को **कृणोत**=करो।

भावार्थ—हम प्रभु के गुणों का गायन करें। प्रभु का ही स्तवन करें। प्रभु प्राप्ति के निमित्त विविध तपस्याओं को करनेवाले बनें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—भुरिग्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

पन्यः-यज्वनो वृधः

पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः। इन्द्रो यो यज्वनो वृधः॥१८॥

(१) **यः**=जो **वाजी**=शक्तिशाली प्रभु **शता सहस्रा**=सैंकड़ों व हजारों शत्रुओं को **आदर्दिरत्**=विदीर्ण करते हैं, वे प्रभु ही **पन्यः**=स्तुति के योग्य हैं। यह प्रभु-स्तवन ही हमारे वासनारूप शत्रुओं का विनाश करता है। (२) ये प्रभु **अवृतः**=शत्रुओं से कभी घेरे नहीं जाते। **इन्द्रः**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले हैं और **यज्वनः वृधः**=यज्ञशील पुरुषों के बढ़ानेवाले हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें व यज्ञशील बनें। प्रभु हमारे शत्रुओं का विनाश करेंगे व हमारा वर्धन करेंगे।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रभु-स्मरण व आत्मधारणशक्ति

वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः। इन्द्र पिब सुतानाम्॥ १९॥

(१) हे प्रभो! आप **स्वधाः अनु**=आत्मधारणशक्तियों के अनुपात में **वि सु चर**=विशेषरूप से हमारे हृदय देशों में सम्यक् गतिवाले होइये। वास्तव में जितना-जितना हम आपका हृदय में स्मरण करते हैं, उतना-उतना ही आत्मधारण के योग्य बनते हैं। (२) हे प्रभो! आप **कृष्टीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के **अनु आहुवः**=अनुकूलता से आह्वान के योग्य हैं। ये श्रमशील व्यक्ति आपको पुकारते हैं। आपका आराधन ही उन्हें 'कृष्टि' बनाता है। हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप **सुतानाम्**=हमारे शरीरों में उत्पन्न इन सोमों का **पिब**=पान करिये, इसे शरीर में ही सुरक्षित करिये।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण हमें आत्मधारणशक्ति देता है, हमें 'कृष्टि' बनाता है, हमारे अन्दर सोम का रक्षण करता है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सोमरूप सम्पत्ति

पिब स्वधैनवानामुत यस्तुग्र्ये सचा। उतायमिन्द्र यस्तव॥ २०॥

(१) 'वेदवाणी' ज्ञानदुग्ध को देनेवाली, प्रभु की धेनु है। विविध ज्ञान ही इस धेनु के **धैनव**=दुग्ध हैं। हे जीव! तू **स्वधैनवानाम्**=उस परमात्मा (स्व) की वेद-धेनु के इन ज्ञानदुग्धों का **पिब**=पान कर। **उत्**=और **यः**=जो सोम **तुग्र्ये**=(तुग्र्या=water आपः=रेतः) रेतःकणों के

रक्षक पुरुष में (तुग्र्याः अस्य सन्ति इति) **सचा**-समवेत होता है, उस सोम का तू पान कर। (२) **उत**-और हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **अयम्**=यह **यः**-जो सोम है, वह **तव**=तेरा है। यह सोम ही तेरी वास्तविक सम्पत्ति है। यही तेरी ज्ञानाग्नि को दीप्त करके तुझे ज्ञानदुग्धों के पान के योग्य बनायेगा।

भावार्थ-हम सोम का रक्षण करें। इस प्रकार ज्ञानदुग्धों का पान करनेवाले बनें। यह सोम ही हमारी वास्तविक सम्पत्ति है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सोमरक्षण व प्रभु प्राप्ति

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे। इमं रातं सुतं पिब॥ २१॥

(१) **मन्युषाविणम्**=ज्ञान को उत्पन्न करनेवाले प्रभु को (मन्यु=ज्ञान, षु-पैदा करना) **अति इहि**-अतिशयेन प्राप्त हो। **उपारणे**=(Proximity समीपता) समीपता के निमित्त **सुषुवांसम्**=इस सोम का सम्पादन करनेवाले प्रभु को (अति इहिः) अतिशयेन प्राप्त हो। प्रभु ने हमारे शरीरों में सोम का सम्पादन किया है। इसके रक्षण के द्वारा हम प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनते हैं। (२) इसलिए हे जीव! **इमम्**=इस **रातम्**-दिये हुए **सुतम्**=सोम को **पिब**=तू पीनेवाला बन। इस सोम के पान से ही हम प्रभु के सान्निध्य को प्राप्त करेंगे। यह प्रभु सान्निध्य हमारे अन्दर उत्कृष्ट ज्ञान-ज्योति को जगायेगा।

भावार्थ-प्रभु ने हमें यह सोमशक्ति प्राप्त कराई है। इसके पान से हम प्रभु की समीपतावाले होंगे। प्रभु की समीपता में उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

इहि तिस्रः, इहि पञ्च

इहि तिस्रः परावत इहि पञ्च जनाँ अति। धेना इन्द्रावचाकशत्॥ २२॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **परावतः**-दूर देश से इन्द्रियों के इधर-उधर भटकने को छोड़कर **तिस्रः**=ऋग्, यजु, सामरूप तीन प्रभु की वाणियों को **इहि**=प्राप्त हो। इन वाणियों को प्राप्त करके **पञ्च**=पाँचों **जनान्**=विकासों को, पाँचों कोशों के उत्कर्ष को **अति इहि**=अतिशयेन प्राप्त कर। (२) हे इन्द्र! तू **धेनाः**-इन ज्ञान की वाणियों को **अवचाकशत्**=देखता हुआ हो। सदा तू इन ज्ञान की वाणियों का अध्ययन करनेवाला बन।

भावार्थ-हम जितेन्द्रिय बनकर, इन्द्रियों के विषयों में न भटकने देकर ज्ञान की वाणियों का ध्ययन करें। पाँचों कोशों के विकास को ठीक प्रकार से कर पायें। सदा प्रभु की इन ज्ञान-वाणियों को देखनेवाले बनें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

यथा सूर्यः, आपः न (इव)

सूर्यो रश्मिं यथा सृजा त्वा यच्छन्तु मे गिरः। निम्नमापो न सध्र्यक्॥ २३॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार ज्ञान की वाणियों का अध्ययन करता हुआ तू **यथा सूर्यः**-जैसे सूर्य होता है, वैसा ही बन। सूर्य की तरह ही **रश्मिं सृज**=अपने अन्दर ज्ञानरश्मियों को उत्पन्न कर। सूर्य की तरह ही तू प्रकाश को देनेवाला हो। **त्वा**=तुझे **मे गिरः**=मेरी ये वेदरूप ज्ञान की वाणियाँ **यच्छन्तु**-नियमित करनेवाली हों। इनके अनुसार ही तेरा जीवन बने। ये तेरे लिये कार्य

व अकार्य की व्यवस्थिति में प्रमाण हों। (२) ये वाणियाँ **सध्र्यक्**=(सह अञ्चन्ति) मिलकर गति करती हुईं तुझे **आपः नः**=जलों की तरह **निम्नम्**=नम्रता के मार्ग में नियमित करनेवाली हों। 'ऋग्' विज्ञान है, 'यजु' कर्म है, 'साम' उपासना। ये तीनों तेरे अन्दर मिलकर गति करें। तू ज्ञानपूर्वक कर्म कर तथा उन कर्मों को प्रभु के प्रति अर्पण करता हुआ प्रभु का उपासक बन। इस प्रकार तू जीवन में नम्र हो।

भावार्थ—हम अपने अन्दर ज्ञान के सूर्य का उदय करें। प्रभु की इन वेद-वाणियों के अनुसार जीवन को बनायें। 'ज्ञान, कर्म, उपासना' के मेल से जीवन में नम्रतावाले बनें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु-स्मरण से सोमरक्षण, सोमरक्षण से प्रभु-दर्शन

अध्वर्यवा तु हि षिञ्च सोमं वीराय शिप्रिणे। भरा सुतस्य पीतये॥ २४॥

(१) हे **अध्वर्यो**=यज्ञशील पुरुष! तू **वीराय**=(वि+ईर) शत्रुओं को कम्पित करनेवाले, **शिप्रिणे**=उत्तम हनु व नासिका को प्राप्त करानेवाले प्रभु की प्राप्ति के लिये **तु हि**=शीघ्र ही **सोमम्**=सोम को, वीर्यशक्ति को **आसिञ्च**=शरीर में समन्तात् सींचनेवाला बन। इस शक्ति के रक्षण से ही दीप्त ज्ञानाग्निवाला बनकर तू सूक्ष्म बुद्धि से प्रभु का दर्शन करेगा। (२) तू **सुतस्य**=इस उत्पन्न सोम के **पीतये**=शरीर में ही पीने के लिये भी **भरा**=उस प्रभु को हृदय में धारण कर। यह प्रभु-स्मरण वासना-विनाश के द्वारा तुझे सोमरक्षण के योग्य बनायेगा।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण से हम सोम का रक्षण कर पायेंगे। सुरक्षित सोम बुद्धि को तीव्र बनाकर हमें प्रभु-दर्शन के योग्य बनायेगा।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु के आश्चर्यकारक कर्म

य उद्नः फलिगं भिनन्न्यक्सिन्धूँरवासृजत्। यो गोषु पक्वं धारयत्॥ २५॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार तू उस प्रभु का हृदय में धारण कर (भर) **यः**=जो **उद्नः**=जल के हेतु से **फलिगम्**=मेघ को (विशीर्ण होकर इधर-उधर गति करनेवाला फल्+गम्) **भिनत्**=विदीर्ण करता है। इसे विदीर्ण करके **न्यक्**=नीचे **सिन्धून्**=जल-प्रवाहों को **अवासृजत्**=उत्पन्न करता है। (२) उस प्रभु का धारण कर **यः**=जो **गोषु**=गौओं में **पक्वम्**=परिपक्व दूध को **धारयत्**=धारण करते हैं। गोस्तन से वे बाहिर आता हुआ दूध खूब उष्णता को लिये हुए होता है। इस प्रभु के धारण से ही हम शरीर में सोम का रक्षण कर सकेंगे।

भावार्थ—'मेघों का विदारण, जलप्रवाहों की सृष्टि व गौवों से उष्ण दुग्ध की प्राप्ति' ये सब बातें ही हमें आश्चर्य में डाल देती हैं और प्रभु की महिमा का स्मरण कराती हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

और्णवाभम

अहन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम्। हिमेनाविध्यदर्बुदम्॥ २६॥

(१) **ऋचीषमः**=स्तुति के समान वह प्रभु (प्रभु की जितनी भी स्तुति करें, प्रभु उतने ही महान् हैं। प्रभु की कभी अधिक स्तुति तो हो ही नहीं सकती। वे अनन्त हैं, स्तुति तो सान्त ही रहेगी) **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को **अहन्**=नष्ट करते हैं। (२) **और्णवाभम्**=मकड़ी के समान छल-छिद्र के जाल के तनने की वृत्ति को वे प्रभु नष्ट करते हैं। इसी प्रकार **अहीशुवम्**=(शिव

गतौ) सर्प की तरह कुटिल गतिवाली आसुरी वृत्ति को प्रभु नष्ट करते हैं। (२) **अर्बुदम्**-साँप को **हिमेन**-कपूर के द्वारा (campher) अथवा (fresh butter) मक्खन के द्वारा **अविध्यत्**-बींधते हैं। प्रभु का उपासक 'अर्बुद' का 'हिम' से ही वेधन करेगा।

भावार्थ-हम प्रभु का स्तवन करें। यह स्तवन हमें वासना, छलछिद्र के जालों, कपट से वृद्धि व सर्पवृत्ति से सदा दूर रखेगा।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'उग्र निष्टुर' प्रभु का गुणगान

प्र वं उग्राये निष्टुरेऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे। देवत्तं ब्रह्म गायत॥ २७॥

(१) **उग्राय**=उस तेजस्वी, **निष्टुरे**-शत्रुओं को नष्ट करनेवाले, **अषाढाय**-शत्रुओं से अभिभूत न होनेवाले, **प्रसक्षिणे**=शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले प्रभु के लिये **वः**=तुम **देवत्तम्**-उस देव से ही दिये गये अथवा गुरु-शिष्य परम्परा के क्रम में ज्ञानियों से प्राप्त कराये गये **ब्रह्म**=स्तोत्र का **प्रगायत**=प्रकर्षेण गायन करो। (२) यह प्रभु के स्तोत्रों का गायन ही तुम्हें शत्रुओं से अभिभूत होने से बचायेगा। स्तोता के शत्रुओं को प्रभु ही पराजित करते हैं। प्रभु की शक्ति से सम्पन्न होकर यह स्तोता आन्तर व बाह्य शत्रुओं का पराजय करनेवाला होता है।

भावार्थ-हम प्रभु का गुणगान करें। यह गायन हमें उत्कृष्ट प्रेरणा प्राप्त करायेगा और काम आदि शत्रुओं के वशीभूत न होने देगा।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

व्रतमय जीवन

यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः। इन्द्रो देवेषु चेतति॥ २८॥

(१) **यः**=जो **अन्धसः सोमस्य मदे**-शरीर के भोजनरूप इस सोम के मद में, उल्लास में **विश्वानि व्रता अभि**=सब व्रतों की ओर चलता है। अर्थात् सोम को शरीर में सुरक्षित करता है, इस सोम को शरीर का भोजन बनाता है, वह सदा उत्तम कर्मों में ही प्रवृत्त होता है। सोम का विनाश ही मनुष्य को विलासमयी व पापमयी वृत्ति का बना देता है। (२) **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **देवेषु चेतति**-देवताओं के, विद्वानों के सम्पर्क में उत्तरोत्तर अपने ज्ञान को बढ़ाता है। सोमरक्षण से इसकी ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और यह ज्ञान की रुचिवाला बनकर देवों के सम्पर्क से अपने ज्ञान को बढ़ाता है।

भावार्थ-सोम को हम शरीर का भोजन बनायें। इससे उल्लासमय जीवनवाले बनकर व्रती जीवनवाले बनें। विद्वानों के सम्पर्क में अपने ज्ञान को बढ़ायें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सोमरूप अन्न की ओर

इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या। वोळ्हामभि प्रयो हितम्॥ २९॥

(१) **इह**=इस जीवन में **त्या**=वे **सधमाद्या**-मिलकर कार्य करने के द्वारा आनन्दित करनेवाले (ज्ञानेन्द्रियों के जान के अनुसार कर्मेन्द्रियाँ कर्म करें, तो जीवन में आनन्द तो बना ही रहता है) **हिरण्यकेश्या**=हितरमणीय ज्ञानरश्मियोंवाले **हरी**=इन्द्रियाश्व हमें **हितम्**=हितकर **प्रयः**-सोमरूप अन्न की **अभि**-ओर **वोढाम्**=ले चलें। (२) जिस समय ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति में प्रवृत्त रहती हैं और कर्मेन्द्रियाँ यज्ञादि कर्मों में लगी रहती हैं उस समय हमारा हितकर रमणीय ज्ञान बढ़ता

है और वासनाओं से आक्रान्त न होने के कारण हम सोम का रक्षण कर पाते हैं। यह सोमरक्षण ही जीवन के सब हितों का साधक होता है।

भावार्थ—हमारे जीवन में ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ परस्पर मिलकर कार्य करती हुईं—हमें ज्ञानप्रधान जीवनवाला बनायें और सोमरक्षण के योग्य बनायें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—भुरिग्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रियमेधस्तुता हरी

अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी। सोमपेयाय वक्षतः॥ ३०॥

(१) हे **पुरुष्टुत**=पालक व पूरक स्तुतिवाले प्रभो! हमारे ये **प्रियमेधस्तुता**=प्रिय हैं यज्ञ और स्तवन जिनको ऐसे **हरी**=इन्द्रियाश्व **त्वा**=आपको **सोमपेयाय**=सोम को शरीर में ही पीने के लिये, इसे शरीर में सुरक्षित करने के लिये **अर्वाञ्चं वक्षतः**=हृदय के अन्दर धारण करते हैं, ये इन्द्रियाँ आपका ही ज्ञान प्राप्त करती हुईं, आपके ही गुणों व नामों का उच्चारण करती हुईं आपको हृदय में स्थापित करती हैं। (२) हृदय में प्रभु का स्मरण ही हमें वासनाओं से आक्रान्त होने से बचाता है, तभी हम सोम का रक्षण कर पाते हैं।

भावार्थ—हमारी इन्द्रियाँ यज्ञों व स्तवन आदि पवित्र कार्यों में लगी रहेंगी, तभी हम हृदय में प्रभु का दर्शन करेंगे और वासनाविहीन पवित्र जीवनवाले बनकर सोम का रक्षण कर पायेंगे।

अगले सूक्त के ऋषि देवता भी 'मेधातिथि काण्व' व 'इन्द्र' ही हैं—

३३. [त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

उपासक का जीवन

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते॥ १॥

(१) हे **वृत्रहन्**=वासना को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **घ**=निश्चय से **त्वा**=आपको **स्तोतारः**=स्तवन करनेवाले बनकर उपासित करते हैं। (२) **सुतावन्तः**=सोम का सम्पादन करनेवाले, **आपः न**=जलों के समान, अर्थात् शान्त व नम्रता से गति करनेवाले, **वृक्तबर्हिषः**=जिन्होंने हृदयक्षेत्र से वासनाओं को दूर किया है (वृजी वर्जने), ऐसे ये स्तोता लोग **पवित्रस्य**=जीवन को पवित्र बनानेवाले सोम के **प्रस्रवणेषु**=शरीर में चारों ओर प्रस्तुत होने पर शरीर में ही व्याप्त होने पर, हे प्रभो! **परि आसते**=आपका उपासन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु का उपासक (क) शरीर में सोम का रक्षण करता है, (ख) जलों की तरह शान्त व नम्र स्वभाववाले होते हैं, (ग) शरीर में सोम को व्याप्त करते हुए हृदय को पवित्र बनाते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

स्वब्दीव वंसगः

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः॥ २॥

(१) हे **वसो**-हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **उक्थिनः**-स्तोता **नरः**-लोग **सुते**=शरीर में सोम का सम्पादन करने पर तथा **निरेके**-(रेकृ शंकायाम्) शंकाशून्य हृदय के होने पर, आप में पूर्ण श्रद्धा के होने पर **त्वा स्वरन्ति**=आपके स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं, आपके गुणों का गायन करते हैं। (२) हे **इन्द्र**-सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **कदा**-कब **सुतं तृषाणः**-उत्पन्न सोम के प्रति तीव्र प्यासवाला होता हुआ, सोमरक्षण की प्रबल कामनावाला होता हुआ यह स्तोता **ओके आगमः**=अपने घर में आयेगा? अर्थात् विषयों में न भटकता हुआ कब यह अन्तर्मुखी वृत्तिवाला बनेगा! कब यह **स्वब्दी इव**-उत्तम वर्षोंवाले पुरुष के समान होगा? अर्थात् कब समझदार होकर **वंसगः**-वननीय, सुन्दर गतिवाला होगा।

भावार्थ-प्रभु का उपासन वही करता है जो (क) सोम का रक्षण करता है तथा (ख) हृदय में प्रभुसत्ता के विषय में शंका रहित होता है। यह यही चाहता है कि मैं (क) सोम का रक्षण कर पाऊँ, (ख) इन्द्रियों को विषयों में भटकने से रोक सकूँ, (ग) तथा समझदार बनकर सुन्दर आचरणवाला होऊँ।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

ज्ञान-बल-धन

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम्।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे॥ ३॥

(१) हे **धृष्णो**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले प्रभो! **कण्वेभिः**=विद्वानों के द्वारा **आधृषत्**-आप हमारे शत्रुओं का धर्षण कीजिये। उनसे ज्ञान प्राप्त करके हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं को जीतनेवाले बनें। आप हमारे लिये **सहस्रिणं वाजम्**-सहस्रों शत्रुओं का पराजय करने में समर्थ बल को **दर्षि**=दीजिये। (२) हे **विचर्षणे**-(विद्रष्टः) हमारा विशेषरूप से ध्यान करनेवाले **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! हम **मक्षू**=शीघ्र **पिशङ्ग रूपम्**=उज्ज्वल रूपवाले, **गोमन्तम्**-प्रशस्त इन्द्रियोंवाले धन को **ईमहे**=माँगते हैं। हमारे लिये आप उस धन को प्राप्त कराइये जो हमें तेजस्वी बनाये, हमारी इन्द्रियों को सशक्त करे। यह धन हमें विलास में ले जाकर अशक्त करनेवाला न हो।

भावार्थ-हम ज्ञानियों के सम्पर्क में ज्ञान को प्राप्त करके वासनाओं को कुचल डालें। प्रभु हमें हजारों शत्रुओं को पराभूत करनेवाले बल को दें। हमें वह धन दें, जो हमें तेजस्वी व प्रशस्त इन्द्रियोंवाला बनाये।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

प्रभु रूप 'ज्योतिर्मय रथ'

पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे।
यः संमिश्लो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः॥ ४॥

(१) हे **मेध्यातिथे**=उस मेध्य (पवित्र) प्रभु का आतिथ्य करनेवाले जीव! तू **पाहि**-सोम का रक्षण कर। **अन्धसः**=इस सोम के **मदे**=उल्लास में **इन्द्राय**-उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिये **गाय**=गायन कर। (२) उस प्रभु का तू गायन कर **यः**=जो **हर्योः**-इन्द्रियरूप अश्वों का **संमिश्लः**=हमारे शरीर-रथ में मेल करनेवाला है। **यः**=जो **सुते**=सोम के सम्पादन में **सचा**=हमारा साथी होता है, अर्थात् सोमरक्षण में प्रभु ही सहायक होते हैं। **वज्री**=जो प्रभु वज्रहस्त हैं, शत्रुओं

को दण्डित करनेवाले हैं और **हिरण्ययः रथः**=ज्योतिर्मय रथ हैं। प्रभु को अपना आधार बनाकर ही तो हम जीवनयात्रा पूरी कर पाते हैं। प्रभुरूप रथ हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाता है।

भावार्थ–हम प्रभु के गुणों का गायन करें, सोम का रक्षण करें। प्रभु ही हमें प्रशस्त इन्द्रियों को देते हैं। प्रभु ही जीवनयात्रा की पूर्ति के लिये हमारे ज्योतिर्मय रथ बनते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'सुक्रतु-पूर्भित्' इन्द्र

यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे।
य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूर्भिदारितः॥ ५॥

(१) **यः**=जो **सुषव्यः सुदक्षिणः**=उत्तम बायें व दायें हाथवाले हैं अथवा **सुषव्यः**=उत्तमता से जगत् का निर्माण करनेवाले हैं और उत्तम दान देनेवाले हैं। **इनः**=स्वामी हैं। **यः सुक्रतुः**=जो शोभन प्रज्ञा व शक्तिवाले हैं। **गृणे**=वे प्रभु हमारे से स्तुति किये जाते हैं। (२) **यः**=जो **सहस्रा आकरः**=हजारों लोक-लोकान्तरों को बनानेवाले हैं। **यः शतामघः**=जो सैंकड़ों ऐश्वर्योंवाले हैं। **यः**=जो **इन्द्रः**=शत्रुओं का विदारण करनेवाले वे प्रभु **आरितः**=स्तुति द्वारा प्राप्त हुए-हुए (ऋ गतौ) **पूर्भित्**=काम-क्रोध-लोभ रूप शत्रुओं की पुरियों का विदारण करनेवाले हैं।

भावार्थ–हम उस अनन्त शक्ति व अनन्त प्रज्ञावाले प्रभु का स्मरण करें, जो स्तुति किये जाने पर सब अध्यात्म शत्रुओं का विध्वंस करनेवाले हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

क्रत्वा गौरिव शाकिनः

यो धृषितो योऽवृतो यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः।
विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः॥ ६॥

(१) **यः**=जो प्रभु **धृषितः**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले हैं। **यः अवृतः**=जो शत्रुओं से घिरे हुए नहीं है, घेरे नहीं जा सकते हैं। **यः**=जो **श्मश्रुषु**=(युद्धेषु, श्रयन्त्यस्मिन् वीराः) युद्धों में **श्रितः अस्ति**=आश्रय किये जाते हैं। युद्धों के समय सब प्रभु का ही स्मरण करते हैं। (२) वे **विभूतद्युम्नः**=देदीप्यमान ज्ञान ज्योतिवाले व प्रभूत धनवाले (द्युम्न=धन) प्रभु **च्यवनः**=शत्रुओं को च्युत करनेवाले हैं। अतएव **पुरुष्टुतः**=खूब ही स्तुति किये जाते हैं। ये प्रभु **क्रत्वा**=प्रज्ञानपूर्वक कर्म के द्वारा (क्रतु=प्रज्ञान, कर्म) **शाकिनः**=अपने को शक्तिशाली बनानेवाले यज्ञशील पुरुष के लिये **गौः इव**=गौ के समान हैं। जैसे गौ दूध को देती है, इसी प्रकार प्रभु इस यजमान की सब कामनाओं को पूर्ण करते हैं।

भावार्थ–शक्तिशाली अनन्त धनवाले प्रभु कर्मों द्वारा अपने को शक्तिशाली बनानेवाले यजमान की सब कामनाओं को पूर्ण करते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सोमरक्षण के लाभ व साधन

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः॥ ७॥

(१) **सुते**=सोम का सम्पादन होने पर **कः**=कोई विरल पुरुष ही **ईम्**=निश्चय से **सचा**=अपने साथ होनेवाले इस प्रभु को **वेद**=जानता है। ऐसे व्यक्ति विरल ही होते हैं जो संयमी जीवन बिताते हुए, सोमरक्षण द्वारा ज्ञानाग्नि को दीप्त करके प्रभु का दर्शन करते हैं। **पिबन्तम्**=सोम का पान करनेवाले को **कद्वयः**=आनन्दयुक्त जीवन **दधे**=धारण करता है (कत्पयं) अर्थात् इस सोमरक्षक पुरुष का जीवन आनन्दमय होता है। (२) **अयम्**=यह **यः**=जो **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा **पुरः विभिनत्ति**=शत्रुओं की नगरियों को विदीर्ण कर देता है, काम-क्रोध-लोभ के किलों को तोड़ देता है, यह **अन्धसः**=इस सोम के द्वारा **मन्दानः**=आनन्द का अनुभव करता है। यह **शिप्री**=उत्तम हनु व नासिकाओंवाला बनता है। अर्थात् चबाकर खाता है और प्राणायाम को अपनाता है।

भावार्थ—सोमरक्षण (क) हमें प्रभु-दर्शन के योग्य बनाता है, (ख) जीवन को आनन्दमय करता है। सो हम वासनाओं को विनष्ट करके, चबाकर खाते हुए तथा प्राणायाम करते हुए सोम का रक्षण करें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

महान्, चरसि ओजसा

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा॥ ८॥

(१) **न**=जिस प्रकार **वारणः**=शत्रुओं का वारण करनेवाला **मृगः**=पशु (हाथी) **दाना**=मदजलों को, इसी प्रकार प्रभु **पुरुत्रा**=बहुत प्रदेशों में **चरथम्**=इस शरीर-रथ को **दधे**=धारण करते हैं। मदमत्त हाथी शत्रुओं को कुचल डालता है, इसी प्रकार प्रभु ने हमें यह शरीर-रथ शत्रुओं को कुचलने के लिये दिया है। (२) हे प्रभो! **त्वा**=आपको **नकिः नियमत्**=कोई भी रोक नहीं सकता। **सुते**=हमारे शरीरों में सोम का सम्पादन होने पर **आगमः**=आप अवश्य आते ही हैं। **महान्**=आप पूजनीय हैं और **ओजसा चरसि**=बल के साथ विचरते हैं। अर्थात् जब उपासक प्रभु को अपने हृदय में धारण करता है, तो वह प्रभु के बल से अपने को बल-सम्पन्न बना पाता है।

भावार्थ—प्रभु ने यह शरीर वासनारूप शत्रुओं को कुचलने के लिये दिया है। सोमरक्षण के होने पर प्रभु प्राप्त होते हैं। उपासक को ओजस्वी बनाते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

स्थिरः, रणाय संस्कृतः

य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत्॥ ९॥

(१) **यः**=जो **उग्रः**=तेजस्वी **सन्**=होता हुआ **अनिष्टृतः**=शत्रुओं से निस्तीर्ण नहीं किया जा सकता, शत्रु जिसका पराभव नहीं कर सकते, **स्थिरः**=जो स्थिर है, अविचल है, **रणाय संस्कृतः**=युद्ध के लिये पूर्णरूप से सज्जित है, शस्त्र आदि से अलंकृत है। इस प्रकार ये **इन्द्रः**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु हैं। वस्तुतः जो प्रभु-भक्त होते हैं वे 'तेजस्वी-शत्रुओं से अपराभूत-स्थिर व युद्ध के लिये सुसज्जित' होते हैं। ये शत्रुओं से कभी पराजित नहीं होते। (२) ये **मघवा**=ऐश्वर्यशाली 'इन्द्र' **यदि**=यदि **स्तोतुः हवं शृणवत्**=स्तोता की पुकार को सुनते

हैं तो **न योषति**=उसे हिंसित नहीं होने देते। **आगमत्**=उसकी रक्षा के लिये आते ही हैं। प्रभु-भक्त प्रभु की आराधना से अपने में शक्ति का अनुभव करता है और अपना रक्षण करने में समर्थ होता है।

भावार्थ-प्रभु-भक्त 'तेजस्वी, शत्रुओं से अपराभूत, स्थिर व युद्ध के लिये सुसज्जित' बनता है। प्रभु को पुकारता हुआ अपने में शक्ति का संचार करता है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

वृषा

सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः॥ १०॥

(१) **सत्यम्**=सचमुच **इत्था**=इस प्रकार आप **वृषा इत् असि**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले हैं। **नः**=हमारे लिये **वृषजूतिः**=सुखकर प्रेरणा को देनेवाले हैं। **अवृतः**=आप कभी भी शत्रुओं से घेरे नहीं जाते। (२) हे **उग्र**=तेजस्विन् प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **वृषा**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले **शृण्विषे**=सुने जाते हैं। **परावति**=सुदूर देश में भी आप **वृषा**=सुखवर्षक हैं। **उ**=और **अर्वावति**=समीप देश में भी (वृषा) **श्रुतः**=सुखवर्षक रूप में प्रसिद्ध हैं। क्या दूर, क्या समीप, आप सर्वत्र कल्याण करनेवाले हैं।

भावार्थ-प्रभु वृषा हैं, सुखवर्षक हैं। सुखकर प्रेरणाओं को देते हुए और हमारे शत्रुओं को समाप्त करते हुए, वे दूर व समीप सर्वत्र ही सुख प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

शरीर-रथ

वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी।
वृषा रथो मघवन्वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो॥ ११॥

(१) हे प्रभो! आपने हमें यह शरीर-रथ दिया है। इसमें **ते**=आपसे दी गयी **अभीशवः**=चित्तवृत्ति रूप रश्मियाँ (लगामें) **वृषणः**=शक्तिशाली हैं। यह **हिरण्ययी**=ज्योतिर्मयी **कशा**=वाणी रूप चाबुक भी **वृषा**=शक्तिशाली व सुखवर्षक है। (२) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **रथः**=आपका दिया हुआ यह शरीर-रथ **वृषा**=शक्तिशाली है। इसमें जुते हुए **हरी**=इन्द्रियरूप अश्व **वृषणा**=शक्तिशाली हैं। हे **शतक्रते**=अनन्त प्रज्ञान व कर्मोंवाले प्रभो! **त्वम्**=आप इन सब वसुओं को देकर हमारे लिये **वृषा**=सुखों के वर्षक होते हो।

भावार्थ-प्रभु ने यह शरीर-रथ हमें जीवनयात्रा की पूर्ति के लिये दिया है। इसमें चित्तवृत्तियाँ ही लगाम हैं, ज्योतिर्मयी वाणी चाबुक है, इन्द्रियाश्व घोड़े हैं। ये सब के सब शक्तिशाली हैं। प्रभु इन्हें देकर हमारे पर अनन्त सुखों का वर्षण करते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सोम का नाड़ियों में धारण

वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणाम्॥ १२॥

(१) **सोता**=सोम का शरीर में सम्पादन करनेवाला **वृषा**=शक्तिशाली बनता है। यह **ते**-हे प्रभो! आपकी प्राप्ति के लिये **सुनोतु**=इस सोम का सम्पादन करे। हे **वृषन्**=सुखवर्षक, **ऋजीषिन्**=ऋजुमार्ग की प्रेरणा देनेवाले प्रभो! **आभर**=आप हमारे में सोम का भरण करियेङ्क (२) हे **हरीणां स्थातः**=इन्द्रियाश्वों के अधिष्ठाता प्रभो! **तुभ्यम्**-आपकी प्राप्ति के लिये **वृषा**=यह शक्तिशाली स्तोता **वृषणम्**=शक्ति के देनेवाले इस सोम को **नदीषु**=शरीरस्थ नाड़ियों में **आदधन्वे**=समन्तात् धारण करता है। रुधिर में व्याप्त सोम इन नाड़ीरूप नदियों में प्रवाहित होता है।

भावार्थ-सोमरक्षण ही प्रभु प्राप्ति का साधन है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वःङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—आर्चीभुरिग्बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

सोमरक्षण व ज्ञानवाणियों का उच्चारण

एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम्।
नायमच्छा मघवा शृणवद्गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः॥ १३॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष, **शविष्ठ**=अतिशयेन शक्ति-सम्पन्न पुरुष! तू **सोम्यं मधु**=इस सोम-सम्बन्धी मधु को **पीतये**=पीने के लिये **आयाहि**=आ। प्रातः-सायं प्रभु के समीप उपस्थित होने से ही तू सोम का पान कर सकेगा। यह सोम सब भोजन के रूप में गृहीत ओषधियों का सार है, अतएव 'मधु' है। (२) इस सोमपान के लिये प्रातः-सायं प्रभु-चरणों में उपस्थित होना इसलिए आवश्यक है कि इस सोमपान के बिना **अयम्**=यह **मघवा**=ऐश्वर्यशाली **सुक्रतुः**=शोभनकर्मा प्रभु **अच्छा**=आभिमुख्येन **गिरः**=हमारे से उच्चारित ऋग् रूप वाणियों को **ब्रह्म**=अन्य यजुरूप वाणियों को व **उक्था**=सामरूप स्तोत्रों को **न शृणवत्**=नहीं सुनते। सोमरक्षण के अभाव में इन 'गिर् ब्रह्म व उक्थों' का उच्चारण हमें प्रभु का प्रिय नहीं बनाता।

भावार्थ-हम ऋग्, यजु, सामरूप वाणियों का उच्चारण करें। इनका उच्चारण करते हुए सोमरक्षण का ध्यान करें। सोमरक्षण के अभाव में केवल इन वाणियों का उच्चारण हमें प्रभु का प्रिय न बनायेगा।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वःङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—निचृद्बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

प्रभु प्राप्ति व यज्ञ

वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः।
तिरश्चिदर्यं सवनानि वृत्रहन्नन्येषां या शतक्रतो॥ १४॥

(१) हे **वृत्रहन्**=वासनाओं को नष्ट करनेवाले प्रभो! **रथयजुः**=हमारे शरीर-रथ में जुते हुए **हरयः**=इन्द्रियरूप अश्व **रथेष्ठाम्**-इस शरीर-रथ में स्थित, **तिरः चित्**=तिरोहित होते हुए भी, अदृश्य से होते हुए भी **अर्यम्**=स्वामी **त्वा**=आपको **आवहन्तु**=प्राप्त करायें। हमारी इन्द्रियाँ विषयों में न फँसकर आपकी ओर झुकाववाली हों। (२) हे **शतक्रतो**-अनन्त प्रज्ञानोंवाले प्रभो! हमारी इन्द्रियाँ **या**=जो **अन्येषाम्**=सामान्य पुरुषों से भिन्न विलक्षण पुरुषों के **सवनानि**=यज्ञ हैं, उन्हें (आवहन्तु-) आप्त करायें। हम भी सामान्य प्राकृत पुरुषों की तरह विषयों में न फँसे रहे। अपितु, विषयव्यावृत्त होकर यज्ञ-प्रवण बनें।

भावार्थ-हमारी इन्द्रियाँ प्रभु प्राप्ति व यज्ञों की ओर झुकाववाली हों।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

स्तवन-यज्ञ

अस्माकमद्यान्तमं स्तोमं धिष्व महामह।
अस्माकं ते सवना सन्तु शन्तमा मदाय द्युक्ष सोमपा॥ १५॥

(१) हे **महामह**=महान् पूज्य प्रभो! **अद्य**=आज **अस्माकम्**=हमारे **अन्तमं स्तोमम्**=अन्तिकतम स्तोम को **धिष्व**=धारण करिये। हम हृदय के अन्तस्तल से आपके स्तोम को करनेवाले बनें। (२) हे **द्युक्ष**=ज्ञानदीप्ति में निवास करनेवाले, **सोमपाः**=हमारे सोम का रक्षण करनेवाले (प्रभु की उपासना से सोम का रक्षण होता है) **ते सवना**=आपके ये यज्ञ, आप से वेद में उपदिष्ट यज्ञ **अस्माकम्**=हमारे **शन्तमा**=अधिक से अधिक शान्ति को देनेवाले हों और **मदाय**=उल्लास के लिये हों।

भावार्थ—हम हृदय के अन्तस्तल से प्रभु का स्तवन करें। हमें वेदोपदिष्ट यज्ञ प्रिय हों। इन यज्ञों में हम शान्ति व आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'शासन' रक्षण के लिये

नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति। यो अस्मान्वीर आनयत्॥ १६॥

(१) **यः वीरः**=जो शत्रुओं को कम्पित करनेवाला वीर **अस्मान्**=हमें **आनयत्**=लक्ष्य-स्थान पर प्राप्त कराता है, **सः**=वह **नहि तव**=न तेरे, **नो मम**=न मेरे, न ही **अन्यस्य**=किसी दूसरे के **शास्त्रे**=शास्त्र में **रण्यति**=आनन्द का अनुभव करता है। वे प्रभु तो रक्षण में ही आनन्द लेते हैं। (२) प्रभु का शासन शासन के लिए नहीं है। वह केवल रक्षण के लिये है। शासन का उद्देश्य शासन न होकर रक्षण ही होना उचित है।

भावार्थ—प्रभु हमारे पर, हमारे रक्षण के लिये ही शासन करते हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अशास्यं मनः, क्रतुं रघुम्

इन्द्रश्चिद्घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः। उतो अह क्रतुं रघुम्॥ १७॥

इन **इन्द्रः**=प्रभु ने **चित्**=ही **घा**=निश्चय से **तद् अब्रवीत्**=वह बात कही है कि **स्त्रियाः**=स्त्री का **मनः**=मन **अशास्यम्**=शासन करने योग्य नहीं। पति को यह नहीं चाहिये कि पत्नी के मन पर शासन ही करता रहे। पत्नी के मन को मारना नहीं चाहिए। ऐसा करने से सन्तान कभी सुरूप नहीं होती। **उत**=और **उ**=निश्चय से प्रभु ने ही इनके **क्रतुम्**=प्रज्ञान को **रघुम्**=(रहतेर्गतिकर्मणः) गतिवाला क्रियात्मक **अह**=ही (अब्रवीत्=) कहा है। स्त्रियों की प्रज्ञा क्रियात्मक होती है। वे प्रत्येक चीज का कोई न कोई उपाय ढूँढ़ ही लेती हैं।

भावार्थ—एक उत्तम पति को पत्नी का मन मारना नहीं चाहिए। उसे यह भी समझ लेना चाहिए कि इनकी बुद्धि क्रियात्मक होती है। ये प्रत्येक समस्या का कोई न कोई मार्ग निकाल लेती हैं।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'मदच्युता मिथुना' सप्ती

सप्ती चिद्घा मदच्युता मिथुना वहतो रथम्। एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा॥ १८॥

(१) पति-पत्नी तो **चित् घा**=निश्चय से इस गृहस्थ शकट के **सप्ती**=अश्व हैं। अश्वों के समान ये गृहस्थ शकट का ठीक से वहन करते हैं। **मदच्युता**=मद को छोड़नेवाले, अभिमान को न करनेवाले **मिथुना**=स्त्री पुमान् (पति-पत्नी) ही मिलकर **रथं वहतः**=गृहस्थ-रथ को ठीक लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाते हैं। (२) ऐसा होते हुए भी **वृष्णः**=वीर्य का सेचन करनेवाले पुरुष से **धूः**=गृहस्थ शकट की धुरा के समान यह स्त्री उत्तरा **एव इत्**=निश्चय से उत्कृष्ट है। रथ में अश्व से जैसे धुरा ऊपर होती है, इसी प्रकार पिता से माता का महत्त्व अधिक है।

भावार्थ—अभिमान को छोड़कर परस्पर मिलकर पति-पत्नी गृहस्थयज्ञ को पूर्ण करते हैं। माता का मान निश्चय से पिता से अधिक है।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

निरभिमानता व शालीनता (पत्नी के दो गुण)

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन्त्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥ १९॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार स्त्री का महत्त्व अधिक है, तो भी उसे नम्र तो होना ही चाहिये। इसी में उसकी प्रतिष्ठा है। मन्त्र कहता है कि **अधः पश्यस्व**=नीचे देख **मा उपरि**=ऊपर नहीं। तेरे में अकड़ न हो। तू घर में शासन करनेवाली अवश्य है, पर तू **पादकौ**=पाँओं को **संहर तराम्**=मिलाकर रखनेवाली हो, असभ्यता से पाँव के फैला के न फिर। (२) इस प्रकार तू वस्त्रों का धारण करे कि **ते**=तेरे **कशप्लकौ**=टखने व निचले अंग **मा दृशन्**=नहीं दीखें। वस्त्रों से तू अपने को ठीक प्रकार से आवृत कर जिससे तेरे निचले अंग दिखते न रहें। वस्तुतः इस प्रकार के आचरणवाली **स्त्री**=स्त्री **हि**=निश्चय से गृहस्थयज्ञ में **ब्रह्मा**=ब्रह्म (=सर्वमुख्य ऋत्विज्) **बभूविथ**=होती है। इसी ने इस यज्ञ को निर्दोष बनाना है।

भावार्थ—निरभिमान व शालीन स्त्री ही गृहस्थ यज्ञ की ब्रह्मा बनती है, गृहस्थ यज्ञ को यही निर्दोष व निर्विघ्न बनाकर पूर्ण करती है। इसे नम्र होना चाहिए, सभ्य चालवाली होना चाहिए तथा ठीक से वस्त्रों का धारण करना चाहिए।

अगले सूक्त का ऋषि 'नीपातिथि काण्व' है (नीप=deep) गम्भीरता की ओर निरन्तर चलनेवाला सदा गम्भीर विचार करनेवाला यह मेधावी (काण्व) है। यह प्रभु का उत्तम स्तवन करनेवाला बनता है, प्रभु की दीप्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। प्रभु इसे प्रेरणा देते हैं कि—

३४. [चतुस्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

स्तवन-ज्ञान

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम्। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **हरिभिः**=इन्द्रियाश्वों के द्वारा **कण्वस्य**=बुद्धिमान् पुरुष की **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को **उप आयाहि**—समीपता से प्राप्त हो। अर्थात् जैसे एक बुद्धिमान्

पुरुष प्रभु का स्तवन करता है, तू भी उसी तरह प्रभु का स्तवन करनेवाला बन। (२) और **अमुष्य**=उस **दिवः**=प्रकाशमय (=ज्ञान के पुञ्ज) **शासतः**=शासक प्रभु के **दिवम्**=ज्ञान-प्रकाश को **यय**=प्राप्त हो। हे **इन्द्र**=दिवावसो! तू ज्ञानरूप धनवाला तो है ही। ज्ञान ही तो तेरा वास्तविक धन है। सो हे दिवावसो! तू प्रभु का स्तवन कर और उस प्रकाशमय प्रभु के प्रकाशरूप धन को प्राप्त कर।

भावार्थ-प्रभु जीव को प्रेरणा देते हैं कि-तू मेधावी पुरुष की तरह प्रभु का स्तवन करनेवाला बन, (ख) तथा दिवावसु बनता हुआ प्रभु से प्रकाशरूप धन को प्राप्त करनेवाला हो।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

आचार्य द्वारा ज्ञानदान

आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ २॥

(१) **इह**=इस ब्रह्मचर्याश्रम में **ग्रावा**=उपदेष्टा गुह **सोमी**=स्वयं सोम का रक्षण करनेवाला होता हुआ **त्वा वदन्**=तुझे पुकारता हुआ (उपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् अथर्व० १।१।४) **घोषेण**=इन वेद-मन्त्रों के उच्चारण के द्वारा **आयच्छतु**=सब विषयों में (समन्तात्) ज्ञान देनेवाला हो। आचार्य उच्चारण कर उसके बाद तू भी उसी प्रकार उच्चारण करता हुआ ज्ञान को प्राप्त कर। (२) हे **दिवानसो**=ज्ञानधन! तू **अमुष्य**=उस **शासतः**=शासक प्रभु के **दिवम्**=ज्ञान को **यय**=प्राप्त कर।

भावार्थ-आचार्य हमें अपने समीप बुलाये और स्वयं वेद घोष करता हुआ हमारे लिये वेदज्ञान को दे।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

अनुशासन

अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ ३॥

(१) **अत्रा**=यहाँ ब्रह्मचर्याश्रम में, गत मन्त्र का सोमी आचार्य **एषाम्**=इन विद्यार्थियों का **विनेमिः**=विशेषरूप से परिधि बनता है। इनको उचित अनुशासन में रखता हुआ इन्हें मार्ग से विचलित नहीं होने देता। अनुशासन में रखनेवाला आचार्य शास्ता है, विद्यार्थी 'शिष्य' है। आचार्य इनकी वासनाओं को इस प्रकार **धूनुते**=कम्पित करके दूर कर देता है **न**=जैसे **वृकः**=भेड़िया **उराम्**=भेड़ को कम्पित करनेवाला होता है। (२) हे ज्ञानधन शिष्य! तू उस शासक प्रकाशमय प्रभु के ज्ञान को प्राप्त कर।

भावार्थ-आचार्य विद्यार्थियों को अनुशासन में रखता हुआ उनको मर्यादा में चलाता है। इनकी वासनाओं को कम्पित करके दूर करता है। ज्ञान धन को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

अवसे-वाजसातये

आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ ४॥

(१) हे प्रभो! गत मन्त्र के अनुसार शासन में चलते हुए **कण्वा**=मेधावी पुरुष **त्वा**=आपको **इह**=इस जीवन में **अवसे**=रक्षण के लिये तथा **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिये **आहवन्ते**=पुकारते हैं। प्रभु की आराधना ही हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाती है और शक्ति को प्राप्त कराती है। (२) हे ज्ञानधन जीव! तू उस प्रकाशमय शासक के प्रकाश को प्राप्त कर।

भावार्थ-मेधावी पुरुष रक्षण के लिये व शक्ति की प्राप्ति के लिये प्रभु को पुकारते हैं। ये ज्ञानधन पुरुष प्रभु के प्रकाश को पाने के लिये यत्नशील होते हैं।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

पूर्वपाय्यम्

दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम्। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ ५॥

(१) हे जीव! **वृष्णे ते**=शक्तिशाली तेरे लिये **पूर्वपाय्यं न**=सर्वमुख्य पेय वस्तु के समान **सुतानां दधामि**=इन उत्पन्न हुए-हुए सोमों को धारण करता हूँ। इन सोमों के धारण से ही तू शक्तिशाली जीवनवाला बनता है। (२) हे ज्ञानधन! तू उस प्रकाशमय शासक के प्रकाशधनको प्राप्त करनेवाला हो।

भावार्थ—हम सोम को शरीर में ही सुरक्षित करें। इसे सर्वमुख्य पेय वस्तु समझें, इसे शरीर में ही पीना है (imbibe करना है)।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

स्मत् पुरन्धिः-विश्वतोधीः

स्मत्पुरन्धिर्न आ गहि विश्वतोधीर्न ऊतये। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ ६॥

(१) हे प्रभो! **स्मत् पुरन्धिः**=प्रशस्त पालक बुद्धिवाले आप **नः आगहि**=हमें प्राप्त होइये। **विश्वतः धीः**=सब ओर चलनेवाली बुद्धिवाले आप **नः**=हमारे **ऊतये**=रक्षण के लिये होइये। आप से प्रशस्त पालक बुद्धि को प्राप्त करके तथा सब विषयों में प्रवेशवाली बुद्धि को प्राप्त करके हम अपना रक्षण कर सकें। (२) हे ज्ञानधन जीव! तू शासक प्रकाशमय प्रभु के ज्ञानधन को प्राप्त कर।

भावार्थ—प्रभु हमें प्रशस्त पालक बुद्धि को दें। हम सब विषयों में प्रवेशवाली बुद्धि को प्राप्त करके अपना कल्याण सिद्ध कर सकें।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

बुद्धि-रक्षण-धन

आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ ७॥

(१) हे **महेमते**=महनीय बुद्धिवाले, **सहस्रोते**=हजारों रक्षणोंवाले, **शतामघ**=अनन्त ऐश्वर्योंवाले प्रभो! **नः आयाहि**=आप हमें प्राप्त होइये। आप ने ही हमें बुद्धि, रक्षण व धन प्राप्त कराना है। (२) हे ज्ञानधन! तू उस प्रकाशमय शासक प्रभु के ज्ञानधन को प्राप्त कर।

भावार्थ—प्रभु हमें बुद्धि देते हैं, रक्षण प्राप्त कराते हैं तथा सब आवश्यक धनों को देते हैं। हम प्रभु के प्रकाश को प्राप्त करें।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

होता, मनु, हित, देवत्रा ईड्य

आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ ८॥

(१) हे प्रभो! **त्वा**=आपको **आवक्षत्**=धारण करता है। कौन? **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला, **मनुः**=विचारशील, **हितः**=सबका हित करनेवाला तथा **देवत्रा ईड्यः**=देवों में स्तुत्य, अर्थात् खूब उत्कृष्ट देव। हम 'होता, मनु, हित व देवत्रा इड्ये' बनकर ही प्रभु को प्राप्त करते हैं। (२) हे ज्ञानधन जीव! तू उस शासक प्रकाशमय प्रभु के ज्ञानधन को प्राप्त कर।

भावार्थ—हम दानपूर्वक अदन करनेवाले बनें। विचारशील हों, सबका भला करें, दिव्यगुणों के कारण प्रशंसनीय बनें। यही प्रभु प्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

श्येनं पक्षा इव

आ त्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेव वक्षतः। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ ९॥

(१) हे जीव! **त्वा**=तुझे **मदच्युता**=अभिमान का सर्वथा त्याग करनेवाले **हरी**=इन्द्रियाश्व इस प्रकार **आवक्षतः**=लक्ष्य-स्थान पर ले जाते हैं, **इव**=जैसे **श्येनम्**=बाज को **पक्षा**=पङ्ख लक्ष्य पर पहुँचाते हैं। हम ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को ठीक से व्यापृत करते हुए ही प्रभुरूप लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। (११) हे ज्ञानधन! तू उस शासक प्रकाशमय प्रभु के ज्ञानधन को प्राप्त कर।

भावार्थ—हमारे इन्द्रियाश्व अभिमान से शून्य होते हुए स्वकार्य व्यापृति के द्वारा हमें प्रभु रूप लक्ष्य को प्राप्त करायें।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

प्रभु गुणगान व सोमरक्षण

आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ १०॥

(१) हे **अर्य**=अपने मन का स्वामित्व करनेवाले जीव! तू **परि**=चारों ओर से, चारों ओर से चित्तवृत्ति को हटाकर **आयाहि**=प्रभु के समीप प्राप्त होनेवाला हो। **स्वाहा**=तू आत्मत्याग करनेवाला बन (स्व+हा) अथवा (सु आह) उत्तमता से प्रभु के गुणों का उच्चारण कर। जिससे **सोमस्य पीतये**=तू सोम के रक्षण के लिये समर्थ हो। यह प्रभु गुणगान तुझे विषयों से व्यावृत्त करके सोमरक्षण में समर्थ करेगा। (२) हे ज्ञानधन जीव! तू उस शासक प्रकाशमय प्रभु के ज्ञानधन को प्राप्त करनेवाला बन।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनकर प्रभु की ओर चलें। प्रभु गुणगान करते हुए सोम का रक्षण करनेवाले बनें। ज्ञानधन को प्राप्त करें।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

ज्ञान-श्रवण-सम्मिलित-स्तवन

आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ ११॥

(१) हे जीव! तू **नः**=हमारे **उपश्रुति**=समीप ज्ञान-श्रवण के कार्य में **आयाहि**=आ। हमारे समीप उपस्थित होकर ज्ञान का श्रवण करनेवाला बन। हृदयस्थ प्रभु प्रेरणा देते हैं। उस प्रेरणा के सुनने से ज्ञानवृद्धि होती है। **उक्थेषु**=स्तोत्रों में **सह**=मिलकर **रणयः**=आनन्द का अनुभव कर। घर के सब व्यक्ति मिलकर बैठें और मिलकर स्तोत्रों का श्रवण करें। (२) हे ज्ञानधन जीव! तू उस प्रकाशमय शासक के ज्ञानधन को प्राप्त कर।

भावार्थ—हम हृदयस्थ प्रभु से ज्ञान की वाणियों का श्रवण करें। घरों में सब मिलकर प्रभु का गुणगान करें। उस प्रकाशमय प्रभु से ज्ञानधन को प्राप्त करें।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

सम्भृताश्व

सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः संभृताश्वः। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ १२॥

(१) प्रभु को हम प्राप्त तभी करेंगे यदि इन्द्रियाश्वों को ठीक रखेंगे। सो प्रभु कहते हैं कि **सम्भृताश्वः**=सम्यक् भृत-भरण किये गये इन्द्रियाश्वोंवाला तू **सम्भृतैः**=इन सम्यक् पोषित

सरूपैः=रूप युक्त, अर्थात् तेजस्वी इन्द्रियाश्वों से **नः**=हमें **सु**=सम्यक् **आगहि**=प्राप्त हो। इन्द्रियों का स-रूप व सम्भृत बनाकर हम यात्रा को पूर्ण करें और प्रभु को प्राप्त हों। (२) हे ज्ञानधन जीव! तू उस प्रकाशमय शासक के ज्ञानधन को प्राप्त कर।

भावार्थ—हम सम्भृताश्व बनें। इन्द्रियों का ठीक भरण करके प्रभु को प्राप्त हों। उस प्रकाशमय प्रभु से ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करें।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

पर्वतों व समुद्रों से प्रभु की ओर

आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ १३॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि तू **पर्वतेभ्यः**=इन पर्वतों से **आयाहि**=हमारे समीप प्राप्त हो। पर्वतों पर प्राकृतिक शोभा को देखता हुआ तू रचयिता का स्मरण करनेवाला बन। इसी प्रकार **समुद्रस्य अधिविष्टपः**=समुद्र के इस लोक से (विष्टप्=लोक) तू हमें प्राप्त हो। समुद्र भी तो प्रभु की महिमा का प्रतिपादन कर रहा है। ये समुद्र और पर्वत तुझे प्रभु के समीप प्राप्त करानेवाले हों 'यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः'। (२) हे ज्ञानधन जीव! तू उस प्रकाशमय शासक से ज्ञानधन को प्राप्त कर।

भावार्थ—हम पर्वतों व समुद्रों में प्रभु की महिमा का स्मरण करते हुए प्रभु को प्राप्त हों। उस प्रभु से प्रकाश को प्राप्त करें।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों का ग्रथन

आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ १४॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले जीव! तू **नः**=हमारे से दिये हुए **सहस्रा**=इन अनेकों **गव्यानि**=ज्ञानेन्द्रिय समूहों को तथा **अश्वा**=कर्मेन्द्रिय समूहों को **आदर्दृहिः**=सर्वथा ग्रथित कर (string to gether) ये मिलकर कार्य करनेवाली हों। परस्पर अविरुद्ध रूप से ये ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ कार्यों को करनेवाली हों। (२) हे ज्ञानधन जीव! तू उस प्रकाशमय शासक के ज्ञानधन को प्राप्त कर।

भावार्थ—हम प्रभु से दी गई इन ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को एक सूत्र में ग्रथित कर कार्य करनेवाले बनें। वही ज्ञानवृद्धि का मार्ग है। इसी से हम उस प्रभु से दिये जानेवाले ज्ञानधन को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

अयुतानि शतानि च

आ नः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ १५॥

(१) हे जीव! तू **नः**=हमारे इन **अयुतानि**=लाखों **च**=और **शतानि**=सैंकड़ों अथवा **अ-युतानि**=आत्मा से पृथक् न होनेवाले **शतानि च**=और सौ के सौ वर्ष तक ठीक से चलनेवाले ज्ञानधनों को **सहस्रशः**=हजारों प्रकार से **आभर**=अपने अन्दर धारण कर। (२) हे ज्ञानधन जीव! तू उस प्रकाशमय शासक के ज्ञानधन को प्राप्त हो।

भावार्थ–हम आत्मा से पृथक् न होनेवाले ज्ञानों को शतवर्षपर्यन्त अनेक प्रकार से धारण करनेवाले बनें। ज्ञान को ही धन समझें।

ऋषिः—सहस्त्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'सहस्त्रा ओजिष्ठ अश्व्य पशु'

आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्त्रं वसुरोचिषः। ओजिष्ठमश्व्यं पशुम्॥ १६॥

(१) **वसुरोचिषः**=ज्ञान कीदीप्तिरूप धनवाले हम **इन्द्रः च**=और परमैश्वर्यशाली प्रभु, **यत्**=जो **सहस्त्रम्**=(स+हस्) आनन्द से युक्त है तथा **ओजिष्ठम्**=ओजस्वितम है उस **पशुम्**=(पश्यति) सब पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करनेवाले **अश्व्यम्**=इन्द्रियाश्व समूह को **आदद्वहे**=सर्वथा प्राप्त करते हैं। (२) **वसुरोचिष्**=उत्तम इन्द्रियाश्व समूह को प्राप्त करते हैं। परन्तु करते प्रभु की सहायता से ही हैं। सो कहते हैं कि 'वसुरोचिष् और इन्द्र'। ये इन्द्रियाँ स्वस्थ होती हुई 'सु+ख' का कारण होती हैं, सो 'सहस्त्रं' विशेषण है। ज्ञान प्राप्ति का साधन बनती हैं, सो 'पशुं' विशेषण है।

भावार्थ–हम ज्ञानदीप्तिरूप धनवाले बनकर प्रभु की उपासना करते हुए ओजस्वी-आनन्द की कारणभूत ज्ञान को प्राप्त करानेवाली इन्द्रियों को पाते हैं।

ऋषिः—सहस्त्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

कैसे इन्द्रियाश्व?

य ऋज्रा वातरंहसोऽरुषासो रघुष्यदः। भ्राजन्ते सूर्याइव॥ १७॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार हम उन इन्द्रियाश्वों को पाते हैं **ये**=जो **ऋज्राः**=ऋजुगामी हैं, सरल मार्ग से चलनेवाले हैं। **वातरंहसः**=वायु के समान वेगवाले हैं। **अरुषासः**=आरोचमान हैं। **रघुष्यदः**=खूब तीव्र गतिवाले हैं। (२) ये इन्द्रियाश्व **सूर्याः इव**=सूर्यों के समान **भ्राजन्ते**=चमकते हैं।

भावार्थ–हम प्रभु की उपासना से ऋजुगामी, वातवेगवाले, आरोचमान, तीव्रगतिवाले, सूर्यवत् दीप्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करें।

ऋषिः—सहस्त्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पारावत

पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु। तिष्ठं वनस्य मध्य आ॥ १८॥

(१) प्रभु 'पारावत' हैं, पार हैं, अवत हैं। सब कर्मों को पार लगानेवाले हैं, प्रभु कृपा ही हमें सब कर्मों के अन्त तक ले जाती है। वे प्रभु अवत हैं, रक्षक हैं। इन **पारावतस्य**=पारावत प्रभु के **रातिषु**=दानों में, इस प्रभु से दिये जानेवाले **द्रवच्चक्रेषु**=गतिमय रथचक्रोंवाले **आशुषु**=कर्मों में व्याप्त रहनेवाले इन्द्रियाश्वों के ऊपर **तिष्ठम्**=मैं स्थित हूँ। (२) इसी का परिणाम है कि मैं **वनस्य मध्ये**=प्रकाश की किरणों के बीच में स्थित होता हूँ।

भावार्थ–प्रभु मुझे गतिमय चक्रोंवाले शरीर-रथ को देते हैं। इसमें कर्मों में व्याप्त होनेवाले इन्द्रियाश्व जुते हैं। इनके द्वारा मैं सदा ज्ञानरश्मियों में निवास करूँ।

गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाला 'श्यावाश्व' अगले सूक्त का ऋषि है। वह 'अश्विनौ' का आराधन करता है–

३५. [पञ्चत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराट्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

प्राणसाधना से दिव्य भावों का विकास

अ॒ग्निनेन्द्रे॑ण॒ वरु॑णेन॒ विष्णु॑नादि॒त्यै रु॒द्रैर्वसु॑भिः सचा॒भुवा॑।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ सोमं॑ पिबतमश्विना॥ १॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **उषसा सूर्येण च**=उषाकाल व सूर्य के साथ **सजोषसा**-प्रीतिपूर्वक सेवन किये जाते हुए आप **सोमं पिबतम्**=सोम का पान करो। प्राणसाधना के द्वारा शरीर में सोम (वीर्यशक्ति) की ऊर्ध्वगति होती है। यही अश्विनी देवों का सोमपान है। यह प्राणसाधना उषाकाल में प्रबुद्ध होकर प्रातः सूर्योदय तक होती है। इसी से इन्हें 'उषा व सूर्य से सेवित' कहा है। (२) ये प्राणापान **अग्निना**=अग्नि के साथ **सचाभुवा**=मिलकर होते हैं। 'अग्नि'=अग्रेणी हैं, यह प्रगति का प्रतीक है। प्राणसाधना प्रगति का मूल है। इसी प्रकार **इन्द्रेण**=इन्द्र के साथ होनेवाले ये प्राणापान हैं। ये हमें जितेन्द्रिय बनाते हैं। **वरुणेन**-वरुण के साथ संगत ये प्राणापान द्वेष का हमारे से वारण करते हैं। **विष्णुना**=विष्णु से संगत हुए-हुए ये हमें व्यापक व उदार वृत्ति को बनाते हैं (विष् व्याप्तौ)। (३) ये प्राणापान **आदित्यैः रुद्रैः वसुभिः**=आदित्य रुद्र व वसुओं के साथ होनेवाले हैं। ये हमें आदित्यों के समान सब अच्छाइयों का आदान करनेवाले बनाते हैं। सब रोगों का ये विद्रावण करनेवाले रुद्रों के समान होते हैं। तथा हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले ये 'वसु' ही होते हैं।

भावार्थ-प्राणसाधना से शरीर में सोम का रक्षण होता है और सब दिव्य भावों का विकास होता है। प्रातः उषाकाल व सूर्योदय का समय प्राणसाधना के लिये सर्वोत्तम समय है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस समय वायुमण्डल में ओषजोन गैस प्रचुरमात्रा में होती है।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराट्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

प्राणसाधना से 'बुद्धि व शक्ति' की प्राप्ति

विश्वा॑भिर्धी॒भिर्भुव॑नेन वा॒जिना॑ दि॒वा पृ॑थि॒व्याद्रि॑भिः सचा॒भुवा॑।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ सोमं॑ पिबतमश्विना॥ २॥

(१) उषाकाल में सूर्योदय के समय तक सेवित किये जाते हुए ये प्राणापान सोम का शरीर में रक्षण करें। (२) **विश्वाभिः धीभिः**=सब बुद्धियों के साथ **सचाभुवा**=समवेत होकर रहनेवाले, **वाजिना भुवनेन**=शक्तिशाली शरीररूप लोक के साथ रहनेवाले, **दिवा**=प्रभु मस्तिष्करूप द्युलोक के साथ, **पृथिव्या**=शरीररूप पृथिवी के साथ **अद्रिभिः**=(adore) उपासनाओं के साथ समवेत होकर रहनेवाले ये प्राणापान सोम का पान करें।

भावार्थ-प्राणसाधना के द्वारा (क) बुद्धि का विकास होता है, (ख) शरीर के सब अंग सबल बनते हैं, (ग) मस्तिष्क व शरीर ठीक रूप से विकसित होते हैं तथा (घ) चित्तवृत्ति की एकाग्रता होकर प्रभु प्रवणता प्राप्त होती है।

ऋषिः—श्यावाश्वःꣳ देवता—अश्विनौꣳ छन्दः—विराट् त्रिष्टुपꣳ स्वरः—धैवतःꣳ

प्राणसाधना व तेंतीस देव

विश्वै॑र्दे॒वैस्त्रि॒भिरे॑काद॒शैरि॒हाद्भिर्म॒रुद्भि॒र्भृगु॑भिः सचा॒भुवा॑।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ सोमं॑ पिबतमश्विना॥ ३॥

(१) उषाकाल में सूर्योदय तक सेवन किये जाते हुए ये प्राणापान सोम का शरीर में रक्षण करें। (२) **इह**=इस जीवन में **त्रिभिः एकादशैः**=११ पृथिवीलोक में, ११ अन्तरिक्षलोक में तथा ११ द्युलोक में इस प्रकार तीन गुणा ग्यारह, अर्थात् तेंतीस **विश्वैः देवैः**=सब देवों के साथ **सचाभुवा**=समवेत होकर होनेवाले ये प्राणापान सोम का पान करें। प्राणसाधना के द्वारा त्रिलोकी के ये तेंतीस देवता इस शरीर में भी विकसित होते हैं। पृथिवी के ग्यारह देवताओं का मुखिया 'अग्नि' है, अन्तरिक्ष के ११ देवों का मुखिया वायु है और द्युलोक के ११ देवों का मुखिया सूर्य है। प्राणसाधक के भी स्थूल शरीर में अग्नि व शक्ति की उष्णता होती है, हृदय में (वा गतौ) गति का संकल्प होता है और मस्तिष्क में ज्ञान का सूर्य होता है। (२) **अद्भिः**=(अप्=कर्म) कर्मों के साथ, **मरुद्भिः**=शरीर में कार्य करनेवाली सब वायुओं के साथ तथा **भृगुभिः**=(भ्रस्ज् पाके)=ज्ञान परिपाकों के साथ समवेत होकर होनेवाले ये प्राणापान सोम का पान करें। प्राणसाधक कर्मशील व परिपक्व ज्ञानवाला बनता है और उसके शरीर में सब वायुवें अपना-अपना कार्य ठीक प्रकार से करती हैं।

भावार्थ-प्राणसाधना से शरीर में तेंतीस के तेंतीस देवों का ठीक विकास होता है। प्राणसाधक कर्मशील व परिपक्व ज्ञानवाला बनता है। इसके शरीर में सब मरुत् (वायु) ठीक से कार्य करते हुए शरीर का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वःꣳ देवता—अश्विनौꣳ छन्दः—विराट् त्रिष्टुपꣳ स्वरः—धैवतःꣳ

यज्ञ-प्रार्थना-सवन

जु॒षेथां॑ य॒ज्ञं बोध॑तं॒ हव॑स्य मे॒ विश्वे॒ह दे॑वौ॒ सव॒नाव॑ गच्छतम्।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ चेषं॑ नो वोळ्हमश्विना॥ ४॥

(१) **उषसा सूर्येण च सजोषसा**=उषाकाल से सूर्योदय तक प्रीतिपूर्वक सेवन किये जाते हुए **अश्विना**=प्राणापानो **नः**=हमारे लिये **इषं वोढम्**=प्रभु प्रेरणा को प्राप्त कराओ। प्राणसाधना से मन के दोष दूर होकर, उस पवित्र हृदय में ही प्रभु प्रेरणा के सुनने का सम्भव होता है। (२) इस प्रभु प्रेरणा को प्राप्त कराने के द्वारा, हे प्राणापानो! आप **यज्ञं जुषेथाम्**=यज्ञ का सेवन करो। **मे हवस्य बोधते**=मेरी पुकार को जानो, अर्थात् मुझे प्रभु प्रार्थना की वृत्तिवाला बनाओ। मैं नम्रता से प्रभु का आवाहन करनेवाला बनूँ। हे **देवौ**-दिव्य गुणों को विकसित करनेवाले प्राणपानो! आप **इह**=इस जीवन में **विश्वा सवना**=सब निर्माणात्मक कार्यों को **अवगच्छतम्**=जानो, अर्थात् सदा निर्माणात्मक कार्य करनेवाले बनो।

भावार्थ-प्राणसाधना से पवित्रीभूत हृदय में हम प्रभु प्रेरणा को सुनते हैं। उस प्रेरणा के अनुसार यज्ञशील बनते हैं, प्रार्थना की वृत्तिवाले होते हैं और सदा निर्माणात्मक कार्यों को करते हैं।

सूचना-'सवन' शब्द से 'प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन तथा तृतीय सवन' का ग्रहण करें तो अर्थ यह होगा कि सब सवनों को प्राप्त करो, अर्थात् २४+४४+४८=११६ वर्ष तक जीनेवाले बनो।

प्रातः सवन=प्रथम २४ वर्ष, माध्यन्दिन सवन=अगले ४४ वर्ष तृतीय सवन=अन्तिम ४८ वर्ष।

ऋषिः—श्यावाश्वःङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—विराट् त्रिष्टुपङ्क **स्वरः**—धैवतःङ्क

स्तवन-तेजस्विता

स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना॥ ५॥

(१) हे प्राणापानो! आप **स्तोमं जुषेथाम्**=प्रभु के स्तोत्र का सेवन करो तथा **युवशा इव**=युवावस्था में निवास करनेवाले युवकों के समान **कन्यनाम्**=(कन दीप्तौ) दीप्ति का सेवन करो। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्राणसाधना से स्तवन की वृत्ति व दीप्ति (तेजस्विता) प्राप्त होती है।

सूचना—अवशिष्ट मन्त्र भाग मन्त्र संख्या चार की व्याख्या में द्रष्टव्य है।

ऋषिः—श्यावाश्वःङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—भुरिक्पं-ःङ्क **स्वरः**—पञ्चमःङ्क

ज्ञान-यज्ञ

गिरो जुषेथामध्वरं जुषेथां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना॥ ६॥

(१) हे प्राणापानो! **गिरः जुषेथाम्**=आप ज्ञान की वाणियों का सेवन करो। प्राणसाधना से बुद्धि की तीव्रता होकर हमारी ज्ञान प्रवणता होती ही है। उस ज्ञान के अनुसार **अध्वरम्**=हिंसारहित कर्मों का **जुषेथाम्**=सेवन करो। अवशिष्ट मन्त्र भाग मन्त्र संख्या चार में व्याख्यात है।

भावार्थ—प्राणसाधना से हमारी रुचि ज्ञान व यज्ञों की ओर प्रेरित होती है।

ऋषिः—श्यावाश्वःङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—निचृत्त्रिष्टुपङ्क **स्वरः**—धैवतःङ्क

त्रिः वर्तिः यातमश्विना

हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना॥ ७॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **सुतं सोमम्**=उत्पन्न हुए-हुए सोम (वीर्यशक्ति) की ओर इस प्रकार **अवगच्छथः**=जाते हो **इव**=जैसे **हारिद्रवा**=सारस पक्षि विशेष **इत्**=निश्चय से **वना उप पतथः**=जलों के समीप प्राप्त होते हैं अथवा **इव**=जिस प्रकार **महिषा**=पिपासित भैंसें पानी की ओर जाती हैं। प्राण इन सोमों में ही विचरते हैं, इन्हें वे शरीर में ही पीने का प्रयत्न करते हैं। (२) हे प्राणापानो! आप **उषसा सूर्येण च सजोषसा**=उषाकाल व सूर्य के साथ प्रीतिपूर्वक सेवन किये जाते हुए **त्रिः**=तीन प्रकार से **वर्तिः यातम्**=मार्ग का आक्रमण करो। तीन प्रकार से मार्ग के आक्रमण का भाव यह है कि ज्ञानपूर्वक कर्म करते हुए उन कर्मों को परमेश्वरार्पण करनेवाले बनो। इस प्रकार जीवन में 'ज्ञान कर्म व उपासना' का समन्वय करो।

भावार्थ—जलचर हारिद्रव पक्षियों की तरह हमारे प्राणापान सोमकणों में विचरें। पिपासित महिषों की तरह ये सोमकणों का पान करनेवाले हों। प्राणसाधना के होने पर ये प्राणापान हमारे जीवन में ज्ञान कर्म व उपासना का समन्वय करें।

ऋषिः—श्यावाश्वःङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—निचृत्त्रिष्टुपङ्क स्वरः—धैवतःङ्क

हंसौ इव, अध्वगौ इव

हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना॥ ८॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **सुतं सोमम्**=उत्पन्न हुए-हुए सोम के प्रति इस प्रकार **पतथः**=गति करते हो, **इव**=जैसे **हंसो**=दो हंस आकाश में गति करते हैं। अथवा **इव**=जिस प्रकार **अध्वगौ**=दो पथिक मार्ग में गति करते हैं। शेष मन्त्रभाग मन्त्र संख्या सात में व्याख्यात है।

भावार्थ—प्राणापान सोम की ऊर्ध्वगति करके हमें हंसों के समान उज्ज्वल व पथिकों के समान मार्ग पर चलनेवाला बनाते हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वःङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—निचृत्त्रिष्टुपङ्क स्वरः—धैवतःङ्क

श्येनौ इव

श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना॥ ९॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **हव्यदातये**=(हव्यानांदातिः यस्य) यज्ञशील पुरुष के लिये **सुतं सोमं**=उत्पन्न हुए-हुए सोम के प्रति इस प्रकार **पतथः**=गति करते हो, **इव**=जिस प्रकार **श्येनौ**-दो श्येन (बाज) पक्षी गति करते हैं। श्येन गतिशील हैं, प्राणापान भी गतिशील हैं। श्येन शत्रुभूत पक्षियों को समाप्त करता है, ये प्राणापान शत्रुभूत वासनाओं को समाप्त करते हैं। वासना समाप्ति के द्वारा ये हमें यज्ञशील बनाते हैं। शेष मन्त्रभाग मन्त्र संख्या सात पर द्रष्टव्य है।

भावार्थ—प्राणापान दो श्येन पक्षियों के समान हैं। ये वासनारूप चिड़ियों को समाप्त करके सोम का रक्षण करते हैं, और हमें यज्ञशील बनाते हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वःङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—भुरिक्पं- ःङ्क स्वरः—पञ्चमःङ्क

ऊर्जं नो धत्तमश्विना

पिबतं च तृष्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना॥ १०॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **पिबतं च**=सोम का पान करो, **तृष्णुतं च**=और अपने अन्दर तृप्ति का अनुभव करो। सोमरक्षण से एक आनन्द विशेष का अनुभव होता ही है। हे प्राणापानो! **आगच्छतं च**=आप हमें प्राप्त होवो और **प्रजां च धत्तम्**=उत्तम प्रजा का हमारे लिये धारण करो, **च**=और **द्रविणं धत्तम्**=संसारयात्रा को चलाने के लिये आवश्यक धन को धारण करो। (२) **उषसा सूर्येण च**=उषा और सूर्य के साथ **सजोषसा**=प्रीतिपूर्वक सेवन किये जाते हुए आप **नः**=हमारे लिये **ऊर्जं धत्तम्**=बल व प्राणशक्ति का धारण करो (ऊर्ज् बलप्राणनयोः)।

भावार्थ—प्राणसाधना से (१) सोमरक्षण होकर तृप्ति का अनुभव होता है, (२) उत्तम सन्तान प्राप्त होती है। (३) धन कमाने की योग्यता प्राप्त होती है। (४) बल व प्राणशक्ति का वर्धन होता है।

ऋषिः—श्यावाश्वःङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिःङ्क स्वरः—पञ्चमःङ्क

विजय-स्तवन-रक्षण

जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।

सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना॥ ११॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **जयतं च**=विजय प्राप्त करो, सब रोगों व वासनाओं को पराजित करके विजयी बनो। **प्रस्तुतं च**=खूब ही प्रभु का स्तवन करो, **च**=और **प्र अवतम्**=हमारा सब प्रकार से रक्षण करो। अब शिष्ट मन्त्र भाग १० पर व्याख्यात है।

भावार्थ—प्राणसाधना से 'विजय-स्तवन की वृत्ति व रक्षण' प्राप्त होता है।

ऋषिः—श्यावाश्वःङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिःङ्क स्वरः—पञ्चमःङ्क

शत्रुहनन-मित्र प्राप्ति

हतं च शत्रून्यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।

सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना॥ १२॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **शत्रून् हतं च**=काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं का संहार करो। **च मित्रिणः**=स्नेह करनेवाले, दया दान दाक्षिण्य आदि भावों को **यततम्**-अपना साथी बनाओ। अवशिष्ट मन्त्रभाग १० पर व्याख्यात है।

भावार्थ—प्राणसाधना से काम-क्रोध-लोभ आदि का विनाश होकर, दया दान दाक्षिण्य आदि उत्तम भावों की वृद्धि होती है।

ऋषिः—श्यावाश्वःङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्ङ्क स्वरः—धैवतःङ्क

मित्र-वरुण-धर्म-मरुत्

मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।

सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना॥ १३॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **मित्रावरुणवन्ता**=मित्र और वरुणवाले हो, स्नेह व निर्द्वेषता के भाववाले हो। **उत**=और **धर्मवन्ता**=धर्मोंवाले हो, धारणात्मक कर्मोंवाले हो। **मरुत्वन्ता**-शरीरस्थ विविध वायुवोंवाले होते हुए आप **जरितुः**=स्तोता की **हवम्**=पुकार को **गच्छथः**=जाते हो। अर्थात् स्तोता की प्रार्थना को स्वीकार करके उसे प्राप्त होते हो। (२) **उषसा सूर्येण च सजोषसा**=उषा और सूर्य के साथ प्रीतिपूर्वक सेवन किये जाते हुए आप **आदित्यैः**=आदित्यों के साथ **यातम्**=गति करते हो।

भावार्थ—प्राणसाधना से हमारे में (क) स्नेह व निर्द्वेषता के भाव बढ़ते हैं, (ख) धर्म की वृद्धि होती है, (ग) शरीर में सब वायुवें ठीक काम करती हैं, (घ) हमारा जीवन आदित्यों के अनुसार बनता है।

ऋषिः—श्यावाश्वःङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिःङ्क स्वरः—पञ्चमःङ्क

अंगरस

अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।

सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना॥ १४॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **अंगिरस्वन्ता**=अंग-प्रत्यंग में रसवाले हो **उत**=और **विष्णुवन्ता**=(विष् व्याप्तौ) व्यापकता व उदारता की वृत्तिवाले हो। अवशिष्ट मन्त्र भाग १३ पर द्रष्टव्य है।

भावार्थ–प्राणसाधना से अंग-प्रत्यंग रसवाले बने रहते हैं और हृदय की उदारता प्राप्त होती है।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—भुरिक्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

ऋभुमन्ता-वृषणा-वाजवन्ता

ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना॥ १५॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **ऋभुमन्ता**=ऋभुवाले हो (ऋतेन भाति) सत्यज्ञान से दीप्त होनेवाले हो। **वृषणा**=सुखों का वर्षण करनेवाले हो और **वाजवन्ता**=प्रशस्त बलवाले हो। अवशिष्ट मन्त्र भाग १३ पर द्रष्टव्य है।

भावार्थ–प्राणसाधना से सत्यज्ञान, सुख तथा शक्ति प्राप्त होती है।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

ब्रह्म-धियः

ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना॥ १६॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप हमारे अन्दर **ब्रह्म जिन्वतम्**=ज्ञान का प्रीणन (वर्धन) करिये। **उत**=और **धियः जिन्वतम्**=ज्ञान पूर्वक किये जानेवाले कर्मों का वर्धन करिये। **रक्षांसि**=रोगकृमियों व आसुरीभावों का **हतम्**=विनाश करिये। तथा **अमीवाः**=रोगों का **सेधतम्**= निषेध करिये, रोगों को हमारे से दूर करिये। (२) **उषसा सूर्येण च**=उषाकाल के तथा सूर्य के **सजोषसा**=साथ प्रीतिपूर्वक सेवन किये जाते हुए आप **सोमं सुन्वतः**=हमारे अन्दर सोम का सम्पादन करिये। उषाकाल में सूर्योदय तक प्राणसाधना करते हुए हम शरीर में सोमशक्ति का सम्यक् सम्पादन करनेवाले हों। प्राणायाम द्वारा सोम के शरीर में ही व्याप्त करने का प्रयत्न करें।

भावार्थ–प्राणसाधना से सोम (वीर्य) शरीर में ही व्याप्त होता है। इससे हमारे ज्ञान व ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले कर्मों का वर्धन होता है। राक्षसीभाव दूर होते हैं और रोग विनष्ट हो जाते हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—भुरिक्पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

बल-उन्नतिपथ पर बढ़ना

क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नॄन्हतं रक्षांसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना॥ १७॥

(१) हे प्राणापानो! आप **क्षत्रम्**=क्षतों से त्राण करनेवाले बल का हमारे में वर्धन करो। **उत**=और **नॄन् जिन्वतम्**=उन्नतिपथ पर आगे बढ़नेवाले मनुष्यों का प्रीणन करो। अवशिष्ट मन्त्रभाग मन्त्र संख्या १६ पर व्याख्यात है।

भावार्थ–प्राणसाधना द्वारा सोमरक्षण होकर हमारा बल बढ़ता है तथा हम उन्नतिपथ पर आगे बढ़ पाते हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराट्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

प्राणसाधना-गोदुग्ध सेवन

धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना॥ १८॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप सोम के सम्पादन के द्वारा **धेनूः जिन्वतम्**=गौओं का वर्धन करो और गोदुग्ध द्वारा **विशः**-सब प्रजाओं का **जिन्वतम्**-वर्धन करो। अवशिष्ट मन्त्रभाग मन्त्र संख्या १६ पर द्रष्टव्य है।

भावार्थ–प्राणसाधक को चाहिए कि खुले वायु में प्रचार (घूमना) करनेवाली गौओं के दुग्ध का पान करके अपना वर्धन करे। प्राणसाधना के साथ गोदुग्ध सेवन करते हुए हम नीरोग जीवन बिताते हुए वृद्धि को प्राप्त करें।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

अत्रि व श्यावाश्व

अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम्॥ १९॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **अत्रेः इव**='काम-क्रोध-लोभ' इन तीनों से ऊपर उठनेवाले की तरह (अ+त्रि) मेरी **पूर्व्यस्तुतिम्**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम स्तुति को **शृणुतम्**=सुनो। प्राणसाधना द्वारा मैं अत्रि बनूँ और प्रभु के उस स्तवन को करूँ जो मेरा पालन व पूरण करे। (२) हे **मदच्युता**=गर्व को विनष्ट करनेवाले प्राणापानो! आप **श्यावाश्वस्य**=गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाले इस स्तोता के (श्यैङ् गतौ) **सुन्वतः**-सोम का सम्पादन करते हो। **उषसा सूर्येण च**=उषाकाल व सूर्य के साथ **सजोषसा**=प्रीतिपूर्वक सेवन किये जाते हुए आप इस सोम को **तिरः अह्न्यम्**=तिरोहित रूप में रुधिर में व्याप्तिवाला (अह व्याप्तौ) करते हो। यह सोम का शरीर में व्यापन ही हमें अत्रि व श्यावाश्व बनाता है।

भावार्थ–शत्रुओं को गर्व को नष्ट करनेवाले अश्विदेवो! तुम सोमरस निचोड़ते हुए स्तोता की स्तुति सुनकर उसके पास जाओ और उसके यज्ञ को उत्तम रीति से चलाकर उसे देवों के समान भरपूर ऐश्वर्य प्रदान करो।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

सर्ग-सुष्टुति

सर्गाँइव सृजतं सुष्टुतीरुप श्यावाश्वस्य मदच्युता।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम्॥ २०॥

(१) हे प्राणापानो! आप **सर्गान्**=हमारे अन्दर दृढ़ निश्चयों को, लक्ष्य-स्थान पर पहुँचने के भावों को और **इव**=इन अध्यवसायों की तरह **सुष्टुतीः**-उत्तम स्तुतियों को **उपसृजतम्**-उत्पन्न करो। शेष मन्त्र भाग मन्त्र संख्या १९ पर व्याख्यात है।

भावार्थ–हम प्राणसाधना के द्वारा अध्यवसाय व उत्तम स्तुतिवाले बनें।

ऋषिः—श्यावाश्वः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

रश्मि-अध्वर

रश्मीँरिव यच्छतमध्वराँ उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम्॥ २१॥

(१) हे प्राणापानो! आप **रश्मीन् इव**=ज्ञान की किरणों की तरह **अध्वरान्**=हिंसारहित यज्ञात्मक कर्मों को **उपयच्छतम्**=हमारे लिये दो अथवा हमारे अन्दर इनका नियमन करो। शेष मन्त्र भाग मन्त्र संख्या १९ पर द्रष्टव्य है।

भावार्थ–प्राणसाधना द्वारा ज्ञानकिरणों का वर्धन होता है और हमारे जीवनों में यज्ञात्मक कर्म चलते हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अन्तर्मुखी वृत्ति व रणीय रत्नों का धारण

अर्वाग्रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे॥ २२॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **रथम्**=शरीर-रथ को **अर्वाक्**=अन्तर्मुखी वृत्तिवाला बनाते हुए **नियच्छतम्**=विषय-वासनाओं में जाने से रोको। और **सोम्यम्**=सोम-सम्बन्धी **मधु**=मधु का, सारभूत वस्तु का **पिबतम्**=पान करो। हे प्राणापानो! आप **आयातम्**=हमें प्राप्त होवो। **आगतम्**=अवश्य ही प्राप्त होवो। (२) **अवस्युः**=रक्षण की कामनावाला **अहम्**=मैं **वाम्**=आप दोनों को **हुवे**=पुकारता हूँ। **दाशुषे**=आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले मेरे लिये आप की साधना में प्रवृत्त मेरे लिये **रत्नानि**=रमणीय धनों को **धत्तम्**=धारण करिये।

भावार्थ–प्राणसाधना से (क) शरीर-रथ की वृत्ति अन्तर्मुखी होती है, इन्द्रियाँ विषयों में नहीं भटकती। (ख) सोम का शरीर में रक्षण होता है, (ग) रोगों से रक्षण होता है, (घ) और शरीर में रमणीय रत्नों का धारण होता है।

ऋषिः—श्यावाश्वः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—पुरस्ताज्ज्योतिर्नामजगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

नमस्कार-अध्वर

नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे॥ २३॥

(१) हे **नरा**=उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणापानो! आप **नमोवाके प्रस्थिते**=प्रभु के प्रति नमस्कार वचनों के प्रस्थित होने पर, प्रभु की प्रति नम उक्ति के करने पर तथा **अध्वरे**=यज्ञों के होने पर **विवक्षणस्य पीतये**=विशिष्ट उन्नति के साधनभूत सोम के (वक्ष् To grow) पान के लिये प्राप्त होवो। अवशिष्ट मन्त्र भाग २२ मन्त्र पर द्रष्टव्य है।

भावार्थ–हम प्राणसाधना के साथ प्रभु के प्रति नमन करें तथा यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त हों। यही सोमरक्षण का मार्ग है।

ऋषिः—श्यावाश्वःॐ देवता—अश्विनौॐ छन्दः—पं-ःॐ स्वरः—पञ्चमःॐ

प्राणसाधना द्वारा प्रकाश व आनन्द की प्राप्ति

स्वाहाकृतस्य तृम्पतं सुतस्य देवावन्धसः।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे॥ २४॥

(१) हे **देवौ**=जीवन को दिव्यगुणयुक्त प्रकाशमय बनानेवाले प्राणापानो! आप **सुतस्य**=उत्पन्न हुए-हुए तथा **स्वाहाकृतस्य**=शरीर के अन्दर आहुत किये गये **अन्धसः**=सोम के पान से **तृम्पतम्**=तृप्ति का अनुभव करो, सोम को शरीर में ही व्याप्त करके जीवन को आनन्दमय बनाओ। अवशिष्ट मन्त्रभाग २२ मन्त्र पर द्रष्टव्य है।

भावार्थ—प्राणसाधना से सोम का शरीर में ही व्यापन होकर प्रकाश व आनन्द का अनुभव होता है।

अगले सूक्त में श्यावाश्व ऋषि 'इन्द्र' का आराधन करते हुए कहते हैं—

३६. [षट्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—श्यावाश्वःॐ देवता—इन्द्रःॐ छन्दः—शक्वरीॐ स्वरः—धैवतःॐ

विश्वाः पृतनाः सेहानः

अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **सुन्वतः**=सोम का अभिषव करनेवाले, शरीर में सोम का सम्पादन करनेवाले, **वृक्तबर्हिषः**-जिसने हृदयक्षेत्र से पापों का वर्जन किया है (वृजी वर्जने) उस यज्ञशील पुरुष के **अविता असि**=रक्षक हैं। इस रक्षण के लिये **सोमं पिब**=सोम का पान करिये, इसके सोम को शरीर में सुरक्षित करिये। **कम्**=इस आनन्दप्रद सोम को **मदाय**=जीवन में उल्लास के लिये पीजिये, शरीर में ही इसे लीन करिये (Imbibe) (२) हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले प्रभो! उस सोम का आप पान करिये **यं भागम्**=जिस भजनीय सोम को **ते**=आपकी प्राप्ति के लिये **अधारयन्**=धारण करते हैं। इस सोम के रक्षण के द्वारा ही तो हम तीव्र-बुद्धि बनकर प्रभु का दर्शन कर पाते हैं। (३) हे प्रभो! आप इस सोमरक्षण के द्वारा इन यज्ञशील पुरुषों के जीवन में **विश्वाः पृतनाः**=सब शत्रु-सेनाओं का तथा **उरुज्रयः**=उनके महान् वेग का **सं सेहानः**=सम्यक् पराभव करते हैं। आप **अप्सुजित्**=सब कर्मों में हमें विजय प्राप्त कराते हैं। **मरुत्वान्**=प्रशस्त वायुवोंवाले हैं, शरीर में प्राणों के रूप से इन उत्तम वायुवों को प्राप्त कराते हैं और **सत्पते**=सत्, अर्थात् उत्तम कर्मों के रक्षक हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा प्रभु ही संयमी पवित्र हृदय पुरुष का रक्षण करते हैं। संयत सोम ही प्रभु-दर्शन का कारण बनता है और रोग व वासनारूप शत्रुओं का पराभव करनेवाला होता है।

ऋषिः—श्यावाश्वःॐ देवता—इन्द्रःॐ छन्दः—निचृच्छक्वरीॐ स्वरः—धैवतःॐ

स्तोता का रक्षण

प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते॥ २॥

(१) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **स्तोतारं प्राव**=तू स्तोता का रक्षण कर। वस्तुतः यह स्तोता तो आपका ही रूप बन गया है। सो आप **त्वाम्**=अपने को ही **अव**=रक्षित करिये। इस रक्षण के लिये ही **सोमं पिब**=सोम का पान करिये। शिष्ट मन्त्रभाग संख्या एक पर व्याख्यात है।

भावार्थ—प्रभु स्तोता का रक्षण करते हैं, स्तोता तो प्रभु का ही रूप है, सो प्रभु स्तोता का रक्षण करते हुए अपना ही रक्षण करते हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराट् शक्वरी॥ **स्वरः**—धैवतः॥

ऊर्जा, ओजसा

ऊर्जा देवाँ अवस्योजसा त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते॥ ३॥

(१) हे प्रभो! आप **ऊर्जा**=बल व प्राणशक्ति के द्वारा **देवान्**=दिव्य गुणयुक्त पुरुषों का **अवसि**=रक्षण करते हैं। आप इन देवों का क्या रक्षण करते हैं, ये तो आपके ही छोटे रूप हैं। सो आप **त्वाम्**=अपने को ही **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा रक्षित करते हैं। इस रक्षण के लिये ही **सोमं पिबा**=सोम का पान करिये। शेष मन्त्र भाग मन्त्र संख्या एक पर व्याख्यात है।

भावार्थ—प्रभु बल, प्राणशक्ति व ओजस्विता के द्वारा दिव्य गुणयुक्त पुरुषों का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृच्छक्वरी॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'दिवः पृथिव्याः' जनिता

जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते॥ ४॥

(१) हे प्रभो! आप **दिवः**=द्युलोक के **जनिता**=प्रादुर्भूत करनेवाले हैं। **जनिता पृथिव्याः**=इस पृथिवी के भी जनिता हैं। मस्तिष्करूप द्युलोक व शरीररूप पृथिवीलोक को आप ही तो उत्पन्न करते हैं। इस मस्तिष्क व शरीर के सम्यक् विकास के लिये आप सोम का रक्षण करिये। अवशिष्ट मन्त्र भाग एक संख्या पर द्रष्टव्य है।

भावार्थ—प्रभु ही द्युलोक व पृथिवीलोक के उत्पत्तिकर्ता हैं। हमारे जीवनों में मस्तिष्क को दीप्त तथा शरीर को प्रभु ही दृढ़ बनाते हैं। इसके लिये आप सोम का रक्षण करिये।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—शक्वरी॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'अश्वानां गवां' जनिता

जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते॥ ५॥

(१) हे प्रभो! आप ही **अश्वानाम्**=(अश् व्याप्तौ) कर्मों में व्याप्त होनेवाली कर्मेन्द्रियों के **जनिता**=उत्पादक हैं तथा **गवाम्**=(गमयन्ति अर्थात्) अर्थों की ज्ञापक ज्ञानेन्द्रियों के भी आप ही **जनिता असि**=प्रादुर्भूत करनेवाले हैं। इन कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों को सशक्त बनाने के लिये आप सोम का पान करिये। अवशिष्ट मन्त्र भाग एक संख्या पर द्रष्टव्य है।

भावार्थ–प्रभु सोमरक्षण द्वारा हमारी कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों को सशक्त बनाते हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—शक्वरी॥ **स्वरः**—धैवतः॥

स्तोमं-महः

अत्रीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते॥ ६॥

(१) हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! आप **अत्रीणाम्**=(अ+त्रि) 'काम-क्रोध-लोभ' इन तीनों से ऊपर उठनेवाले पुरुषों के **स्तोमम्**=स्तुति समूह को तथा **महः**=(Light, power) प्रकाश व शक्ति को **कृधि**=करिये। इसके लिये इनके सोम का रक्षण करिये। शेष मन्त्र भाग संख्या एक पर द्रष्टव्य है।

भावार्थ–प्रभु काम-क्रोध-लोभ के विजेता पुरुषों को स्तुति की वृत्ति तथा प्रकाश व बल प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

त्रसदस्यु का रक्षण (ब्रह्माणि वर्धयन्)

श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन्॥ ७॥

(१) हे प्रभो! इस **श्यावाश्वस्य**=गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाले **सुन्वतः**=सोम का अपने में अभिषव करनेवाले वीर्यशक्ति का सम्पादन करनेवाले की प्रार्थना को आप **तथा शृणु**=उसी प्रकार सुनिये **यथा**=जैसे **कर्माणि कृण्यतः**=कर्मों को करते हुए **अत्रेः**–काम-क्रोध-लोभ से रहित पुरुष की प्रार्थना को **अशृणोः**–सुनते हैं। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **एकः इत्**=अकेले ही **ब्रह्माणि**=ज्ञानों व स्तोत्रों को **वर्धयन्**=बढ़ाते हुए, **नृषाह्ये**=युद्ध में **त्रसदस्युम्**=काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं को भयभीत करनेवाले इस त्रसदस्यु को **प्र आविथ**=प्रकर्षेण रक्षित करते हैं।

भावार्थ–प्रभु उसी की प्रार्थना को सुनते हैं जो–(क) गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाला है, (ख) सोम का सम्पादन करता है, (ग) काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठता है, (घ) और यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त रहता है। ज्ञानों व स्तवन वृत्ति को बढ़ाते हुए प्रभु इसको 'त्रसदस्यु' बनाते हैं, काम-क्रोध-लोभ आदि से इसका रक्षण करते हैं।

अगले सूक्त के ऋषि देवता भी क्रमशः 'श्यावाश्व' व 'इन्द्र' ही हैं–

३७. [सप्तत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडतिजगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

माध्यन्दिन स्तवन के सोम का पान

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वतः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप **वृत्रतूर्येषु**=वासना के विनाशवाले संग्रामों में **इदं ब्रह्म**=इस ज्ञान का **प्र आविथ**=प्रकर्षेण रक्षण करते हैं। हे **शचीपते**=प्रज्ञा व कर्मों

के स्वामिन् प्रभो! आप **विश्वाभिः ऊतिभिः**=सब रक्षणों के द्वारा **सुन्वतः**=सोमाभिषव करनेवाले इस पुरुष का प्र (आविथ) रक्षण करते हैं। (२) हे **वृत्रहन्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करनेवाले, **अनेद्य**=अनिन्दनीय-पापरहित **वज्रिवः**=वज्रहस्त प्रभो! आप माध्यन्दिनस्य **सवनस्य**=हमारे जीवन के माध्यन्दिन-सवन सम्बन्धी, अर्थात् २५ से ६८ वर्ष तक चलनेवाले गृहस्थ यज्ञ सम्बन्धी **सोमस्य पिबा**=सोम का पान करिये। आपकी कृपा से हम यौवन में भी, संयमी जीवन के बनकर वीर्यशक्ति को सुरक्षित करनेवाले हों।

भावार्थ-प्रभु सोमरक्षक पुरुष के ज्ञान का रक्षण करते हैं। प्रभु कृपा से ही हम यौवन में भी संयमी जीवनवाले बनकर सोम का रक्षण कर पाते हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

'द्रोग्ध्री सेनाओं के पराजेता' प्रभु

सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।

माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥ २॥

हे **उग्र**=उद्गूर्ण बलवाले, **शचीपते**=कर्मों व प्रज्ञानों के स्वामिन्! **इन्द्रः**-शत्रुविद्रावक प्रभो! आप **विश्वाभिः ऊतिभिः**=सब रक्षणों के द्वारा **अभिद्रुहः**=हमारे शरीरों व मनों का द्रोह करनेवाली **पृतनाः**=रोग व वासनारूप शत्रु-सैन्यों का **सेहानः**=पराभव करनेवाले होइये। शिष्ट मन्त्रभाग मन्त्र संख्या एक पर द्रष्टव्य है।

भावार्थः-प्रभु हमारे रोग व वासनारूप शत्रुओं का पराभव करते हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

'एकराट्' प्रभु

एकराळस्य भुवनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।

माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥ ३॥

हे **शचीपते**=सब कर्मों व प्रज्ञानों के स्वामिन् **इन्द्रः**=शत्रुविद्रावक प्रभो! आप **विश्वाभिः ऊतिभिः**=सब रक्षणों के द्वारा **अस्य भुवनस्य**=इस ब्रह्माण्ड के **एकराट्**=अद्वितीय शासक होते हुए **राजसि**=दीप्त हो रहे हैं। अवशिष्ट मन्त्र भाग मन्त्र संख्या एक पर द्रष्टव्य है।

भावार्थः-प्रभु ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के शासक व नियामक रूप से दीप्त हो रहे हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

'सर्वलोकस्थापक' प्रभु

सस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।

माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥ ४॥

हे **शचीपते**=सब कर्मों व प्रज्ञानों के स्वामिन्! **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् शत्रुविद्रावक प्रभो! **त्वम् एकः इत्**=आप अकेले ही **विश्वाभिः ऊतिभिः**=सब रक्षणों के द्वारा **सस्थावाना**=समान रूप से अपने-अपने स्थान में स्थित इन द्युलोक व पृथिवीलोक को **यवयसि**=पृथक्-पृथक् स्वस्थान में स्थित रखते हैं। अवशिष्ट मन्त्र भाग मन्त्र संख्या एक पर देखिए।

भावार्थः-सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् प्रभु ही सब लोकों को पृथक्-पृथक् स्वस्थान में स्थापित करते हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

'योगक्षेम के ईश' प्रभु

क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥ ५॥

हे **शचीपते**–सब प्रज्ञानों व कर्मों के स्वामिन्! **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! ये आप **विश्वाभिः ऊतिभिः**=सब रक्षणों के द्वारा **क्षेमस्य च**=क्षेम के प्राप्त वस्तुओं के रक्षण के **च**=तथा **प्रयुजः**=प्रयोग के अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के **ईशिषे**=ईश हैं। आप ही सबके योगक्षेम को सिद्ध करते हैं। अवशिष्ट मन्त्र भाग मन्त्र संख्या एक पर देखिए।

भावार्थः–सम्पूर्ण योगक्षेम के ईश प्रभु ही हैं। मनुष्य को यह सोचकर निःशंक भाव से कर्तव्य कर्मों में लगे रहना चाहिए।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

'निराधार, पर सर्वाधार' प्रभु

क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥ ६॥

हे **शचीपते**=सब प्रज्ञानों व कर्मों के स्वामिन्! **इन्द्र**=सर्वशत्रुविद्रावक प्रभो! **त्वम्**=आप **विश्वाभिः ऊतिभिः**=सब रक्षणों के द्वारा आप **क्षत्राय**=बल की प्राप्ति के लिए अवसि=हमारा रक्षण करते हैं। **त्वं न आविथ**=आप किसी दूसरे से रक्षित नहीं किये जाते। अवशिष्ट मन्त्र भाग मन्त्र संख्या एक पर देखिए।

भावार्थः–प्रभु सबके रक्षक हैं। प्रभु का कोई अन्य रक्षक नहीं। निराधार प्रभु ही सर्वाधार हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

'क्षत्राणि वर्धयन्'

श्यावाश्वस्य रेभतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र क्षत्राणि वर्धयन्॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशत्रुविद्रावक प्रभो! आप **श्यावाश्वस्य**=गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाले **रेभतः**-स्तोता की प्रार्थना को **तथा शृणु**=उस प्रकार सुनिए, **यथा**=जैसे **कर्माणि कृण्वतः**–कर्मों को करते हुए **अत्रेः**=काम–क्रोध–लोभ–तीनों से रहित पुरुष की प्रार्थना को **अशृणोः**=सुनते हैं। (२) हे प्रभो! **त्वम् एकः इत्**=आप अकेले ही **क्षत्राणि वर्धयन्**=बलों को बढ़ाते हुए, **नृषाह्ये**=संग्राम में **त्रसदस्युम्**=वासनाओं को भयभीत करनेवाले पुरुष को **प्र आविथ**=प्रकर्षेण रक्षित करते हैं।

भावार्थः–प्रभु क्रियाशील स्तोता की प्रार्थना को सुनते हैं। यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त 'काम–क्रोध–लोभ' से शून्य पुरुष की प्रार्थना को सुनते हैं। हे प्रभो! आप संग्रामों में हमारे बलों का वर्धन करते हुए हमें त्रसदस्यु–(जिससे शत्रु भयभीत हों) बनाते हैं और हमारा रक्षण करते हैं।

अगले सूक्त में 'श्यावाश्व' ऋषि 'इन्द्राग्नी' का स्तवन व आराधन करते हैं–

३८. [अष्टात्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'जीवन-पक्ष के ऋत्विज्' इन्द्राग्नी

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु। इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥ १॥

(१) 'इन्द्र' बल का प्रतीक है और 'अग्नि' प्रकाश का। ३६.७ में '**ब्रह्माणि वर्धयन्**' तथा ३७.७ में '**क्षत्राणि वर्धयन्**' शब्दों में इन प्रकाश व बल का प्रतिपादन 'ब्रह्म व क्षत्र' शब्दों से हुआ है। ये प्रकाश और बल ही जीवनयज्ञ को सुन्दरता से चलाते हैं। हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! आप **हि**=ही **यज्ञस्य**=इस जीवनयज्ञ के **ऋत्विजा स्थः**=ऋत्विज् हो। आपके द्वारा ही यह जीवनयज्ञ चलता है। आप **वाजेषु**=शक्तियों में व **कर्मसु**=सब कर्मों में **सस्नी**=शुद्धता को करनेवाले हो। (२) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **तस्य**=उस जीवनयज्ञ का **बोधतम्**=आप ध्यान करो-उसे जानो-उसकी चिन्ता करो। आपको ही जीवनयज्ञ को सफल व सुन्दर बनाना है।

भावार्थः-बल व प्रकाश के दिव्य भाव जीवनयज्ञ के ऋत्विज् हैं। ये हमारी शक्तियों व कर्मों को पवित्र बनाते हैं। ये ही इसका ध्यान करनेवाले हैं।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'रोगों व वासनाओं के विनाशक' इन्द्राग्नी

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता। इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥ २॥

(१) ये **इन्द्राग्नी**=इन्द्र और अग्नि **तोशासा**=रोगरूप शत्रुओं का संहार करनेवाले व **रथयावाना**=इस शरीररथ को लक्ष्य स्थान की ओर ले चलनेवाले हैं। रोग यात्रा में विघ्न पैदा कर देते हैं और आगे बढ़ना रुक जाता है। ये बल व प्रकाश के दिव्यभाव रोगों को समाप्त करके हमें आगे बढ़ाते हैं। (२) ये **वृत्रहण**=ज्ञान की आवरण कामवासना को नष्ट करनेवाले हैं और **अपराजिता**-कभी पराजित होनेवाले नहीं। ये इन्द्र और अग्नि **तस्य**=हमारे उस जीवनयज्ञ का **बोधतम्**=ध्यान करें-उसे सम्यक् परिपूर्ण करें।

भावार्थः-बल व प्रकाश के दिव्य भाव रोगों को नष्ट कर शरीररथ को लक्ष्य स्थान की ओर ले-चलते हैं। ये वासना को नष्ट करते हैं और कभी काम-क्रोध आदि से पराजित नहीं होते।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

मदिरं मधु

इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः। इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥ ३॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के दिव्य भावो! **इदं**=यह **वां**=आपका **मदिरं**=उल्लास का जनक **मधु**=सब भोजन के रूप में ग्रहण की गई ओषधियों का सारभूत सोम (वीर्य) है। (२) **नरः**=उन्नति पथ पर चलनेवाले लोग **अद्रिभिः**=उपासनाओं के द्वारा **अधुक्षत्**=इसे अपने में प्रपूरित करते हैं। हे इन्द्राग्नी आप **तस्य**=उस जीवनयज्ञ का, जिसमें कि सोम का धारण किया जाता है, **बोधतम्**=ध्यान करो। आपको ही इस जीवनयज्ञ में सोम की आहुति देनी है।

भावार्थः=उपासना के द्वारा उन्नति पथ पर बढ़नेवाले लोग सोम का रक्षण करते हैं। यह सुरक्षित सोम बल व प्रकाश का वर्धन करता हुआ उल्लास का जनक होता है।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्राग्नी॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'सधस्तुती' इन्द्राग्नी

जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती। इन्द्राग्नी आ गतं नरा॥ ४॥

(१) हे **सधस्तुती**-मिलकर स्तुति करनेवाले **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के दिव्य भावो! (जीवन में बल व प्रकाश का मेल होने पर प्रभु का सच्चा स्तवन चलता है) आप **इष्टये**=अभीष्ट (मोक्ष) सुख की प्राप्ति के लिए **यज्ञं**-श्रेष्ठतम कर्मों का-लोकहितात्मक कर्मों का **जुषेथाम्**=सेवन करो। (२) हे **नरा**=उन्नति पथ पर ले चलनेवाले इन्द्राग्नी! आप **सुतं सोमं**=उत्पन्न हुए हुए सोम के प्रति **आगतम्**=आओ। इस सोम का शरीर में रक्षण करते हुए आप वृद्धि को प्राप्त होवें। सुरक्षित सोम ही बल व प्रकाश की वृद्धि का कारण बनता है।

भावार्थः-बल व प्रकाश के दिव्य भाव (क) हमें स्तुति में प्रवृत्त करें, (ख) यज्ञशील बनाएँ, (ग) सोम का शरीर में रक्षण करें।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्राग्नी॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

जीवन के तीनों सवनों की सम्यक् पूर्ति

इमा जुषेथां सवना येभिर्हव्यान्यूहथुः। इन्द्राग्नी आ गतं नरा॥ ५॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! आप **इमा**=इन **सवना**=जीवन के तीनों सवनों की-प्रातः, मध्याह्न व तृतीय सवन की-प्रथम २४ वर्ष (प्रातः सवन), मध्य के ४४ वर्ष (माध्यन्दिन सवन), अन्तिम ४८ वर्षों (तृतीय सवन) का **जुषेथाम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करो। बल व प्रकाश के द्वारा हम जीवनयज्ञ के तीनों सवनों को पूरा कर पाएँ। (२) **येभिः**=जिन सवनों के उद्देश्य से **हव्यानि**=हव्य पदार्थों को **ऊहथुः**=आप धारण करते हो। हव्य (पवित्र) पदार्थों का सेवन करते हुए हम जीवन के तीनों सवनों को पूरा करें। हे **नरा**=हमें उन्नति पथ पर ले चलनेवाले इन्द्राग्नी! आप **आगतम्**=हमें प्राप्त होवें।

भावार्थः-बल व प्रकाश के दिव्यभाव हमारे जीवनयज्ञ के तीनों सवनों को पूर्ण करें। उनकी पूर्ति के हेतु से ये हव्य पदार्थों का सेवन करें।

ऋषिः—श्यावाश्वः॥ **देवता**—इन्द्राग्नी॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गायत्रवर्तनि सुष्टुति

इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम। इन्द्राग्नी आ गतं नरा॥ ६॥

(१) गय का अर्थ है प्राण, उनका रक्षण ही त्राण है। प्राणरक्षण सम्बन्धी वर्तनि (मार्ग) ही गायत्रवर्तनि है। हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! आप **इमां**=इस **मम**=मेरी **गायत्रवर्तनिं**=प्राणरक्षण की मार्गभूत **सुष्टुतिं**=उत्तम स्तुति को **जुषेथाम्**-प्रीतिपूर्वक सेवित करो। मैं उत्तम स्तवन में प्रवृत्त हुआ हुआ अपने प्राणों का रक्षण करूँ। वह रक्षित प्राणशक्ति मेरे बल व प्रकाश का वर्धन करे। (२) हे इन्द्राग्नी! आप **नरा**=मुझे उन्नति पथ पर ले चलनेवाले हो, **आगतम्**=आप मुझे प्राप्त होवें।

भावार्थः-मैं बल व प्रकाश के वर्धन के लिए उस उत्तम स्तुति को करनेवाला बनूँ, जो मेरी प्राणशक्ति का रक्षण करती है।

ऋषिः—श्यावाश्वःॐ देवता—इन्द्राग्नीॐ छन्दः—निचृद्गायत्रीॐ स्वरः—षड्जःॐ

'जेन्यावसू' इन्द्राग्नी

प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू। इन्द्राग्नी सोमपीतये॥ ७॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के दिव्यभावो! आप **जेन्यावसू**=जेतव्य धनोंवाले हों-सब धनों का आप ही विजय करते हो। आप **प्रातर्यावभिः**=प्रातः-प्रातः ही प्राप्त करने योग्य **देवेभिः**= दिव्यभावों के साथ **आगतम्**=हमें प्राप्त होवें। प्रातः उठते ही हम दिव्यभावनाओं को प्राप्त करने का ध्यान करें। (२) इन दिव्य भावों को प्राप्त करने के हेतु से हे **इन्द्राग्नी**=इन्द्र और अग्नि! आप **सोमपीतये**=सोम के रक्षण के लिए आइए। सोम का शरीर में रक्षण ही सोमपान है। इस सोमरक्षण से ही सब दिव्यभाव विकसित होते हैं।

भावार्थः-बल व प्रकाश के दिव्यभाव ही सब जेतव्य धनों को प्राप्त कराते हैं। ये ही सोमरक्षण द्वारा सब दिव्य भावों को विकसित करते हैं। बल व प्रकाश के होने पर ही अन्य सब दिव्यभावों के आने का सम्भव होता है।

ऋषिः—श्यावाश्वःॐ देवता—इन्द्राग्नीॐ छन्दः—विराड्गायत्रीॐ स्वरः—षड्जःॐ

श्यावाश्व व अत्रि

श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवम्। इन्द्राग्नी सोमपीतये॥ ८॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के दिव्यभावो! आप **सुन्वतः**=सोम का सम्पादन करते हुए **श्यावाश्वस्य**=गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाले पुरुष की तथा **अत्रीणां**=काम-क्रोध-लोभ से रहित पुरुषों की **हवम्**=पुकार को **शृणुतं**=सुनो। वस्तुतः ये इन्द्र और अग्नि 'श्यावाश्व व अत्रि' को ही प्राप्त होते हैं। (२) हे इन्द्राग्नी! आप **सोमपीतये**=सोम के रक्षण के लिए होओ। सोमरक्षण द्वारा ही आप बलसम्पन्न करके मुझे 'श्यावाश्व' बनाते हैं तथा प्रकाशसम्पन्न करके आप मुझे 'अत्रि' बनाते हैं।

भावार्थः-इन्द्राग्नी की आराधना मुझे गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाला 'श्यावाश्व' बनाए तथा काम, क्रोध, लोभ से रहित करके यह मुझे 'अत्रि' बनाए।

ऋषिः—श्यावाश्वःॐ देवता—इन्द्राग्नीॐ छन्दः—गायत्रीॐ स्वरः—षड्जःॐ

मेधिर की तरह

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः। इन्द्राग्नी सोमपीतये॥ ९॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के दिव्यभावो! मैं **वाम्**=आप दोनों को **ऊतये**=रक्षण के लिए **एवा**=इस प्रकार **अह्वे**=पुकारता हूँ, **यथा**=जैसे **मेधिराः**=बुद्धिमान् पुरुष **अहुवन्त**=पुकारते हैं। (२) हे इन्द्राग्नी! आप **सोमपीतये**-मेरे जीवन में सोम के रक्षण के लिए होते हो।

भावार्थः-बल व प्रकाश का आराधन हमारे जीवन में सोमरक्षण करता हुआ हमारा रक्षण करता है। हमें रोगों व वासनाओं से आक्रान्त होने से बचाता है।

ऋषिः—श्यावाश्वःॐ देवता—इन्द्राग्नीॐ छन्दः—निचृद्गायत्रीॐ स्वरः—षड्जःॐ

सरस्वतीवाले इन्द्राग्नी

आहं सरस्वतवतोरिन्द्राग्न्योरवो वृणे। याभ्यां गायत्रमृच्यते॥ १०॥

(१) **अहं**=मैं **सरस्वतीवतोः**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवतावाले **इन्द्राग्न्योः**=इन्द्र और अग्नि

की **अवः**-रक्षा को **वृणे**-सर्वथा वरता हूँ। इन्द्राग्नी का आराधन ही मुझे सरस्वती का प्रशस्त आराधक बनाता है। बल व बुद्धि से युक्त होकर ही मैं सरस्वती का आराधक बन पाता हूँ। (२) मैं उन इन्द्र और अग्नि के का वरण करता हूँ। **याभ्यां**-जिनसे **गायत्रं**=प्राणरक्षक स्तवन **ऋच्यते**= स्तुत होता है। इन्द्र और अग्नि ही वस्तुत: प्राणरक्षक सोम का उच्चरण करते हैं। मैं बल व प्रकाश से युक्त होकर हृदय में उस स्तुति की वृत्ति को अपना पाता हूँ, जो मेरी प्राणरक्षा का साधन बनती है।

भावार्थः-बल व प्रकाश का आराधन मुझे प्रशस्त ज्ञान को प्राप्त करता है। इस आराधन से ही मैं उस स्तवन को करता हूँ, जो मेरा प्राणरक्षक बनता है।

बल व प्रकाश के आराधन से यह 'नाभाग' बनता है-One who nips evil in the Bud. रोग व वासनारूप शत्रु को प्रारम्भ में ही समाप्त करनेवाला (**मम्** हिंसात्मक)। यही समझदारी है कि बुराई को प्रारम्भ ही में समाप्त किया जाए, सो यह 'कण्व' है। यह 'अग्नि' नाम से प्रभु का आराधन करता है-

३९. [एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

प्रभु-स्तवन के द्वारा दिव्यता की प्राप्ति व दोषदहन

अ॒ग्निम॑स्तोष्यृ॒ग्मिय॑म॒ग्निमी॒ळा य॒जध्यै॑ ।
अ॒ग्निर्दे॒वाँ अ॑नक्तु न उ॒भे हि वि॒दथे॑ क॒विर॒न्तश्चर॑ति दू॒त्यं१॒॑ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ १ ॥

(१) **ऋग्मियं**=स्तुति के योग्य **अग्निं**=उस अग्रणी प्रभु से **अस्तोषि**=स्तवन करता हूँ। उस **अग्निं**=प्रभु को **यजध्यै**=अपने साथ संगत करने के लिए **यजध्यै**-मैं उसका यजन करता हूँ। वह **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **नः**=हमारे लिए **देवान्**-सब दिव्यभावों को **अनक्तु**=प्राप्त कराए। प्रभु के सम्पर्क में दिव्यता प्राप्त होती ही है। (२) वह **कविः**=क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ प्रभु **हि**=ही **उभे**=दोनों द्यावापृथिवी अथवा प्रकृति व आत्मतत्त्व के **विदथे**=ज्ञान के निमित्त **अन्तः**-हमारे हृदयों में **दूत्यं चरति**=ज्ञान-सन्देश वहन के कार्य को करते हैं। प्रभु ही सब ज्ञानों के स्रोत हैं। इन ज्ञानों के परिणामस्वरूप **समे अन्यके**=सब काम-क्रोध आदि शत्रु **नभन्ताम्**=विनष्ट हो जाएँ।

भावार्थः-प्रभु स्तवन के द्वारा प्रभु का मेल होने पर दिव्यता प्राप्त होती है तथा वह ज्ञान प्राप्त होता है, जिस ज्ञान में सब काम-क्रोध आदि का दहन हो जाता है।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

स्तुति व यज्ञशीलता से शत्रुपराभव

न्य॑ग्ने॒ नव्य॑सा॒ वच॑स्त॒नूषु॒ शंस॑मेषाम् ।
न्यरा॑ती॒ ररा॑व्णां॒ विश्वा॑ अ॒र्यो अरा॑तीरि॒तो यु॑च्छन्त्वा॒मुरो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ २ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **नव्यसा वचः**-(वचसा) स्तुत्य (प्रशस्य) वचनों के द्वारा **तनूषु**= हमारे शरीरों में **एषां**=इन शत्रुओं के **शंसं**-(Charm, Spell) जादू को **नि (युच्छ)**=दूर कर। **रराव्णां**=हवि के देनेवाले यज्ञशील पुरुषों के **अरातीः**=शत्रुओं को **नि (युच्छ)**=दूर करिए। (२) हे प्रभो! आपके अनुग्रह से **विश्वा**=सब **अर्यः**=आक्रमण करनेवाले **आमुरः**-समन्तत् हिंसन करनेवाले **अरातीः**=शत्रु **इतः**=यहाँ से **युच्छन्तु**=(गच्छन्तु) चले जाएँ। **समे**=सारे **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थः–प्रभु–स्तवन से हम शत्रुओं के जादू को समाप्त करनेवाले हैं। यज्ञशील बनकर सब शत्रुओं को दूर करनेवाले हों।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

घृतं+मन्मानि

अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं घृतं न जुह्व आसनि ।
स देवेषु प्र चिकिद्धि त्वं ह्यसि पूर्व्यः शिवो दूतो विवस्वतो नभन्तामन्यके समे॥ ३॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **तुभ्यं**=आपकी प्राप्ति के लिए मैं **आसनि**=मुख में **कं घृतं**=सुखकर ज्ञानदीप्ति को (घृ दीप्तौ) तथा **मन्मानि**=स्तोत्रों को **जुह्वे**=आहुत करता हूँ, अर्थात् मेरा मुख ज्ञान की वाणियों को तथा स्तुतिवचनों को ही उच्चारित करनेवाला बनता है। (२) **स त्वं**=वे आप देवेषु **प्रचिकिद्धि**=सूर्य आदि सब देवों के विषय में हमें ज्ञानयुक्त कीजिए। **त्वं हि**=आप ही **पूर्व्यः असि**= सृष्टि के प्रारम्भ में होनेवाले हैं। उस समय आप ही तो ज्ञान देनेवाले हैं। आप **शिवः**=कल्याण करनेवाले हैं तथा **विवस्वतः दूतः**=विवस्वान् के दूत हैं–जो भी ज्ञान के सूर्य हैं उनके लिए भी ज्ञान के सन्देश को देनेवाले हैं। इस ज्ञान के होने पर **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=विनष्ट हों।

भावार्थः–प्रभुप्राप्ति के लिए हम ज्ञान व स्तवन की ओर झुकते हैं। प्रभु ही हमें सब सूर्य आदि देवों के विषय में ज्ञान देते हैं। ज्ञान देकर प्रभु हमारा कल्याण करते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—स्वराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

शं-योः-मयः

तत्तदग्निर्वयो दधे यथायथा कृपण्यति ।
ऊर्जाहुतिर्वसूनां शं च योश्च मयो दधे विश्वस्यै देवहूत्यै नभन्तामन्यके समे॥ ४॥

(१) एक स्तोता **यथा यथा**=जैसे–जैसे **कृपण्यति**=याचना करता है, **अग्निः**=प्रभु **तत् तत्**=उस–उस **वयः**=जीवन को **दधे**=धारण करते हैं। अभ्युदय की कामनावाले को अभ्युदय प्राप्त कराते हैं, तो निःश्रेयस की कामनावाले को निःश्रेयस के योग्य बनाते हैं। **ऊर्जाहुतिः**(हु दाने)=बल व प्राणशक्ति को देनेवाले प्रभु **वसूनां**=अपने निवास को उत्तम बनानेवालों को **शं**=शान्ति, **च**=और **योः**=भयों का शमन (दूरीकरण), **च**=तथा **मयः**=सुख **दधे**=प्राप्त कराते हैं। (२) प्रभु इन वसुओं के लिए **विश्वस्यै देवहूत्यै**=सब दिव्यगुणों के आह्वान के लिए होते हैं। प्रभु इनके जीवनों में सब दिव्यगुणों का धारण करते हैं।

भावार्थः–उपासक की कामना के अनुसार प्रभु उसके जीवन को बनाते हैं। उसे शान्ति, निर्भयता व सुख प्राप्त कराते हैं उसे दिव्य गुणों में स्थापित करके काम–क्रोध आदि से रहित करते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

शत्रुविनाश व दिव्यगुण प्राप्ति

सह चिकेत सहीयसाग्निश्चित्रेण कर्मणा ।
स होता शश्वतीनां दक्षिणाभिरभीवृत इनोति च प्रतीव्यं नभन्तामन्यके समे॥ ५॥

(१) **सः**–वे **अग्निः**=प्रभु **सहीयसा**=शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले **चित्रेण कर्मणा**=अद्भुत

कर्म से **चिकेत**=जाने जाते हैं। प्रभु अपने उपासकों के शत्रुओं का विनाश करते हैं। **सः**-वे प्रभु **शश्वतीनां होता**=(नि०-३.१ 'बहु' शश्वत्) बहुत दिव्यभावनाओं के होता-(आह्वाता) पुकारनेवाले हैं, अर्थात् प्रभु के अनुग्रह से स्तोता के जीवन में दिव्यभावनाओं का वर्धन होता है। (२) वे प्रभु **दक्षिणाभिः**=दक्षिणाओं से **अभीवृतः**-परिवृत हैं, अर्थात् सब देय पदार्थों को स्तोता को प्राप्त कराने के लिए उद्यत हैं, **च**=और **प्रतीव्यम्**-(प्रत्येतव्यम्) आक्रमण करने योग्य शत्रु को **इनोति**=आक्रान्त करते हैं-उस पर आक्रमण के लिए जाते हैं। प्रभु के अनुग्रह से **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**-नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ-प्रभु हमारे काम-क्रोध आदि शत्रुओं को नष्ट करके दिव्य भावों को प्राप्त कराते हैं। हमारे लिए सब आवश्यक पदार्थों को देते हैं और हमारे शत्रुओं को आक्रान्त करते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—स्वराट्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

अग्निः द्वारा व्यूर्णुते

अ॒ग्निर्जा॒ता दे॒वाना॑म॒ग्निर्वे॑द मर्ता॑नामपी॒च्य॑म् ।

अ॒ग्निः स द्र॑विण॒दा अ॒ग्निर्द्वारा॒ व्यू॑र्णुते॒ स्वा॑हुतो॒ नवी॑यसा॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥ ६॥

(१) **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु ही **देवानां जाता वेद**=सूर्य, चन्द्र,तारे आदि सब दिव्य पदार्थों के जन्म व विकास को जानता है व प्राप्त कराता है। प्रभु ही इन्हें उत्पन्न करते हैं और उस-उस शक्ति को प्राप्त कराते हैं। वे **अग्नि**=अग्रणी प्रभु ही **मर्तानाम्**=मनुष्यों के **अपीच्यम्**=अन्तर्हित रहस्यमय बातों को भी **वेद**-हृदयस्थरूपेण जाननेवाले हैं। (२) **सः**=वे **अग्निः**=सब प्रगतियों के साधक प्रभु ही **द्रविणोदाः**=सब धनों के देनेवाले हैं। **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु ही **द्वारा व्यूर्णुते**=सब इन्द्रियनद्वारों को आच्छादन रहित करते हैं। इन पर आए हुए मलावरणों को हटाते हैं। सो ये प्रभु हमारे द्वारा **नवीयसा**-अतिशयेन गति के कारणभूत (नव गतौ) स्तोत्रों से **स्वाहुतः**=सम्यक् अूपत होते हैं। हम प्रभु का स्तवन करते हैं और प्रभु के प्रति अपना अर्पण करते हैं। प्रभु के गुणों को अपनाने की कोशिश करते हैं। हमारे **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हों।

भावार्थः-प्रभु ही सूर्य आदि देवों को विकास प्राप्त कराते हैं। हमारे हृदयों की बातों को जानते हैं। सब धनों को देते हैं, इन्द्रियद्वारों को मलावरणरहित करते हैं। तभी हम काम आदि शत्रुओं को नष्ट कर पाते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—स्वराट्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

देव व यज्ञिय पुरुषों में प्रभु का वास

अ॒ग्निर्दे॒वेषु॒ संव॑सुः स वि॒क्षु य॒ज्ञिया॒स्वा ।

स मु॒दा काव्या॒ पु॒रु विश्वं॒ भूमे॑व पुष्यति दे॒वो दे॒वेषु॑ य॒ज्ञियो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥ ७॥

(१) **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु **देवेषु**=देववृति के व्यक्तियों में **संवसुः**-सम्यक् वास को करता है। देववृत्तिवाले व्यक्ति वे हैं जो (दिव् विजिगीषा) काम, क्रोध, लोभ आदि को जीतने की प्रबल कामनावाले होते हैं। **सः**=वे प्रभु ही **यज्ञियासु विक्षु**=यज्ञशील प्रजाओं में **आ**=समन्तात् वास करते हैं। **सः**-वे प्रभु **मुदा**=आनन्द के साथ **काव्या**=कवि कर्मों को **पुरु**=खूब **पुष्यति**=देखते हैं। उन कर्मों का रक्षण करते हैं (Look after)। उसी प्रकार रक्षण करते हैं, **इव**=जैसे **विश्वं**=सब प्राणियों को **भूम**=यह भूमि देखती है। भूमि माता के समान सब प्राणियों का धारण करती है, इसी प्रकार प्रभु सब कवि कर्मों का ध्यान करते हैं। प्रभु का उपासक कवि बनता है-क्रान्तदर्शी

होता है। उपासना से उसकी बुद्धि सूक्ष्मग्राहिणी बनती है। यह बुद्धि सत्य को बड़े प्रिय ढंग से कहनेवाली बनती है। (२) **देवः**=ये प्रकाशमय प्रभु **देवेषु**=सब देवों में **यज्ञियः**=उपास्य होते हैं। प्रभु को गुरुओं का गुरु–महान् गुरु, देवों का देव–महादेव कहते हैं। ये ईश्वरों के ईश्वर–परमेश्वर हैं। इनके उपासन से **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थः–प्रभु का निवास दिव्य वृत्तिवाले–यज्ञशील–पुरुषों में होता है। प्रभु हमारे जीवनों में ज्ञान की क्रियाओं के साथ आनन्द को जोड़नेवाले होते हैं। देव प्रभु का उपासन करते हैं और शत्रु को हरा कर पाते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—स्वराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

सप्तमानुषः, सिन्धुषु श्रितः

यो अग्निः सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ।
तमागन्म त्रिपस्त्यं मन्धातुर्दस्युहन्तममग्निं यज्ञेषु पूर्व्यं नभन्तामन्यके समे ॥ ८ ॥

(१) **यः**=जो **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **सप्तमानुषः**=(सप्तमर्यादाः कवयस्ततक्षुः) सातों मर्यादाओं का पालन करनेवाले मनुष्यों में निवास करते हैं तथा **विश्वेषु**=सब **सिन्धुषु**=(स्यन्दन्ते) निरन्तर कर्मों में प्रवाहित होनेवाली भुजाओं में **श्रितः**=आश्रित हैं–निवास करते हैं। **तम्**=उस प्रभु को **आगन्म**=हम प्राप्त होते हैं। (२) उन प्रभु को हम प्राप्त होते हैं, जो **त्रिपस्त्यम्**=(पस्त्य=गृह) ज्ञान, कर्म व उपासना रूप तीन गृहोंवाले हैं, अर्थात् ज्ञानपूर्वक कर्म करते हुए, उन कर्मों को प्रभु के प्रति अर्पण करने से प्राप्त होते हैं। जो **मन्धातुः**=ज्ञान का धारण करनेवाले के **दस्युहन्तमम्**=दास्यव भावों को अधिक–से–अधिक नष्ट करनेवाले हैं। **अग्निम्**=अग्रणी हैं। **यज्ञेषु पूर्व्यम्**=यज्ञों के होने पर पालन व पूरण करनेवालों में सर्वोत्तम हैं। इस प्रभु के अनुग्रह से **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थः–प्रभु का निवास उनमें होता है जो सातों मर्यादाओं का पालन करे व क्रियाशील हो। ये प्रभु तभी प्राप्त होते हैं, जब हम ज्ञान, कर्म व उपासना–तीनों का जीवन में समन्वय करें। प्रभु ही हमें ज्ञानी बनाकर हमारे शत्रुओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

विप्रः-दूतः-परिष्कृतः

अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः ।
स त्रींरेकादशाँ इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतो नभन्तामन्यके समे ॥ ९ ॥

(१) **अग्निः**–वह अग्रणी प्रभु **त्रिधातूनि**=शरीर, मन व बुद्धि–तीनों को धारण करनेवाले **त्रीणि विदथा**=तीनों 'ऋग्–यजु–साम' रूप ज्ञान की वाणियों में **आक्षेति**=सदा से निवास करते हैं। **कविः**=वे प्रभु ही इस वेदरूप काव्य के कवि हैं 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।' (२) **सः**=वे प्रभु **त्रीन् एकादशान्**=तीन गुणा ग्यारह अर्थात् तैंतीस देवों को **इह**=इस जीवन में **यक्षत्**=संगत करते हैं, **च**=और **नः पिप्रयत्**=हमें प्रीणित करते हैं अथवा हमारी सब कामनाओं का पूरण करते हैं। वे प्रभु **विप्रः**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाले हैं, **दूतः**=ज्ञान का सन्देश देनेवाले हैं तथा **परिष्कृतः**=(परिष्कृतम् अस्य अस्ति) पूर्ण परिष्कार व शुद्धि को करनेवाले हैं। प्रभु के अनुग्रह से **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थः–प्रभु सर्वज्ञ हैं, वे सब देवों को हमारे साथ संगत करते हैं। ज्ञान देकर हमारा पूरण व परिष्कार करते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

परिस्रुतः-स्वसेतवः आपः

त्वं नो॑ अग्न आ॒युषु॑ दे॒वेषु॑ पूर्व्य॒ वस्व॒ एक॑ इरज्यसि।

त्वामापः॑ परि॒स्रुतः॒ परि॑ यन्ति॒ स्वसे॑तवो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥ १०॥

(१) हे **पूर्व्य**=सर्वप्रथम स्थान में स्थित अथवा पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वं**=आप **आयुषु**=मनुष्यों में **नः**=हमारे **वस्वः**-धनों के **एकः इरज्यसि**=अद्वितीय ईश्वर हैं, सब धनों के स्वामी आप ही हैं। **देवेषु**=सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि देवों में भी विद्यमान वसु के **त्वं**-आप ही **इरज्यसि**=ईश हैं। (२) **त्वाम्**=आपको **आपः**=वे प्रजाएँ **परियन्ति**=सर्वथा प्राप्त होती हैं जो **परिस्रुतः**=(परि-स्रु) समन्तात् अपने कर्तव्यकर्मों में गतिवाली हैं तथा **स्वसेतवः**=स्वयं अपने को व्रतों के बन्धन में बाँधनेवाली हैं। हे प्रभो! आपके अनुग्रह से **समे**=सब **अन्यके**:-काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रु **नभन्ताम्**-नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ–प्रभु ही मनुष्यों व देवों में होनेवाले सब ऐश्वर्यों के स्वामी है। प्रभु को कर्तव्यपालक व्रती पुरुष प्राप्त होते हैं। अगले सूक्त में देवता 'इन्द्राग्नी' हैं–

४०. [चत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्राग्नी॥ **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'इन्द्र व अग्नि' के द्वारा शत्रुपराभव

इन्द्रा॑ग्नी यु॒वं सु नः॒ सह॑न्ता॒ दास॑थो र॒यिम्।

येन॑ दृ॒ळ्हा स॒मत्स्वा वी॒ळु चि॑त्साहिषी॒मह्य॒ग्निर्वने॑व॒ वात॒ इन्नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥ १॥

(१) 'इन्द्र' बल का प्रतीक है और 'अग्नि' प्रकाश का। हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **युवं**=आप **सु**=सम्यक् **सहन्ता**=शत्रुओं का पराभव करनेवाले हो। आप शत्रुओं का पराभव करके **आ**=हमारे लिए **रयिं**=ऐश्वर्य को **दासथः**-देते है। (२) आप हमारे लिए उस ऐश्वर्य को देते हो **येन**-जिससे कि **समत्सु**=संग्रामों में **दृळ्हा**=दृढ़ और **वीळु चित्**=निश्चय से अतिप्रबल भी शत्रुओं को **आसाहिषीमहि**=समन्तात् पराभूत करनेवाले हों। इस प्रकार शत्रुओं को पराभूत करनेवाले हों **इव**=जैसे **अग्निः**=आग **वाते**-वायु के होने पर **इत्**=निश्चय से **वना**=वनों को विनष्ट कर डालता है। हे प्रभो! आपके आनुग्रह से **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ–बल व प्रकाश का सम्पादन करते हुए हम संग्रामों में सब शत्रुओं का पराभव करनेवाले हों।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्राग्नी॥ **छन्दः**—स्वराट् शक्वरी॥ **स्वरः**—धैवतः॥

वाजसातये+मेधसातये

न॒हि वां॑ व॒व्रया॑म॒हेऽथेन्द्र॒मिद्य॑जामहे॒ शवि॑ष्ठं नृ॒णां नर॑म्।

स नः॒ क॒दा चि॒दर्व॑ता॒ गम॒दा वाज॑सातये॒ गम॒दा मे॒धसा॑तये॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥ २॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**–इन्द्र व अग्नि देवो! हम **वां**=आप से **नहि वव्रयामहे**–कुछ याचना नहीं

करते हैं। हम तो **अथ**=अब **इन्द्रं इत्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **यजामहे**=पूजते हैं, अपने साथ संगत करते हैं। जो प्रभु **शविष्ठं**=सर्वाधिक शक्तिशाली हैं तथा **नृणां नरम्**-उन्नतिपथ पर चलनेवालों को आगे ले-चलनेवाले हैं। (२) **सः**=वे प्रभु **कदाचित्**=कभी तो **नः**=हमें **अर्वता**=कर्मेन्द्रियरूप अश्वों के द्वारा **आगमत्**=प्राप्त होते हैं और **वाजसातये**=शक्ति के लाभ के लिए होते हैं और कभी इन ज्ञानेन्द्रियरूप अश्वों से (इन्द्रियाश्वों से) (सा) **गमदा**=प्राप्त होते हैं और **मेधसातये**=हमारे साथ यज्ञों को संभक्त करने के लिए होते हैं। प्रभु प्रदत्ता इस वाज (शक्ति) व मेध (यज्ञ) के द्वारा **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ-हम किसी भी वस्तु की याचना न करते हुए प्रभु का ही पूजन करें। प्रभु हमें आगे ले चलेंगे। प्रभु हमें इन्द्रियाश्वों के द्वारा शक्ति व यज्ञों को प्राप्त कराते हैं। इस प्रकार हमारे शत्रुओं को नष्ट करते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्राग्नी॥ **छन्दः**—स्वराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

उत्तम भरण-ज्ञान व उत्तम कर्म

ता हि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिक्षितः।
ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते सं धीतमश्नुतं नरा नभन्तामन्यके समे॥ ३॥

(१) **ता इन्द्राग्नी**=वे इन्द्र और अग्नि=बल व प्रकाश के देव **हि**=ही **भराणां मध्यं अधिक्षितः**=अपना ठीक से भरण करनेवाले लोगों के मध्यलोक अर्थात् हृदयान्तरिक्ष में निवास करते हैं। **स्तुतः**=इन्हीं के कारण वे अपना भरण कर पाते हैं। **ता**=वे **उ**=ही **कवित्वना**=वेदरूप काव्य के द्वारा **कवी**=क्रान्तदर्शी बनते हैं। इन्द्र व अग्नि की उपासना हमें प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त कराती है। (२) ये इन्द्र और अग्नि **पृच्छ्यमाना**=प्रार्थना किए जाते हुए **नरा**=हमें उन्नतिपथ पर ले-चलते हैं। हम बल व प्रकाश की ही प्रार्थना करेंगे तो निरन्तर उन्नत होंगे ही। **सखीयते**=मित्र की तरह आचरण करनेवाले मनुष्य के लिए **धीतं**=उत्तम कर्मों को **सम् अश्नुतं**=सम्यक् व्याप्त करते हैं। बल व प्रकाश के होने पर उत्तम ही कर्म होते हैं। हे इन्द्राग्नी! आपके अनुग्रह से **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=विनष्ट हो जाएँ।

भावार्थ-बल व प्रकाश का आराधन हमें उत्तम भरणवाला, ज्ञानी व उत्तम कर्मोंवाला बनाता है।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्राग्नी॥ **छन्दः**—स्वराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

यजसा+गिरा

अभ्यर्च नभाकवदिन्द्राग्नी यजसा गिरा।
ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवी मह्युपस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे॥ ४॥

(१) हे जीव! तू **नभाकवत्**=शत्रुओं का हिंसन करनेवाले की तरह **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवों का **यजसा**=यज्ञों के द्वारा **गिरा**=और ज्ञान की वाणियों के द्वारा **अभ्यर्च**=पूजन कर। सामान्यतः यज्ञों के द्वारा इन्द्र (बल की देवता) का पूजन होता है और ज्ञानवाणियों के द्वारा अग्नि (प्रकाश की देवता) का अर्चन हुआ करता है। (२) उन इन्द्राग्नी का तू पूजन कर **ययोः**= जिनमें **इदं विश्व जगत्**=यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है। सम्पूर्ण जगत् का आधार ये इन्द्र व अग्नि ही तो हैं। इन इन्द्र और अग्नि के **उपस्थे**=उपस्थान में ही **इयं द्यौः**=यह मस्तिष्करूप द्युलोक तथा **मही पृथिवी**=यह महत्त्वपूर्ण शरीररूप पृथिवीलोक **वसु**=ज्ञान व शक्तिरूप धनों को **बिभृतः**= धारण

करते हैं। इस इन्द्र और अग्नि की उपासना से **समे**-सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**-नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ-हम यज्ञों व ज्ञान की वाणियों के द्वारा बल व प्रकाश के देवों का उपासन करें। ये ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आधार हैं। इन्हीं से मस्तिष्क ज्ञानरूप धनवाला बनता है, तो शरीर शक्तिरूप धनवाला। इनके उपासन से हमारे सब शत्रु समाप्त हो जाएँ।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्राग्नी॥ **छन्दः**—जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

सप्तबुध्न जिह्मबार (अर्णव)

प्र ब्रह्माणि नभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत ।

या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मबारमपोर्णुत इन्द्र ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥

(१) **नभाकवत्**-शत्रुओं के हिंसित करनेवाले उपासक के समान **इन्द्राग्निभ्यां**-बल व प्रकाश के देवों के लिए **ब्रह्माणि**=स्तोतों को **प्र इरज्यत**=प्रकर्षेण प्रेरित करो। उन इन्द्र और अग्नि के लिए **या**-जो **सप्तबुध्नं**=(बुध्न-मूल-bottom) **'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्'** दो कान, दो नासिका छिद्र और दो आँखें व मुख रूप सात मूलोंवाले तथा **जिह्मबारम्**-सब जिह्मताओं का (टेढ़ेपन का-कुटिलता का) निवारण करनेवाले **अर्णवम्**-ज्ञानसमुद्र को **अपोर्णुतः**-दूरीभूत आवरणवाला करते हैं। इन्द्र और अग्नि की उपासना से ज्ञान चमक उठता है। (२) **इन्द्रः**-यह बल की देवता **ओजसा**-ओजस्विता के द्वारा **ईशानः**-सब अच्छाइयों का ईश बनती है। इसके द्वारा **समे**=सब **अन्यके**-शत्रु **नभन्ताम्**=विनष्ट हों।

भावार्थ-हम इन्द्र व अग्नि (बल व प्रकाश) का आराधन करते हुए ज्ञानसमुद्र को अपगत आवरणवाला करें। इन्द्र हमारे जीवन में सब अच्छाइयों का ईश हो।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्राग्नी॥ **छन्दः**—भुरिग्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

ओजो दासस्य दम्भय

अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितमोजो दासस्य दम्भय।

वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजेमहि नभन्तामन्यके समे॥ ६ ॥

(१) हे **इन्द्र**=प्रभो! **दासस्य**-हमारा उपक्षय करनेवाले इस दास (वृत्र) के **ओजः**=ओज को **दम्भय**=विनष्ट करिए। उसी प्रकार **अपि वृश्च**=अवश्य नष्ट करिए, **इव**-जैसेकि **व्रततेः**-बेल के **पुराणवद्**=अत्यन्त पुराने (जीर्ण) हुए-हुए **गुष्पितं**=(Interlaced, Interwined), उलझे हुए शाखासमूह को कोई नष्ट कर देता है। (२) **वयं**=हम **अस्य**=इस दास के **सम्भृतं**=सञ्चित **तद् वसुः**-उस शक्तिरूप धन को **इन्द्रेण**-उस शत्रु विद्रावक प्रभु के द्वारा **विभजेमहि**=विभक्त कर डालें। इस इन्द्र के द्वारा शत्रु की शक्ति को शीर्ण करनेवाले हों। इन्द्र के साहाय्य से हमारे **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ-हम प्रभु के उपासन से शत्रु की शक्ति को शीर्ण करनेवाले बनें। बेल के पुराने पड़े हुए उलझे हुए शाखासमूह के समान शत्रु को काट डालें।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्राग्नी॥ **छन्दः**—जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

तना+गिरा

यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा ।

अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतो नभन्तामन्यके समे॥ ७ ॥

(१) **इमे जनाः**-ये लोग **यत्**=जब **तना**=शक्तियों के विस्तार के हेतु से तथा **गिरा**=ज्ञान की वाणियों के हेतु से **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवों को **विह्वयन्ते**=पुकारते हैं-उनकी आराधना करते हैं। तो इन इन्द्र और अग्नि के आराधक इन **अस्माकेभिः नृभिः**=हमारे लोगों के द्वारा **वयं** हम **पृतन्यतः**=सेना के द्वारा आक्रमण करनेवालों को-संग्राम करनेवालों को **सासह्याम**=पराभूत करनेवाले हों। (२) इन्द्र और अग्नि की आराधना करते हुए हम **वनुष्यतः वनुयाम**=हिंसा करते हुए शत्रुओं को हिंसित करनेवाले हों। हमारे **समे**=सारे **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=विनष्ट हों।

भावार्थ-इन्द्र और अग्नि का आराधन करते हुए हम शक्तियों के विस्तार के द्वारा तथा ज्ञानवृद्धि के द्वारा शत्रुओं को पराजित करनेवाले हों।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—निचृज्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

नीचे से ऊपर की ओर

या नु श्वेतावृवो दिव उच्चरात उप द्युभिः।
इन्द्राग्न्योरनु व्रतमुहाना यन्ति सिन्धवो यान्त्सीं बन्धादमुञ्चतां नभन्तामन्यके समे॥ ८॥

(१) **याः**=जो **नु**=निश्चय से **श्वेतौ**=जीवन को शुद्ध बनानेवाले इन्द्र और अग्नि-बल व प्रकाश के देवता **द्युभिः**=अपने प्रकाशों से **अवः**=अधः प्रदेश से **दिवः उप**=द्युलोक के समीप **उच्चरातः**=ऊपर प्राप्त कराते हैं, उन **इन्द्राग्न्योः**=इन्द्र और अग्नि के **व्रतं**=व्रत को **उहाना**=धारण करते हुए, अर्थात् इन्द्र अग्नि के आराधन के लिए आवश्यक व्रतों को धारण करते हुए **सिन्धवः**=गतिशील पुरुष **यन्ति**=जीवन मार्ग पर चलते हैं। (२) **यान्**=जिन सिन्धुओं को, गतिशील पुरुषों को **सीम्**=निश्चय से इन्द्र और अग्नि **बन्धात् अमुञ्चतां**=बन्ध से छुड़ाते हैं। ये इन्द्र और अग्नि व्रती पुरुष के बन्धनों को समाप्त करके उन्हें जीवन-मरण के चक्र से ऊपर उठाते हैं। इन इन्द्र और अग्नि की उपासना से **समे**-सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हों।

भावार्थः-इन्द्र और अग्नि व्रतमय जीवनवाले पुरुष को उन्नत करते हैं। विषय के बन्धनों से मुक्त करके ये उन्हें मोक्ष का पात्र बनाते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥

उपमातयः-प्रशस्तयः

पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे॥ ९॥

(१) हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले, **सूनो**=उत्तम प्रेरणा को देनेवाले **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते**=आपकी **उपमातयः**=देन **पूर्वीः**=बहुत हैं, **उत**=और **प्रशस्तयः**=आपकी प्रशस्तियाँ-स्तुतियाँ **पूर्वीः**=हमारा पालन व पूरण करनेवाली हैं। (पृ पालनपूरणयोः)। (२) हे प्रभो! **हिन्वस्य**=प्रीणित करनेवाले **वस्वः**=सबको बसानेवाले **वीरस्य**=शक्तिशाली आपके **आपृचः**=सम्पर्क (पृची सम्पर्के) वे हैं **याः**=जो **नु**=निश्चय से **नः**=हमारी **धियः**=बुद्धियों को **साधन्त**=सिद्ध करते हैं। सो आपके सम्पर्कों के द्वारा **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ-प्रभु ने हमारे लिए सब उन्नति के साधन प्राप्त कराए हैं। प्रभु का स्तवन हमारी बुद्धियों को उत्तम प्रेरणा प्राप्त कराता है। उस वीर प्रभु का सम्पर्क हमें शक्ति सम्पन्न बनाता है

और हम शत्रुओं पर विजय पाते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—निचृज्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

जेषत् स्वर्वतीः अपः

तं शिशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं सत्वानमृग्मियम्।
उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति जेषत्स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे॥ १०॥

(१) तं उस प्रभु को **सुवृक्तिभिः**-पापवर्जन की हेतुभूत उत्तम स्तुतियों से **शिशीत**-(संस्कुरुत) अपने अन्दर तीक्ष्ण व संस्कृत करो, अर्थात् प्रभु की भावना को अपने अन्दर बढ़ाने का प्रयत्न करो। जो प्रभु **त्वेषं**-दीप्त हैं, **सत्वानम्**-शक्तिशाली हैं व **ऋग्मियम्**-ऋचाओं से स्तुति के योग्य हैं। (२) उन प्रभु को अपने अन्दर प्रादुर्भूत करो **उत उ नु चित्**-और निश्चय से **यः**=जो **ओजसा**-शक्ति के द्वारा **शुष्णस्य आण्डानि**=शोक कामदेव के अपत्यों को भी (अण्डात् जातानि) **भेदति**=विदीर्ण कर देते हैं, अर्थात् प्रभु कामदेव को भस्म कर देते हैं। काम को नष्ट करके प्रभु ही **स्वर्वतीः**=प्रकाश व सुख को प्राप्त करानेवाले **अपः**-रेतःकणरूप जलों का **जेषत्**=विजय करते हैं। कामाग्नि की रेतःकणरूप जलों को विनष्ट करती है, इस कामाग्नि के विध्वंस से रेतःकणों का रक्षण होता ही है और ऐसा होने पर **समे**-सब **अन्यके** शत्रु **नभन्ताम्**-नष्ट हो जाएँ। वीर्यरक्षण के होने पर सब रोग व वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं।

भावार्थः-हम स्तुति के द्वारा प्रभु को अपने में दीप्त करें। प्रभु की शक्ति हमारी वासना का विनाश करती है और वीर्यरक्षण द्वारा प्रकाश व सुख को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

आण्डा शुष्णस्य भेदति

तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम्।
उतो नु चिद्य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेदत्यजैः स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे॥ ११॥

(१) **तं**-उस प्रभु को **शिशीत** अपने अन्दर तीक्ष्ण करो-स्तुतियों से संस्कृत करो, जो प्रभु **सत्यं**=सत्यस्वरूप हैं, **सत्वानम्**-शक्तिसम्पन्न हैं। **स्वध्वरं**=उत्तम यज्ञ आदि कर्मों के सिद्ध करनेवाले हैं। जिनकी शक्ति से उपासक यज्ञ आदि कर्मों को कर पाता है, अतएव **ऋत्वियम्**=प्रभु ऋतु ऋतु में अर्थात् सदा उपासना के योग्य हैं। (२) **उत उ नु चित्**-और निश्चय से **यः**-जो प्रभु **ओहते**=स्तुति किये जाते हैं वे **शुष्णस्य आण्डा**-कामदेव के अपत्यों को भी **भेदति**-विदीर्ण कर देते हैं-वासना के मूल को ही विनष्ट कर देते हैं और **स्वर्वतीः**=प्रकाश व सुख को प्राप्त करानेवाले **अपः**-रेतःकणों को **अजैः**-जीतते हैं। इस प्रकार काम विनाश से **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=विनष्ट हों।

भावार्थ-प्रभु 'स्वध्वर-सत्य सत्वा-ऋत्विय' हैं। इनकी स्तुति जब उपासक करता है, तो प्रभु काम का समूल विनाश कर देते हैं और हमारे रेतःकणों का रक्षण कर के हमारे सब वासना व रोगरूप शत्रुओं का विनाश कर देते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

पिता-मन्धाता-अङ्गिराः

एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि।
त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान्वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ १२॥

(१) **एवा**=इस प्रकार **इन्द्राग्निभ्यां**=बल व प्रकाश के देवों के लिए **पितृवत्**=एक रक्षक पुरुष की तरह–जैसे एक रक्षणात्मक कर्मों में लगा हुआ व्यक्ति स्तुति करता है, उसी तरह **नवीयः**=(नु स्तुतौ) स्तुतिवचन **अवाचि**=उच्चारण किया जाता है। **मन्धातृवत्** (मन्+धा)=ज्ञान को धारण करनेवाले पुरुष की तरह हमारे से इन्द्राग्नी के लिए स्तुतिवचन उच्चारित होती है तथा **अङ्गिरस्वत्**=अंग-प्रत्यंग में रसवाले पुष्प की तरह हमारे से इन्द्राग्नी के लिए स्तुति की जाती है। वस्तुतः इन्द्र और अग्नि का स्तोता 'रक्षक–ज्ञान का धारण करनेवाला व अंग-प्रत्यंग रसवाला' बनता है। (२) हे इन्द्र और अग्ने! आप **त्रिधातुना**=वात-पित्त व कफ़ तीनों का सम्यक् धारण करनेवाले **शर्मणा**=शरीर गृह से–इस प्रकार के शरीर को प्राप्त कराने के द्वारा **अस्मान् पातम्**=हमारा रक्षण करो। आपके द्वारा **वयं**=हम **रयीणाम्**=सब ऐश्वर्यों के **पतयः**=स्वामी **स्याम**=हों।

भावार्थ–हम रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होते हुए, ज्ञान को धारण करते हुए, अंगों को रसमय (शक्तिशाली) बनाते हुए इन्द्र और अग्नि का उपासन करें। अपने अन्दर बल व प्रकाश का वर्धन करें। बल व प्रकाश के द्वारा हमारा शरीर गृह 'वात-पित्त व कफ़' सब धातुओं के साम्यवाला हो। हम ऐश्वर्यों के स्वामी बनें।

अगले सूक्त में नाभाक 'वरुण' का स्तवन करते हैं–

४१. [एकचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—वरुणः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुपङ्क्तिः॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'वरुण व मरुतों' का पूजन

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्योऽर्चा विदुष्टरेभ्यः।
यो धीता मानुषाणां पश्वो गाइव रक्षति नभन्तामन्यके समे॥ १॥

(१) **अस्मा**=इस **सु प्रभूतये**=उत्तम प्रकृष्ट ऐश्वर्यवाले **वरुणाय**=पापनिवारक प्रभु के लिए तथा **विदुष्टरेभ्यः**=उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करानेवाले **मरुद्भ्यः**=प्राणों के लिए **ऊ**=निश्चय से **अर्चा**=पूजन करो। प्रभु की उपासना से पाप दूर होते हैं और उत्कृष्ट ऐश्वर्य प्राप्त होता है। प्राणसाधना से दोषों का क्षय होकर ज्ञानदीप्ति प्राप्त होती है। (२) **यः**=जो वरुण हैं वे **धीता**=कर्मों के द्वारा **मानुषाणां**=मनुष्यों की **पश्वः**=ज्ञानेन्द्रियों को (पश्यन्ति) इस प्रकार **रक्षति**=सुरक्षित करते हैं, **इव**=जैसे एक ग्वाला **गाः**=गौओं का रक्षण करता है। ऐसा होने पर अर्थात् वरुण द्वारा हमारी ज्ञानेन्द्रियों के रक्षित होने पर **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थः–हम पापनिवारक वरुण का उपासन करें। ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करानेवाले प्राणों की साधना में प्रवृत्त हों। प्रभु कर्मों में प्रेरित करके हमारी इन्द्रियों का रक्षण करते हैं और हमारे सब शत्रुओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—वरुणः॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

'सप्तस्वसा' स 'मध्यमः'

तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः।
नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे॥ २॥

(१) **तम्**=उस प्रभु को **ऊ**=ही **समना गिरा**=मननयुक्त वाणी के द्वारा **च**=तथा **पितॄणां मन्मभिः**=रक्षक पुरुषों के मननीय स्तुविचनों के द्वारा तथा **नाभाकस्य**=काम-क्रोध आदि का

हिंसन करनेवाले पुरुष के **प्रशस्तिभिः**=शंसनवचनों के द्वारा **सु** (अभिष्टौमि)-सम्यक् स्तुत करता हूँ। (२) **यः**=जो प्रभु **सिन्धूनां**-स्यन्दनशील रेतःकणों के **उप**-समीप **उदये**-(उद्भव) उद्गत होते हैं, अर्थात् रेतःकणों का रक्षण होने पर प्रभु का दर्शन होता है। **सः**-वे प्रभु **सप्तस्वसा**-(सप्त स्व-सृ) सात छन्दोरूप आत्मतत्त्व की ओर ले जानेवाली वेदवाणियोंवाले हैं। **मध्यमः**-सबके मध्य में होनेवाले हैं-सबके अन्दर विद्यमान हैं। इन अन्तः स्थित प्रभु के अनुग्रह से **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ-ज्ञानयुक्त वाणियों से मननीय स्तोत्रों से तथा शंसनवचनों से हम प्रभु का स्तवन करें। सोमरक्षण के होने पर इस प्रभु का प्रकाश प्राप्त होता है। वे प्रभु सात छन्दोरूप वेदवाणियों के देनेवाले हैं, सबके अन्दर व्याप्त हो रहे हैं। इन्हीं के अनुग्रह से शत्रुओं का विनाश होता है।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—वरुणः॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

उस्रः मायया निदधे

स क्षपः परि षस्वजे न्यु१स्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः।
तस्य वेनीरनु व्रतमुषस्तिस्रो अवर्धयन्नभन्तामन्यके समे॥ ३॥

(१) **सः**-वे प्रभु **क्षपः**-(क्षप् Throw away) शत्रुओं को परे फेंकनेवालों का **परिषस्वजे**-आलिंगन करते हैं। **सः उस्रः**-वे प्रकाशमय प्रभु **मायया**-अपनी माया से, प्रज्ञान से **विश्वं निदधे**=सारे संसार को धारण करते हैं। **परिदर्शतः**-वेद दर्शनीय हैं। (२) **तस्य वेनीः**=उस प्रभु की प्राप्ति की कामनावाली प्रजाएँ **व्रतम् अनु**-व्रतों के अनुसार **तिस्रः**-तीनों **उषा**-उषाओं को **अवर्धयन्**-बढ़ाते हैं। 'उषस्' की भावना 'दोष दहन' की है। उपासक लोग व्रतमय जीवन बिताते हुए 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों के दोषों को दग्ध कर देते हैं। ऐसा करने पर **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ-प्रभु उन्हीं को प्राप्त होते हैं जो काम-क्रोध को विनष्ट कर देते हैं। व्रती जीवनवाले पुरुष शरीर, मन व बुद्धि के दोषों को दग्ध करते हुए प्रभु को प्राप्त होने के अधिकारी होते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—वरुणः॥ **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

वरुणस्य

यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः।
स माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं स हि गोपाइवेर्यो नभन्तामन्यके समे॥ ४॥

(१) **यः**=जो प्रभु **ककुभः**=सब दिशाओं को **निधारयः**=निश्चय से धारण करते हैं और जो **पृथिव्यां**=इस पृथिवी पर **अधिदर्शतः**=आधिक्येन दर्शनीय है-सर्वत्र (सब पदार्थों में) उस प्रभु की महिमा दृष्टिगोचर होती है। **सः**-वे प्रभु ही **पूर्व्यं पदं माता**=मोक्षरूप लोक का निर्माण करनेवाले हैं। (२) **वरुणस्य**-द्वेष के निवारण करनेवाले का ही **तत्**-वह **सप्त्यं**=सर्पणयोग्य होता है। इस मोक्षपद को निर्द्वेष व्यक्ति ही पाता है। **सः**=वे प्रभु **हि**=ही **गोपाः इव**=ग्वाले के समान है। ग्वाला जैसे गौओं का रक्षण करता है, उसी प्रकार प्रभु हमारा सबका रक्षण करते हैं। **ईर्यः**-वे प्रभु ही गन्तव्य हैं (**ईर् गतौ**)। हम सबको उस प्रभु की ओर ही चलना चाहिए, जिससे **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ-वे प्रभु ही धारक हैं-सर्वत्र प्रभु की ही महिमा दृष्टिगोचर होती है। ये ही मोक्षलोक का भी निर्माण करते हैं। सबके रक्षक है।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ देवता—वरुणः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

धर्ता-कविः

यो धर्ता भुवनानां य उस्त्राणामपीच्या३ वेद नामानि गुह्या।
स कविः काव्या पुरु रूपं द्यौरिव पुष्यति नभन्तामन्यके समे॥ ५॥

(१) **यः**=जो प्रभु **भुवनानां धर्ता**=सब लोकों का धारण करनेवाले हैं। **यः**=जो प्रभु **उस्त्राणाम्**=वेदवाणी रूप गौओं के **अपीच्याः**=अन्तर्हित **गुह्या**=हृदयदेश में प्रकट होनेवाले **नामानि**=नामों को **वेद**=प्राप्त कराते हैं। **सः कवि**=वे प्रभु ही क्रान्तप्रज्ञ है, प्रत्येक वस्तु के मर्म को जानते हैं। (२) वे प्रभु ही **काव्याः**=वेदरूप काव्यों का **पुष्यति**=इस प्रकार पोषण करते हैं, **इव**=जिस प्रकार **द्यौः**=यह आकाश **पुरु रूपं**=अनेक रूपों का पोषण करता है। इस प्रभु के स्मरण से हमारे **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हों।

भावार्थः—प्रभु ही धारक हैं—सब पदार्थों को ज्ञापक है। वे कवि प्रभु ही सब ज्ञानों को देते हुए हमारे शत्रुओं को शीर्ण करते हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ देवता—वरुणः॥ छन्दः—निचृज्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

त्रितं जूती सपर्यत

यस्मिन्विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता।
त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो संयुजे युजे अश्वाँ अयुक्षत नभन्तामन्यके समे॥ ६॥

(१) **यस्मिन्**=जिस प्रभु में **विश्वानि काव्या**=सब काव्य (वेदज्ञान) इस प्रकार **श्रिता**=आश्रित हैं, **इव**=जैसे **चक्रे**=चक्र में **नाभिः**=नाभि आश्रित होती है। उस **त्रितं**=तीनों के (त्रीन् तनोति) विस्तार करनेवाले, 'ऋग्, यजु, साम' रूप तीनों के बढ़ानेवाले प्रभु को **जूती**=जव के द्वारा—वेग के द्वारा स्फूर्त से कर्मों को करने के द्वारा **सपर्यत**=पूजो। (२) **न**=जैसे **गावः**=सब गौवें **व्रजे**=बाड़े में **संयुजे**=साथ मेलवाली होती है, उसी प्रकार **युजे**=उस प्रभु से मेल के लिए **अश्वान्**=इन इन्द्रियाश्वों को **अयुक्षत**=(युज समाधौ) समाहित करो। इन्द्रियों को इधर-उधर भटकने से रोको जिससे **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थः—प्रभु में ही सब वेदज्ञान निहित हैं। इस प्रभु को कर्मों द्वारा हम उपासित करें। इन्द्रियों से विषयों में भटकने से रोकें। यही शत्रुनाश का मार्ग है।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ देवता—वरुणः॥ छन्दः—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

आसु अत्कः आशये

य आस्वत्क आशये विश्वा जातान्येषाम्।
परि धामानि मर्मृशद्वरुणस्य पुरो गये विश्वे देवा अनु व्रतं नभन्तामन्यके समे॥ ७॥

(१) **यः**=जो वरुण **आसु**=इन लोकों व प्रजाओं में **अत्कः**=(व्याप्तः) व्याप्त हुए-हुए **आशये**=रहते हैं और **एषां**=इन लोकों के **विश्वा**=सब **जातानि**=प्रादुर्भावों को तथा इन प्रजाओं के **धामानि**=तेजों को **परिमर्मृशत्**=छूते हैं (मृश्, To handle) व्यवस्थित करते हैं। (२) **वरुणस्य**=इस शासक प्रभु के **पुरः**=सामने ही गये, अपने-अपने घर में, स्थान में **देवाः**=सब देव **व्रतं**=अपने-अपने व्रत का **अनु** (गच्छन्ति)=अनुसरण करते हैं। हम सब इस प्रभु के समक्ष होते हुए कार्य करेंगे तो **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=अवश्य नष्ट होंगे ही।

भावार्थः–प्रभु ही व्यापकता के द्वारा सबका नियमन कर रहे हैं। प्रभु के स्मरण से ही सब शत्रुओं का विनाश होता है।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—वरुणः॥ **छन्दः**—स्वराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

समुद्रः-अपीच्यः-तुरः

स स॑मु॒द्रो अ॑पी॒च्य॑स्तु॒रो द्यामि॑व रोहति॒ नि यदा॑सु॒ यजु॑र्द॒धे।

स मा॒या अ॒र्चिना॑ प॒दास्तृ॑णा॒न्नाक॒मारु॑ह॒न्नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥ ८॥

(१) **सः**=वे प्रभु **समुद्रः**-(स+मुद्) सदा आनन्द के साथ हैं–आनन्दस्वरूप हैं। **अपीच्यः**-सबके अन्दर अन्तर्हित हैं–छिपे रूप में विद्यमान हैं। **तुरः**-सब बुराइयों का संहार करनेवाले हैं। जब एक उपासक प्रभु का इस रूप में उपासन करता है, तो वह भी आनन्द को प्राप्त करता है, सदा अन्दर स्थित होने का प्रयत्न करता है, बहिर्मुखी वृत्तिवाला नहीं होता और काम-क्रोध आदि का संहार करनेवाला होता है। इस उपासक के हृदयान्तरिक्ष में वे प्रभु इस प्रकार **रोहति**=प्रादुर्भूत होते हैं, **इव**-जैसे **द्याम्**-द्युलोक में सूर्य का प्रादुर्भाव होता है। सूर्योदय हुआ और अन्धकार समाप्त हुआ, इसी प्रकार प्रभु का प्रादुर्भाव होते ही सब वासनान्धकार विलीन हो जाता है। यह वह समय होता हैं **यद्**=जब **आसु**-इन प्रजाओं में वे प्रभु **यजुः निदधे**-यज्ञात्मक कर्मों को स्थापित करते हैं। वे उपासक अपने लिए न जी कर औरों के लिए जीते हैं। (२) **सः**=वह प्रभु का उपासक **अर्चिना**-उपासना के द्वारा तथा **पदाः**-(पद गतौ) गतिशीलता के द्वारा **माया अस्तृणात्**=मायाओं को हिंसित करता है। प्रभुस्मरण पूर्वक कर्मों को करता हुआ प्रकृति की माया से आकृष्ट नहीं होता। वह प्राकृतिक माया इस उपासक को वशीभूत नहीं कर पाती। माया को तैरकर यह **नाकम् अरुहत्**=मोक्षलोक में आरोहण करता है। इस प्रभुस्मरण के द्वारा हमारे **समे**=सारे **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**-नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ–हम आनन्दमय-अन्तर्हित-वासनासंहारक प्रभु का स्मरण करें। प्रभुरूप सूर्य के उदय होते ही सारा वासनान्धकार विलीन हो जाएगा। प्रभुप्रेरणा से हमारा जीवन यज्ञशील बनेगा। उपासना व क्रियाशीलता के द्वारा सब माया को तैर कर हम मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—वरुणः॥ **छन्दः**—जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

स सप्तानाम् इरज्यति

यस्य॑ श्वे॒ता वि॑चक्ष॒णा ति॒स्रो भूमी॑रधिक्षि॒तः ।

त्रिरुत्त॑राणि प॒प्रतु॒र्वरु॑णस्य ध्रु॒वं सदः॒ स स॑प्ता॒नामि॑रज्यति॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥ ९॥

(१) **यस्य**-जिस **तिस्त्रः भूमीः**-तीनों–पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक–लोकों में (भूमियों में) **अधिक्षितः**-अधिष्ठातृरूपेण निवास करते हुए प्रभु के **विचक्षणा**=विशेषरूप से प्रकाश को करनेवाले **श्वेता**-उज्ज्वल शक्ति व ज्ञान के तेज **त्रिः उत्तराणि**-तीनों उत्कृष्ट 'शरीर-मन व मस्तिष्क' रूप लोकों का **पप्रतुः**=पूरण करते हैं। उस **वरुणस्य**=पापनिवारक प्रभु का **सदः**-स्थान **ध्रुवं**=ध्रुव है। इस ब्रह्मलोक में पहुँचकर जीव 'अव्यय' स्थान को प्राप्त कर लेता है। **सः**=वे वरुण **सप्तानाम्**-सातों लाकों के 'भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्' के **इरज्यति**=ऐश्वर्यवाले हैं। ये सातों लोक प्रभु का ही ऐश्वर्य हैं। इस प्रभु के उपासन से **समे**-सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ–तीनों लोकों के अधिष्ठाता प्रभु हमारे 'शरीर, मन व मस्तिष्क' को शक्ति व ज्ञान

के तेज से पूरित करते हैं। ये प्रभु ही सातों लोकों के स्वामी हैं। इनके अनुग्रह से हमारे सब शत्रु विनष्ट हो जाएँ।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—वरुणः॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

श्वेतान्+कृष्णान्

यः श्वेताँ अधिनिर्णिजश्चक्रे कृष्णाँ अनु व्रता ।
स धाम पूर्व्यं ममे यः स्कम्भेन वि रोदसी अजो न द्यामधारयन्नभन्तामन्यके समे॥ १०॥

(१) **यः**=जो प्रभु **श्वेतान्**=प्रकाश से चमकते हुए श्वेत रंग के **अधिनिर्णिजः**=अति शयेन शुद्ध सूर्य आदि लोकों को **चक्रे**=बनाते हैं, तथा **व्रता अनु**=नियमों के अनुसार (व्रतं=नियमः) **कृष्णान्**=भूमि आदि कृष्ण लोकों को बनाते हैं। **सः**=वे प्रभु ही **पूर्व्यं धाम**=सर्वोत्कृष्ट मोक्षलोक का **ममे**=निर्माण करते हैं। (२) **यः**=जो प्रभु **स्कम्भेन**=अपनी धारक (थामने की) शक्ति से **रोदसी**=द्यावापृथिवी को **वि अधारयत्**=विशेष रूप से धारण करते हैं। वे **अजः न**=सर्वसंचालक के समान (अज् गतौ) **द्याम्**=इस देदीप्यमान आदित्य को धारण करते हैं। इस सर्वाधार प्रभु के द्वारा हमारा धारण होने पर **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थः—प्रभु ही स्वयं प्रकाश सूर्य आदि लोकों को तथा स्वयं आकाश (कृष्ण) पृथिवी आदि लोकों को बनाते हैं। प्रभु ही मोक्षलोक का भी निर्माण करनेवाले हैं—प्रभु ही मोक्षलोक हैं। वे अपनी धारणशक्ति से द्युलोक व पृथिवीलोक का धारण करते हैं। सूर्य को भी थामते हैं। इन प्रभु की कृपा से हमारे काम आदि शत्रु विनष्ट हो जाएँ।

अगले सूक्त में प्रथम तीन मन्त्रों में 'वरुण' व पिछले तीन मन्त्रों में 'अश्विन' देवता हैं:—

४२. [द्वाचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—वरुणः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'धर्ता-निर्माता-अधिष्ठाता' प्रभु

अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि॥ १॥

(१) **असुरः**=सर्वत्र प्राणशक्ति का संचार करनेवाला, **विश्ववेदाः**=सम्पूर्ण धनोंवाला प्रभु **द्याम्**=द्युलोक को **अस्तभ्नात्**=थामता है—आकाशस्थ सब लोक-लोकान्तरों के प्रभु स्वामी हैं। (२) वे वरुण प्रभु ही **पृथिव्याः**=इस विशाल अन्तरिक्ष के व पृथिवीलोक के **वरिमाणं**=विस्तार को **अमिमीत**=बनाते हैं। वे **सम्राट्**=सारे ब्रह्माण्ड के शासक प्रभु **विश्वा भुवनानि**=सब लोकों के **आसीदत्**=अधिष्ठाता हैं। **तानि**=वे लोक=लोकान्तरों के धारण-निर्माण व अधिष्ठातृत्व आदि **विश्वा इत्**=सब ही **व्रतानि**=कर्म **वरुणस्य**=उस पापनिवारक प्रभु के ही हैं।

भावार्थ—द्युलोक को प्रभु थामते हैं, पृथिवी के विस्तार का निर्माण करते हैं और सब लोकों के अधिष्ठाता हैं। ये सब काम उस प्रभु के ही हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—वरुणः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'बृहन्+धीर+अमृतगोपा' प्रभु

एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम्।
स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत्पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे॥ २॥

(१) **एवा**-इस प्रकार-गतमन्त्र में वर्णित प्रकार से **बृहन्तं** उस महान् **वरुणं**-वरुण को **वन्दस्व**-वन्दित कर। **अमृतस्य गोपाम्** अमृतत्व के रक्षक **धीरं**=उस ज्ञानी प्रभु को **नमस्या**=नमन कर, उसको पूजित कर। (२) **सः**-वे प्रभु **नः**-हमारे लिए **त्रिवरूथं**-तीनों 'ज्ञान, कर्म व उपासना' रूप धनोंवाले (वरूथं-Wealth) **शर्म**=शरीरगृह को **वियंसत्**-दें। **द्यावापृथिवी**-ये द्युलोक व पृथिवीलोक **उपस्थे**=अपनी गोद में **नः पातम्**-हमें सुरक्षित करें।

भावार्थः-हम उस महान् धीर अमृत के रक्षक प्रभु का वन्दन व नमन करें। वे हमें 'ज्ञान, कर्म व उपासना' रूप सम्पत्तिवाले शरीरगृह को प्राप्त कराएँगें और इस द्यावापृथिवी की गोद में हम सुरक्षित रहेंगे। द्युलोक हमारा पिता होगा, पृथिवी माता।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः॥ **देवता**—वरुणः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

सुतर्मा नौका

इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम॥ ३॥

(१) हे **देव**-प्रकाशमय **वरुण** नियामक देव! **इमां धियं**=इस ज्ञानपूर्वक किये जाते हुए कर्म को **शिक्षमाणस्य**-अनुष्ठान करते हुए मेरे **क्रतुं**=प्रज्ञान को व **दक्षं**=बल को **संशिशाधि**-सम्यक् तीक्ष्ण करिये। आप से प्राप्त कराये गये ज्ञान व बल के द्वारा ही तो मैं इस कर्म को कर पाऊँगा। (२) आपके अनुग्रह से हम उस **सुतर्माणम्**=सम्यक् तरानेवाली **नावं**=यज्ञरूप नौका पर **अधिरुहेम**=आरूढ़ हों, **यया**=जिसके द्वारा **विश्वा**-सब बुराइयों को **अति तरेम**=तैर जाएँ।

भावार्थ-प्रभु से प्रज्ञान व शक्ति को प्राप्त करके हम यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त हों। ये यज्ञ ही सब दुरितों को तैर जाने के लिए नाव हैं।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः अर्चनाना वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

ग्रावाणः+विप्रः

आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे॥ ४॥

(१) हे **अश्विना**-प्राणापानो! **वां**-आपकी **ग्रावाणः**-स्तुति की वाणियों का उच्चारण करनेवाले **विप्राः**=ज्ञानी लोग **धीभिः**-ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले कर्मों के हेतु से **आ अचुच्यवुः**=सर्वथा प्राप्त होते हैं, आपकी ओर आते हैं। प्राणापान की साधना ही वस्तुतः हमें 'ग्रावा व विप्र' बनाती है। इस साधना से ही हम ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। (२) हे **नासत्या**=सब असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! आप **सोमपीतये**=शरीर में सोम के पान के लिए होते हो। आपके द्वारा ही शरीर में सोम का रक्षण होता है। इस सोमरक्षण के होने पर **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ-हम स्तुति व ज्ञान में प्रवृत्त हुए-हुए प्राणसाधना को करनेवाले बनें। यह साधना शरीर में सोम का रक्षण करती हुई हमारे काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं का विनाश करती है।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः अर्चनाना वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

मत्रिः

यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत्। नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे॥ ५॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **यथा**=जिस प्रकार **विप्रः**=ज्ञानी **अत्रिः**=काम-क्रोध व लोभ से ऊपर उठा हुआ अत्रि **गीर्भिः**=स्तुतिवाणियों के द्वारा **वाम्**=आपको **अजोहवीत्**=पुकारता है, उसी प्रकार मैं भी आपका आराधन करता हूँ। (२) हे **नासत्या**=सब असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! आप **सोमपीतये**=शरीर में सोम के (वीर्यशक्ति के) रक्षण के लिए होते हैं। आपको साधना से **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ-हम काम-क्रोध लोभ से ऊपर उठकर प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। यह साधना ही सोम रक्षण द्वारा हमारे शत्रुओं का शातन करेगी।

ऋषिः—नाभाकः काण्वः अर्चनाना वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

मेधिराः

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः। नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे॥ ६॥

(१) हे **नासत्या**=प्राणापानो! मैं **ऊतये**=रक्षण के लिए **वाम्**=आपको **एवा**=इस प्रकार **अह्व**=पुकारता हूँ। **यथा**=जैसे **मेधिराः**=ज्ञानी पुरुष-मेधावी पुरुष **आहुवन्त**=पुकारते हैं। (२) हे प्राणापानो! आप **सोमपीतये**=सोम के रक्षण के लिए होते हो। इस सोमरक्षण के द्वारा **समे**=सब **अन्यके**=शत्रु **नभन्ताम्**=विनष्ट हों।

भावार्थः-हम मेधावी बनकर प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। इस साधना द्वारा सोमरक्षण करके काम आदि सब शत्रुओं का विनाश करें।

सोमरक्षण से विशिष्ट रूपवाले तेजस्वी बनकर हम 'विरूप' बनते हैं, 'आङ्गिरस' होते हैं-अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रसवाले। यह विरूप 'अग्नि' नाम से प्रभु का स्तवन करता है।

४३. [त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'विप्र-वेधा-अग्नि-अस्तृतयज्वा' प्रभु

इमे विप्रस्य वेधसोऽग्नेरस्तृतयज्वनः। गिरः स्तोमास ईरते॥ १॥

(१) **इमे**=ये **स्तोमासः**=स्तुतियुक्त मन्त्रों द्वारा स्तुति करनेवाले उपासक लोग **अग्नेः**=उस अग्रणी प्रभु की **गिरः**-स्तुतिवाणियों का **ईरते**=उच्चारण करते हैं। (२) उन प्रभु की स्तुतिवाणियों का उच्चारण करते हैं जो **विप्रस्य**=विशेषरूप से सबका पूरण करनेवाले ज्ञानी हैं। **वेधसः**=जगत के विधाता-निर्माण करनेवाले हैं। **अस्तृतयज्वनः**=यज्ञशील पुरुषों को नष्ट न होने देनेवाले हैं।

भावार्थ-हम उस प्रभु की स्तुतिवाणियों का उच्चारण करें, जो 'विप्र-वेधाः-अग्नि व अस्तृतयज्वा' हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'जातवेदा विचर्षणि अग्नि' प्रभु

अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे। अग्ने जनामि सुष्टुतिम्॥ २॥

(१) हे **जातवेदः**=सम्पूर्ण धनों का प्रादुर्भाव करनेवाले, **विचर्षणे**=विद्रष्टः प्रभो! सबका ध्यान करनेवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **अस्मै**=इस **प्रतिहर्यते**=प्रत्येक प्राणी के हित की कामनावाले **ते**=आपके लिए **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को **जनामि**=उत्पन्न करता हूँ। (२) प्रभु का स्तवन करता हुआ मैं आवश्यक धनों को प्राप्त करता हूँ-ज्ञान को प्राप्त करके-विचर्षणि बनकर-मैं आगे और

आगे बढ़ता हूँ।

भावार्थः—प्रभु-स्तवन करते हुए हम 'धन+ज्ञान+व उन्नति' को प्राप्त करें।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'वासना-वन-विलय'

आरोकाइव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः। दद्भिर्वनानि बप्सति॥ ३॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **तव**=आपकी **तिग्मा**=अतितीक्ष्ण **त्विषः**=ज्ञानदीप्तियाँ **घा इत् अह**=निश्चय से और अवश्य निश्चय से **वनानि**=हृदयक्षेत्र में उग आनेवाली वासनारूप झाड़ियों को इस प्रकार **बप्सति**=खा जाती हैं। **इव**=जैसे अग्नि की **आरोकाः**=दीप्त ज्वालाएँ **दद्भिः**=लपट रूप दाँतों से (वनानि बप्सति) वनों को निगल जाती हैं। (२) अग्नि की ज्वालाओं में वन भस्म हो जाते हैं। इसी प्रकार प्रभु की ज्ञानदीप्तियों में वासनाओं का विध्वंस हो जाता है।

भावार्थः—प्रभु की उपासना के होने पर हमारी सब वासनाएँ प्रभु की ज्ञान ज्वालाओं में दग्ध हो जाती हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अग्नयः (यज्ञाग्नियाँ)

हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि। यतन्ते वृथगग्नयः॥ ४॥

(१) **अग्नयः**=यज्ञों की अग्नियाँ **हरयः**=हम सबके कष्टों का हरण करनेवाली होती हुई **वृथक्**=पृथक्-पृथक् स्थानों में **उप द्यवि**=अन्तरिक्षलोक में **यतन्ते**=रोगकृमिनाश के लिए यत्नशील होती हैं। (२) ये अग्नियाँ **धूमकेतवः**=धूमरूप ध्वजावाली हैं और **वातजूताः**=वायु द्वारा प्रेरित होती है। वायु इनका उद्बोधक होता है।

भावार्थ—यज्ञाग्नियाँ अन्तरिक्ष में उठती हुई रोगकृमिविनाश द्वारा यज्ञशील पुरुषों के कष्टों का अपहरण करती हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उषसाम् केतवः इव

एते त्ये वृथगग्नय इद्धासः समदृक्षत। उषसामिव केतवः॥ ५॥

(१) **एते**=ये **त्ये**=वे प्रसिद्ध **अग्नयः**=यज्ञाग्नियाँ **वृथक्**=पृथक्-पृथक् स्थानों में **इद्धासः**=समिद्ध हुई हुई **समदृक्षत**=दिखती हैं। सर्वत्र-सब घरों में यज्ञाग्नियाँ दीप्त हो रही हैं। (२) ये यज्ञाग्नियाँ **उषसां**=उषाकालों की **केवतः इव**=पताकाएँ सी हैं—उषाकालों की यह प्रज्ञापक हैं, सूचना देनेवाली हैं।

भावार्थः—उषाकालों में सर्वत्र होते हुए यज्ञ अग्नियों द्वारा उषा का प्रज्ञापन कर रहे हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अग्निर्यद् रोधति क्षमि

कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः। अग्निर्यद्रोधति क्षमि॥ ६॥

(१) **अग्निः**=एक प्रगतिशील जीव **यद्**=जब **क्षमि**=इस पृथिवीरूप शरीर में **रोधति**=प्राणों का निरोध करता है तो इस **पत्सुतः**=(पद् सु=सवति To go, move) वेदवाणी (वेदशब्दों) के अनुसार गति करनेवाले **जातवेदसः**=ज्ञानी पुरुष के **प्रयाणे**=जीवनमार्ग में **रजांसि**=राजसभाव

कृष्णा=(कृष् –To pull away, tear) दूर व विनष्ट हो जाते हैं। (२) प्राणायाम के द्वारा हमारा ज्ञान बढ़ता है। सब राजसभाव विनष्ट होते हैं और इस साधक की वृत्ति सात्त्विक बन जाती है।

भावार्थः–प्राणनिरोध से ज्ञान का वर्धन होता है, राजसभाव विनष्ट होते हैं, वृत्ति सात्त्विक बनती है।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

मात्रा में वानस्पतिक भोजन

धासिं कृण्वान ओषधीर्बप्सदग्निर्न वायति। पुनर्यन्तरुणीरपि॥ ७॥

(१) **अग्निः**=प्रगतिशील जीव **धासिं कृण्वानः**=धारणात्मक भोजन को करता हुआ–अर्थात् शरीर धारण के ही लिए भोजन को ग्रहण करता हुआ, **ओषधीः बप्सत्**=ओषधि वनस्पतियों का ही भक्षण करता हुआ **न वायति**=श्रान्त नहीं होता जाता। शुष्क अंग–प्रत्यंगोंवाला नहीं हो जाता। (२) और **पुनः**=फिर यह प्रगतिशील जीव इन वानस्पतिक भोजनों को करता हुआ **तरुणीः अपि यत्**=संसार सागर से तरानेवाली भावनाओं की ओर ही गतिवाला होता है।

भावार्थ–मात्रा में किया गया वानस्पतिक भोजन (क) शरीर को सरस अङ्ग–प्रत्यङ्गोंवाला बनाता है, और (ख) भावनाओं को उत्तम बनाता है।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'जञ्जणाभवन्' प्रभु

जिह्वाभिरह नन्नमदर्चिषा जञ्जणाभवन्। अग्निर्वनेषु रोचते॥ ८॥

(१) **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु **वनेषु**=उपासकों में (वन् संभक्तौ) **रोचते**=चमकता है। यह प्रभु **जिह्वाभिः**=अपनी ज्ञान–ज्वालाओं से **अह**=निश्चयपूर्वक **नन्नमत**=सब शत्रुओं को झुका देता है। हम प्रभु की उपासना करते हैं। प्रभु हमारे हृदयों में दीप्त होते हुए ज्ञानाग्नि के द्वारा सब काम–क्रोध आदि शत्रुओं को भस्म कर देते हैं। (२) ये प्रभु **अर्चिषा**=ज्ञानदीप्ति से **जञ्जणाभवन्**=(जजन–Burning) ज्वलित व दीप्त होते हैं। इसी ज्ञान–ज्वाला ही में तो सब शत्रुओं का दहन होता है।

भावार्थ–प्रभु उपासकों में अपनी ज्ञानदीप्ति से चमकते हैं और काम–क्रोध आदि को दग्ध कर देते हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वानस्पतिक भोजन व प्रभुदर्शन

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः॥ ९॥

(१) **अग्ने**=प्रभो! **अप्सु**=सब प्रजाओं में **तव**=तेरी **सधि**=समानरूप से स्थिति है। **सः**=वे आप **ओषधीः अनुरुध्यसे**=ओषधियों का अनुरोध (अपेक्षा) करते हैं, अर्थात् आपके दर्शन के लिए आवश्यक है कि मनुष्य **मांसाहार** की ओर न झुके। (२) **गर्भे सन्**=सब प्राणियों के अन्दर होते हुए आप **पुनः**=फिर **जायसे**=प्रादुर्भूत होते हैं। प्रभु की सत्ता तो सर्वत्र ही है। पवित्र हृदय में प्रभु का प्रकाश दिखता है। पवित्र हृदय के लिए पवित्र भोजन की अवश्यकता है।

भावार्थ–प्रभु का निवास सब में हैं। उनका प्रादुर्भाव व प्रकाश वहीं होता है, जहाँ पवित्र भोजन के परिणामरूप पवित्र हृदयों का निर्माण होता है।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अग्निहोत्र

उद॑ग्ने तव॒ तद् घृ॒ताद॒र्ची रो॑चत॒ आहु॑तम्। निंसा॑नं जु॒ह्वो३॒॑ मुखे॑॥ १० ॥

(१) हे **अग्ने**=यज्ञाग्ने! **तव तद् अर्चिः**=तेरी वह ज्वाला **घृतात्**=घृत के द्वारा **आहुतम्**=समन्तात् आहुत हुई-हुई **उद्रोचते**=ऊपर उठती हुई चमकती है। (२) यह ज्वाला **जुह्वा**=घृत के चम्मच के **मुखे**=अग्रभाग में **निंसानम्**=चुम्बन करती प्रतीत होती है। यज्ञाग्नि की ज्वाला इतनी ऊपर उठती है कि आहुति साधनभूत चम्मच को छूती प्रतीत होती है।

भावार्थः—जिन घरों में अग्निहोत्र में अग्नि की ज्वालाएँ सब ऊपर उठती हैं, वहाँ इस अग्निहोत्र के द्वारा 'सौमनस्य' प्राप्त होकर शान्ति का निवास होता है।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

उक्षान्न+वशान्न (यज्ञाग्नि)

उ॒क्षान्ना॑य व॒शान्ना॑य॒ सोम॑पृष्ठाय वे॒धसे॑। स्तोमै॑र्विधेमा॒ग्नये॑॥ ११ ॥

(१) **वेधसे**=सब इष्ट कामनाओं को पूर्ण करनेवाले (इष्ट कामधुक्) **अग्नये**=यज्ञाग्नि के लिए **स्तोमैः**=स्तुति मन्त्रों के साथ **विधेम**=पूजन करें। अग्नि का पूजन यही है कि इसमें उत्तम ओषधियों व घृत की आहुति दी जाए। ये सब औषध द्रव्य सूक्ष्मरूप में होकर वायुमण्डल को रोगकृमिशून्य करते हैं और श्वासवायु के साथ शरीर में जाकर हमें नीरोग बनाते हैं। (२) उस अग्नि का हम पूजन करते हैं जो **उक्षान्नाय**='उक्षां नामक' ओषधिरूप अन्नवाला है। इसी प्रकार **वशान्नाय**=वश्य अर्थात् पृथिवी से उत्पन्न ओषधियाँ जिसके अन्न हैं और **सोमपृष्ठाय**=कर्पूर जिसका आधार बनता है। कर्पूर द्वारा जो प्रज्ज्वलित की जाती है।

भावार्थः—कर्पूर द्वारा इसे प्रज्ज्वलित करें। इस प्रकार यह अग्निहोत्र हमारी इष्टकामनाओं को पूर्ण करेगा।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'वरेण्यक्रतु' प्रभु

उ॒त त्वा॒ नम॑सा व॒यं होत॒र्वरे॑ण्यक्रतो। अग्ने॑ स॒मिद्भि॑रीमहे॥ १२ ॥

(१) हे **होतः**=सब आवश्यक साधनों के देनेवाले **उत**=और **वरेण्यक्रतो**=वरणीय प्रज्ञानवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **वयं**=हम **त्वा**=आपसे **नमसा**=नमन के द्वारा तथा **समिद्भिः**=ज्ञानदीप्तियों के द्वारा **ईमहे**=प्रार्थना करते हैं। (२) आप ही हमारे लिए वरणीय ज्ञान को प्राप्त कराते हैं। यह ज्ञान ही हमारी सब उन्नतियों का साधन बनता हैं।

भावार्थः—प्रभु 'होता' हैं, 'वरेण्यक्रतु' हैं। हम नमन व ज्ञानदीप्ति द्वारा प्रभु का उपासन करते हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

भृगुवत्, मनुष्वत्, अङ्गिरस्वत्

उ॒त त्वा॑ भृगु॒वच्छु॑चे मनु॒ष्वद॑ग्न आहुत। अ॒ङ्गि॒र॒स्वद्ध॑वामहे॥ १३ ॥

(१) **उत**=और हे **शुचे**=पूर्ण पवित्र व दीप्त, **आहुत**=समन्तात् दानोंवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! हम **त्वा**=आपको **हवामहे**=पुकारते हैं। (२) प्रभु की आराधना हम **भृगुवत्**=भृगु की तरह करते

हैं। तपस्या की अग्नि में अपने को परिपक्व करनेवाला 'भृगु' है। **मनुष्वत्**=मनुज् की तरह हम प्रभु का आराधन करते हैं। विचारशील-अपने ज्ञान को बढ़ानेवाला व्यक्ति 'मनुः' है। **अंगिरस्वत्**=अंगिरा की तरह हम प्रभुपूजन करते हैं। अंगिरा वह व्यक्ति है जो अपने अंग-प्रत्यंग को रसमय बनाता है।

भावार्थ-प्रभु का उपासक तपस्वी (भृगु) विचारशील (मनुष्) व स्वस्थ (अंगिरस्) होता है।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसःङ्क **देवता**—अग्निःङ्क **छन्दः**—ककुम्मती गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

'अग्नि+विप्र+सन्+सखा'

त्वं ह्यग्ने अ॒ग्निना॒ विप्रो॒ विप्रे॑ण॒ सन्त्स॒ता। सखा॒ सख्या॑ समि॒ध्यसे॑॥ १४॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वं**=आप **हि**=निश्चय से **अग्निना**=प्रगतिशील उपासक से **समिध्यसे**=हृदयदेश में समिद्ध किये जाते हैं। **विप्रः**=ज्ञानी आप **विप्रेण**=ज्ञानी उपासक के द्वारा समिद्ध होते हैं। **सन्**=सब उत्तमताओं वाले सत्यस्वरूप आप **सता**=सज्जनता को अपनानेवाले उपासक से समिद्ध किये जाते हैं। **सखा**=सबके मित्रभूत आप **सख्या**=मित्रभाव से चलनेवाले पुरुष के द्वारा उपासित होते हैं। (२) उपास्य के रंग में अपने को रंगता हुआ उपासक ही सभी उपासना कर पाता है। सो हम 'अग्नि' बनकर 'अग्नि' नामक प्रभु का उपासन करें। 'विप्र' बनकर विप्र प्रभु को पूजित करें। 'सत्' बनकर सत्यस्वरूप प्रभु के सेवक हों और मित्रता को अपनाकर सबके मित्र प्रभु को प्रसन्न करें। ब्रह्मचर्याश्रम में 'अग्नि', गृहस्थ में 'विप्र', वानप्रस्थ में 'सत्' व संन्यास में 'सखा' होऊँ।

भावार्थः-प्रभु का उपासक 'अग्नि, विप्र, सत् व सखा' होता है।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसःङ्क **देवता**—अग्निःङ्क **छन्दः**—गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

सहस्त्रिणम् रयिम्

स त्वं विप्रा॑य दा॒शुषे॑ र॒यिं दे॑हि सह॒स्रिण॑म्। अग्ने॑ वी॒रव॑ती॒मिष॑म्॥ १५॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **स त्वं**=वे आप **विप्राय**=विशेषरूप से अपना पूरण करनेवाले **दाशुषे**=दाश्वान्-दानशील व आत्मसमर्पण करनेवाले पुरुष के लिए **सहस्त्रिणं**=सहस्रों की संख्यावाले-बहुत अधिक **रयिं**=ऐश्वर्य को **देहि**=दीजिए। (२) हे अग्ने! आप **वीरवतीम्**=(वीर= प्राण) प्राणोंवाली **इषं**=प्रेरणा को प्राप्त कराइए। प्रेरणा को प्राप्त कराइए और प्रेरणा के साथ उस प्राणशक्ति को भी प्राप्त कराइए जिससे कि उस प्रेरणा को हम कार्यान्वित कर पाएँ।

भावार्थ-हे प्रभो! हम ज्ञानी व आत्मसमर्पण करनेवाले बनें। आप हमारे लिए ऐश्वर्य, प्राणशक्ति व प्रेरणा को प्राप्त कराइए।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसःङ्क **देवता**—अग्निःङ्क **छन्दः**—गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

रोहिदश्व-शुचिव्रत

अग्ने॒ भ्रात॒ः सह॑स्कृत॒ रोहि॑दश्व॒ शुचि॑व्रत। इ॒मं स्तोमं॑ जुषस्व मे॥ १६॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **मे**=मेरे **इमं स्तोमं**=इस स्तोत्र को (स्तवन को) **जुषस्व**=सेवन करिए। यह मेरे से किये जानेवाला स्तोत्र आपके लिए प्रिय हो। (२) **भ्रातः**=हे प्रभो! आप ही कार्यभार का वहन करनेवाले हैं। **सहस्कृत**=आप ही बल को उत्पन्न करनेवाले हैं-आपसे प्राप्त कराई गई शक्ति से ही हम सब कर्तव्यों का पालन कर पाते हैं। **रोहिदश्व**=आप उन्नतिशील

इन्द्रियाश्वोंवाले हैं और **शुचिव्रत**-पवित्र व्रतोंवाले हैं। आप सशक्त इन्द्रियों व पवित्र कर्मों को हमें प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ–हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमारे लिए शक्ति को प्राप्त कराके हमें कर्तव्यभार के वहन के योग्य बनाते हैं। उन्नत इन्द्रियों को प्राप्त कराके प्रभु ही हमें पवित्र व्रतोंवाला करते हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वाश्राय प्रतिहर्यते

उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते। गोष्ठं गावइवाशत॥ १७॥

(१) **उत**=और हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **मम स्तुतः**=मेरे से की जानेवाली स्तुतियाँ **त्वा**=आपको **आशत**-इस प्रकार व्याप्त करनेवाली हों **इव**=जैसे **वाश्राय**-रंभाते हुये **प्रतिहर्यते**=(दुग्धपान की) कामनावाले बछड़े के लिए **गावः**-गौवें **गोष्ठं**-गोशाला का व्यापन करती हैं। (२) गौवें जैसे गोशाला में बछड़े के हित के लिए आती हैं, इसी प्रकार मेरी स्तुतियाँ मेरे ही हित के लिए आपको प्राप्त हों। इन स्तोत्रों के द्वारा प्रेरणाओं को प्राप्त करता हुआ मैं उन्नत जीवनवाला बनूँ। मैं भी **वाश्रः**=स्तुतियों का उच्चारण करनेवाला बनूँ, तथा **प्रतिहर्यन्**=आपकी प्राप्ति की प्रबल कामनावाला होऊँ।

भावार्थः–प्रभु प्राप्ति की प्रबल कामनावाले हम प्रभु का स्तवन करें। ये स्तवन हमें उत्कृष्ट प्रेरणा को प्राप्त कराके हमारा हित सिद्ध करे।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

इन्द्रिय निरोध

तुभ्यं ता अंङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक्। अग्ने कामाय येमिरे॥ १८॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **अंगिरस्तम**-हमारे अंग-प्रत्यंग में रस का सञ्चार करनेवाले प्रभो! **ताः विश्वाः**=वे सब **सुक्षितयः**-उत्तम निवास व गतिवाली–स्वस्थशरीर में स्वस्थ गतिवाली–प्रजाएँ **कामाय तुभ्यं**=कामना करने योग्य (कान्त) आपकी प्राप्ति के लिए पृथक्-पृथक् विषयों से पृथक् करके **येमिरे**=इन्द्रियों का नियमन करती हैं। (२) इन्द्रिय निरोध ही प्रभुप्राप्ति का मार्ग है, प्रभु प्रासि के मार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति स्वस्थ बनता है व स्वस्थ गतिवाला होता है।

भावार्थ–हम स्वस्थ गतिवाले बनकर प्रभुप्राप्ति के लिए इन्द्रियों का निरोध करनेवाले बनें।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अद्मसद्याय (घर में रहने के लिए)

अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः। अद्मसद्याय हिन्विरे॥ १९॥

(१) **मनीषिणः**-मन का शासन करनेवाले, **मेधिरासः**-बुद्धिमान्, **विपश्चितः**-ज्ञानी पुरुष **धीभिः**-ज्ञानपूर्वक कर्मों को करने के द्वारा **अग्निं**=उस अग्रणी प्रभु को **अद्मसद्याय**=शरीररूप गृह में **सद्**-बैठना निवास के लिए **हिन्विरे**=प्रीणित करते हैं–प्रसन्न करते हैं, मनाते हैं। (२) जब मनीषी, मेधिर, विपश्चित, पुरुष ज्ञानपूर्वक कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, तो प्रभु को शरीररूप गृह में निवास के लिए प्रेरित कर लेते हैं। इन मनीषियों के शरीरों में प्रभु का वास होता है।

भावार्थः–हम मन को वश में करें, बुद्धिमान् बनें तथा विपश्चित् (ज्ञानी) हों। ऐसा बनकर ज्ञानपूर्वक कर्मों में प्रवृत्त हों। तब प्रभु का हमारे हृदय में दर्शन होगा।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'वाजी-वह्नि' अग्नि

तं त्वामज्मेषु वाजिनं तन्वाना अग्ने अध्वरम्। वह्निं होतारमळते॥ २०॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **तं वह्निं**=उन सब कार्यों के वहन करनेवाले **होतारं**=सब कुछ देनेवाले **वाजिनं**=शक्तिशाली **त्वाम्**=आपको **अज्मेषु**=गृहों में **अध्वरं तन्वानाः**=यज्ञों का विस्तार करनेवाले लोग **ईडते**=उपासित करते हैं। (२) प्रभु की उपासना यज्ञों से होती है। उपासित प्रभु ही हमारे यज्ञ आदि कार्यों का वहन करते हैं, वे ही हमारे लिए सब आवश्यक साधनों को प्राप्त कराते हैं तथा शक्ति सम्पन्न करते हैं।

भावार्थः—हम घरों में यज्ञों का विस्तार करें। यही प्रभु की उपासना का प्रकार है। प्रभु ही हमें सब साधनों व शक्ति को प्राप्त कराके इन यज्ञों को पूर्ण करते हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

विशो विश्वा अनु प्रभुः

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो अनु प्रभुः। समत्सु त्वा हवामहे॥ २१॥

(१) हे प्रभो! आप **पुरुत्रा**=सर्वत्र **हि**=ही **सदृङ् असि**=समान रूप से हैं। **विश्वाः**=सब **विशः अनु**—प्रजाओं के अनुकूलता से **प्रभुः**=स्वामी है, अर्थात् सबका समान रूप से कल्याण करनेवाले प्रभु हैं। (२) हम **समत्सु**=संग्रामों में व (स मद्) हर्षावसरों में **त्वा हवामहे**=आपको ही पुकारते हैं। आपके द्वारा ही तो इन संग्रामों में विजय व हर्षावसरों में संयम को पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु सर्वत्र समान रूप से हैं। सब के अनुकूल स्वामी हैं। प्रभु ही हमें संग्रामों में विजयी करते हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अग्निः विभ्राजते घृतैः

तमीळिष्व य आहुतोऽग्निर्विभ्राजते घृतैः। इमं नः शृणवद्धवम्॥ २२॥

(१) **तम्**=उस प्रभु को **ईडिष्व**=स्तुत कर **यः**=जो **आहुतः**=समन्तात् दानोंवाला **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **घृतैः**=ज्ञानदीप्तियों व मल के क्षरण से (घृ क्षरणदीप्त्योः) हृदय की निर्मलता से **विभ्राजते**=चमक उठते हैं। हम ज्ञान को बढ़ाएँ मानसमलों को दूर करें तो अवश्य प्रभु के प्रकाश को देखेंगे। (२) वे प्रभु **नः**=हमारी **इमं हवं**=इस पुकार को **शृणवत्**=सुनें। प्रभु उसी पुरुष की पुकार को सुनते हैं जो अपने जीवन में घृत-ज्ञानदीप्ति व मलक्षरण (नैर्मल्य) को धारण करता है।

भावार्थ—प्रभु के दान चारों ओर विद्यमान हैं। इन प्रभु को हम ज्ञानदीप्ति व निर्मलता के द्वारा देख पाते हैं। ऐसा करने पर ही प्रभु हमारी पुकार को सुनते हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

द्वेष का अप-हनन

तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम्। अग्ने घ्नन्तमप द्विषः॥ २३॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **तं**=उन **शृण्वन्तं**=हमारी प्रार्थना को सुनते हुए **जातवेदसम्**=सर्वज्ञ **त्वा**=आपको **वयं**=हम **हवामहे**=पुकारते हैं। (२) उन आपको पुकारते हैं, जो **द्विषः**=सब द्वेष की भावनाओं को **अपघ्नन्तम्**=हमारे से सुदूर विनष्ट कर रहे हैं।

भावार्थः–प्रभु के आराधन से हमारी सब द्वेष की प्रवृत्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं।

ऋषिः — विरूप आङ्गिरसः **देवता** — अग्निः **छन्दः** — गायत्री **स्वरः** — षड्जः

धर्मणाम् अध्यक्षम्

विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम्। अग्निमीळे स उ श्रवत्॥ २४॥

(१) **इमम् अग्निम्**=इस अग्रणी प्रभु को **ईडे**=मैं स्तुत करता हूँ। **सः उ**-वे ही **श्रवत्**-मेरी प्रार्थना को सुनते हैं। (२) उस प्रभु का मैं ईडन करता हूँ जो **विशां राजानम्**=सब प्रजाओं के राजा (शासक) हैं। **अद्भुतम्**=अनुपम हैं। **धर्मणाम्**=सब धर्म कार्यों के अथवा धारणात्मक कर्मों के **अध्यक्षम्**-अध्यक्ष हैं। सब धर्मकार्य प्रभु की अध्यक्षता में ही सम्पन्न होते हैं।

भावार्थ–हम प्रभु का उपासन करें। प्रभु ही सबके शासक, अनुपम व सब धर्म-कर्मों के अध्यक्ष हैं।

ऋषिः — विरूप आङ्गिरसः **देवता** — अग्निः **छन्दः** — गायत्री **स्वरः** — षड्जः

सप्तिं न

अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम्। सप्तिं न वाजयामसि॥ २५॥

(१) **अग्निं**=उस परमात्मा को हम **वाजयामसि**=निवेदन करते हैं व प्रार्थना करते हैं, जो **सप्तिं न**-हमारे लिए एक अश्व के समान हैं। घोड़ा हमें लक्ष्यस्थान पर पहुँचाता है–प्रभु को अपना आधार बनाकर भी हम लक्ष्यस्थान पर पहुँचते हैं। (२) उस प्रभु को हम आराधित करते हैं, जो **विश्वायुवेपसं** (विश्व आयु वेप्)-सब आक्रमण करनेवालों को कम्पित करनेवाले हैं ('एति' इति आयुः) काम-क्रोध आदि को हमारे से दूर करनेवाले हैं। **मर्यं न**=मनुष्यों के लिए हितकर के समान हैं। **वाजिनं**-शक्तिशाली हैं और **हितम्**=हितकर हैं अथवा सबके अन्दर स्थापित हैं।

भावार्थः–प्रभु हमारे सब शत्रुओं को कम्पित करनेवाले–मनुष्यमात्र के लिए हितकर व शक्तिशाली हैं। प्रभु को अपना आधार बनाकर के ही हम लक्ष्यस्थान पर पहुँचते हैं।

ऋषिः — विरूप आङ्गिरसः **देवता** — अग्निः **छन्दः** — निचृद् गायत्री **स्वरः** — षड्जः

'मृध्र, द्विष, राक्षस्' विनाश

घ्नन्मृध्राण्यप द्विषो दहन्रक्षांसि विश्वहा। अग्ने तिग्मेन दीदिहि॥ २६॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **मृध्राणि**–हमारा हिंसन करनेवाले दास्यव भावों को **घ्नन्**=नष्ट करते हुए **द्विषः**–द्वेष की भावनाओं को **अप**=हमारे से दूर करते हुए तथा **विश्वहा**=सदा **रक्षांसि दहन्**=राक्षसी भावों को दग्ध करते हुए **तिग्मेन**=अपनी तीव्र ज्ञानज्योति से **दीदिहि**=हमारे में दीप्त होइए। (२) प्रभु की उपासना से सब हिंसक वासनाएँ विनष्ट हो जाती है–द्वेष दूर हो जाते हैं, राक्षसी भाव दग्ध हो जाते हैं। ऐसा होने पर प्रभु का प्रकाश हमारे में चमक उठता है।

भावार्थः–हिंसक शत्रुओं द्वेषों व राक्षसीभावों से ऊपर उठने के लिए आवश्यक है कि हम प्रभु की उपासना करें।

ऋषिः — विरूप आङ्गिरसः **देवता** — अग्निः **छन्दः** — गायत्री **स्वरः** — षड्जः

मनुष्वत्

यं त्वा जनास इन्धते मनुष्वदङ्गिरस्तम। अग्ने स बोधि मे वचः॥ २७॥

(१) हे **अंगिरस्तम**=हमें अंग-प्रत्यंग में अधिक-से-अधिक रसमय बनानेवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **सः**=वे आप **मे वचः**=मेरे प्रार्थनावचन को **बोधि**=जानिए। मेरी पुकार को आप सुनिए। (२) वे आप मेरी पुकार को सुनिए **यः**=जिन **त्वा**=आपको **जनासः**=लोग **मनुष्वत्**=विचारशील पुरुष की तरह **इन्धते**=अपने अन्दर दीप्त करते हैं। जितना-जितना हम विचारशील बनते हैं, उतना-उतना प्रभु को अपने में दीप्त कर पाते हैं।

भावार्थः-हम विचारशील बनकर प्रभु को अपने में देखने का प्रयत्न करें। प्रभु ही हमारी प्रार्थना को सुनते हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

दिविजाः, अप्सुजाः

यदग्ने दिविजा अस्यप्सुजा वा सहस्कृत। तं त्वा गीर्भिर्हवामहे॥ २८॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **यद्**=जो आप **दिविजाः असि**=ज्ञानज्योति के होने पर प्रादुर्भूत होनेवाले हैं। **वा**=अथवा **अप्सुजाः**=रेतःकणरूप जलों में प्रादुर्भूत होनेवाले हैं। प्रभु का प्रकाश उसी को दिखता है, जो ज्ञानज्योति को अपने अन्दर दीप्त करता है, तथा रेतःकणों का रक्षण करता हुआ ज्ञानाग्नि को समिद्ध करता है। (२) हे **सहस्कृत**=बल का हमारे में सम्पादन करनेवाले प्रभो! **तं त्वा**=उन आपको हम **गीर्भिः**=स्तुतिवाणियों से **हवामहे**=पुकारते हैं।

भावार्थ-प्रभु का दर्शन ज्ञानी व सोमरक्षक संयमी पुरुष को होता है।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अत्तवे धासिं हिन्वन्ति

तुभ्यं घेत्ते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक्। धासिं हिन्वन्त्यत्तवे॥ २९॥

(१) **इमे**=ये **ते**=वे **विश्वाः**=सब **सुक्षितयः**=उत्तम निवास व गतिवाले **जनाः**=मनुष्य **घा इत्**=निश्चय से **तुभ्यं**=आपकी प्राप्ति के लिए ही **अत्तवे**=खाने के लिए **पृथक्**=अलग-अलग **धासिं**=धारणात्मक भोजन को **हिन्वन्ति**=प्रेरित करते हैं। (२) प्रभु प्राप्ति के लिए शरीर को स्वस्थ रखना भी आवश्यक है। शरीर के स्वास्थ्य के लिए धारणात्मक भोजन का ही करना ठीक है। यह भोजन शरीरों की प्रकृति के पार्थक्य के कारण पृथक्-पृथक् ही होगा। यह ठीक है कि भोजन का भी उद्देश्य शरीर के स्वास्थ्य के द्वारा प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर बढ़ना ही होना चाहिए।

भावार्थ-उत्तम निवासवाले लोग भोजन को भी प्रभु प्राप्ति के उद्देश्य से शरीर को स्वस्थ रखने के लिए करते हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

नृचक्षसः-स्वाध्यः

ते घेदग्ने स्वाध्योऽहा विश्वा नृचक्षसः। तरन्तः स्याम दुर्गहा॥ ३०॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **घा इत्**=निश्चय से **ते**=आपका **स्वाध्यः**=उत्तम आध्यान करनेवाले, **विश्वा अहा**=सब दिनों अर्थात् सदा **नृचक्षसः**=सब मनुष्यों को देखनेवाले-उनका ध्यान करनेवाले-उनके हित के लिए कर्मों को करनेवाले हम **दुर् गहा**=कठिनता से पार करने योग्य शत्रु को **तरन्तः स्याम**=तैर जानेवाले हों। (२) काम-क्रोध आदि प्रबल भयंकर शत्रुओं को जीतने का यही मार्ग है कि हम प्रभु का ध्यान करें और सर्वहितकर कर्मों में लगे रहें।

भावार्थ–दु–र्गह शत्रुओं को भी ध्यान करनेवाले तथा लोकहित के कर्मों में लगे रहनेवाले लोग तैर जाते हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'मन्द्र, पुरुप्रिय, शीर, पावकशोचिष्' अग्नि

अ॒ग्निं म॒न्द्रं पु॑रुप्रि॒यं शी॒रं पा॑व॒कशो॑चिषम्। हृ॒द्भिर्म॒न्द्रेभि॑रीमहे॥ ३१॥

(१) सबसे ऊँचा तप 'मनः प्रसाद' है। सो करते हैं कि **मन्द्रेभिः**=सदा आनन्द में रहनेवाले **हृद्भिः**=हृदयों से हम **अग्निं**=अग्रणी प्रभु की **ईमहे**=(याचामहे) प्रार्थना करते हैं। (२) उस प्रभु का आराधन करते हैं जो **मन्द्रं**=सदा आनन्दमय हैं। **पुरुप्रियं**=पालक व पूरक व प्रीणित करनेवाले हैं। **शीरं**=सब बुराइयों का संहार करनेवाले हैं। **पावकशोचिषम्**=पवित्र दीप्तिवाले हैं। इनका आराधन करते हुए हम भी ऐसा ही बनते हैं।

भावार्थ–हम प्रसादयुक्त हृदय से उस आनन्दमय बुराइयों को समाप्त करनेवाले–पवित्र दीप्ति वाले प्रभु का उपासन करते हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

शर्धन् तमांसि जिघ्नसे

स त्वम॑ग्ने वि॒भाव॑सुः सृ॒जन्त्सूर्यो॒ न र॒श्मिभिः॑। शर्ध॒न्तमां॑सि जिघ्नसे॥ ३२॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **सः त्वं**–वे आप **विभावसुः**=ज्योतिरूप धनवाले हैं। **सृजन् सूर्यः**=उदय होता हुआ सूर्य **न**=जैसे **रश्मिभिः**=किरणों से अन्धकार का नाश करता है। उसी प्रकार आप **शर्धन्**=बल को करते हुए–शत्रुनाशक शक्ति को उत्पन्न करते हुए **तमांसि**=सब अज्ञानान्धकारों को **जिघ्नसे**=नष्ट करते हैं। (२) प्रभु सूर्य हैं। सूर्य का उदय हुआ और अन्धकार गया। इसी प्रकार प्रभु का प्रकाश होते ही सब वासनान्धकार विलीन हो जाते हैं।

भावार्थ–प्रभु विभावसु हैं। प्रभु के उदय होते ही वासना व अविद्या के अन्धकार का विनाश हो जाता है।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'दात्रं वार्यं वसु'

तत्ते॑ सहस्व ईमहे दा॒त्रं यन्नोप॒दस्य॑ति। त्वद॑ग्ने॒ वार्यं॒ वसु॑॥ ३३॥

(१) हे **सहस्वः**=बलवान् **अग्ने**=प्रकाशमय प्रभो! हम **ते**=आपके **तत्**=उस **दात्रं**=दातव्य धन को **ईमहे**=माँगते हैं **यत्**=जो **न उपदस्यति**=कभी क्षीण नहीं होता अथवा हमारी क्षीणता का वह धन कारण नहीं बनता। (२) हे अग्ने! **त्वत्**–आपसे हमें **वार्यं वसु**–वरणीय धन ही प्राप्त होता है।

भावार्थ–प्रभु के उपासन से हम वरणीय, दान देने योग्य धन को प्राप्त करते हैं।

अगले सूक्त के ऋषि भी 'विरूप आङ्गिरस' ही हैं–

४४. [चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'समिधा, घृत, हव्य' से प्रभुपूजन

स॒मिधा॒ग्निं दु॑वस्यत घृ॒तैर्बो॑धय॒ताति॑थिम्। आस्मि॑न्ह॒व्या जु॑होतन॥ १॥

(१) **समिधा**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा **अग्निं**=उस प्रकाशमय प्रभु का **दुवस्यत**=पूजन करो। **घृतैः**=मलों के क्षरण व ज्ञानदीप्तियों से **अतिथिम्**=निरन्तर गतिशील उस प्रभु को **बोधयत**=अपने में जगाओ। (२) **अस्मिन्**=इस प्रभु की प्राप्ति के निमित्त **हव्या आजुहोतन**=हव्य पदार्थों को ही अपने में ही आहुत करो, अर्थात् पवित्र यज्ञिय पदार्थों का ही सेवन करो।

भावार्थ–प्रभु प्राप्ति के लिए तीन उपाय हैं–(१) अपने अन्दर ज्ञानदीप्ति का वर्धन करना, (२) मानसमलों को अपने से दूर करना (इन मलों का क्षरण), (३) हव्य पदार्थों को सेवन करना।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'स्तोम-मन्म—सूक्त'

अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना। प्रति सूक्तानि हर्य नः॥ २॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **मे**=मेरे से किये जानेवाले **स्तोमं**=स्तुतिसमूह को **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक सेवन करिये। मेरे से किये जानेवाले ये स्तुतिसमूह मुझे आपका प्रिय बनाएँ। **अनेन**=इस **मन्मना**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तोम से **वर्धस्व**=आप मेरे अन्दर बढ़िये। आपके लिए उच्चरित ये 'मन्म' मेरे में आपके भावों को बढ़ानेवाले हों। ये मन्म दिव्यता के वर्धन का कारण बनें। (२) **नः**=हमारे **सूक्तानि**=सूक्तों को–उत्तम गुण प्रतिपादक वचनों को **प्रतिहर्य**=आप प्रतिदिन चाहें–आपके लिए ये सूक्त इष्ट हों।

भावार्थ–हम 'साम' द्वारा प्रभु के स्तोमों का उच्चारण करें। यजुर्मन्त्रों द्वारा प्रभु के मन्मों को करनेवाले बनें और ऋचाओं द्वारा सूक्तों का उच्चारण करें।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'दूत-हव्यवाट्' प्रभु

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे। देवाँ आ सादयादिह॥ ३॥

(१) मैं **अग्निं**=उस अग्रणी प्रभु को **दूतं**=ज्ञानसन्देश को प्राप्त करानेवाले के रूप में **पुरः दधे**=सदा सामने स्थापित करता हूँ–प्रभु को कभी विस्मृत नहीं करता। **हव्यवाहम्**=सब पदार्थों को प्राप्त करानेवाले प्रभु से मैं **उपब्रुवे**=प्रार्थना करता हूँ–सब हव्यों को प्राप्त कराने के लिए प्रभु को पुकारता हूँ। (२) ये प्रभु कृपा करके **इह**=इस जीवन में **देवान्**=सब दिव्य गुणों को **आसादयात्**=बिठाएँ–स्थापित करें।

भावार्थः–प्रभु ज्ञानसन्देश को प्राप्त करानेवाले हैं, प्रभु ही सब हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। प्रभु के अनुग्रह से ही हमारा जीवन दिव्यगुणसम्पन्न बनता है।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'बृहन्तः शुक्रासः' अर्चयः

उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः। अग्ने शुक्रास ईरते॥ ४॥

(१) हे **दीदिवः**=प्रकाशमय प्रभो! **समिधानस्य**=हृदय देश में समिद्ध किये जाते हुए **ते**=आपके **बृहन्तः**=वृद्धि की कारणभूत **अर्चयः**=ज्ञानज्वालाएँ **उद् ईरते**=उद्गत होती है। हृदय में प्रभु का ध्यान करने पर हृदय ज्ञानज्वालाओं से उज्ज्वल हो उठता है। (२) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आपके उपासन से **शुक्रासः**=चमकती हुई ज्ञानदीप्तियाँ उद्गत होती हैं।

भावार्थ–हृदय में प्रभु का ध्यान हृदय को ज्ञानदीप्तियों से उज्ज्वल कर देता है।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

स्तवन व हव्य पदार्थों का सेवन

उप॑ त्वा जु॒ह्वो॒३॑ मम॑ घृ॒ताची॑र्यन्तु हर्यत। अग्ने॑ ह॒व्या जु॑षस्व नः॥ ५॥

(१) हे **हर्यत**=कमनीय प्रभो! **मम**=मेरी **घृताचीः**=ज्ञानदीप्ति को प्राप्त होनेवाली **जुह्वः**=वाणियाँ **त्वा उपयन्तु**=आपको समीपता से प्राप्त हों। (२) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **नः**=हमारे लिए **हव्या**=हव्य पदार्थों को **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक सेवन कराइए। हम हव्य पदार्थों का ही सेवन करें।

भावार्थ—हम प्रभु का ज्ञानदीप्तवाणियों द्वारा स्तवन करें और हव्य पदार्थों का ही सेवन करें।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'मन्द्र-विभावसु' प्रभु

म॒न्द्रं होता॑रमृ॒त्विजं॑ चि॒त्रभा॑नुं वि॒भाव॑सुम्। अ॒ग्निमी॑ळे॒ स उ॑ श्रवत्॥ ६॥

(१) मैं **अग्निं**=उन अग्रणी प्रभु को **ईडे**=उपासित करता हूँ। **सः उ**=वे ही **श्रवत्**=मेरी प्रार्थना को सुनते हैं। (२) वे प्रभु **मन्द्रं**=आनन्दमय हैं। **होतारम्**=सब कुछ देनेवाले हैं। **ऋत्विजम्**=हमारे जीवन यज्ञों के ऋत्विक् हैं। **चित्रभानुं**=अद्भुत दीप्तिवाले हैं। **विभावसुम्**=ज्ञानदीप्तिरूप धनवाले हैं।

भावार्थः—प्रभु का आराधन हमें 'आनन्द व ज्ञानधन' को प्राप्त कराता है। हमारी सब प्रार्थनाएँ प्रभुद्वारा सुनी जाती हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अध्वराणामभिश्रियम्

प्र॒त्नं होता॑रमीड्यं॒ जुष्ट॑म॒ग्निं क॒विक्र॑तुम्। अ॒ध्व॒राणा॑मभि॒श्रिय॑म्॥ ७॥

(१) मैं उस प्रभु का स्तवन करता हूँ जो **प्रत्नं**=सनातन हैं—सदा से हैं, पुराण पुरुष हैं। **होतारं**=सब कुछ देनेवाले हैं। **ईड्यं**=स्तुति के योग्य हैं। **जुष्टं**=प्रीतिपूर्वक सेवित होते हैं। **अग्निम्**=अग्रणी हैं। **कविक्रतुम्** (कविश्चासौ क्रतुञ्च)=क्रान्तदर्शी व शक्ति के पुञ्ज हैं। (२) उस प्रभु का मैं स्तवन करता हूँ जो **अध्वराणाम् अभिश्रियम्**=हिंसारहित यज्ञात्मक कर्मों के अन्दर निवास करनेवाले हैं। जहाँ यज्ञ हैं, वहीं प्रभु का वास है।

भावार्थ—हम उस पुराण पुरुष का उपासन करें। वे प्रभु ही सब कुछ देनेवाले, स्तुत्य, सेवनीय, अग्रणी, क्रान्तदर्शी व शक्तिपुञ्ज हैं। प्रभु का निवास वहीं होता है, जहाँ यज्ञों का उपक्रम हो।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

निरन्तर हव्य पदार्थों का सेवन

जु॒षा॒णो अ॑ङ्गिरस्तमे॒मा ह॒व्यान्या॑नु॒षक्। अग्ने॑ य॒ज्ञं न॑य ऋतु॒था॥ ८॥

हे **अंगिरस्तम**=प्राणों के प्राण **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **इमा**=इन **हव्यानि**=हव्य पदार्थों का पवित्र सात्त्विक पदार्थों का **आनुषक्**=निरन्तर **जुषाणः**=सेवन कराते हुए आप **ऋतुथा**=ऋतु के अनुसार **यज्ञं नय**=हमारे जीवनयज्ञ को आगे और आगे ले-चलनेवाले होइए।

भावार्थ—प्रभु की प्रेरणा से हम सदा सात्त्विक पदार्थों का सेवन करनेवाले बनें। यह सात्त्विक पदार्थों को सेवन ही हमारे जीवनयज्ञ की पूत का साधन होगा।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'संभजनीय व उज्ज्वल ज्ञानदीप्तिवाले' प्रभु

समिधान उ सन्त्य शुक्रशोच इहा वह। चिकित्वान्दैव्यं जनम्॥ ९॥

(१) हे **सन्त्य**=संभजनीय, **शुक्रशोचे**=देदीप्यमान ज्ञानदीप्तिवाले प्रभो! **समिधानः उ**=हृदयदेश में समिध्यमान होते हुए ही **चिकित्वान्**=ज्ञानी आप **इह**=इस जीवनयज्ञ में **दैव्यं जनं**=देव की ओर जा रहे मनुष्य को (प्रभु के उपासक को) **आवह**=प्राप्त कराइए। (२) प्रभु की कृपा से हमारा सम्पर्क दिव्य प्रवृत्तिवाले लोगों से हो। इनके सम्पर्क में हम प्रभु के संभजनवाले, उज्ज्वल ज्ञानदीप्तिवाले बनेंगे और इस प्रकार यह जीवनयज्ञ बड़ी सुन्दरता से पूर्ण होगा।

भावार्थः—सत्संग से हम प्रभु के उपासक व उज्ज्वल ज्ञानदीप्तिवाले बनें। इस प्रकार इस जीवनयज्ञ को पवित्रता से पूर्ण करें।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'विप्र-विभावसु' प्रभु

विप्रं होतारमद्रुहं धूमकेतुं विभावसुम्। यज्ञानां केतुमीमहे॥ १०॥

(१) **यज्ञानां**=सब यज्ञों के **केतुं**=प्रकाशक (प्रज्ञापक) प्रभु से **ईमहे**=याचना करते हैं। उस प्रभु से याचना करते हैं, जो **विप्रं**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाले हैं। (२) वे प्रभु **होतारं**=सब कुछ देनेवाले हैं। **अद्रुहं**=द्रोहशून्य हैं। **धूमकेतुं**=वासनाओं को प्रकम्पित करनेवाले ज्ञान को देनेवाले हैं। **विभावसुम्**=ज्योतिरूप धनवाले हैं।

भावार्थ—यज्ञों के प्रकाशक प्रभु से हम यही याचना करते हैं, वे हमें शक्ति दें कि हम अपना पूरण करते हुए दानशील, द्रोहशून्य व ज्ञान द्वारा वासनाओं को कम्पित करनेवाले ज्ञानमय बन पाएँ।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रभु की उपासना व निर्द्वेषता

अग्ने नि पाहि नस्त्वं प्रति ष्म देव रीषतः। भिन्धि द्वेषः सहस्कृतः॥ ११॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वं**=आप **नः**=हमें **प्रतिरीषतः**=प्रत्येक हिंसक शत्रु से—काम, क्रोध, लोभ आदि अन्तःशत्रुओं से **निपाहि स्म**=निश्चय से रक्षित करिये। (२) हे **सहस्कृतः**=बल का सम्पादन करनेवाले प्रभो! आप **द्वेषः भिन्धि**=सब द्वेष की भावनाओं का विदारण करिये। आपकी प्रेरणा से हमारा जीवन निर्द्वेष बने।

भावार्थ—प्रभु हमें हिंसक काम-क्रोध आदि शत्रुओं से बचाएँ। हमें द्वेष से दूर करें।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रभु आत्मा हों, हम प्रभु के शरीर

अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं१ स्वाम्। कविर्विप्रेण वावृधे॥ १२॥

(१) **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु **प्रत्नेन मन्मना**=सनातन वेदरूप ज्ञानज्योति से **स्वाम् तन्वम्**=अपने शरीरभूत इस जीव को **शुम्भानः**=शोभित करते हैं। हमारे अन्दर प्रभु का वास है। सो हम प्रभु के शरीररूप हैं। प्रभु इस शरीर को सनातन ज्ञानज्योति से सुशोभित करते हैं। जो भी प्रभु का शरीर बनेगा, वह ज्ञानज्योति से दीप्त जीवनवाला बनेगा। (२) ये **कविः**=क्रान्तदर्शी-सर्वज्ञ प्रभु **विप्रेण**=ज्ञानी पुरुष से **वावृधे**=स्तुतियों के द्वारा बढ़ाए जाते हैं। प्रभु का स्तवन करता हुआ यह ज्ञानी अपने अन्दर

प्रभु की दिव्यता को धारण करता है। यही प्रभु का वर्धन है।

भावार्थ–हम अपने अन्दर प्रभु को बिठावें। प्रभु हमें ज्ञानदीप्त बनाएँगे। इस प्रकार हमें दिव्यता प्राप्त होगी।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ऊर्जोनपातम्-पावकशोचिषम्

ऊर्जो नपा॑तमा हु॑वे॒ऽग्निं पा॑व॒कशो॑चिषम्। अ॒स्मिन्य॒ज्ञे स्व॑ध्व॒रे॥ १३ ॥

(१) मैं **अस्मिन्**-इस **स्वध्वरे**-उत्तम हिंसारहित कर्मोंवाले **यज्ञे**=जीवनयज्ञ में **अग्निं**=उस अग्रणी प्रभु को **आहुवे**=पुकारता हूँ–प्रभु से याचना करता हूँ। (२) वे प्रभु **ऊर्जो नपातं**=हमारी शक्ति को विनष्ट नहीं होने देते। **पावकशोचिषम्**=प्रभु पवित्र ज्ञानदीप्तिवाले हैं।

भावार्थ–प्रभु का स्मरण हमें शक्तिसम्पन्न व पवित्र ज्ञानदीप्तिवाला बनाएगा।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'मित्रमहाः' अग्नि

स नो॑ मित्रमहु॒स्त्वम॑ग्ने शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॑। दे॒वैरा स॑त्सि ब॒र्हिषि॑॥ १४ ॥

हे **मित्रमहः**=प्रमीति (मृत्यु) से बचानेवाले तेजवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **सः त्वम्**=वे आप **शुक्रेण शोचिषा**=बड़ी उज्ज्वल ज्ञानदीप्ति के साथ तथा **देवैः**=दिव्य गुणों के साथ **नः**-हमारे **बर्हिषि**=हृदयान्तरिक्ष में **आसत्सि**=आसीत होइए।

भावार्थः–प्रभु की कृपा से हमें ज्ञान व दिव्य गुण प्राप्त हों। प्रभु का तेज हमें मृत्यु से बचानेवाला हो।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

तस्मा इद् दीदयद् वसु

यो अ॒ग्निं त॒न्वो॒३ दमे॑ दे॒वं मर्तः॑ सप॒र्यति॑। तस्मा॒ इद्दी॑दय॒द्वसु॥ १५ ॥

यः=जो **मर्तः**=मनुष्य **देवं अग्निं**-उस प्रकाशमय अग्रणी प्रभु को **तन्वः दमे**=इस शरीर के घर में, अर्थात् शरीररूप गृह में **सपर्यति**=पूजता है, **तस्मा**=उसके लिए **इत्**=निश्चय से वे प्रभु **वसु**=निवास के लिए आवश्यक धनों को दीदयत्=देते हैं।

भावार्थः–प्रभु उपासक के लिए आवश्यक धनों को प्राप्त कराते ही हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अग्नि=प्रगतिशील जीव

अ॒ग्निर्मू॒र्धा दि॒वः क॒कुत्पतिः॑ पृथि॒व्या अ॒यम्। अ॒पां रेतां॑सि जिन्वति॥ १६ ॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार जो अपने शरीरगृह में प्रभु का उपासन करता है वह **अग्निः**-अपने को आगे और आगे प्राप्त कराता है। आगे बढ़ता हुआ यह **मूर्धा**=शिखर पर पहुँचता है। **दिवः ककुत्**=यह ज्ञान के शिखर पर होता है–ज्ञानियों में श्रेष्ठ बनता है। **अयं**=यह **पृथिव्याः पतिः**=इस शरीररूप पृथिवी का स्वामी होता है। (२) यह सब कुछ इसलिए कर पाता है क्योंकि यह **अपां**=जलों के साथ सम्बद्ध **रेतांसि**–शरीरस्थ रेतःकणों को (आपः रेतो भूत्वा) **जिन्वति**=शरीर में ही प्रेरित करता है। प्राणायाम आदि साधनों के द्वारा यह इन रेतःकणों की ऊर्ध्वगतिवाला होता है।

भावार्थ–हम प्रभु के उपासन से (क) आगे बढ़ते हुए शिखर पर पहुँचे (ख) ज्ञान के शिखर पर हों (ग) शरीर के रक्षक हों (घ) रेतःकणों को शरीर में ही ऊपर प्रेरित करनेवाले बनें।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ज्ञानज्वाला+तेजस्विता

उद॑ग्ने शुच॑यस्तव॑ शुक्रा भ्राज॑न्त ईरते। तव॒ ज्योतीं॑ष्य॒र्चय॑ः॥ १७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **तव**=आपकी **शुचयः**=पवित्र **शुक्राः**=दीप्त **अर्चयः**=ज्ञान-ज्वालाएँ **भ्राजन्तः**=चमकती हुईं तब **ज्यतेती षि**=तेरी ज्योतियों को–तेजस्विताओं को **उदीरते**=उद्गत करती हैं। (२) जब हम प्रभु की उपासना करते हैं, तो हमारे जीवनों में प्रभु की ज्ञानज्योतियाँ व तेजस्विताएँ चमक उठती हैं।

भावार्थ–उपासक के जीवन में प्रभु की पवित्र ज्ञानज्वालाएँ व तेजस्विता में चमक आती हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु की शरण में

ईशि॑षे॒ वार्य॑स्य॒ हि दा॒त्रस्या॑ग्ने॒ स्व॑र्पतिः। स्तो॒ता स्यां॒ तव॒ शर्म॑णि॥ १८॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **हि**=निश्चय से **वार्यस्य**=वरणीय **दात्रस्य**=दातव्य धन के **ईशिषे**=ईश हैं। आप ही सबके लिए वरणीय धनों को प्राप्त कराते हैं। हे अग्ने! आप **स्वः पतिः**=प्रकाश के स्वामी हैं–प्रकाश के द्वारा सुख के रक्षक हैं। (२) **स्तोता**=आपका स्तवन करनेवाला मैं **तव शर्मणि**=आपकी शरण में **स्याम्**=सदा होऊँ। आपकी छत्र-छाया मुझे सदा प्राप्त हो।

भावार्थ–प्रभु ही वरणीय धनों को देते हैं। प्रभु ही प्रकाश व सुख के रक्षक हैं। स्तोता को सदा प्रभु की शरण प्राप्त होती है।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

चित्तिभिः

त्वाम॑ग्ने मनी॒षिण॒स्त्वां हि॑न्व॒न्ति चित्ति॑भिः। त्वां व॑र्धन्तु नो॒ गिर॑ः॥ १९॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **मनीषिणः**=मन को वश में करनेवाले समझदार उपासक **त्वां**-आपको, और **त्वां**=आपको ही **चित्तिभिः**=भक्ति के द्वारा **हिन्वन्ति**=प्रीणित करते हैं। (२) हे प्रभो! **नः**=हमारी **गिराः**=ये स्तुतिवाणियाँ **वर्धन्तु**=आपका वर्धन करें। इन स्तुतिवाणियों के द्वारा हम आपके गुणों का सर्वत्र प्रख्यापन करें।

भावार्थ–समझदार मनुष्य भक्ति द्वारा प्रभु को प्रीणित करते हैं। स्तुतिवाणियों द्वारा प्रभु की महिमा का ही सर्वत्र वर्धन करते हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु की मित्रता में

अद॑ब्धस्य स्व॒धाव॑तो दू॒तस्य॒ रेभ॑तः॒ सदा॑। अ॒ग्नेः स॒ख्यं वृ॑णीमहे॥ २०॥

(१) हम **अग्नेः**=उस अग्रणी प्रभु की **सख्यं**=मित्रता को **वृणीमहे**=वरते हैं। प्रभु की मित्रता ही वास्तविक मित्रता है। (२) उस प्रभु की मित्रता को हम **सदा**=सदा वरते हैं जो **अदब्धस्य**=

अहिंसित हैं, **स्वधावतः**=आत्म धारणशक्तिवाले हैं–किसी अन्य से प्रभु का धारण नहीं होता, **दूतस्य**=जो ज्ञान का सन्देश प्राप्त करानेवाले हैं तथा **रेभतः**='ऋग्, यजु, साम' रूप तीनों वाणियों का उच्चारण करनेवाले हैं।

भावार्थ–हम प्रभु की मित्रता का वरण करें। इस मित्रता से हम काम-क्रोध आदि से हिंसित न होंगे, अपना धारण स्वयं कर पाएँगे, तथा प्रभु के ज्ञान-सन्देश को सुन पाएँगे। हमारा जीवन 'ज्ञान-कर्म-उपासना' से युक्त होगा।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'शुचिव्रततम' प्रभु

अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः। शुची रोचत आहुतः॥ २१॥

(१) **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु **रोचते**=दीप्त होते हैं। ये प्रभु **शुचिव्रततमः**=अत्यन्त पवित्र व्रतोंवाले हैं। **शुचिः**=पवित्र हैं, **विप्रः**=ज्ञानी हैं। **शुचिः**=पवित्र हैं, व **कविः**=क्रान्तप्रज्ञ हैं। (२) ये **शुचिः**=पवित्र कर्मोंवाले हैं। पवित्र ज्ञानवाले हैं। पवित्र दानोंवाले हैं।

भावार्थ–राष्ट्र का नायक अत्यन्त पवित्र कर्मों को करनेवाला, पवित्र बुद्धिवाला तथा दूरदर्शी हो।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

धीतयः-गिरः

उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा। अग्ने सख्यस्य बोधि नः॥ २२॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **उत**=और **मम**=मेरे **धीतयः**=कर्म तथा **गिरः**=स्तुतिवाणियाँ **विश्वहा**=सदा **त्वा वर्धन्तु**=आपका वर्धन करें। हम कर्मों के द्वारा आपका पूजन करें और स्तुतिवाणियों द्वारा आपके गुणों का प्रतिपादन करें। (२) हे अग्ने! आप **नः**=हमारे **सख्यस्य**=मित्रभाव को **बोधि**=जानिये। हम सदा आपकी मैत्री में सब व्यवहारों को करनेवाले हों।

भावार्थ–हम कर्मों व स्तुतिवाणियों के द्वारा प्रभु का अपने में वर्धन करें। हे प्रभो! हमें आपकी मित्रता सदा प्राप्त हो।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

तू मैं, मैं तू

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्। स्युष्टे सत्या इहाशिषः॥ २३॥

(१) **अग्ने**=हे अग्रणी प्रभो! **यद्**=यदि **अहं**=मैं **त्वं स्याम्**=तू हो जाऊँ, **वा**=और **त्वं**=तू **घा**=निश्चय से **अहं स्याम्**=मैं हो जाऊँ, तो **ते आशिषः**=आपके सब आशीर्वाद **इह**=यहाँ **सत्याः स्युः**=सत्य हो जाएँ। (२) जीवनयात्रा में सर्वोच्च स्थिति यही है कि हम प्रभु से मिल जाएँ। 'मैं प्रभु, व प्रभु मैं' हो जाना ही अद्वैत हैं। यही स्थिति पूर्ण निर्भीकता की स्थिति है।

भावार्थ–हम अपने को प्रभु से एक करने का प्रयत्न करें। ऐसा होने पर सब मंगल कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'वसु, वसुपति, विभावसु' वसु

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः। स्याम ते सुमतावपि॥ २४॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **वसुः**=सबको बसानेवाले हैं। **वसुपतिः**=सब धनों के स्वामी है। **हि**=निश्चय से **कं**=आनन्दमय **असि**=हैं। **विभावसुः**=दीप्ति रूप धनवाले हैं। (२) हम **ते**=आपकी **सुमतौ**=कल्याणी मति में **अपि स्याम**=ही हों। हमारे पर प्रभु का सदा अनुग्रह बना रहे।

भावार्थ–प्रभु सबको बसानेवाले, सब धनों के स्वामी, दीप्ति रूप धनवाले हैं। उस आनन्दमय प्रभु की कल्याणी मति में हमारा निवास हो।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अनायास (स्वाभाविक) स्तवन

अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेव सिन्धवः। गिरो वाश्रास ईरते॥ २५॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **धृतव्रताय**=सब व्रतों का धारण करनेवाले **ते**=तेरे लिए **वाश्रासः**=आपके गुणों व कर्मों का प्रतिपादन करनेवाली **गिरः**=स्तुतिवाणियाँ **ईरते**=इस प्रकार प्रेरित होती हैं, **इव**=जैसे **सिन्धवः**=नदियाँ **समुद्राय**=समुद्र के लिए।

भावार्थ–एक स्तोता कहता है कि हे प्रभो! आपकी स्तुतियाँ अनायास ही मेरे हृदय में उठती हैं। मैं स्तुति के स्वभाववाला ही हो जाता हूँ, जैसे नदियाँ समुद्र की ओर जाने के स्वभाववाली होती हैं।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अग्निं शुम्भामि मन्मभिः

युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम्। अग्निं शुम्भामि मन्मभिः॥ २६॥

(१) **अग्निं**=उस अग्रणी प्रभु को **मन्मभिः**=मननीय स्तोतों से **शुम्भामि**=अपने अन्दर शोभित करता हूँ। प्रभु-स्तवन करता हुआ प्रभु के गुणों को अपने जीवन में धारण करने का प्रयत्न करता हूँ। (२) जो प्रभु **युवानं**=सब बुराइयों को पृथक् करनेवाले व अच्छाइयों को हमारे साथ जोड़नेवाले हैं। **विश्पतिम्**=सब प्रजाओं के रक्षक हैं। **कविं**=क्रान्तप्रज्ञ हैं। **विश्वादं**=सम्पूर्ण विश्व का अपने अन्दर आदान करनेवाले हैं और **पुरुवेपसम्**=पालक व पूरक कर्मों को करनेवाले हैं।

भावार्थ–प्रभु का स्तवन करते हुए हम प्रभु के गुणों को अपने जीवन में धारण के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—यवमध्यागायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'यज्ञों के रथी' प्रभु

यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळवे। स्तोमैरिषेमाग्नये॥ २७॥

(१) **वयं**=हम **स्तोमैः**=स्तोत्रों के द्वारा **अग्नये**=उस अग्रणी प्रभु के लिए **इषेम**=जानेवाले हों। स्तोत्रों को करते हुए–उन स्तुत्यगुणों के अपने में धारण करते हुए–प्रभु के समीप और समीप होने चलें। (२) जो प्रभु **यज्ञानां रथ्ये**=यज्ञों के प्रणेता हैं। **तिग्मजम्भाय**=तीक्ष्ण दंष्ट्राओं वाले हैं–तीक्ष्ण वशकारी साधनों से सम्पन्न हैं। **वीडवे**=बलवान् हैं।

भावार्थः–यज्ञों के प्रणेता प्रभु का स्तवन करते हुए हम भी यज्ञशील हों और प्रभु के समीप और अधिक समीप होते जाएँ।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसःङ्क देवता—अग्निःङ्क छन्दः—विराड् गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

स्तुति द्वारा तल्लीनता

अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य। तस्मै पावक मृळय॥ २८॥

(१) हे **सन्त्य**–संभजनीय **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **अयं जरिता**=यह स्तोता **त्वे अपि**=आप में ही **भूतु**=हो जाए। आपके स्तवन में निमग्न हुआ-हुआ आप में ही लीन हुआ-हुआ हो जाएँ। (२) हे **पावक**–पवित्र करनेवाले प्रभो! **तस्मै**=उस स्तोता के लिए **मृडय**=आप सुख को करनेवाले होइये।

भावार्थ–हम उस संभजनीय प्रभु का स्तवन करते हुए स्तुति में लीन हो जाएँ और प्रभु के अनुग्रह-पात्र बन पाएँ।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसःङ्क देवता—अग्निःङ्क छन्दः—ककुम्मतीगायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

सदा जागृविः

धीरो ह्यस्यद्मसद्विप्रो न जागृविः सदा। अग्ने दीदयसि द्यवि॥ २९॥

(१) हे प्रभो! आप **हि**–निश्चय से **धीर असि**=(धियं राति) हमारे लिए बुद्धि को देनेवाले हैं। **अद्म सत्**=हमारे इस शरीररूप गृह में रहनेवाले हैं। **विप्रः न**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाले के समान **जागृविः सदा**=सदा जागरणशील हैं। हमारी न्यूनताओं को दूर करने में सदा तत्पर हैं। (२) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **द्यवि**=अपने प्रकाशमय स्वरूप में **दीदयसि**=सदा दीप्त हैं।

भावार्थ–प्रभु-स्तवन करते हुए हम बुद्धि सम्पन्न होकर अपने में प्रकाश को बढ़ानेवाले हों।

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसःङ्क देवता—अग्निःङ्क छन्दः—विराड् गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

दुरितों व मृध्रों से बचाव

पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे। प्र ण आयुर्वसो तिर॥ ३०॥

(१) हे **वसो**=हमारे निवासों को उत्तम बनानेवाले प्रभो! आप **नः आयुः**=हमारे जीवन को **प्रतिर**–बढ़ाइए। (२) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **दुरितेभ्यः पुरा**=पूर्व इसके कि हम दुरितों में चले जाएँ आप हमारे जीवन को उन्नत करें। इसी प्रकार हे **कवे**=क्रान्तदर्शिन् प्रभो! **मृध्रेभ्यः पुरा**=पूर्व इसके कि हम ङ्कहसक काम-क्रोध आदि शत्रुओं का शिकार हो जाएँ, आप हमारे आयुष्य को बढ़ाएँ।

भावार्थ–प्रभु के कृपापात्र बनकर हम दुरितों व मृध्रों (हिंसक शत्रुओं) का शिकार न होकर दीर्घजीवनवाले बनें।

इस प्रकार प्रभुरक्षण में हम 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों को दीप्त करके 'त्रिशोक' बनें (शुच दीप्तौ) 'काण्व' समझदार हों। यह 'त्रिशोक काण्व' इन्द्र का उपासन करता है:-

४५. [पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वःङ्क देवता—इन्द्राग्नीङ्क छन्दः—गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्। येषामिन्द्रो युवा सखा॥ १॥

(१) **ये**=जो **घा**=निश्चय से **अग्निम्**=उस अग्रणी प्रभु को **आ इन्धते**=अपने अन्दर दीप्त

करते हैं, वे **आनुषक्**=निरन्तर **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदयासन को **स्तृणन्ति**=बिछाते हैं-अर्थात् हृदय को पवित्र कर पाते हैं। (२) ये वे होते हैं **येषां**=जिनका **इन्द्रः**=यह शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु **युवा**=सब बुराइयों को पृथक् करनेवाला **सखा**=मित्र होता है।

भावार्थ-हम प्रभु के प्रकाश को देखने का प्रयत्न करें। हृदय को पवित्र बनाएँ। यही प्रभु की मित्रता की प्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

इध्मः+शस्तं+स्वरुः

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः। येषामिन्द्रो युवा सखा॥ २॥

(१) **येषां**=जिनका **इन्द्रः**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु **युवा**=बुराइयों को दूर करनेवाला **सखा**=मित्र होता है, **एषां**=इन उपासकों की **इध्मः**=ज्ञानदीप्ति **इत्**=निश्चय से **बृहन् इत्**=खूब बढ़ी हुई होती हैं, प्रभु की मित्रता में ज्ञान की वृद्धि होती है। (२) इस मित्रता में **शस्तं भूरि**=प्रशस्त कर्म पालन व पोषण करनेवाले होते हैं, अथवा यह खूब प्रशस्त कर्मों को करनेवाला बनता है और **स्वरुः**=(स्वृ उपतापे) इनका शत्रु-संतापन का कार्य **पृथुः**=अतिशयेन विशाल होता है।

भावार्थ-प्रभु की मित्रता में (क) ज्ञान बढ़ता है, (ख) प्रशस्त कर्म हमारा भरण करते हैं (ग) हम काम-क्रोध आदि को सन्तप्त करके दूर कर पाते हैं।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

शत्रु पराजय

अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः। येषामिन्द्रो युवा सखा॥ ३॥

(१) **येषां**=जिनका **इन्द्रः**=शत्रुओं का व्रिदावण करनेवाले प्रभु **युवा**=बुराइयों को दूर करनेवाला **सखा**=मित्र होता है, वह **अयुद्धः इत्**=योधा न होता हुआ भी **शूरः**=शूर बनता है और **युधावृतं**=योद्धाओं से घिरे प्रबल शत्रु को भी **सत्वभिः**=व्रतों के द्वारा **आ अजति**=समन्तात् उखाड़ फेंकता है। (२) प्रभु की शक्ति से शक्तिसम्पन्न होकर यह काम-क्रोध-लोभ आदि प्रबल शत्रुओं को भी पराजित करनेवाला होता है।

भावार्थः-प्रभु की मित्रता में कोई भी शत्रु हमारे लिए अजेय नहीं होता।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वीर सन्तानों का जन्म

आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद्वि मातरम्। क उग्राः के ह शृण्विरे॥ ४॥

(१) प्रभु के उपासकों के घरों में वीर सन्तानों का ही जन्म होता है। ऐसा सन्तान **वृत्र-हा**=वासना को विनष्ट करनेवाला होता है। यह **जातः**=उत्पन्न हुआ-हुआ ही **बुन्दं**=इषु को (बाण को) **आददे**=ग्रहण करत है और **मातरं वि पृच्छद्**=माता से पूछता है कि **के के उग्रः**=कौन-कौन तेज स्वभाववाले-अत्याचार करनेवाले **ह**=निश्चय से **शृण्विरे**=सुने जाते हैं। (२) यहाँ काव्यमय भाषा में कहते हैं कि यह वृत्रहा सन्तान जन्म से ही वीरता की भावना से ओत-प्रोत होता है। इसके अन्दर शत्रुविनाश की भावना ओत-प्रोत होती है।

भावार्थः-एक वीर सन्तान जन्म से ही वीरता की भावना को लिए हुए अत्याचारियों के दमन के लिए उत्साह सम्पन्न होता है।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

शवसी (माता)

प्रति त्वा शवसी वदद्गिरावप्सो न योधिषत्। यस्ते शत्रुत्वमाचके॥ ५॥

(१) हे इन्द्र! **शवसी**=बलवती माता, गतमन्त्र से वर्णित प्रश्न को सुनकर **त्वा प्रतिवदत्**=तेरे प्रति कहती है **यः**=जो **ते**=तेरे **शत्रुत्वम् आचके**=शत्रुत्व की कामना करता है, उसके साथ तू **गिरौ**=पर्वत पर **अप्सः न**=(अप्सु सरति) जल संचारी विद्युत् के समान **योधिषत्**=युद्ध कर। उस शत्रु पर ऐसे आक्रमण कर जैसे पर्वत पर विद्युत् का आक्रमण होता है। बिजली गिरती है और पत्थर छिन्न-भिन्न हो जाता है। इसी प्रकार तू शत्रुओं पर आक्रमण कर और शत्रु छिन्न-भिन्न हो जाएँ।

भावार्थः—वीर माता सन्तान को उत्साहित करती हुई कहती है कि शत्रुओं पर तेरा आक्रमण इस प्रकार हो जैसे पर्वत पर विद्युत् पतन।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

कामना की पूर्ति व बल की प्राप्ति

उत त्वं मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत्। यद्वीळयासि वीळु तत्॥ ६॥

(१) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वं**=आप **उत शृणु**=हमारी प्रार्थना को अवश्य सुनिए। **यः**=जो स्तोता **ते वष्टि**=आपसे जिस वस्तु की कामना करता है, आप **तत् ववक्षि**=उस वस्तु को प्राप्त कराते हैं। (२) हे प्रभो! **यत् वीडयासि**=जिसको भी आप शक्तिशाली बनाते हैं, **तत् वीडु**=वह दृढ़ शक्तिशाली होता ही है।

भावार्थ—प्रभु प्रार्थना को सुनकर स्तोता की कामना को पूर्ण करते ही हैं। स्तोता को वे दृढ़ बनाते हैं।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

रथीनां रथीतमः

यदाजिं यात्याजिकृदिन्द्रः स्वश्वयुरुप। रथीतमो रथीनाम्॥ ७॥

(१) **आजिकृत्**=संग्राम को करनेवाला **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **स्वश्वयुः**=उत्तम इन्द्रियाश्वों की कामनावाला होता हुआ **यद्**=जब **आजिम् उपयाति**=संग्राम को प्राप्त होता है, तो वह **रथीनां रथीतमः**=रथियों में श्रेष्ठ रथी होता है। (२) प्रभु का सम्पर्क इसे खूब शक्ति सम्पन्न बना देता है।

भावार्थ—प्रभु का उपासक कभी संग्राम में पराजित नहीं होता। यह उत्तम रथी बनता है।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सुश्रवस्तमः

वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन्विष्वग्यथा वृह। भवा नः सुश्रवस्तमः॥ ८॥

(१) हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! आप **विश्वाः**=सब **अभियुजः**=हमारे पर आक्रमण करनेवाली सेनाओं को **यथा विष्वक्**=जिस प्रकार सब ओर भाग जाएँ। इस प्रकार **वि सु वृह**=सम्यक् उच्छिन्न कर दीजिए। (२) हमारे सब शत्रुओं को समाप्त करके **नः**=हमें **सुश्रवस्तमः**=उत्तम यशस्वी बनानेवाले **भव**=होइए। शत्रुओं को जीतकर हमारा जीवन यश से अन्वित हो।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से हम सब आक्रमण करनेवाली शत्रु सेनाओं को पराजित कर पाएँ और इस प्रकार जीवन में यशस्वी हों।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

कैसा रथ ?

अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये। न यं धूर्वन्ति धूर्तयः॥ ९॥

(१) **इन्द्रः**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु **अस्माकं**=हमारे **सु-रथं**=उत्तम रथ को **पुरः कृणोतु**=आगे करें। यह रथ शत्रुओं की ओर आक्रमण के लिए आगे ही बढ़े। **सातये**=यह सब धनों की प्राप्ति के लिए हो। 'काम' को पराजित करके हम 'स्वास्थ्य-धन' को प्राप्त करें। 'क्रोध' को जीतकर हम 'मानसशान्तिरूप धन' को प्राप्त करें। 'लोभ' को जीतकर हम 'ज्ञान धन' को प्राप्त करें। (२) हमारा यह रथ ऐसा हो कि **यं**=जिसे **धूर्तयः**=हिंसक शत्रु **न धूर्वन्ति**=हिंसित नहीं कर पायें।

भावार्थ—हमारा शरीर रथ आगे और आगे बढ़े। यह सब धनों का विजय करनेवाला हो। किसी से हिंसित न हो।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ते द्विषः परिवृज्याम

वृज्याम ते परि द्विषोऽरं ते शक्र दावने। गमेमेदिन्द्र गोमतः॥ १०॥

(१) हे प्रभो! हम **ते**=आपके **द्विषः**=द्वेष करनेवाले लोगों को **परिवृज्याम**=दूर से छोड़नेवाले हों, ऐसे पुरुषों के संग में न बैठें। हे **शक्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! हम **ते दावने**=आपके दान में **अरं**=खूब हों, अर्थात् आपकी देनों को खूब ही प्राप्त करें। (२) हे **इन्द्र**=ज्ञानरूप परमैश्वर्यवाले प्रभो! हम **गोमतः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाले आपके समीप **इत्**=निश्चय से **गमेमः**=जाएँ। आपके समीप प्राप्त होकर हम इन ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करें।

भावार्थ—प्रभु के द्वेषियों से हम दूर रहें। प्रभु से दातव्य धनों को खूब ही प्राप्त करें। प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाले प्रभु के समीप खूब ही ज्ञानों को प्राप्त करें।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

शनैः चित् यन्तः (शान्तिपूर्वक गति)

शनैश्चिद्यन्तो अद्रिवोऽश्वावन्तः शतग्विनः। विवक्षणा अनेहसः॥ ११॥

(१) हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! हम आपकी उपासना में **शनै चित् यन्तः**=निश्चय से शान्तिपूर्वक गतिवाले होते हुए **अश्वावन्तः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले बनें। तथा **शतग्विनः**=शत वर्षपर्यन्त आयुष्य में जानेवाले हों। (२) **विवक्षणाः**=हम विशिष्ट उन्नतिवाले हों तथा **अनेहसः**=निष्पाप जीवनवाले हों।

भावार्थ—जीवन में शान्तिपूर्वक चलते हुए हम प्रशस्त इन्द्रियोंवाले, दीर्घजीवी, विशिष्ट विकासवाले व निष्पाप हों।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'सहस्रा शता' सूनृता

ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता। जरितृभ्यो विमंहते॥ १२॥

(१) हे प्रभो! **ते**=आपके **सहस्रा**-सहस्रों व **शता**=सैंकड़ों अथवा **सहस्रा**=(सहस्) आनन्दप्रद **शता**=शत वर्ष पर्यन्त चलनेवाले **सूनृता**=सौभाग्ययुक्त धन **दिवे-दिवे**=प्रतिदिन **हि**-निश्चय से **ऊर्ध्वा**-ऊपर उठे हुए हैं, अर्थात् उद्यत हैं। (२) **जरितृभ्यः**=स्तोताओं के लिए दिये जानेवाले इन धनों को यह उपासक **विमंहते**=विशेषरूप से स्तुत करता है।

भावार्थ-प्रभु की देन सैंकड़ों व सहस्रों हैं। एक स्तोता उन देनों का गायन करता है।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

धनञ्जयं-आदारिणम्

विद्मा हि त्वा धनंजयमिन्द्र दृळ्हा चिदारुजम्। आदारिणं यथा गयम्॥ १३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! हम **त्वा**=आपको **हि**=निश्चय से **धनञ्जयम्**-सब धनों का विजेता **विद्मा**=जानते हैं। सब धनों का विजय आप ही करते हैं। आप **दृढाचित्**=प्रबल भी शत्रुओं का **आरुजं**-समन्तात् भंग करनेवाले हैं। (२) **आदारिणं**=शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करनेवाले आपको हम **यथा गयम्**=घर के समान जानते हैं। आप हमारे लिए उपद्रवों से रक्षक गृह के समान हैं।

भावार्थः-प्रभु धनों के विजेता-शत्रुओं के छेत्ता व गृह के समान रक्षक हैं।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'ककुहं पणिम्'

ककुहं चित्त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णविन्दवः। आ त्वा पणिं यदीमहे॥ १४॥

(१) हे **कवे**=सर्वज्ञ (क्रान्तप्रज्ञ) **धृष्णो**=शत्रुधर्षक प्रभो! **ककुहं**=सर्वश्रेष्ठ (शिखर- भूत) **त्वा**=आपको **चित्**=निश्चय से **इन्दवः**=ये सोमकण (सब ऐश्वर्य) **मन्दन्तु**=आनन्दित करते हैं। जब हम सोमकणों का रक्षण करते हैं, तो ये रक्षित सोमकण हमारे जीवन में आपके प्रकाश को बढ़ाते है और इस प्रकार हमें आपका प्रिय बनाते हैं। (२) यह वह समय है **यत्**=जब **पणिं**=(पण स्तुतौ) स्तुति के योग्य आपको **आ ईमहे**=सब प्रकार से प्रार्थित करते हैं। प्रभु से सब उचित साधनों को पाकर हम उन साधनों के सत्प्रयोग से प्रभु को पानेवाले बनते हैं।

भावार्थ-प्रभु की आराधना करते हुए हम सोमरक्षण से प्रभु को प्रसन्न करके सब उचित साधनों को प्राप्त कराने के लिए प्रभु से प्रार्थना करते हैं।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

रेवान् अदाशुरिः

यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्ष मघत्तये। तस्य नो वेद आ भर॥ १५॥

(१) हे प्रभो! **यः**=जो **रेवान्**-धनवान् होकर **ते अदाशुरिः**=आपकी प्राप्ति के लिए यज्ञादि कर्मों में दानशील नहीं होता तथा **मघत्तये**-धन को देने के लिए **प्रममर्ष**=भूल जाता है व प्रमाद करता है। **तस्य वेदः**=उसके धन को **नः**=हमारे लिए **आभर**=प्राप्त कराइये। उससे धन को छीनकर दानशील व्यक्ति के लिए उस धन को प्राप्त कराइये। (२) वस्तुतः धन तो प्रभु का ही है। एक व्यक्ति तो उस धन को रक्षकमात्र है। प्रभु प्रेरणा के अनुसार उस धन का यज्ञादि में विनियोग ही ठीक है।

भावार्थ-हम धन को प्रभु का समझते हुए, उसका यज्ञादि सत्कर्मों के लिए सदा दान करनेवाले हों, यही प्रभु प्राप्ति का मार्ग है। 'धनी अदाता' पुरुष प्रभु से सदा दूर है।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सोमिनः सखायः

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः। पुष्टावन्तो यथा पशुम्॥ १६॥

(१) **इमे**=ये **सोमिन्**ः=सोम का रक्षण करनेवाले **सखायः**=सखा लोग–सबके मित्र **उ**=ही हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वा विचक्षते**=आपको देखते हैं। आपके दर्शन के पात्र से 'सोमी सखा' ही होते हैं। (२) इस प्रकार ये आपके दर्शन को करते हैं **यथा**=जैसे **पुष्टावन्तः**=पुष्टि के साधन- भूत घास को लिये हुए लोग **पशुम्**=गवादि पशु को देखते हैं। घास लेकर पशु के समीप लाया जाता है, सोम व मित्रभाव को लेकर प्रभु के समीप।

भावार्थ–हम सोम का रक्षण करते हुए तथा सबके साथ मित्रभाव से वर्तते हुए प्रभु का दर्शन करनेवाले बनें।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अबधिरं-श्रुत्कर्णम्

उत त्वाबधिरं वयं श्रुत्कर्णं सन्तमूतये। दूरादिह हवामहे॥ १७॥

(१) **उत**=और **वयं**=हम **दूरात्**=दूर से ही–आपके उपासक न होते हुए भी **इह**=यहाँ इस जीवन में **ऊतये**=रक्षण के लिए **त्वा**=आपको **हवामहे**=पुकारते हैं। (२) उन आपको हम पुकारते हैं जो **अबधिरं**=बधिर नहीं हैं। **श्रुत्कर्णम्**=श्रवण पर कर्णोंवाले हैं। जिनके कान सदा सुनने में लगे हैं। **सन्तम्**=जो श्रेष्ठ हैं।

भावार्थः–प्रभु की प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं जाती। यह बहरे कानों पर नहीं पड़ती।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

दुर्मर्ष बल

यच्छुश्रूया इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत। भवेरापिर्नो अन्तमः॥ १८॥

(१) हे प्रभो! आप **यद्**=जब **इमं हवं**=हमारी पुकार को **शुश्रूयाः**=सुनते हैं, **उत**=और **दुर्मर्षम्**=शत्रुओं से न सहने योग्य बल को हमारे लिए **चक्रियाः**=करते हैं, तो **नः**=हमारे **अन्तमः**=अन्तिकतम **आपिः**=मित्र **भवेः**=होते हैं।

भावार्थ–प्रभु हमारे अन्तिकतम मित्र हैं। वे हमें उस बल को प्राप्त कराते हैं, जो शत्रुओं से सहने योग्य नहीं होता।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

गो-दाः इन्द्रः

यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि। गोदा इदिन्द्र बोधि नः॥ १९॥

(१) **यत् चित् हि**=जब निश्चय से **व्यथिः**=पीड़ित हुए=हुए हम **ते जगन्वांसः**=आपके समीप आनेवाले होकर **अमन्महि**=आपका मनन व स्तवन करें, तो हे **इन्द्र**=ज्ञानरूप परमैश्वर्यवाले प्रभो! आप **नः**=हमारे लिए **इत्**=निश्चय से **गो-दाः**=ज्ञान की वाणियों को देनेवाले होकर **बोधि**=हमें उद्बुद्ध करनेवाले हों। (२) आपसे प्राप्त ज्ञान के द्वारा हम ठीक मार्ग पर चलते हुए अपने कष्टों को दूर कर सकें। यह ज्ञान हमारे अन्दर पवित्रता का संचार करके हमारे पापों व कष्टों को दूर करनेवाला हो।

भावार्थ–इस संसार के भवसागर में विषयों के ग्राहों से पीड़ित होकर जब हम प्रभु का स्मरण करते हैं, तो प्रभु हमें ज्ञान देकर उनकी पकड़ से छुड़ाते हैं और हमारे कष्टों का अन्त करते हैं।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'सबका सहारा' प्रभु

आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररभ्मा शवसस्पते। उश्मसि त्वा सधस्थ आ॥ २०॥

(१) हे **शवसस्पते**=बल के स्वामिन्! **जिव्रयः रम्भं न**=वृद्ध जैसे एक आश्रययष्टि की सहायता लेता है उसी प्रकार हम **त्वा आ ररभ्मा**=आपका आश्रय लेनेवाले हों। आप ही तो निराधार होते हुए सर्वाधार हैं। (२) हम **सधस्थे**=मिलकर बैठने के यज्ञवेदिरूप स्थानों में अथवा आपके साथ मिलकर बैठने के स्थान हृदयदेश में **त्वा आ उश्मसि**=आपको ही चाहते हैं। आपकी प्राप्ति की कामनावाले होते हैं। आप ही तो वह स्थान हैं जहाँ सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

भावार्थ–प्रभु ही सर्वाधार हैं। प्रभु का ही हृदयदेश में ध्यान करते हुए कामना करें। प्रभु सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'पुरुनृम्ण सत्वा' प्रभु

स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने। नकिर्यं वृण्वते युधि॥ २१॥

(१) हे मनुष्यो! **यं**=जिसको **युधि**=युद्ध में **नकिः वृण्वते**=कोई भी रोक नहीं सकता, उस **सत्वने**=बलशाली, शत्रुओं का सादन करनेवाले **पुरुनृम्णाय**=बहुत धनों व शक्तियों के स्वामी **इन्द्राय**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु के लिए **स्तोत्रं गायत**=स्तुति का गायन करो। (२) इस संसार संघर्ष में प्रभु ने ही हमें विजय प्राप्त करानी है। प्रभु अनन्तशक्ति व धनवाले हैं, सब शत्रुओं का सादन करनेवाले हैं। प्रभु का गायन करते हुए उस शक्ति से शक्तिसम्पन्न होकर हम शत्रुओं को पराजित कर पाते हैं।

भावार्थ–अनन्त शक्ति व धनवाले शत्रुसंहारक प्रभु का ही हम स्तवन करें। प्रभु युद्ध में अपराजेय हैं।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभुस्मरण-सोमरक्षण-आनन्द का अनुभव

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये। तृम्पा व्यश्नुही मदम्॥ २२॥

(१) हे **वृषभ**=शक्तिशालिन् सुखवर्षक प्रभो! **सुते**=शरीर में सोम का अभिषव होने पर **सुतं**=इस उत्पन्न सोम को **पीतये**=पीने के लिए **त्वा**=आपको **अभिसृजामि**=प्रातः सायं (दिन के दोनों ओर) स्मरण द्वारा उत्पन्न करता हूँ, आपकी भावना को अपने में जगाता हूँ। (२) **तृम्पा**=इस सोमपान द्वारा आप मुझे तृप्ति व प्रीति का अनुभव कराइये तथा **मदं व्यश्नुहि**=आनन्द को मेरे में व्याप्त करिये।

भावार्थ–प्रभुस्मरण से, वासनाओं का शिकार न होते हुए, हम सोमरक्षण द्वारा तृप्ति व आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

किनके संग से बचना ?

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्। माकीं ब्रह्मद्विषो वनः॥ २३॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि **त्वा**=तुझे **अविष्यवः**=(अव्=हिंसा, आदान) औरों की हिंसा से सांसारिक ऐश्वर्यों का आदान करनेवाले, **उपहस्वानः**=धर्म व नैतिक मार्ग का उपहास करनेवाले **मूराः**=विषयों से मूढ़ बने हुए लोग **त्वा**=आपको **मा आदभन्**=हिंसित करनेवाले न हों। इनके दबाव में तू भी इनके रंग में न रंगा जाए। (२) **ब्रह्मद्विषः**=ज्ञान व प्रभु के प्रति न प्रीतिवाले लोगों को **माकीं वनः**=सेवन करनेवाला न हो। ऐसों के संग में मत उठ-बैठ।

भावार्थ—हम विषयमूढ़, हिंसा से संग्रह की प्रवृत्तिवाले, धामक बातों का उपहास करनेवाले, ज्ञान की प्रति अरुचिवाले लोगों का संग न करें।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सोमपान व आनन्द

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे। सरो गौरो यथा पिब॥ २४॥

(१) हे जीव! **इह**=इस जीवन में **गोपरीणसा**=ज्ञान की वाणियों द्वारा शरीर में चारों ओर व्याप्त होनेवाले सोम के द्वारा **त्वा**=तुझे **महे राधसे**=महान् साफल्य (सफलता) के लिए ये सोमकण ही **मन्दन्तु**=आनन्दित करनेवाले हों। (२) **यथा**=जैसे एक **गौरः**=गौरमृग **सरः**=तालाब को-तालाब के पानी को पीता है, तू उसी प्रकार इस सोम का **पिब**=पान कर।

भावार्थ—सोम का रक्षण ही सफलता व आनन्द का स्रोत हैं। इसके रक्षण के लिए आवश्यक है कि हम अतिरिक्त समय को ज्ञानी की वाणियों को अध्ययन में ही लगाएँ।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

ज्ञान की ही चर्चा

या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे। ता संसत्सु प्र वोचत॥ २५॥

(१) **वृत्रहा**=सब ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को नष्ट करनेवाले प्रभु **परावति**=आज से कितने ही सुदूर काल में **या सना**=जिन सनातन परन्तु **च**=फिर भी **नवा**=इन नवीन ज्ञान की वाणियों को **चुच्युवे**=प्रेरित करते हैं। **ता**=उन ज्ञान की वाणियों को **संसत्सु**=सभाओं में **प्रवोचत**=प्रकर्षेण उच्चरित करो। (२) हम जब भी एकत्रित हों परस्पर ज्ञान की ही चर्चा करें। यह ज्ञान की चर्चा ही हमें पवित्र करेगी। यही हमें सोमरक्षण के योग्य बनाएगी।

भावार्थ—प्रभु सदा से जिन ज्ञानवाणियों की प्रेरणा देते आए हैं, हम मिलने पर उन्हीं का प्रवचन करें। यह ज्ञान में विचरना ही हमें वासना का शिकार होने से बचाएगा।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

कद्रुवः सुतम् अपिबत्

अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे। अत्रादेदिष्ट पौंस्यम्॥ २६॥

(१) **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **कद्रुवः**=(कवते) उस ज्ञानोपदेष्टा प्रभु के **सुतम्**=उत्पादित इस सोम को **अपिबत्**=पीता है-शरीर में ही व्याप्त करता है और **सहस्रबाह्वे**=सहस्रों प्रयत्नों को कर पाता है। यह सुरक्षित सोम उसे शक्तिशाली बनाता है और इसे प्रयत्न करने में समर्थ करता

है। (२) **अत्र**=यहाँ, अर्थात् सोम का रक्षण होने पर **पौंस्यम् अदेदिष्ट**-इसका पौरुष चमक उठता है।

भावार्थ–इन्द्र बनकर हम सोम का रक्षण करें और शक्तिशाली व प्रयत्नशील बनें। पौरुष से दीप्त हों।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

यदु

सत्यं तत्तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यम्। व्यानट् तुर्वणे शमि॥ २७॥

(१) **तुर्वशे**=त्वरा से शत्रुओं को वश में करनेवाले **यदौ**=यत्नशील जन में **तत्**=उस **अह्नवाय्यम्**=न छिपाए जाने की आवश्यकतावाले सत्य को **विदानः**=जानता हुआ पुरुष **तुर्वणे**=इस जीवनसंग्राम में **शमि**=कर्म को **व्यानट्**=व्याप्त करता है सदा क्रियाशील बनता है। (२) यह क्रियाशीलता ही उसे व्यसनों से बचाकर सत्यमार्ग की ओर ले चलती है। सत्य का निवास 'तुर्वश, व यदु' में ही होता हे। 'यदु' ही 'तुर्वश' भी बन पाता है।

भावार्थ–हम अपने में सत्य को धारण करने के लिए काम-क्रोध आदि शत्रुओं को वश में करनेवाले (तुर्वश) यत्नशील (यदु) बनें, सदा उत्तम कर्मों में लगे रहें।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'तरणि-त्रद-समान' प्रभु का शंसन

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः। समानमु प्र शंसिषम्॥ २८॥

(१) मैं प्रभु का **प्रशंसिषम्**=शंसन करता हूँ। उस प्रभु का, जो **वः**=तुम सब **जनानां**=लोगों के **तरणिं**=तारक हैं–विषय-वासनाओं व कष्टों से पार ले-जानेवाले हैं। **त्रदं**=शत्रुओं का नाश करनेवाले हैं शत्रुनाश के द्वारा ही वे हमें कष्टों से पार ले जाते हैं। (२) मैं उस प्रभु का शंसन करता हूँ जो **गोमतः वाजस्य**-प्रशस्त इन्द्रियोंवाले बल को **सम् आनं**-(अन् प्राणने) सम्यक् प्राणित करनेवाले हैं। प्रभु हमारे में प्राणशक्ति का संचार करते हैं–एक-एक इन्द्रिय को सबल बनाते हैं।

भावार्थ–प्रभु हमें कष्टों से तरानेवाले हैं, हमारे शत्रुओं का विनाश करनेवाले हैं और हमारी इन्द्रयों की शक्ति को प्राणित करनेवाले हैं।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ऋभुक्षणं-तुग्र्यावृधम्

ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्र्यावृधम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते॥ २९॥

(१) **न** (संप्रत्यर्थे)=अब हम **ऋभुक्षणं**=महान् प्रभु को **वर्तवे**=चुननेवाले हों। प्रकृति की अपेक्षा प्रभु का वरण करनेवाले हों। उस प्रभु का वरण करें जो **उक्थेषु**=स्तोत्रों के होने पर **तृग्र्यावृधम्**-रेतःकणरूप जलों का वर्धन करनेवाले हैं। (२) हम **सोमे सुते**=सोम को सम्पादित होने पर **इन्द्रं**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **सचा**=साथ होनेवाले हों। यह प्रभु के साथ होना ही वस्तुतः हमें सोमरक्षण के योग्य बनाता है।

भावार्थ–प्रभु महान् है, महान् ज्ञानज्योति में निवास करनेवाले हैं। शरीरस्थ रेतःकणों का रक्षण करनेवाले हैं। सोम के रक्षित होने पर ही प्रभु का दर्शन होता है।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

योन्यं 'गिरिम्'

यः कृन्तदिद्वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम्। गोभ्यो गातुं निरेतवे॥ ३०॥

(१) शरीर में नाड़ियाँ 'नदियाँ' हैं तो अस्थियाँ 'पर्वत'। रीढ़ ही हड्डी मेरुदण्ड व मेरुपर्वत है। यह विशाल पर्वत है—अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पर्वत है। इसमें 'इडा, पिंगला, सुषुम्णा' इन तीन नाड़ियों का स्थान हे। इनमें 'इडा' ही गंगा है, 'पिंगला' यमुना तथा 'सुषुम्णा' सरस्वती है। प्राणसाधना द्वारा सुषुम्णा का जागरण होता है **यः**=जो भी **योन्यं**=शरीररूप योनि व गृह में होनेवाले **पृथुं गिरिं**=इस विशाल मेरुदण्ड रूप पर्वत को **इत्**=निश्चय से **विकृन्तत्**=छिन्न करता है, अर्थात् सुषुम्णा के द्वार को खोलता है वह **त्रिशोकाय**=तीनों दीप्तियों के लिये होता है—यह शरीर, मन व बुद्धि तीनों को दीप्त करता है। (२) यह साधक ही **गोभ्यः**=ज्ञान की वाणियों के **निरेतवे**=निश्चय से प्राप्त होने के लिए **गातुम्**=मार्ग को बनाते हैं। इस प्राणसाधना से ज्ञान का निश्चय से वर्धन होता है।

भावार्थ—हम शरीरस्थ मेरुदण्डरूप मेरुपर्वत में स्थित इडा, पिंगला व सुषुम्णा आदि नाड़ियों के द्वारों को प्राणसाधना द्वारा खोलें और ज्ञान की वाणियों की प्राप्ति के लिए मार्ग को तैयार करें।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

दधिषे-मनस्यसि-इयक्षसि

यद्दधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि। मा तत्करिन्द्र मृळय॥ ३१॥

(१) हे प्रभो! **मन्दानः**=स्तुति किये जाते हुए आप **यद्**=जिस शुभ को **दधिषे**=धारण करते हैं, **मनस्यसि**=हमारे लिए देने का संकल्प करते हैं और **इत्**=निश्चय से **इयक्षसि**=(प्रयच्छसि) हमारे लिए देते हैं, **तत्**=उसे **मा कः**=मत नष्ट करिये। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप शुभ वस्तुओं को देकर हमारे लिए **मृळय**=सुख को करनेवाले होइये।

भावार्थ—हे प्रभो! आप जिस शुभ को धारण करते हैं—हमारे लिए देने का संकल्प करते हैं और हमारे लिए देते हैं, उसे नष्ट न करिये, हमारे लिए दीजिए ही और हमें सुखी करिये।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सन्त की वाणी व क्रिया का महत्त्व

दभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं शृण्वे अधि क्षमि। जिगात्विन्द्र ते मनः॥ ३२॥

(१) हे प्रभो! **त्वावतः**=आपको धारण करनेवाले का **दभ्रं**=थोड़ा-सा **चित् हि**=भी **कृतं**=किया हुआ **अधिक्षमि**=इस पृथिवी पर **शृण्वे**=प्रसिद्ध रूप में सुना जाता है, अर्थात् आपको धारण करनेवाले की छोटी-सी क्रिया का भी बड़ा महत्त्व होता है—लोगों पर उसका बड़ा प्रभाव होता है। (२) सो हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **मनः**=हमारा मन **ते जिगातु**=आपके प्रति जानेवाला हो। हम सदा आपको स्मरण करें और आपका धारण करें।

भावार्थ—प्रभु को धारण करनेवाले की छोटी-सी क्रिया भी बड़ी महत्त्वपूर्ण होती है। उसका एक शब्द भी बड़ा प्रभाव पैदा करता है।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सुकीर्तयः-प्रशस्तयः (प्रभु की)

तवेदु ताः सुकीर्तयोऽसन्नुत प्रशस्तयः। यदिन्द्र मृळयासि नः॥ ३३॥

(१) हे **इन्द्र**-सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **ताः**-वे **सुकीर्तयः**=उत्तम कीर्तियाँ **उ**-निश्चय से **तव इत् असन्**-आपकी ही हैं, **यत्**=कि आप **नः**=हमें **मृडयासि**=सुखी करते हैं। (२) **उतः**-और हे प्रभो! (ताः) वे **प्रशस्तयः**=प्रशस्तियाँ भी आपकी ही हैं।

भावार्थ—वस्तुतः प्रभु ही हमारे जीवन को सुखी बनाते हैं। हमें प्रभु का ही कीर्तन व शंसन करना योग्य है।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अनन्त कृपालु प्रभु

मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु। वधीर्मा शूर भूरिषु॥ ३४॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! आप **नः**=हमें **एकस्मिन् आगसि**=एक अपराध में **मा वधीः**=मत हिंसित करिये। **द्वयोः**-दो अपराधों में भी **मा**=मत दण्डित करिये। **उत**=और **त्रिषु**=तीन अपराधों में भी आपने हमें हिंसित न करना। (२) हे शूर! **भूरिषु**=बहुत अपराधों के होने पर भी हमें **मा वधीः**=हिंसित न करियेगा। हमारे से कदम-कदम पर गलतियाँ तो होंगी ही। शक्ति व ज्ञान की अल्पता के कारण जब हम गलतियाँ कर बैठें, तो भी हम आपके कोपभाजन न हों। आप जैसे परम मित्र के द्वारा उत्तम प्रेरणा को प्राप्त कर हम शुभ मार्ग पर आगे बढ़ें।

भावार्थ—हम गलतियों के होने पर भी प्रभु के अनग्रह के ही पात्र हों। प्रभु प्रेरणा को प्राप्त करके अपराधों से ऊपर उठें।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु से भय

बिभया हि त्वावत उग्रादभिप्रभङ्गिणः। दस्मादहमृतीषहः॥ ३५॥

(१) हे प्रभो! **त्वावतः**=आप जैसे **उग्रात्**=तेजस्वी, **अभिप्रभङ्गिणः**-शत्रुओं का पराजय करनेवाले, **दस्मात्**=सब बुराइयों का उपक्षय करनेवाले, **ऋतीषहः**=शत्रुकृत हिंसा का मर्षण करनेवाले (कुचल देनेवाले) से **अहं**=मैं **हि**=निश्चय से **बिभया**=भयभीत होता हूँ। (२) आप से भयभीत होकर ही तो मैं और सब ओर से निर्भीक हो सकता हूँ।

भावार्थ—प्रभु से भयभीत होनेवाला ही निर्भीक होता है। प्रभु इसके सब शत्रुओं का नाश करते हैं।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

मनः ते आवृत्वद् भवतु

मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो। आवृत्वद्भूतु ते मनः॥ ३६॥

(१) **प्रभूवसो**=प्रभूत धन के स्वामिन् प्रभो! **सख्युः**=मैं अपने मित्रों की **शूनं**=अशुभ धन आदि की वृद्धि का **मा आविदे**=मत आवेदन करता रहूँ। इसी प्रकार **पुत्रस्य**=पुत्र की भी अशुभ धनवृद्धि का **मा**=मत निवेदन करूँ। मेरे मित्र व सन्तान सब शुभ मार्ग से धन को कमानेवाले हों।

(२) हे प्रभो! **मनः**=हमारा मन **ते**=आपके प्रति **आवृत्वत्**=आवर्तनवाला **भूतु**–हो। आपका स्मरण करते हुए हम स्वस्थ धनवृद्धिवाले बनें।

भावार्थ–हमारे मित्र व हमारे सन्तान सब शुभमार्ग से धनवृद्धि को करें। हमारा मन सदा प्रभु के प्रति आवर्तनवाला हो।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अनाक्रुष्ट जीवन

को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत्। जहा को अस्मदीषते॥ ३७॥

(१) हे **मर्याः**= मनुष्यो! **कः नु**–कौन **अमिथितः**=अनाक्रुष्ट जीवनवाला–अनिन्दित **सखा**= मित्र **सखायं**=मित्र को **अब्रवीत्**=कहता है कि **कः जहा**=कौन हमें मारता है, **कः**=कौन **अस्मत्**=हमारे से **ईषते**=भयभीत होता है? (२) पवित्र जीवनवाले साथी मिलते हैं तो परस्पर यही कहते हैं कि न हम किसी को भयभीत करें, न किसी से भयभीत हों।

भावार्थ–वे ही मित्र श्रेष्ठ हैं, जोकि परस्पर इस प्रकार की ही चर्चा करें कि 'न हम किसी से मारे जाएँ, न हम किसी को मारें।'

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

आवयः

एवारे वृषभा सुतेऽसिन्वन्भूर्यावयः। श्वघ्नीव निवता चरन्॥ ३८॥

(१) हे **वृषभ**=सुखों का वर्षण करनेवाले प्रभो! **एवारे**=(एव+अर=ऋ गतौ) गतमन्त्र में वर्णित प्रकार से गति के होने पर, **सुते**=सोम का सम्पादन करने पर **आवयः**=सोम का रक्षण करनेवाले लोग **भूरि**=खूब ही **असिन्वन्**=इस सोम को शरीर में बद्ध करते हैं। (२) यह सोमरक्षक पुरुष **श्वघ्नीव इव**=कितव (जुआरी) की तरह **निवता चरन्**=नम्रता के मार्ग से (निम्न मार्ग से) गतिवाला होता है। जैसे एक जुआरी धननाश से लज्जित होकर नम्र सा बन जाता है, इसी प्रकार यह सोमरक्षक नम्रतावाला होता है।

भावार्थ–अपना रक्षण करनेवाले सोम का शरीर में बन्धन करते हैं। ये अपने जीवन में नम्रता के स्वभाववाले होते हैं।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वचोयुजा हरी

आ त एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा। यदीं ब्रह्मभ्य इद्ददः॥ ३९॥

(१) हे प्रभो! **ते**=आपके **एता**=इन **सुमद्रथा**=शोभन शरीररथवाले–इस शोभन रथ में जुतनेवाले **वचोयुजा**= वेदवचनों के अनुसार कार्यों में लानेवाले व रथ में युक्त होनेवाले **हरी**=कर्मेन्द्रिय व ज्ञानेन्द्रियरूप अश्वों को **आगृभ्णे**=ग्रहण करता हूँ। एक सारथि जैसे लगाम से घोड़ों को वशीभूत करता है, उसी प्रकार मैं इन इन्द्रियाश्वों को वश में करता हूँ। (२) **यत्**=क्योंकि **ईम्**=निश्चय से **ब्रह्मभ्यः**=ज्ञानप्राप्ति के लिए (ज्ञान की वाणियों के लिए) व महान् कर्मों के लिए **इत्**=ही **ददः**=आप इन इन्द्रियाश्वों को देते हैं। इन इन्द्रियों को वश में करके ही मैं ज्ञान व महान् कर्मों का सम्पादन कर सकूँगा।

भावार्थ—हम प्रभु से प्रदत्त इन इन्द्रियाश्वों को वश में करके ही ज्ञान व महान् कर्मों का सम्पादन कर सकते हैं।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'द्विषः, बाधः, मृधः' अपजहि

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः। वसु स्पार्हं तदा भर॥ ४०॥

(१) हे प्रभो! आप **विश्वाः**=सब, हमारे अन्दर प्रविष्ट हो जानेवाली **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं को **अपभिन्धि**=सुदूर विदीर्ण करिये। **बाधः**=हमें बाधा पहुँचानेवाली इन वासनाओं को **परि जहि**=सर्वथा नष्ट कर दीजिए **मृधः**=हमारा विनाश (हिंसन) करनेवाली वृत्तियों को भी विनष्ट करिये। (२) इसप्रकार हमें द्वेष व वासनाओं से रहित करके **तत्**=उस प्रसिद्ध **स्पार्हं**=स्पृहणीय **वसु**=धन को **आभर**=सर्वथा प्राप्त कराइये।

भावार्थ—प्रभु हमें द्वेष, वासना व हिंसक शत्रुओं से बचाकर स्पृहणीय धन को प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वीडौ-स्थिरे-पर्शाने

यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम्। वसु स्पार्हं तदा भर॥ ४१॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जो **स्पार्हं वसु**=स्पृहणीय धन **वीडौ**=दृढ़ शरीरवाले बलवान् पुरुष में है, **यत्**=जो धन **स्थिरे**=स्थिरवृत्तिवाले, स्थितप्रज्ञ मनुष्य में हैं और **यत्**=जो धन **पर्शाने**=विचारशील पुरुष में **पराभृतम्**=धारण किया गया है, **तद्**=उस धन को **आभर**=हमारे लिए प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हम सबल शरीरवाले, स्थिरवृत्तिवाले व विचारशील बनें और स्पृहणीय धन को प्राप्त करें।

ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

विश्वमानुषः

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति। वसु स्पार्हं तदा भर॥ ४२॥

(१) जो केवल अपने लिए न जीकर व्यापक जीवनवाला बनता है, अपने परिवार में औरों को भी सम्मिलित कर लेता है, वह '**विश्वमानुषः**' कहलाता है। प्रभु इसे जिस धन को देते हैं, उसे यह औरों के लिए प्राप्त कराता है। हे प्रभो! **विश्वमानुषः**=उदार मनोवृत्तिवाला पुरुष **ते**=आपके द्वारा **दत्तस्य**=दिये हुए **भूरेः**=पालन व पोषण करनेवाले **यस्य**=जिसका **वेदति**=औरों के लिए प्रापण कराता है (विद् लाभे)। **तद्**=उस स्पार्हं **वसु**=स्पृहणीय धन को **आभरः**=हमारे लिए प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हम स्वार्थी न बनकर 'विश्वमानुष' बनें। यह विश्वमानुष प्रभुप्रदत्त धन को औरों के लिए प्राप्त कराता है। ऐसा ही स्पृहणीय धन हमें भी प्राप्त हों।

अपने मन को वश में करनेवाला यह 'वशः' कहलाता है। अपने इन्द्रियाश्वों को उत्तम बनाने के कारण यह 'अश्व्य' है। यह इन्द्र का स्तवन करता हुआ कहता है—

४६. [षट्चत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—पादनिचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रभुभक्तों का संग

त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः। स्मसि स्थातर्हरीणाम्॥ १॥

(१) हे **पुरूवसो**=प्रभूतधन, **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन्, **प्रणेतः**=सर्वकर्मों के पार प्राप्त करानेवाले, **हरीणां**=हमारे इन्द्रियाश्वों के अधिष्ठातः प्रभो! **वयं**=हम **त्वावतः**=आप जैसे के ही **स्मसि**=हैं, अर्थात् हम उन्हीं लोगों के सम्पर्क में आएँ जो आपके गुणों को धारण करके कुछ आप जैसे बनते हैं।

भावार्थः-हम प्रभु जैसे व्यक्तियों के संग में चलें। यही प्रभु के समीप पहुँचने का मार्ग है। इसी से हम पर्याप्त धन को प्राप्त करेंगे, कर्मों को सफलता से पूर्ण करेंगे और इन्द्रियों के अधिष्ठाता बन पाएँगे।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'इषां रयीणाम्' दातारम्

त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषाम्। विद्म दातारं रयीणाम्॥ २॥

(१) हे **अद्रिवः**=(अत्ति शत्रुम्) शत्रुओं का विध्वंस करनेवाले प्रभो! **त्वां**=आपको **हि**=ही **सत्यं**=सचमुच **इषां**=उत्तम प्रेरणाओं का **दातारम्**=देनेवाला **विद्म**=जानें। (२) हम आपको ही **रयीणाम्**=सब धनों का **दातारं**=दाता **विद्म**=जानें।

भावार्थ-प्रभु ही सब धनों को देनेवाले हैं। वे ही इन धनों के सदुपयोग के लिए प्रेरणाओं को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

शतमूति-शतक्रतु (प्रभु)

आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो। गीर्भिर्गृणन्ति कारवः॥ ३॥

(१) हे **शतमूते**=सैंकड़ों रक्षणोंवाले व **शतक्रतो**=सैंकड़ों प्रज्ञानों व कर्मोंवाले प्रभो! **यस्य ते**=जिन आपकी **महिमानं**=महिमा को **कारवः**=यज्ञादि कर्मों को करनेवाले लोग **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **आगृणन्ति**=सदा स्तुत करते हैं। (२) हे प्रभो! आपका वस्तुतः यशोगान तो क्रियाशील लोग ही करते हैं। उन्हीं को आपका रक्षण प्राप्त होता है, उन्हीं के लिए आप प्रज्ञान व शक्ति को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ-कारु-कुशलता से कर्म करनेवाला-प्रभु का उपासक होता है। यही प्रभु से रक्षण प्रज्ञान व शक्ति को प्राप्त करता है।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—प्रतिष्ठागायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सुनीथः (मर्त्यः)

सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा। मित्रः पान्त्यद्रुहः॥ ४॥

(१) **सः मर्त्यः**=वह मनुष्य **घा**=निश्चय से **सुनीथः**=उत्तम यज्ञोंवाला या उत्तम मार्गवाला होता है, **यं**=जिसको **मरुतः**=प्राण **पान्ति**=रक्षित करते हैं, अर्थात् प्राणसाधना करता हुआ जो मनुष्य अपने अन्दर शक्ति की उर्ध्व गतिवाला होता है, वह निश्चय से अपना रक्षण कर पाता है-उसका

शरीर नीरोग बन जाता है। (२) वह मनुष्य जीवन में उत्तम प्रणयन (मार्ग) वाला होता है **यम्**=जिसको **अर्यमा**-(अरीन् यच्छति) संयम की देवता तथा **मित्रः**=स्नेह की देवता तथा (वरुणः) निर्द्वेषता का भाव **अद्रुहः**=सब प्रकार के द्रोह से रहित हुए-हुए (पान्ति-)रक्षित करते हैं।

भावार्थ-रोगों व वासनाओं से रक्षण का मार्ग यही है कि हम प्राणसाधना में प्रवृत्त हों तथा स्नेह, संयम व निर्द्वेषता का पोषण करने के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः‌ **देवता**—इन्द्रः‌ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्‌ **स्वरः**—ऋषभः

आदित्यजूतः

दधा॑नो॒ गोम॒दश्व॑वत्सु॒वीर्य॑मादि॒त्यजू॑त एधते। सदा॑ रा॒या पु॑रु॒स्पृहा॑॥ ५॥

(१) **आदित्यजूतः**=सूर्य से प्रेरणा को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति **गोमत्**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाली, **अश्ववत्**=प्रशस्त कर्मन्द्रियोंवाली **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को **दधानः**=धारण करता है। सूर्य की तरह निरन्तर क्रियाशील जीवन बिताने से इन्द्रियाँ उत्तम शक्तिसम्पन्न बनती हैं। (२) यह व्यक्ति **सदा**=सदा **पुरुस्पृहा**=बहुतों से चाहने योग्य **राया**=ऐश्वर्य से **एधते**=बढ़ता है।

भावार्थ-सूर्य से प्रेरणा को प्राप्त करके निरन्तर क्रियाशील बननेवाला व्यक्ति प्रशस्त इन्द्रियों को, वीर्य (शक्ति) को तथा स्पृहणीय धन को प्राप्त करता है।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः‌ **देवता**—इन्द्रः‌ **छन्दः**—निचृद् गायत्री‌ **स्वरः**—षड्जः

इन्द्रं दानम् ईमहे (शवसानम्, अभीर्वम्)

तमिन्द्रं॒ दान॑मीमहे शवसा॒नम॒भीर्व॑म्। ईशा॑नं रा॒य ई॑महे॥ ६॥

(१) **तम्**=उस **इन्द्रं**=परमैश्वर्यशाली प्रभु से **दानं**=उस धन को दान की **ईमहे**=याचना करते हैं जो हमारे जीवन में **शवसानम्**=बल की तरह आचरण करता है-जो धन हमें बलवान् बनाता है तथा **अभीर्वम्**=हमें निडर बनाता है। (२) उस **ईशानं**=ईश से-स्वामी से ही हम **रायः**=दान देने योग्य धनों को मांगते हैं। हम उन धनों की याचना करते हैं, जो लोकहित के लिए दान में विनियुक्त होते हैं।

भावार्थ-प्रभु से हम उस धन की याचना करते हैं जोकि हमें (क) सबल बनाएँ, (ख) अभीरु बनाएँ, तथा (ग) दान में विनियुक्त हो।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः‌ **देवता**—इन्द्रः‌ **छन्दः**—निचृद् बृहती‌ **स्वरः**—मध्यमः

अभीरवः ऊतयः

त॒स्मिन्हि सन्त्यू॒तयो॒ विश्वा॒ अभी॑रव॒: सचा॑। तमा व॑हन्तु॒ सप्त॑यः पुरू॒वसुं॒ मदा॑य॒ हर॑यः सु॒तम्॥ ७॥

(१) **तस्मिन्**-उस प्रभु में **हि**=निश्चय से **विश्वाः**=सब **अभीरवः**=हमें भीरुता से ऊपर उठानेवाले-कायरता से दूर करनेवाले **ऊतयः**=रक्षण **सचा**=समवेत **सन्ति**-हैं। सब रक्षण प्रभु के आधार से रहते हैं। प्रभु सब रक्षणों को प्राप्त करानेवाले हैं। (२) **तम्**=उस **पुरूवसुं**=पालक व पूरक वसुओंवाले (ऐश्वर्योंवाले) प्रभु को **सप्तयः**=हमारे ये इन्द्रियाश्व **आवहन्तु**=हमारे लिए प्राप्त कराएँ। ये **हरयः**=इन्द्रियाश्व **सुतम्**=शरीर में उत्पन्न हुए-हुए सोम को **मदायः**=हर्ष व उल्लास के लिए (**आवहन्तु**)=प्राप्त कराएँ। हमारी इन्द्रियाँ बहिर्मुखी न रहकर अन्तर्मुखी हों-हम प्रभु का दर्शन करनेवाले बनें, तथा सोम का रक्षण कर पाएँ। इन्द्रियों की बहिर्मुखता वीर्यरक्षण के अनुकूल नहीं होती।

भावार्थ–प्रभु द्वारा ही सब रक्षण प्राप्त होते हैं। ये रक्षण ही हमें निडर बनाते हैं। हमारी इन्द्रियाँ अन्तर्मुखवृत्तिवाली होकर हमें प्रभुदर्शन के व सोमरक्षण के योग्य बनाएँ।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड्नुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

वरेण्य 'मद'

यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः। य आददिः स्व१र्नृभिर्यः पृतनासु दुष्टरः॥ ८॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **यः**=जो **ते मदः**–तेरी प्राप्ति से प्राप्त होनेवाला मद (उल्लास) है वह **वरेण्यः**=वरने योग्य है। वह मद **यः**=जो **वृत्रहन्तमः**=वासनाओं को अधिक-से-अधिक विनष्ट करनेवाला है। (२) हे प्रभो! वह आपका मद **नृभिः**=मनुष्यों से वरणीय है **यः**=जो **स्वः**=प्रकाश को **आददिः**=ग्रहण करनेवाला है तथा **यः**=जो मद **पृतनासु**=संग्रामों में **दुष्टरः**=शत्रुओं से तैरने योग्य नहीं है।

भावार्थ–प्रभु की उपासना से प्राप्त मद (उल्लास) (१) वासना को विनष्ट करता है, (२) प्रकाश को प्राप्त कराता है (३) शत्रुओ से अभिभूत नहीं होता।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—स्वराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'दुष्टर, श्रवाय्य व तरुता' मद

यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे॥ ९॥

(१) गतमन्त्र के मद का ही वर्णन करते हुए कहते हैं कि **यः**=जो, हे **विश्ववार**=सब से वरणीय प्रभो! अथवा सब वरणीय वस्तुओंवाले प्रभो! (**मदः**=) आपकी प्राप्ति से उत्पन्न मद है वह **दुष्टरः**=शत्रुओं से तैरने योग्य नहीं **श्रवाय्यः**=यह हमारे जीवन को यशस्वी बनानेवाला हैं, **वाजेषु**=संग्रामों में **तरुता अस्ति**=तरानेवाला है। (२) हे **शविष्ठ**=सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न! **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमारे **सवना**=जीवनयज्ञों में **आगहि**=प्राप्त होइये। हम आपके अनुग्रह से **गोमति व्रजे**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले इस शरीररूप गृह में **गोमत**=प्राप्त हों।

भावार्थ–प्रभु प्राप्ति का मद 'दुष्टर, श्रवाय्य व तरुता' है। हमें प्रभु प्राप्त हों और हम प्रशस्त इन्द्रियोंवाले शरीर को प्राप्त हों।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गव्या+अश्वया+रथया

गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया। वरिवस्य महामह॥ १०॥

(१) हे **महामह**=महान् प्रकाशवाले प्रभो! आप **नः**=हमें **यथा पुरा**=जैसे पहले युगों में उसी प्रकार **गव्या**=ज्ञानेन्द्रिय समूह को देने की कामना से, **उ**=और **अश्वया**=उत्तम कर्मेन्द्रियों को प्राप्त कराने की कामना से **उत**=और **रथया**=उत्तम शरीररथ को प्राप्त कराने की कामना से **सुवरिवस्य**= सम्यक् आदृत करिये। (२) प्रभुद्वारा उत्तम ज्ञानेन्द्रियों, उत्तम कर्मेन्द्रियों व उत्तम शरीररथ का प्राप्त कराया जाना ही हमारा महान् आदर है।

भावार्थ–प्रभु हमें उत्तम ज्ञानेन्द्रियाँ, उत्तम कर्मेन्द्रियाँ व उत्तम शरीररूप रथ प्राप्त कराते हैं। इनका ठीक प्रयोग हमें भी महान् प्रकाशवाला बनाता है।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

धन+शक्ति+बुद्धि

नहि ते शूर राधसोऽन्तं विन्दामि सत्रा। दशस्या नो मघवन्नू चिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ॥ ११॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **ते**=आपके **राधसः**-ऐश्वर्य के **अन्तं**=अन्त को **सत्रा**=सचमुच **न हि विन्दामि**-नहीं प्राप्त कर सकता हूँ-आपका ऐश्वर्य सचमुच अनन्त है। हे **मघवन्**-ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**-हमारे लिए भी आवश्यक धनों को **नूचित्**-शीघ्र ही **दशस्य**=दीजिए। (२) हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! आप ही इन आवश्यक धनों को देकर **वाजेभिः**=शक्तियों के साथ **धियः**=हमारी बुद्धियों को व कर्मों को **आविथ**=रक्षित करते हो।

भावार्थ-वे अनन्त ऐश्वर्यवाले प्रभु हमें जीवनयात्रा के लिए आवश्यक धनों को देकर हमारी शक्तियों व बुद्धियों का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

श्रावयत्सखा

य ऋष्वः श्रावयत्सखा विश्वेत्स वेद जनिमा पुरुष्टुतः।
तं विश्वे मानुषा युगेन्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुचः॥ १२॥

(१) **यः**=जो प्रभु **ऋष्वः**=दर्शनीय-सुन्दर-ही-सुन्दर हैं, **श्रावयत्सखा**=अपने मित्र बननेवालों को ज्ञान को सुनानेवाले हैं। **सः**=वे **पुरुष्टुतः**-बहुतों से स्तुति किये गये प्रभु **विश्वा इत्**=सब ही **जनिमा**=उत्पन्न होनेवालों को **वेद**=जानते हैं। (२) **तं**-उस **इन्द्रं**=परमैश्वर्यशाली **तविषं**=अतिशयेन बलवान् प्रभु को **विश्वे**-सब **यतस्रुचः**=संयत वाणीवाले पुरुष **मानुषा युगा**=मानव युगों में, अर्थात् सब कालों में **हवन्ते**=पुकारते हैं।

भावार्थ-प्रभु दर्शनीय-ज्ञान देनेवाले व सर्वज्ञ हैं। वाणी का संयम करनेवाले सभी पुरुष उस प्रभु का सदा आराधन करते हैं।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

पुरूवसुः-पुरःस्थाता

स नो वाजेष्वविता पुरूवसुः पुरःस्थाता मघवा वृत्रहा भुवत्॥ १३॥

(१) **सः**=वे प्रभु ही **वाजेषु**=संग्रामों में **नः अविता**=हमारे रक्षक हैं। **पुरूवसुः**=वे प्रभु पालक व पूरक धनोंवाले हैं। **पुरःस्थाता**=हमारे आगे ठहरनेवाले हैं-हमारे लिए नेतृत्व को देनेवाले हैं। (२) वे **मघवा**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **वृत्रहा**=वासनाओं को नष्ट करनेवाले **भुवत्**-हैं।

भावार्थ-प्रभु संग्रामों में हमारे रक्षक हैं, पालक व पूरक धनों को प्राप्त कराते हैं-हमारे मार्गदर्शक हैं-हमारी वासनाओं को विनष्ट करनेवाले हैं।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

वीरं, विचेतसं, श्रुत्यं शाकिनम्

अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम्।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा॥ १४॥

(१) **वः वीरं**=तुम्हारे शत्रुओं के कम्पित करनेवाले (वि+ईर्) **महा विचेतसम्**=महान्

विशिष्ट प्रज्ञानवाले प्रभु को **अन्धसः मदेषु**=सोमपानजनित मदों में **गिरा**=इस ज्ञान की वाणियों के द्वारा **अभिगाय**-तू गायन कर। (२) तू **इन्द्रं**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले, **नाम**=शत्रुओं को नमानेवाले-झुका देनेवाले **श्रुत्यं**=ज्ञान में प्रसिद्ध **शाकिनं**=शक्तिशाली-हमें शक्तिशाली बनानेवाले-प्रभु को **वचो यथा**=वेदवाणी के अनुसार स्तुत कर।

भावार्थ-प्रभु वीर व विचेता हैं-शत्रुओं को नष्ट करनेवाले व ज्ञानी हैं। वे ज्ञान में प्रसिद्ध व शक्तिशाली हैं। इन प्रभु का हम स्तवन करें।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

रेक्ण वसु वाजिनम् (धन व शक्ति)

द॒दी रेक्ण॑स्त॒न्वे॑ द॒दिर्वसु॑ द॒दिर्वाजे॑षु पुरुहूत वा॒जिन॑म्। नू॒नमथ॑॥ १५॥

(१) हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभो! आप **तन्वे**=हमारे शरीरों के रक्षण के लिए **रेक्णः**=धन को **ददिः**=देनेवाले हैं। आप **नूनं**=शीघ्र ही **अथ**=अभी ही **वसु**=निवास के लिए आवश्यक धन को **ददिः**=देनेवाले हैं। (२) हे प्रभो! आप **वाजेषु**=संग्रामों में **वाजिनम्**=(Power) शक्ति को **ददिः**=देनेवाले हैं।

भावार्थ-प्रभु शरीर के लिए आवश्यक धनों को देते हैं और संग्रामों में शक्ति को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—भुरिगुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

वसु प्राप्ति व शत्रुदलन

विश्वे॑षामिर॒ज्यन्तं॒ वसू॑नां सास॒ह्वांसं॑ चिद॒स्य वर्प॑सः। कृ॒प॒य॒तो नू॒नमत्यथ॑॥ १६॥

(१) तू **विश्वेषां**=सब **वसूनां**=वसुओं के-निवास के लिए आवश्यक तत्त्वों के **ईरज्यन्तं**=स्वामी, और **अस्य**=इस **कृपयतः**=(युद्धं कल्पयतः) युद्ध को करते हुए **वर्पसः**=तेजस्वी शत्रु के **सासह्वांसं**=अभिभूत करनेवाले प्रभु को **नूनं**=निश्चय से स्तुत कर। (२) हे जीव! **अथ**=अब **नूनं**=शीघ्र ही **अतिचित्**=अभी ही तू उस प्रभु को स्तुत कर। यह प्रभुस्तवन ही तेरे जीवन को सब वसुओं के प्राप्त कराने के द्वारा उत्तम बनाएगा और तेरे सब शत्रुओं को अभिभूत करके तेरे जीवन को मधुर बनाएगा।

भावार्थ-हम प्रभुस्तवन करें। यही सब वसुओं को प्राप्त करने व सब शत्रुओं को अभिभूत करने का मार्ग है।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

मीढुषे-अरंगमाय-जग्मये

म॒हः सु वो॒ अर॑मिषे॒ स्तवा॑महे मी॒ळ्हुषे॑ अरं॒ग॒मा॒य॒ जग्म॑ये।
य॒ज्ञेभि॑र्गी॒र्भिर्वि॒श्वम॑नुषां म॒रुता॑मियक्षसि॒ गाये॑ त्वा॒ नम॑सा गि॒रा॥ १७॥

(१) हे इन्द्र! **महः वः**=महान् आपके **अरं**=गमन को (ऋ गतौ) **सु इषे**=सम्यक् चाहता हूँ। इसीलिए **मीढुषे**=सुखों के वर्षक, **अरंगमाय**=पर्याप्त गमनवाले-सर्वत्र गमनवाले, **जग्मये**=सदा क्रियाशील (स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च) उस प्रभु के लिए **स्तवामहे**=हम स्तवन करते हैं। (२) हे प्रभो! आप **यज्ञेभिः**=यज्ञों के द्वारा और **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **विश्वमनुषां**=सब मननशील **मरुतां**=मनुष्यों के **इयक्षसि**=सम्पर्कवाले होते हैं (यज संगतिकरणे)। ये मननशील पुरुष

यज्ञों व ज्ञान की वाणियों के द्वारा आपको प्राप्त होते हैं। हे प्रभो! मैं **नमसा**=नमन के साथ **गिरा**–स्तुतिवाणियों से **गाये**–आपका गायन करता हूँ।

भावार्थ–मैं नमन यज्ञ व ज्ञान की वाणियों के द्वारा प्रभु का स्तवन करता हूँ। प्रभु ही हमें सब सुखों का वर्षण प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

गिरीणां अज्मभिः स्नुभिः

ये पातयन्ते अज्मभिर्गिरीणां स्नुभिरेषाम्। यज्ञं महिष्वणीनां सुम्नं तुविष्वणीनां प्राध्वरे॥ १८॥

(१) **गिरीणां**=आश्रमों में ज्ञानोपदेश करनेवाले (गृणन्ति) गुरुओं के **अज्मभिः**=जीवनमार्गों से **स्नुभिः**=इनकी स्नायुओं से–इनकी तरह उत्साह से **ये**=जो **पातयन्ते**=चलते हैं, **एषां**=इन **महिष्वणीनां**=महनीय ध्वनिवाले ज्ञानियों के **यज्ञं**=संग को (यज संगतिकरणे) हम प्राप्त हों। इनके संग में हम भी तत्त्वदर्शनवाले बनें। (२) इन **तुविष्वणीनां**=महान् ध्वनिवालों के **सुम्नं**=स्तोत्रों को **अध्वरे**=इस जीवनयज्ञ में हम प्राप्त करें। स्तोत्रों का ऊँचे-ऊँचे उच्चारण करें।

भावार्थ–हम ज्ञानोपदेष्टाओं के मार्गों व उत्साहों का अवलम्बन करते हुए चलें। हम इनके सम्पर्क में आकर प्रभु के स्तोता बनें।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—भुरिगनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

दुर्मति विनाश तथा 'ज्येष्ठ युज्य' धन की प्राप्ति

प्रभङ्गं दुर्मतीनामिन्द्र शविष्ठा भर। रयिमस्मभ्यं युज्यं चोदयन्मते ज्येष्ठं चोदयन्मते॥ १९॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् **शविष्ठ**–अतिशयेन शक्तिसम्पन्न **चोदयन्मते**=बुद्धि को प्रेरित करनेवाले प्रभो! हमारे लिए **दुर्मतीनो प्रभंङ्गं**=दुर्मतियों के विनाश को **आभर**=पुष्ट करिये। आपके अनुग्रह से हमारी सब दुर्मतियाँ दूर हों। (२) हे **चोदयन्मते**=उत्तम बुद्धियों को प्रेरित करनेवाले प्रभो! आप **अस्मभ्यं**=हमारे लिए **ज्येष्ठं**=अतिप्रशस्त व **युज्यं**=योग्य–हमारे लिए उचित अथवा हमें सबके साथ मिलानेवाले **रयिं**=धन को प्राप्त कराइये।

भावार्थ–प्रभु हमारी बुद्धियों को सत्प्रेरणा देकर दुर्मतियों को दूर करिये और प्रशस्त सबके साथ मेल करानेवाले धन को प्राप्त कराइये।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

भुज्यु पूर्व्य=शत्रु से अपना रक्षण

सनितः सुसनितरुग्र चित्र चेतिष्ठ सूनृत। प्रासहा सम्राट् सहुरिं सहन्तं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम्॥ २०॥

(१) **सनितः**–हे सब धनों के संभक्त, **सुसनितः**=खूब अच्छी प्रकार धनों का संविभाग करनेवाले, **उग्र**–तेजस्विन्, **चित्र**–(चित्) ज्ञान के देनेवाले, **चेतिष्ठ**–चेतानेवाले, **सूनृत**=प्रिय सत्य वाणीवाले प्रभो! आप **सम्राट्**–शासक हैं, शक्ति से दीप्त हैं। (२) हे प्रभो! आप **वाजेषु**=संग्रामों में **प्रासहा**=उस शत्रु का पराभव करिये जो **सहुरिं**=सबका मर्षण करनेवाला है, **सहन्तं**=सहनेवाला है–शत्रुकृत घाटे से न घबरानेवाला है। **भुज्युं**=अपने भोग को बढ़ानेवाला है तथा **पूव्यम्**=पहले आक्रमण करनेवाला है।

भावार्थ–प्रभु ही शासक हैं। वे हमारे अपने भोग को बढ़ानेवाले तथा प्रथम आक्रमण करनेवाले शत्रु को कुचलनेवाले हैं।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—पृथुश्रवसः कानीतस्य दानुस्तुतिः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

क्रियाशीलता व 'पूर्तं कर्मों' को करना

आ स एतु ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे।
यथा चिद्वशो अश्व्यः पृथुश्रवसि कानीतेऽस्या व्युष्याददे॥ २१॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **सः**=वह **आ एतु**=हमारे पास सर्वथा प्राप्त हो **यः**=जो **आ ईवत्**=सर्वथा गतिशील है। अकर्मण्य का प्रभु के समीप प्राप्त होने का अधिकार नहीं। वह प्रभु के समीप प्राप्त हो, जो **अदेवः**=देववृत्ति को पूर्णतया न अपना सकने पर भी **पूर्तम् आददे**=बावड़ी, कुआँ, तालाब व पूजागृह आदि के निर्माण के कार्यों को **आददे**=स्वीकार करता है। कुछ न कुछ लोकहित करनेवाला प्रभु के समीप प्राप्त होता ही है। (२) **यथाचिद्**=जैसे-जैसे **वशः**=इन्द्रियों को वश में करनेवाला और **अश्व्यः**=इन्द्रियाश्वों को प्रशस्त बनानेवाला यह उपासक **पृथुश्रवसि**=विशाल ज्ञानदीप्तिवाली **कानीते**=प्रकाश से चमकनेवाली-ज्ञान व स्वास्थ्य के तेज को प्राप्त करानेवाली **अस्याः**=इस **व्युषि**=उषा के उदित होने पर **आददे**=इन पूर्तकर्मों को स्वीकार करता है, उसी अनुपात में यह प्रभु के समीप होता है।

भावार्थ—इस क्रियाशील बनकर लोकहित के कर्मों में प्रवृत्त हों। यही प्रभुप्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—पृथुश्रवसः कानीतस्य दानुस्तुतिः॥ **छन्दः**—निचृद् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

अश्व-उष्ट्र-गौ

षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्रानां विंशतिं शता।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा॥ २२॥

(१) 'अश्नुते इति अश्वः, तेषु उत्तमः अश्व्यः' **अश्व्यस्य**=व्यापक तत्त्वों में सर्वोत्तम उस प्रभु के **अयुता**=सदा साथ रहनेवाले **षष्टिं सहस्रा**='आध्यात्मिक-आधिभौतिक व आधिदैविक' इन त्रिविध अश्वों के कारण बीस हज़ार होते हुए भी साठ हजार मन्त्ररूप वचनों को मैं **असनम्**=प्राप्त करूँ। इन मन्त्ररूप वचनों के द्वारा होनेवाले **उष्ट्राणां विंशतिं** (उष दाहे+त्र)=दोषदहन की २० क्रियाओं को **शता**=शतवर्षपर्यन्त प्राप्त करूँ। मेरे दसों प्राण व दसों इन्द्रियाँ बड़ी निर्दोष बनें। इन बीस के सब दोष ज्ञानाग्नि में दग्ध हो जाएँ। (२) इस प्रकार दोषदहन से **दश श्यावीनां**=(श्यैङ् गतौ) दस गतिशील इन्द्रियों को भी **शता**=शतवर्षपर्यन्त प्राप्त करूँ। इन्द्रियाँ निर्दोष बनें और सौ वर्ष तक ठीक कार्य करती रहें। इन इन्द्रियों के ठीक होने पर **त्र्यरुषीणाम्**=शरीर, मन व मस्तिष्क-तीनों को आरोचमान बनानेवाली अथवा 'ज्ञान-कर्म-उपासना' तीनों का प्रकाश करनेवाली **गवां**=वेदवाणीरूपी गौओं को **दश दश**=दस गुणा दस अर्थात् १०० वर्ष तक प्राप्त करूँ। ये वेदवाणीरूप गौएँ **सहस्रा**=मेरे लिए (स+हस्) आनन्दोल्लास को देनेवाली हों।

भावार्थ—प्रभु के मन्त्ररूप वचनों को प्राप्त करके मैं प्राणों व इन्द्रियों को ज्ञानाग्नि में निर्दोष बना पाऊँ। मेरी ये निर्दोष इन्द्रियाँ खूब क्रियाशील हों, और ये ज्ञान, कर्म व उपासना का प्रकाश करनेवाली वेदवाणीरूप गौओं के दुग्ध का पान करें और आनन्द को सिद्ध करें।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—पृथुश्रवसः कानीतस्य दानुस्तुतिः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

रथ के दस घोड़े

दश॑ श्या॒वा ऋ॒धद्र॑यो वी॒तवा॑रास आ॒शवः॑। म॒थ्रा ने॒मिं नि वा॑वृतुः॥ २३॥

(१) **दश**=दस **श्यावाः**=गतिशील इन्द्रियाश्व **नेमिं**=रथचक्र को **निवावृतुः**=निश्चय से परिवृतत करते हैं—आगे और आगे ले-चलते हैं। शरीर ही रथ हैं, इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े हैं। ये दस घोड़े इस रथ में जुते हैं। ये ही इसे उन्नति के मार्ग पर आगे और आगे ले-चलनेवाले हैं। (२) ये इन्द्रियाश्व **ऋधद्रयः**=बढ़े हुए वेगवाले हैं। **वीतवारासः**=ये प्राप्त वरणीय शक्तिवाले हैं। **आशवः**-शीघ्रता से मार्ग का व्यापन करनेवाले हैं और **मथ्रा**=शत्रुओं को कुचल देनेवाले हैं।

भावार्थ—हमारे इन्द्रियाश्व गतिशील वेगवान्-बलवान् मार्ग का व्यापन करनेवाले व शत्रुओं को कुचलनेवाले हों।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—पृथुश्रवसः कानीतस्य दानुस्तुतिः॥ **छन्दः**—निचृद् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

हिरण्यय रथ

दाना॑सः पृथु॒श्रव॑सः कानी॒तस्य॑ सु॒राध॑सः।
रथं॑ हिर॒ण्ययं॑ दद॒न्मंहि॑ष्ठः सू॒रिर॑भू॒द्वर्षि॑ष्ठमकृत॒ श्रवः॑॥ २४॥

(१) उस **पृथुश्रवसः**-विस्तृत कीर्तिवाले, **कानीतस्य**-दीप्त, **सुराधसः**=शोभन ऐश्वर्योंवाले प्रभु के **दानासः**=ये सब दृश्यमान दान है। गतमन्त्र में वर्णित दस इन्द्रियाश्व भी उस प्रभु की ही देन हैं। (२) **हिरण्ययं रथं ददत्**—इस ज्योतिर्मय शरीररथ को देता हुआ वह प्रभु **मंहिष्ठः**=हमारे लिए दातृतम है—सर्वोत्तम दाता है। इन वस्तुओं को देने के साथ वे प्रभु **सूरिः अभूत्**=प्रेरणा देनेवाले हैं। इन वस्तुओं का प्रयोग व प्रतियोग न करके यथायोग करने के लिए प्रभु प्रेरणा दे रहे हैं। इस प्रेरणा के द्वारा ही प्रभु हमारे लिए **चर्षिहष्ठ**=अत्यन्त उत्कृष्ठ व बहुत **अवः**=ज्ञान को **अकृत**=करते हैं। इस ज्ञान से ही तो हमारा जीवन पवित्र बनता है।

भावार्थ—प्रभु के दान अनन्त हैं। प्रभु ने यह ज्योतिर्मय शरीररथ हमें दिया है। इसको चलाने के लिए वे प्रेरणा दे रहे हैं। इस प्रेरणा से ही हमारा ज्ञान बढ़ता है।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—वायुः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

तने, मखाय, पाजसे

आ नो॑ वायो म॒हे तने॑ या॒हि म॒खाय॒ पाज॑से।
व॒यं हि ते॑ चकृ॒मा भूरि॑ दा॒वने॑ स॒द्यश्चि॒न्महि॑ दा॒वने॑॥ २५॥

(१) हे **वायो**=गति के द्वारा सब बुराइयों का विध्वंस करनेवाले प्रभो! **आयाहि**—आप आइये। **नः**=हमारे **महे**=महान् **तने**=शक्ति के विस्तार के लिए आप हमें प्राप्त होइये। **मखाय**=यज्ञों के लिए तथा **पाजसे**=शक्ति के लिए आप हमें प्राप्त होइए। (२) **वयं**=हम **भूरिदावने**=खूब ही देनेवाले **ते**=आपके लिए **हि**=निश्चय से **चकृमा**=स्तुति को करें। **महिदावने**=महान् दाता के लिए **सद्यः चित्**=शीघ्र ही स्तुति को करें।

भावार्थ—प्रभुस्तवन द्वारा हम प्रभु के सान्निध्य को प्राप्त करें। यह सान्निध्य हमारी शक्तियों के विस्तार के लिए—यज्ञ की प्रवृत्ति के लिए तथा बल के लिए हो। उस महान् दाता प्रभु का स्मरण करते हुए हम भी दानशील बनें।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ देवता—वायुः॥ छन्दः—स्वराड् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

अश्वेभिः वहते, उस्राः वस्ते

यो अश्वेभिर्वहते वस्त उस्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनाम्।
एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपा दानाय शुक्रपूतपाः॥ २६॥

(१) **यः**=जो **अश्वेभिः**=इन्द्रियाश्वों के द्वारा **वहते**=शरीररथ को लक्ष्य की ओर ले-जाता है, वह **सप्ततीनां**=(सप्=To worship)प्रभुपूजन करनेवाली वेदवाणियों के **त्रिः सप्त**=तीन प्रकार से–आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक अर्थ भेद से–सात छन्दों में प्रतिपादित **उस्राः**=ज्ञानरश्मियों को **वस्ते**=धारण करता है। (२) यह ज्ञानरश्मियों को धारण करनेवाला व्यक्ति **एभिः**=इन **सोमेभिः**=सोमकणों के द्वारा और **सोमसुद्भिः**=सोम का अभिषव करनेवाले पुरुषों के सम्पर्क में **सोमपाः**=सोम का पान (रक्षण) करनेवाला होता हुआ **दानाय**=सदा दान के लिए होता है–देने की वृत्तिवाला बनता है। **शुक्रपूतपाः**=शुक्र से–वीर्य से–पूत–पवित्र हुई–हुई इन्द्रियों का रक्षण करनेवाला बनता है।

भावार्थ–हमें चाहिए कि (१) इन्द्रियाश्वों के द्वारा शरीररथ को लक्ष्य की ओर ले-चलें। (२) वेदवाणियों की ज्ञान किरणों को धारण करें। (३) सोम का रक्षण करें। (४) सोम से सबल बनी हुई इन्द्रियों का रक्षण करें, (५) दान की वृत्तिवाले हों।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ देवता—वायुः॥ छन्दः—निचृद् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

सुकृत्तराय सुक्रतुः

यो म इमं चिदु त्मनामन्दच्चित्रं दावने।
अरट्वे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि सुकृत्तराय सुक्रतुः॥ २७॥

(१) **यः**=जो प्रभु **मे**=मेरे लिए **चिद् उ**=निश्चय से **इमं**=इस **चित्रं**=ज्ञानप्रद धन को **दावने**=देने के लिए **त्मना**=स्वयं **अमन्दत्**=आनन्द का अनुभव करता है। वे प्रभु **अरट्वे**=न रोनेवाले, **अ-क्षे**=न क्षीण होनेवाले, **नहुषे**=अपने को औरों से बाँधनेवाले (नह बन्धने) **सुकृत्वनि**= उत्तमता से कर्तव्य कर्मों को करनेवाले पुरुषों में **सुकृत्तराय**=शोभनकर्मों को करनेवाले के लिए **सुक्रतुः**=उत्तम प्रज्ञान व शक्तिवाला होता है। (२) प्रभु हमारे लिए ज्ञानप्रद धन को देते हुए आनन्दित होते हैं। हम संसार में रोयें नहीं, क्षीणशक्ति न हो जाएँ, औरों के साथ अपने को बाँधकर चलें, उत्तम कर्तव्य कर्मों को करनेवाले बनें। सुकृत्तर बनें–पुण्य कर्म करनेवाले बनें। प्रभु हमें शक्ति देंगे।

भावार्थ–प्रभु हमारे लिए ज्ञानरूप धन को देते हैं। हम शोभनकर्मों में प्रवृत्त होंगे तो प्रभु से शक्ति व प्रज्ञान को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ देवता—वायुः॥ छन्दः—निचृद् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

'अश्वेषितं-रजेषितं-शुनेषितं' अज्म

उचथ्ये३ वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत्॥ २८॥

(१) **उचथ्ये**=स्तुति में उत्तम (स्तुत्य) **वपुषि**=शरीर में **यः**=जो **स्वराट्**=स्वयं शासन करनेवाला बनता है। **उत**=और हे **वायो**=गति के द्वारा सब बुराइयों का संहार करनेवाले प्रभो! जो **घृतस्नाः**=ज्ञान की दीप्ति में स्नान करके अपना शोधन करता है। यही घर को उत्तम बनाता है।

(२) **अश्वेषितं**=(अश् व्याप्तौ) सर्वव्यापक प्रभु से प्रापित **रजेषितं**=(रञ्ज्) रञ्जनात्मक-आनन्दमय-प्रभु से प्राप्ति तथा **शुनेषितं**-(शुन गतौ) गतिमय प्रभु से प्रापित **तत्**=वह **इदं**=यह **नु**=निश्चय से **तत् प्र अज्म**=वह प्रकृष्ट गृह है (अज्म=home)। प्रभु ने यह शरीररूप गृह प्राप्त कराया है। हमें चाहिए कि हम भी कुछ व्यापक उदारवृत्तिवाले बनें, आनन्दमय स्वभाववाले बनें तथा गतिशील हों। तभी यह शरीरगृह उत्तम बनेगा।

भावार्थ-इस शरीरगृह में हम स्तुति करनेवाले बनें, ज्ञान में अपने को पवित्र करें। उदार प्रसन्न व गतिशील बनकर शरीरगृह को उत्तम बनाएँ। इसके लिए ऐसा कहा जा सके कि-'घर तो यह है।'

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वेदवचन+शक्तिसिक्त इन्द्रियाँ

अर्ध प्रियमिषिरायं षष्टिं सहस्रासनम्। अश्वानामिन्न वृष्णाम्॥ २९॥

(१) **अध**-सब **इषिराय**=उस प्रेरक प्रभु के लिए **प्रियं**=प्रिय **षष्टिं सहस्रा**=आध्यात्मिक-आधिभौतिक व आधिदैविक अर्थभेद से २० हज़ार होते हुए भी जो ६० हज़ार हैं उन वेदवचनों को **असनम्**=मैं प्राप्त करूँ। (२) **न**=इसी प्रकार **इत्**=निश्चय से **वृष्णाम् अश्वानाम्**=शक्ति का सेचन करनेवाले इन्द्रियाश्वों का ग्रहण करूँ।

भावार्थ-वेदवचनों का ग्रहण करते हुए हम प्रभु के प्रिय बनें। शक्तिसिक्त इन्द्रियों को प्राप्त करें।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु के समीप

गावो न यूथमुप यन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः॥ ३०॥

(१) **न**-जिस प्रकार **गावः**=गौवें, अपने रक्षण के लिए **यूथम्**=गोसमूह को प्राप्त होती हैं। अलग न घूमकर झुण्ड में ही आ जाती है, उसी प्रकार **वध्रयः**=अपने को व्रतों की रज्जु में बाँधनेवाले संयमी लोग **उपयन्ति**=अपने रक्षणों के लिए प्रभु के समीप प्राप्त होते हैं। (२) प्रभु कहते हैं कि ये **वध्रयः**=संयमी पुरुष **मा उपयन्ति**-मुझे समीपता से प्राप्त होते हैं। प्रभु सामीप्य में ही ये अपने को सुरक्षित अनुभव करते हैं।

भावार्थ-हम व्रतों के बन्धनों में अपने को बाँधते हुए अपने रक्षण के लिए प्रभु के इस प्रकार समीप हों, जैसे गौवें झुण्ड के समीप।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—स्वराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

चारथ गण की शुद्धता

अध यच्चारथे गणे शतमुष्ट्रौँ अचिक्रदत्। अध श्वित्नेषु विंशतिं शता॥ ३१॥

(१) शरीर चरथ हैं। इसमें इन्द्रियों का समूह व प्राणों का समूह 'चारथ गण' है। **अध**=अब **यत्**-जब **चारथे गणे**=इस शरीरस्थ इन्द्रियसमूह व प्राणसमूह में **शतं**=शतवर्षपर्यन्त **उष्ट्रान्** (उष दाहे)=दोषदहन की वृत्तियों-शक्तियों को **अचिक्रदत्**=पुकारता है **अध**-तो **श्वित्नेषु**=इन श्वेतगणों में **विंशतिं**=बीस दोषदहन प्रक्रियाओं को **शता**-शतवर्षपर्यन्त प्राप्त करता है। (२) प्रभु से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि वे हमारे इन्द्रियसमूह व प्राणसमूहों को दग्धदोष करें, और इन बीस संख्यावाले प्राणेन्द्रिय समूह में शतवर्षपर्यन्त ये दोषदहन प्रक्रियाएँ चलती रहें।

भावार्थ—हमारा इन्द्रियों व प्राणों का समूह दोषदहन से निर्दोष बने। यह समूह निर्मल व श्वेत बन जाएँ।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः **देवता**—वायुः **छन्दः**—बृहती **स्वरः**—मध्यमः

इन्द्रगोपाः-देवगोपाः

शतं दासे बल्बूथे विप्रस्तरुक्ष आ ददे।
ते ते वायविमे जना मदन्तीन्द्रगोपा मदन्ति देवगोपाः॥ ३२॥

(१) **विप्रः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाला व्यक्ति **दासे**=शत्रुओं का उपक्षय होने पर तथा **बल्बूथे**-बल का गृह बनने पर **तरुक्षः**=उस तारक प्रभु में (क्षि निवासे) निवास करनेवाला होता हुआ **शतं**=शतवर्ष के जीवन को **आददे**=ग्रहण करता है। (२) हे **वायो**=गति के द्वारा सब बुराइयों का गन्धन करनेवाले प्रभो! **इमे जनाः**=ये लोग **ते**=आपके हैं और **ते**=वे **इन्द्रगोपाः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु से रक्षित होते हुए (इन्द्रः गोपाः येषां) **मदन्ति**=आनन्द का अनुभव करते हैं। **देवगोपाः**=दिव्यगुणों का रक्षण करनेवाले ये लोग (देवानां गोपाः) **मदन्ति**=आनन्दित होते हैं।

भावार्थ—हम वासनाओं का क्षय करके तथा बल का गृह बनकर प्रभु में निवास करते हुए सौ वर्ष तक जीनेवाले बनें। प्रभु से रक्षित होते हुए और दिव्यगुणों का रक्षण करते हुए हम आनन्दित हों।

ऋषिः—वशोऽश्व्यः **देवता**—इन्द्रः **छन्दः**—निचृद्गायत्री **स्वरः**—षड्जः

'मही योषणा अधिरुक्मा'

अध स्या योषणा मही प्रतीची वशमश्व्यम्। अधिरुक्मा वि नीयते॥ ३३॥

(१) **अध**=अब **स्या**=वह **योषणा**=बुराइयों को पृथक् करनेवाली व अच्छाइयों को मिलानेवाली यह वेदवाणीरूप माता **मही**=महनीय होती हुई **अधिरुक्मा**=अतिशयित ज्ञानरूप रुक्माभरणोंवाली **वशं**=अपनी इन्द्रियों को वश में करनेवाले **अश्वयं**=प्रशस्तेन्द्रिय पुरुष के **प्रतीची**=अभिमुख प्राप्त होनेवाली **विनीयते**=ले जायी जाती हैं। (२) जितेन्द्रिय पुरुष को यह वेदवाणी प्राप्त होती है। यह उसके जीवन से सब दोषों को दूर करती है और अच्छाइयों को प्राप्त करती है। यह ज्ञानरूप देदीप्यमान आभरणोंवाली वेदवाणी इस वश को ही प्राप्त होती है।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय (वश) व प्रशस्तेन्द्रिय (अश्व्य) बनें। हमें वेदज्ञान प्राप्त होगा। यह हमारे जीवन का पवित्र व दीप्त बनाएगा। इस योषणा के द्वारा-बुराइयों को पृथक् करनेवाली वेदवाणी के द्वारा -'हम त्रित' बनते हैं—काम-क्रोध-लोभ तीनों को तैर जाते हैं तथा 'आप्त्य' बनते हैं—प्रभु को प्राप्त करनेवालों में उत्तम। यह 'त्रित आप्त्य' आदित्यों का स्तवन करता है—

४७. [सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—त्रित आप्त्यः **देवता**—आदित्याः **छन्दः**—जगती **स्वरः**—निषादः

'मित्र और वरुण' का महान् रक्षण

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे ।
यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशदनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ १॥

(१) हे **वरुण**=निर्द्वेषता के दिव्यभाव, **मित्र**=स्नेह के दिव्यभाव! **महतो**=महान् **वः**=आपका

अवः=रक्षण **महि**=महान् है। यह रक्षण **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिए होता है-उस व्यक्ति के लिए जो आपके प्रति अपने को दे डालता है-जिसकी साधना यही होती है कि निर्द्वेष बनना है और प्रेमवाला बनना है। (२) हे **आदित्याः**=उत्तमताओं का आदान करनेवाले दिव्यभावो! **यं**=जिसको **द्रुहाः**=द्रोह की भावना से **अभिरक्षथ**=आप बचाते हो, इस व्यक्ति को **ईम्**=निश्चय से **अघं**=पाप **न नशत्**=नहीं व्यापता। हे आदित्यो! **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **अनेहसः**=हमें निष्पाप बनानेवाले हैं। **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थ-मित्र और वरुण व आदित्यों का रक्षण महान् है। ये हमें द्रोह की भावना से बचाकर निष्पाप बनाते हैं। इनके रक्षण उत्तम हैं व पवित्र बनानेवाले हैं।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

पक्षा वयो यथोपरि

**विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम्।
पक्षा वयो यथोपरि व्य१स्मे शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ २॥**

(१) हे **आदित्यासः**=सब अच्छाइयों का आदान करनेवाले **देवाः**=देवो! दिव्यभावो! आप **अघानां**=पापों के **अपाकृतिम्**=दूरीकरण को **विद**=जानते हो, अर्थात् आप सब अशुभ-वृत्तियों को हमारे से दूर करते हो। (२) **यथा**=जैसे **वयः**=पक्षी **पक्षा**=पंखों को अपने बच्चों के **उपरि**=ऊपर उनके रक्षण के लिए करते हैं, इसी प्रकार आप **अस्मे**=हमारे लिए **शर्म**=शरण को **वियच्छत**=विशेष रूप से दो। **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **अनेहसः**=निष्पाप हैं। **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण है।

भावार्थ-मित्र वरुण आदि आदित्य देवों का रक्षण हमारे जीवनों को निष्पाप बनाता है। ये हमारा उत्तम रक्षण करते हैं।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

वरूथ्य धनों की प्राप्ति

**व्य१स्मे अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यन्तन।
विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहे ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ ३॥**

(१) हे देवो! **अस्मे**=हमारे लिए **तत् शर्म**=उस शरण को **अधिवियन्तन**=आधिक्येन प्राप्त कराओ, **न**=जैसे **वयः**=पक्षी **पक्षा**=अपने पंखों को बच्चों के रक्षण के लिए प्राप्त कराते हैं। (२) हे **विश्ववेदसः**=सम्पूर्ण धनोंवालो देवो! आपसे **विश्वानि**=सब **वरूथ्यानि**=गृहोचित धनों को **मनामहे**=माँगते हैं। **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **अनेहसः**=निष्पाप हैं-हमारे जीवनों को पापशून्य बनानेवाले हैं। **वः**=आपके रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थ-मित्र, वरुण आदि दिव्यभाव हमें गृहोचित सब उत्तम धनों को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

विश्वस्य रायः ईशते

**यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः।
मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशते ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ ४॥**

(१) **अस्मा**=हमारे लिए, हे **आदित्यः**=अच्छाइयों का आदान करनेवाले दिव्यभावो! आप

क्षयं=उत्तम निवास को **च**=व **जीवातुं**=जीवनौषध को **अरासत**=दीजिए। (२) **इमे**=ये आदित्य **घा इत्**=निश्चय से **विश्वस्य**=सब **प्रचेतसः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले **मनोः**=विचारशील पुरुष के **रायः**=धनों के **ईशते**=ऐश्वर्यवाले हैं, अर्थात् ये आदित्य सब ज्ञानादि उत्तम ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हैं। **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **अनेहसः**=निष्पाप हैं–हमें पापशून्य जीवनवाला बनाते हैं। **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थ–आदित्यवृत्तियाँ हमारे लिए प्रकृष्ट ज्ञान के साथ सब आवश्यक धनों को प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

निष्पापता

परि॑ णो वृणजन्न॒घा दु॒र्गाणि॑ र॒थ्यो॑ यथा ।
स्यामेदिन्द्र॑स्य॒ शर्म॑ण्यादि॒त्याना॑मु॒ताव॑स्यने॒हसो॑ व ऊ॒तयः॑ सुऊ॒तयो॑ व ऊ॒तयः॑ ॥ ५ ॥

(१) **नः**=हमें **अघा**=पाप **परिवृणजन्**=सर्वथा छोड़ जाएँ, **यथा**=जैसे **रथ्यः**=रथ का वहन करनेवाले घोड़े **दुर्गाणि**=गड्ढे आदि विषम मार्गों को छोड़ जाते हैं। (२) हम **इत्**=निश्चय से **इन्द्रस्य**=उस शत्रुविद्रावक प्रभु की **शर्मणि**=शरण में (shelter) **स्याम**=हों। **उत**=और **आदित्यानाम्**=आदित्यों के **अवसि**=रक्षण में हों। हे आदित्यो! **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **अनेहसः**=हमें निष्पाप बनाते हैं **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थ–आदित्यवृत्तियाँ व प्रभु की शरण हमें निष्पाप बनानेवाली हों।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

अदभ्र धन

प॒रिह्वृ॒तेद॒ना जनो॑ यु॒ष्माद॑त्तस्य वायति ।
देवा॒ अद॑भ्रमाश वो॒ यमा॑दित्या॒ अहे॑तनाने॒हसो॑ व ऊ॒तयः॑ सुऊ॒तयो॑ व ऊ॒तयः॑ ॥ ६ ॥

(१) **परिह्वृता इत् अना**=तप नियम आदि से परिपीड़ित शरीर से ही युक्त **जनः**=मनुष्य **युष्मादत्तस्य**=हे देवो! आपसे दिये हुए धन को **वायति**=प्राप्त होता है। (२) हे **आशवः**=शीघ्र गतिवाले **आदित्याः**=अच्छाइयों का आदान करनेवाले **देवाः**=देवो! आप **यं**=जिसको **अहेतन**=व्याप्त करते हो–प्राप्त होते हो, वह–वह **अदभ्रं**=अनल्प बहुत अधिक धन को प्राप्त होता है। **वः**=तुम्हारे **ऊतयः**=रक्षण **अनेहसः**=हमें निष्पाप बनानेवाले हैं। **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थ–तपस्वी पुरुष ही आदित्यों से अनल्प धन को प्राप्त करता है।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

क्रोध से मार्गभ्रष्ट न होना

न तं ति॒ग्मं च॒न त्यजो॒ न द्रा॑सद॒भि तं गु॒रु ।
यस्मा॑ उ॒ शर्म॑ स॒प्रथ॒ आदि॑त्यासो॒ अरा॑ध्वमने॒हसो॑ व ऊ॒तयः॑ सुऊ॒तयो॑ व ऊ॒तयः॑ ॥ ७ ॥

(१) हे **आदित्यासः**=अच्छाइयों का आदान करनेवाले देवो! **यस्मा**=जिसके लिए आप **उ**=निश्चय से **सप्रथः**=विस्तृत **शर्म**=शरण को **अराध्वम्**=देते हो, **तं**=उस व्यक्ति को **तिग्मं चन**=बड़ा तीव्र भी **त्यजः**=क्रोध **न द्रासत्**=कुत्सित गतिवाला नहीं करता है। **तं**=उसको **गुरु**=महान्

क्रोध भी **न अभि** (द्रासत्)-कुत्सित गतिवाला नहीं करता। (२) हे आदित्यो! **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **अनेहसः**=निष्पाप हैं। **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं। आपके रक्षणों से रक्षित होकर हम निष्पाप बनते हैं।

भावार्थ–आदित्यों से रक्षित हुआ-हुआ पुरुष तीव्र व महान् क्रोध से कुत्सित गतिवाला नहीं होता। क्रोध के कारण यह कुकर्म नहीं करता।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

देव-संग

युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्तइव वर्मसु ।
यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ८ ॥

(१) हे **देवाः**=देवो! दिव्य वृत्तिवाले पुरुषो! **युष्मे अपि ष्मसि**=आपमें हम अपिहित (ढके हुए) हों। आपमें हम इस प्रकार सुरक्षित हों, **इव**=जैसे **युध्यन्तः**=युद्ध करते हुए लोग **वर्मसु**= कवचों में सुरक्षित होते हैं। कवच जिस प्रकार शस्त्रों के घात से हमें बचाता है, उसी प्रकार देव हमारा रक्षण करते हैं। (२) हे देवो! **यूयं**=आप **नः**=हमें **महः एनसः**=महान् पापों से **उरुष्यत**=बचाते हो। **यूयं**=आप ही हमें **अर्भात्**=छोटे पापों से रक्षित करते हो। **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **अनेहसः**=हमें निष्पाप बनानेवाले हैं। **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण है। सत्संग हमें सब प्रकार से पापों के आक्रमण से बचाता है। (३) यहाँ इस सूक्त में १८ बार '**अनेहसो व ऊतयः**' कहा गया है। १८ ही व्यसन हैं। १० कामज, ८ क्रोधज। इन सब व्यसनों से यह सत्संग हमारा रक्षण करता है। जीवित पुरुषों के सत्संग की तरह ही दिवंगत पुरुषों का संग भी उनके ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा प्राप्त होता है। यह संग सर्वोत्तम संग है।

भावार्थ–देव पुरुषों का संग हमें सब पापों के आक्रमण से बचाता है।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

अदिति

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु ।
माता मित्रस्य रेवतोऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ९ ॥

(१) **अदितिः**=अदीना देवमाता-हमें दीनता से ऊपर उठानेवाली और दिव्यगुणों को जन्म देनेवाली स्वास्थ्य की देवता **नः**=हमें **उरुष्यतु**=रक्षित करे। यह **अदितिः**=स्वास्थ्य की देवता **शर्म**=सुख को **यच्छतु**=दे। (२) यह स्वास्थ्य की देवता **मित्रस्य**=मित्र की **रेवतः**=रेवान् की **अर्यम्णः**=अर्यमा की **च वरुणस्य**=और वरुण की माता-निर्माण करनेवाली है। यह हमें स्नेहवाला (मित्र) धनवान् (रेठेवान्) संयमी (अर्यमा) व निर्द्वेष (वरुण) बनाती है। हे देवो! **वः**-आपके **ऊतयः**=रक्षण **अनेहसः**=हमें निष्पाप बनाते हैं। **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थ–स्वास्थ्य हमें रक्षित करता है-सुखी बनाता है। यह हमें स्नेहवाला, धनी, संयमी व निर्द्वेष बनाता है।

ऋषिः—त्रित आप्त्यःङ्क **देवता**—आदित्याःङ्क **छन्दः**—स्वराट् त्रिष्टुपङ्क **स्वरः**—धैवतःङ्क

शरणं (=घर)

यद्देवाः शर्म शरणं यद्भद्रं यदनातुरम् ।

त्रिधातु यद्वरूथ्यं१ तदस्मासु वि यन्तनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १० ॥

(१) हे **देवाः**=दिव्यभावो! **यत्**=जो **शरणं**=गृह **शर्म**=सुख को देनेवाला है, **यद्**=जो **भद्रं**=कल्याण कर है, **यद्**=जो **अनातुरम्**=सब रोगों से रहित है, **त्रिधातु**='शरीर, मन व बुद्धि' तीनों का सुन्दरता से धारण करनेवाला है और **यद्**=जो **वरूथ्यम्**=उत्तम धनवाला है व कष्ट का निवारण करनेवाला है, **तद्**=उस घर को **अस्मासु वियन्तन**=हमारे लिए प्राप्त कराइये। (२) हे देवो! **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **अनेहसः**=निष्पाप हैं-हमें पापशून्य बनानेवाले हैं। **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थ-दिव्यगुणों के धारण से घर सुख व कल्याण को करनेवाला तथा नीरोग व उत्तम शरीर, मन व बुद्धिवाला तथा कष्टों से रहित बनता है।

ऋषिः—त्रित आप्त्यःङ्क **देवता**—आदित्याःङ्क **छन्दः**—स्वराट् त्रिष्टुपङ्क **स्वरः**—धैवतःङ्क

आदित्यों की कृपादृष्टि

आदित्या अव हि ख्यताधि कूलादिव स्पशः ।

सुतीर्थमर्वतो यथानु नो नेषथा सुगमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ११ ॥

(१) हे **आदित्याः**=अच्छाइयों का आदान करनेवाले आदित्यो! आप अधः स्थित हम लोगों का **हि**=निश्चय से **अव ख्यत**=इस प्रकार ध्यान करिये, **इव**=जिस प्रकार **अधिकूलात्**=ऊपर किनारे से **स्पशः**=द्रष्टा लोग अधोगत उदक को देखते हैं। वहाँ स्थित लोग **यथा**=जिसप्रकार **अर्वतः**=घोड़ों को **सुतीर्थम्**=उत्तम घाट पर पानी पीने के लिए ले-जाते हैं, उसी प्रकार **नः**=हमें **सुगम् अनुनेषथा**=सुन्दर गमनयोग्य मार्ग पर ले-चलिये। (२) माता, पिता, आचार्य व अतिथियों का कार्य यही है कि छोटों के लिए वे मार्ग प्रणेता हों। हे आदित्यो! **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **अनेहसः**=निष्पाप हैं-हमें पापशून्य जीवनवाला बनाते हैं। **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थ-आदित्यों के निरीक्षण में हम उत्तम मार्गों से गति करते हुए निष्पाप व सुन्दर जीवनवाले बनें।

ऋषिः—त्रित आप्त्यःङ्क **देवता**—आदित्याःङ्क **छन्दः**—निचृज्जगतीङ्क **स्वरः**—निषादःङ्क

रक्षस्वी का अकल्याण

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।

गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १२ ॥

(१) अपने रक्षण के लिए औरों का क्षय करनेवाला पुरुष 'रक्षस्वी' है। **इह**=यहाँ संसार में **रक्षस्विने**=इस रक्षस्वी पुरुष के लिए **भद्रं न**=कल्याण न हो। **अवयै**=निम्न गतिवाले के लिए **न**=कल्याण न हो **उत**=और **उपयै न**=हिंसा के लिए हमारी ओर आते हुए के लिए कल्याण न हो। (२) **धेनवे**=नवसूतिका दुधार **गवे च**=गौ के लिए निश्चय से **भद्रं**=कल्याण हो, **च**=तथा **श्रवस्यते**=यशस्वी जीवन की कामनावाले **वीराय**=वीर पुरुष के लिए कल्याण हो। **वः**=आपके

ऊतयः=रक्षण **अनेहसः**=निष्पाप हों, **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हों।

भावार्थ—रक्षस्वी-निम्न गतिवाले-हिंसा के लिए समीप आनेवाले का अकल्याण ही होता है। नवसूतिका गौ व यशस्वी वीर का कल्याण हो।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

यद् आविः, यद् अपीच्यम्

यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम् ।
त्रिते तद्विश्वमाप्त्य आरे अस्मद्दधातनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १३ ॥

(१) **यद्**=जो भी **आविः**=प्रकट पाप है और **यद् अपीच्यम्**=जो अन्तर्हित **दुष्कृतं अस्ति**=पाप है, हे **देवासः**=देवो! **तद्**=उस **विश्वं**=सब पाप को **त्रिते**=काम, क्रोध, लोभ को तैरनेवाले **आप्तये**=प्रभु प्राप्ति में उत्तम पुरुषों की अधीनता में रहनेवाले **अस्मद्**=हम लोगों से **आरे दधातन**=दूर स्थापित करिये। त्रितों व आप्त्यों के सम्पर्क में रहते हुए हम पापों से सदा दूर रहें। (२) हे देवो! **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **अनेहसः**=निष्पाप हैं। **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थः—त्रित आप्त्य लोगों के सम्पर्क में हम अपने जीवनों को निष्पाप बनाएँ।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्या उषाश्च॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

दुःष्वप्न्य दूरीकरण

यच्च गोषु दुष्ष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः ।
त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १४ ॥

हे **दिवः दुहितः**=ज्ञान का प्रपूरण करनेवाली उषे! **यत् च**=जो भी **गोषु**=इन्द्रियों के विषय में **दुःष्वप्न्यं**=अशुभ स्वप्न आता है, **च**=और **यत्**=जो **अस्मे**=हमारे विषय में अशुभ स्वप्न होता है, **तत्**=उसे हे **विभावरि**=प्रकाशमयी उषे! **त्रिताय**='काम-क्रोध-लोभ' को तैरनेवाले **आप्त्याय**=प्रभुप्राप्ति में उत्तम मेरे लिए **परावह**=दूर करनेवाली हो। वस्तुतः हम उषाकाल में प्रबुद्ध ही हो जाएँ, ताकि इन अशुभ स्वप्नों का शिकार न हों। (२) **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **अनेहसः**=निष्पाप हैं। **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थ—हम काम-क्रोध-लोभ को तैरनेवाले-प्रभुप्राप्ति परायण बनकर अशुभ स्वप्नों से ऊपर उठें।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्या उषाश्च॥ **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

धन व सौन्दर्य के आकर्षण से दूर

निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।
त्रिते दुष्ष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १५ ॥

(१) हे **दिवः दुहितः**=प्रकाश का पूरण करनेवाली उषे! **निष्कं**=स्वर्ण आभूषणों को **वा घा**=निश्चय से **कृणवते**=बनानेवाले के लिए **वा**=अथवा **स्रजं**=माला को करनेवाले के लिए जो **दुःष्वप्न्यं**=अशुभ स्वप्न होता है। **सर्वं**=उस सबकी **त्रिते आप्त्ये**=काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठनेवाले विद्वान् की समीपता में **परि दद्मसि**=अपने से दूर करते हैं (परेर्वर्जने)। (२) सुवर्णादि आभूषण व माला आदि धारण करनेवाले व्यक्ति को देखकर चित्त में जो दुर्विचार आते हैं, उन्हें

त्रित आप्त्यों को समीपता में नष्ट करें। दृढ़व्रती होकर सुवर्ण आदि देखकर व माला आदि से अलंकृत वनिताओं को देखकर स्वप्न में भी प्रलुब्ध न हों। हे देवो! **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **अनेहसः**=हमें निष्पाप बनाते हैं। **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थ—हम काम-क्रोध-लोभ को जीतनेवाले आप्त विद्वानों के सामीप्य में रहकर स्वर्ण व मालाओं के आकर्षण से ऊपर उठ जाएँ। इनके विषय में ही हम स्वप्न न देखते रहें।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्या उषाश्चक्ष॥ **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

त्रित+द्वित

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे ।
त्रिताय च द्विताय चोषो दुष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १६ ॥

(१) **तदन्नाय**=उस प्रभु की प्रासि के लिए ही अन्नों का सेवन करनेवाले, **तदवसे**=प्रभुप्राप्ति के लिए ही कर्म करनेवाले तथा **तं भागं**=उस भजनीय प्रभु को **उपसेदुषे**=उपासित करनेवाले **त्रिताय**=(त्रीन् तरति) काम-क्रोध-लोभ को तैर जानेवाले **च**=और **द्विताय**=(द्वौ तनोति) विद्या व श्रद्धा दोनों का विस्तार करनेवाले के लिए, हे **उषः**=उषा की देवते! **दुष्वप्न्यं**=अशुभ स्वप्नों को **वह**=दूर करनेवाली हो। (२) हे उषाओ! **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **अनेहसः**=हमें निष्पाप बनानेवाले हैं। **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिए ही अन्नों का सेवन करनेवाला, प्रभु प्राप्त्यर्थ कर्मों को करनेवाला, प्रभु का उपासक, काम-क्रोध-लोभ को तैरनेवाला व विद्या और श्रद्धा व विकास करनेवाला बनता है। यह उषाकाल में प्रबुद्ध होकर उपासना में प्रवृत्त होता है और अशुभ स्वप्नों से बचा रहता है।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्या उषाश्चक्ष॥ **छन्दः**—स्वराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

ऋण आदि की तरह अशुभ स्वप्न अपसारण

यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं संनयामसि ।
एवा दुष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १७ ॥

(१) **यथा**=जैसे **कलां**=काल के एक-एक अवयव को हम **संनयामसि**=व्यतीत करते हैं, **यथा शफं**=जैसे एक-एक पद (चरण) को रखते हुए हम मार्ग को पार कर लेते हैं **यथ ऋणं**=जैसे थोड़ा-थोड़ा करके हम ऋण को समाप्त कर लेते हैं, **एवा**=इसी प्रकार **आप्त्ये**=विद्वान् पुरुष की समीपता में हम **सर्वं दुष्वप्न्यं**=सब अशुभ स्वप्न को समाप्त करते हैं। धीरे-धीरे अपने जीवन को सुन्दर बनाते हुए अशुभ स्वप्नों से ऊपर उठते हैं। (२) हे देवो! **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **अनेहसः**=हमें निष्पाप बनाते हैं। **वः ऊतयः**=आपके रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थ—हम ज्ञानियों के सम्पर्क में थोड़ा-थोड़ा आगे बढ़ते हुए उन्नत जीवनवाले बनकर अशुभ स्वप्नों से दूर हों।

ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ **देवता**—आदित्या उषाश्चक्ष॥ **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

निर्लोभता-संविभाग व निष्पापता

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
उषो यस्माद्दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १८ ॥

(१) हे **उषः**=उषे! **अद्य**=आज हम **अजैष्म**=विजयी हुए है। **असनाम**=हमने धनों का

संभजन-संविभाग किया है। **च**=और **वयं**=हम **अनागसः अभूम**=निष्पाप हुए हैं। वस्तुतः लोभ से आक्रान्त होकर हम धनों को संविभक्त न कर संगृहीत करते हैं और धन संग्रह में पाप ग्रसित हो जाते हैं। लोक को जीतकर धनों का संविभाग करते हैं और निष्पाप होते हैं। (२) हे **उषः**=उषे! **यस्मात्**=जिस **दुष्ष्वप्नात्**=अशुभ स्वप्न से **अभैष्म**=हम भयभीत होते हैं, **तत्**=वह **अप उच्छतु**=हमारे से दूर विवासित हो। हे देवो! **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **अनेहसः**=हमें निष्पाप बनाते हैं। **वः**=आपके **ऊतयः**=रक्षण **सु ऊतयः**=उत्तम रक्षण हैं।

भावार्थ—लोभ पर विजय पाकर हम धनों का संविभाग (दान) करनेवाले हों और निष्पाप हों। अशुभ स्वप्नों से दूर हों। निष्पाप बनने के लिए हम प्रभु का गायन करनेवाले 'प्रगाथ' बनें, बुद्धिमान् 'काण्व' हों। इस प्रकार सोमरक्षण करते हुए हम निष्पाप बनेंगे। अगले सूक्त में इस सोम का ही वर्णन हैं—

४८. [अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—पादनिचृत्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

सुमेधाः स्वाध्यः

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि संचरन्ति॥ १॥

(१) **सुमेधाः**=उत्तम बुद्धिवाला व **स्वाध्यः**=उत्तम कर्मोंवाला होता हुआ मैं **वरिवोवित्तरस्य**=उत्कृष्ट वरणीय धनों को प्राप्त करानेवाले **स्वादोः**=जीवन को मधुर बनानेवाले **वयसः**=आयुष्य के प्रमुख साधनभूत सोमरूप अन्न का **अभक्षि**=सेवन करूँ। सोम को शरीर में ही सुरक्षित रखूँ। (२) उस सोम को मैं सुरक्षित रखूँ **यं**=जिसको **विश्वे**=सब **देवासः**=देववृत्ति के पुरुष, **उत**=और **मर्त्यासः**=लौकिक दृष्टिकोणवाले पुरुष भी **मधु ब्रुवन्तः**='यह अतिशयेन मधुर है', ऐसा कहते हुए **अभिसञ्चरन्ति**=प्राप्त करते हैं—इस सोम के रक्षण के लिए यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—सुरक्षित सोम हमें (१) सुमेधा व सुकर्मा बनाता है। (२) यह जीवन को मधुर बनाता है (३) जीवन धनों को प्राप्त कराता है।

इसलिए देव व सामान्य मनुष्य भी इसे 'मधु' कहते हुए प्राप्त करने के लिए यत्नशील होते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—पादनिचृत्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

अन्तः च प्रागाः-अदितिः भवासि

अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः॥ २॥

(१) हे सोम! तू **अन्तः च प्रागा**—जब निश्चय से शरीर के अन्दर जाता है—शरीर में व्याप्त होता है, तो **अदितिः भवासि**=अदीना देवमाता के रूप में होता है, हमारी अदीनता का कारण बनता है और दिव्यगुणों का निर्माण करनेवाला होता है। तू **दैव्यस्य हरसः**=उस देव के क्रोध का **अवयाता**—हमारे से पृथक् करनेवाला होता है। इस सोम के द्वारा सुन्दर जीवनवाले बनकर हम प्रभु के प्रिय होते हैं। (२) हे **इन्दो**=सोम! तू **इन्द्रस्य**=इस जितेन्द्रिय पुरुष की **सख्यं**=मित्रता का **जुषाणः**=सेवन करता हुआ इस प्रकार **राये**=ऐश्वर्य के लिए **अनुऋध्याः**=अनुकूलता से हमें

प्राप्त होता है, **इव**=जैसे **श्रौष्टी**=शीघ्रगामी अश्व **धुरं**=रथ धुरा को प्राप्त होकर अभिमत देश को ओर ले-जाता है।

भावार्थ-सुरक्षित सोम (१) हमें स्वस्थ बनाता है (२) प्रभु का प्रिय बनता है। (३) ऐश्वर्य की ओर ले-चलता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—विराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

अमृत-देव-ज्योतिर्मय

अपाम सोममृमृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य॥ ३॥

(१) **सोमम् अपाम**=हमने सोम का पान किया है और **अमृताः**=नीरोग (अमर) **अभूम**=हो गए हैं। **ज्योतिः अगन्म**=ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त किया है और **देवान् अविदाम**=दिव्यगुणों को प्राप्त करनेवाले हुए हैं। सोमरक्षण से हम शरीर में नीरोग, मन में दिव्य भावनाओंवाले, तथा मस्तिष्क में ज्ञानज्योतिवाले बने हैं। (२) इस सोमरक्षण के होने पर **नूनं**=निश्चय से **अरातिः**=शत्रु **अस्मान्**=हमारा **किं कृणवत्**=क्या कर सकता है? **उ**=और हे **अमृत**=हमें न मरने देनेवाले सोम! **मर्त्यस्य**=किसी भी मनुष्य की **धूर्तिः**=हिंसकवृत्ति भी हमारी क्या हानि कर सकती है? सोमरक्षण से हम न अन्तःशत्रुओं से आक्रान्त होते हैं, न बाह्यशत्रुओं से।

भावार्थ-सोमरक्षण से हम (१) शरीर में नीरोग बनते हैं (२) मन में देव (३) मस्तिष्क में ज्योतिर्मय (४) ये सोमरक्षण हमें अन्तः व बाह्य शत्रुओं का शिकार नहीं होने देता।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'शान्ति-कल्याण-बुद्धि व दीर्घजीवन' का दाता सोम

शं नो भव हृद आ पीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः॥ ४॥

(१) हे **इन्दो**=सोम! तू **आपीतः**=शरीर में समन्तात् पिया हुआ **नः**=हमारे **हृदे**=हृदय के लिए **शं**=शान्ति को देनेवाला **भव**=हो। हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **सूनवे पिता इव**=पुत्र के लिए पिता की तरह **सुशेवः**=उत्तम कल्याण को करनेवाला हो। (२) हे **उरुशंस**=बहुधा शंसनीय सोम! तू **धीरः**=बुद्धि को प्रेरित करनेवाला है-बुद्धि को सूक्ष्म बनानेवाला है। तू **सख्ये**=मित्र के लिए **सखा इव**=मित्र की तरह है। अपने रक्षक का तू रक्षण करता है। हे सोम! तू **जीवसे**=जीवन के लिए **नः**=हमारे **आयुः**=जीवन को **प्रतारीः**=प्रकर्षेण बढ़ानेवाला हो।

भावार्थ-सुरक्षित सोम (१) हृदय में शान्ति को देता है, (२) कल्याण करता है, (३) बुद्धि को सूक्ष्म बनाता है (४) तथा दीर्घजीवन का कारण होता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—विराट् जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

'यश-रक्षण-दृढ़ता व पवित्रता व नीरोगता' का दाता सोम

इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु।
ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः॥ ५॥

(१) **इमे**=ये **पीताः**=शरीर के अन्दर पिये गये सोमकण **मा**=मेरे लिए **यशसः**=यशस्कर होते

हैं और **उरुष्यवः**-मेरे लिए रक्षा की कामनावाले होते हैं। **न**-जैसे **गावः**=गोस्नायु- निर्मित रज्जुएँ **रथं**=रथ को **पर्वसु**-पर्वों में, इसी प्रकार ये सोम मुझे **पर्वसु**=शरीर के प्रत्येक पर्व में **समनाह**-सन्नद्ध करते हैं। मेरे प्रत्येक पर्व को ये सुदृढ़ ग्रन्थिवाला करते हैं। (२) **ते**-वे सोम **मा**=मुझे **विस्रसः चरित्रात्**=चरित्रभ्रंश से **रक्षन्तु**=बचाएँ **उत**=और **इन्दवः**-ये सोमकण **मा**-मुझे **स्रामाद्**-व्याधि से **यवयन्तु**=पृथक् करें।

भावार्थ-सुरक्षित सोम (१) हमें यशस्वी बनाता है, (२) रोगों से बचाता है, (३) सुदृढ़ शरीर पर्वोंवाला करता है, (४) चरित्रभ्रंश व रोगों से दूर करता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

दीप्ति उल्लास व पुष्टि

अ॒ग्निं न मा॑ मथि॒तं सं दि॑दीपः॒ प्र च॑क्षय कृणु॒हि वस्य॑सो नः।

अथा॑ हि ते॒ मद॒ आ सो॑म॒ मन्ये॑ रे॒वाँइ॑व॒ प्र च॑रा पु॒ष्टिमच्छ॑॥ ६॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! तू **मा**=मुझे **मथितं अग्निं न**=मथी हुई अग्नि के समान **सन्दिदीपः**= संदीप्त कर, जैसे मथित अग्नि चमक उठती है, इसी प्रकार हम तेरे से चमक उठें। **प्रचक्षय**=तू हमें प्रकृष्ट चक्षुवाला बना। हमारी दर्शन शक्ति को बढ़ा। **नः**=हमें **वस्यसः**=प्रशस्त वसुओंवाला **कृणुहि**=कर। (२) **अथा**-अब हे सोम! **मदे**-मद व उल्लास के निमित्त मैं **हि**=निश्चय से **ते आमन्ये**=तेरा स्तवन करता हूँ। **रेवान् इव**=तू सब धनोंवाले की तरह होता हुआ **पुष्टिम् अच्छ**=पोषण की ओर **प्रचर**-गतिवाला हो। हे सोम! तू हमारे अंग प्रत्यंग को पुष्ट करनेवाला हो।

भावार्थ-सोम हमें दीप्त प्रकृष्ट चक्षुवाला-प्रशस्त वसुओंवाला-उल्लासमय व पुष्ट करे।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—विराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'दीर्घजीवन का दाता' सोम

इ॒षि॒रेण॑ ते॒ मन॑सा सु॒तस्य॑ भक्षी॒महि॒ पित्र्य॑स्येव रा॒यः।

सोम॑ राज॒न्प्र ण॒ आयूं॑षि तारी॒रहा॑नीव॒ सूर्यो॑ वास॒राणि॑॥ ७॥

(१) हे सोम! वीर्यशक्ते! **सुतस्य ते**=उत्पन्न हुए-हुए तेरा **इषिरेण मनसा**-इच्छावाले मन से **भक्षीमहि**=भक्षण करें-तुझे शरीर में ही व्याप्त करने का प्रयत्न करें। इस प्रकार तेरा भक्षण करें, **इव**=जैसे **पित्र्यस्य रायः**=पिता से प्राप्त धन का उपयोग करते हैं। हम इस सोम को पिता प्रभु से प्राप्त धन समझें। (२) हे **राजन्**-हमारे जीवनों को दीप्त करनेवाले सोम! **नः**=हमारे **आयूंषि**=जीवनों का **प्रतारीः**=प्रकर्षेण वर्धन करनेवाले होइये। इस प्रकार हमारे जीवनों को बढ़ाओ **इव**=जैसे **सूर्यः**=सूर्य **वासराणि**-जगत् को बसानेवाले **अहानि**=दिनों को बढ़ाता है। सूर्य दिनों का विस्तार करता है, यह सोम (वीर्य) हमारे जीवनकाल का विस्तार करनेवाला हो।

भावार्थ-हम सोम को प्रभु से दिया हुआ धन समझें। इस धन का समुचित रक्षण व प्रयोग करें। यह सुरक्षित सोम हमारे दीर्घजीवन का कारण बने।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ देवता—सोमः॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

दक्षः+मन्युः

सोम॑ राजन्मृळया॑ नः स्व॒स्ति तव॑ स्मसि व्र॒त्या॒३॒॑स्तस्य॑ विद्धि।
अल॑र्ति॒ दक्ष॑ उ॒त म॒न्युरि॑न्दो॒ मा नो॑ अ॒र्यो अ॑नुका॒मं परा॑ दाः॥ ८॥

(१) हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **राजन्**=जीवन को दीप्त करनेवाले सोम! **नः**=हमें **मृडय**=सुखी कर। **स्वस्ति**=तेरे रक्षण के द्वारा हमारा कल्याण हो। हम **व्रत्याः**=व्रतमय जीवनवाले होकर **तव स्मसि**=तेरे हैं। **तस्य विद्धि**=उस हमारे व्रतित्व को तू जान। हमारे व्रतों का ध्यान करते हुए हमारे अन्दर तू सुरक्षित रह। (२) हे **इन्दो**=सोम! तेरे व्रतों का पालन करनेवाला यह व्यक्ति **दक्षः**=उन्नत योग्य व शत्रुओं का संहार करनेवाला होता है। **उत**=और **मन्युः**=मननशील ज्ञानी होता हुआ **अलर्ति**=गति करता है। हे सोम! तू **नः**=हमें **अर्यः**=शत्रु की **अनुकामं**=इच्छा के अनुसार **मा परादाः**=मत छोड़ दे। शत्रु की दया पर हमें छोड़नेवाला न हो, अर्थात् हम शत्रुओं के वशीभूत न हो जाएँ।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिए आवश्यक व्रतों का पालन करते हुए हम उन्नत प्रवृद्ध शक्ति वाले व ज्ञानी बनें। इस सोमरक्षण से हम रोग व वासनारूप शत्रुओं के वश में न हों।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ देवता—सोमः॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

'रक्षक' सोम

त्वं हि न॑स्त॒न्वः॑ सोम गो॒पा गात्रे॑गात्रे निष॒सत्था॑ नृ॒चक्षाः॑।
यत्ते॑ व॒यं प्र॑मि॒नाम॑ व्र॒तानि॒ स नो॑ मृळ सुष॒खा दे॑व॒ वस्यः॑॥ ९॥

(१) हे **सोम**=वीर्य! **त्वं**=तू **हि**=निश्चय से **नः**=हमारे **तन्वः**=शरीर का **गोपाः**=रक्षक है। **नृचक्षाः**=मनुष्यों का ध्यान करनेवाला होता हुआ तू **गात्रे गात्रे**=अंग-प्रत्यंग में **निषसत्था**=स्थित होता है। (२) **यत्**=यद्यपि **वयं**=हम कभी-कभी **ते व्रतानि**=तेरे व्रतों को **प्रमिनाम**=हिंसित कर बैठते हैं। तो भी **सः**=वह तू **नः**=हमारे लिए **मृड**=सुख को करनेवाला हो। हे **देव**=प्रकाशमय व रोगों को जीतने की कामनावाले सोम (विजिगीषा)! तू **सुषखा**=हमारा उत्तम मित्र होता हुआ **वस्यः**=हमें उत्तम वसुओंवाला कर-श्रेष्ठ बना।

भावार्थ—अंग-प्रत्यंग में व्याप्त होता हुआ सोम हमारा रक्षक है, यह हमें सुखी करता है, श्रेष्ठ बनाता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ देवता—सोमः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

ऋदूदर सखा (सोम)

ऋ॒दू॒दरे॑ण॒ सख्या॑ सचेय॒ यो मा॒ न रिष्ये॑द्धर्यश्व पी॒तः।
अ॒यं यः सोमो॒ न्यधा॑य्य॒स्मे तस्मा॒ इन्द्रं॑ प्र॒तिर॑मे॒म्यायुः॑॥ १०॥

(१) मैं **ऋदूदरेण**=उदर के अबाधक-उदर को पीड़ित न करनेवाला **सख्या**=इस मित्रभूत सोम से **सचेय**=संगत होऊँ। **यः**=जो सोम **पीतः**=पिया हुआ **मा**=मुझे **न रिष्येत्**=हिंसित न करे। (२) हे **हर्यश्व**=तेजस्वी इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले इन्द्र! **अयं**=यह **यः**=जो **सोमः**=सोम **अस्मे**=हमारे में **न्यधायि**=स्थापित किया गया है, **तस्मै**=उसके लिए मैं **इन्द्रं**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु से **प्रतिरं आयुः**=दीर्घजीवन को **एमि**=माँगता हूँ। यह सोम मेरे अन्दर सदा स्थित हुआ-हुआ

मुझे दीर्घजीवन प्रदान करे।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम उदर को बाधा नहीं पहुँचाता। इस प्रकार हमें नीरोग रखता हुआ यह दीर्घजीवी बनाता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

अनिराः अमीवाः अप अस्थुः

अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा निरत्रसन्तमिषीचीरभैषुः।
आ सोमो अस्माँ अरुहद्विहाया अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः॥ ११॥

(१) **विहायाः**=महान् यह **सोमः**=वीर्य **अस्मान् आ अरुहत्**=हमारे अङ्ग-प्रत्यङ्गों में आरुढ़ हुआ है। **सो त्याः**=वे **अनिराः**=जिनका दूर करना कठिन है, अथवा (इरा-अन्न) अन्नाभाववाली—जिनमें भूख मर जाती है, वे **अमीवाः**=बीमारियाँ **अप अस्थुः**=हमारे से दूर स्थित हुई हैं। ये **तमिषीचीः**=बलसम्पन्न—अतिप्रबल रोग **निरत्रसन्**=निश्चय से हमें डराते हैं और **अभैषुः**=भयभीत करते हैं। सोमरक्षण द्वारा ये हमारे से भयभीत होकर दूर हो जाते हैं। (२) इस सोमरक्षण के द्वारा मनुष्य उस स्थिति में **अगन्म**=जाते हैं, **यत्र**=जिसमें कि **आयुः प्रतिरन्ते**=अपने आयुष्य को बढ़ानेवाले होते हैं। सोम सब रोगों को दूर करके हमारे लिए दीर्घजीवन को देनेवाला होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के द्वारा भयंकर रोग भी दूर हो जाते हैं और इस प्रकार नीरोगता व दीर्घजीवन प्राप्त होता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

मृडीके-सुमतौ

यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतोऽमर्त्यो मर्त्याँ आविवेश।
तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृळीके अस्य सुमतौ स्याम॥ १२॥

(१) हे **पितरः**=पालक शक्तियो! **यः इन्दुः**=जो सोम **हृत्सुपीतः**=हृदयों में पिया हुआ—रजकर पिया हुआ—शरीर को अन्दर सुरक्षित किया हुआ **नः मर्त्यान्**=हम मरणधर्मा प्राणियों में **आविवेश**=प्रविष्ट होता है, वह **अमर्त्यः**=हमें अमर बनाता है—अमरता व नीरोगता का कारण बनता है। (२) **तस्मै सोमाय**=इस सोम के रक्षण के लिए **हविषा**=त्यागपूर्वक अदन के द्वारा, यज्ञशेष के सेवन के द्वारा **विधेम**=हम प्रभु का पूजन करें। यह यज्ञशेष का सेवन व प्रभुपूजन ही हमें सोमरक्षण के योग्य बनाएगा। हम **अस्य**=इस सोम के **मृडीके**—सुख में व **सुमतौ**=कल्याणी मति में **स्याम**=हों। सोम हमें सुखी करे और शुभ बुद्धि प्राप्त कराए।

भावार्थ—'त्यागपूर्वक अदन व प्रभुपूजन' सोमरक्षण के साधन हैं। सुरक्षित सोम 'नीरोगता सुख, वसु, बुद्धि' प्राप्त कराता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—पादनिचृत्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

द्यावापृथिवी का विस्तार

त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ १३॥

(१) हे **सोम**=वीर्य! **त्वं**=तू **पितृभिः**=इन रक्षा करनेवाले लोगों के साथ **संविदानः**=ऐकमत्य

को प्राप्त हुआ-हुआ संगत हुआ-हुआ **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्क व शरीर को **अनु आततन्थ**=अनुकूलता से विस्तृत करनेवाला हो। तू मस्तिष्क को दीप्त व शरीर को सुदृढ़ बना। (२) हे **इन्दो**=सोम! **तस्मै ते**=उस तेरे लिए **हविषा विधेम**=त्यागपूर्वक अदन के साथ प्रभुपूजन करें। त्यागपूर्वक अदन व प्रभुपूजन करते हुए हम तेरा रक्षण करें और **वयं**-हम **रयीणां**=सब आवश्यक ऐश्वर्यों के **पतयः स्याम**=स्वामी हों।

भावार्थ-सुरक्षित सोम मस्तिष्क व शरीर का ठीक विकास करता है-आवश्यक ऐश्वर्यों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

न नींद, न गपशप

त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः।

वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम॥ १४॥

(१) हे **त्रातारः देवाः**=रक्षक देवो! **नः**=हमें **अधिवोचत**=आधिक्येन ज्ञानोपदेश को प्राप्त कराओ। आपसे हमें वह ज्ञान प्राप्त हो जिससे कि **नः निद्रामा ईशत**=नींद हमारा ईश न बन पाए। **उत**=और **मा जल्पिः**=गपशप की आदत भी हमारी ईश न बने। ये 'सोये रहना व गपशप मारते रहना' सोमरक्षण के लिए सहायक नहीं। (२) सो नींद व गपशप से ऊपर उठकर यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त हुए-हुए हम-नींद अर्थात् तमोगुण, गपशप अर्थात् रजोगुण इन दोनों से ऊपर उठकर सत्त्वगुण में अवस्थित हुए-हुए **वयं**=हम **विश्वह**=सदा **सोमस्य**=सोम के **प्रियासः**=प्रिय हों और **सुवीरासः**=उत्तम वीर बने हुए हम **विदथम्**=ज्ञान का ही **आवदेम**=समन्तात् कथन करें। यह ज्ञान का वातावरण ही सोमरक्षण के लिए अनुकूल है।

भावार्थ-हम ज्ञानियों से उपदेश लेते हुए नींद व गपशप का परित्याग करें। सोमरक्षण द्वारा वीर बनते हुए सदा ज्ञान का चर्चन करें।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

वयोधाः-स्वर्वित्

त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः।

त्वं न इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात्॥ १५॥

(१) हे **सोम**=वीर्य! **त्वं**=तू **नः**=हमारे लिए **विश्वतः**=सब दृष्टिकोणों से **वयोधाः**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाला है। **त्वं**=तू ही **स्वर्वित्**=प्रकाश को प्राप्त करानेवाला है। **नृचक्षाः**=मनुष्यों का ध्यान करनेवाला तू **आविश**-शरीर में सब अंगों में प्रवेशवाला हो। (२) हे **इन्दो**=सोम! **त्वं**=तू **नः**=हमारे लिए **ऊतिभिः**=(ऊतयः-महतः=प्राणाः) प्राणों के साथ **सजोषाः**=संगत हुआ-हुआ उनके साथ प्रीयमाण होता हुआ **पश्चातात्**=पीछे से **उत वा**=अथवा **पुरस्तात्**=आगे से **पाहि**=रक्षित करनेवाला हो।

भावार्थः-सुरक्षित सोम उत्कृष्ट जीवन को व प्रकाश को प्राप्त कराता है। यह प्राणों के साथ हमारा सर्वतः रक्षण करता है।

सोमरक्षण के उद्देश्य से ही अगले सूक्त में 'इन्द्र' का उपासन है। इस उपासन को करनेवाला मेधावी 'प्रस्कण्व काण्व' सूक्त का ऋषि है-

अथ बालखिल्यम्

४९. [एकोनपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—बृहती ॥ **स्वरः**—मध्यमः ॥

'जरितृभ्यः पुरुवसुः' इन्द्र

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति॥ १॥

(१) **वः**=तुम्हारे **सुराधसम्**=उत्तम ऐश्वर्य व साफल्य को देनेवाले **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **यथाविदे**=यथार्थ ज्ञान के लिए **अभि प्र अर्च**=प्रातः-सायं प्रकर्षेण अर्चित कर। (२) उस इन्द्र का अर्चनकर **यः**=जो **मघवा**=परमैश्वर्यशाली **पुरूवसुः**=पालक व पूरक धनोंवाला प्रभु **जरितृभ्यः**=स्तोताओं के लिए **सहस्रेण इव**=सहस्रों के समान **शिक्षति**=आवश्यक धनों को देता है। सहस्रों व्यक्ति भी मिलकर हमारे लिए वह धन नहीं प्राप्त कराते, जिसे कि प्रभु देते हैं।

भावार्थ—हम परमैश्वर्यशाली प्रभु का पूजन करें। यही ज्ञानप्राप्ति का मार्ग है। इसी से हमें आवश्यक धनों की प्राप्ति होगी। प्रभु ही सब सफलताओं को देते हैं।

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—पं- ॥ **स्वरः**—पञ्चमः ॥

अनन्तशक्ति-अनन्तदान

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः॥ २॥

(१) **धृष्णुया**=शत्रुओं के धर्षण के हेतु से **शतानीका इव**=सैंकड़ों सैन्यों के समान **प्रजिगाति**=ये प्रभु गति करते हैं। सैंकड़ों सेनाएँ भी वह शत्रुसंहार कार्य नहीं कर पातीं, जो इस प्रभु द्वारा सम्पन्न हो जाता है। ये प्रभु **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिए-प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाले पुरुष के लिए **वृत्राणि हन्ति**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करते हैं। (२) **गिरेः**=पर्वत से प्रवाहित होनेवाले **रसाः इव**=रसों के समान **अस्य**=इस **पुरुभोजसः**=खूब ही पालन करनेवाले प्रभु के **दत्राणि**=दान **प्रपिन्विरे**=प्रजाओं का पोषण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु अपने प्रति अर्पण करनेवाले के लिए अनन्तशक्ति प्रदान करते हैं, इस शक्ति से उपासक वासनारूप शत्रुओं का विनाश करता है। प्रभु के दान उपासक का पोषण करते हैं।

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—विराड् बृहती ॥ **स्वरः**—मध्यमः ॥

सोमरक्षण व सफलता

आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः।
आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं१ सरः पृणन्ति शूर राधसे॥ ३॥

(१) हे **गिर्वणः**-ज्ञान की वाणियों का सम्भजन करनवाले **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक जितेन्द्रिय पुरुष! **त्वा**=तुझे **सुतासः**=उत्पन्न हुए-हुए ये **मदाः**=जो उल्लासजनक **इन्दवः**-सोमकण हैं, वे **पृणन्ति**=पूरित करते हैं। इस प्रकार पूरित करते हैं **न**=जैसे **ओक्यं सरः**=निवासस्थान व आश्रयभूत तालाब को **आपः**=जल **ननु**-निश्चय से पूरित करनेवाले होते हैं। (२) इन सोमकणों को अपने में पूरित करके ही तू **राधसे**=सफलता के लिए होता है। ये सोमकण

तुझे शक्तिसम्पन्न बनाते हैं। यह शक्ति तेरी सफलता का साधन बनती है।

भावार्थ—ज्ञान प्राप्ति में लगे रहना व जितेन्द्रिय बनने का प्रयत्न करना ही सोमरक्षण का साधन है। सुरक्षित सोम सफलता को देनेवाला है।

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

'अनेहसं प्रतरणं विवक्षणम्'

अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत्॥ ४॥

(१) हे जीव! तू **ईम्**=निश्चय से **मध्वः**=जीवन को मधुर बनानेवाले सोम के **स्वादिष्ठं**=अतिशयेन मधुर रस को **पिब**=पी। यह रस **अनेहसं**=तुझे निष्पाप बनानेवाला हैं, **प्रतरणं**=सब रोगों व वासनाओं से तरानेवाला है, **विवक्षणं**=विशिष्टरूप से उन्नत करनेवाला है। (२) प्रभु कहते हैं कि हे जीव! तू **नः**=हमारे इस सोमरस को **मन्दसानः**=उल्लास का अनुभव करता हुआ **यथा**=जैसे-जैसे **आकिरासि**=शरीर में चारों ओर विकीर्ण करनेवाला होता है, तो **त्मना**=स्वयम् **क्षुद्रा इव**=वासना आदि प्रबल शत्रुओं को भी तुच्छ शत्रुओं की तरह **प्रधृषत्**=अभिभूत करता है। इन वासनारूप शत्रुओं का कुचलना तेरे लिए आसान हो जाता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें निष्पाप, रोगों व वासनाओं को तैरनेवाला व उन्नतिशील बनाता है। सोमरक्षक पुरुष उल्लसित होकर प्रबल शत्रुओं को भी आसानी से जीत लेता है।

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—भुरिग्बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

प्रभुस्तवन व दानशीलता

आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृभिः।
यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेषु रातयः॥ ५॥

(१) **सोतृभिः**=सोम का अभिषव (उत्पादन) करनेवालों से-शरीर में सोम का सम्पादन करनेवालों से **हियानः**=प्रेरित किये जाते हुए, हे प्रभो! आप **नः स्तोमम्**=हमारी स्तुति को **आ उपद्रवत्**=प्राप्त होइये। हम आपके स्तोता बनें। आप हमारे लिए **अश्वः न**=लक्ष्य स्थान पर पहुँचनेवाले अश्व के समान हैं। आपके द्वारा ही तो हम जीवनयात्रा को पूर्ण कर सकेंगे। (२) हे **स्वधावन्**=आत्मधारणशक्तिवाले **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यं**=जिस आपके सोम का **धेनवः**=(धेट् पाने) सोम को शरीर में पीनेवाले स्तोता लोग **स्वदयन्ति**=आस्वाद लेते हैं, वे **कण्वेषु**=बुद्धिमन् पुरुषों में **रातयः**=दानशील होते हैं। भोगवृत्ति से ऊपर उठकर दानशील बनकर ही वे सोमरक्षण में समर्थ होते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिए आवश्यक है कि हम प्रभुस्तवन करें और दानशील बनकर भोगवृत्ति से ऊपर उठें।

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

विभूतिम् अक्षितावसुम्

उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुम्।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः॥ ६॥

(१) हम **उग्रं न**=अत्यन्त तेजस्वी के समान **वीरं**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले **विभूतिम्**=

विशिष्ट ऐश्वर्यवाले **अक्षितावसुम्**=अक्षीण धनवाले प्रभु को **नमसा**=नमन के द्वारा **उपसेदिम**=उपासित करते हैं। (२) हे **वज्रिन्**=शत्रुओं के संहारक वज्र को हाथ में लिये हुए प्रभो! आप **उद्रीवण अवतः न**=जलपूर्ण कूप की तरह **सिञ्चते**=हमें सुखों व शक्तियों से सींचते हैं। कुआँ जल से सींचता है, प्रभु शक्ति से। हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **धीतयः क्षरन्ति**=हमारी स्तुतियाँ आपकी ओर ही प्रवाहित होती हैं। यह प्रभुस्तवन ही हमें ऐश्वर्यों व शक्ति को देनेवाला होता है।

भावार्थ—हम उस प्रभु के चरणों में नम्रता से उपस्थित हों, जो वीर व विभूतिमान हैं। प्रभु हमें शक्ति से सिक्त करेंगे और उस शक्ति से ही हम शत्रुओं को शीर्ण कर पाएँगें।

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

आशुभिः उग्रेभिः

यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि।
अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि॥ ७॥

(१) **यत् ह नूनं**=आप निश्चय से शीघ्र ही **नः**=हमारे **यज्ञं**=इस जीवन-यज्ञ को **आशुभिः**=शीघ्रगति वाले **उग्रेभिः**=तेजस्वी इन्द्रियाश्वों से **आगहि**=प्राप्त होइये। (२) हे **उग्र**=तेजस्विन्! **महेमते**=महान् बुद्धि (ज्ञान)वाले प्रभो **यद् वा यज्ञे**=चाहे हम लोकहित के लिए होनेवाले यज्ञात्मक कर्मों में हों, **यद् वा**=और चाहे **पृथिव्याम् अधि**=इस शरीररूप पृथिवी के लिए ही हम कर्मों में लगे हों आप **इतः**=इन कर्मों की पूत के हेतु से (**नः**)=हमें अवश्य प्राप्त होइये ही।

भावार्थ—प्रभु से हम शीघ्रता ये कर्मों में व्याप्त होनेवाले तेजस्वी इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करके यज्ञात्मक कर्मों को व शरीर रक्षणात्मक कर्मों को करनेवाले हों।

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पं-:॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'अजिरासः प्रसक्षिणः' हरयः

अजिरासो हरयो ये त आशवो वाताइव प्रसक्षिणः।
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे॥ ८॥

(१) हे प्रभो! **ये**—जो **ते**=आपके **हरयः**=इन्द्रियाश्व हैं, ये **अजिरासः**=बड़े क्रियाशील हैं, **आशवः**=शीघ्रता से कर्मों में व्याप्त होनेवाले हैं। **वाताः इव**=वायुओं के समान शीघ्र गतिवाले हैं। **प्रसक्षिणः**=शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले हैं। (२) ये इन्द्रियाश्व वे हैं **येभिः**=जिनसे आप **मनुषः अपत्यं**=विचारशील की सन्तान अर्थात् खूब विचारशील को **परीयसे**=सर्वतः गति कराते हैं। **येभिः**-जिन इन्द्रियाश्वों से आप **विश्वं स्वः**=सम्पूर्ण प्रकाश को **दृशे**=दिखाने के लिए होते हैं। प्रभुप्रदत्त कर्मेन्द्रियों द्वारा सब कर्म होते हैं, प्रभुप्रदत्त ज्ञानेन्द्रियों से सब ज्ञान प्राप्त होता है।

भावार्थ—प्रभु ने हमें खूब क्रियाशील इन्द्रियाँ प्राप्त कराई हैं। इनके द्वारा हम सब कर्मों को कर पाते हैं और ज्ञानों को ग्रहण करते हैं। ये इन्द्रियाश्व शत्रुओं का अभिभव करते हैं।

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

मेध्यातिथिम् नीपातिथिम्

एतावतस्त ईमह इन्द्र सुम्नस्य गोमतः।
यथा प्रावो मघवन्मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने॥ ९॥

(१) हे **इन्द्रः**=परमैश्वर्यवन् प्रभो! हम **ते**-आपसे **एतावतः**=इतने **गोमतः**=प्रशस्त ज्ञान की

वाणियोंवाले **सुम्नस्य**=प्रभुस्तवन की **ईमहे**=याचना करते हैं। हम यही चाहते हैं कि स्वाध्याय द्वारा ज्ञान का वर्धन करें और स्तवन द्वारा जीवन के लक्ष्य का सदा स्मरण करें। (२) हम इस 'गोमान् सुम्न' की याचना इसलिए करते हैं कि **यथा**=जिससे, हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **मेध्यातिथिं**=मेध्य=पवित्र-प्रभु को अतिथि बनानेवाले मुझे **प्रावः**=प्रकर्षेण रक्षित करें और **यथा**-जिससे **नीपातिथिं**=(नीप=deep) उस गम्भीरतम प्रभु को अतिथि बनानेवाले मुझे **धने**=धन के निमित्त रक्षित करें।

भावार्थ-हम स्वाध्याय व स्तवन द्वारा 'पवित्र व गम्भीर' प्रभु को अपना अतिथि बनाएँ। यही ऐश्वर्य प्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

त्रसदस्यु कण्व, दशव्रज पक्थ, ऋजिश्वा गोशर्य

यथा कण्वे मघवन्त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनीन्द्र गोमद्धिरण्यवत्॥ १०॥

(१) हे **मघवन्**=परमैश्वर्यशालिन् **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! आप मेरे लिए **गोमद्**=प्रशस्त इन्द्रियों व प्रशस्त ज्ञान की वाणियों वाले तथा **हिरण्यवत्**=(हिरण्यं वै वीर्यम्) प्रशस्त शक्तिवाले धन को **असनोः**=देते हैं। उसी प्रकार मेरे लिए धन को देते हैं, **यथा**=जैसे **त्रसदस्यवि**=दास्यव वृत्तियों को अपने से भयभीत कर दूर भगानेवाले **कण्वे**=बुद्धिमान् पुरुष में इस धन को प्राप्त कराते हैं। **यथा**=जैसे **दशव्रजे**=दसों इन्द्रियों को संयम के बाड़े में निरुद्ध करनेवाले **पक्थे**=परिपक्व बुद्धिवाले व तपःपक्व पुरुष में इस धन को देते हैं। (२) **यथा**=जैसे **ऋजिश्वनि**=ऋजु (सरल) मार्ग से गति करनेवाले **गोशर्ये**=इन्द्रिय दोषों के हिंसन में उत्तम पुरुष में आप इस धन को देते हैं। मुझे भी इस प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाले व प्रशस्त शक्तिवाले धन को दीजिए।

भावार्थ-हम 'त्रसदस्यु कण्व बनें। दशव्रज पक्थ, व ऋजिश्वा गोशर्य' बनें। प्रभु हमें प्रशस्त ज्ञानवाले व प्रशस्त शक्तिवाले धन को देंगे।

'गोमत् हिरण्यवत्' शक्तियों से प्रतिपादित धन को प्राप्त करके यह 'पुष्टिगु' बनता है। मेधावी 'काण्व' तो है ही इसी का अगला सूक्त है-

५०. [पञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—पुष्टिगुः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

ज्ञान ऐश्वर्य व शक्ति

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते॥ १॥

(१) **सुश्रुतं**=उत्तम ज्ञानवाले, **सुराधसम्**=उत्तम ऐश्वर्यवाले **शक्रं**=सर्वशक्तिमान् प्रभु को **अभिष्टये**=इष्टप्राप्ति की **पीतये प्र असे**=प्रकर्षेण पूजित कर। पूजित प्रभु उपासक को भी 'ज्ञान ऐश्वर्य व शक्ति' प्राप्त कराएँगे। (२) उस प्रभु का तू पूजन कर **यः**=जो **सुन्वते**=सोम का सम्पादन करनेवाले अथवा यज्ञशील **स्तुवते**=स्तोता के लिए **काम्यं वसु**=चाहनेयोग्य धन को **सहस्रेण इव**=सहस्रों की तरह **मंहते**=देते हैं। सहस्रों व्यक्ति भी वह धन नहीं प्राप्त कराते जो वे प्रभु स्तोता के लिए अकेले ही देनेवाले होते हैं।

भावार्थ–हम 'ज्ञानी, ऐश्वर्यशाली, शक्तिमान्' प्रभु की अर्चना करें। यज्ञशील व स्तोता बनें और प्रभु से कमनीय धनों को प्राप्त करें।

ऋषिः—पुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

शतानीका हेतयः

श॒तानी॑का हे॒तयो॑ अस्य दु॒ष्टरा॒ इन्द्र॑स्य स॒मिषो॑ म॒हीः।
गि॒रिर्न भु॒ज्मा म॒घव॑त्सु पिन्वते॒ यदीं॑ सु॒ता अम॑न्दिषुः॥ २॥

(१) **अस्य**=इस **इन्द्रस्य**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु के **हेतयः**=हनन साधन आयुध **शतानीकाः**=सैंकड़ों सैन्यों के समान सबल हैं अतएव **दुष्टराः**=शत्रुओं से तैरने योग्य नहीं। इन आयुधों से शत्रु बच नहीं पाते। इस प्रभु की **सम् इषः**=हमारे साथ संगत होनेवाली प्रेरणाएँ **महीः**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन प्रेरणाओं को न सुनने पर ही हम पथभ्रष्ट होते हैं और प्रभु की हेतियों से दण्डित होते हैं। (२) वे प्रभु **भुज्मा**=सबका पालन करनेवाले हैं। **गिरिः न**=(गृणाति) एक उपदेष्टा के समान **मघवत्सु**=यज्ञशील पुरुषों में **पिन्वते**=ज्ञान व ऐश्वर्य का वर्षण करते हैं, **यत्**=जब **ईम्**=निश्चय से **सुताः**=उत्पन्न हुए-हुए सोम **अमन्दिषुः**=हमें आनन्दित करनेवाले होते हैं, अर्थात् यदि हम सोमरक्षण द्वारा जीवन को उल्लासमय बनाते हैं, तो प्रभु से ज्ञान व ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ–प्रभु की प्रेरणाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं इनका उल्लङ्घन करने पर हम प्रभु के हननसाधन आयुधों से बच नहीं पाते और जब प्रभु से उत्पन्न किये गये सोमकणों का हम रक्षण करते हैं तो प्रभु हमारे लिए ज्ञान व ऐश्वर्य का वर्षण करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—पुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सोमरक्षण से 'प्रभुस्तवन-यज्ञशीलता-पूरणता'

यदीं॑ सु॒तास॒ इन्द॑वो॒ऽभि प्रि॒यमम॑न्दिषुः।
आपो॒ न धा॑यि॒ सव॑नं म॒ आ व॑सो॒ दुघा॑इ॒वोप॑ दा॒शुषे॑॥ ३॥

(१) **यद्**=जब **ईम्**=निश्चय से **सुतासः इन्दवः**=उत्पन्न हुए-हुए सोमकण **प्रियम् अभि**=उस प्रिय प्रभु को लक्ष्य करके **अमन्दिषुः**=स्तुति में प्रवृत्त होते हैं। अर्थात् इन सोमकणों का रक्षक प्रीति को अनुभव करता हुआ प्रभुस्तवन में प्रवृत्त होता है। उस समय **आपः न**=इन रेतःकणों के समान (आपः रेतो भूत्वा) **मे**=मेरे अन्दर **सवनं**=यज्ञ का **धायि**=धारण होता है। यह सोमरक्षक पुरुष यज्ञशील बनता है। (२) हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **उपदाशुषे**=आपके समीप अपना अर्पण करनेवाले के लिए ये सोमकण **आदुघाः इव**=समन्तात् पूरण करनेवाले से होते हैं। प्रभु के सान्निध्य से सोम का रक्षण होता है। रक्षित सोम हमारी कमियों को दूर करके पूरण करनेवाला होता है।

भावार्थ–सोमरक्षण (१) हमें प्रभुस्तवन की वृत्तिवाला बनाता है। (२) इससे हम यज्ञशील बनते हैं और (३) ये हमारी कमियों को दूर करके हमारा पूरण करते हैं।

ऋषिः—पुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

अनेहसं, ऊतये हवमानम्

अ॒नेह॑सं वो॒ हव॑मानमू॒तये॒ मध्वः॑ क्षरन्ति धी॒तयः॑।
आ त्वा॑ वसो॒ हव॑मानास॒ इन्द॑व॒ उप॑ स्तो॒त्रेषु॑ दधिरे॥ ४॥

(१) **धीतयः**=ध्यानवृत्तियाँ (meditation) **मध्वः**=जीवन को मधुर बनानेवाले सोम को **क्षरन्ति**=शरीर में सञ्चारित करती हैं। प्रभु का स्मरण शरीर में सोमरक्षण के लिए अनुकूल होता है। उस सोम को ये ध्यानवृत्तियाँ शरीर में सञ्चारित करती है जो **अनेहसं**=हमारे जीवन को निष्पाप बनाता है और **वः**=तुम्हारे **ऊतये**=रक्षण के लिए **हवमानम्**=पुकारा जाता है–स्तुत किया जाता है। (२) हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **हवमानासः**=रक्षण के लिए पुकारे जाते हुए ये **इन्दवः**=सोमकण **त्वा**=आपको **स्तोत्रेषु**=स्तुतिसमूहों में **आ**=समन्तात् **उपदधिरे**=धारण करते हैं। सोमरक्षण हमें स्तुति की वृत्तिवाला बनाता ही है।

भावार्थ–सुरक्षित सोम (१) हमें निष्पाप बनाता है, (२) हमारा रक्षण करता है (३) हमें प्रभुस्तवन की वृत्तिवाला बनाता है।

ऋषिः—पुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

गूर्तयः पौराः

आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते।
यं ते स्वदावन्त्स्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम्॥ ५॥

(१) हे प्रभो! आप **नः**=हमारे **सोमे**=सोमरक्षण के होने पर तथा **स्वध्वरे**=उत्तम हिंसारहित कर्मों के होने पर **इयानः अत्यः न**=प्रेरित किये जाते हुए अश्व के समान **आ तोशते**=समन्तात् शत्रुओं का विनाश करते हैं। जैसे अश्वारोही से प्रेरित अश्व शत्रुसैन्य पर आक्रमण करता है; इसी प्रकार प्रभु हमारे शत्रुओं का संहार करते हैं। (२) हे **स्वदावन्**=सम्पत्तियों के देनेवालो प्रभो! **यं**=जिस **ते**=आपके इस सोम का **गूर्तयः**=उद्यमशील लोग **स्वदन्ति**=आनन्द अनुभव करते हैं, उन उद्यमशील **पौरे**=पालन व पूरण करनेवाले लोगों में ही आपके **हवं**=पुकार को **छन्दयसे**=चाहते हैं। इन पौरों से की जानेवाली प्रार्थना ही आपको प्रिय होती है। श्रमशीलता हमें सोमरक्षण के योग्य बनाती है। रक्षित सोम से हम अपना पूरण करनेवाले 'पौर' बनते हैं। इन पौरों की आराधना ही प्रभु को प्रिय होती है।

भावार्थ–सोमरक्षण के होने पर व हिंसारहित कर्मों में लगाने पर प्रभु हमारे शत्रुओं को विनष्ट कर डालते हैं। श्रमशीलता से सोमरक्षण करता हुआ अपना पूरण करनेवाला व्यक्ति ही प्रभु का प्रिय होता है।

ऋषिः—पुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पंक्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'जलपूर्ण कूप के समान' प्रभु

प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे॥ ६॥

(१) हम **वीरम्**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले, **उग्रं**=तेजस्वी, **विविचिम्**=विवेकशील, **धनस्पृतं**=धन से सबको प्रीणित करनेवाले, **महः राधसः**=महान् ऐश्वर्यों की **विभूतिम्**–विशिष्ट भूति (ऐश्वर्य)वाले प्रभु को **प्र** (उपसेदिम)=प्रकर्षेण उपासित करनेवाले हों। (२) हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! आप **उद्रीवः अवतः**=जलपूर्ण कूप के समान हैं। सदा सबके लिए जलों को प्राप्त कराता हुआ कुआँ खाली नहीं हो जाता। वह जैसे सबको जल देता है, इसी प्रकार हे प्रभो! आप सदा-सदा **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिए–आत्मसमर्पण करनेवाले पुरुष के लिए **वसुत्वना**=वसुओं के द्वारा **पीपेथ**=आप्यायन करनेवाले होते हो।

भावार्थ–प्रभु जलपूर्ण कूप के समान हैं। श्रम के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति प्रभु से धनरूप जल को प्राप्त कर पाता है।

ऋषिः—पुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

उत्तम शरीर, उत्तम मस्तिष्क व मोक्षलोक

यद्ध नूनं परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि।
युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जो आप हैं, वे **ह**=निश्चय से **नूनं**=शीघ्र (Immediate) **परावति**=उस सुदूर मोक्षलोक के निमित्त **यद् वा**=अथवा **पृथिव्यां**=इस शरीररूप पृथिवी के निमित्त, **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक के निमित्त **हरिभिः**=इन्द्रियाश्वों के द्वारा शरीररथ को **युजानः**=जोतते हुए **आगहि**-हमें प्राप्त होइये। आप से प्राप्त कराई गई ये इन्द्रियाँ ही हमें 'उत्तम शरीर उत्तम मस्तिष्क व मोक्षलोक' को प्राप्त कराने का साधन बनती हैं। (२) हे **महेमते**=महान् बुद्धिवाले व **ऋष्व**=सर्वोत्तम प्रभो! आप **ऋष्वेभिः**=महत्त्वपूर्ण उत्कृष्ट इन्द्रियों के साथ हमें प्राप्त होइये। आपसे प्राप्त कराई गई ये उत्कृष्ट इन्द्रियाँ ही हमें उत्कृष्ट लोक को प्राप्त करानेवाली होंगी।

भावार्थ–हे प्रभो! आप हमें उत्कृष्ट इन्द्रियाँ प्राप्त कराइये। इनके द्वारा ठीक मार्ग का आक्रमण करते हुए हम शरीर व मस्तिष्क को उत्कृष्ट बनाकर मोक्षलोक को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—पुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

उत्तम इन्द्रियाश्व

रथिरासो हरयो ये ते अस्त्रिध ओजो वातस्य पिप्रति।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे॥ ८॥

(१) हे प्रभो! **ये**=जो आपके दिये हुए **हरयः**=इन्द्रियाश्व हैं, **ते**=वे **रथिरासः**=शरीररथ को उत्तमता से ले चलनेवाले हैं, **अस्त्रिधः**=अहिंसित है और **वातस्य ओजः**=वायु के बल को **पिप्रति**=अपने में भरते हैं। (२) ये इन्द्रियाश्व वे हैं, **येभिः**=जिनसे **मनुषः**=विचारशील पुरुष **दस्युं**=विनाशक वासनारूप शत्रु को **नि**=निश्चय से **निघोषयः**=रुलानेवाले होते हैं और **येभिः**=जिनसे इन शत्रुओं हो रुलाकर, अर्थात् नष्ट करके **स्वः**=प्रकाश को **परीयसे**=समन्तात् प्राप्त करते हैं।

भावार्थ–प्रभु के द्वारा प्राप्त कराई गई इन्द्रियाँ (१) शरीररथ को आगे ले चलती हैं, (२) हमें हिंसित नहीं होने देतीं, (३) वायु सम ओजवाला बनाती हैं, (४) अशुभ वृत्तियों को नष्ट करती हैं, (५) प्रकाश को प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—पुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'एतश व वश' का रक्षण

एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे॥ ९॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले! **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले! **नव्यसः ते**=स्तुति के योग्य आपके **एतावतः**=इतने ऐश्वर्य को **विद्याम**=प्राप्त करें। (२) **यथा**=जिस प्रकार आप **कृत्व्ये धने**-पुरुषार्थ से करने योग्य धन के होने पर **एतशं**=इस दीप्त व पवित्र पुरुष को

प्राव:=रक्षित करते हैं और **यथा**=जैसे **दशव्रजे**=दसों इन्द्रियों को संयम के बाड़े में रोकने पर **वशं**=इस वशी-जितेन्द्रिय-पुरुष को आप रक्षित करते हैं। हमें भी आप इस एतश और वश की तरह रक्षित करिये।

भावार्थ-हम पुरुषार्थ से धनार्जन करते हुए पवित्र व दीप्त जीवनवाले बनें। दसों इन्द्रियों को संयम बाड़े में निरुद्ध करके वशी बनें। इस प्रकार हम प्रभु द्वारा रक्षा के पात्र हों।

ऋषिः—पुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

कण्व-गोशर्य

यथा कण्वे मघवन्मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियम्॥ १०॥

(१) हे **अद्रिवः**=वज्रहस्त प्रभो! **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **यथा**=जैसे **कण्वे**=मेधावी पुरुष में, **मेधे**=यज्ञमय जीवनवाले पुरुष में, **अध्वरे**=हिंसारहित व्यक्ति में, **दीर्घनीथे**=तम से शून्य (विदीर्ण तमवाले) प्रणयन (मार्ग)वाले में, **दमूनसि**=दान्त मनवाले पुरुष में आप **हरिश्रियं**=अज्ञान के हरण करनेवाली श्री से युक्त **गोत्रं**=ज्ञान की वाणियों के समूह को **असनोः**=देते हैं, उसी प्रकार **मयि**=मेरे में भी इस ज्ञानवाणी समूह को प्राप्त कराइए। (२) हे प्रभो! **यथा**=जेसे **गोशर्ये**=(गोभिः शृणोति) इन ज्ञान की वाणियों द्वारा सब बुराइयों को शीर्ण करनेवाले में आप श्री को प्राप्त कराते हैं, उसी प्रकार मुझे भी श्रीसम्पन्न करिये।

भावार्थ-हम कण्व-मेध-अध्वर-दीर्घनीथ-दमूना व गोशर्य बनकर अज्ञानविध्वंसक श्री से युक्त ज्ञानवाणी समूह को प्राप्त करें।

सूचनाः-यहाँ सूक्त ४९ व ५० के मन्त्रों की समता द्रष्टव्य है-

		४९	५०
मन्त्र	१ में	सुराधस इन्द्रम् अर्च सहस्रेणेव शिक्षति	सुराधसं शक्रम् अर्च सहस्रेणेव मंहते
''	२ ''	शतानीका---गिरेरिव	शतानीका---गिरिर्न
''	३ ''	आ त्वा सुतास इन्दवः	यदीं सुतास इन्दवः
''	४ ''	अनेहसं	अनेहसं
''	५ ''	यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनवः	यं ते स्वदावन्त्स्वदन्ति गूर्तयः
''	६ ''	उग्रं न वीरं---उद्रीव वज्रिन्नवतो	प्र वीरमुग्रं----उद्रीव वज्रिन्नवतो
''	७ ''	महेमते उग्र उग्रेभिरा गहि	महेमते ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि
''	८ ''	अजिरासो हरयः	रथिरासो हरयः
''	९ ''	एतावतस्त ईमहे इन्द्र सुम्नस्य गोमतः	एतवास्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः
''	१० ''	यथा कण्वे मघवन् त्रसदस्यवि **गोमत् हिरण्यवत्**	यथा कण्वे मघवन् मेधे अध्वरे **गोत्रं हरिश्रियम्**

इस 'हरिश्रियं गोत्रं' व 'गोमत् हिरण्यवत्' (वसु) को प्राप्त करके हम 'श्रुष्टिगु' (श्रुष्टि=Prosperit) समृद्ध इन्द्रियाश्वों व ज्ञान की वाणियोंवाले बनते हैं। यही व्यक्ति 'कण्व'=मेधावी है। यह प्रार्थना करता है-

५१. [एकपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—श्रुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

मनु-श्रुष्टिगु

यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम्।
नीपातिथौ मघवन्मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यथा**=जैसे **मनौ**=विचारशील पुरुष में, **सांवरणौ**=अपना सम्यक् आच्छादन करनेवाले पुरुष में **सुतं सोमं अपिबः**=उत्पन्न हुए-हुए सोम को आप पीते हो, अर्थात् इस सोम को शरीर में ही व्याप्त करते हों। इसी प्रकार हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **नीपातिथौ**=(नीप=Deep) उस गम्भीर आपको अतिथि बनानेवाले में **सचा**=समवेत होकर सोम का पान करते हैं। सोम का रक्षण उस व्यक्ति में होता है जो 'विचारशील-अपना रक्षण करनेवाला व प्रभु का आतिथ्य करनेवाला' होता है। (२) इसी प्रकार हे प्रभो! आप **मेध्यातिथौ**=पवित्र प्रभु का आतिथ्य करनेवाले में, **पुष्टिगौ**=पुष्ट इन्द्रियोंवाले में, तथा **श्रुष्टिगौ**=समृद्ध व सानन्द इन्द्रियोंवाले में समवेत होकर आप सोम का पान करते हैं, अर्थात् यह **'मेध्यातिथि=पुष्टिगु व श्रुष्टिगु'** पुरुष प्रभु का उपासन करता हुआ सोम का रक्षण कर पाता है।

भावार्थ—हम 'मनु-सांवरणि-नीपतिथि मेध्यातिथि-पुष्टिगु व श्रुष्टिगु' बनकर प्रभु का उपासन करते हुए सोम का रक्षण करें।

ऋषिः—श्रुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराट् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

दस्यवे वृकः

पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिव्रिमुद्धितम्।
सहस्राण्यसिषासद्गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः॥ २॥

(१) **पार्षद्वाणः**=ज्ञान की वाणियों को देनेवाला प्रभु **प्रस्कण्वं**=मेधावी को-मेधावी के लिए **शयानं**=सर्वत्र निवास करनेवाले **जिव्रिम्**=सनातन पुराण **उद्धितम्**=उत्कृष्ट हित करनेवाले प्रभु को **समसादयत्**=प्राप्त कराते हैं। प्रभुकृपा से ही एक मेधावी पुरुष प्रभु का दर्शन करता है। (२) **गवां**=इन ज्ञान की वाणियों का **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा व्यक्ति **सहस्राणि**=सहस्रों धनों का **असिषासद्**=संभजन करनेवाला होता है। हे प्रभो! **त्वा ऊतः**=आपसे रक्षित किया गया यह व्यक्ति **दस्यवे**=विनाशक वृत्ति के लिए (दसु उपक्षये) **वृकः**=भेड़िये के समान होता है, अर्थात् इन दास्यव वृत्तियों को समाप्त करनेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभुकृपा से हमें ज्ञान प्राप्त होता है। इस ज्ञान से ही हम प्रभुदर्शन कर पाते हैं। प्रभु से रक्षित होकर हम दास्यव भावनाओं को समाप्त करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—श्रुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

चिकिद्यः ऋषिचोदनः

य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः।
इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्यरिष्यन्तं न भोजसे॥ ३॥

(१) **यः**=जो **उक्थेभिः**=स्तोत्रों के द्वारा **न विन्धते**=पूर्णतया विद्ध नहीं होते, अर्थात् जो स्तोत्रों द्वारा पूरा-पूरा जाने नहीं जाते, **चिकिद्यः**=जानने योग्य-वेद्य हैं, **ऋषिचोदनः**=तत्त्वदर्शियों

को प्रेरित करनेवाले हैं, **तम्**=उस **इन्द्रम् अच्छ**=प्रभु को लक्ष्य करके **नव्यस्या मती**=अतिशयेन स्तुत्य मति के द्वारा **वद**=स्तुतिवचनों का उच्चारण कर। (२) **अरिष्यन्तं न**=किसी भी प्रकार हिंसित न होते हुए के समान उस प्रभु का तु स्तवन कर। स्तुति किये गये प्रभु **भोजसे**=तेरे पालन के लिए होते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही वेद्य हैं, पर किन्हीं पर शब्दों से प्रभु के पूर्ण वर्णन का सम्भव नहीं। इन्हीं प्रभु का हमें स्तवन करना चाहिए। ये प्रभु हमारा पालन करते हैं।

ऋषिः—श्रुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

मोक्षपद की ओर

यस्मा॑ अ॒र्कं स॒प्तशी॑र्षाणमानृ॒चुस्त्रि॒धातु॑मुत्त॒मे प॒दे।
स त्वि१॒॑मा विश्वा॒ भुव॑नानि चिक्रदु॒दादिज्ज॑निष्ट॒ पौंस्य॑म्॥ ४॥

(१) **यस्मा**=जिस प्रभु के लिए **अर्कम्**=पूजा के साधनभूत वेदमन्त्रों (अर्चन्ति अनेन) से, जो वेदमन्त्र **सप्तशीर्षाणम्**=सप्त छन्दोरूप सात सिरोंवाले हैं तथा **त्रिधातुम्**=शरीर, मन व बुद्धि तीनों का धारण करनेवाले हैं, उन मन्त्रों से **आनृचः**=पूजन करते हैं और **उत्तमे पदे**=सर्वोत्तम मोक्षपद का लाभ करते हैं। **सः**=वे प्रभु ही **तु**=तो **इमा**=इन **विश्वा**=सब **भुवनानि**=लोगों को **चिक्रदद्**=इस मोक्षपद के लिए आहूत करते हैं। हृदयस्थरूपेण उस मार्ग पर चलने की प्रेरणा करते हैं। (२) जब हम इस प्रेरणा को–आह्वान को–सुनते हैं **आत् इत्**=तब ही शीघ्र **पौंस्यं जनिष्ट**=शक्ति उत्पन्न होती है। अपने अन्दर शक्ति का सम्पादन करके यह उपासक निरन्तर आगे बढ़ता है।

भावार्थ—हम वेदमन्त्रों द्वारा प्रभुपूजन करें। प्रभुप्रेरणा को सुनते हुए ठीक मार्ग पर चलते हुए मोक्षपद की ओर बढ़ें।

ऋषिः—श्रुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

गोमान् व्रज में

यो नो॑ दा॒ता वसू॑ना॒मिन्द्रं॒ तं हू॑महे व॒यम्।
वि॒द्मा ह्य॑स्य सु॒म॒तिं नवी॑यसीं ग॒मेम॒ गोम॑ति व्र॒जे॥ ५॥

(१) **यः**=जो **नः**=हमारे लिए **वसूनां**=सब वसुओं (धनों) के **दाता**=देनेवाले हैं, **तं इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **वयम्**=हम **हूमहे**=पुकारते हैं, उस प्रभु की ही आराधना करते हैं। (२) इस आराधना से **अस्य**=इन प्रभु की **नवीयसीं**=अतिशयेन प्रशस्य **सुमतिं**=कल्याणी मति को–वेदोपदिष्ट ज्ञान को–**हि**=निश्चय से **विद्म**=जानें। इस ज्ञान को प्राप्त करते हुए **गोमति**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियों वाले **व्रजे**=(व्रज गतौ) गतिक्षेत्र में–कर्मक्षेत्र में, **गमेम**=जाएँ, अर्थात् सदा ज्ञानपूर्वक कर्मों को करनेवाले हों।

भावार्थ—सब धनों के दाता प्रभु का हम आराधन करें। वेदोपदिष्ट प्रभु की कल्याणी मति को प्राप्त करके ज्ञानपूर्वक कर्म करें।

ऋषिः—श्रुष्टिगुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

दान से धनवृद्धि

यस्मै॒ त्वं व॑सो दा॒नाय॒ शिक्ष॑सि॒ स रा॒यस्पोष॑मश्नुते।
तं त्वा॑ व॒यं म॑घवन्निन्द्र गिर्वणः सु॒ताव॑न्तो हवामहे॥ ६॥

(१) हे **वसोः**=सब को बसानेवाले-सबके लिए वसुओं को देनेवाले प्रभो! **यस्मै**=जिसके लिए **त्वं**-आप **दानाय**=धनों के दान के लिए **शिक्षसि**=शिक्षण करते हैं, **सः**-वह धनों का दान करता हुआ पुरुष **रायस्पोषम्**-धन के पोषण को **अश्नुते**=प्राप्त करता है। दान देने से उसका धन बढ़ता ही है। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **तं त्वा**=उन आपको **वयं**=हम हे **मघवन्**-(मघ=मख) सब यज्ञोंवाले **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों द्वारा सम्भजनीय प्रभो! **सुतावन्तः**=सोम का सम्पादन करनेवाले होकर **हवामहे**=पुकारते हैं। सोम का शरीर में रक्षण करते हुए हम आपके आराधक बनते हैं।

भावार्थ-दान देने से धन की वृद्धि ही होती है। हे प्रभो! धनों के दाता आपकी हम आराधना करें-आपकी प्राप्ति के लिए सोम का रक्षण करें।

ऋषिः—श्रुष्टिगुः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

सदा 'सर्वद' प्रभु

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते॥ ७॥

(१) हे प्रभो! आप **कदाचन**=कभी भी **स्तरीः**=हमारी हिंसा करनेवाले **न**=नहीं है अथवा आप हमारे लिए (वन्ध्य) गौ के समान नहीं है-आप हमारे लिए सदा आवश्यक वस्तु रूप दुग्ध को प्राप्त करानेवाले हैं। हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिए-दानशील पुरुष के लिए **सश्चसि**=प्राप्त होनेवाले हैं। (२) हे **मघवन्**-ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **देवस्य ते**=सब कुछ देनेवाले आपका **इत् नु**=निश्चय से **भूयः दानं**=खूब दान **उप उप इत् नु**=समीप और अत्यन्त समीप ही **पृच्यते**=हमारे साथ से संपृक्त होता है। हम आपके दानों का पात्र बनते हैं।

भावार्थ-प्रभु हमें निरन्तर आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—श्रुष्टिगुः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

पार्थिव

प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन्।
यदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः॥ ८॥

(१) **यः**=जो **क्रिविं**=हिंसक **शुष्णं**=शोषक कामासुर को **वधैः**=वध साधनभूत आयुधों से **निघोषयन्**=शब्दशून्य करता हुआ उसके **अभिप्रति ओजसा**=पराक्रम के साथ **प्रननक्षे**=आक्रमण करता है और **यदा**=जब **इत्**=निश्चय से **अमूं दिवं**-उस मस्तिष्करूप द्युलोक को **प्रथयन्**=विस्तृत करता हुआ **अस्तम्भीत्**=थामता है-धारण करता है, तो **आत् इत्**=शीघ्र ही निश्चय से **पार्थिवः**=इस पृथिवीरूप शरीर का स्वामी **जनिष्ट**=हो जाता है। (२) इस जीवनसंग्राम में हमारा कर्तव्य है कि हम [१] वासनारूप शत्रु को पराजित करें [२] और मस्तिष्करूप द्युलोक को धारण करें। वासनाविनाश ही ज्ञानविस्तार का हेतु है। इस प्रकार वासनाविनाश व ज्ञानधारण से ही हम इस शरीर में पार्थिव-सम्राट् बन पाते हैं।

भावार्थ-हमारा कर्तव्य यही है कि [१] वासना को विनष्ट करें, [२] ज्ञान को धारण करें [३] और पार्थिव, पृथिवीरूप शरीर के अधिपति बनें।

ऋषिः—श्रुष्टिगुः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

अर्य-रुशम

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः॥ ९॥

(१) **यस्य**=जिसका **अयं**=यह **विश्वः**=सब **आर्यः**=श्रेष्ठ, **दासः**=(दसु उपक्षये) वासनाओं का क्षय करनेवाला **शेवधिपाः**=शक्ति व ज्ञानरूप कोश का रक्षण करनेवाला **अरिः**=शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला (ऋ गतौ) है, अर्थात् ये 'आर्य, दास, शेवधिपा व अरि' उस प्रभु के सच्चे उपासक हैं। (२) वे प्रभु **तिरः चित्**=तिरोहित रूप में होते हुए भी **अर्ये**=जितेन्द्रिय पुरुष में, **रुशमे**=शत्रुओं का संहार करनेवाले पुरुष में, **पवीरवि**=शत्रुघातक अस्त्रोंवाले पुरुष में **अज्यते**=व्यक्त होते हैं। **सः**=वह **रयिः**=ऐश्वर्यभूत प्रभु **तुभ्य इत्**=तेरे लिए भी **अज्यसे**=व्यक्त होता है। हम भी 'अर्य व रुशम' बनें और प्रभु का दर्शन करें।

भावार्थ—प्रभु सबमें तिरोहितरूप से रह रहे हैं। जो जितेन्द्रिय व वासनारूप शत्रुओं का संहार करनेवाला बनता है, उसमें वे प्रभु प्रकट होते हैं।

ऋषिः—श्रुष्टिगुः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

'मधुमान् घृतश्चुत् व अर्क' प्रभु

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः॥ १०॥

(१) **तुरण्यवः**=क्षिप्रकारी कर्मकुशल **विप्रासः**=अपना विशेष रूप से पूरण करनेवाले लोग **मधुमन्तं**=अत्यन्त माधुर्यवाले **घृतश्चुतं**=दीप्ति को हमारे जीवनों में आसिक्त करनेवाले **अर्कम्**=पूजनीय प्रभु का **आनृचुः**=अर्चन करते हैं। (२) इस प्रभु के अर्चन से **अस्मे**=हमारे लिए **रयिः पप्रथे**=ऐश्वर्य का विस्तार होता है। **वृष्ण्यं शवः**=हमें सुखों का सेचन करनेवाला बल प्राप्त होता है। **अस्मे**=हमारे लिए **सुवानासः**=उत्पन्न होते हुए सोमकण **इन्दवः**=शक्तिशाली बनानेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का अर्चन करें। हमें ऐश्वर्य व शक्ति प्राप्त होगी। हमारे अन्दर सुरक्षित सोमकण हमें तेजस्वी व ओजस्वी बनाएँगे। प्रभु की उपासना जीवन को मधुर व ज्ञानदीप्त बनाती है।

इस मन्त्र में वर्णित 'तुरण्यु' पुरुष ही 'आयु' (इ गतौ) है, समझदार होने से ये 'काण्व' हैं। यह 'आयु काण्व' अगले सूक्त का ऋषि है। यह इन्द्र का उपासन करता हुआ कहता है कि—

५२. [द्विपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—आयुः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

'मनु विवास्वान् त्रित आयु'

यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम्।
यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषस्यायौ मादयसे सचा॥ १॥

(१) **यथा**=जिस प्रकार **मनौ**=विचारशील पुरुष में तथा **विवस्वति**=अज्ञानान्धकार को

विवासित करनेवाले पुरुष में, हे **शक्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! आप **सुतं सोमं**-उत्पन्न हुए-हुए सोम का **अपिबः**=पान करते हैं। जब हम विचारशील बनते हैं और अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए स्वाध्यायशील होते हैं तो वासनाओं से बचे रहते हैं और इस प्रकार सोम का रक्षण करते हैं। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **यथा**-जिस प्रकार आप **त्रिते**=काम-क्रोध-लोभ को तैर जानेवाले में **छन्दः**=इन ज्ञान की वाणियों को **जुजोषसि**=प्रीतिपूर्वक सेवन कराते हैं इसी तरह **आयौ**=गतिशील पुरुष में **सचा**-समवेत होकर **मादयसे**=उसे आनन्दित करते हैं।

भावार्थ-हम 'मनु विवस्वान्' विचारशील व स्वाध्यायशील बनकर सोम को शरीर में सुरक्षित रखें। 'त्रित' बनकर ज्ञान की वाणियों के प्रति प्रेमवाले हों। 'आयु' बनकर प्रभु से मेलवाले होते हुए आनन्दित हों।

ऋषिः—आयुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृत् पं॰क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

पृषध्र=ऋजूनस्

पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनीन्द्र सुवाने अमन्दथाः।
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि॥ २॥

(१) **यथा**=जिस प्रकार हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **पृषध्रे**=शक्ति सेचन के द्वारा अपना धारण करनेवाले में, **मेध्ये**=यज्ञों में उत्तम, अर्थात् यज्ञशील पुरुष में, **मातरिश्वनि**=वेदमाता के अनुसार गति द्वारा वृद्धि को प्राप्त करनेवाले व **सोमं सुवाने**=सोम का सम्पादन करनेवाले में **अमन्दथाः**=आप आनन्द को करते हो, अर्थात् इन 'पृषध्र' आदि को प्रभु आनन्दित करते हैं। (२) **यथा**=जिस प्रकार **दशशिप्रे**=दस शिरस्त्राणोंवाले में, अर्थात् दसों इन्द्रियों को सुरक्षित रखनेवाले में, **दशोण्ये**=दसों इन्द्रियों के मलों को दूर करनेवाले में (ओण् अपनयने), **स्यूमरश्मौ**=आनन्दकर ज्ञानरश्मियोंवाले में तथा **ऋजूनसि**=ऋजु (सरल) मार्ग से गति करते हुए दुःखों का परिहाण (ऊन् परिहाणे) करनेवाले में आनन्दित करते हैं। इसी प्रकार हमारे जीवनों में सोमरक्षण द्वारा आनन्द को करनेवाले होइये।

भावार्थ-हम 'पृषध्र, मेध्य, मातरिश्वा, सोमसवन करनेवाले, दशशिप्र, दशोण्य, स्यूनरश्मि, ऋजूनस्' बनकर आनन्दित हों।

ऋषिः—आयुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

उप मित्रस्य धर्मभिः

य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत्।
यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः॥ ३॥

(१) **यः**=जो **केवलाः**=आनन्द में संचार करानेवाले **उक्था**=स्तोत्रों को **दधे**=धारण करता है, अर्थात् प्रभु का स्तवन करता हुआ आनन्द में विचरता है। **यः**=जो **धृषिता**=शत्रुओं के-काम, क्रोध आदि के-धर्षण के द्वारा **सोमं**=सोम को **अपिबत्**=पीता है, अर्थात् शरीर में सोम का रक्षण करता है। (२) **यस्मै**=जिसके लिए **विष्णुः**=वह सबमें व्यापक रहनेवाला परमात्मा **त्रीणि पदा**=तीन कदमों को **विचक्रमे**=रखता है, अर्थात् जो प्रभुस्मरण करता हुआ शरीर, मन व बुद्धि के स्वास्थ्य को प्राप्त करता है, वह **मित्रस्य धामभिः**=सूर्य के तेजों से युक्त हुआ-हुआ **उप**=उस प्रभु के समीप होता है।

भावार्थ–हम स्तवनों में आनन्द लें, काम, क्रोध को जीतकर सोम का शरीर में रक्षण करें, प्रभु के अनुग्रह से शरीर, मन व बुद्धि का विकास करें। तभी हम सूर्य सम तेजों को धारण करते हुए प्रभु के समीप होंगे।

ऋषिः—आयुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

स्तुति-शक्ति-ज्ञान

यस्य॒ त्वमि॑न्द्र॒ स्तोमे॑षु चा॒कनो॒ वाजे॑ वाजिञ्छतक्रतो।

तं त्वा॑ व॒यं सु॒दुघा॑मिव गो॒दुहो॑ जुहू॒मसि॑ श्रव॒स्यवः॑॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **यस्य**=जिसके **स्तोमेषु**–स्तुतिवचनों में **त्वं**=आप **चाकनः**=कामनावाले होते हैं–जिसके स्तुतिवचन आपके लिए कान्त होते हैं। हे **वाजिन्**=शक्तिसम्पन्न **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञानवाले प्रभो! जिसके **वाजे**=बल में आप कामनावाले होते हैं, अर्थात् जिसे आप सबल बनाने का अनुग्रह करते हैं, अर्थात् आप ही हमें स्तुतिप्रवण व शक्तिशाली बनाते हैं। (२) **तं त्वा**=उन आपको **वयं**=हम **श्रवस्यवः**=ज्ञान व यशस्वी जीवन की कामनावाले होते हुए इस प्रकार **जुहूमसि**=पुकारते हैं, जैसे **गोदुहः**=गोधुक् (गोप) लोग दुग्धदोहन के लिए **सुदुघाम्**=उत्तमता से दौड़ने योग्य गौ को। आपसे हमें उत्तम ज्ञानदुग्ध प्राप्त होता है, जिसने हमें परिपुष्ट, पवित्र व यशस्वी बनाना है।

भावार्थ–प्रभु के अनुग्रह से हम स्तुतिप्रवण, शक्तिसम्पन्न व ज्ञान के पिपासु बनें। शरीर में शक्ति, मस्तिष्क में ज्ञान व मन में हमारे स्तुति की भावना हो।

ऋषिः—आयुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

गोः अश्वस्य प्रदातु नः

यो नो॑ दा॒ता स नः॑ पि॒ता म॒हाँ उ॒ग्र ई॑शान॒कृत्।

अया॑मन्नु॒ग्रो म॒घवा॑ पुरू॒वसु॒र्गोरश्व॑स्य॒ प्र दा॑तु नः॥ ५॥

(१) **यः**=जो **नः**=हमारे लिए **दाता**=सबकुछ देनेवाले हैं, **सः**=वे **नः**=हमारे **पिता**=पिता हैं। **महान्**=पूजनीय हैं। **उग्रः**=तेजस्वी हैं। **ईशानकृत्**=ऐश्वर्य को करनेवाले हैं। (२) वे प्रभु **उग्रः**=तेजस्वी व **मघवा**=ऐश्वर्यशाली हैं। वे हमारे लिए **अयामन्**=इन धनों को देते हैं। वे **पुरूवसुः**=पालक व पूरक वसुओं के देनेवाले प्रभु **नः**=हमारे लिए **गोः**=ज्ञानेन्द्रियों व **अश्वस्य**=कर्मेन्द्रियों को **प्रदातु**=देनेवाले हों।

भावार्थ–प्रभु सर्वप्रद हैं। हमारे लिए वे ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को तथा पालक व पूरक धनों को देनेवाले हों।

ऋषिः—आयुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'वसुपति-शतक्रतु' इन्द्र

यस्मै॒ त्वं व॑सो दा॒नाय॒ मंह॑से॒ स रा॒यस्पोष॑मिन्वति।

व॒सू॒यवो॒ वसु॑पतिं श॒तक्र॑तुं॒ स्तोमै॒रिन्द्रं॑ हवामहे॥ ६॥

(१) हे **वसो**=वसानेवाले प्रभो! या वसुओं को देनेवाले प्रभो! **यस्मै**=जिसके लिए **त्वं**=आप **मंहसे**=धनों को देते हैं, वह सब **दानाय**=दान के लिए देते हैं। वस्तुतः धन प्रभु का होता है।

हम उस धन के रक्षक होते हैं। इस धन का हमें लोकहित के लिए विनियोग करना होता है। **सः**-वह दान देनेवाला व्यक्ति **रायः**-धनों के **पोषम्**-पोषण को **इन्वति**-प्राप्त होता है। (२) हम भी **वसूयवः**=वसुओं को प्राप्त करने की कामनावाले होते हुए उन **वसुपतिं**-वसुओं के स्वामी **शतक्रतुं**-अनन्त प्रज्ञान व कर्मोंवाले **इन्द्रं**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **स्तोमैः**=स्तुतिसमूहों से **हवामहे**=पुकारते हैं। प्रभु ने ही तो हमें वसुओं को प्राप्त कराना है।

भावार्थ-प्रभु हमें दान के लिए धनों को प्राप्त कराते हैं। उस वसुपति को ही हम स्तोमों द्वारा आराधित करते हैं।

ऋषिः—आयुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'तुरीय आदित्य' प्रभु

कदा चन प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी।
तुरीयादित्य हवनं त इन्द्रियमा तस्थावमृतं दिवि॥ ७॥

(१) हे प्रभो! आप **कदा च**=कभी भी **न प्रयुच्छसि**=प्रमाद नहीं करते हो। **उभे**=दोनों **जन्मनी**=जन्मों को-इहलोक व परलोक को **निपासि**=निश्चय से रक्षित करते हो। (२) हे **तुरीय**=समाधिजन्य तुरीयावस्था से प्राप्त होने योग्य! **आदित्य**=सूर्यवत् देदीप्यमान प्रभो! (आदित्यवर्णम्) **ते हवनम्**-आपका पुकारना **इन्द्रियं**=वीर्य व बल है, अर्थात् आपकी आराधना से शक्ति प्राप्त होती है। आपके **दिवि**=ज्ञान के प्रकाश में **अमृतं**=नीरोगता व अमरता **आतस्थौ**=स्थित है। आपसे दिया जानेवाला यह ज्ञान का प्रकाश हमारे लिए अमृतत्व को देनेवाला है।

भावार्थ-प्रभु प्रमादरहित होकर हमारे इहलोक व परलोक का रक्षण करते हैं। प्रभु की आराधना हमें शक्ति देती है। प्रभु से दिये गये ज्ञान के प्रकाश में अमृतत्व निहित हैं।

ऋषिः—आयुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

कण्ववत् शृणुधि हवम्

यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र गिर्वणः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे।
अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवम्॥ ८॥

(१) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन्! **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन्! **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों से सम्भजनीय! **शिक्षो**=शिक्षित करनेवाले प्रभो! **त्वं**=आप **यस्मै दाशुषे**=जिस दानशील पुरुष के लिए होते हो, उसे **शिक्षसि**-शिक्षित करते हो। जो प्रभु का बनता है, प्रभु उसे शिक्षित करते हैं। (२) हे **वसो**=बसानेवाले प्रभो! **अस्माकं**=इनकी **गिरः**-ज्ञान की वाणियों को उस **सुष्टुतिं**=उत्तम स्तुति को आप **शृणुधि**=सुनिये। हे प्रभो! हमारी **हवम्**=पुकार व प्रार्थना को इस प्रकार सुनिये जैसे **कण्ववत्**=कण्व-एक मेधावी पुरुष की प्रार्थना को सुनते हैं।

भावार्थ-हम प्रभु के प्रति अपने को अर्पत करें-प्रभु हमें आवश्यक धनों को दें। प्रभु हमारी पुकार को सुनें।

ऋषिः—आयुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

वेदवाणी द्वारा बुद्धिवर्धन

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत॥ ९॥

(१) **पूर्व्यं**=पालन व पूरण करने में उत्तम **मन्म**=मननीय स्तोत्र **अस्तावि**=हमारे से स्तुत होता है। हम प्रभु का विचारपूर्वक स्तवन करते हैं—यह स्तवन हमारी लक्ष्यदृष्टि को पैदा करता हुआ हमारा पूरण करता है। **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिए **ब्रह्म वोचत**=ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करो। (२) **ऋतस्य**=सत्य ज्ञान की **पूर्वीः**=सृष्टि के प्रारम्भ में दी जानेवाली **बृहतीः**=ये वर्धन की हेतुभूत वाणियाँ **अनूषत**=हमारे से स्तुत होती हैं। इस वेदवाणी के स्तवन से **स्तोतुः**=स्तवन करनेवाले की **मेधाः**=बुद्धियाँ **असृक्षत**=सृष्ट होती हैं। वेदवाणियों का अध्ययन बुद्धियों की वृद्धि का कारण बनता है।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभुप्राप्ति के लिए ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करें। ये वेदवाणियाँ हमारी बुद्धि का वर्धन करनेवाली होती हैं।

ऋषिः—आयुः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

प्रभु ही ऐश्वर्य के प्रेरक हैं

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम्।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः॥ १०॥

(१) **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **बृहतीः रायः**=वृद्धि के कारणभूत धनों को **सम् अधूनुत**=(Promoted) हमारी ओर प्रेरित करते हैं। वे प्रभु ही **क्षोणी**=पृथिवी को **सं**=प्रेरित करते हैं, **उ**=और **सूर्यं**=सूर्य को **सं**=प्रेरित करते हैं। (२) **शुचयः**=जीवन को पवित्र बनानेवाले **शुक्रासः**=वीर्यकण **इन्द्रम्**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **सम् अमन्दिषुः**=आनन्दित करते हैं। वीर्यकणों की रक्षा करनेवाला पुरुष प्रभु का प्रिय बनता है। ये **गवाशिरः**=इन्द्रियों के मलों का संहार करनेवाले **सोमाः**=सोमकण प्रभु को आनन्दित करते हैं। जब उपासक सोमकणों के रक्षण के द्वारा इन्द्रियों को सशक्त व निर्मल बनाता है, तो यह प्रभु का प्रिय होता है।

भावार्थ—प्रभु ही सब ऐश्वर्यों को हमारी ओर प्रेरित करते हैं। प्रभु ही पृथिवी व सूर्य को गति देते हैं। सोमरक्षक पुरुष प्रभु का प्रिय बनता है।

जीवन को पवित्र बनानेवाला 'मेध्य काण्व' अगले सूक्त का ऋषि है। यह इन्द्र की उपासना इस प्रकार करता है—

५३. [त्रिपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'पूर्भित्तम' इन्द्र

उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणाम्।
पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ईशानं त्वा**=सब धनों के स्वामी आपसे **रायः ईमहे**=धनों की याचना करते हैं, उन आपसे धनों की याचना करते हैं जो **मघोनाम् उपमं**=ऐश्वर्यशाली पुरुषों के उपमानभूत हैं, **च**=और **वृषभाणां ज्येष्ठम्**=शक्तिशालियों में श्रेष्ठ हैं। (२) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! उन आपसे हम धनों की याचना करते हैं जो **पूर्भित्तमम्**=असुरों की पुरियों का सर्वाधिक विदारण करनेवाले हैं, अर्थात् उपासकों को आसुरभावशून्य बनानेवाले हैं। **गोविदम्**=ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु श्रेष्ठ हैं—ज्ञान की वाणियों को देकर हमें आसुरभावों से ऊपर उठानेवाले हैं।

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पं-ः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'आयु-कुत्स-अतिथिग्व-हर्यश्व व शतक्रतु'

य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे।
तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे॥ २॥

(१) **यः**=जो प्रभु **आयुं**=गतिशील पुरुष को, **कुत्सं**=वासनाओं का संहार करनेवाले को, **अतिथिग्वं**=उस महान् अतिथि प्रभु की ओर जानेवाले को **अर्दयः**=प्राप्त होते हैं (अर्द गतौ), जो **दिवे-दिवे**=प्रतिदिन **वावृधानः**=हमारा खूब ही वर्धन करनेवाले हैं, **तं त्वा**=उन आपको **वयं**=हम **हवामहे**=पुकारते हैं। आपके अनुग्रह से ही तो हम 'आयु, कुत्स व अतिथिग्व' बन पाते हैं। (२) हम **वाजयन्तः**=शक्ति को प्राप्त करने की कामनावाले होते हुए **हर्यश्वं**=तेजस्वी इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले, **शतक्रतुं**=अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले प्रभु को पुकारते हैं। प्रभु के अनुग्रह से हम 'हर्यश्व व शतक्रतु' बन पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु का आराधन करते हुए हम 'आयु, कुत्स, अतिथिग्व, हर्यश्व व शतक्रतु' बनें।

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराट् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

परावति-अर्वावति

आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः।
ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः॥ ३॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि **अद्रयः**=प्रभु का आदर करनेवाले उपासक लोग **नः**=हमारे से उत्पन्न किये गये **विश्वेषां रसं**=सब ओषधियों के सारभूत अथवा सब अंगों को रसमय बनानेवाले **मध्वः**=सोम का आ **सिञ्चन्तु**=सब अंग-प्रत्यगों में सेचन करें। (२) उन सोमकणों का सेचन करें **ये**=जो **जनेषु**=लोगों में **परावति**=उस सुदूर मोक्षलोक की प्राप्ति के निमित्त **सुन्विरे**=उत्पन्न किये जाते हैं और **ये**=जो **अर्वावति**=इस अर्वाक्-समीपस्थ इहलोक के लिए **आ**=समन्तात् सुत किये जाते हैं। इन सोमकणों के रक्षण से ही इहलोक व परलोक का कल्याण होता है। इहलोक के अभ्युदय व परलोक के निःश्रेयस का निर्भर इस सोमरक्षण पर ही है।

भावार्थ—प्रभु के आदेश के अनुसार हम शरीर में ही सोम का सेचन करें। यह सोम ही अभ्युदय व निःश्रेयस का साधक है।

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पं-ः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

निर्द्वेषता व उल्लास

विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु।
शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि॥ ४॥

(१) हे इन्द्र! **यत्रा**=जहाँ **सोमस्य तृम्पसि**—तू सोम से तृप्ति का अनुभव करता है, वहाँ **विश्वा**=सब **द्वेषांसि**=द्वेषो को **जहि**—विनष्ट कर, **च**=और **अवकृधि**=सब द्वेषों को हमारे से दूर कर। सोमरक्षण से द्वेषादि की वृत्तियाँ उत्पन्न ही नहीं होती। (२) इस सोमरक्षण से **विश्वे**=सब **वसु**=धन **आ सन्वन्तु**—तुझे प्राप्त हों। ये **अंशवः**=सोमकण **शीष्टेषु**=शिष्ट पुरुषों में **चित्ते**

मदिरासः=हृदय में उल्लास को पैदा करनेवाले हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से निर्द्वेषता प्राप्त होती है और हृदयों में उल्लास होता है।

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

बुद्धि-शान्ति-इष्टप्राप्ति-बन्धुत्व

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः।
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! आप **नेदीयः**=अत्यन्त समीप **इत्**=निश्चय से **आ इहि**=सर्वथा प्राप्त होइये। आप **मितमेधाभिः** (निर्मित)=जिनमें मेधा का निर्माण हुआ है, उन रक्षणों के साथ हमें प्राप्त होइये। प्रभु जिसका रक्षण करते हैं, उसे बुद्धि प्राप्त करा देते हैं। (२) हे **शन्तम**=अधिक-से-अधिक शान्ति को देनेवाले प्रभो! आप **शन्तमाभिः**=अधिक-से-अधिक शान्ति को देनेवाली **अभिष्टिभिः**=इष्टप्राप्तियों के द्वारा **आ**=हमें प्राप्त होइये। हे **स्वापे**=उत्तम बन्धुभूत प्रभो! आप **स्वापिभिः**=उत्तम बन्धुत्वों से **आ**=हमें प्राप्त होइये।

भावार्थ—प्रभु के रक्षण हमें बुद्धि व शान्ति प्राप्त कराते हैं। इन रक्षणों को प्राप्त करके हम शत्रुओं पर आक्रमण करके इष्ट को प्राप्त करते हैं। प्रभु ही हमारे सर्वश्रेष्ठ बन्धु हैं।

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'स्तोत्रों व यज्ञों' द्वारा शक्तिवर्धन

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम्।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक्॥ ६॥

(१) हे प्रभो! आप **आजितुरं कृधि**=हमें संग्राम में शत्रुओं का संहार करनेवाला बनाइये। **सत्पतिं**=सज्जनों का रक्षक व **विश्वचर्षणिं**=सब मनुष्यों का ध्यान करनेवाला, अर्थात् स्वार्थवृत्ति से ऊपर उठकर परार्थवृत्तिवाला बनाइये। आप हमें **प्रजासु आभगम्**=सब प्रजाओं में सब प्रकार से ऐश्वर्यवाला बनाइये। (२) हे प्रभो! **ये**=जो **ते**=आपके **उक्थिनः**=स्तोता हैं और जो **आनुषक्**=निरन्तर **क्रतुं पुनते**=यज्ञों को पवित्र करते हैं, अर्थात् यज्ञों के द्वारा पवित्र जीवनवाले होते हैं, उन्हें **शचीभिः**=शक्तियों के द्वारा **सु**=सम्यक् **प्रतिर**=बढ़ाइये। स्तोत्र व यज्ञ हमें शक्तिशाली बनाते हैं।

भावार्थ—स्तोत्रों व यज्ञों से शक्तिवर्धन होता है। हम संग्रामविजयी व ऐश्वर्यशाली बनते हैं।

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

साधिष्ठः

यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते।
वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे॥ ७॥

(१) **यः**=जो **ते**=तेरा होता है वह **साधिष्ठः**=अतिशयेन सिद्धि को प्राप्त होनेवाला होता है। वह **ते**=आपके **अवसे**=रक्षण के लिए होता है। हम **भरेषु**=संग्रामों में **ते स्याम**=आपके हों। आपके द्वारा ही तो हमने संग्रामों में विजय प्राप्त करनी है। (२) **वयं**=हम **होत्राभिः**=यज्ञों के द्वारा-त्यागपूर्वक अदन के द्वारा **उत**=और **देवहूतिभिः**=दिव्यगुणों को पुकारने के द्वारा **ससवांसः**=आपका संभजन करते हुए **मनामहे**=आपका मनन करते हैं-आपका चिन्तन करते हैं।

भावार्थ–प्रभु का उपासक सिद्धि को प्राप्त करता है, सुरक्षित होता हुआ संग्राम में विजयी बनता है। अग्निहोत्र व दिव्यगुणों की साधना ही प्रभु का संभजन है। इस संभजन को करते हुए हम प्रभु का चिन्तन करें।

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराट् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

मथीनाम् अग्रे

अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुराजिं यामि सदोतिभिः।
त्वामिदेव तममे समश्वयुर्गव्युरग्रे मथीनाम्॥ ८॥

(१) हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **ते**–आपकी **वाजयुः**=शक्ति को अपने साथ जोड़ने की कामनावाला **अहं**=मैं **हि**=निश्चय से **सदा**=सदा **ऊतिभिः**=रक्षणों के साथ ब्रह्म-ज्ञान को तथा **आजिं**=संग्राम में गति व शत्रुक्षेपण को (अज गतिक्षेपणयोः) **यामि**=(याचामि) माँगता हूँ। (२) **अश्वयुः**=उत्तम कर्मेन्द्रियों की कामनावाला तथा **गव्युः**=उत्तम ज्ञानेन्द्रियों की कामनावाला मैं **त्वाम् इत् एव**=आपको ही **संतममे**=चाहता हूँ। आपके अनुग्रह से मैं **मथीनाम् अग्रे**=शत्रुओं को कुचलनेवालों के अग्रभाग में होऊँ।

भावार्थ–मैं ज्ञान व संग्रामविजय को प्राप्त करूँ। प्रभु को प्राप्त करके शत्रुओं को कुचलने वाला अगुआ बनूँ।

अगले सूक्त का ऋषि 'मातरिश्वा काण्व' है–वेदमाता में चलनेवाला समझदार। वेदमाता के अनुसार कर्म करनेवाला यह काण्व प्रभुस्तवन करता हुआ कहता है–

५४. [चतुःपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—मातरिश्वा काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

ते स्तोभन्तः ऊर्जमावन्

एतत्त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः।
ते स्तोभन्त ऊर्जमावन्घृतश्चुतं पौरासो नक्षन्धीतिभिः॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **कारवः**=कुशलता से कार्यों को करने के द्वारा आपके स्तोता लोग **ते एतत्**=आपकी इस **वीर्यं**=शक्ति को **गीर्भिः गृणन्ति**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा स्तुत करते हैं और **स्तोभन्तः ते**=स्तवन व शंसन करते हुए वे **ऊर्जम्**=अपने बल व प्राणशक्ति का **आवन्**=रक्षण करते हैं। (२) ये बल का रक्षण करनेवाले **पौरासः**=शरीररूपी पुरी को पवित्र व दृढ़ बनानेवाले लोग **धीतिभिः**=ध्यान की प्रक्रियाओं के द्वारा **घृतश्चुतं**=ज्ञानदीप्ति व नैर्मल्य को सब ओर क्षरित करनेवाले प्रभु को **नक्षन्**=प्राप्त होते हैं।

भावार्थ–प्रभु की शक्ति का स्मरण करते हुए हम भी अपनी शक्ति का रक्षण करें। ध्यान की प्रक्रियाओं के द्वारा हम प्रभु को पानेवाले बनें।

ऋषिः—मातरिश्वा काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

संवर्त+कृश

नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे।
यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **येषां**=जिनके **सुतेषु**=उत्पन्न किये गये सोमकणों में

अथवा यज्ञों में (सुत-सव-यज्ञ) **मन्दसे**=आप आनन्दित होते हैं। जो सोमरक्षण द्वारा अथवा यज्ञों द्वारा आपको आनन्दित करते हैं, वे **सुकृत्यया**=शुभकर्मों के द्वारा **अवसे**=रक्षण के लिए **इन्द्रं नक्षन्ते**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को-आपको प्राप्त होते हैं। (२) हे प्रभो! **यथा**=जैसे **संवर्ते**=इन्द्रियों व मन को विषयों से हटा कर प्रत्याहृत करनेवाले मनुष्य में आप **अमदः**=हृषत होते हो, **यथा**=जैसे **कृशे**=भोगविलास से दूर रहते हुए तपःकृश व्यक्ति में आप आनन्दित होते हो, हे इन्द्र! **एवा**=इसी प्रकार **अस्मे**=हमारे मैं **मत्स्व**=आप आनन्दित होइये।

भावार्थ-प्रभु को उत्तम कर्मों के द्वारा हम प्राप्त होते हैं। प्रभु हमारा रक्षण करते हैं। प्रभु को वे व्यक्ति प्रीणित करते हैं जो यज्ञशील हैं, इन्द्रियों को विषयों से प्रत्याहृत करनेवाले हैं तथा भोगविलास से दूर रहकर तपःकृश जीवन बिताते हैं।

ऋषिः—मातरिश्वा काण्वः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

वसवः, रुद्राः, मरुतः

आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गमञ्छृण्वन्तु मरुतो हवम्॥ ३॥

(१) **नः**=हमारे प्रति **सजोषसः**=समानरूप से प्रीतिवाले होते हुए **विश्वे**=सब **देवासः**=देव **आ**=सब ओर से **नः उपगन्तन**=हमारे समीप प्राप्त हों। हम सदा देवों के संग को प्राप्त करें। (२) **वसवः**=अपने निवास को उत्तम बनानेवाले, **रुद्राः**=सब रोगों को दूर भगानेवाले विद्वान् **नः अवसे**=हमारे रक्षण के लिए **आगमन्**=हमें प्राप्त हों। **मरुतः**=प्राणसाधना में प्रवृत्त साधक लोग **हवम् शृण्वन्तु**=हमारी पुकार को सुनें। इनके सम्पर्क में हम भी 'वसु-रुद्र व मरुत्' बन पाएँ।

भावार्थ-सब दिव्यगुण हमें प्राप्त हों। हम वसु, रुद्र व मरुतों के सम्पर्क में आकर उत्तम निवासवाले, नीरोग व प्राणशक्तिसम्पन्न बनें।

ऋषिः—मातरिश्वा काण्वः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

सम्पूर्ण आधिदैविक जगत् की अनुकूलता

पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम्॥ ४॥

(१) **पूषा**=पोषक सूर्य, **विष्णुः**=सर्वव्यापक प्रभु, **सरस्वती**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता, **सप्त सिन्धवः**=सात छन्दों में प्रवाहित होनेवाले सात ज्ञान प्रवाह (स्यन्द) **मे**=मेरे **हवनम् अवन्तु**=(हु दानादनयोः) दानपूर्वक अदन को रक्षित करें। इन सबके अनुग्रह से मैं दानपूर्वक अदन करनेवाला बनूँ। (२) **आपः**=जल **वातः**=वायु **पर्वतासः**=पर्वत और **वनस्पतिः**=वनस्पति तथा **पृथिवी**=यह भूमिमाता **हवम्**=मेरी पुकार को **शृणोतु**=सुनें। इन सबकी हमारे लिए अनुकूलता हो। इनकी अनुकूलता में हम पूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त करें।

भावार्थ-'पूषा, विष्णु, सरस्वती व सप्त सिन्धुओं' की कृपा से मैं त्यागपूर्वक अदन करनेवाला बनूँ। जल, वायु, पर्वत, वनस्पति व पृथिवी की अनुकूलता में मैं स्वस्थ बनूँ।

ऋषिः—मातरिश्वा काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

माघोनं राधः

यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम।
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन्॥ ५॥

(१) हे **मघवत्तम**=अतिशयेन ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जो **ते**=आपका **माघोनं**=हमें (मघ-मख) यज्ञशील बनानेवाला **राधः**=ऐश्वर्य **अस्ति**=है, **तेन**=उस ऐश्वर्य से **नः बोधि**=हमें जानिये, अर्थात् उस ऐश्वर्य को हमें प्राप्त कराइये। (२) हे **वृत्रहन्**=वासनाओं को विनष्ट करनेवाले प्रभो! आप **सधमाद्यः**=हमारे साथ होते हुए हमें आनन्दित करनेवाले हैं और **वृधे** हमारी वृद्धि के लिए होते हैं। **भगः**=ऐश्वर्य के पुञ्ज आप **दानाय**=हमें सब ऐश्वर्यों के देने के लिए होते हैं।

भावार्थ—प्रभु से दिया गया धन हमें यज्ञशील बनाता है। हमारे साथ होते हुए प्रभु हमें आनन्दित करते हैं। हमारी वासनाओं को विनष्ट करते हुए हमारा वर्धन करते हैं।

ऋषिः—मातरिश्वा काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

आजिपति-नृपति

आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे॥ ६॥

(१) हे **आजिपते**=युद्धों के रक्षक, **नृपते**=उन्नतिपथ पर चलनेवालों के रक्षक, **सुक्रतो**=उत्तम प्रज्ञान व शक्तिवाले प्रभो! **त्वम् इत् हि**=आप ही **नः**=हमें **वाजे**=शक्ति में **आवक्षि**=धारण करते हो, अर्थात् आप ही हमें सब सामर्थ्यों को देते हो। (२) आपके उपासक **वीती**=(वी असने) अन्धकार को परे फेंकने के द्वारा **होत्राभिः**=दानपूर्वक अदन की प्रक्रियाओं से, अर्थात् यज्ञशेष के सेवन से तथा **देववीतिभिः**=दिव्यगुणों की प्राप्तियों से **ससवांसः**=प्रभु का संभजन करते हुए **विशृण्विरे**=विशिष्ट ख्याति को प्राप्त करते हैं। वास्तव में प्रभु के सम्पर्क से ये युद्धों में विजयी बनते हैं और नर बनकर आगे बढ़ते हैं।

भावार्थः—प्रभु हमें शक्ति देते हैं। यज्ञशेष के सेवन व दिव्यगुणों की प्राप्ति से ही वस्तुतः प्रभुसंभजन होता है। प्रभु हमें संग्राम में विजयी बनाते हैं।

ऋषिः—मातरिश्वा काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

आशिषः, आयुः इष्

सन्ति ह्यर्१्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम्।
अस्मान्नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्॥ ७॥

(१) **अर्ये**=स्वामी में **हि**=ही **आशिषः सन्ति**=सब इच्छाएँ व आकांक्षाएँ हैं, अर्थात् प्रभु से ही सब इच्छाओं के पूर्ण होने की आशा है। **इन्द्रे**=उस परमैश्वर्यशाली शत्रुविद्रावक प्रभु में ही **जनानाम् आयुः**=मनुष्यों की आयु है, अर्थात् प्रभु की उपासना ही हमें काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं से बचाकर दीर्घजीवन प्रदान करती है। (२) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यवन् प्रभो! आप **अस्मान्**=हमें **अवसे**=रक्षण के लिए **उपनक्षस्व**=समीपता से प्राप्त होइये। आपकी समीपता में हम किसी भी शत्रु से आक्रान्त नहीं हो पाते। हे प्रभो! आप **पिप्युषीम्**=हमारा आप्यायन करनेवाली **इषम्**=प्रेरणा को **धुक्षस्व**=हमारे अन्दर प्रपूरित करिये। आपकी प्रेरणा से ठीक मार्ग पर चलते हुए हम सदा अपना आप्यायन कर पाएँ।

भावार्थ—प्रभु ही हमारी आकांक्षाओं को पूर्ण करते हैं, दीर्घजीवन प्रदान करते हैं, हमारा रक्षण करते हुए प्रभु हमें वह प्रेरणा प्राप्त कराते हैं, जो हमारा वर्धन करनेवाली होती है।

ऋषिः—मातरिश्वा काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

प्रभुस्तवन व उत्तम धन की प्राप्ति

वयं ते इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय॥ ८॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वयं**=हम **स्तोमेभिः**=स्तोत्रों के द्वारा **ते विधेम**=आपका पूजन करें। हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व कर्मोंवाले प्रभो! **त्वम् अस्माकं**=आप हमारे हैं। वस्तुतः आप ही तो हमारे बन्धु हैं। (२) हे प्रभो! आप **प्रस्कण्वाय**=इस अत्यन्त मेधावी पुरुष के लिए **राधः**=कार्यसाधक धन **नितोशय**=प्राप्त कराइये। जो धन **महि**=महान् है, **स्थूरे**=स्थिर है, **शशयं**=अतिशयेन प्रशंसनीय व **अह्रयं**=क्षीण न होनेवाला है।

भावार्थ—हम प्रभुस्तवन करें। प्रभु के बन्धुत्व को प्राप्त करके न क्षीण होनेवाले धन को प्राप्त करें।

प्रभुस्तवन में प्रवृत्त व्यक्ति भोगों में नहीं फंसता। तपस्वी जीवन बिताता हुआ यह तपःकृश होता है। यह 'कृश' ही अगले सूक्त का ऋषि है। वह समझदार तो है ही 'काण्व'। यह कहता है कि—

५५. [पञ्चपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—कृशः काण्वः॥ देवता—प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः॥ छन्दः—पादनिचृद् गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

सर्वत्र प्रभु शक्ति का अनुभव

भूरीदिन्द्रस्य वीर्यं व्यख्यमभ्यायति। राधस्ते दस्यवे वृक॥ १॥

(१) मैं **इन्द्रस्य**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु के **भूरि इत्**=महान् ही **वीर्यं**=पराक्रम को **व्यख्यम्**=विशेष रूप से देखता हूँ। सब ओर प्रभु की शक्ति का अनुभव होता है। (२) हे **दस्यवे वृक**=दास्यववृत्ति के लिए वृक के समान, अर्थात् अशुभवृत्तियों को नष्ट करनेवाले प्रभो! **ते राधः**=आपका ऐश्वर्य **अभ्यायति**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त होता है। जब एक साधक सर्वत्र उस प्रभु की शक्ति का अनुभव करता है, तो अशुभवृत्तियों से ऊपर उठकर शुभ ऐश्वर्य को पाता ही है।

भावार्थ—हम सर्वत्र प्रभु की शक्ति को देखने का प्रयत्न करें। प्रभु हमारी अशुभ वृत्तियों को दूर करेंगे और शुभ ऐश्वर्य को प्राप्त कराएँगे।

ऋषिः—कृशः काण्वः॥ देवता—प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

शतं श्वेतासः उक्षणः

शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते। मह्ना दिवं न तस्तभुः॥ २॥

(१) गतमन्त्र में वर्णित इन्द्रशक्ति का उल्लेख करते हुए ही कहते हैं कि उस प्रभु की **मह्ना**=महिमा से **शतं**=सैकड़ों **श्वेतासः**=शुभ्र उज्ज्वल प्रकाश से देदीप्यमान **उक्षणः**=पृथ्वी पर जलसेचन के करानेवाले सूर्य **दिवि**=द्युलोक में **तारः न**=तारों के समान **रोचन्ते**=चमकते हैं। इस सूर्य के समान ब्रह्माण्ड में कितने ही सूर्य हैं। (२) ये सूर्य **दिवं न**=द्युलोक के समान सब लोकों को **तस्तभुः**=आकर्षण के द्वारा थामते हैं—इन लोकों का ये सूर्य ही धारण करते हैं।

भावार्थ—ब्रह्माण्ड में अनेक सूर्य हैं। ये सूर्य अपने चारों ओर के लोकों का धारण करते हैं।

ऋषिः—कृशः काण्वः॥ **देवता**—प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

सृष्टि की विविधता

शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि।
शतं मे बल्बजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम्॥ ३॥

(१) गतमन्त्र में सैकड़ों सूर्यों का उल्लेख था। इस सूर्य की किरणें ही **शतं वेणून्**=सैकड़ों वेणुओं को धारण करती हैं। वेणु यहाँ वनस्पति का प्रतीक है—वनस्पति मात्र को ये सूर्य किरणें ही धारण करती हैं। **शतं शुनः**=सैकड़ों कुत्तों को ये धारण करती हैं। 'श्वा' शब्द यहाँ पशुओं का प्रतीक हैं। **शतं**=सैकड़ों प्रकार के **म्लातानि**—कमाये हुए **चर्माणि**=चमड़े इन सूर्यकिरणों द्वारा ही प्राप्त कराये जाते हैं। प्रत्येक पशु का चर्म अलग-अलग ही प्रकार का है। (२) प्रभु ने **मे**=मेरे लिए **शतं**=सैकड़ों **बल्बजस्तुका**=तृणों के गुच्छों का निर्माण किया है। **अरुषीणां चतुःशतम्**=आरोचमान ज्वालाओं के भी चार सौ भेद हैं। ज्वालाएँ भी भिन्न भिन्न प्रकार की हैं।

भावार्थ—प्रभु ने हमारे उपयोग के लिए इस विविध सृष्टि का निर्माण किया है। नाना प्रकार की वनस्पतियाँ, नाना पशु, तथा नाना प्रकार के चमड़े व तृणगुच्छ तथा नाना प्रकार की ज्वालाएँ प्रभु द्वारा निर्मित हुई हैं।

ऋषिः—कृशः काण्वः॥ **देवता**—प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सुदेव व काण्वायन

सुदेवाः स्थ काण्वायना वयोवयो विचरन्तः। अश्वासो न चङ्क्रमत॥ ४॥

(१) हे जीवो! तुम **सुदेवाः स्थ**=उत्तम माता-पिता व आचार्यरूप देवों को प्राप्त हुए हो, अतएव **काण्वायनाः**=अतिशयेन मेधावी बने हो। **वयः वयः**=आयुष्य के पहले प्रयाण से दूसरे प्रयाण में, दूसरे से तीसरे में तथा तीसरे से चौथे प्रयाण में **विचरन्तः**—विचरण करते हुए होओ। ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में, गृहस्थ से वानप्रस्थ में और वहाँ से संन्यास में। (२) इस प्रकार **अश्वासः न**—अश्वों की तरह **चङ्क्रमत**=खूब ही गतिवाले होओ और आगे और आगे बढ़ते हुए लक्ष्य पर पहुँचनेवाले बनो।

भावार्थ—उत्तम माता, पिता व आचार्यों को पाकर हम ज्ञानी बनें। जीवन के प्रयाणों में घोड़ों के समान आगे और आगे बढ़ते हुए हम लक्ष्य स्थान पर पहुँचें।

ऋषिः—कृशः काण्वः॥ **देवता**—प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

'साप्त अनून' प्रभु

आदित्साप्तस्य चर्किरन्नानूनस्य महि श्रवः।
श्यावीरतिध्वसन्पथश्चक्षुषा चन संनशे॥ ५॥

(१) गतमन्त्र में वर्णित (सुदेव काण्वायन) **आत् इत्**=अब शीघ्र ही **साप्तस्य**=(सप्) उस पूजनीय व सर्वत्र प्राप्त **आ अनूनस्य**=सब प्रकार से कमियों से रहित उस पूर्ण प्रभु के **महि श्रवः**=महान् यश को **चर्किरन्**=करते हैं। (२) उस प्रभु का यशोगान करते हुए ये व्यक्ति **श्यावीः पथः**=कुकर्म मार्गों को—राजस व तामस मार्गों को **अतिध्वसन्**=नष्ट करते हैं। सदा सात्त्विक मार्गों का ही आक्रमण करते हैं। यह प्रभु का यशोगान करता हुआ सात्त्विक मार्ग से चलनेवाला व्यक्ति **चक्षुषा चन**=आँख से भी **सनशे**=उस प्रभु को प्राप्त करता है—अर्थात् आँख

से सर्वत्र उस प्रभु की महिमा को देखता है।

भावार्थ–हम उस सर्वत्र प्राप्त अन्यून प्रभु का गायन करें। सात्त्विक मार्गों से चलते हुए प्रभु की महिमा को सर्वत्र देखें।

सात्त्विक मार्ग से चलनेवाला यह व्यक्ति धन की आसक्ति से ऊपर उठा होने के कारण धन का वर्षण करता हुआ सबका धारण करनेवाला बनता है सो 'पृषध्र' है। समझदार होने से यह 'काण्व' है। यह दान की महिमा का वर्णन करता हुआ कहता है–

५६. [षट्पञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—पृषध्रः काण्वः॥ **देवता**—प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अह्रयं राधः, शवः

प्रति॑ ते दस्यवे वृक॒ राधो॑ अद॒र्श्यह्र॑यम्। द्यौर्न प्र॑थि॒ना शवः॑॥ १॥

(१) हे **दस्यवे वृक**=दास्यव वृत्तियों के लिए वृक के समान–दास्यववृत्तिरूप भेड़ों को समाप्त करनेवाले भेड़िये के समान प्रभो! **ते**=आपका **राधः**=ऐश्वर्य **प्रति अदर्शि**=प्रत्येक स्थान में दृष्टिगोचर होता है, जो **अह्रयम्**=अक्षीण हैं। आपका ऐश्वर्य कभी क्षीण नहीं होता। (२) आपका **शवः**=बल भी **प्रथिना**=विस्तार के दृष्टिकोण से **द्यौः न**=आकाश के समान है। प्रभु की शक्ति का प्रकाश सर्वत्र है।

भावार्थ–प्रभु का ऐश्वर्य अक्षीण है, शक्ति अनन्त है। उपासक के लिए भी प्रभु अक्षय धन व बल प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—पृषधः काण्वः॥ **देवता**—प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वेदज्ञान की महिमा

दश॒ मह्यं॑ पौतक्र॒तः स॒हस्रा॒ दस्य॑वे॒ वृकः॑। नित्या॑द्रा॒यो अ॑मंहत॥ २॥

(१) **पौतक्रतः**=पवित्र ज्ञान व पवित्र कर्मोंवाला, **दस्यवे वृकः**=दास्यव वृत्तियों के लिए भेड़िये के समान वह प्रभु **मह्यं**=मेरे लिए **नित्यात्**=इस नित्य (सनातन) वेदज्ञान के द्वारा **सहस्राः**=आनन्दयुक्त **दश**=दस इन्द्रियों व प्राणों को **अमंहत**=देते हैं। (२) इस वेदज्ञान के द्वारा ही वे प्रभु **सहस्रा रायः**=आनन्द के साधक धनों को प्राप्त कराते हैं। इस धन के द्वारा हम भी पवित्र ज्ञान व पवित्र कर्मों को सिद्ध करते हुए 'पौतक्रत' बनते हैं। वेदज्ञान हमें भी 'दस्यवे वृक' बनाता है।

भावार्थ–प्रभु वेदज्ञान द्वारा हमें प्रसन्न इन्द्रियों व आनन्दप्रद धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—पृषध्रः काण्वः॥ **देवता**—प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गर्दभ+ऊर्णावती

श॒तं मे॑ गर्द॒भानां॑ श॒तमूर्णा॑वतीनाम्। श॒तं दा॒साँ अति॒ स्रजः॑॥ ३॥

(१) गतमन्त्र में वर्णित वेदज्ञान के द्वारा प्रभु **मे**=मेरे लिए **शतं**=शतवर्ष पर्यन्त ठीक रहनेवाली **गर्दभानां**=कार्यभार को गधे के समान उठानेवाली कर्मेन्द्रियों को तथा **शतं**=शतवर्ष पर्यन्त अपना कार्य ठीक से करनेवाली **ऊर्णावतीनाम्**=(ऊर्णु आच्छादने) हमें पापों से आच्छादित करनेवाली–बचानेवाली ज्ञानेन्द्रियों को **अतिस्रजः**=देते हैं। (२) इसप्रकार उत्तम कर्मेन्द्रियों व उत्तम ज्ञानेन्द्रियों को देकर प्रभु हमारे लिए **शतं**=शतवर्षपर्यन्त **दासान्**=(दसु उपक्षये) वासनाविनाशों को प्राप्त कराते

हैं।

भावार्थ–वेदज्ञान के द्वारा प्रभु हमारी कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों को प्रशस्त बनाते हैं और वासनाओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—पृषध्रः काण्वः॥ **देवता**—प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पूतक्रता के लिए भी व्यक्ता

तत्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता। अश्वानामिन्न यूथ्याम्॥ ४॥

(१) **तत्र**=वहाँ इस मानवजीवन में **पूतक्रतायै**=पवित्र ज्ञान व कर्मोंवाली इस स्त्री के लिए **अपि**=भी **उ**=निश्चय से **व्यक्ता**=सब पदार्थों के प्रकाशवाली–सब सत्य विद्याओं के प्रकाशवाली–यह वेदवाणी **प्राणीयत**=प्राप्त कराई जाती है। (२) उसीप्रकार यह वेदवाणी पूतक्रता के लिए प्राप्त कराई जाती है **न**=जैसे **इत्**=निश्चय से **अश्वानाम् यूथ्याम्**=इन्द्रियाश्वों का समूह। स्त्री को भी कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ प्राप्त कराई जाती हैं। इसी प्रकार उसे वेदज्ञान भी दिया जाता है।

भावार्थः–पवित्र ज्ञान व कर्मोंवाली स्त्रियाँ भी इन्द्रियाश्वों के समूह की तरह इस वेदज्ञान को प्राप्त करती हैं। 'उन्हें वेद पढ़ने का अधिकार न हो' यह बात नहीं है।

ऋषिः—पृषध्रः काण्वः॥ **देवता**—अग्निसूर्यौ॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

हव्यवाट्-सुमद्रथः

अचेत्यग्निश्चिकितुर्हव्यवाट् स सुमद्रथः।

अग्निः शुक्रेण शोचिषा बृहत्सूरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत॥ ५॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार वेदवाणी को प्राप्त करनेवाला **अचेति**–चेतनावाला होता है। यह **अग्निः**–प्रगतिशील व्यक्ति **चिकितुः**=ज्ञानी बनता है, **हव्यवाट्**=हव्य का वहन करनेवाला अर्थात् यज्ञशील होता है। **सः**=वह **सुमद्रथः**–प्रशस्त शरीररूप रथवाला होता है। वह **अग्निः**=प्रगतिशील व्यक्ति **शुक्रेण शोचिषाः**=देदीप्यमान ज्ञानज्योति से **बृहत्**=खूब **अरोचत**=चमकता है। (२) **सूरः**–यह सूर्य के समान होता है। इसके **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **सूर्यः**=ज्ञान का सूर्य **अरोचतः**=चमक उठता है।

भावार्थ–वेदवाणी के अध्ययन से हम चेतनावाले होकर हव्य का ही सेवन करते हैं। उत्तम शरीररूप रथवाले बनकर देदीप्यमान ज्ञानज्योति से सूर्य की तरह चमक उठते हैं।

ज्ञान से अपने जीवन को पवित्र करनेवला वह व्यक्ति 'मेध्य' नामवाला होता है–ज्ञानज्योति से चमकनेवाला 'काण्व' बनता है। यह प्राणापान की साधना करता हुआ 'अश्विनौ' का आराधन करता हुआ कहता है–

५७. [सप्तपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

क्रतुना-शचीभिः

युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा।

आगच्छतं नासत्या शचीभिरिदं तृतीयं सवनं पिबाथः॥ १॥

(१) हे **देवा**=रोगों व वासनाओं को जीतने की कामनावाले (दिव् विजिगीषायां) **यजत्रा**=संगतिकरण द्वारा रक्षण करनेवाले अथवा पूजा के योग्य **नासत्या**–सब असत्यों को दूर करनेवाले

प्राणापानो! **युवं**=आप **क्रतुना**=प्रज्ञान व शक्ति के साथ तथा **पूर्व्येण**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम **रथेन**=शरीररथ के साथ **तविषं**=बलपूर्वक **आगच्छतम्**=हमें प्राप्त होओ। (२) हे प्राणापानो! आप **शचीभिः**=शक्तियों के हेतु से **इदं तृतीयं सवनं**=इस तृतीय सवन को भी **पिबाथः**=सोम का पान करनेवाला बनाओ। जीवन के प्रथम २४ वर्ष प्रातः सवन हैं, अगले ४४ वर्ष माध्यन्दिनसवन हैं और अन्तिम ४८ वर्ष तृतीय सवन हैं। प्राणसाधना द्वारा सोम का रक्षण करते हुए हम इस तृतीय सवन को भी सबल बनाएँ।

भवार्थ–प्राणायाम द्वारा अश्विनी देवों का आराधन हमारे जीवन को शक्तिशाली बनाता है। इससे हम जीवन के तृतीय सवन में भी सबल बने रहते हैं।

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृत्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

देवों व महादेव का दर्शन

युवां देवास्त्रयं एकादशासः सत्याः सत्यस्यं ददृशे पुरस्तात्।
अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यग्नी॥ २॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **युवां**=आप दोनों को **त्रयः एकादशासः**=तीन गुणा ग्यारह, अर्थात् तैंतीस **सत्याः देवाः**=सत्य देव **सत्यस्य पुरस्तात्**=उस सत्यस्वरूप प्रभु से पूर्व **ददृशे**=देखते हैं। प्राणसाधना के होने पर जीवन में पहले ३३ देवों का प्रकाश होता है और तदनन्तर प्रभु की ज्योति का दर्शन होता है। प्राणसाधना हमारे जीवन में दिव्यगुणों का वर्धन करती हुई हमें प्रभु को समीप प्राप्त कराती है। (२) हे प्राणापानो! आप **अस्माकं**=हमारे **यज्ञं सवनं**=यज्ञमय प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन व तृतीय सवन का **जुषाणा**=सेवन करते हुए **सोमं पातं**=सोम का रक्षण करो और इस प्रकार **दीद्यग्नी**=देदीप्यमान ज्ञानाग्निवाले होओ।

भावार्थ–प्राणसाधना से दिव्यभावों का वर्धन होकर अन्ततः प्रभु का दर्शन होता है। सोम का रक्षण होकर ज्ञानाग्नि का दीपन होता है।

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृत्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'शरीर, मन व बुद्धि' का शक्ति सम्पन्न होना

पनाय्यं तदंश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै॥ ३॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **वां**=आपका **तत्**=वह **कृतं**=कर्म **पनाय्यं**=स्तुत्य है, जो **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक का, **रजसः**=हृदयरूप अन्तरिक्षलोक का तथा **पृथिव्याः**=शरीररूप पृथिवीलोक का **वृषभः**=शक्ति का सेचन करनेवाला है। प्राणापान शरीर में सोम की ऊर्ध्वगति का कारण बनते हैं। इस सुरक्षित सोम के द्वारा वे 'शरीर, हृदय व मस्तिष्क' तीनों को शक्तिसम्पन्न बनाते हैं। (२) **उत**=और **पिबध्यै**=सोमपान के लिए **ये**=जो **गविष्टौ**=ज्ञानयज्ञों में **सहस्रं**=सहस्रों **शंसा**=ज्ञान की वाणियों के उच्चारण हैं, **तान् सर्वान्**=उन सबको **उपयात**=समीपता से प्राप्त होओ। ज्ञान की वाणियों के अध्ययन से वासनाओं की ओर झुकाव नहीं रहता और इसप्रकार सोम रक्षण सम्भव होता है। सो प्राणायाम के अभ्यासी को चाहिए कि अतिरिक्त समय को सदा स्वाध्याय में व्यतीत करे।

भावार्थ–प्राणसाधना से 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों ही सशक्त बनते हैं। सोमरक्षण के लिए यह भी आवश्यक है कि मनुष्य अतिरिक्त समय का यापन स्वाध्याय में करे।

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—पादनिचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

मधुमान् सोम का पान

अयं वां भागो निहितो यजत्रेमा गिरो नासत्योप यातम्।
पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः॥ ४॥

(१) **यजत्रा**=संगतिकरण द्वारा त्राण करनेवाले प्राणापानो! **अयं**=यह **वां**=आपका **भागः**=भाग **निहितः**-स्थापित हुआ है। यह सोम आपका ही भाग है, आपको इसका सेवन करना है। हे **नासत्या**=असत्य से रहित प्राणापानो। **इमाः गिरः**=इन ज्ञान की वाणियों को **उपयातम्**=समीपता से प्राप्त होओ। प्राणसाधना से सोमरक्षण द्वारा बुद्धि की तीव्रता होकर इन ज्ञान की वाणियों का ग्रहण होता है। (२) हे प्राणापानो! आप **अस्मे**=हमारे लिए **मधुमन्तं सोमं**-जीवन को अतिशयेन मधुर बनानेवाले सोम का **पिबतं**=पान करो। **दाश्वांसम्**=आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले को **शचीभिः**-प्रज्ञानों व कर्मों के द्वारा **प्र अवतम्**=प्रकर्षेण रक्षित करो।

भावार्थ-प्राणापान सोम का रक्षण करते हैं, ज्ञान की वाणियों को प्राप्त होते हैं, सोमपान द्वारा प्रज्ञानों व कर्मों का रक्षण करते हैं।

इस प्राणसाधना से होनेवाले सोमरक्षण से सब दिव्यगुणों का विकास होता है। सो अगले सूक्त का देवता 'विश्वेदेवाः' है-

५८. [अष्टपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ देवता—विश्वेदेवा ऋत्विजो वा॥ छन्दः—भुरिक्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अनूचान, ब्राह्मण युक्त

यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति।
यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्का स्वित्तत्र यजमानस्य संवित्॥ १॥

(१) **ऋत्विजः**=ऋत्विज् लोग **यं**-जिसको **बहुधा**=अनेक प्रकार से **कल्पयन्तः**= कल्पना का विषय बनाते हैं, **सचेतसः**=ज्ञानी पुरुष **इमं यज्ञं**=इस यज्ञ को **वहन्ति**=धारण करते हैं। ज्ञानी पुरुषों का जीवन यज्ञमय ही होता है। (२) **यः**=जो **अनूचानः**=ज्ञान का प्रवचन करनेवाला **ब्राह्मणः**=ब्रह्मवेत्ता पुरुष **युक्तः**=योगयुक्त **आसीत्**=होता है। **तत्र**=उस योग को करने पर **यजमानस्य**=इस यज्ञशील उपासक की **संवित्**=अनुभूति **स्वित्**=निश्चय से **का**=आनन्दमयी होती है।

भावार्थ-ज्ञानी पुरुष यज्ञशील होते हैं। ये ज्ञानी-ब्रह्मवेत्ता-योगी पुरुष एक अद्भुत आनन्द की अनुभूति को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रभु की अद्भुत महिमा

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः।
एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम्॥ २॥

(१) **एक एव अग्निः**=एक ही अग्नि **बहुधा समिद्धः**='गार्हपत्य, आहवनीय व दक्षिणाग्नि' आदि रूप से दीप्त होता है। **एकः सूर्यः**=एक ही सूर्य **विश्वम् अनु प्रभूतः**=सम्पूर्ण संसार के

प्रति प्रभाववाला होता है। **एकः एव उषाः**=एक ही उषा **इदं सर्वम्**=इस सबको **विभाति**=दीप्त कर देती है—प्रकाशमय करनेवाली होती है। **एकं वा**=वह एक ही सत् पदार्थ **इदं सर्वम्**—यह सब कुछ **विबभूव**=हो जाता है। एक ही प्रकृति कितने ही रूपों में विकृति को धारण करती है।

(२) अग्नि के विविध रूपों का विचार करें तो उस अग्नि में ही प्रभु की महिमा दृष्टिगोचर होने लगती है। यह अग्नि ऑक्सीजन व हाईड्रोजन को मिलाकर पानी बना देती है और वही कालान्तर में उस जल को फाड़कर फिर गैसों का रूप दे देती है। सूर्य का विचार करें तो वहाँ भी प्रभु की अद्भुत महिमा दिखती है। कितनी दूरी तक इस सूर्याग्नि का संताप व प्रकाश पहुँचता है? उषा का अपना ही कुछ अद्भुत महत्त्व है। एक प्रकृति से कितने विविध पदार्थ बने जाते हैं? यह सब विचार हमें उस प्रभु की महिमा का स्मरण कराता है।

भावार्थ—एक ही अग्नि विविध कार्यों को करती हुई नानारूप धारण करती है। एक ही सूर्य विश्व को किस प्रकार प्राण व प्रकाश प्राप्त करा रहा है। उषा उदय होती हुई सब अन्धकार को दूर कर देती है। एक ही सत् प्रकृति उस कुशल कारीगर के हाथों सूर्य-चन्द्र आदि विविध रूपों में विकृत हो जाती है।

ऋषिः—मेध्यः काण्वः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'ज्योतिष्मान् त्रिचक्र' रथ

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम्।
चित्रामघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अति रिक्तं पिबध्यै॥ ३॥

(१) मैं **तं रथं**=उस शरीररथ को **वां अति हुवे**=आपसे अश्विनीदेवों से अतिशयेन पुकारता हूँ। प्राणापान से मैं उस रथ की याचना करता हूँ जो **ज्योतिष्मन्तं**=ज्योतिवाला है, **केतुमन्तं**=प्रज्ञानसम्पन्न है। **त्रिचक्रं**=ज्ञान, कर्म व उपासनारूप तीनों चक्रोंवाला है। **सुखं**=(सु खं) उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाला है। **सुषदं**=उत्तम गतिवाला है (सद् गतौ) **भूरिवारम्**=बहुतों से वरने योग्य है। (२) **यस्य**=जिस रथ के **योगे**=सम्पर्क में **चित्रा**=अद्भुत **मघा**=ऐश्वर्य **अधिजज्ञे**=उत्पन्न होता है। उस **रिक्तं**=दोषशून्य रथ को **पिबध्यै**=आनन्दरस के पान के लिए आपसे मांगता हूँ।

भावार्थ—प्राणसाधना से यह शरीररथ ज्ञान, कर्म व उपासना से युक्त होकर हमारे लिए सुखकर हो। इस दोषशून्य रथ को हम आनन्दरसपान के लिए प्रार्थित करते हैं।

इस शरीररथ का सम्यक् पालन करनेवाला व्यक्ति 'सुपर्ण' है यह 'काण्व'=मेधावी है। यह रथ की उत्तमता के लिए ही 'इन्द्रावरुणौ' की आराधना करता है—जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता की। यह कहता है कि—

५९. [एकोनषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—सुपर्णः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रावरुणौ॥ **छन्दः**—जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

इन्द्रावरुणा

इमानि वां भागधेयानि सिस्रत इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम्।
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षथः॥ १॥

(१) हे **इन्द्रावरुणा**=जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के दिव्यभावो! **इमानि**=ये शरीर में उत्पन्न सोमकण **वां**=आपके **भागध्यानि**=भाग होते हुए **प्र सिस्रते**=शरीर के अंग-प्रत्यंगों में गतिवाले

होते हैं। हे इन्द्रावरुण! मैं **सुतेषु**=इन सोमकणों का सम्पादन होने पर **वाम्**=आपको **महे**=पूजता हूँ। जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता का पूजन ही इन सोमकणों को शरीर में सुरक्षित करता है। (२) हे इन्द्रावरुण! आप **यज्ञे यज्ञे**=प्रत्येक यज्ञ में **ह**=निश्चय से **सवना**=ऐश्वर्यों का **भुरण्यथः**=भरण करते हो। **यत्**=जब **सुन्वते यजमानाय**-शरीर में सोम का अभिषव करनेवाले यज्ञशील पुरुष के लिए आप **शिक्षथः**=शक्ति को प्राप्त कराने की कामनावाले होते हो।

भावार्थ-हम जितेन्द्रिय व निर्द्वेष बनकर शरीर में सोम का रक्षण करें-इससे यज्ञशील बनकर ऐश्वर्यशाली व प्रभु के पूजक बनें।

ऋषिः—सुपर्णः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रावरुणौ॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

वानस्पतिक भोजन

निष्षिध्वरीरोषधीराप आस्तामिन्द्रावरुणा महिमानमाशत।
या सिस्त्रतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते॥ २॥

(१) हमारे शरीरों में **ओषधीः आपः**-ओषधियाँ व जल **निःषिध्वरीः आस्ताम्**=सब रोगों व वासनाओं का निषेध करनेवाली हों। शुद्ध जल व वानस्पतिक भोजन शरीर को व्याधिशून्य तथा मन को आधिशून्य बनाए। इस शरीर में **इन्द्रावरुणा**-जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भाव **महिमानम् आशत**=महिमा को व्याप्त करनेवाले हों। जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के कारण हमारा जीवन महिमाशाली हो। (२) वे इन्द्र और वरुण महिमा को व्याप्त करते हैं **या**=जो **रजसः अध्वनः**=इस लोकमार्ग के **पारे**-पार **सिस्त्रतु**=गतिवाले होते हैं। वस्तुतः इस जीवनयात्रा में हमें जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता ही मार्ग के अन्त तक पहुँचानेवाली होती हैं। ये इन्द्र और वरुण वे हैं **योः**=जिनका **शत्रुः**=शत्रु **आत् नकिः**=निश्चय से नहीं ही **ओहते**=प्राप्त होता। जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता हमें सब शत्रुओं से रहित करके जीवनयात्रा को पूर्ण करने में सहायक होती हैं।

भावार्थ-हम वानस्पतिक भोजन व शुद्ध जल को अपना खान-पान बनाकर जितेन्द्रिय व निर्द्वेष बनें और जीवनयात्रा को निर्विघ्न पूर्ण कर सकें।

ऋषिः—सुपर्णः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रावरुणौ॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मिं दुहते सप्त वाणीः।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति चित्तिभिः॥ ३॥

(१) हे **इन्द्रावरुणा**=जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भावो! **सत्यं तत्**=वह सत्य है कि **वां**=आपके **कृशस्य**=तपःकृश व्यक्ति के जीवन में **सप्त वाणीः**=सात छन्दोमयी सात वेदवाणियाँ **मध्वः ऊर्मि**=सोम की तरंग को अथवा सोमरक्षणजनित उल्लास को **दुहते**=पूरित करती हैं। जो व्यक्ति जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता की साधना करता है वह तपःकृश बनता है। यह वेदवाणियों का स्वाध्याय करता हुआ सोम का रक्षण करता है और सोमरक्षणजनित उल्लास को प्राप्त करता है। (२) हे **शुभस्पती**=शुभ कल्याणमार्ग के पालक इन्द्र और वरुण! आप **ताभिः**=उन वेदवाणियों के द्वारा उस **दाश्वांसं**-आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले पुरुष को **अवतम्**=रक्षित करो। उस दाश्वान् को, **यः**=जो **अदब्धः**=वासनाओं से हिंसित न होता हुआ **चित्तिभिः**=ज्ञानों के द्वारा **वाम्**=आपका-जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता का **अभिपति**=रक्षण करता है।

भावार्थ-हम जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता की साधना करते हुए तपःकृश बनें। स्वाध्याय करते हुए हम सोम का रक्षण करें।

ऋषिः—सुपर्णः काण्वः॥ देवता—इन्द्रावरुणौ॥ छन्दः—विराड् जगती॥ स्वरः—निषादः॥

वेदवाणियाँ (सप्त स्वसारः)

घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य।
या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम्॥ ४॥

(१) हे **इन्द्रावरुणा**=जितेन्द्रिया व निर्द्वेषता के भावो! **याः**=जो **ह**=निश्चय से **वाम्**=आपकी **सप्त**=सात छन्दोमयी वेदवाणियाँ **स्वसारः**=(स्व+सृ) आत्मतत्व की ओर ले-चलनेवाली हैं, वे वाणियाँ **घृतप्रुषः**=ज्ञानदीप्ति से सिक्त करनेवाली हैं, **सौम्याः**=हमें सौम्य स्वभाव का बनानेवाली हैं और **जीरदानवः**-जीवन प्रदान करनेवाली हैं। ये वाणियाँ हमारे जीवनों में **घृतश्चुतः**=ज्योति को क्षरित करनेवाली हैं। (२) **ताभिः**=उन वाणियों के द्वारा **ऋतस्य सदने**=सत्य के निवास स्थान प्रभु में **धत्तम्**=हमें स्थापित करिये। हे इन्द्रावरुणा! आप **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए **शिक्षतम्**=शिक्षा को देनेवाले होइये अथवा इस यजमान को शक्तिशाली बनाने की कामना कीजिए।

भावार्थ-वेदवाणियाँ ज्ञानदीप्ति से हमें व्याप्त करनेवाली, हमें सौम्य व दीर्घजीवी बनानेवाली हैं। ये हमें आत्मतत्व की ओर ले-चलती हैं। जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भाव हमें इन वेदवाणियों के द्वारा प्रभु के समीप प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—सुपर्णः काण्वः॥ देवता—इन्द्रावरुणौ॥ छन्दः—विराड् जगती॥ स्वरः—निषादः॥

'शुभस्पती' इन्द्रावरुणा

अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम्।
अस्मान्त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती॥ ५॥

(१) हम **महते सौभगाय**=महान् सौभाग्य की प्राप्ति के लिए **त्वेषाभ्यां**=दीप्त इन्द्र और वरुण के लिए-जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भावों के लिए **सत्यं महिमानं**=सच्ची सत्य महिमा को तथा **इन्द्रियं**=इनके बल को **अवोचाम**=स्तुतिरूप में कहते हैं। इन्द्र और वरुण के महत्त्व व बल को समझते हुए इनका धारण करते हैं और परिणामतः महान् सौभाग्यवाले होते हैं। (२) हे **इन्द्रावरुणा**=जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भावो! **घृतश्चुतः**=अपने में ज्ञानदीप्ति को क्षरित करनेवाले **अस्मान्**=हम लोगों को आप **त्रिभिः**=आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक रूप से तीन प्रकार के अर्थोंवाली **साप्तेभिः**=सप्त छन्दोमयी वेदवाणियों के द्वारा **अवतम्**=रक्षित करो। आप ही तो **शुभस्पती**=सब शुभ बातों का रक्षण करनेवाले हो।

भावार्थ-जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के महत्त्व को हम समझें। ये दिव्यभाव ही हमारे अन्दर सब शुभ बातों का रक्षण करेंगे।

ऋषिः—सुपर्णः काण्वः॥ देवता—इन्द्रावरुणौ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

तप से ज्ञान व उत्कृष्ट लोकों की प्राप्ति

इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम्॥ ६॥

(१) हे **इन्द्रावरुणा**=जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के दिव्यभावो! आप **यत्**=जिस **मनीषां**=बुद्धि को **वाचा**=ज्ञान की वाणियों को, **मतिं**=मननशक्ति को तथा **श्रुतं**=शास्त्रज्ञान को **ऋषिभ्यः**=' अग्नि, वायु, आदित्य व अङ्गिरा' आदि ऋषियों के लिए **अग्रे**=सृष्टि के प्रारम्भ में **अदत्तम्**=देते हो। मैं

भी **तपसा**=तप के द्वारा **अपश्यम्**=उन ज्ञानों का द्रष्टा बनूँ। (२) **यज्ञं तन्वानाः**=यज्ञों का विस्तार करते हुए **धीराः**=बुद्धि में रमण करनेवाले ज्ञानी पुरुष **यानि स्थानानि**=जिन उत्तम लोकों को **असृजन्त**=सृष्ट करते हैं-प्राप्त करते हैं, मैं भी तप के द्वारा उन लोकों को प्राप्त करनेवाला बनूँ।

भावार्थ–तप के द्वारा मैं ज्ञान को प्राप्त करूँ। यह तप मुझे उत्कृष्ट लोकों को प्राप्त करानेवाला हो।

ऋषिः—सुपर्णः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रावरुणौ॥ **छन्दः**—विराड् जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

सौमनसम्, अदृप्तं रायस्पोषम्

इन्द्रा॑वरुणा सौमन॒सम॑दृ॒प्तं रा॒यस्पोषं॒ यज॑मानेषु धत्तम्।
प्र॒जां पुष्टिं॑ भूतिम॒स्मासु॑ धत्तं दीर्घायु॒त्वाय॒ प्र ति॑रतं न॒ आयुः॑ ॥ ७ ॥

(१) हे **इन्द्रावरुणा**=जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के दिव्यभावो! **यजमानेषु**=यज्ञशील पुरुषों में **सौमनसं**=उत्तम मन को और **अदृप्तं**=गर्व से शून्य **रायस्पोषं**=धन के पोषण को **धत्तम्**=धारण कीजिए। इन्द्र और वरुण की कृपा से हम यज्ञशील बनकर उत्तम मनवाले व विनीततायुक्त श्री वाले बनें। (२) हे इन्द्रावरुणा! आप **प्रजां**=उत्तम सन्तान को, **पुष्टिं**=शरीर की दृढ़ता को और **भूतिम्**=ऐश्वर्य को **अस्मासु धत्तम्**=हमारे में धारण करिये और **दीर्घायुत्वाय**=दीर्घजीवन के लिए **नः आयुः**=हमारी आयु को **प्रतिरतं**=बढ़ाइए।

भावार्थ–जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के द्वारा हम उत्तम मन, गर्वशून्य धन, प्रजा, पुष्टि व ऐश्वर्य को प्राप्त करें व दीर्घजीवी बनें।

इन्द्र व वरुण की आराधना से यह उपासक तेजस्वी बनता है, सो 'भर्गः' नामवाला होता है। प्रभु के गुणों का गायन करने से यह 'प्रागाथ' है। यह 'अग्नि' नाम से प्रभु का आराधन करता है –

इति बालखिल्यं समाप्तम्॥

६०. [षष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

अग्नियों के साथ 'अग्नि'

अग्न॒ आ या॑ह्य॒ग्निभि॒र्होता॑रं त्वा वृणीमहे।
आ त्वाम॑नक्तु॒ प्रय॑ता ह॒विष्म॑ती॒ यजि॑ष्ठं ब॒र्हिरा॒सदे॑॥ १ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **अग्निभिः**=उत्तम मातारूप दक्षिणाग्नि, उत्तम पितारूप गार्हपत्य अग्नि तथा उत्तम आचार्यरूप आहवनीय अग्नि के साथ **आयाहि**=हमें प्राप्त होइये। **होतारं**=सब कुछ देनेवाले **त्वा**=आपको **वृणीमहे**=वरते हैं। आपकी प्राप्ति से सब कुछ प्राप्त हो ही जाता है। (२) **यजिष्ठं**=अतिशयेन पूजनीय **त्वाम्**=तुझे **बर्हिः आसदे**=हमारे हृदयासन पर बिठाने के लिए **हविष्मती**=हवि से युक्त यह **प्रयता**=पवित्र वेदवाणी **अनक्तु**=हमारे जीवनों में प्राप्त कराए। 'यज्ञ व ज्ञान' हमें प्रभु के समीप प्राप्त करानेवाले हों।

भावार्थ–उत्तम माता-पिता व आचार्य को प्राप्त करके ज्ञान को प्राप्त करते हुए हम प्रभु के समीप पहुँचते हैं। यज्ञों से युक्त पवित्र वेदवाणी हमें प्रभु की समीपता में प्राप्त कराती है।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—आर्चीस्वराट् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

ऊर्जो नपातं-घृतकेशम् (ईमहे)

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम्॥ २॥

(१) हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज प्रभो! हे **अंगिरः**=सर्वत्र गतिवाले प्रभो! इस **अध्वरे**=जीवनयज्ञ में **स्रुचः**=(वाग् वै स्रुक् श० ६, ३.१.८) ज्ञान की वाणियाँ **हि**=निश्चय **त्वा अच्छा**=आपकी ओर **चरन्ति**=गतिवाली होती हैं। ये ज्ञान की वाणियाँ हमें आपके समीप प्राप्त कराती हैं। (२) हम **यज्ञेषु**=यज्ञों में उस प्रभु को **ईमहे**=आराधित करते हैं-स्तुत करते हैं। जो **ऊर्जः न पातं**=शक्ति को न गिरने देनेवाले हैं। **घृतकेशं**=दीप्त ज्ञान की रश्मियोंवाले हैं। **अग्निं**=अग्रणी है और **पूर्व्यम्**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम हैं।

भावार्थ—इस जीवनयज्ञ में हम ज्ञान को प्राप्त करते हुए प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमें शक्ति प्राप्त कराएँगे और ज्ञानदीप्ति को देंगे।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—पादनिचृद् बृहती ॥ स्वरः—मध्यमः ॥

'कवि व मेधा' प्रभु

अग्ने कविर्वेधा असि होता पावक यक्ष्यः।
मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यो विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः॥ ३॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **कविः**=क्रान्तप्रज्ञ व **वेधाः असि**=विधाता-कर्मफलानुसार सबको विविध योनियों में जन्म देनेवाले हैं। हे **पावक**=पवित्र करनेवाले प्रभो! आप **होता**=सब कुछ देनेवाले हैं, अतएव **यक्ष्यः**=पूजनीय हैं। (२) आप **मन्द्रः**=आनन्दस्वरूप व **यजिष्ठः**=अतिशयेन पूज्य हैं। **विप्रेभिः**=ज्ञानी पुरुषों के द्वारा **मन्माभिः**=मननीय स्तोत्रों से हे **शुक्र**=देदीप्यमान व पवित्र प्रभो! आप **अध्वरेषु**=यज्ञों में **ईड्यः**=स्तुति के योग्य हैं।

भावार्थ—प्रभु कवि हैं, विधाता हैं। ये प्रभु ही उपासनीय हैं। ज्ञानी पुरुष मननीय स्तोत्रों के द्वारा प्रभु का उपासन करते हैं।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

देवसम्पर्क—सात्विक अन्न—ध्यान

अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अजस्र वीतये।
अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्हितः॥ ४॥

(१) हे **यविष्ठ्य**=बुराइयों को हमारे से पृथक् करनेवाले **अजस्रः**=अविनाशिन् प्रभो! **अद्रोघं**=द्रोह की भावना से रहित मुझे **वीतये**=अज्ञानान्धकार के ध्वंस के लिए **उशतः**=हमारे भले की कामनावाले **देवान्**=देवों के प्रति **आवह**=प्राप्त कराइए। इन देवों के सम्पर्क में हमारा अज्ञान दूर हो जाए। (२) हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **सुधिता**=सम्यक् स्थापित किये गये **प्रयांसि**=अन्नों की **अभि**=ओर **गहि**=हमें प्राप्त कराइए। हम इन सात्त्विक अन्नों का ही सेवन करनेवाले बनें। हे प्रभो! **धीतिभिः**=ध्यानवृत्तियों व स्तुतियों के द्वारा **हितः**=हृदय में स्थापित हुए-हुए आप **मन्दस्व**=हमें आनन्दित करिये।

भावार्थ–प्रभु हमें प्रिय विद्वानों के सम्पर्क से निवृत्त अज्ञानान्धकारवाला करें। सात्त्विक अन्नों के सेवन से हमें उत्तम निवासवाला बनाएँ। ध्यान द्वारा हृदय में स्थापित होकर प्रभु हमें आनन्दित करें।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सप्रथाः ऋतः कविः

त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतस्कविः।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः॥५॥

(१) हे **त्रातः**-रक्षक **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वम् इत्**=आप ही **सप्रथाः**=अतिशयेन विस्तारवाले **असि**=हैं। **ऋतः**=सत्यस्वरूप हैं, **कविः**=क्रान्तदर्शी हैं। (२) हे **समिधान**=समानरूप से सदा दीप्त **दीदिवः**=देदीप्यमान प्रभो! **वेधसः**-उत्तम यज्ञादि कर्मों के करनेवाले **विप्रासः**=ज्ञानी पुरुष **त्वां**-आपको **आविवासन्ति**-पूजते हैं। वस्तुतः प्रभु का पूजन इसी प्रकार होता है कि हम ज्ञान को प्राप्त करें और यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त हों।

भावार्थः–प्रभु सर्वत्र व्याप्त-सत्यस्वरूप व क्रान्तदर्शी हैं। उन देदीप्यमान प्रभु का उपासन ज्ञान व यज्ञ द्वारा होता है।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

सूरयः शत्रूषाहः स्वग्नयः

शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे महाँ असि।
देवानां शर्मन्मम सन्तु सूरयः शत्रूषाहः स्वग्नयः॥६॥

(१) हे **शोचिष्ठ**=अतिशयेन दीप्त होनेवाले प्रभो! आप **शोच**=दीप्त होइये और **दीदिहि**=हमें दीप्त करिए। **स्तोत्रे विशे**=स्तुति करनेवाली प्रजा के लिए **मयः रास्व**=कल्याण को दीजिए। आप **महान् असि**=महान् हैं–पूजनीय हैं। (२) **देवानां**=विद्वानों की **शर्मन्**=शरण में **मम**=मेरे पुत्र **सूरयः**=विद्वान्, **शत्रूषाहः**- काम-क्रोध आदि शत्रुओं का पराभव करनेवाले व **स्वग्नयः**=उत्तम यज्ञाग्नियोंवाले **सन्तु**=हों।

भावार्थ–प्रभु हमें दीप्त करें व हमारे लिए कल्याण प्राप्त कराएँ। प्रभु के अनुग्रह से हमारे सन्तान ज्ञानी गुरुओं के रक्षण में 'ज्ञानी-पवित्र व शुभकर्म करनेवाले' बनें।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

दुर्मन्मा द्रोही का संहार

यथा चिद् वृद्धमतसमग्ने संजूर्वसि क्षमि।
एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग्दुर्मन्मा कश्च वेनति॥७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्निदेव! **यथा**=जिस प्रकार **चित्**=निश्चय से **क्षमि**=इस पृथ्वी पर **वृद्धम्**-बढ़े हुए **अतसं**=शुष्क काष्ठ को अग्नि **संजूर्वसि**=सम्यक् दग्ध करता है, **एवा**=इसी प्रकार हे **मित्रमहः**=मित्रों से महान् तेजवाले प्रभो! उस व्यक्ति को आप **दहः**=भस्म कर दीजिए **यो कश्च**= जो कोई **अस्मध्रुग्**=हमारा द्रोह करता है और **दुर्मन्मा**-दुर्मति होता हुआ **वेनति** (वेन् गतौ)=हमारे पर आक्रमण करता है। (२) औरों का द्रोह करनेवाले व अशुभ चाहनेवाले स्वयं दग्ध हो जाएँ।

भावार्थ–हम किसी के अशुभ का चिन्तन न करें। दुर्मन्मा (दुर्मति) बनकर औरों का द्रोह

न करते रहें। ये द्रोह करनेवाले व्यक्ति प्रभु के प्रिय नहीं होते।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः ॥ **स्वरः**—पञ्चमः ॥

दुष्टों की अधीनता में नहीं

मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः।

अस्रेधद्भिस्तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः॥ ८॥

(१) हे **यविष्ठ्य**=सब अशुभों को दूर करनेवाले प्रभो! **नः**=हमें **रिपवे मर्ताय**=शत्रुभूत मनुष्य के लिए **मा रीरधः**= मत वशीभूत करिये। **रक्षस्विने**=अपने रमण के लिए औरों का क्षय करनेवाले के वशीभूत मत करिये। इसी प्रकार **अघशंसाय**=पाप का शंसन करनेवाले के लिए **मा**=मत वशीभूत करिये। (२) **अस्रेधद्भिः**=अहिंसक, **तरणिभिः**=तारक, **शिवेभिः**=कल्याणकर **पायुभिः**= रक्षणों के द्वारा **पाहि**=हमारी रक्षण करिये।

भावार्थ—प्रभु हमें शत्रुभूत, राक्षसी प्रवृत्तिवाले, अशुभ के शंसक पुरुष के अधीन न करें। हम अहिंसित, तारक, कल्याणकर रक्षणों के द्वारा रक्षित करें।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—विराड् बृहती ॥ **स्वरः**—मध्यमः ॥

चार वेद

पाहि नो अग्न एकया पाह्यु१त द्वितीयया।

पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो॥ ९॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **नः**=हमें **एकया**=ऋचारूप प्रथम (मुख्य) वाणी के द्वारा **पाहि**=रक्षित करिये। **उत**=और **द्वितीयया**=यजूरूप दूसरी वाणी से भी **पाहि**=रक्षित करिये। (२) हे **ऊर्जाम्पते**=बलों व प्राणशक्तियों के स्वामिन्! **तिसृभिः गीर्भिः**=सामरूप तृतीय वाणियों के द्वारा भी **पाहि**=रक्षण करिये। हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **चतसृभिः**=चारों वाणियों के द्वारा **पाहि**=हमारा रक्षण करिये। (३) ऋचाएँ विज्ञान का शिक्षण करती हैं। यजुर्मन्त्र यज्ञात्मक कर्मों का प्रतिपादन करते हैं। इस विज्ञान व इन यज्ञों से उन्नति होती है। सो यहाँ प्रभु को 'अग्ने' नाम से सम्बोधित किया है। तीसरी सामरूप वाणियों से प्रभुसम्पर्क द्वारा शक्ति का संचार होता है। सो सम्बोधन भी 'ऊर्जाम्पते' है। अथर्व हमें 'वाचस्पति' बनाकर उत्तम निवासवाला बनाता है। सो सम्बोधन भी 'वसो' है।

भावार्थ—ऋग् व यजूरूप वाणियाँ हमारी अग्रगति का कारण बनती हैं। साममन्त्र हमारे में बल व प्राण का संचार करते हैं। चौथे अथर्वमन्त्र, हमें रोगों व युद्धों से ऊपर उठाकर उत्तम निवासवाला बनाते हैं।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—पादनिचृत् पङ्क्तिः ॥ **स्वरः**—पञ्चमः ॥

नेदिष्ठ आपि

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव।

त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे॥ १०॥

(१) हे प्रभो! **विश्वस्मात्**=सब **आराव्णः**=अदानशीलता आदि **रक्षसः**=राक्षसी वृत्तियों से **पाहि**=बचाइए। आप **वाजेषु**=संग्रामों में **नः**=हमें **प्र अव स्म**=निश्चय से रक्षित करिये। (२) **त्वाम्**=आपको **इत् हि**=निश्चय से **देवतातये**=दिव्यगुणों के विस्तार के लिए और **वृधे**=वृद्धि के

लिए **नेदिष्ठं आपिं**–अन्तिकतम मित्र को **नक्षामहे**=प्राप्त होते हैं। आपको प्राप्त करके ही हम अदानशीलता आदि अशुभ बातों से दूर होकर शुभ गुणों को प्राप्त करेंगे। आपकी उपासना ही हमें संग्राम में विजयी बनाती है। यह आपकी मित्रता ही हमारी वृद्धि का कारण बनती है।

भावार्थ–हम प्रभु को अपना अन्तिकतम मित्र समझें। प्रभु हमें संग्राम में विजयी व दिव्यगुणसम्पन्न बनाएँगे। इस मित्रता से ही हमारी सब प्रकार से वृद्धि होगी।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'वयोवृधं शंस्यम्' रयिम्

आ नो॑ अग्ने वयो॒वृधं॑ र॒यिं पा॑वक॒ शंस्य॑म्।
रास्वा॑ च न उपमाते पुरु॒स्पृहं॑ सुनी॑ती॒ स्वय॑शस्तरम्॥ ११॥

(१) **उपमाते**=सब ऐश्वर्यों के देनेवाले **अग्ने**=प्रभो! आप **नः**=हमारे लिए **रयिं**=धन को **आरास्व**=सब ओर से दीजिए। उस धन को जो **वयोवृधम्**=हमारी आयु की वृद्धि का कारण बने **च**=और **शंस्यम्**-प्रशंसनीय हो। (२) हे **पावक**=पवित्र करनेवाले प्रभो! **नः**=हमारे लिए उस धन को दीजिए, जो **पुरुस्पृमहं**–बहुत ही स्पृहणीय हो तथा **सुनीति**=शुभनीतिमार्ग से कमाया जाकर **स्वयशस्तरम्**=अपनी कीर्ति को बढ़ानेवाले हो।

भावार्थः–प्रभु का स्मरण करते हुए हम शुभनीतिमार्ग से उस धन का अर्जन करें जो हमारे आयुष्य को बढ़ाए तथा प्रशंसनीय, स्पृहणीय व यशस्वी बनानेवाला हो।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पं-॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

सात्त्विक अन्न से सात्विक बुद्धि

येन॒ वंसा॑म॒ पृत॑नासु॒ शर्ध॑त॒स्तर॑न्तो अ॒र्य आ॒दिशः॑।
स त्वं नो॑ वर्ध॒ प्रय॑सा शचीवसो॒ जिन्वा॒ धियो॑ वसु॒विदः॑॥ १२॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार हमें वह धन दीजिए **येन**=जिससे **पृतनासु**=संग्रामों में **शर्धतः**=हिंसा करनेवाले **अर्यः**–शत्रुओं को तथा **आदिशः**=शस्त्रों के फेंकनेवालों को **तरन्तः**=पार करते हुए **वंसाम**=विजयी बनें अथवा इन शत्रुओ को नष्ट कर सकें। (२) हे **शचीवसो**=प्रज्ञानधन प्रभो! **सः**=वे **त्वं**–आप **नः**=हमें **प्रयसा**=सात्त्विक अन्न के द्वारा **वर्ध**=बढ़ाइए। **वसुविदः**=वसुओं को प्राप्त करानेवाली **धियः**=बुद्धियों को **जिन्व**=हमारे अन्दर प्रेरित करिये। हम सात्त्विक अन्नों के सेवन से शुद्ध बुद्धिवाले बनकर वसुओं को प्राप्त करनेवाले बनें।

भावार्थ–हमें वह धन प्राप्त हो जिससे कि हम शत्रुओं को पराजित कर पाएँ। प्रभु के अनुग्रह से हम सात्त्विक अन्नों का सेवन करते हुए सात्त्विक बुद्धिवाले होकर वसुओं को प्राप्त करें।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

यज्ञाग्नि व रोगकृमिरूप शत्रुविनाश

शिशा॑नो वृष॒भो य॑था॒ग्निः शृङ्गे॒ दवि॑ध्वत्।
ति॒ग्मा अ॑स्य॒ हन॑वो॒ न प्र॑ति॒धृषे॑ सु॒जम्भ॒ः सह॑सो य॒हुः॥ १३॥

(१) **यथा**=जैसे **शृंगे**–सींगों को **शिशानः**=तीक्ष्ण करता हुआ **वृषभः**=बैल **दविध्वत्**=शत्रुओं को कम्पित करता है, इसी प्रकार **अग्निः**=यज्ञाग्नि रोगकृमिरूप शत्रुओं को अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओं से विनष्ट करता है। (२) **अस्य**=इस यज्ञाग्नि की **हनवः**=हनुस्थानीय ज्वालाएँ **तिग्माः**=बड़ी

तीक्ष्ण हैं। **न प्रतिधृषे**=शत्रुओं से इनका धर्षण नहीं हो सकता। यह अग्नि **सुजम्भः**=उत्तम दंष्ट्राओंवाला है। **सहसः यहुः**=बल का पुञ्ज है। यह अग्नि बल का पुञ्ज होता हुआ सब शत्रुओं का विनाश करता है।

भावार्थ—यज्ञाग्नि बल का पुञ्ज हैं। यह ज्वालारूप दंष्ट्राओं से सब रोग कृमिरूप शत्रुओं को विनष्ट करता है।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

राष्ट्रयज्ञ का होता राष्ट्रपति

नहि ते अग्ने वृषभ प्रतिधृषे जम्भासो यद्वितिष्ठसे।
स त्वं नो होतः सुहुतं हविष्कृधि वंस्वा नो वार्या पुरु॥ १४॥

(१) हे **वृषभ**=वर्षक **अग्ने**=अग्नि! **ते**=तेरे **जम्भासः**=दंष्ट्रास्थानीय ज्वालाएँ **नहि प्रतिधृषे**=धर्षण के लिए नहीं होतीं, **यद्**=जब तू **वितिष्ठसे**=रोगकृमिरूप शत्रुओं का सामना करती है। अग्नि की ये ज्वालाएँ शत्रुओं को समाप्त करनेवाली होती हैं। इसी प्रकार एक प्रजा पर सुखों का वर्षण करनेवाले अग्रणी राजा के दंष्ट्रास्थानीय अस्त्र जब शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं तो ये धर्षणीय नहीं होते। (२) हे **होतः**=राष्ट्रयज्ञ के संचालक राजन्! **सः त्वं**=वह तू **नः**=हमारे **हविः**=कर रूप में दिये गये हविरूप धन को **सुहुतं कृधि**=सम्यक् हुत कर, अर्थात् कररूप में दिये गये धन को तू राष्ट्रयज्ञ में सम्यक् विनियुक्त कर। **नः**=हमारे लिए **पुरु**=खूब ही **वार्या**=वरणीय धन को **वंस्व**=देनेवाला हो। राजा राष्ट्र की इस प्रकार व्यवस्था करे कि सब प्रजावर्ग उचित धनों को अर्जित कर सकें।

भावार्थ—राष्ट्रपति के शस्त्र शत्रुओं से धर्षणीय न हों। वह कर का सद्विनियोग करे। प्रजा के लिए उचित व्यवस्था के द्वारा धनों को प्राप्त करानेवाला हो।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

यज्ञशील देववृत्तिवाले उपासकों में प्रभु का प्रकाश

शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तास इन्धते।
अतन्द्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि॥ १५॥

(१) हे प्रभो! आप **वनेषु**=(वन् संभक्तौ) संभजनशील पुरुषों में **मात्रोः**=ज्ञान व श्रद्धारूप निर्माण करनेवाले (मा) तत्त्वों के होने पर **शेषे**=निवास करते हैं। **त्वा**=आपको **मर्तासः**=वासनाओं को विनष्ट करनेवाले-मन को मार लेनेवाले पुरुष **समिन्धते**=अपने हृदयों में समिद्ध करते हैं। (२) हे प्रभो! आप **हविष्कृतः**=हवि को करनेवाले यज्ञशील पुरुष के **हव्या**=हव्य पदार्थों को **अतन्द्रः**=सब प्रकार की तन्द्रा से रहित हुए-हुए **वहति**=प्राप्त कराते हैं। यज्ञशील पुरुष को प्रभु ही यज्ञ के सब साधनों को प्राप्त कराते हैं। **आत् इत्**=अब शीघ्र ही **देवेषु**=देववृत्ति वाले पुरुषों में **राजसि**=दीप्त होते हैं। देववृत्तिवाले पुरुष हृदयों में आपका दर्शन कर पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु का निवास ज्ञान व श्रद्धासम्पन्न उपासकों में होता है। मन को मार लेनेवाले पुरुष प्रभु को अपने में समिद्ध करते हैं। यज्ञशील पुरुषों को प्रभु ही हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। देववृत्ति वाले पुरुषों में प्रभु दीप्त होते हैं।

ऋषिः — भर्गः प्रागाथः ॥ देवता — अग्निः ॥ छन्दः — पादनिचृत् पङ्क्तिः ॥ स्वरः — पञ्चमः ॥

'सुत्यज अह्रय' प्रभु

सप्त होतारस्तमिदीळते त्वाग्ने सुत्यजमह्रयम्।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति॥ १६॥

(१) हे **अग्ने**-अग्रणी प्रभो! **सप्त होतारः**-'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' दो कर्ण, दो नासिका, दो आँख व मुख रूप सप्त होता **तम् त्वा इत्**-उन आपको ही **ईडते**-स्तुत करते हैं। जो आप **सुत्यजम्**-उत्तम त्याग व दानवाले हैं तथा **अह्रयम्**-न क्षीण होनेवाले हैं। (२) आप **तपसा**-तप के द्वारा तथा **शोचिषा**-ज्ञानदीप्ति के द्वारा **अद्रिं**-अविद्यापर्वत को **विभिनत्सि** विदीर्ण करते हैं। हे **अग्ने**-अग्रणी प्रभो! आप **जनान्**-अपनी शक्तियों का विकास करनेवाले हमें **अति**-अतिशयेन **प्रतिष्ठ**-(प्रगच्छ) प्राप्त होवें।

भावार्थ-हम कान, आँख आदि द्वारा प्रभु की महिमा को ही सुनें व देखें। प्रभु तप व ज्ञान के द्वारा हमारी अविद्या को विनष्ट करते हैं। शक्तियों का विकास करनेवालों को ही प्रभु प्राप्त होते हैं।

ऋषिः — भर्गः प्रागाथः ॥ देवता — अग्निः ॥ छन्दः — विराड् बृहती ॥ स्वरः — मध्यमः ॥

वृक्तबर्हिषः हितप्रयसः

अग्निमग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः।
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा होतारं चर्षणीनाम्॥ १७॥

(१) **वः**=तुम सबके **अग्निं**=अग्रणी उस **अध्रिगुं**-अधृतगमनवाले **अग्नि**=प्रकाशस्वरूप प्रभु को **हुवेम**-हम पुकारते हैं। उस प्रभु की गति को कोई भी रोक नहीं सकता। **वृक्तबर्हिषः**=(वृजी वर्जने) जिसमें से वासनाओं का वर्जन किया गया है ऐसे वासनाशून्य हृदयवाले, **हितप्रयसः** (निहितहविष्काः)=अग्निकुण्ड में हवि का स्थापन करनेवाले यज्ञशील हम **अग्निं**-उस अग्रणी प्रभु को पुकारते हैं। (२) उस प्रभु को हम पुकारते हैं जो **शश्वतीषु**-इस सनातन प्रजाओं में **चर्षणीनाम्**-श्रमशील मनुष्यों के **आ होतारं**=समन्तात् सब आवश्यक पदार्थों के प्राप्त करानेवाले हैं अथवा यज्ञों के साधक हैं।

भावार्थ-हम वासनाशून्य हृदयवाले व यज्ञशील बनकर उस प्रकाशमय प्रभु का आराधन करते हैं। वस्तुतः प्रभु ही हमारे यज्ञों को सिद्ध करते हैं और हमें आवश्यक पदार्थों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः — भर्गः प्रागाथः ॥ देवता — अग्निः ॥ छन्दः — निचृत् पङ्क्तिः ॥ स्वरः — पञ्चमः ॥

ज्ञान-उपासना-कर्म

केतेन शर्मन्त्सचते सुषामण्यग्ने तुभ्यं चिकित्वना।
इषण्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये॥ १८॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **चिकित्वना**=ज्ञानी पुरुष के द्वारा **केतेन**=ज्ञानप्राप्ति के साथ **सुषामणि**=उत्तम साम-उपासनात्मक स्तोत्र वाले **शर्मन्**-सुखसाधन यज्ञ में **तुभ्यं सचते**=आपके लिए यह उपासक प्राप्त होता है। ज्ञानी पुरुषों के सम्पर्क में ज्ञान प्राप्त करता है, प्रभु के स्तोत्रों

का उच्चारण करता है और सुखसाधन यज्ञों में प्रवृत्त होता है। इस प्रकार यह परमात्मा को प्राप्त करता है। (२) हे प्रभो! **इषणयया**=आप अपनी इच्छा से **नः**=हमारे लिए **पुरुरूपं**=अनेक रूपोंवाले **नेदिष्ठं**=अन्तिकतम=सदा समीप रहनेवाले **वाजं**=ऐश्वर्य को **आभर**=प्राप्त कराइए। यह ऐश्वर्य **ऊतये**=हमारे रक्षण के लिए हो। यह धन विलास में फंसाकर हमारा विनाश करनेवाला न हो जाए।

भावार्थ–'ज्ञान, उपासना व यज्ञरूप कर्म' हमें प्रभु को प्राप्त करानेवाले हों। प्रभु हमारे लिए जैसा ठीक समझें वैसा, विविध व स्थिररूप से रहनेवाला ऐश्वर्य प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

दिवस्पायुः दुरोणयुः

अग्ने॒ जरि॑तर्वि॒श्पति॑स्तेपा॒नो दे॑व र॒क्षसः॑।
अप्रो॑षिवान्गृ॒हप॑तिर्म॒हाँ अ॑सि दि॒वस्पा॒युर्दु॑रोण॒युः॥ १९॥

(१) हे **अग्ने**–प्रकाशस्वरूप **जरितः** (जरिता=गरिता)=ज्ञान का उपदेश करनेवाले **देव**=सब व्यवहारों को सिद्ध करनेवाले प्रभो! आप **विश्पतिः**=सब प्रजाओं के रक्षक हैं, **रक्षसः तेपानः**=राक्षसी वृत्तियों को संतप्त करके दूर करनेवाले हैं। (२) **अप्रोषिवान्**=कभी भी प्रवास न करनेवाले, अर्थात् सदा हमारे साथ रहनेवाले आप हैं। **गृहपति**=इस शरीरगृह के आप ही तो रक्षक हें। **महान् असि**=आप पूज्य हैं। **दिवस्पायुः**=ज्ञान के रक्षक हैं और इस प्रकार **दुरोणयुः**=(दुर्, ओणृ अपनयने) सब बुराइयों के अपनयन को हमारे साथ जोड़नेवाले हैं।

भावार्थ–प्रभु ज्ञानोपदेश के द्वारा हमारे जीवनों को पवित्र बनाते हैं। वे ज्ञानरक्षण द्वारा सब बुराइयों का अपनयन करनेवाले हैं। सब प्रजाओं के रक्षक हैं, हमारे घरों के स्वामी हैं।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'राक्षसीभाव-पीड़ा-दारिद्र्य व भूख' का निराकरण

मा नो॒ रक्ष॒ आ वे॑शीदाघृणीवसो॒ मा या॒तुर्या॑तु॒माव॑ताम्।
प॒रो॒ग॒व्यू॒त्यनि॑रा॒मप॒ क्षुध॑मग्ने॒ सेध॒ र॑क्ष॒स्विनः॑॥ २०॥

(१) **आघृणीवसो**=समन्तात् ज्ञानरश्मिरूप धनोंवाले प्रभो! **नः**=हमारे अन्दर **रक्षः**=राक्षसीवृत्ति **मा आवेशीत्**–मत प्रविष्ट हो और **यातुमावताम्**=पीड़ा देनेवालों की **यातुः**=पीड़ा भी **मा**=हमारे अन्दर मत प्रविष्ट हो। ज्ञान से पवित्रता होती है, पवित्रता से पीड़ा का विनाश होता है। (२) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **अनिरां**=अन्नाभावरूप दारिद्र्य को **परोगव्यूतिम्**=कोसों दूर **अपसेध**= निषिद्ध करिये। **क्षुधम्**=भूख को दूर रखिये–हम सदा भूख से न सताये जाएँ। **रक्षस्विनः**=राक्षसी प्रवृत्तियों को भी हमारे से दूर करिये।

भावार्थ–ज्ञानपुञ्ज प्रभु की ज्ञानरश्मियों से दीप्त जीवनवाले बनकर हम राक्षसीभावों व पीड़ाओं से दूर हों। दारिद्र्य-भूख व राक्षसीभाव हमारे से कोसों दूर रहें।

ज्ञानरश्मियों से दीप्त जीवनवाला यह तेजस्वी बनता है। सो 'भर्गः' (तेज) नामवाला होता है। प्रभु का गायन करने से 'प्रागाथ' है। यह 'इन्द्र' नाम से प्रभु का स्मरण करता है।

६१. [एकषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सूक्ष्मार्थग्राहिणी बुद्धि

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्॥ १॥

(१) **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु नः=हमारे लिए **उभयं इदं वचः**=प्रकृति व आत्मा दोनों के ज्ञान के देनेवाले इस वेदवचन को **अर्वाक्**-अन्तर्हृदय में (हमारे अभिमुख) **शृणवत्**= (अन्तर्भावित ण्यर्थ) सुनाएँ। हृदयस्थ प्रभु से हम उन ज्ञान की वाणियों को सुन पाएँ जो प्रकृति व आत्मा का ज्ञान देनेवाली हैं। (२) वह **शविष्ठः**=अतिशयेन शक्तिशाली **मघवा**=ज्ञानरूप ऐश्वर्यवाले प्रभु **सत्राच्या**= सत्यज्ञान के साथ गतिवाली-सत्यज्ञान को प्राप्त करानेवाली **धिया**-बुद्धि के साथ **आगमत्**=हमें प्राप्त हों। ये प्रभु **सोमपीतये**=सोम के रक्षण के लिए हों। सोमरक्षण द्वारा ही वे हमें उस सूक्ष्मार्थग्राहिणी बुद्धि को प्राप्त कराएँगे जो प्रकृति व आत्मा के तत्त्व को समझने के योग्य हमें बनाएगी।

भावार्थ-प्रभु हमें प्रकृति व आत्मा के ज्ञान को देनेवाले वेदवचनों को सुनाएँ। सोमरक्षण द्वारा उस बुद्धि को प्राप्त कराएँ जो सूक्ष्म अर्थों के सत्यतत्त्व को जानने में समर्थ हो।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'स्वराट् वृषभ' प्रभु

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः॥ २॥

(१) **तं**=उस **स्वराजं**=स्वयं देदीप्यमान, **वृषभं**=शक्तिशाली प्रभु को **हि**-निश्चय से **धिषणे**= द्यावापृथिवी **निष्टतक्षतुः**=(संचस्करतुः) संस्कृत करते हैं। द्युलोक प्रभु की दीप्ति का आभास देता है, तो पृथिवीलोक प्रभु की शक्ति व दृढ़ता का। प्रभु ने ही वस्तुतः द्युलोक को तेजस्वी व पृथिवीलोक को दृढ़ बनाया है। **तम्**=उस प्रभु को ही हम **ओजसे**-बल की प्राप्ति के लिए अपने अन्दर देखने का प्रयत्न करें। (२) **उत**-और हे प्रभो! आप **उपमानां**=उपमानभूत देवों में **प्रथमः**=मुख्य होते हुए **निषीदसि**-हमारे हृदयों में निषण्ण होते हैं। हमने अपने पिता प्रभु जैसा ज्ञानी व शक्तिशाली बनने का प्रयत्न करना है। हमारे लिए यह कहा जाए कि वह प्रभु के समान ज्ञानी है व प्रभु के समान शक्तिशाली है। वस्तुतः ऐसे ही व्यक्ति जनता को प्रभु के अवतार प्रतीत होने लगते हैं। **ते मनः**=आपके प्रति प्रवण मन **हि**=निश्चय से **सोमकामम्**=सोम की कामनावाला होता है। प्रभु-प्रवण मन विलास में नहीं जाता और इस प्रकार सोम का रक्षण हो पाता है।

भावार्थ-द्युलोक में स्वराट् प्रभु का प्रकाश है, तो पृथिवी में शक्तिशाली प्रभु की दृढ़ता। इस प्रभु का स्मरण करते हुए हम भी 'प्रकाश व शक्ति' का सम्पादन करें। प्रभु-प्रवण मन सदा सोम का रक्षक होता है।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराड् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

'अधृष्ट दधृष्वणि' प्रभु

आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः।
विद्मा हि त्वा हरिवः पृत्सु सासहिमधृष्टं चिद्दधृष्वणिम्॥ ३॥

(१) हे **पुरूवसो**=पालक व पूरक वसुओंवाले **इन्द्र**=परमैश्वर्यशाली प्रभो! आप **सुतस्य**=उत्पन्न हुए-हुए **अन्धसः**=सोम का **आवृषस्व**=हमारे अंग-प्रत्यंग में सेचन करिये। आपका उपासन हमें वासनाओं से बचाकर सोमरक्षण के योग्य बनाए। (२) हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! हम **त्वा**-आपको **हि**=निश्चय से **विद्म**=जानते हैं कि आप **पृत्सु**=संग्रामों में **सासहिम्**=शत्रुओं को कुचलनेवाले हैं। **अधृष्टं चित्**=निश्चय से अधर्षणीय हैं और **दधृष्वणिम्**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभुस्मरण हमारे शरीरों में सोम रक्षण का साधन बनता है। इस प्रकार प्रभु हमें संग्रामों में विजयी व अधर्षणीय बनाते हैं।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

'अप्रामिसत्य-मघवा' प्रभु

अप्रामिसत्य मघवन्तथेदसदिन्द्र क्रत्वा यथा वशः।
सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू चिद्यन्तो अद्रिवः॥ ४॥

(१) हे **अप्रामिसत्य**=अहिंसित सत्य-सत्यस्वरूप, **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन्, **इन्द्र**= सर्वशक्तिमन् प्रभो! **तथा इत् असत्**=वैसा ही होता है **यथा**=जैसा आप **क्रत्वा**=शक्ति व प्रज्ञान से **वशः**=चाहते हैं। (२) हे **शिप्रिन्**=हमें उत्तम हनू व नासिका को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **तव अवसा**= आपके रक्षण के द्वारा **वाजं सनेम**=हम शक्ति व ऐश्वर्य को प्राप्त करें। जबड़ों की उत्तमता भोजन के ठीक चबाने के द्वारा शक्तिवर्धन का कारण बनती है। नासिका की उत्तमता प्राणायाम द्वारा ज्ञान आदि ऐश्वर्यों को प्राप्त कराती है। हे **अद्रिवः**=वज्रहस्त प्रभो! हम **मक्षू**=शीघ्र **चित्**=ही **यन्तः**=शत्रुओं के प्रति जानेवाले हों-उन पर आक्रमण करनेवाले हों।

भावार्थ—यह संसार प्रभु की शक्ति व प्रज्ञान से ठीक रूप में चल रहा है। सत्यस्वरूप प्रभु के रक्षण में हम ज्ञान के ऐश्वर्य व शक्ति को प्राप्त करें-शत्रुओं को आक्रान्त कर पाएँ।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृद् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

ऐश्वर्य-यश व वसु

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि॥ ५॥

(१) हे **शचीपते**=शक्तियों (कर्मों) व प्रज्ञानों के स्वामिन्! **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **विश्वाभिः**=सब **ऊतिभिः**=रक्षणों के द्वारा उ=निश्चय से **शग्धि**=हमारे लिए सब उत्तम पदार्थों को दीजिए। (२) **भगं न**=ऐश्वर्यपुञ्ज के समान **यशसं**=यशस्वी तथा **वसुविदं**=सब वसुओं को प्राप्त करानेवाले **त्वा**=आपको हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **हि अनुचरामसि**= निश्चय से उपासित करते हैं। आपकी उपासना हमें भी 'ऐश्वर्यशाली-यशस्वी व सब वसुओं (धनों) के प्राप्त करनेवाला' बनाएगी।

भावार्थ—वे शचीपति प्रभु हमें रक्षित करते हुए सब उत्तम पदार्थ प्राप्त कराते हैं। प्रभु की उपासना हमें 'ऐश्वर्य-यश व वसुओं' को देती हैं।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराट् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

पौरः

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर॥ ६॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **अश्वस्य**=कर्मों में व्याप्त होनेवाली कर्मेन्द्रियों के आप **पौरः**=पूरयिता **असि**=हैं, **गवाम्**=अर्थों की गमक ज्ञानेन्द्रियों के आप **पुरुकृत्**=पालन व पूरण करनेवाले हैं। आप हमारे लिए **हिरण्ययः उत्सः**=ज्योतिर्मय स्रोत के समान हैं। (२) **त्वे**=आपमें **दानं**=हमारे लिए देय धन **नकिः हि**=नहीं ही **परिमधिषत्**=हिंसित होता, अर्थात् आप सदा हमारे लिए इन धनों को प्राप्त कराते हैं। **यद्-यद् यामि**=जो-जो मैं आपसे माँगता हूँ **तद्**=उसे **आभर**=हमारे लिए प्राप्त कराइए।

भावार्थ—प्रभु हमारी ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियों के पूरण को करते हैं—हमारे लिए ज्ञान के स्रोत हैं। जो कुछ हम माँगते हैं, वे सदा देते हैं।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

भग—गौ—अश्व

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये। उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये॥ ७॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **हि**=निश्चय से **चेरवे**=चरणशील के लिए—पुरुषार्थी के लिए **हि**=प्राप्त होइए तथा **भगं विदाः**=ऐश्वर्य को प्राप्त कराइए जिससे **वसुत्तये**=(वसुदानाय) वह धन का दान कर सके। (२) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **गविष्टये**=ज्ञानेन्द्रियों की कामनावाले के लिए **उद्वावृषस्व**=खूब ही उसमें शक्ति का सेचन कीजिए तथा **अश्वमिष्टये**=कर्मेन्द्रियों की इच्छावाले करिये। इस शक्ति से सेचन के द्वारा उसकी ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को अपना कार्य करने में सशक्त बनाइए।

भावार्थ—श्रमशील को प्रभु प्राप्त होते हैं और उसे दान देने के लिए धन प्राप्त कराते हैं, तथा उसे शक्तिसम्पन्न कर समर्थ ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियोंवाला करते हैं।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

वह रक्षक 'पुरन्दर' इन्द्र

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे॥ ८॥

(१) हे प्रभो! **त्वं**=आप **पुरू**=बहुत **सहस्राणि**=सहस्रों **च**=और **शतानि**=सैकड़ों **यूथा**=गवादि के समूहों को **दानाय**=दानशील पुरुष के लिए **मंहसे**=देते हैं। यह ठीक ही है कि 'दान दो, प्रभु और देंगे'। (२) हम **विप्रवचसः**=विविध प्रकृष्ट स्तुतिवचनोंवाले **गायन्तः**=प्रभु का गुणगान करते हुए उस **पुरन्दरं**=असुर पुरियों का विदारण करनेवाले **इन्द्रं**=शत्रुविद्रावक प्रभु को **अवसे**=रक्षण के लिए **चकृम**=अपने अभिमुख करते हैं। हम प्रभु का ही स्मरण करते हैं—प्रभु हमारे रक्षक बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें दान के लिए खूब ही धनों को प्राप्त कराते हैं। हम प्रभु को गाते हैं—यह गायन हमारा रक्षक हो जाता है।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

प्रभु की आज्ञा का पालन से आनन्द

अविप्रो वा यदविधद्विप्रो वेन्द्र ते वचः।
स प्र ममन्दत्त्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन॥ ९॥

(१) हे **शतक्रतो**=अनन्त शक्तिवाले, **प्राचामन्यो**=सर्वोत्कृष्ट ज्ञानशालिन् **अहंसन**=आत्मसम्मान के भाव को देनेहारे **इन्द्र**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **अविप्रः वा**=अल्प ज्ञानवाला व्यक्ति **वा**=अथवा **विप्र**=ज्ञानी जो कोई भी **यद्**=जब **ते वचः अविधत्**=आपके वचन का (निर्देश का) पालन करता है, **सः**=वह **त्वाया**=आपकी प्राप्ति की कामना से **प्रममन्दत्**=प्रकृष्ट आनन्द को प्राप्त करता है। (२) ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। ज्ञानप्राप्ति का भी उद्देश्य यही है कि हम प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर चलें—प्रभु की आज्ञाओं को मानें। जब प्रभु के आदेशों का पालन करते हुए हम चलते हैं तो आनन्द की प्राप्ति होती ही है।

भावार्थ—प्रभु के निर्देशों के अनुसार यज्ञात्मक जीवन बनाने पर जीवन में एक अद्भुत आनन्द की अनुभूति होती है।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पंक्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'उग्रबाहु म्रक्षकृत्वा' प्रभु

उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरन्दरो यदि मे शृणवद्धवम्।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे॥ १०॥

(१) **उग्रबाहुः**=तेजस्वी भुजाओंवाला, **म्रक्षकृत्वा**=शत्रुओं का वध करनेवाला, **पुरन्दरः**=असुरों की पुरियों का विदारण करनेवाला वह प्रभु ही **यदि**=यदि **मे**=मेरी **हवम्**=पुकार को **शृणवत्**=सुनता है, तो **वसूयवः**=वसुओं की कामनावाले होते हुए हम **वसुपतिं**=वसुओं के स्वामी **शतक्रतुं**=अनन्त शक्तिवाले **इन्द्रं**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **स्तोमैः**=स्तोत्रों के द्वारा **हवामहे**=पुकारते हैं। (२) वस्तुतः संसार में प्रभु ही हमारी कामनाओं को पूर्ण करते हैं। प्रभु को पुकारना ही ठीक है। अन्य व्यक्ति तो संपत्ति में ही साथी हैं। विपत्ति में सहायक प्रभु ही हैं। ये प्रभु ही हमारे शत्रुओं को विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही तेजस्वी व शत्रुओं के नाशक हैं। प्रभु ही हमारी पुकार को सुनते हैं। हमें उस वसुपति प्रभु को ही पुकारना योग्य है।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'निष्पाप उदार ज्ञानी' उपासक

न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः।
यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहै॥ ११॥

(१) **पापासः**=पापवृत्तिवाले होकर हम **न मनामहे**=प्रभु का उपासन नहीं करते। **अरायासः न**=अपानशील बनकर भी हम प्रभु का स्तवन नहीं करते। **न**=न ही **जल्हवः**=मूर्ख बनकर हम

प्रभु का भजन करते हैं। (२) निष्पाप, उदार (दानशील) व ज्ञानी बनकर **यद्**=जब **इत् नु**=निश्चय से उस **वृषणं**=सुखवर्षक **इन्द्रं**=परमेश्वर्यशाली प्रभु को उपासित करते हैं तो **सुते**=इस उत्पन्न जगत् में उस इन्द्र को **सचा**=सदा साथ होनेवाला **सखायं**=मित्र **कृणवामहै**=करते हैं।

भावार्थ–निष्पाप, दानशील व ज्ञानी बनकर हम प्रभु का उपासन करते हैं और प्रभु को अपना मित्र बना पाते हैं।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

प्रभुस्तवनरूप दुर्ग

उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहिमृणकातिमदाभ्यम्।
वेदा भृमं चित्सनिता रथीतमो वाजिनं यमिदू नशत्॥ १२॥

(१) हम **उग्रं**=उस तेजस्वी प्रभु को **युयुज्म**=योग द्वारा प्राप्त करें, जो प्रभु **पृतनासु सासहिम्**=संग्रामों में शत्रुओं का पराभव करनेवाले हैं, **ऋणकातिं**=दुर्गभूमिरूप है स्तुति जिनकी, अर्थात् जिनकी स्तुति एक किले के समान शत्रुओं के आक्रमण से हमारा रक्षण करती है। **अदाभ्यम्**=जो हिंसित होनेवाले नहीं। (२) जैसे **रथीतमः**=उत्तम सारथि **भृमं चित्**=भ्रमणशील अश्व को ही **वेद**=प्राप्त करता है, इसी प्रकार वह **सनिता**=सब कुछ देनेवाले प्रभु **यम् इत् उ**=जिसको ही **वाजिनं**=शक्तिशाली (वेद) जानता है, उसी को **नशत्**=प्राप्त होता है।

भावार्थ–प्रभु का स्तवन स्तोता के लिए एक दुर्ग के समान होता है। यह स्तवन शत्रुओं के आक्रमण से उसका रक्षण करता है। प्रभु सबल को ही प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'अभयकर्ता' प्रभु

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि॥ १३॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **यतः**=जिधर से भी हम **भयामहे**=भयभीत हों, **ततः**=उधर से **नः**=हमें **अभयं कृधि**=निर्भय कीजिए। (२) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **शग्धि**=आप शक्तिशाली हो। **तत्**=सो **तव ऊतिभिः**=अपने रक्षणों के द्वारा **नः**=हमारे **विद्विषः**=द्वेषियों व **विमृधः**=हिंसकों को **जहि**=नष्ट करिये।

भावार्थ–प्रभु हमें सर्वतः निर्भय करते हैं। हे प्रभो! आप हमारे द्वेषियों व हिंसकों को समाप्त करिये।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराट् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

राधस् तथा महान् क्षय

त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे॥ १४॥

(१) हे **राधस्पते**=ऐश्वर्य के स्वामिन् प्रभो! **त्वं**=आप **हि**=निश्चय से **विधतः**=परिचर्या (उपासना) करनेवाले उपासक के **राधसः**=ऐश्वर्य के तथा **महः क्षयस्य**=महान् निवासस्थान के (क्षि निवासगत्योः) **असि**=(वर्धयिता) बढ़ानेवाले हैं। (२) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन्, **गिर्वणः**=ज्ञान

की वाणियों से सेवनीय **इन्द्र**=शत्रु- विद्रावक प्रभो! **सुतावन्तः**=सोम का सम्पादन करनेवाले **वयं**=हम **तं त्वा**=उन आपको **हवामहे**=पुकारते हैं। आपकी हम उपासना करते हैं। आपकी उपासना ही हमारे अभ्युदय का कारण बनती है।

भावार्थ—सोम का रक्षण करते हुए हम प्रभु की उपासना करते हैं। उपाासित प्रभु हमारे लिए ऐश्वर्य के देनेवाले होते हैं।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती ॥ **स्वरः**—मध्यमः ॥

स्पट् उत वृत्रहा

इन्द्रः स्पळुत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः।
स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं स पश्चात्पातु नः पुरः॥ १५॥

(१) **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **स्पट्**=सर्वद्रष्टा व सर्वज्ञ हैं, **उत**=और **वृत्रहा**=वासना को विनष्ट करनेवाले हैं। **परस्परः**=(परस्मात् पाति) शत्रुओं से रक्षित करनेवाले हैं और **नः**=हमारे लिए **वरेण्यः**=वरणीय हैं। (२) **सः**=वे प्रभु **नः**=हमारे **चरमं**=जीवन के अन्तिम भाग को **रक्षिषत्**=रक्षित करें, **सः मध्यमं**=वे प्रभु जीवन के मध्यभाग (यौवन) को भी रक्षित करें। बाल्य को तो प्रभु माता-पिता व आचार्यों द्वारा रक्षित करते ही हैं। वे जीवन के यौवन व वार्धक्य के भी रक्षक हों। **सः**=वे प्रभु **पश्चात्**=पीछे से **पातु**=रक्षित करें तथा **नः**=हमें **पुरः**=सामने से (पातु=) रक्षित करें।

भावार्थ—वे सर्वद्रष्टा प्रभु हमारी वासनाओं को विनष्ट करते हुए हमें शत्रुओं से रक्षित करें। वे आगे-पीछे सब ओर से हमारा रक्षण करें।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—विराट् पंक्तिः ॥ **स्वरः**—पञ्चमः ॥

रक्षक प्रभु

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः।
आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः॥ १६॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **त्वं**=आप **नः**=हमें **पश्चात्**=पीछे से **पुरः**=सामने से **अधरात्**=नीचे से (दक्षिण से) तथा **उत्तरात्**=ऊपर से (उत्तर से) **विश्वतः**=सब ओर से **निपाहि**=रक्षित करिये। (२) आप **दैव्यं भयं**=आधिदैविक आपत्तियों के भय को **अस्मत्**=हमारे से **आरे**=दूर **कृणुहि**=करिये तथा **अदेवीः**=अदिव्य-राक्षसी **हेतीः**=आयुधों को भी **आरे**=हमारे से दूर करिये।

भावार्थ—प्रभु सब ओर से हमारा रक्षण करें। आधिदैविक आपत्तियों को प्रभु दूर करें तथा राक्षसी वृत्ति के लोगों के आयुधों को भी हमारे से पृथक् करें।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—पादनिचृद् बृहती ॥ **स्वरः**—मध्यमः ॥

सदा रक्षण करनेवाले प्रभु

अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः॥ १७॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **अद्य अद्य**='आज' कहलानेवाले सब दिनों में, **श्वः श्वः**='कल' कहलानेवाले सब दिनों में **च**=और **परे**=परसों व परले दिनों में भी **नः त्रास्व**=हमारा

रक्षण कीजिए। (२) हे **सत्पते**-सज्जनों के रक्षक प्रभो! **नः जरितॄन्**-हम स्तोताओं को **विश्वा च अहा**=सब ही दिनों **दिवा नक्तं च**=दिन-रात **रक्षिषः**=रक्षित करिये।

भावार्थ-आज, कल, परसों व सदा दिन रात प्रभु हमारा रक्षण करें।

ऋषिः—भर्गः प्रागाथः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

'प्रभङ्गी शूरः'

प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः संमिश्लो वीर्याय कम्।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥ १८ ॥

(१) वे प्रभु **प्रभङ्गी**-शत्रुओं का भञ्जन करनेवाले, **शूरः**-शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले, **मघवा**-ऐश्वर्यशाली व **तुवीमघः**=महान् धनवाले हैं। **संमिश्लः**=उपासकों के साथ सम्यक् मेलवाले वे प्रभु **वीर्याय**=शक्ति के लिए होते हैं और **कम्**-सुख को प्राप्त कराते हैं। (२) हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञानवाले प्रभो! **उभा ते बाहू**-दोनों आपकी भुजाएँ **वृषणा**-सुखों का सेचन करनेवाली हैं, **या**=जो **वज्रं निमिमिक्षतुः**-वज्र को निश्चय से अपने साथ जोड़ती हैं-धारण करती हैं।

भावार्थ-शत्रुओं को शीर्ण करके प्रभु अपने सम्पर्क से हमें शक्तिशाली बनाते हैं। प्रभु की भुजाएँ, शत्रुओं के लिए वज्र को धारण करती हुईं, हमारे पर सुखों का वर्षण करती हैं।

प्रभु का गायन करनेवाला 'प्रगाथ काण्व' अगले सूक्त में इन्द्र का स्तवन करता हुआ कहता है -

६२. [द्विषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

माहिनं वयः

प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति ।
उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १ ॥

(१) **अस्मै**-इस प्रभु के लिए **उपस्तुतिं**=उपासनापूर्वक की जानेवाली स्तुति को **उ**=निश्चय से **प्रभरतः**=प्रकर्षेण सम्पादित करो। **यत्**=जिसे **जुजोषति**=प्रभु प्रीतिपूर्वक ग्रहण करते हैं। जो स्तुति हमें प्रभु का प्रिय बनाती है। (२) **सोमिनः**-सोम की रक्षण करनेवाले पुरुष **इन्द्रस्य उक्थैः**=प्रभु के स्तोत्रों के द्वारा **माहिनं**=प्रभुपूजा से युक्त **वयः**=शक्ति को **वर्धन्ति**=बढ़ाते हैं। **इन्द्रस्य**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **रातयः**=दान **भद्राः**=कल्याणकर हैं।

भावार्थ-प्रभु का स्तवन हमें प्रभु का प्रिय बनाता है। प्रभुस्तवन से सोमरक्षण द्वारा शक्ति का वर्धन होता है। प्रभु के दान कल्याणकर हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—विराट् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

'शक्तिप्रदाता' सर्वशक्तिमान् प्रभु

अयुजो असमो नृभिरेकः कृष्टीरयास्यः ।
पूर्वीरति प्र वावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ २ ॥

(१) वे प्रभु **अयुजः**=अपने कार्यों में किसी सहाय की आवश्यकता नहीं रखते। **असमः**=उनके

समान कोई नहीं है। वे **एकः**=अद्वितीय प्रभु **नृभिः**=सारे मनुष्यों व देवों से **अयास्यः**=पराजित नहीं किये जा सकते। ये प्रभु **पूर्वीः**=अपना पालन व पूरण करनेवाली **कृष्टीः**=श्रमशील प्रजाओं को **अति प्रवावृधे**=अतिशयेन बढ़ानेवाले हैं। (२) ये प्रभु **विश्वाः**=सब **जातानि**=उत्पन्न प्राणियों को **ओजसा**=ओज से बढ़ाते हैं। इस **इन्द्रस्य**=सर्वशक्तिमान् प्रभु की **रातयः**=देन **भद्राः**=कल्याणकर हैं।

भावार्थ—अनन्त शक्तिवाले वे प्रभु अद्वितीय हैं। सभी को वे ही शक्ति प्राप्त करा रहे हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः ॥ **स्वरः**—पञ्चमः ॥

'जीरदानु' प्रभु

अहितेन चिदर्वता जीरदानुः सिषासति ।
प्रवाच्यमिन्द्र तत्तव वीर्याणि करिष्यतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ३ ॥

(१) वह प्रभु **अहितेन**=न जोते हुए **अर्वता चित्**=घोड़े से ही **सिषासति**=सबके संभजन की कामनावाला होता है। 'घोड़े को जोतकर रथ से प्रभु आते हों' सो बात नहीं। प्रभु तो सदा सर्वत्र प्राप्त हैं ही। **जीरदानुः**=वे प्रभु ही जीवन को देनेवाले हैं। (२) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **वीर्याणि करिष्यतः**=शक्तिशाली कर्मों को करनेवाले **तव**=आपका **तत्**=वह कर्म **प्रवाच्यम्**=प्रकर्षेण स्तुति के योग्य है। बिना ही घोड़े जुते रथ के वे आते हैं और हम सबके लिए जीवन को देते हैं। इस **इन्द्रस्य**=परमैश्वर्यशाली प्रभु के **रातयः**=दान **भद्राः**=हमारे लिए कल्याणकर हैं।

भावार्थ—प्रभु बिना रथ में जुते घोड़े के ही हमें प्राप्त होते हैं और हमारे लिए जीवन को देनेवाले होते हैं। प्रभु के शक्तिशाली कर्म स्तुति के योग्य हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—पङ्क्तिः ॥ **स्वरः**—पञ्चमः ॥

ब्रह्माणि वर्धना

आ याहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना ।
येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ४ ॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **आयाहि**=आप हमें प्राप्त होइए। **ते**=आपके लिए **ब्रह्माणि**=स्तोत्रों को **कृणवाम**=करते हैं। ये स्तोत्र **वर्धनाः**=हमारे वर्धन के लिए होते हैं। इनसे हमें जीवन में प्रेरणा प्राप्त होती है। इनसे एक लक्ष्यदृष्टि उत्पन्न होती है। (२) ये स्तोत्र वे हैं, **येभिः**=जिनसे, हे **शविष्ठ**=अतिशयेन शक्तिसम्पन्न प्रभो! आप **इह**=यहाँ इस जीवन में **श्रवस्यते**=यश व ज्ञान की कामनावाले पुरुष के लिए **भद्रं**=कल्याण को **चाकनः**=चाहते हैं। **इन्द्रस्य**=परमैश्वर्यशाली प्रभु के **रातयः**=दान **भद्राः**=निश्चय ही कल्याणकर होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु के स्तवन को करें। यह स्तवन हमारी वृद्धि का कारण बनता है। प्रभु इस ज्ञानेच्छु स्तोता के कल्याण को करते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—विराट् पङ्क्तिः ॥ **स्वरः**—पञ्चमः ॥

तीव्रैः सोमैः सपर्यतः, नमोभिः प्रतिभूषतः

धृषतश्चिद् धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत्त्वम् ।
तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ५ ॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **त्वं**-आप **तीव्रैः**=शक्तिशाली **सोमैः**-शरीरस्थ सोम (वीर्य) कणों द्वारा **सपर्यतः**=आपका पूजन करते हुए उपासक के **मनः**=मन को **यत्**=जब **धृषतः चित् धृषत्**=धर्षक से भी धर्षक-शत्रुओं को पीस डालनेवाला **कृणोषि**=करते हैं। तब **नमोभिः**=आपके प्रति नमन से **प्रतिभूषतः**=अंग-प्रत्यंग को शक्ति से अलंकृत करते हुए पुरुष के लिए **इन्द्रस्य**-ऐश्वर्यशाली आपकी **रातयः**=देन **भद्राः**=कल्याणकर होती हैं। (२) प्रभु का पूजन वही करता है जो शरीर में सोम का रक्षण करता है और प्रभु के प्रति नमनवाला होता हुआ अंग-प्रत्यंग को शक्ति से अलंकृत करता है। प्रभु इस पुजारी के मन को शत्रुओं को पीस डालनेवाला बना देते हैं।

भावार्थ-प्रभु की उपासना सोमरक्षण व नमन द्वारा होती हैं। प्रभु हमारे मन को शत्रुओं का ध्वंसक बनाते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'ऋचीषम' प्रभु

अव॑ चष्ट ऋची॑षमोऽव॒ताँइ॑व॒ मानु॑षः ।
जु॒ष्ट्वी दक्ष॑स्य सो॒मिनः॒ सखा॑यं कृणुते॒ युजं॑ भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑ ॥ ६ ॥

(१) **इव**=जैसे **मानुषः**=प्यासा मनुष्य **अवतान्**=कुओं को **अवचष्टे**=देखता है, इसी प्रकार **ऋषीषमः**=(ऋचा समः) स्तुति के अनुरूप, अर्थात् वास्तव में ही दयालु वे प्रभु **अवतान्**= रक्षणीय पुरुषों को **अवचष्टे**=कृपादृष्टि से देखते हैं। (२) **दक्षस्य**=उन्नतिशील **सोमिनः**=सोमरक्षक पुरुष के प्रति **जुष्ट्वी**-प्रीतिवाले होकर उसे **युजं सखायं कृणुते**=सदा साथ रहनेवाले मित्र बनाते हैं। इन **इन्द्रस्य**=परमैश्वर्यशाली प्रभु के **रातयः**=दान **भद्राः**=कल्याणकर हैं।

भावार्थ-प्रभु अपनी स्तुति के वस्तुतः अनुरूप ही हैं। वे उन्नतिशील सोमरक्षक पुरुष के मित्र होते हैं और उस प्रभु की सब देन कल्याणकर है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

वीर्यम्-क्रतुम्

विश्वे॑ त इन्द्र वी॒र्यं॑ दे॒वा अनु॒ क्रतुं॑ ददुः ।
भुवो॒ विश्व॑स्य॒ गोप॑तिः पुरुष्टुत भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑ ॥ ७ ॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् देव! **विश्वे देवाः**-सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथिवी, जल, अग्नि, (तेज), वायु, आकाश, मेघ आदि सब देव **ते**-आपके **वीर्यम्**=शक्ति के **अनु**=अनुसार ही **ददुः**-हमारे लिए शक्ति को देते हैं। इसी प्रकार सब विद्वान् आपके **क्रतुं**=प्रज्ञान के अनुसार ही हमारे लिए प्रज्ञान को देनेवाले होते हैं। सूर्य आदि में शक्ति की स्थापना आप ही करते हैं। ज्ञानियों में ज्ञान को देनेवाले भी आप ही हैं। (२) हे **पुरुष्टुत**=बहुतों से स्तुति किये गये प्रभो! आप ही **विश्वस्य**=सब **गोपतिः भुवः**=किरणों व ज्ञान की वाणियों के स्वामी हैं। **इन्द्रस्य**=परमैश्वर्यशाली आपकी **रातयः**=देन **भद्राः**=कल्याणकर हैं।

भावार्थ-सब सूर्य आदि देवों में शक्ति का स्थापन प्रभु ही करते हैं तथा सब ज्ञानियों में प्रज्ञान का स्थापन करनेवाले प्रभु ही हैं। किरणों व ज्ञान की वाणियों के स्वामी प्रभु ही हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

शवः-ओजः

गृणे तदि॑न्द्र ते॒ शव॑ उप॒मं दे॒वता॑तये।
यद्धंसि॑ वृ॒त्रमोज॑सा शचीपते भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑॥८॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! मैं **ते**=आपके **तत्**=उस **शवः**=बल का **गृणे**=स्तवन करता हूँ जो **उपमं**=हमारे अन्तिकतम होता हुआ **देवतातये**=दिव्यगुणों के विस्तार के लिए होता है। (२) हे **शचीपते**=शक्ति व प्रज्ञानों के स्वामिन्! आप **यद्**=जब **ओजसा**=ओज के द्वारा **वृत्रं**=ज्ञानी की आवरणभूत वासना को **हंसि**=विनष्ट करते हैं, तो **इन्द्रस्य**=परमैश्वर्यशाली आपकी **रातयः**=देन **भद्राः**=हमारे लिए कल्याणकर ही होती हैं।

भावार्थ—प्रभु का बल हमारे में दिव्यगुणों के विस्तार के लिए होता है। प्रभु का ओज हमारी वासना को विनष्ट करता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

वपुष्यतः=समना

सम॑नेव वपु॒ष्य॒तः कृ॒णव॒न्मानु॑षा यु॒गा।
वि॒दे तदिन्द्र॒श्चेत॑न॒मध॑ श्रु॒तो भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑॥९॥

(१) **इन्द्रः**=वासनारूप शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभु **मानुषा युगा**=मानव दम्पतियों को **समना इव**=समान मनवाला-सा-एक हृदयवाला-सा-अभिन्नहृदय व **वपुष्यतः**=उत्तम शरीर की कामना वाला करते हैं। (२) वे प्रभु **तत् चेतनं**=उस प्रज्ञान को **विदे**=प्राप्त कराते हैं, जिससे कि मनुष्य शरीरों को स्वस्थ रखते हैं (वपुष्यतः) तथा मनों को अविरुद्ध बना पाते हैं (समना)। **अध**=अब इन स्वस्थ शरीरोंवाले व समान मनोंवाले मानुष युगों में **श्रुतः**=ये प्रभु ही श्रुत होते हैं। ये प्रभु की ही महिमा का गायन करते हैं कि **इन्द्रस्य**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की **रातयः**=देन **भद्राः**=कल्याणकर हैं।

भावार्थ—उपासक मानवदम्पतियों को प्रभु उत्तम शरीरवाला व समान मनवाला बनाते हैं। ऐसा ही वे ज्ञान देते हैं। प्रभु की देन कितना ही कल्याण करनेवाली हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

बल-प्रभु-प्रज्ञान

उज्जा॒तमि॑न्द्र ते॒ शव॒ उत्त्वामुत्तव॒ क्रतु॑म्।
भूरि॑गो॒ भूरि॑ वावृधु॒र्मघ॑व॒न्तव॒ शर्म॑णि भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑॥१०॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **जातम्**=अपने अन्दर उत्पन्न हुए-हुए **ते शवः**=आपके बल को ये उपासक सोमरक्षण द्वारा **भूरि**=खूब ही **उद् वावृधुः**=बढ़ाते हैं। शक्ति को ही क्या बढ़ाते हैं, **त्वाम् उत्** (वावृधुः)=आपको ही वे अपने अन्दर बढ़ाते हैं। **तव**=आपके **क्रतुम्**=प्रज्ञान को **उत्** (वावृधुः)=बढ़ाते हैं। उपासक प्रभु की शक्ति को-प्रभु को व प्रज्ञान को अपने अन्दर धारण करता है। (२) हे **भूरिगो**=पालक व पोषक (भृ धारणपोषणयोः) ज्ञान की वाणियोंवाले **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **तव शर्मणि**=आपके आशीर्वाद व रक्षण में ये **भूरि वावृधुः**=खूब ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं। **इन्द्रस्य**=ऐश्वर्यशाली आपकी **रातयः**=देन **भद्राः**=सदा कल्याणकर हैं।

भावार्थ–उपासक में प्रभु का बल, प्रभु की भावना व प्रज्ञान का वर्धन होता है। ये प्रभु के आशीर्वाद से खूब ही वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

प्रभु के साथ मेल व ऐश्वर्यलाभ

अहं च त्वं च वृत्रहन्त्सं युज्याव सनिभ्य आ।
अरातीवा चिदद्रिवोऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः॥ ११॥

(१) हे **वृत्रहन्**=वासना को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **अहं च त्वम् च**=मैं और आप **आ सनिभ्यः**=समन्तात् ऐश्वर्य के प्राप्ति के लिए **संयुज्याव**=सम्यक् मिल जाएँ। मैं आपके साथ एक होकर ही तो सब ऐश्वर्यों को पानेवाला बनता हूँ। (२) हे **अद्रिवः**=वज्रहस्त अथवा आदरणीय **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **नौ**=इकट्ठे हुए-हुए हमारे **आरातीवा**=अदानशील पुरुष भी **अनुमंसते**=अनुकूल मतिवाला होता है। प्रभु के साथ एक हो गये उपासक को कृपण व्यक्ति भी उदारता से धनों का देनेवाला होता है। उस **इन्द्रस्य**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की **रातयः**=देन **भद्राः**=अतिशयेन कल्याणकर हैं।

भावार्थ–प्रभु के साथ मेल हो जाने पर सब ऐश्वर्यों की प्राप्ति हो जाती है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

महान् असुन्वतः वधः

सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम्।
महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः॥ १२॥

(१) **वयं**=हम **तं इन्द्रं**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **सत्यम् इत् वा उ**=सचमुच ही निश्चय से **स्तवाम**=स्तुति करते हैं, **अनृतं न**=झूठ-मूठ नहीं, अर्थात् किसी स्वार्थ के कारण यों ही स्तुति न करके वस्तुतः हृदय से प्रभु का स्तवन कर रहे हैं। (२) जो भी व्यक्ति अपने अन्दर सोम का रक्षण नहीं करता, उस **असुन्वतः**=सोम का अभिषव न करनेवाले व्यक्ति का अथवा अयज्ञशील पुरुष का **वधः**=वध **महान्**=बड़ा है। **सुन्वतः**=सोम का सम्पादन करनेवाले की **भूरि**=बहुत अधिक **ज्योतींषि**=ज्ञानदीप्तियाँ होती हैं। इस सुन्वन् पुरुष के लिए **इन्द्रस्य**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की **रातयः**=देन **भद्राः**=कल्याणकर होती हैं।

भावार्थ–हम प्रभु का स्तवन हृदय से करते हैं। यज्ञशील सोमरक्षक पुरुष ही ज्योति को प्राप्त करता है। इसके लिए प्रभु की देन सदा कल्याणकर होती हैं।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'प्रगाथ काण्व' ही है–

६३. [त्रिषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

कर्मों द्वारा प्रभु की प्राप्ति

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे। यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे॥ १॥

(१) **सः**–वह **महानां**–पूज्यों में **पूर्व्यः**=मुख्य **वेनः**=कान्त प्रभु **क्रतुभिः**=यज्ञात्मककर्मों के द्वारा **आनजे**–प्राप्त होता है। अपने कर्तव्य कर्मों को करने से ही हम प्रभु का पूजन कर पाते हैं।

(२) **यस्य**=जिस प्रभु के **द्वारा**=प्राप्ति के साधनभूत (द्वारभूत) **धियः**=कर्मों को **मनुः पिता**=विचारशील रक्षक पुरुष **देवेषु**=देववृत्ति के पुरुषों में **आनजे**=प्राप्त होता है। उन देवों के पथ पर चलता हुआ यह विचारशील पुरुष भी प्रभु को प्राप्त करता है।

भावार्थ–प्रभु की प्राप्ति यज्ञात्मक कर्मों में लगे रहने से होती है। एक विचारशील पुरुष देवों का अनुसरण करता हुआ प्रभु को प्राप्त करता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सोमपृष्ठासः अद्रयः

दिवो मानं नोत्सदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रयः। उक्था ब्रह्म च शंस्या॥ २॥

(१) **सोमपृष्ठासः**=सोम (वीर्य) शक्ति को अपना आधार बनानेवाले **अद्रयः**=उपासक **दिवः मानं**=ज्ञान के निर्माता प्रभु को **न उत्सदन्**=छोड़कर दूर नहीं जाते। ये सोमरक्षक उपासक अवश्य प्रभु को पानेवाले बनते हैं। (२) इनके जीवन में **उक्था**=स्तोत्र **च**=और **ब्रह्म**=ज्ञान के वचन **शंस्या**=शंसनीय होते हैं।

भावार्थ–सोम का रक्षण करनेवाले उपासक अवश्य प्रभु को प्राप्त करते हैं। ये स्तोत्रों व ज्ञानवचनों का उच्चारण करते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

इन्द्रियों का अनावरण

स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप। स्तुषे तदस्य पौंस्यम्॥ ३॥

(१) **सः**=वे **विद्वान्**=ज्ञानी **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **अंगिरोभ्यः**=(अगि गतौ) क्रियाशील पुरुषों के लिए **गाः**=इन्द्रियों का **अप अवृणोत्**=विषयवासनाओं के आवरण से रहित करता है। क्रियाशील बने रहने पर इन्द्रियाँ विषयों में नहीं फंसती। (२) मैं **अस्य**=इन प्रभु के **तत्**=उस **पौंस्यम्**=वीरतापूर्ण कर्म का **स्तुषे**=स्तवन करता हूँ।

भावार्थ–मैं प्रभु का स्तवन करता हूँ। प्रभु मेरी इन्द्रियों को वासनाओं के आवरण से रहित करते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

वाकस्य वक्षणिः

स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः। शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रा गन्त्ववसे॥ ४॥

(१) **सः**=वे प्रभु **प्रत्नथा**=सनातन काल से **कविवृधः**=विद्वानों का वर्धन करनेवाले हैं। **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **वाकस्य**=स्तोता के **वक्षणिः** (वोढा)=लक्ष्यस्थान पर प्राप्त करानेवाले हैं। (२) **अर्कस्य**=स्तोता के पूजा करनेवाले का **शिवः**=वे कल्याण करनेवाले हैं। वे प्रभु **होमनि**=होम के होने पर–पुकार के व यज्ञों के होने पर **अवसे**=रक्षण के लिए **अस्मत्रा गन्तु**=हमें प्राप्त हों। जब हम प्रभु को पुकारें व यज्ञों द्वारा प्रभु का उपासन करें तो प्रभु हमें प्राप्त हों–हमारा रक्षण करें।

भावार्थ–प्रभु ज्ञानियों का वर्धन करते हैं। स्तोता को लक्ष्यस्थान पर पहुँचाते हैं। पुजारी का कल्याण करते हैं। प्रार्थना करनेवाले को प्राप्त होकर उसका रक्षण करते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

यज्ञशीलता व स्तवन

आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः। श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्र गोत्रस्य दावने॥ ५॥

(१) **आत् उ**=अब शीघ्र ही **नु**-निश्चय से **क्रतुम्**=आप से दी गई शक्ति के **अनु**=अनुसार **स्वाहा-वरस्य**='स्वाहा' की वरणीय अग्नि की **यज्यवः**=पूजा करनेवाले यज्ञशील **अर्काः**=उपासक **श्वात्रम्**=(श्वि गतिवृद्ध्योः) गतिशील सदावृद्ध उस प्रभु को **अनूषत**=स्तुत करते हैं। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **गोत्रस्य**=ज्ञान की वाणियों के समूह के **दावने**-देने के निमित्त वे आपका स्तवन करते हैं। स्तोता को ही तो आपकी ये ज्ञान की वाणियाँ प्राप्त होती हैं।

भावार्थ-प्रभु के शक्ति को प्राप्त करके हम यज्ञशील बनें। प्रभु का स्तवन करते हुए हम ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करें।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'अध्वर' प्रभु

इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च। यमर्का अध्वरं विदुः॥ ६॥

(१) **इन्द्रे**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु में ही **विश्वानि**=सब **कृतानि**=आज तक किये गये **च**=और **कर्त्वानि**=भविष्य में किये जानेवाले **वीर्या**=शक्तिशाली कर्म हैं। (२) उस प्रभु में सब शक्तिशाली कर्म हैं **यम्**=जिसको **अर्काः**=उपासक **अध्वरं**=हिंसा से रहित **विदुः**=जानते हैं। प्रभु सर्वशक्ति सम्पन्न हैं, पर वे किसी का हिंसन नहीं करते।

भावार्थ-उस सर्वशक्तिसम्पन्न प्रभु में ही सब शक्तिशाली कर्म होते हैं। ये प्रभु 'अध्वर' हैं-किसी की हिंसा करनेवाले नहीं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

पञ्चजन्य का प्रभुपूजन

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत। अस्तृणाद्बर्हणा विपोऽ३र्यो मानस्य स क्षयः॥ ७॥

(१) **यत्**=जब **पाञ्चजन्यया**='ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र व निषाद' रूप पंचजनों का हित करनेवाले **विशा**-प्रजा से **इन्द्रे**-उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के विषय में **घोषाः**=स्तुतिवचन **असृक्षत**=किये जाते हैं तो वे प्रभु **बर्हणा**=(बृहि वृद्धौ) अपनी शत्रुओं के उद्बर्हण की शक्ति से **अस्तृणात्**-काम आदि शत्रुओं का हिंसन करते हैं। (२) इसीलिए **विपः**=मेधावी स्तोता के **सः अर्यः**=वे स्वामी प्रभु **मानस्य**=पूजा के **क्षयः**=निवासस्थान होते हैं। मेधावी स्तोता प्रभु का पूजन करता हुआ काम आदि शत्रुओं का विनाश कर पाता है।

भावार्थः-प्रभु का स्तोता वही है जो पञ्जजनों का हित करे। प्रभु स्तोता के शत्रुओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

जीवनमार्ग के रक्षक प्रभु

इयमु ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या। प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम्॥ ८॥

(१) हे प्रभो! **इयम्**=यह **उ**=निश्चय से **ते**=आपकी **अनुष्टुतिः**-अनुदिन की जानेवाली स्तुति है आप ही **तानि**-उन प्रसिद्ध **पौंस्या**=शक्ति के कर्मों को **चकृषे**=करते हैं। (२) आप ही

चक्रस्य=इस हमारे शरीररथ के चक्र के **वर्तनिम्**=मार्ग को **प्रावः**=रक्षित करते हैं। आपसे रक्षित हुए-हुए ही हम अपने जीवनमार्ग में आगे बढ़ पाते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। सब शक्तिशाली कर्मों को प्रभु ही करते हैं। प्रभु ही हमारे जीवनमार्ग का रक्षण करनेवाले हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सात्त्विक भोजन

अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे। यवं न पश्व आ ददे॥ ९॥

(१) **अस्य**=इस **वृष्णः**=सब सुखों के वर्षक प्रभु के—प्रभु से उत्पन्न किये गये **व्योदने**=विशिष्ट ओदन—सात्त्विक भोजन के होने पर यह जीव **उरु क्रमिष्ट**=खूब क्रियाशील होता है तथा **जीवसे**=उत्कृष्ट जीवन के लिए होता है। (२) **न**=जिस प्रकार **पश्वः**=पशु **यवं**=जौ को, उसी प्रकार यह भोजन को **आददे**=ग्रहण करता है। पशु स्वाद के कारण नहीं खाते रहते। इसी प्रकार यह भी मात्रा में ही भोजन करता है।

भावार्थ—हम उस सुखों के वर्षक प्रभु से दिये गये सात्त्विक भोजनों को ही करें।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

दक्षपितरः

तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः। स्याम मरुत्वतो वृधे॥ १०॥

(१) हम **युष्माभिः**=आपसे—प्रभु से दिये गये **तद्**=उस, गतमन्त्र में वर्णित व्योदन को—सात्त्विक भोजन को, **दधानाः**=धारण करते हुए **अवस्यवः**=रक्षण की कामनावाले व **दक्षपितरः**=शक्ति के रक्षक हों। (२) हम **मरुत्वतः**=प्राणोंवाले इस इन्द्र के **वृधे**=वर्धन के लिए **स्याम**=हों। सात्त्विक अन्न का सेवन हमारी प्राणशक्ति को बढ़ाए।

भावार्थः—हम सात्त्विक अन्नों के द्वारा अपना रक्षण करें, शक्ति को बढ़ाएँ तथा प्राणशक्तिसम्पन्न बनें।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

जेषाम त्वया युजा

बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः। जेषामेन्द्र त्वया युजा॥ ११॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **बट्**=यह सत्य है कि **ऋत्वियाय**=समय पर प्राप्त होनेवाले **धाम्ने**=उस-उस तेज के लिए **ऋक्वभिः**=ऋचाओं के द्वारा—स्तुतिवचनों के द्वारा **नोनुमः**=हम आपका खूब ही स्तवन करते हैं। आपका यह स्तवन हमें तेजस्वी बनाता है। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **त्वया युजा**=आपको साथी के रूप में पाकर हम **जेषाम**=विजय को प्राप्त करें।

भावार्थ—प्रभुस्तवन हमें तेज प्राप्त करता है। प्रभु को साथी के रूप में पाकर हम शत्रुओं को पराजित करते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ देवता—देवाः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

इन्द्रज्येष्ठाः देवाः अस्मान् अवन्तु

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः॥ १२॥

(१) **मेहना**=शरीर में शक्ति के सेचन के द्वारा **पर्वतासः**=हमारा पूरण करनेवाले **रुद्राः**=रोगों के द्रावक-दूर भगानेवाले प्राण **वृत्रहत्ये**=वासना के विनाश के निमित्तभूत **भरहूतौ**=संग्राम में पुकार के होने पर **अस्मे**=हमारे लिए **सजोषा**=समान रूप से प्रीतिवाले हों। प्राणों की अनुकूलता से हम शरीर में शक्ति का सेचन करते हुए रोगशून्य व वासनाशून्य बनते हैं। (२) **यः**=जो **शंसते**=ज्ञान की वाणियों का शंसन करनेवाले तथा **स्तुवते**=स्तवन करनेवाले के लिए **पज्रः**=शक्तिशाली होता हुआ **धायि**=धारण किया जाता है वह इन्द्र, तथा **इन्द्रज्येष्ठाः देवाः**=इन्द्र है ज्येष्ठ जिनमें वे सब देव **अस्मान् अवन्तु**=हमारा रक्षण करें। सब देवों के साथ महादेव हमारे लिए कल्याणकर हों।

भावार्थ—प्राणयाम द्वारा अंग-प्रत्यंग को शक्ति से सिक्त करके हम रोगों व वासनाओं को जीतें। शक्ति के धारण करनेवाले प्रभु सब देवों के साथ हमारा कल्याण करें।

अगले सूक्त के भी ऋषि 'प्रगाथ काण्व' व देवता 'इन्द्र' हैं—

६४. [चतुःषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

धन व सत्संग

उत्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः। अव ब्रह्मद्विषो जहि॥ १॥

(१) हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! **त्वा**=आपको **स्तोमाः**=हमारे से की जानेवाली स्तुतियाँ **उत् मन्दन्तु**=उत्कर्षेण आनन्दित करें। ये स्तोत्र हमें आपका प्रिय बनाएँ। आप हमारे लिए **राधः कृणुष्व**=कार्यसाधक धनों को कीजिए। (२) **ब्रह्मद्विषः**=ज्ञान से अप्रीतिवाले लोगों को **अवजहि**=हमारे से दूर करिये। हमें ज्ञानी लोगों का ही सम्पर्क प्राप्त हो। मूर्खों के सम्पर्क से हम सदा दूर रहें।

भावार्थ—हम प्रभुस्तवन करते हुए कार्यसाधक धनों को प्राप्त करें और ज्ञानियों के सम्पर्क में रहें।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अराधस् पणियों का विनाश

पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि। नहि त्वा कश्चन प्रति॥ २॥

(१) हे इन्द्र! आप **पणीन्**=लोभयुक्त व्यवहारवाले **अराधसः**=यज्ञों के असाधक धनोंवाले धनियों को **पदा**=पाँव से **नि बाधस्व**=नीचे पीड़ित करिये—इन्हें पाँव तले रोंद डालिये। **महान् असि**=आप पूज्य हैं। (२) हे प्रभो! **कश्चन**=कोई भी **त्वा प्रति नहि**=आपका सामना करनेवाला नहीं है। आप अद्वितीय शक्तिशाली हैं।

भावार्थ—प्रभु लोभी अयज्ञिय वृत्तिवाले धनियों को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'मुक्त व अमुक्त सभी का ईश' प्रभु

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम्। त्वं राजा जनानाम्॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वं**=आप **सुतानां**=कर्मानुसार उस-उस शरीर को ग्रहण करनेवाले उत्पन्न लोगों के **ईशिषे**=ईश होते हैं। **त्वम्**=आप ही **असुतानाम्**=शरीर को न धारण करनेवाले, उत्पन्न न होनेवाले-मुक्त पुरुषों के भी ईश हैं। (२) **त्वं**=आप ही **जनानाम्**=सब जन्म-धारियों के **राजा**=व्यवस्थापक-कर्मानुसार फल देनेवाले हैं।

भावार्थ-मुक्त व अमुक्त सभी के प्रभु ईश हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

दिविक्षयः

एहि प्रेहि क्षयो दिव्या३ घोषञ्चर्षणीनाम्। ओभे पृणासि रोदसी॥ ४॥

(१) हे प्रभो! **एहि**=आप हमें प्राप्त होइए, **प्रेहि**=प्रकर्षेण प्राप्त होइए। आप **चर्षणीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के लिए **आघोषम्**=यह घोषणा करते हुए कि **दिवि क्षयः**=तुम्हारा ज्ञान में निवास है, ज्ञानपूर्वक ही तुमने गति करनी है (क्षि निवासगत्योः) प्राप्त होइए। (२) हे प्रभो! आप इस घोषणा के द्वारा ही **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी को-मस्तिष्क व शरीर को **आपृणासि**=आपूरित कर देते हैं। ज्ञानपूर्वक क्रिया करनेवाला व्यक्ति स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मस्तिष्कवाला बनता है।

भावार्थ-प्रभु मनुष्य को यही उपदेश करते हैं कि ज्ञान में ही तुम्हारा निवास हो, ज्ञानपूर्वक ही तुम्हारी क्रियाएँ हों।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अविद्यापर्वत का विदारण

त्वं चित्पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्त्रिणम्। वि स्तोतृभ्यो रुरोजिथ॥ ५॥

(१) अविद्या पञ्चपर्वा कहलाती है-'अविद्या अस्मिता राग द्वेष व अभिनिवेश' रूप पांच क्लेश ही इसके पांच पर्व हैं। यह अविद्या शत सहस्रों व हज़ारों रूपों में प्रकट होती है। प्रभु ही इस अविद्यापर्वत का विदारण करते हैं। **त्वं**=उस **चित्**=निश्चय से **पर्वत**=पाँच पर्वोंवाले अविद्यापर्वत को, **गिरिं**=जो हमें निगल-सा जाता है, **शतवन्तं**=सैकड़ों शाखाओंवाला है तथा **सहस्त्रिणं**=सहस्रों प्रशाखाओंवाला हैं, इस पर्वत को, हे प्रभो! **स्तोतृभ्यः**-स्तोताओं के लिए आप ही **विरुरोजिथ**=विशेषरूप से भग्न करते हैं।

भावार्थ-हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु ही हमारे लिए अविद्या पर्वत का विनाश करेंगे।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभुस्मरण से सोमरक्षण

वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे। अस्माकं काममा पृण॥ ६॥

(१) हे प्रभो! **वयम्**=हम **उ**=निश्चय से **त्वा**=आपको **सुते**=शरीर में सोम का सम्पादन करने पर **दिवा**=दिन में **हवामहे**=पुकारते हैं। **नक्तं**=रात में भी **वयं**=हम आपका आह्वान करते हैं। आपका आराधन ही वस्तुतः हमें सोमरक्षण के योग्य बनाता है। (२) **अस्माकं कामं आपृण**=आप हमारी कामना को पूर्ण करिये।

भावार्थ–प्रभुस्मरण करते हुए हम सोम का रक्षण करें। इस प्रकार सब उन्नतियों को सिद्ध कर पाएँ।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

विरलो जनः

क्वं१ स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः। ब्रह्मा कस्तं संपर्यति॥ ७॥

(१) संसार में **स्यः**=वह व्यक्ति **क्व**=कहाँ है? जो **वृषभः**=शरीर में शक्ति के सेचन के द्वारा बलवान् बना है। **युवा**–बुराइयों को अपने से पृथक् करनेवाला व अच्छाइयों का अपने से मिश्रण करनेवाला है। **तुविग्रीवः**=महान् ग्रीवावाला है। **तुवि**–अनेक ग्रीवाओंवाला है। अन्नमय कोश में बलवान्, प्राण (इन्द्रियाँ) मय कोश में असत् को छोड़कर सत्वाला तथा मनोमय कोश में तुविग्रीव। यह सभी को अपनी मैं में समाविष्ट करता है–सो सभी के साथ मिलकर खाता है। यही 'अनेक ग्रीवाओंवाला होना' हैं। (२) यह **अनानतः**=ज्ञान के सम्पादन के कारण विषयवासना से न दबा हुआ होता है। **ब्रह्मा**=यह परमार्थ ज्ञान को प्राप्त करता है कि 'सब प्राणी उस प्रभु में हैं, सबमें उस प्रभु का वास है'। यह ज्ञान ही इसकी आनन्दमयता का कारण बनता है। **कः**=वह आनन्दमय प्रभु भी **तं**=उस 'वृषभ-युवा-तुविग्रीव-अनानत-ब्रह्म' बनने का प्रयत्न करते हुए प्रभु के प्रिय बनें।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

यज्ञशीलता व प्रभुलिप्सा

कस्यं स्वित्सवनं वृषा जुजुष्वाँ अवं गच्छति। इन्द्रं क उं स्विदा चंके॥ ८॥

(१) **वृषा**=वह सुखों का वर्षक प्रभु **कस्य स्वित्**=किसी के ही **सवनं जुजुष्वान्**=यज्ञ को प्रीति से सेवन करता हुआ **अवगच्छति**–इसे अपना प्रिय जानता है। संसार में विरल व्यक्ति ही यज्ञों द्वारा प्रभु को प्रीणित करनेवाले होते हैं। (२) **कः उ स्वित्**=और कोई ही **इन्द्रं आचके**–उस प्रभु की प्राप्ति की कामनावाला होता है। मनुष्य सामान्यतः धन को चाहता है–धन को देनेवाले प्रभु को नहीं।

भावार्थ–संसार में विरल ही पुरुष यज्ञशील हैं और विरल ही प्रभुप्राप्ति की कामनावाले होते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

दान-सुवीर्य-उक्थ

कं ते दाना असक्षत वृत्रहुन्कं सुवीर्या। उक्थे क उं स्विदन्तमः॥ ९॥

(१) हे प्रभो! **कं**=किसी विरल व्यक्ति को ही **ते दाना**=तेरी दानवृत्तियाँ **असक्षत**=प्राप्त होती हैं, अर्थात् कोई विरल व्यक्ति ही आपकी उपासना करता हुआ दानवृत्तिवाला होता है। हे **वृत्रहन्**=वासनाओं को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **कं**=किसी एक आध को ही **सुवीर्या**=उत्तम वीर्य (पराक्रम) प्राप्त होते हैं। (२) **कः उ**=और कोई ही **उक्थे**=स्तोत्रों के होने पर **स्वित्**=निश्चय से **अन्तमः**=आपका अन्तिकतम होता है। ऐसे व्यक्ति कम ही हैं जो आपकी स्तुति करते हुए आपके उपासक बनते हैं।

भावार्थ–विरल ही व्यक्ति दानवृत्ति को अपना कर वासनाओं से ऊपर उठकर शक्तिशाली बनते हैं और प्रभुस्तवन करते हुए प्रभु के उपासक बनते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

पोषण के निमित्त सोम का सवन

अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते। तस्येहि प्र द्रवा पिब॥ १०॥

(१) **अयं सोमः**=यह सोम **मानुषे जने**=विचारशील मनुष्य में **पूरुषु**=पालन व पूरण की क्रियाओं के निमित्त **ते**=आपके द्वारा **सूयते**=उत्पन्न किया जाता है। विचारशील मनुष्य इसका रक्षण करते हुए अंग-प्रत्यंग का पोषण करते हैं। (२) हे प्रभो! आप **इहि**=आइए, **प्रद्रव**=प्रकर्षेण हमारे प्रति गतिवाले होइए और **तस्य पिब**=उस सोम का पान करिये। आपका उपासन ही हमें सोम के रक्षण के योग्य बनाएगा।

भावार्थ–प्रभु हमारे शरीरों में अंगों के पोषण के निमित्त सोम का उत्पादन करते हैं। प्रभु ही वस्तुतः इसका रक्षण भी करते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

शर्यणावान्-सुषोमा-आर्जीकीय

अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः। आर्जीकीये मदिन्तमः॥ ११॥

(१) हे प्रभो! **अयं**=यह **ते**=आपसे उत्पादित सोम **शर्यणावति**=(शृ हिंसायाम्) वासनाओं का संहार करनेवाले पुरुष में तथा **सुषोमायां**=अत्यन्त सौम्य स्वभाव की प्रजाओं में **अधि प्रियः**=आधिक्येन प्रीतिवाला होता है। (२) **आर्जीकीये**=सरलता से अलंकृत पुरुष में यह सोम **मदिन्तमः**=अतिशयेन हर्षजनक होता है।

भावार्थ–सोमरक्षण के लिए तीन बातें आवाश्यक हैं–(१) वासनाओं का संहार (२) सौम्यता (३) सरलता। सुरक्षित सोम प्रीति व आनन्द का जनक होता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

राधसे-मदाय-घृष्वये

तमद्य राधसे महे चारुं मदाय घृष्वये। एहीमिन्द्र द्रवा पिब॥ १२॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **तम्**=उस **चारुं**=सुन्दर अथवा चरणीय (भक्षणीय) सोम को **महे**=महान् **राधसे**=सफलता व ऐश्वर्य के लिए **पिब**=शरीर में ही पीनेवाला हो। (२) पिया हुआ यह सोम **मदाय**=आनन्द के लिए होता है तथा **घृष्वये**=शत्रुओं के घर्षण के लिए होता है। **एहि**=आओ द्रव=गतिमय जीवनवाले बनो और **ईम्**=इस समय इस सोम का पान करो। शरीर में ही इसे सुरक्षित करो।

भावार्थ–सुरक्षित सोम महान् साफल्य के लिए होता है। आनन्द को प्राप्त कराता है तथा शत्रुओं का घर्षण करता है।

अगले सूक्त के ऋषि देवता भी 'प्रागाथ काण्व' व 'इन्द्र' हैं–

६५. [पञ्चषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'सदा उपस्थित' प्रभु

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः। आ याहि तूयमाशुभिः॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यद्**=जब आप **प्राग्**=पूर्व में, **अपाक्**=पश्चिम में, **उदङ्**=उत्तर में **वा**=या **न्यग्**=दक्षिण में कहीं भी **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों से **हूयसे**=पुकारे जाते हैं। तो **तूयम्**=शीघ्र ही **आशुभिः**=शीघ्रगामी अश्वों से **आयाहि**=हमें प्राप्त होइए। (२) आपने ही तो हमारा रक्षण करना है। इस भवसागर में आप ही नाव हैं। इस जीवनयात्रा में आप ही रथ हैं।

भावार्थ—सर्वव्यापक प्रभु को हम पुकारते हैं तो वे शीघ्र ही हमारी पुकार को सुन उपस्थित होते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ज्ञानस्त्रोत, धर्म्ययुद्ध, अन्नभण्डार

यद्वा प्रस्त्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे। यद्वा समुद्रे अन्धसः॥ २॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार हे प्रभो! आप आराधकों को प्राप्त होते हो, और **यद् वा**=या तो **दिवः प्रस्त्रवणे**=ज्ञान के स्रोत में **मादयासे**=उन्हें आनन्दित करते हो अथवा **स्वर्णरे**=स्वर्ग को प्राप्त करानेवाले धर्म्ययुद्ध में उन्हें आनन्द प्राप्त कराते हैं। **यद्वा**=अथवा **अन्धसः समुद्रे**=अन्न के समुद्र में-अन्न के भण्डारों में उन्हें आनन्द देनेवाले होते हो। (२) प्रभु का आराधक ब्राह्मणवृत्ति का होने पर ज्ञान के स्रोत में तैरता-सा प्रतीत होता है। क्षत्रियवृत्ति का होकर यह आराधक धर्म्ययुद्धों में प्राणत्याग करता हुआ स्वर्ग को प्राप्त करता है। वैश्यवृत्ति का होने पर यह राष्ट्र के लिए अन्नसमुद्रों को जन्म देनेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु का उपासक 'ज्ञान, बल व धन' का भण्डार बनता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

भोजसे=पीतये

आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे। इन्द्र सोमस्य पीतये॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों से **त्वा आहुवे**=आपको पुकारता हूँ। जो आप **महाम्**=महान् हैं-पूजनीय हैं तथा **उरुं**=विशाल व सर्वव्यापक हैं। (२) आपको मैं इसप्रकार पुकारता हूँ **इव**=जैसे **भोजसे**=पालन व पोषण के लिए **गाम्**=गौ को पुकारते हैं। गौ दूध देकर हमारा पालन पोषण करती है, इसी प्रकार प्रभु ज्ञानदुग्ध प्राप्त कराके हमारा रक्षण करते हैं। हे इन्द्र! मैं आपको **सोमस्य पीतये**=सोम के पान के लिए पुकारता हूँ। आपकी आराधना ही सोम का रक्षण करके हमारे ज्ञान की वृद्धि का कारण बनती है।

भावार्थ—प्रभु महान् हैं-सर्वव्यापक हैं। ज्ञानदुग्ध देकर प्रभु हमारा रक्षण करते हैं। सोमरक्षण द्वारा प्रभु ही हमारी ज्ञानाग्नि को दीप्त करते हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

महिमा+महस्

आ त इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः। रथे वहन्तु बिभ्रतः॥ ४॥

(१) हे इन्द्र! सब बल के कर्मों को करनेवाले प्रभो! **ते महिमानं**=आपकी महिमा को **हरयः**=ये ज्ञानेन्द्रियरूप अश्व **आवहन्तु**=प्राप्त कराएँ। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ सर्वत्र आपकी महिमा को देखें। (२) हे **देव**=इस संसाररूप क्रीड़ा के करनेवाले प्रभो! **ते महः**=आपके तेज को **रथे**

बिभ्रतः=शरीररूप रथ में धारण करते हुए ये कर्मेन्द्रियरूप अश्व **वहन्तु**=हमें लक्ष्यस्थान पर पहुँचानेवाले हों।

भावार्थ—हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ सर्वत्र प्रभु की महिमा को देखें और हमारी कर्मेन्द्रियाँ प्रभु की शक्ति का धारण करनेवाली हों।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

महिमा-बल-ऐश्वर्य

इन्द्र॑ गृणी॒ष उ॑ स्तुषे म॒हाँ उ॒ग्र ई॑शान॒कृत्। एहि॑ नः सु॒तं पिब॑॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=सब बल के कर्मों को करनेवाले प्रभो! **गृणीषे**=आप ही इस रूप में कहे जाते हो कि **महान्**=आप पूजनीय व सर्वव्यापक हैं, **उग्रः**=उद्गूर्ण बलवाले हैं—बढ़े हुए बलवालें हैं, **ईशानकृत्**=सब ऐश्वर्यों के करनेवाले हैं। (२) हे इन्द्र! मैं **उ**=निश्चय से **स्तुषे**=आपका स्तवन करता हूँ। आप **नः एहि**=हमें प्राप्त होइए और **सुतं पिब**=हमारे अन्दर उत्पन्न हुए-हुए सोम का पान करिये। इस सोमरक्षण द्वारा ही हम 'महिमा-बल व ऐश्वर्य' को प्राप्त करनेवाले होंगे।

भावार्थ—उस 'महान्, उग्र, ईशानकृत्' प्रभु का स्मरण करते हुए हम सोम का रक्षण करें और 'महिमा, बल व ऐश्वर्य' को प्राप्त करने का प्रयत्न करें। मन में महिमा, शरीर में बल व मस्तिष्क में ज्ञानैश्वर्य का हम धारण करें।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सुतावन्तः=प्रयस्वन्तः

सु॒ताव॑न्तस्त्वा व॒यं प्रय॑स्वन्तो हवामहे। इ॒दं नो॑ ब॒र्हिरा॒सदे॑॥ ६॥

(१) **सुतावन्तः**=उत्पन्न सोम का प्रशस्तरूप में रक्षण करनेवाले **वयं**=हम **त्वा**=हे प्रभो! आपको **हवामहे**=पुकारते हैं। (२) **प्रयस्वन्तः**=प्रशस्त सात्त्विक भोजनवाले बनकर हम आपको **नः**=हमारे **इदं बर्हिः**=इस वासनामलशून्य हृदयासन पर **आसदे**=बैठने के लिए पुकारते हैं।

भावार्थ—हम सुतावानम् व प्रयस्वान्—सोम का रक्षण करनेवाले व प्रशस्त सात्त्विक भोजन करनेवाले बनकर प्रभु की आराधना करें।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

शश्वतां साधारणः

यच्चि॒द्धि शश्व॑ता॒मसीन्द्र॒ साधा॑रण॒स्त्वम्। तं त्वा॑ व॒यं ह॑वामहे॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वं**=आप **यत्**=क्योंकि **चित् हि**=निश्चय से **शश्वतां**=अनेक व सनातनकाल से चली आ रही प्रजाओं के **साधारणः असि**=समानरूप से-निष्पक्षपात-पालक हैं, सो **तं त्वा**=उन आपको **वयं**=हम **हवामहे**=पुकारते हैं। (२) प्रभु की रक्षण व पालन-व्यवस्था में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं। सो प्रभु का आह्वान हम करते हैं, वहाँ किसी प्रकार के अन्याय का भय नहीं।

भावार्थ—प्रभु समानरूप से सबका पालन करनेवाले हैं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

उपासना व सोमरक्षण

इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः। जुषाण इन्द्र तत्पिब॥ ८॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **ते**=आपकी प्राप्ति के लिए **इदं**=इस **सोम्यं मधु**=सोमसम्बन्धी सारभूत वस्तु को **अद्रिभिः**=उपासनाओं के द्वारा (आ+दृ) **अधुक्षन्**-अपने शरीर में ही प्रपूरित करते हैं। (२) **जुषाणः**-हमारे प्रति प्रीतिवाले होते हुए आप अथवा हमारे से प्रीतिपूर्वक उपासना किये जाते हुए आप **तत् पिब**=उस सोम का रक्षण करिये।

भावार्थ-सोमरक्षण द्वारा ही प्रभु की प्राप्ति होती है। प्रभु की उपासना से ही सोमरक्षण का सम्भव होता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

ज्ञानदाता प्रभु

विश्वाँ अर्यो विपश्चितोऽति ख्यस्तूयमा गहि। अस्मे धेहि श्रवो बृहत्॥ ९॥

(१) हे इन्द्र! **अर्यः**=आप ही स्वामी हैं। **विश्वान्**=सब **विपश्चितः**-ज्ञानियों को **अतिख्यः**= आप ही अतशयेन ज्ञान से दीप्त करते हैं। आप **तूयम्**=शीघ्रता से **आगहि**=हमें प्राप्त होइए। (२) आप **अस्मे**=हमारे लिए **बृहत् श्रवः**=बहुत ज्ञान को **धेहि**=धारण कीजिए।

भावार्थ-सब ज्ञानियों को प्रभु ही ज्ञानदीप्त करते हैं। प्रभु का हम पर भी अनुग्रह हो और प्रभु हमें उत्कृष्ट ज्ञान को दें।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

पृषतीनां, हिरण्यवीनाम्

दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम्। मा देवा मघवा रिषत्॥ १०॥

(१) **मघवा**=वह ऐश्वर्यशाली प्रभु **मे**=मेरे लिए **पृषतीनां दाता**=सब धनों को प्राप्त करानेवाली कर्मेन्द्रियों को (कर्मेन्द्रियरूप अश्वों के) **दाता**=देनेवाले हैं। वे प्रभु **हिरण्यवीनां राजा**=हितरमणीय ज्ञान को प्राप्त करानेवाले ज्ञानेन्द्रिरूप गौओं के **राजा**=स्वामी हैं-हमारे लिए इनकी क्रियाओं को करनेवाले हैं। (२) **देवाः**-हे ज्ञानियो! **मघवा मा रिषत्**=प्रभु कभी हिंसित न हों। तुम कभी प्रभु का विस्मरण न करो। प्रभु ही तो तुम्हें उत्तम कर्मेन्द्रियों व उत्तम ज्ञानेन्द्रियों को प्राप्त कराएँगे।

भावार्थ-प्रभु हमारे लिए उत्तम इन्द्रियों को देते हैं। हम प्रभु को कभी भूलें नहीं।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

'चन्द्रं बृहत् पृथु शुक्रं' हिरण्यम्

सहस्रे पृषतीनामधि श्चन्द्रं बृहत्पृथु। शुक्रं हिरण्यमा ददे॥ ११॥

(१) **पृषतीनाम् सहस्रे अधि**=अपने को शक्ति से सिक्त करनेवाली कर्मेन्द्रियों के सहस्रसंख्याक धनों के ऊपर अर्थात् कर्मेन्द्रियों द्वारा सहस्रों धनों का अर्जन करने के साथ मैं ज्ञानेन्द्रियों के व्यापार के द्वारा उस **हिरण्यम्**=हितरमणीय ज्ञान को **आददे**=ग्रहण करता हूँ जो **बृहत्**=(बृहि वृद्धौ)

शक्तियों की वृद्धि का कारणभूत हैं, **पृथु**=हृदय को विशाल बनानेवाला है और इस प्रकार **चन्द्रं**=आह्लादजनक है और **शुक्रं**=पवित्र जीवन को देनेवाला है। (२) कर्मेन्द्रियों के व्यापार द्वारा–श्रम द्वारा–शतशः धनों का अर्जन आवश्यक है।

भावार्थ–हम श्रम द्वारा धनों का अर्जन करते हुए हितरमणीय ज्ञान का उपादान करें जो हमारे जीवन को बढ़ी हुई शक्तियोंवाला, विशाल हृदयवाला व पवित्र बनाता है।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उत्कृष्ट ज्ञानधन

नपा॑तो दु॒र्गह॑स्य मे स॒हस्रे॑ण सु॒राध॑सः। श्रवो॑ दे॒वेष्व॑क्रत॥ १२॥

(१) **नपातः**=न गिरने देनेवाले (न पातयति इति)–पापों में फंसने के बचानेवाले, **सहस्रेण**=शतशः धनों से **दुर्गहस्य**=दुर्ग्राह्य–धनों के द्वारा अप्राप्य **मे**=मेरे **सुराधसः**=उत्तम ज्ञानरूप ऐश्वर्य का **श्रवः**=श्रवण **देवेषु**=माता, पिता व आचार्यरूप देवों की समीपता में **अक्रत**=करो। (२) ज्ञानरूप धन इन बाह्य धनों के द्वारा अप्राप्य हैं। यह तो नम्रता, जिज्ञासा व बड़ों की सेवा से ही प्राप्त होता है। इस ज्ञान के लिए हम बड़ों की उपासना करें। उनकी समीपता में ही यह ज्ञान प्राप्त होगा।

भावार्थ–प्रभु से दत्त वेदज्ञान हमारा रक्षक है। यह धनों से प्राप्य नहीं। देवों की शुश्रूषा से ही यह प्राप्त होता है।

देवों की उपासना से इस ज्ञान का संख्यान (सम्यग् दर्शन) करनेवाला 'कलि' अगले सूक्त का ऋषि है। यह 'प्रागाथ' प्रभु के गुणों का गायन करनेवाला होता हुआ 'इन्द्र' नाम से प्रभु का उपासन करता है–

६६. [षट्षष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

भरं न कारिणम्

तरो॑भिर्वो वि॒दद्व॑सु॒मिन्द्रं॑ स॒बाध॑ ऊ॒तये॑। बृ॒हद्गाय॑न्तः सु॒तसो॑मे अध्व॒रे हु॒वे भरं॒ न का॒रिण॑म्॥ १॥

(१) **तरोभिः**=अतिशयेन वेगवाले (बलसम्पन्न) इन्द्रियाश्वों के द्वारा **वः**=तुम्हारे लिए **विदद्वसुं**=धनों को प्राप्त करानेवाले **इन्द्रं**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **सबाधः**=काम–क्रोध आदि का बाधन करनेवाले उपासक **बृहद् गायन्तः**=खूब ही गाते हैं। यह प्रभु का गायन ही उन्हें उत्तम इन्द्रियों को प्राप्त कराके वसु के सम्पादन में समर्थ करता है। (२) मैं भी **सुतसोमे**=जिसमें सोम का (वीर्य का) सम्पादन किया गया है, उस **अध्वरे**=जीवनयज्ञ में **हुवे**=उस प्रभु को इस प्रकार पुकारता हूँ, **न**=जैसे **कारिणं**=हितकरणशील **भरं**=भर्ता (पति) को गृह के लोग बुलाते हैं। प्रभु ने ही तो हमारा रक्षण करना है। इस रक्षण के हेतु से ही प्रभु ने शरीर में सोम की स्थापना की है।

भावार्थ–प्रभु उपासक को वेगवान् इन्द्रियाश्वों के द्वारा वसु के अर्जन के योग्य बनाते हैं। प्रभु का हम स्मरण करते हैं। प्रभु ही हमारे हित करनेवाले पालक व पोषक हैं।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

शशमानाय सुन्वते जरित्रे

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदे सुशिप्रमन्धसः।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम्॥ २॥

(१) **यं**=जिस **सुशिप्रं**=शोभन शिरस्त्राणवाले सर्वशक्तिमान् प्रभु को **दुध्राः**=दुर्धर अर्थात् बड़े-बड़े शक्तिशाली भी **न वरन्ते**=रोक नहीं सकते **स्थिरा मुरः**=स्थिर शत्रुमारक बली भी **न**=रोक नहीं पाते, वे प्रभु वे हैं **यः**=जो **अन्धसःमदे**=सोमपानजनित उल्लास में **शशमानाय**=प्लुत गतिवाले-स्फूर्ति से कार्य करनेवाले, **सुन्वते**=यज्ञशील **उक्थ्यं**=स्तुत्य प्रभु का **जरित्रे**=स्तवन करनेवाले के लिए **आदृत्य**=आदरपूर्वक **दाता**=सब कुछ देनेवाले हैं। प्रभु इस स्तोता को सम्मान भी प्राप्त कराते हैं, धन भी।

भावार्थ—प्रभु का वारण 'असुर, देव, मनुष्य' कोई भी नहीं कर पाते—'न दुध्र, न स्थिर और न मुर्'। ये प्रभु सोम का रक्षण करनेवाले, अतएव उल्लासमय, शीघ्र गतिवाले यज्ञशील स्तोता को मानसहित धन प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

'शक्र हिरण्यय' प्रभु

यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः।
स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृतिमिन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा॥ ३॥

(१) **यः**=जो प्रभु **शक्रः**=सर्वशक्तिमान् हैं, **मृक्षः**=अतिशयेन शुद्ध हैं, **अश्व्यः**=उत्तम इन्द्रियाश्वों के देनेवाले हैं, **वा**=अथवा **यः**=जो **कीजः**=(किम् इदानीं जातः) अद्भुत **हिरण्यय**=हितरमणीय ज्योतिवाले हैं। (२) **सः**=वे **इन्द्रः**=सर्वशत्रुसंहारक प्रभु **वृत्रहा**=वासनाओं को विनष्ट करने वाले हैं। ये प्रभु ही **उर्वस्य गव्यस्य**=हमें पापों से बचानेवाले वेदरूप ज्ञान की वाणियों के समूह की **आवृतिम्**=आवृति को **अपरेजयति**=कम्पित करके दूर करते हैं, अर्थात् हमारे लिए इन ज्ञान की वाणियों के समूह को प्रकट करते हैं।

भावार्थ—प्रभु शक्तिमान्, शुद्ध उत्तम इन्द्रियाश्वों के दाता व अद्भुत ज्योतिर्मय हैं। वे वासना को विनष्ट करके हमारे लिए वेदवाणियों के समूह प्रकट करते हैं।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराट् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

दाश्वान् को प्रभु देते हैं

निखातं चिद्यः पुरुसंभृतं वसूदिद्वपति दाशुषे।
वज्री सुशिप्रो हर्यश्व इत्करदिन्द्रः क्रत्वा यथा वशत्॥ ४॥

(१) **यः**=जो प्रभु **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिए—दानशील पुरुष के लिए **निखातं चित्**=भूमि में गड़े हुए भी **पुरु संभृतं**=खूब ही सञ्चित **वसु**=धन को **इत्**=निश्चय से **उद्वपति**=उखाड़कर प्राप्त करते हैं। दाश्वान् को धन की कमी नहीं रहती। (२) वह **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **वज्री**=वज्रहस्त हैं—दुष्टों के लिए हाथ में वज्र लिये हुए हैं। **सुशिप्रः**=शोभन शिरस्त्राणवाले हैं। **हर्यश्वः**=तेजस्वी इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले हैं। वे प्रभु **यथा वशत्**=जैसा चाहते हैं वैसा ही **क्रत्वा**=प्रज्ञान व शक्ति से **करत्**=करते हैं।

भावार्थ—दाश्वान् पुरुष के लिए प्रभु भूमि में गड़े खानों में स्वर्ण आदि तथा खेतों में अन्नरूप धन को प्राप्त करते हैं। दुष्टों को दण्डित करते हुए वे प्रभु प्रज्ञान व शक्ति से सब बातों को ठीक प्रकार करनेवाले हैं।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

यज्ञ व स्तोत्र

यद्वावन्थ पुरुष्टुत पुरा चिच्छूर नृणाम्। वयं तत्त इन्द्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः॥ ५॥

(१) हे **पुरुष्टुत**=पालक व पूरक स्तुतिवाले **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! आप **यद् वावन्थ**=जो चाहते हैं। वह **नृणां**=मनुष्यों के **पुराचित्**=पालन व पूरण की दृष्टि से ही चाहते हों। (२) **तत्**=सो हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **वयं**=हम **ते**=आपके लिए **तुरं**=शीर्घ ही **यज्ञं**=यज्ञ को तथा **उक्थं वचः**=स्तुतिवचनों को **संभरामसि**=सम्यक् भृत करते हैं। इन यज्ञों व स्तोत्रों के द्वारा हम आपके प्रिय बन पाते हैं। यज्ञों से हम, भोगासक्त होने से बचे रहते हैं, तथा ये स्तोत्र हमारे सामने जीवन के लक्ष्य को उपस्थित करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु सदा हमारे पालन व पूरण को चाहते हैं। हम यज्ञों व स्तोत्रों द्वारा प्रभु के प्रिय बनते हैं।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराट् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

ब्रह्मकृते सुन्वते

सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युक्ष सोमपाः।
त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्ठः सुन्वते भुवः॥ ६॥

(१) हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले, **वज्रिवः**=वज्रहस्त, **द्युक्ष**=ज्योति में निवास करनेवाले प्रभो! आप **सोमेषु**=सोमकणों के शरीर में सुरक्षित होने पर **सचा**=हमारे साथ होते हैं। सोमरक्षण द्वारा हम आप को प्राप्त करते हैं। वस्तुतः हे प्रभो! आप ही **सोमपाः**=हमारे सोम का रक्षण करते हो—आपके स्तवन से सोम का रक्षण करते हुए हम **मदाय**=उल्लास के लिए होते हैं। सुरक्षित सोम हमें उल्लसित जीवनवाला बनाता है। (२) **त्वम् इत् हि**=आप ही निश्चय से **ब्रह्मकृते**=ज्ञान का सम्पादन करनेवाले **सुन्वते**=यज्ञशील पुरुष के लिए **काम्यं वसु**=कमनीय धन को **देष्ठः भुवः**=अधिक-से-अधिक देनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु सोमरक्षण द्वारा हमारे जीवन को उल्लासमय बनाते हैं। ज्ञानी यज्ञशील पुरुष के लिए प्रभु ही कमनीय धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

स्तवन-सोमरक्षण-प्रभुप्राप्ति

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम्। तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते॥ ७॥

(१) **वयं**=हम **एनं**=इस **वज्रिणम्**=वज्रहस्त प्रभु को **इह**=इस जीवन में **इदा**=अब और **ह्यः**=भूतकाल में भी (गतदिवस में भी) **अपीपेम**=आप्यायित करते हैं। स्तोत्रों के द्वारा हम प्रभु की भावना को अपने अन्दर बढ़ाते हैं। (२) **तस्मा उ**=उस प्रभु को प्राप्ति के लिए ही **अद्य**=आज **समना**=संग्राम के द्वारा—वासनाओं को पराजित करके **सुतं भरा**=सोम का सम्भरण करते हैं। वे प्रभु **नूनं**=निश्चय से **श्रुते**=शास्त्रश्रवण के होने पर **भूषत**=प्राप्त होते हैं (आभवतु=आगच्छतु)।

भावार्थ—हम सदा प्रभु का स्तवन करें। स्तुति द्वारा वासनाओं को पराजित करके सोम का रक्षण करें। सोमरक्षण द्वारा तीव्रबुद्धि होकर प्रभुदर्शन करनेवाले बनें।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

चित्रया धिया (आगहि)

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया॥ ८॥

(१) **वारणः**=सबके मार्गों को रोकनेवाला **वृकः चित्**=स्तेन (चोर) भी तथा **उरामथिः**=मार्ग में जानेवालों का हिंसक डाकू भी **अस्य वयुनेषु**=इस प्रभु के प्रज्ञानों के होने पर—कहीं अकस्मात् सत्संग में प्रभु का उपदेश सुनने पर **आभूषति**=आनुकूल्य को प्राप्त करता है। प्रतिकूल कर्मों से निवृत्त हो जाता है। (२) **सः**=वे हे **इन्द्र**—परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **इमं नः**=इस हमारे **स्तोमं**=स्तवन को **जुजुषाणः**=प्रीतिपूर्वक ग्रहण करते हुए **चित्रया धिया**=चेतना को देनेवाली बुद्धि के साथ **प्र आगहि**=प्रकर्षेण प्राप्त होइए।

भावार्थ—प्रभुविषयक उपदेश चोरों व डाकुओं के जीवन में भी परिवर्तन लानेवाला होता है। प्रभु हमारे स्तोम से प्रसन्न हों और हमारे लिए चेतनादायिनी बुद्धि को दें।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

'सर्वाणि बलकर्माणि इन्द्रस्य'

कदू न्व१स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम्। केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा॥ ९॥

(१) **कत् उ नु**=कौन-सा निश्चय से **पौंस्यं**=पौरुष का काम—वृत्र आदि का विनाश रूप कर्म, **अस्य**=इस **इन्द्रस्य**=परमैश्वर्यशाली प्रभु का **अकृतम् अस्ति**=न किया हुआ है? अर्थात् वृत्रवध आदि सब पौरुष के कर्म इस प्रभु द्वारा ही तो किये जाते हैं। (२) **केन उ नु श्रोमतेन**=और निश्चय से किस श्रावणीय पौरुष के कार्य से **न शुश्रुवे**=वे प्रभु सुने नहीं जाते। **जनुषः परि**=जन्म से लेकर ही, अर्थात् अब ही उस प्रभु का हृदयों में कुछ प्रादुर्भाव होता है, तभी ही वे प्रभु **वृत्रहा**=वासना का विनाश करनेवाले हैं।

भावार्थ—वासनाविनाश आदि सब शक्तिशाली कर्मों को करनेवाले प्रभु ही हैं। वे प्रभु हमारे हृदयों में प्रादुर्भूत होते ही सब शत्रुओं का विनाश कर देते हैं।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

बेकनाटान् अहर्दृशः

कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम्।
इन्द्रो विश्वान्बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणीँरभि॥ १०॥

(१) **कद् उ**=कब ही **अस्य**=इस इन्द्र के **महीः**=महान् **तविषीः**=बल **अधृष्टाः**=शत्रुओं के धर्षक नहीं होते? **कद् उ**=और कब **वृत्रघ्नः**=इस वृत्रविनाशक इन्द्र का **अस्तृतम्**=हन्तव्य शत्रु अहिंसित होता है? अर्थात् इन्द्र का बल सदा शत्रुओं का धर्षण करनेवाला होता है, वह हन्तव्य को मारता ही है। (२) **उत**=और **इन्द्रः**=यह शत्रुविद्रावक प्रभु **विश्वान्**=सब **अहर्दृशः**=दिन ही दिन को देखनेवाले—पाप के फलरूप भविष्य में आनेवाली रात्रि को न देखनेवाले **बेकनाटान्**='दो और एक' इन शब्दों से नचानेवाले **पणीन्**=एक का दो करके लेनेवाली लुब्धक पणियों को

क्रत्वा=अपनी शक्ति से व प्रज्ञान से **अभि**=अभिभूत करता है।

भावार्थ–प्रभु की शक्ति अनन्त है। प्रभु अपने प्रज्ञान व बल से लुब्धकों को विनष्ट करते हैं। केवल इहलोक को देखनेवाले 'To look after' के सिद्धान्तवाले प्रभु द्वारा विनष्ट किये जाते हैं।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

भृतिं न

वयं घा ते अपूर्व्येन्द्र ब्रह्माणि वृत्रहन्।
पुरूतमासः पुरुहूत वज्रिवो भृतिं न प्र भरामसि॥ ११॥

(१) हे **अपूर्व्य**=अद्भुत **वृत्रहन्**=वासना के विनाशक **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **वयं**=हम **घा**=निश्चय से **ते**=आपके लिए **ब्रह्माणि**=स्तोत्रों को व ज्ञान की वाणियों को **प्रभरामसि**=प्रकर्षेण धारण करते हैं। (२) हे **पुरुहूत**=पालक व पूरक हैं आह्वान जिसका, ऐसे **वज्रिवः**=वज्रहस्त प्रभो! **पुरुतमासः**=अधिक-से-अधिक पालन व पूरण करनेवाले हम आपकी स्तुति को **भृतिं न**=भृति के समान धारण करते हैं (भ्रियते यया)। यह स्तुति हमारा धारण करनेवाली है, यह जानकर इसमें हम प्रवृत्त होते हैं।

भावार्थ–प्रभु का स्तवन हमारा भरण करनेवाला हैं। सो इसे हम भृति के समान धारण करते हैं।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

तुविकूर्मी प्रभु

पूर्वीश्चिद्धि त्वे तुविकूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः।
तिरश्चिदर्यः सवना वसो गहि शविष्ठ श्रुधि मे हवम्॥ १२॥

(१) हे **तुविकूर्मिन्**=महान् कर्मोंवाले प्रभो! **पूर्वीः**=पालन व पूरण करनेवाले **आशसः**=आशंसन **चित् हि**=निश्चय से **त्वे**=आप में ही स्थित हैं। आपके आशंसन (स्तवन) हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं। हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **ऊतयः**=सब रक्षण **हवन्ते**=आपको ही पुकारते हैं। जब रक्षण की आवश्यकता होती है, तो सब कोई आपको ही पुकारता है। (२) हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **तिरः चित्**=तिरोहित होते हुए भी आप **अर्यः**=सबके स्वामी हैं। **सवना आगहि**=हमारे जीवनयज्ञों में आप प्राप्त होइए। हे **शविष्ठ**=अतिशयेन शक्तिशालिन् प्रभो! **मे**=मेरी **हवं**=पुकार को **श्रुधि**=सुनिये।

भावार्थ–प्रभु के आशंसन हमारा पूरण करनेवाले हैं, प्रभु में ही सब रक्षण हैं, तिरोहित रूप से सर्वत्र विद्यमान वे प्रभु ही स्वामी हैं। वे हमारे जीवनयज्ञों में प्राप्त होते हैं। प्रभु हमारी पुकार को सुनते हैं और हमें बल प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'मर्डिता' प्रभु

वयं घा ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि।
नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता॥ १३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वयं**=हम **घा**=निश्चय से **ते**=आपके हैं। सो **विप्राः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले हम **इत् उ**=निश्चय से **त्वे**=आप में **अपिष्मसि**=हैं। हम सदा अपने को आपकी गोद में अनुभव करते हैं। (२) हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वद् अन्यः**=आपसे भिन्न **कश्चन**=कोई भी **मर्डिता**=हमें सुखी करनेवाला **नहि अस्ति**=नहीं है।

भावार्थ—हम प्रभु के हों। प्रभु की गोद में निवास करें। प्रभु से भिन्ना कोई हमें सुखी करनेवाला नहीं हैं।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'दारिद्र्य-भूख-निन्दा' से बचाव

त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधोऽभिशस्तेरव स्पृधि।
त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित्॥ १४॥

(१) हे **शचिष्ठ**=शक्तिशालिन् प्रभो! **त्वं**=आप **नः**=हमें **अस्याः**=इस **अमतेः**=(Poverty) दारिद्र्य से **उत**=और **क्षुधः**=भूख से तथा **अभिशस्तेः**=निन्दा से **अवस्पृधि**=पृथक् करिये। (२) हे प्रभो! आप ही **गातुवित्**=मार्ग को जाननेवाले हैं। सो **त्वं**=आप **नः**=हमें **ऊती**=रक्षण के हेतु से **तव**=आपकी **चित्रया धिया**=ज्ञान को देनेवाली बुद्धि से **शिक्षा**=शिक्षित करिये व शक्तिशाली बनाने की कामना कीजिए। आपसे उत्तम बुद्धि को पाकर हम अपना रक्षण कर पाएँ।

भावार्थ—प्रभु हमें दारिद्र्य, भूख व निन्दा से बचाएँ। वह मार्ग का ज्ञान देनेवाले प्रभु हमें चेतना देनेवाली बुद्धि को प्राप्त कराके शिक्षित करें।

ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

'कलि' का निर्भय जीवन

सोम इद्वः सुतो अस्तु कलयो मा बिभीतन।
अपेदेष ध्वस्मायति स्वयं घैषो अपायति॥ १५॥

(१) हे **कलयः**=ज्ञान का सम्यग् दर्शन करनेवाले तत्त्वज्ञानी पुरुषो! **इत्**=निश्चय से **सोमः**=सोम (वीर्य) **वः**=आपका **सुतः**=सम्पादित किया गया **अस्तु**=हो—आप शरीर में सोम का रक्षण करनेवाले बनो और **मा बिभीतन**=सब प्रकार के भयों से ऊपर उठो। (२) सोम के रक्षण के होने पर **एषः**=यह **ध्वस्मा**=ध्वंसक तत्त्व **इत्**=निश्चय से **अप अयति**=दूर होता है। **एषः**=यह **घा**=निश्चय से **स्वयं**=अपने आप ही **अप अयति**=दूर हो जाता है।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष सोम का रक्षण करते हैं। यह सोमरक्षण ही उन्हें निर्भय बनाता है। यही उनके जीवन से ध्वंसक तत्त्वों को दूर करता है।

सब ध्वंसक तत्त्वों के दूर होने से इसका जीवन आनन्दमय होता है (मदी हर्षे), यह 'मत्स्य' कहलाता है। इसी आनन्दमयता के कारण यह 'सम्मद' का सन्तान व 'साम्मद' कहलाता है। सबका आदरणीय होने से 'मान्य' है। स्नेह व निर्द्वेषता को अपनाने से 'मैत्रावरुणि' है। यह प्रार्थना करता है कि—

६७. [सप्तषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाःङ्क

देवता—आदित्याःङ्क **छन्दः**—निचृद् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

आदित्यों द्वारा रक्षण

त्यान्नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान्याचिषामहे। सुमृळीकाँ अभिष्टये॥ १ ॥

(१) अपने जीवन में ऊँचे-से-ऊँचे ज्ञान का आदान करनेवाले 'आदित्य' कहलाते हैं। ये आदित्य क्षतों से त्राण करनेवाले होते हुए 'क्षत्रिय' कहे जाते हैं। **नु**=अब **त्यान्**=उन **आदित्यान्**=ज्ञान का आदान करनेवाले **क्षत्रियान्**=बलसम्पन्न पुरुषों से हम **अव याचिषामहे**-रक्षण की याचना करते हैं। ये आदित्य क्षत्रिय सब क्षतों से हमें बचानेवाले हों। (२) **सुमृडीकान्**=उत्तम सुख को प्राप्त करनेवाले इन आदित्यों को **अभिष्टये**=इष्ट प्राप्ति के लिए हम प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ-आदित्य विद्वानों का सम्पर्क हमें रक्षण व सुख प्राप्त कराता है।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाःङ्क

देवता—आदित्याःङ्क **छन्दः**—निचृद् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

स्नेह, निर्द्वेषता व संयम

मित्रो नो अत्यंहतिं वरुणः पर्षदर्यमा। आदित्यासो यथा विदुः॥ २ ॥

(१) **मित्रः**=स्नेह की देवता, **वरुणः**=निर्द्वेषता की देवता तथा **अर्यमा**=संयम की देवता ये सब **नः**=हमें **अंहतिं अतिपर्षत्**=पाप से पार ले जाएँ='स्नेह, निर्द्वेषता व संयम' को अपनाकर हम निष्पाप बनें। (२) **आदित्यासः**=ऊँचे-से-ऊँचे ज्ञान का आदान करनेवाले ज्ञानी पुरुष भी **यथा**=जैसे **विदुः**=ठीक जानें, उस प्रकार हमें पापों से दूर करें। आदित्यों के रक्षण में हमारा जीवन निष्पाप बने।

भावार्थ-हम स्नेह, निर्द्वेषता व संयम को अपनाते हुए निष्पाप बनें। ऊँचे-से=ऊँचे ज्ञान का ग्रहण करते हुए पवित्र जीवनवाले बनें।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाःङ्क

देवता—आदित्याःङ्क **छन्दः**—निचृद् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

चित्रं उक्थ्यं 'वरूथम्'

तेषां हि चित्रमुक्थ्यं१ वरूथमस्ति दाशुषे। आदित्यानामरंकृते॥ ३ ॥

(१) **तेषां**=उन **आदित्यानां**=ज्ञान व गुणों का आदान करनेवालों का **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिए-अपना अर्पण करनेवाले मनुष्य के लिए तथा **अरङ्कृते**=खूब क्रियाशीलता द्वारा अपने जीवन को अलंकृत करनेवाले पुरुष के लिए **हि**=निश्चय से **चित्रं**=अद्भुत **उक्थ्यं**=प्रशंसनीय **वरूथम्**=धन **अस्ति**=है। (२) ये आदित्य इन दाश्वान् अरङ्कृत पुरुषों को अद्भुत प्रशंसनीय धन प्राप्त कराते हैं। जो विद्यार्थी आचार्य के प्रति अपना अर्पण कर देता है व पुरुषार्थवाला होता है, वह उत्कृष्ट ज्ञान धन को प्राप्त करता है।

भावार्थ-हम उत्कृष्ट ज्ञानियों के सम्पर्क में पुरुषार्थशील होते हुए ऊँचे-से-ऊँचे ज्ञान को प्राप्त करें।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'स्नेह, निर्द्वेषता व संयम' का महान् रक्षण

महि वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन्। अवांस्या वृणीमहे॥ ४॥

(१) हे **वरुण**=निर्द्वेषता के देव, **मित्र**=स्नेह की देवते तथा **अर्यमन्**=संयम के देव! **महतां वः**=महान् आपका **अवः**=रक्षण भी **महि**=महान् है। (२) हे मित्र, वरुण व अर्यमन्! हम आपके **अवांसि**=रक्षणों को **आवृणीमहे**=सर्वथा वरते हैं।

भावार्थ–हमें सदा 'स्नेह, निर्द्वेषता व संयम' का महान् रक्षण प्राप्त हो।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

हवनश्रुत् आदित्य

जीवान्नो अभि धेतनादित्यासः पुरा हथात्। कद्ध स्थ हवनश्रुतः॥ ५॥

(१) **आदित्यासः**=हे गुणों का आदान करानेवाले आदित्यो! आप **पुरा हथात्**=मृत्यु से पूर्व ही **जीवान् नः**=जीवित हम लोगों को **अभिधेतन**=(अभिधावत) प्राप्त होओ और हमारे जीवनों को शुद्ध बनाने की कृपा करो (धावु शुद्धौ)। (२) हे **हवनश्रुतः** हमारी पुकार को सुननेवाले आदित्यो! **कत् ह स्थ**=आप कहाँ हो? जहाँ भी आप हो, आप हमें शीघ्रता से प्राप्त होओ और हमारे जीवनों को शुद्ध बनाने का अनुग्रह करो।

भावार्थ–इस जीवन में हमें शीघ्र ही आदित्यों का सम्पर्क प्राप्त हो, ये आदित्य हमारे जीवनों को शुद्ध बनाएँ।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

श्रान्ताय सुन्वते

यद्वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः। तेना नो अधि वोचत॥ ६॥

(१) **यद्**=जो **वः**=आपका **श्रान्ताय**=श्रमशील व्यक्ति के लिए और **सुन्वते**=शरीर में सोम का सवन करनेवाले पुरुष के लिए **वरूथम्**=धन **अस्ति**=है, इसके लिए **यत्**=जो आपका **छर्दिः**=गृह है, **तेन**=उस धन व गृह के हेतु से **नः**=हमें **अधिवोचत**=आधिक्येन उपदेश हो। (२) आदित्य विद्वानों से ज्ञान को प्राप्त करके हम श्रमशील व सोम का रक्षण करनेवाले बनते हैं। ये श्रम व सोमरक्षण हमें उत्तम धन व गृहवाला बनाते हैं।

भावार्थ–आदित्य विद्वान् हमें ज्ञान देकर श्रम व सोमरक्षण का महत्त्व समझाते हैं। ये बातें हमें उत्तम धन व गृह प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'अद्भुतैनसः' आदित्याः

अस्ति देवा अंहोरुर्वस्ति रत्नमनागसः। आदित्या अद्भुतैनसः॥ ७॥

(१) हे **देवाः**=ज्ञानी पुरुषो! **अंहोः**=पापी पुरुष का **उरु अस्ति**=धन अत्यधिक है। यह पाप से खूब धन कमा ले लेता है-घर की इसे कमी नहीं रहती, पर **अनागसः**=निष्पाप पुरुष का ही **रत्नं अस्ति**=रमणीय धन होता है। सुपथ से कमाया गया धन ही जीवन में रमणीयता का कारण बनता है। (२) इसी से **आदित्यासः**=गुणों व ज्ञानों का आदान करनेवाले पुरुष **अद्भुत एनसः**=अभूतपाप होते हैं। ये कभी पाप में प्रवृत्त नहीं होते। पाप से ये धनार्जन नहीं करते।

भावार्थ-पाप से कमाया धन अधिक होता हुआ भी रमणीयता का साधक नहीं होता। आदित्य विद्वान् सदा पाप से परे रहते हैं।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सेतुः

मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि। इन्द्र इद्धि श्रुतो वशी॥ ८॥

(१) हे इन्द्र! **नः**=हमें **अयं**=यह **सेतुः**=विषयों का बन्धन **मा सिषेत्**=न बाँधे। हम विषयजाल में न जकड़े जाएँ। **महे**=महान् कार्यों के लिए यह बन्धन **नः**=हमें **परिवृणक्तु**=(परि-वर्जयतु) छोड़नेवाला हो। विषयों के बन्धन में बंधने पर हम कोई महान् कार्य नहीं कर पाते। (२) **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **इत् हि**-ही निश्चय से **श्रुतः**=शास्त्र ज्ञानवाला व **वशी**= सबको वश में करनेवाला है।

भावार्थ-हम विषयों के बन्धन में बंधने पर किसी महान् कार्य को नहीं कर पाते। स्वयं जितेन्द्रिय बनकर हम औरों को भी वश में कर पाते हैं।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पापजाल में न फंसना

मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः। देवा अभि प्र मृक्षत॥ ९॥

(१) हे **अविष्यवः देवाः**=हमारे रक्षण की कामनावाले देवो! **नः**=हमें **वृजिनानां रिपूणाम्**= हिंसक शत्रुओं के **मृचा**=हिंसक जाल से **मा अभिप्रमृक्षत**=हिंसित मत होने दो। (२) 'माता, पिता व आचार्य' रूप देवों के सम्पर्क में हम सदा पापों के जाल में फंसने से बचे रहें।

भावार्थ-हम पापियों के जाल में न फंसे।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अदिति (मही-देवी-सुमृडीका)

उत त्वामदिते मह्यहं देव्युप ब्रुवे। सुमृळीकामभिष्टये॥ १०॥

(१) **उत**=और हे **महि**=महनीय, **देवि**=प्रकाशमयी **अदिते**=स्वास्थ्य की देवते! **अहं**=मैं **त्वाम् उपब्रुवे**=तेरी ही आराधना करता हूँ-तुझे ही माँगता हूँ। (२) **सुमृडीकाम्**=उत्तम सुख को देनेवाली तुझ स्वास्थ्य की देवता को ही **अभिष्टये**=इष्ट प्राप्ति के लिए पुकारता हूँ।

भावार्थ-स्वास्थ्य ही हमारे जीवनों को महान् प्रकाशमय व सुखी बनाता है। ('मही-देवी-सुमृडीका' अदिति)

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'दीन, गभीर, उग्र'

पर्षि दी॒ने ग॑भी॒र आँ उ॒ग्रपु॑त्रे जिघांसतः। माकि॑स्तो॒कस्य॒ नो रिषत्॥ ११॥

(१) हे अदिते! स्वास्थ्य की देवते! तू **दीने**-ऊँची उड़ान लेनेवाले-उच्च लक्ष्यवाले **गभीरे**= गम्भीर वृत्तिवाले **उग्रपुत्रे**=हमारे तेजस्वी पुत्र के विषय में **जिघांसतः**=हिंसा की कामनावाले पुरुष से **आपर्षि**=रक्षण करती है। स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मनवाला यह हमारा सन्तान विनष्ट नहीं होता। (२) इस हिंसक का जाल **नः**=हमारे **तोकस्य**=सन्तान का **माकिः रिषत्**-हिंसन करनेवाला न हो।

भावार्थ-स्वास्थ्य हमारे सन्तानों को उच्च लक्ष्यवाला, गम्भीर प्रकृतिवाला व तेजस्वी बनाए। इन्हें कोई भी विषयजाल में न फंसा सके।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

उरुव्रजा=उरूची

अ॒ने॒हो न॑ उरुव्रज॒ उरू॑चि॒ वि प्रस॑र्तवे। कृ॒धि तो॒काय॑ जी॒वसे॑॥ १२॥

(१) हे **उरुव्रजे**-(व्रज गतौ) विशाल गति की देवते, अर्थात् क्रियाशीलते! तू **नः**=हमें **अनेहः**=निष्पाप **कृधि**=कर। हे **उरूचि**=(उरू अञ्च् पूजने) उस विशाल प्रभु की पूजन की वृत्ति! तू हमें **विप्रसर्तवे**=विशिष्ट व प्रकृष्ट गति के लिए करनेवाली हो। प्रभुपूजन करते हुए हम उत्तम गतिवाले हों। (२) हे उरुव्रजे व उरूचि! तू हमें **तोकाय**-उत्तम सन्तानों की प्राप्ति के लिए तथा **जीवसे**=दीर्घजीवन के लिए **कृधि**=कर।

भावार्थ-हम क्रियाशील बनकर निष्पाप हों। उस विशाल प्रभु का पूजन करते हुए प्रकृष्ट गतिवाले हों। हम उत्तम सन्तानों व दीर्घजीवन को प्राप्त करें।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

क्षितीनां मूर्धानः

ये मूर्धानः॑ क्षिती॒नामद॑ब्धासः॒ स्वय॑शसः। व्र॒ता रक्ष॑न्ते अ॒द्रुहः॑॥ १३॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार गतिशील व उपासक लोग वे होते हैं **ये**=जो **क्षितीनां मूर्धानः**=मनुष्यों के शिरोमणि बनते हैं। **अदब्धासः**=ये वासनाओं से हिंसित नहीं होते। **स्वयशसा**=अपने उत्तम कर्मों के कारण यशस्वी होते हैं। (२) ये व्रता **रक्षन्ते**=व्रतों का पालन करते हैं और **अद्रुहः**=किसी का द्रोह नहीं करते।

भावार्थ-पुरुषोत्तम वह है जो (१) वासनाओं से आक्रान्त नहीं होता (२) यशस्वी कर्मोंवाला है, (३) व्रतमय जीवनवाला, तथा (४) द्रोहशून्य है।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अदिति+आदित्य

ते न॑ आ॒स्नो वृका॑णा॒मादि॑त्यासो मु॒मोच॑त। स्ते॒नं ब॒द्धमि॑वादिते॥ १४॥

(१) **आदित्यासः**=हे आदित्य पुरुषो! सब अच्छाइयों को अपने अन्दर धारण करनेवाले पुरुषों! **ते**=वे आप **नः**=हमें भी **वृकाणाम्**=भेड़िए की तरह हमारा हिंसन करनेवाली अशुभवृत्तियों के **आस्नः**=मुख से-उनका शिकार हो जाने से **मुमोचत**=छुड़ाओ। (२) हे **अदिते**=स्वास्थ्य की देवते! तू **बद्धं स्तेनम् इव**=बंधे चोर के समान-वासनाओं से जकड़े हुए मुझको इनके बन्धन से छुड़ाने का अनुग्रह कर।

भावार्थ-हम स्वास्थ्य व सत्पुरुषों के संग से वासनाओं का शिकार होने से बचें।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अंहिसा+सुमति

अपो॒ षु ण॑ इ॒यं शरु॒रादि॑त्या॒ अप॑ दु॒र्मतिः। अ॒स्मदे॒त्वज॑घ्नुषी॥ १५॥

(१) हे **आदित्याः**=ज्ञानों व गुणों का आदान करनेवाले पुरुषो! **नः**=हमारे से **इयं**=यह **शरुः**=हिंसा की वृत्ति **उ**=निश्चय से **अप एतु**=दूर हो। हम औरों का हिंसन करनेवाले न बनें। (२) **दुर्मतिः**=दुर्बुद्धि भी **अस्मत्**=हमारे से **सु**=अच्छी प्रकार **अप एतु**=दूर हो। **अजघ्नुषी**=यह दुर्मति हमारा हिंसन करनेवाली न हो।

भावार्थ-आदित्यों के सम्पर्क में हम अहिंसक मनोवृत्तिवाले व सुमतिवाले बनें।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सुदानु आदित्य

शश्व॒द्धि वः॑ सुदानव॒ आदि॑त्या ऊ॒तिभि॑र्व॒यम्। पु॒रा नू॒नं बु॑भु॒ज्महे॑॥ १६॥

(१) हे **सुदानवः**=(दाप् लवने) बुराई का सम्यक् खण्डन करनेवाले **आदित्याः**= आदित्य विद्वानो! **वः**=आपके **ऊतिभिः**=रक्षणों के द्वारा **वयं**=हम **शश्वत् हि**=सर्वदा ही **पुरा**=पालन व पूरण के द्वारा **नूनं**=निश्चय से **बुभुज्महे**=पालन के लिए भोगों को प्राप्त करें (भुज पालनाभ्यवहारयोः)। (२) ज्ञानियों का सम्पर्क हमें भोगों में फंसने से बचाए। ये भोग हमारा पालन करनेवाले हों-हम इनके शिकार ही न हो जाएँ।

भावार्थ-ज्ञानियों का सम्पर्क हमें वासनाओं से बचाए। हम सांसारिक भोगों को पालन के दृष्टिकोण से ही ग्रहण करें।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

क्रियाशीलता व पापनिवृत्ति

शश्व॑न्तं॒ हि प्र॑चेतसः प्रति॒यन्तं॑ चि॒देन॑सः। देवाः॑ कृणु॒थ जी॒वसे॑॥ १७॥

(१) हे **प्रचेतसः**=प्रकृष्ट ज्ञानोंवाले **देवाः**-देववृत्ति के पुरुषो! **शश्वन्तं**=(शश प्लुतगतौ)-प्लुप्त गतिवाले-स्फूतवाले-सतत क्रियाशील और **हि**=निश्चय से **एनसः प्रतियन्तं चित्**=पाप से निवृत्त होते हुए इस उपासक को **जीवसे**=दीर्घजीवन के लिए **कृणुथ**=करिये। (२) ज्ञानी देवों का सम्पर्क हमें क्रियाशील व पापनिवृत्त बनाए। ऐसा बनाकर यह देवसम्पर्क हमें दीर्घजीवी बनाता है।

भावार्थ-हम ज्ञानी देवों के सम्पर्क में रहें। क्रियाशीलता व पाप की ओर न रुझानवाले बनें। इस प्रकार हम दीर्घजीवन को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

(नव्य) स्तुत्य ज्ञान

तत्सु नो नव्यं सन्यस आदित्या यन्मुमोचति। बन्धाद्बद्धमिवादिते॥ १८॥

(१) हे **आदित्याः**=ऊँचे-से-ऊँचे ज्ञान का आदान करनेवाले ज्ञानी पुरुषो! **नः**=हमारे लिए **तत्**-वह **नव्यं**=स्तुत्य (नु स्तुतौ) अथवा हमें गतिशील बनानेवाला (नव गतौ) ज्ञान **सुसंन्यसे**=सम्यक् सेवनीय हो **यत्**=जो **मुमोचति**=सब अशुभ कर्मों से छुड़ानेवाला होता है। (२) हे **अदिते**=स्वास्थ्य की देवते! मुझे वह ज्ञान प्राप्त हो जो **बद्धम् इव**=विषय-जाल से बद्ध-सा हुए-हुए मुझको **बन्धात्**=बन्धन से **मुमोचति**=छुड़ा देता है।

भावार्थ-हम आदित्यों के सम्पर्क में स्वस्थ रहते हुए उस ज्ञान को प्राप्त करें जो हमें विषयों के बन्धन से मुक्त करनेवाला हो।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

तत् तरः

नास्माकमस्ति तत्तर आदित्यासो अतिष्कदे। यूयमस्मभ्यं मृळत॥ १९॥

(१) **आदित्यासः**=हे आदित्य विद्वानो! **अस्माकं**=हमारा **तत्**=वह **तरः**=वेग व बल **न अस्ति**=नहीं है, जो **अतिष्कदे**=विषयों के बन्धन को लाँघने में समर्थ हो, अर्थात् हम स्वयं विषयासक्ति से ऊपर उठ जाएँगे, सो बात नहीं हैं। (२) हे आदित्यो! **यूयं**=आप ही **अस्मभ्यं मृडत**=हमारे लिए सुख को देनेवाले होओ। आपकी कृपा होगी तभी हम ज्ञान को प्राप्त करके इस वासनाजाल से मुक्त हो सकेंगे।

भावार्थ-आदित्य विद्वानों का सम्पर्क हमें उस ज्ञान के बल को प्राप्त कराएगा जो हमें वासनाजाल को तैरने में समर्थ करके सुखी करेगा।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः॥
देवता—आदित्याः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पूर्ण जीवन

मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः। पुरा नु जरसो वधीत्॥ २०॥

(१) हे **आदित्याः**=आदित्य विद्वानो! **नः**=हमें **विवस्वतः**=इस किरणोंवाले सूर्य की **कृत्रिमा**=क्रिया से निर्वृत्त (सम्पादित) **शरुः**=रोगकृमिनाशक **हेतिः**-शक्तिरूप शस्त्र **जरसः**

पुरा=पूर्ण वृद्धावस्था से पूर्व **नु**=निश्चय से **मा वधीत्**=मत नष्ट होने दे। (२) हम सूर्य के सम्पर्क में क्रियाशील जीवन बिताते हुए पूर्ण वृद्धावस्था को बितानेवाले हों। सूर्य की किरणों में रोगकृमिनाशक शक्ति है। उसका हम लाभ लें। इन सूर्य- किरणों के सेवन के लिए भी हम धूप में लेटे न रहें- क्रियाशील जीवन बिताएँ। यह मन्त्र 'कृत्रिमा' शब्द से व्यक्त किया गया है।

भावार्थ-सूर्य-किरणों के सम्पर्क में क्रियाशील जीवन हमें दीर्घजीवी बनाए।

ऋषिः—मत्स्यः साम्मदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धाःङ्क

देवता—आदित्याःङ्क **छन्दः**—निचृद् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

'द्वेष-कुटिलता-छल-पाप' से दूर

वि षु द्वेषो व्यंहुतिमादित्यासो वि संहितम्। विष्वग्वि वृहता रपः॥ २१॥

(१) हे **आदित्यासः**=आदित्य विद्वानो! आप **द्वेषः**=द्वेष को **सु**=सम्यक् **विवृहता**=हमारे जीवन में से उन्मूलित कर दो। **अंहतिम्**=कुटिलतारूप पाप को **वि**-हमारे से पृथक् करो। **संहितम्**=धोखा-छल, कपट आदि की वृत्ति को **वि**=हमारे से पृथक् करिये। (२) आप अनुग्रह करके **विष्वक्**=विविध क्रियाओं में आ जानेवाले **रपः**=दोषों को **विवृहत**=उन्मूलित करिये। हमारा जीवन आपके अनुग्रह से निर्दोष हो।

भावार्थ-आदित्यों का सम्पर्क हमें 'द्वेष-कुटिलता-छल व दोषों' से दूर करे।

इस निर्दोष जीवनवाले व्यक्ति को 'मेधा, बुद्धि व मेध=यज्ञ' ही प्रिय होते हैं, सो यह प्रियमेध कहलाता है। यह प्रार्थना करता है कि-

६८. [अष्टषष्टितमं सूक्तम्]

ऋषिः—प्रियमेधःङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—अनुष्टुप्ङ्क **स्वरः**—गान्धारःङ्क

ऊतये-सुम्नाय

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि। तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते॥ १॥

(१) हे **शविष्ठ**=अतिशयेन शक्तिशालिन् प्रभो! **ऊतये**=रक्षा के लिए **त्वा**=आपको इसप्रकार **आवर्तयामि**=अपने जीवन में आवृत्त करते हैं **यथा**=जैसे **रथं**=रथ को। प्रभुरूप रथ के द्वारा हम अपनी जीवनयात्रा को पूर्ण कर पाते हैं। (२) हे **सत्पते**=सज्जनों के रक्षक प्रभो! **तुविकूर्मिम्**=महान् कर्मोंवाले, **ऋतीषहं**=हिंसकों का अभिभव करनेवाले **इन्द्रं**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को (आपको) **सुम्नाय** (आवर्तयामसि)=सुख प्राप्ति के लिए आवृत्त करते हैं।

भावार्थ-इस जीवन में रक्षा के लिए व सुख के लिए हम प्रभु को अपने में आवृत्त करते हैं। प्रभुस्मरण हमें मार्गभ्रंश से बचाता है तथा सुख प्राप्त कराता है।

ऋषिः—प्रियमेधःङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

तुविशुष्म, तुविक्रतोः

तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते। आ पप्राथ महित्वना॥ २॥

(१) हे **तुविशुष्म**=महान् बलवाले! **तुविक्रतो**=महती प्रज्ञावाले (महान् प्रज्ञानवाले) **शचीवः**=शक्तिसम्पन्न कर्मोंवाले **मते**=मनन-बुद्धि व प्रज्ञानवाले प्रभो! आप **विश्वया**=सर्वत्र व्याप्त **महित्वना**=महिमा से **आपप्राथ**=सर्वत्र विस्तृत हो रहे हो। (२) प्रभु की महिमा से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड परिपूरित है। सूर्यादि पिण्डों में प्रभु की शक्ति व तेज का अनुभव होता है। ज्ञानियों में प्रभु

के ज्ञान की झलक मिलती है।

भावार्थ–सारा ब्रह्माण्ड प्रभु की महिमा को व्यक्त कर रहा है।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

हिरण्ययं वज्रम्

यस्य॑ ते महि॒ना म॒हः परि॑ ज्मा॒यन्त॑मी॒यतुः॑। हस्ता॒ वज्रं॑ हिर॒ण्यय॑म्॥ ३ ॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार वे आप अपनी महिमा से सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं **यस्य**=जिन **महः**=महान् **ते**=आपके **हस्ता**=हाथ **महिना**=अपनी महिमा से **ज्मायन्तं**=पृथिवी में सर्वत्र व्याप्त होते हुए **हिरण्ययं वज्रं**=ज्योतिर्मय वज्र को **परि ईयतुः**=चारों ओर गतिवाला करते हैं। (२) वज्रहस्त प्रभु अपने वज्र के द्वारा दुष्टों को दण्डित करते हुए हमारे भय का निवारण करते हैं। प्रभु के दण्ड से कोई भी पापी छूट नहीं सकता। यह प्रभु की अचूक दण्ड-व्यवस्था ही हम सबके सन्तोष व शान्ति का कारण बनती है।

भावार्थ–प्रभु अपने ज्योतिर्मय-दीप्त वज्र से दुष्टों को दण्डित करते हुए हमारा रक्षण करते हैं।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

प्रभु-आराधन का लाभ

वि॒श्वान॑रस्य व॒स्पति॒मना॑नतस्य॒ शव॑सः। ए॒वैश्च॑ चर्षणी॒नामू॒ती हु॑वे॒ रथा॑नाम्॥ ४ ॥

(१) **विश्वानरस्य**=सब मनुष्यों के हित करनेवाले **अनानतस्य**=शत्रुओं से न झुकाये जानेवाले **वः**=तुम्हारे **शवसः**=बल के **पतिम्**=रक्षक प्रभु को **हुवे**=पुकारता हूँ। वस्तुतः प्रभु का आराधन ही हमारे जीवन में उस बल का सञ्चार करता है जो सबका हित करनेवाला व अनानत (न झुकनेवाला) होता है। (२) **च**=और मैं प्रभु को **चर्षणीनाम् एवैः**=श्रमशील तत्त्वद्रष्टा पुरुषों की गतियों के हेतु से तथा **रथानाम् ऊती**=शरीररूप रथों के रक्षण के दृष्टिकोण से पुकारता हूँ। यह प्रभु का आराधन हमें ज्ञानयुक्त श्रमवाला करता है तथा सुरक्षित शरीररूप रथवाला बनाता है।

भावार्थ–हम प्रभु का आराधन करते हैं। यह आराधन (१) हमें शत्रुओं से झुकाये जानेवाले बल का स्वामी बनाता है, (२) श्रमशील ज्ञानी पुरुषों की क्रियाओं से युक्त करता है (३) हमारे शरीररथों का रक्षण करता है।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अभिष्टये-ऊतये

अ॒भिष्ट॑ये स॒दावृ॑धं॒ स्व॑र्मीळ्हेषु॒ यं नरः॑। नाना॒ हव॑न्त ऊ॒तये॑॥ ५ ॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार मैं उस प्रभु को पुकारता हूँ **यं**=जिस **सदावृध**=सदा से बढ़े हुए तथा उपासकों को बढ़ानेवाले प्रभु को **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **अभिष्टये**=इष्ट प्राप्ति के लिए **हवन्ते**=पुकारते हैं। (२) इस प्रभु को ही **स्वर्मीढेषु**=स्वर्ग के साधनभूत संग्रामों में **ऊतये**=रक्षण के लिए **नाना**=पृथक्-पृथक् क्षेत्रों में स्थित लोग नाना प्रकार से **हवन्ते**=पुकारते हैं।

भावार्थ–प्रभु ही हमारी इष्टप्राप्ति के लिए होते हैं। प्रभु ही संग्रामों में हमें विजयी बनाते हैं।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'परोमात्र' प्रभु

परोमात्रमृचीषममिन्द्रमुग्रं सुराधसम्। ईशानं चिद्वसूनाम्॥ ६॥

(१) मैं उस प्रभु को पुकारता हूँ जो **परोमात्रं**=मात्रा से परे हैं-माप से ऊपर हैं-जो देश व काल से मापे नहीं जा सकते-दिक् कालाद्यनवच्छिन्न हैं। **ऋचीषमम्**=स्तुति के समान हैं-जितनी भी स्तुति प्रभु की की जाए, प्रभु उससे न्यून नहीं अथवा स्तोता के लिए स्तुति के अनुरूप वे प्रभु हैं। **इन्द्रं**=सब शक्ति के कर्मों को करनेवाले हैं। **उग्रं**=तेजस्वी हैं और **सुराधसम्**=उत्तम ऐश्वर्यवाले हैं। (२) मैं उस प्रभु को पुकारता हूँ जो **चिद्**=निश्चय से **वसूनाम्**=सब वस्तुओं के **ईशानम्**=ईशान हैं।

भावार्थ-उस अनन्त, तेजस्वी, ऐश्वर्यशाली, वसुओं के स्वामी प्रभु का मैं स्मरण करता हूँ। मेरे लिए प्रभु उतने ही हैं जितना कि मैं उनका स्तवन कर पाता हूँ।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

महे राधसे-पीतये

तन्तमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये। यः पूर्व्यामनुष्टुतिमीशे कृष्टीनां नृतुः॥ ७॥

(१) **तं तं इन्द्रं इत्**=उसको और उस सर्वशक्तिमान् प्रभु को ही **महे राधसे**-महान् ऐश्वर्य के लिए तथा **पीतये**=अपने अन्दर सोम के रक्षण के लिए **चोदामि**=प्रेरित करता हूँ। हृदय में प्रभु का ही स्मरण करता हूँ। यह स्मरण हमें ऐश्वर्यशाली बनाता है और सोमरक्षण के योग्य करता है। (२) मैं उस प्रभु को अपने अन्दर प्रेरित करता हूँ **यः**=जो **पूर्व्याम्**=सर्वश्रेष्ठ **अनुष्टुतिं**=अनुदिन की जानेवाली स्तुति के **ईशे**=ईश हैं तथा **कृष्टीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के **नृतुः**=उत्कृष्ट कर्मफलों को प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ-प्रभु का हृदय में धारण हमें महान् ऐश्वर्य को प्राप्त कराएगा और हमारे में सोम का रक्षण करेगा। ये प्रभु ही श्रमशील व्यक्तियों को उस-उस कर्मफल को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

न मित्रता-न बल

न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः। नकिः शवांसि ते नशत्॥ ८॥

(१) हे **शवसान**=शक्तिशालिन् प्रभो! **यस्य ते**=जिन आपके **सख्यं**=मित्रभाव को **मर्त्यः**=विषयों के पीछे मरनेवाला मनुष्य **न आनंश**=नहीं प्राप्त करता, परिणामतः **ते शवांसि**=आपके बलों को भी **नकिः नशत्**=नहीं व्याप्त करता। (२) प्रभु का मित्र बननेवाला ही प्रभु की शक्ति से शक्तिसम्पन्न बनता है। प्रभु की मित्रता से दूर होकर प्रकृति में फंसकर वह अपनी शक्तियों को जीर्ण कर लेता है।

भावार्थ-हम प्रभु की मित्रता को प्राप्त करने के लिए यत्नशील हैं। ऐसा करने पर हम प्रभु की शक्ति से शक्तिसम्पन्न होंगे।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अप्सु सूर्ये

त्वोतासस्त्वा युजाप्सु सूर्ये महद्धनम्। जयेम पृत्सु वज्रिवः॥ ९॥

(१) हे **वज्रिवः**=क्रियाशीलतारूप वज्र (वज गतौ) को हाथ में लिये हुए प्रभो! **त्वा ऊतासः**=आपके द्वारा रक्षित हुए-हुए हम **त्वायुजा**=आप साथी के साथ **अप्सु**=रेतःकणरूप जलों के सुरक्षित होने पर अथवा कर्मों के होने पर और **सूर्ये**=ज्ञानसूर्य का उदय होने पर **पृत्सु**=संग्रामों में **महद्धनम्**=महान् धन को **जयेम**=जीतनेवाले हों। (२) प्रभु का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि हम क्रियाशील हों और ज्ञान का खूब संचय करें। ऐसी स्थिति में ही हम वासनाओं को संग्राम में जीत पाएँगें और महान् धन का विजय करेंगे।

भावार्थ—हे इन्द्र! तुझ से रक्षित होकर हम तेरी सहायता प्राप्त करके यज्ञ कर्मों को करें तथा संग्रामों में बहुत सारे धन को जीतें।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

यज्ञेभिः=गीर्भिः

तं त्वा॑ य॒ज्ञेभि॑रीमहे॒ तं गी॒र्भिर्गि॑र्वणस्तम।
इन्द्र॒ यथा॑ चि॒दावि॑थ॒ वाजे॑षु पु॒रुमाय्य॑म॥ १०॥

(१) हे **गिर्वणस्तम**=ज्ञान की वाणियों से अधिक-से-अधिक संभजनीय प्रभो! **तं त्वा**=उन आपको हम **यज्ञेभिः**=यज्ञों के द्वारा तथा **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **ईमहे**=याचना करते हैं। यज्ञों व ज्ञानवाणियों के द्वारा आपकी उपासना करते हैं। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुओं के विद्रावक प्रभो! **आप पुरुमाय्यम्**=(बहुप्रज्ञं बहुस्तुतिं वा) बहुत प्रज्ञावाले व स्तुतिवाले उपासक को **वाजेषु**=संग्रामों में **यथाचिद्**=जिस प्रकार से निश्चयपूर्वक **आविथ**=रक्षित करते हैं। यह 'पुरुमाय्य' आपकी रक्षा को प्राप्त करता ही है।

भावार्थ—हम यज्ञों व ज्ञान की वाणियों द्वारा प्रभु का उपासन करें। प्रभु संग्रामों में हमारा रक्षण करेंगे।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

स्वादु सख्यम्

यस्य॑ ते स्वा॒दु स॒ख्यं स्वा॒द्वी प्रणी॑तिरद्रिवः। य॒ज्ञो वि॒तन्त॒साय्यः॑॥ ११॥

(१) हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! अथवा वज्रहस्त प्रभो! **यस्य ते**=जिन आपको **सख्यं**=मित्रता **स्वादु**=जीवन को मधुर बनानेवाली है, उन आपका **प्रणीतिः**=प्रणयन-हमें आगे ले चलने का मार्ग भी **स्वाद्वी**=मधुर है। आप हमें मधुरता से ही उन्नति पथ पर ले चलते हैं। (२) हमें **यज्ञः**=आपकी उपासना ही **वितन्तसाय्यः** (विशेषेण तननीयः)=विशेष रूप से करनी चाहिए। आपका उपासन ही वस्तुतः हमें मधुर व उन्नत जीवनवाला बनाएगा।

भावार्थ—प्रभु की मित्रता मधुर है—उनका प्रणयन भी मधुर है। सो हमें प्रभु का ही उपासन विशेषरूप से करना योग्य है।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'अ-दरिद्रता'

उ॒रु ण॑स्त॒न्वे॒३ तने॑ उ॒रु क्षया॑य नस्कृधि। उ॒रु णो॑ यन्धि जी॒वसे॑॥ १२॥

(१) हे प्रभो! आप **नः**=हमारे **तन्वे**=सन्तान के लिए **उरुकृधि**=पर्याप्त धन को करिये। **नः**=हमारे **तने**=पौत्रों के लिए भी **क्षयाय**=(क्षिनिवासगत्योः) निवास व गति के लिए—कार्यों के

सुचारुरूपेण चलाने के लिए **उरु कृधि**=पर्याप्त धन को करिये। (२) **जीवसे**=जीवनयात्रा को सम्यक् पूर्ण करने के लिए **नः**=हमें भी **उरु यन्धि**=पर्याप्त दीजिए।

भावार्थ–हमारे घर में दरिद्रता न हो। हमारे जीवन व हमारे पुत्र-पौत्रों के जीवन सुन्दरता से चलें।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

विशालता (दूरदृष्टि)

उरुं नृभ्य उरुं गवं उरुं रथाय पन्थाम्। देववीतिं मनामहे॥ १३॥

(१) हे प्रभो! **नृभ्यः**=मनुष्यों के लिए **उरुं पन्थाम्**=विशाल मार्ग की **मनामहे**=हम याचना करते हैं। सब मनुष्यों के साथ हम विशाल दृष्टिकोण से ही सारा व्यवहार करें। **गो**=गौओं के लिए भी **उरुं** (पन्थां मनामहे)=हम विशाल मार्ग को अपनाएँ। दूरदृष्टि से ही उनकी उपयोगिता को सोचें। उनके दूध में थोड़े से मक्खन की कमी हमें भैंस के दूध के प्रति प्रेमवाला न बना दे। (२) हम **रथाय**=अपने शरीररूप रथ के लिए भी **उरुं पन्थाम्**=विशाल मार्ग को **मनामहे**=माँगते हैं, अर्थात् हमारे सारे व्यवहार दीर्घदृष्टि से ही किये जाएँ। इस प्रकार **देववीतिं**=दिव्यगुणों की प्राप्ति की-दिव्यगुणों की प्राप्ति के साधनभूत यज्ञों की हम कामना करते हैं।

भावार्थ–सब मनुष्यों के साथ हमारा व्यवहार विशाल मन से हो। गौवों के विषय में हमारी दृष्टि दूर के हित को सोचनेवाली हो। शरीर के विषय में दूरदृष्टि से प्रत्येक क्रिया को करें। दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

षड् स्वादुरातयः

उप मा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या। तिष्ठन्ति स्वादुरातयः॥ १४॥

(१) 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इन सप्तर्षियों में 'दो कान, दो नासिका-छिद्र तथा दो आँखें'-ये दो के तीन युग्म हैं। ये सब '**नरः**' (नृ नये)=हमें आगे और आगे ले चलनेवाले हैं। ये **द्वाद्वा**=दो-दो के तीन युग्म, इस प्रकार **षड्**=छः **नरः**=उन्नति पथ पर ले चलनेवाले ऋषि **मा उप तिष्ठन्ति**-मेरे समीप स्थित होते हैं। प्रभु के अनुग्रह से ये ६ ऋषि हमें प्राप्त हुए हैं। (२) **सोमस्य**=सोमरक्षण से उत्पन्न **हर्ष्या**=हर्ष से ये ऋषि **स्वादुरातयः**=जीवन को मधुर बनानेवाले ज्ञान को देनेवाले हैं।

भावार्थ–प्रभु ने हमें 'दो कान, दो आँख, दो नासिकाछिद्र और मुख' ये सात ऋषि प्राप्त कराए हैं। सोमरक्षण से हृष्ट (हृषत) हुए-हुए ये ऋषि मधुर ज्ञान को हमारे लिए प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

इन्द्रोत, ऋक्षसूनु आश्वमेध

ऋज्राविन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि। आश्वमेधस्य रोहिता॥ १५॥

(१) **इन्द्रोत**=(इन्द्र+उत) प्रभु से रक्षित व्यक्ति में **ऋज्रौ**=ऋजुगामी जो इन्द्रियाश्व हैं, उनको **आददे**=मैं ग्रहण करता हूँ। प्रभु के उपासक के ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्व सरल मार्ग से चलनेवाले होते हैं। मैं भी इन इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करता हूँ। (२) **ऋक्षस्य**=गतिशील पुरुष के

(ऋष् गतौ) **सूनवि**=पुत्र में, अर्थात् अत्यन्त गतिशील में जो **हरी**=हमें लक्ष्यस्थान पर पहुँचानेवाले इन्द्रियाश्व हैं, उन्हें मैं प्राप्त करता हूँ। (३) **आश्वमेधस्य**=अश्वमेध के पुत्र अर्थात् उत्कृष्ट अश्वमेध (अश्नुते इति अश्व:) सर्वव्यापक प्रभु के साथ मेल करनेवाले के (मेधृ संगमे) **रोहिता**–तेजस्वी (लालवर्ण के) इन्द्रियाश्वों को मैं प्राप्त करता हूँ।

भावार्थ–प्रभु से रक्षित गतिशील पुरुष के इन्द्रियाश्व ऋजुगामी व लक्ष्यस्थान पर पहुँचानेवाले होते हैं। सर्वव्यापक प्रभु के साथ मेलवाला पुरुष इन्द्रियाश्वों को तेजस्वी बनाता है।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सुरथ-स्वभीशु-सुपेशस्

सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे। आश्वमेधे सुपेशसः॥ १६॥

(१) **आतिथिग्वे**=अतिथिग्व-उस महान् अतिथि प्रभु के प्रति गतिवाले के सन्तान, अर्थात् अतिशयेन प्रभु की ओर जानेवाले, प्रभु से रक्षित 'इन्द्रोत' में होनेवाले **सुरथान्**=शोभन शरीररथवाले इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करता हूँ। (२) **आर्क्षे**=ऋक्षपुत्र में–अतिशयेन गतिशील व्यक्ति में होनेवाले **स्वभीशून्**=उत्तम मनरूप लगामवाले इन्द्रियाश्वों को मैं प्राप्त करता हूँ। (३) **आश्वमेधे**=सर्वव्यापक प्रभु से मेलवाले पुरुष में होनेवाले **सुपेशसः**=उत्तम आकृतिवाले इन्द्रियाश्वों को मैं प्राप्त करता हूँ।

भावार्थ–हमारे इन्द्रियाश्व उत्तम शरीररूप रथवाले–उत्तम मनरूप लगामवाले व उत्तम आकृति के हों।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

आतिथिग्व-इन्द्रोत-पूतक्रतु

षळश्वाँ आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः। सचा पूतक्रतौ सनम्॥ १७॥

(१) **आतिथिग्वे**–निरन्तर उस महान् अतिथि प्रभु की ओर गतिवाले, **इन्द्रोते**=परमैश्वर्यवान् प्रभु से रक्षित **पूतक्रतौ**=पवित्र प्रज्ञान व कर्मोंवाले पुरुष में **सचा**=संगत **वधूमतः**=कार्यवहन की शक्तिवाली (वह धातु से वधू) **षड् अश्वान्**=मनसहित पाँच ज्ञानेन्द्रियों को **सनम्**=प्राप्त करता हूँ। (२) मेरे इन्द्रियाश्व अपने कार्यों को सुचारूरूपेण करते हैं। मुझे चाहिए कि मैं प्रभु की ओर गतिवाला–प्रभु से रक्षित व पवित्र प्रज्ञानों व कर्मोंवाला बनूँ।

भावार्थ–मुझे वे इन्द्रियाश्व प्राप्त हों, जो प्रभु की ओर जानेवाले को प्राप्त होते हैं, जो प्रभु से रक्षित व्यक्ति को प्राप्त होते हैं और जो पवित्र प्रज्ञान व कर्मोंवाले पुरुष को प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—पादनिचृद्गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

'अरुषी-कशावती' बुद्धि

ऐषु चेतद् वृषण्वत्यन्तर्ऋज्रेष्वरुषी। स्वभीशुः कशावती॥ १८॥

एषु ऋज्रेषु अन्तः=इन सरल गतिवाले इन्द्रियाश्वों से युक्त पुरुषों के हृदयों में **वृषण्वती**=शक्तिशाली प्राणोंवाली, **अरुषी**=आरोचमान, **स्वभीशुः**=उत्तम लगामवाली–सम्यक् नियन्त्रण करनेवाली, **कशावती**=उत्तम ज्ञान की वाणियोंवाली बुद्धि **आचेतत्**=सर्वथा चेतना को करनेवाली होती है।

भावार्थ–हम ऋज्र बनें–सरल गतिवाले बनें। हमें वह बुद्धि प्राप्त होगी जो उत्तम ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराती हुई तथा हमारे जीवनों में सम्यक् नियन्त्रण करती हुई हमें प्राणशक्तिसम्पन्न

व आरोचमान बनाएगी।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

निरवद्य जीवन

न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः। अवद्यमधि दीधरत्॥ १९॥

(१) गतमन्त्रों के अनुसार उत्तम इन्द्रियाश्वों व बुद्धि को धारण करनेवाले हे **वाजबन्धवः**=उत्तम भोजन व शक्ति को अपने साथ जोड़नेवाले पुरुषो! **युष्मे**=तुम्हारे में **निनित्सुः चन मर्त्यः**=निन्दा करने की इच्छावाला पुरुष भी **अवद्यम्**=पाप को **न अधि दीधरत्**=नहीं धारण कर पाता है। (२) तुम्हारा जीवन इस प्रकार प्रशस्त होता है कि तुम्हारे निन्दक भी तुम्हारी निन्दा नहीं कर पाते।

भावार्थ—सरल इन्द्रियाश्वों व आरोचमान बुद्धि को धारण करके हम इस प्रकार प्रशस्त जीवनवाले बनें कि हमारे शत्रु भी हमारी निन्दा न कर सकें।

इस प्रकार निरवद्य जीवनवाले बनकर हम 'प्रियमेध' बनें। हमें 'यज्ञ व मेधा' ही प्रिय हो। यह प्रियमेध ही अगले सूक्त का ऋषि है—

६९. [एकोनसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

'त्रिष्टुभम्' इषम्

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे। धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति॥ १॥

(१) **मन्दद् वीराय**=वीरों को आनन्दित करनेवाले **इन्दवे**=परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिए **वः**=तुम्हारी **त्रिष्टुभं**='काम, क्रोध, लोभ' तीनों को समाप्त करनेवाली (त्रि+ष्टुभ्) **इषं**=इच्छा को **प्र प्र**=प्रकर्षेण प्रकट करो, प्रभु के प्रति अपनी इसी इच्छा को प्रकट करो कि प्रभु हमें 'काम, क्रोध व लोभ' से ऊपर उठाएँ। (२) उपर्युक्त इच्छा के प्रबल होने पर वे प्रभु **वः**=तुम्हारे **मेधसातये**=यज्ञों के संभजन के लिए—इसलिए कि तुम्हारी वृत्ति यज्ञात्मक बने, **पुरन्ध्या**=शरीररूप पुरी का धारण करनेवाली **धिया**=बुद्धि से **आविवासति**=तुम्हें सत्कृत करता है।

भावार्थ—जब हम प्रभु के प्रति इस कामना को प्रकट करते हैं कि हम 'काम, क्रोध, लोभ' को जीत पाएँ, तो प्रभु हमें यज्ञशील बनने के लिए पालक बुद्धि प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'ओदती-योयुवती-अघ्न्या' धेनु

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम्। पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि॥ २॥

(१) **वः**=तुम्हें **ओदतीनां**=ज्ञान जल से सीचनेवाली (उन्दी क्लदने) वेदवाणियों के **नदं**=उच्चारण करनेवाले से (को) **योयुवतीनाम्**=सब बुराइयों से पृथक् करनेवाली वेदवाणियों के **नदं**=उच्चारण करनेवाले प्रभु के से ही तू **इषुध्यसि**=प्रार्थना करता है। (२) **वः**=तुम्हारे लिए **अघ्न्यानां**=अहन्तव्य-सदा अध्ययन के योग्य **धेनूनां**=ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेदवाणियाँरूप गौओं के **पतिं**=स्वामी उस प्रभु से ही तू प्रार्थना करता हैं।

भावार्थ—हमें चाहिए कि हम प्रभु से यही आराधना करें कि वे प्रभु हमें ज्ञानजल से सिक्त करनेवाली वेदवाणियों को प्राप्त कराएँ।

वे हमें उन वाणियों को प्राप्त कराएँ जो हमें सब बुराइयों से पृथक् करती हैं। प्रभु की ये वेद-

धेनुएँ हमारे लिए अहन्तव्य हैं–हमें सदा इनका स्वाध्याय करना चाहिए।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

दिव्यगुणों का जन्म

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः। जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः॥ ३॥

(१) **ताः**=वे **अस्य**=इस प्रभु की **सूददोहसः**=(सूद–Pouring out) उच्चरित वाणियों का अपने में प्रपूरण करनेवाले **पृश्नयः**–ज्ञानदीप्तियों का स्पर्श करनेवाले लोग **सोमं श्रीणन्ति**=सोम का (वीर्यशक्ति का) अपने में परिपाक करते हैं। इसको अपने में ठीक प्रकार से परिपक्व करके ये अपने ज्ञानाग्नि को दीप्त कर पाते हैं। (२) ये वीर्य का ठीक से परिपाक करनेवाली **विशः**= प्रजाएँ **देवानां जन्मन्**=दिव्य गुणों की उत्पत्ति के विषय में तथा **त्रिषु**=प्रकृति, जीव व आत्मा के विषय में **दिवः अरोचने**–ज्ञान को दीप्त करने में समर्थ होती हैं।

भावार्थ–हम सोमशक्ति को अपने ठीक प्रकार से परिपक्व करके ज्ञानाग्नि को दीप्त करें। इससे हमारे में दिव्यगुणों का विकास होगा और 'प्रकृति, जीव, परमात्मा' का ज्ञान प्राप्त होगा।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सत्यस्य सूनम् (अर्थ)

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे। सूनुं सत्यस्य सत्पतिम्॥ ४॥

(१) **यथाविदे**=यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए **गोपतिं**=ज्ञान की वाणियों के स्वामी **इन्द्रं**= परमैश्वर्यशाली प्रभु की **गिरा**–स्तुतिवाणियों से **अभि प्र अर्च**=आभिमुख्येन खूब स्तुति कर। (२) उस प्रभु का तू अर्चन कर जो **सत्यस्य सूनुं**–सत्य की प्रेरणा देनेवाले हैं और **सत्यपतिम्**=सज्जनों के व सत्कर्मों के रक्षक हैं।

भावार्थ–प्रभुपूजन से यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। प्रभु ही सत्य की प्रेरणा प्राप्त कराते हैं और सत्कर्मों का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अरुषीः हरयः

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि। यत्राभि संनवामहे॥ ५॥

यत्र–जहाँ **बर्हिषि अधि**=हृदयक्षेत्र में स्थित हुए–हुए **अभिसन्नवामहे**=प्रातः–सायं (अभि–दिन के दोनों ओर) प्रभु का स्मरण करते हैं तो **हरयः**=इन्द्रियाश्व **आ अरुषीः**=समन्तात् आरोचमान–निर्मल **ससृज्रिरे**=बनाए जाते हैं।

भावार्थ–प्रभुस्मरण हमारी इन्द्रियों को आरोचमान व निर्मल बनाता है।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

आशिरं मधु

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत्सीमुपह्वरे विदत्॥ ६॥

(१) **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय **वज्रिणे**=क्रियाशीलतारूप वज्र को हाथ में लिये हुए पुरुष के लिए **गावः**=वेदवाणीरूप गौवें **आशिरं**–समन्तात् काम–क्रोध आदि शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले **मधु**–मधुर ज्ञान को–जीवन को मधुर बनानेवाले आत्मज्ञान को **दुदुह्रे**=प्रपूरित करती हैं। (२) उस ज्ञान को

ये वेदवाणियाँ प्राप्त कराती हैं, **यत्**=जिसको **सीम्**=निश्चय से **उपह्वरे**=हृदय के एकान्त देश में **विदत्**=यह उपासक प्राप्त करता है।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय व क्रियाशील बनकर वेदधेनु से ज्ञानदुग्ध का दोहन करें। यह हृदय के एकान्त देश में प्राप्त होनेवाला ज्ञान हमारे जीवन को मधुर बनाएगा। यह सब वासनाओं को विनष्ट करेगा।

ऋषिः—प्रियमेधः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्पङ्क्तिः ॥ **स्वरः**—गान्धारः ॥

सख्युः पदे

उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि। मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे॥ ७॥

(१) एक पत्नी यह कामना करती है कि मैं **च इन्द्रः**=और मेरा यह जितेन्द्रिय पति हम दोनों **उद्यद् ब्रध्नस्य**=उदय होते हुए अथवा जो उत्कृष्ट है उस सूर्य के **विष्टपं**=तापशून्य (वि+तप) अथवा विशिष्ट रूप से दीप्त **गृहं**=गृह को **गन्वहि**=जाएँ, अर्थात् हमारे घर में सूर्य की किरणें व प्रकाश खूब अच्छी प्रकार आएँ–सूर्यकिरणें इस गृह को तापशून्य व नीरोग बनानेवाली हों। (२) **मध्वः पीत्वा**=इस गृह में रहते हुए हम सोम का पान करके **सख्युः पदे**=उस परमसखा प्रभु के चरणों में **त्रिःसप्त**=इक्कीस शक्तियों को **सचेवहि**=प्राप्त करें।

भावार्थ—हमारे घर सूर्य किरणों से प्रकाशित हैं। इनमें हम प्रभु का स्मरण करते हुए सोमरक्षण द्वारा २१ शक्तियों को स्थिर रखें।

ऋषिः—प्रियमेधः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—पादनिचृदनुष्टुप्पङ्क्तिः ॥ **स्वरः**—गान्धारः ॥

प्रियमेधों द्वारा प्रभु का पूजन

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत। अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत॥ ८॥

(१) **अर्चत**=उस प्रभु का पूजन करो, **प्रार्चत**=खूब ही पूजन करो। **प्रियमेधासः**=हे यज्ञप्रिय (मेध=यज्ञ) लोगो! इन यज्ञों के द्वारा उस प्रभु का **अर्चत**=पूजन करो। (२) **उत**=और **पुत्रकाः**=(पुनाति, त्रायते) अपने जीवन को पवित्र बनानेवाले व अपना त्राण करनेवाले **अर्चन्तु**=पूजन करें। उस प्रभु का **अर्चत**=पूजन करो, जो **पुरं न**=पालन व पूरण करनेवाले के समान हैं, तथा **धृष्णु**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले हैं।

भावार्थ—वे प्रभु हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं, हमारे शत्रुओं का धर्षण करनेवाले हैं। उस प्रभु का यज्ञों के द्वारा हम पूजन करें।

ऋषिः—प्रियमेधः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्पङ्क्तिः ॥ **स्वरः**—गान्धारः ॥

माम् अनुस्मर युध्य च

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्। पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम्॥ ९॥

(१) **गर्गरः**-युद्ध का नगाड़ा **अवस्वराति**=अतिशयेन भयानक शब्द को कर रहा है। **गोधा**=हस्तघ्न **परिसनिष्वणत्**=चारों ओर आवाज़ को फैला रहे हैं। हस्तघ्नों पर होनेवाले डोरी के प्रहारों से शब्द उठ रहे हैं। **पिङ्गा**=पिंगल वर्णवाली **ज्या परिचनिष्कत्**=धनुष की डोरी चारों ओर गति कर रही है–आक्रमण कर रही है। (२) एवं चारों ओर सारा वातावरण भयंकर युद्ध का है। इस युद्ध में **इन्द्रस्य**=उस शत्रुविद्रावक प्रभु के लिए **ब्रह्म उच्चतम्**=मन्त्रों द्वारा स्तवन उत्थित हुआ है। हमारा यही कर्तव्य है कि प्रभु का स्मरण करें और युद्ध में सन्नद्ध रहें। प्रभुस्मरण

ही हमें इस संसार संघर्ष में विजयी बनाएगा।

भावार्थ—चारों ओर युद्ध का वातावरण उपस्थित है। हम प्रभु का स्मरण करें और युद्ध को करते चलें। प्रभु ही तो हमें विजयी बनाएँगे।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

अनपस्फुरः सुदुघा गौवें

आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः। अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे॥ १०॥

(१) **यत्**=जब **अनपस्फुरः**=न बिदकनेवाली, **सुदुघाः**=सुख संदोह्य **एन्यः**=शुभ्रवर्ण की गौवें **आपतन्ति**=समन्तात् गृहों की ओर आनेवाली होती हैं, तो उस समय **अपस्फुरं**=हृदय कम्पन को दूर करनेवाले **सोमं**=सोम को—ताजे दूध को—**गृभायत**=ग्रहण करो। यह दूध **इन्द्राय पातवे**=जितेन्द्रिय पुरुष के रक्षण के लिए होता है। (२) गौवें 'सुदुघा' होनी चाहिएँ, ये अनपस्फुर होंगी तो इनके दूध में किसी प्रकार का विष नहीं होगा। यह ताजा गोदुग्ध ही सोम है। यह हृदय की धड़कन को भी ठीक रखता है, अर्थात् एतत् सम्बद्ध सब रोगों से हमें बचानेवाला है।

भावार्थ—हम सुख संदोह्य गौवों के ताजे दूध का प्रयोग करें। यही सोम है। यह जितेन्द्रिय पुरुष का रक्षण करता है। उसे हृदय कम्पन आदि के रोग से बचाता है।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—'विश्वेदेवाः', वरुणः॥ **छन्दः**—पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

इन्द्र-अग्नि-देव

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव॥ ११॥

(१) **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **अपात्**=इस सोम का पान करता है। **अग्निः**=प्रगतिशील पुरुष **अपात्**=इसको पीता है। **विश्वेदेवाः**=सब देव इस सोमपान में **अमत्सत**=हर्ष का अनुभव करते हैं। (२) **वरुणः**=वह पाप-निवारक प्रभु **इत्**=निश्चय से **इह**=इस सोमपान करनेवाले के जीवन में **क्षयत्**=निवास करता है। **तम्**=उस प्रभु को **अपः**=कर्मों में व्याप्त होनेवाली प्रजाएँ **अभ्यनूषत**=स्तुत करती हैं। उसी प्रकार स्तुति करती हैं, **इव**=जैसे **संशिश्वरीः**=उत्तम बछड़ोंवाली गाएँ **वत्सम्**=बछड़े के प्रति जाती हुई शब्द को करती है। इसी प्रकार प्रेम से पूर्ण होकर ये कर्मों में व्याप्त होनेवाली प्रजाएँ अपने प्रिय प्रभु के प्रति स्तुति शब्दों को बोलती हैं।

भावार्थ—सोमपान हमें 'इन्द्र, अग्नि व देव' बनाता है, शरीर में सबल (इन्द्र) मस्तिष्क में प्रकाशमय (अग्नि) तथा मन में 'देव'। सोमपान करनेवालों में ही परमात्मा का निवास होता है। ये कर्मों में व्याप्त रहकर प्रभु का स्मरण करते हैं।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—वरुणः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

सप्त सिन्धवः

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः। अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव॥ १२॥

(१) हे **वरुण**=पापनिवारक प्रभो! आप **सुदेवः असि**=सर्वोत्तम देव हैं—देवों के अधिदेव हैं। **यस्य**=जिन **ते**=आपकी **सप्त सिन्धवः**=सात छन्दों में प्रवाहित होनेवाली ज्ञानजल की नदियाँ **काकुदं अनुक्षरन्ति**=हमारे तालु में बहती है, उसी प्रकार **इव**=जैसे **सूर्म्यं**=प्रकाश व रश्मिजाल **सुषिराम्**=सच्छिद्र वस्तु में प्रवेश करता है। (२) हम प्रभु का स्मरण करते हैं तो प्रभु की वेदवाणियाँ

हमारे जीवन में इस प्रकार प्रवेश करती हैं, जैसे सछिद्र भित्ति में सूर्यरश्मियाँ। ये रश्मियाँ ही वेदवाणियों का प्रकाश ही हमारे जीवन को निर्मल बनाता है।

भावार्थ–हम प्रभु का स्मरण करें। प्रभु का ज्ञान हमारे जीवन को निर्मल कर देगा। हमें यह प्रकाश 'सुदेव' बना देगा।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

वपुः (यो अमुच्यत)

यो व्यतीँरफाणयत्सुयुक्ताँ उप दाशुषे। तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत॥ १३॥

(१) **यः**=जो **दाशुषे**=दानशील अथवा अपने को प्रभु के प्रति अर्पण करनेवाले के लिए **वि+अतीन्**=विशिष्ट गतिवाले **सुयुक्तान्**=उत्तमता से शरीररथ सम्बद्ध (में जुते हुए) इन्द्रियाश्वों को **उप अफाणयत्**=समीपता से प्राप्त कराता है। वह प्रभु **तक्वः**=हमारे यज्ञों में प्राप्त होनेवाले हैं। वस्तुतः प्रभु ही हमें यज्ञों के प्रति प्राप्त कराते हैं। **प्रभु नेता**=वे प्रभु ही हमें मार्ग पर ले-चलनेवाले हैं नेता होते हैं तो **तद् इत्**=तब ही यह उपासक **वपुः**=सब बुराइयों का वपन (छेदन) करनेवाला होता है। **उपमा**=ये औरों के लिए उपमानभूत हो जाता है। ऐसा बन जाता है कि **यः अमुच्यत**=जो मुक्त हो जाता है। पवित्र जीवनवाले पुरुषों को लोग इससे उपमा देने लग जाते हैं यह तो पहले ऐसा पवित्र है, जैसा वह 'वपुः'।

भावार्थ–हम प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें। प्रभु हमें गतिशील सुयुक्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराके उत्तम मार्ग पर ले चलेंगे। हम बुराइयों का छेदन करके उपमानभूत जीवन को प्राप्त करेंगे-जीवनमुक्त से बन जाएँगे।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

'मुक्तिप्रदाता' प्रभु

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः। भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा॥ १४॥

(१) **शक्रः**=वह सर्वशक्तिमान् प्रभु **इत् उ**=निश्चय ही **अति ओहते**=हमें भवसागर के पार ले जाता है। **इन्द्रः**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु **विश्वाः द्विषः**=सब द्वेषों के **अति**=पार प्राप्त करता है। (२) वह **कनीनः**=(कन दीप्तौ) दीप्त प्रभु-प्रकाशमय प्रभु **परः**=सबसे परस्तात् वर्तमान हैं-सब गुणों के दृष्टिकोण से परे हैं-उत्कृष्ट हैं। वे प्रभु ही **गिराः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **पच्यमानं**=परिपक्व किये जाते हुए इस **ओदनं**=हमारे अन्नमय कोश को-इस स्थूल शरीर के **भिनत्**=हमारे से पृथक् करते हैं-हमें मुक्ति के मार्ग पर आगे ले चलते हैं।

भावार्थ–प्रभु ही 'शक्र' हैं, 'इन्द्र ' हैं। वे ही हमें सब द्वेषों से ऊपर उठाते हैं और ज्ञानाग्नि में परिपक्व करके हमें मुक्त करते हैं।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम्। स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम्॥ १५॥

जीव को चाहिए कि **अर्भकः न**=एक छोटे बालक के समान हो। **कुमारकः**-वह सब क्रीड़ा को करनेवाला हो As innocent as a child=एक बालक के समान निर्दोष व्यवहारवाला हो-व्यर्थ में चुस्त चालाक न बने। **नवं रथं अधितिष्ठन्**=इस स्तुत्य व गतिशील (नु स्तुतौ, नव गतौ)

शरीररथ पर आरूढ़ होता हुआ **सः**=वह **पित्रे मात्रे**=पिता व माता के लिए उस **महिष**=पूजनीय **मृगं**=अन्वेषणीय **विभुक्रतुम्**=सर्वव्यापक प्रज्ञानस्वरूप प्रभु को **पक्षत्**=परिगृहीत करे (पक्ष परिग्रहे)।

भावार्थ—हम बालकों की तरह निर्दोष जीवनवाले बनें। शरीररथ को स्तुत्य व गतिशील बनाएँ। प्रभु को ही माता व पिता समझें। प्रभु पूज्य हैं, अन्वेषणीय हैं, सर्वव्यापक व प्रज्ञानस्वरूप हैं।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

प्रभु की ओर

आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम्।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम्॥ १६॥

(१) पत्नी पति से कहती है कि हे **सुशिप्र**=शोभन हनुओं व नासिकावाले—उत्तम भोजन व प्राणायाम को करनेवाले! **दम्पते**=शरीररूप गृह का रक्षण करनेवाले जीव! **हिरण्ययं रथं**=ज्योतिर्मय शरीररथ पर **तू**=प्रातिक स्थित हो ही। इस शरीररथ को तू ज्ञानज्योति से परिपूर्ण कर। (२) **अध**=अब, जीवन को इस प्रकार सात्त्विक भोजनवाला, प्राणसाधनासम्पन्न व ज्योतिर्मय बनाने पर, हम उस प्रभु को **सचेवहि**=प्राप्त हों, जो **द्युक्षं**=सदा प्रकाश में निवास करनेवाले हैं। **सहस्रपादम्**=सहस्रों पांवोंवाले हैं—सर्वत्र गतिवाले हैं। **रुषं**=आरोचमान व (अ-रुषं) क्रोधरहित हैं। **स्वस्तिगाम्**=कल्याण की ओर गतिवाले हैं—हमें कल्याणपथ पर ले चलनेवाले हैं और **अनेहसम्**=निष्पाप हैं।

भावार्थ—हम सात्त्विक भोजन को करते हुए शरीररथ का रक्षण करें वे इसे ज्योतिर्मय बनाएँ। पति-पत्नी मिलकर प्रकाशमय प्रभु का उपासन करें कि हमें कल्याण के मार्ग ले चलते हुए निष्पाप जीवनवाला बनाएँगे।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सुधितम् अर्थम्

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते। अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने॥ १७॥

(१) **तं स्वराजं**=उस स्वयं देदीप्यमान प्रभु को **इत्था**=सचमुच **घा ईम्**=निश्चय से **नमस्विनः**=नमस्कारवाले **उपासते**=उपासित करते हैं। (२) **अस्य**=इस उपासक का **अर्थं**=प्राप्तव्य धन **चित्**=निश्चय से **सुधितम्**=सम्यक् स्थापित होता है। **यत्**=जो धन **एतवे**=जीवन के कार्यों को संचालित करने के लिए होता है और इस धन को वे **दावने**=हवि आदि के देने के लिए-दान के लिए **आवर्तयन्ति**=आवृत्त करते हैं।

भावार्थ—नमन से युक्त होकर हम प्रभु का उपासन करते हैं। प्रभु हमें धन देते हैं। यह धन कार्यसंचालन व दान में विनियुक्त होता है।

ऋषिः—प्रियमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

प्रियमेधासः, वृक्तबर्हिषः, हितप्रयसः

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम्। पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत॥ १८॥

(१) **प्रियमेधासः**=बुद्धि के साथ प्रेमवाले लोग **एषाम्**=इनके अर्थात् अपने **प्रत्नस्य ओकसः अनु**=सनातन गृह को लक्ष्य करके **वृक्तबर्हिषः**=हृदयरूप क्षेत्र को वासनारूप घास-फूस से रहित करते हैं। (२) ये **हितप्रयसः**=सदा हितकर प्रयासों (उद्योगों) में लगे हुए **पूर्वां**=

सर्वमुख्य अथवा पालन व पूरण करनेवाली **प्रयतिं**=दान की प्रक्रिया को **अनु आशत**=व्याप्त करते हैं। सदा दानशील बनते हैं।

भावार्थ–ब्रह्मलोकरूप अपने सनातन गृह को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि हम 'प्रियमेध'=बुद्धिप्रिय बनें। हृदयक्षेत्र में से हम वासनाओं के घास–फूस को उखाड़ डालें तथा सदा हितकर उद्योगों में लगे हुए हों।

गतमन्त्र में वर्णित दान की प्रक्रिया से ही ये वासनारूप शत्रुओं का खण्डन करनेवाले 'पुरुहन्मा' बनते हैं। अगले सूक्त का ऋषि यह 'पुरुहन्मा' ही है। इसकी प्रार्थना का स्वरूप है–

७०. [सप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—पादनिचृद् बृहतीङ्क स्वरः—मध्यमःङ्क

'ज्येष्ठः वृत्रहा' प्रभु

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः। विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे॥ १॥

(१) मैं उस प्रभु का **गृणे**=स्तवन करता हूँ **यः**=जो **चर्षणीनां राजा**=श्रमशील मनुष्यों के जीवन को दीप्त बनानेवाला है। **रथेभिः याता**=शरीररूप रथों से हमें प्राप्त होनेवाला है, अर्थात् उत्तम शरीररूप रथों को प्राप्त करता है। **अध्रिगुः**=अधृतगमन वाला है। (२) ये प्रभु ही **विश्वासां**=सब **पृतनानां**=शत्रुसैन्यों के **तरुता**=तैर जानेवाले हैं। वे प्रभु **ज्येष्ठः**=प्रशस्यतम हैं, **यः**=जो **वृत्रहा**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करनेवाले हैं।

भावार्थ–हम प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु हमें वासनारूप शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ करते हैं। प्रभु ही हमें उत्तम शरीररथ प्राप्त कराते हैं और हमारे जीवनों को दीप्त करते हैं।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—निचृत् पं-ःङ्क स्वरः—पञ्चमःङ्क

वज्रः-सूर्यः

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो न सूर्यः॥ २॥

(१) हे **पुरुहन्मन्**=खूब ही शत्रुओं का हनन करनेवाले जीव! तू **तं**=उस **इन्द्रं**=शत्रुविद्रावक प्रभु को **अवसे**=रक्षण के लिए **शुम्भ**=अपने जीवन में अलङ्कृत कर। उस प्रभु को अलंकृत कर **यस्य द्विता**=जिसका दोनों ओर विस्तार है–उस प्रभु की अनन्त शक्ति है और अनन्त ज्ञान है। प्रभु को धारण करने पर हम भी ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करेंगे। (२) उस **विधर्तरि**=विशेष रूप से धारण करनेवाले प्रभु में **हस्ताय**=(हननाय) शत्रुसंहार के लिए **दर्शतः**=दर्शनीय **महः**=महान् **वज्रः**=वज्र **प्रतिधायि**=धारण किया जाता है। **नः**=और (च) **दिवे**=प्रकाश के लिए **सूर्यः**=सूर्य धारण किया जाता है। 'वज्र' शत्रुसंहार की शक्ति का प्रतीक है और 'सूर्य' ज्ञान का।

भावार्थ–हम अपने जीवनों में प्रभु का धारण करें। प्रभु शत्रुहनन के लिए वज्र का धारण करते हैं और प्रकाश के लिए सूर्य का। प्रभु का धारण हमें शक्ति व प्रकाश प्राप्त कराएगा।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—निचृद् बृहतीङ्क स्वरः—मध्यमःङ्क

नकिः तं कर्मणा नशत्

नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम्।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम्॥ ३॥

(१) **तं**=उस व्यक्ति को **कर्मणा**=कर्मों से **नकिः नशत्**=कोई भी व्याप्त नहीं कर पाता, अर्थात् उसके समान कोई भी महान् कर्मों को नहीं कर पाता, **यः**=जो **सदावृधं**=सदा से वर्धमान प्रभु को **चकार**=अपने अन्दर कराता है, अर्थात् जो प्रभु को अपने में धारण करता है। इस स्तोता को प्रभु की शक्ति प्राप्त होती है—इसके अन्दर प्रभु की शक्ति ही कार्य कर रही होती है। (२) **न**=(संप्रति) अब हम **यज्ञैः**=यज्ञात्मक कर्मों से **इन्द्रं**=उस प्रभु को ही उपासित करें, जो प्रभु **विश्वगूर्तम्**=सबसे स्तुति के योग्य हैं, **ऋभ्वसं**=महान् हैं। **अधृष्टं**=किसी से भी धृषत होनेवाले नहीं और **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा **धृष्णवम्**=सब शत्रुओं का धर्षण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना हमें असाधारण (महान्) कार्यों को करने में समर्थ करेगी। प्रभु की शक्ति से शक्तिसम्पन्न होकर हम सब शत्रुओं का धर्षण कर पाएँगे।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—पं-ःङ्क **स्वरः**—पञ्चमःङ्क

द्यावः क्षामः अनोनवुः

अषा॑ळ्हमु॒ग्रं पृत॑नासु सास॒हिं यस्मि॒न्म॒हीरु॑रु॒ज्रयः॑।
सं धे॒नवो॒ जाय॑माने अनोनवु॒र्द्याव॒ः क्षामो॑ अनोनवुः॥ ४॥

(१) **द्यावः**=ये द्युलोक में होनेवाले सूर्य व **क्षामः**=पृथिवीलोक उस प्रभु का ही **अनोनवुः**=अतिशयेन स्तवन करते हैं जो **अषाढं**=शत्रुओं से कभी पराभूत नहीं होते, **उग्रं**=उद्‌गूर्ण बलवाले व तेजस्वी हैं तथा **पृतनासु सासहिम्**=शत्रुसैन्यों में पराभव को करनेवाले हैं। (२) **यस्मिन् जायमाने**=जिसके प्रादुर्भूत होने पर **महीः**=महत्त्वपूर्ण, **उरुज्रयः**=महान् वेग वाली, अर्थात् हमें क्रियाओं में प्रेरित करनेवाली **धेनवः**=वेदवाणीरूप गौवें **सम् अनोनवुः**=सम्यक् शब्दायमान हो उठती है। हृदय में प्रभु का प्रकाश हुआ और वेदज्ञान हमें उस-उस क्रिया में प्रेरित करने लगा।

भावार्थ—ये सूर्य आदि पदार्थ प्रभु की महिमा का ही प्रकाश कर रहे हैं। प्रभु का प्रकाश हृदय में होनेपर वेदवाणी हमारे लिए उत्कृष्ट कर्मों की प्रेरणा देनेवाली होती है।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—विराड् बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

ज्यायान् एभ्यः लोकेभ्यः

यद् द्याव॑ इन्द्र ते श॒तं श॒तं भूमी॑रु॒त स्युः।
न त्वा॑ वज्रिन्त्स॒हस्रं॒ सूर्या॒ अनु॒ न जा॒तम॑ष्ट॒ रोद॑सी॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यद्**=यदि **द्यावः**=ये द्युलोक **शतं**=सैंकड़ों **स्युः**=हों, तो भी **ते**=तेरा **न**=(अश्नुवन्ति) व्यापन नहीं कर सकते। **उत**=और **शतं भूमीः**=सैंकड़ों भूमियाँ हो तो ये भी तेरा व्यापन नहीं कर पातीं। (२) हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! **त्वा**=आपको **सहस्रं सूर्याः**=सहस्रों भी सूर्य **न**=प्रकाशित नहीं कर पाते। **जातं**=सृष्टि से पहले ही प्रादुर्भूत हुए-हुए आपको **रोदसी**=द्यावापृथिवी **न अनु अष्ट**=व्याप्त करनेवाले नहीं होते।

भावार्थ—प्रभु को सहस्रों भी द्युलोक, पृथिवीलोक व सूर्य व्याप्त नहीं कर पाते। प्रभु इनसे महान् हैं।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—निचृत् पङ्क्तिःङ्क स्वरः—पञ्चमःङ्क

शवसा आपप्राथ

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा।
अस्माँ अव मघवन्गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः॥ ६॥

(१) हे **वृषन्**=सुखों का वर्षण करनेवाले **शविष्ठ**=अतिशयेन शक्तिशालिन् प्रभो! आप **वृष्ण्या**=सुखों का वर्षण करनेवाली **महिना**=अपनी महिमा से **विश्वा**=सबको **शवसा**=बल से **आपप्राथ**=आपूरित करते हैं। प्रभु का जो भी धारण करता है, वह प्रभु की शक्ति से शक्तिसम्पन्न बनता है। (२) हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **अस्मान्**=हमें **गोमति व्रजे**=इस इन्द्रियरूप गौओंवाले शरीररूप बाड़े में **चित्राभिः ऊतिभिः**=अद्भुत रक्षणों के द्वारा **अव**=रक्षित करिये।

भावार्थ—प्रभु ही हमें शक्ति से प्रपूरित करते हैं। प्रभु के अनुग्रह से हमारा शरीररूप व्रज प्रशस्त इन्द्रियरूप गौवोंवाला होता है।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—विराड् बृहतीङ्क स्वरः—मध्यमःङ्क

अदेवः एतग्वा

न सीमदेव आपदिषं दीर्घायो मर्त्यः।
एतग्वा चिद्य एतशा युयोजते हरी इन्द्रो युयोजते॥ ७॥

(१) हे **दीर्घायो**=(दीर्घ जीवनवाले) नित्य इन्द्र! **अदेवः मर्त्यः**=देव (प्रभु) से दूर रहनेवाला मनुष्य **सीम्**=निश्चय से **इषं न आपत्**=प्रभु की प्रेरणा को नहीं प्राप्त करता। प्रभु के सम्पर्क में रहनेवाला ही प्रभु की प्रेरणा को प्राप्त करता है। (२) **एतग्वा**=उस श्वेत शुद्ध प्रभु की ओर गतिवाला **चित्**=ही **यः**=जो **एतशा**=शुद्ध- श्वेत वर्णवाले **हरीः**=इन्द्रियाश्वों को **युयोजते**=अपने शरीररथ में जोतता है, वही **इन्द्रः**-जितेन्द्रिय बनकर **युयोजते**-इन्द्रियाश्वों को जोतता है।

भावार्थ—प्रभु से दूर रहनेवाला व्यक्त प्रभु-प्रेरणा को नहीं प्राप्त करता। शुद्ध प्रभु की ओर चलनेवाला मनुष्य ही जितेन्द्रिय बनकर शुद्ध इन्द्रियाश्वों को शरीररथ में जोतता है।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—आर्चीस्वराड् बृहतीङ्क स्वरः—मध्यमःङ्क

'गाधेषु आ-रणेषु वाजेषु' हव्यः

तं वो महो महाय्यमिन्द्रं दानाय सक्षणिम्।
यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः॥ ८॥

(१) **तं**=उस **वः महः**=तुम्हारे तेज (महस्=Power or Lustre) व दीप्तिरूप उस प्रभु का परिचरण करो। वे प्रभु ही तुम्हें तेजस्विता व दीप्ति प्राप्त करानेवाले हैं। **महाय्यं इन्द्रं**=उस पूजनीय-शत्रुविद्रावक प्रभु को ही पूजो। **दानाय**=शत्रुओं के खण्डन के लिए **सक्षणिम्**=उपासकों के साथ समवेत होनेवाले प्रभु को पूजो। (२) **यः**=जो प्रभु **गाधेषु**=(गाधृ प्रतिष्ठायाम्) प्रतिष्ठा को प्राप्त करानेवाले कार्यों में **हव्यः**=पुकारने योग्य हैं। प्रभु ही तो उन कार्यों को निर्विघ्नता से पूर्ण करेंगे। **यः**=जो प्रभु **आ-रणेषु**=समन्तात् आनन्दमय-रमणीय कार्यों में भी पुकारने योग्य हैं। वे प्रभु ही **वाजेषु**=संग्रामों में **हव्यः**=पुकारने योग्य **अस्ति**=हैं। प्रभु ने ही हमें उन संग्रामों में विजय प्राप्त करानी हैं।

भावार्थ—प्रभु का पूजन करेंगे तो प्रभु की शक्ति से हम शक्तिसम्पन्न बनेंगे। तभी हम उत्तम कार्यों को करके प्रतिष्ठा को प्राप्त करेंगे। तभी उत्तम कार्यों को प्राप्त करके आनन्दित होंगे। तभी संग्रामों में विजयी होंगे।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

राधसे, मघत्तये, श्रवसे

उदू षु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे। उदू षु मह्यै मघवन्मघत्तय उदिन्द्र श्रवसे महे॥ ९॥

(१) हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! आप **नः**=हमें **उ**=निश्चय से **सु**=अच्छी प्रकार **महे राधसे**=महान् ऐश्वर्य के लिए **उन्मृशस्व**=स्पर्श करिये। आपके सम्पर्क से हम उत्कृष्ट ऐश्वर्य को प्राप्त करें। (२) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन्! **उ**=और **सु**=सम्यक् **मह्यै मघत्तये**=महान् ऐश्वर्य के दान के लिए हमें ऊँचा उठाइए (उत्थापय)। (३) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **महे श्रवसे**=महान् यश व ज्ञान के लिए **उत्**=हमें उठाइए।

भावार्थ—हम प्रभु के सम्पर्क से, ऐश्वर्य को—दान की वृत्ति को तथा महान् यश को प्राप्त करें।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—आर्चीस्वराड् बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

'ऋतयु' प्रभु

त्वं न इन्द्र ऋतयुस्त्वानिदो नि तृम्पसि। मध्ये वसिष्व तुविनृम्णोर्वोर्नि दासं शिश्नथो हथैः॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वं**=आप **नः**=हमारे साथ **ऋतयुः**=यज्ञों को—ऋत को—जोड़नेवाले हैं। हमारे लिए यज्ञों की कामनावाले हैं। हे प्रभो! आप **त्वानिदः**=आपकी निन्दा करनेवालों को भी **नि तृम्पसि**=भोजनादि से प्रीणित करनेवाले हैं। (२) हे **तुविनृम्ण**=महान् धनवाले प्रभो! आप हमें **ऊर्वोः मध्ये वसिष्व**=अपनी जांघों के बीच में निवास कराइए—अपनी गोद में बिठाइए। आपके हम प्रिय हों। आप **दासं**=औरों का उपक्षय करनेवालों को **हथैः**=हनन-साधन आयुधों से **निशिश्नथः**=निश्चय से हिंसित करते हो।

भावार्थ—हे प्रभो! आप हमें यज्ञशील बनाइए। हम आपके प्रिय बनें। उपक्षय करनेवाले का आप विनाश करते हैं।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

'अन्यव्रत-अमानुष-अयज्वा-अदेवयु' का स्वर्गभ्रंश

अन्यव्रतममानुषमयज्वानमदेवयुम्।
अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः॥ ११॥

(१) वह **सखा**=यज्ञशील पुरुषों का मित्र **पर्वतः**=हमारा पूरण करनेवाला प्रभु **अन्यव्रतम्**=वेदोपदिष्ट कर्मों से भिन्न कर्मों को करनेवाले को, **अमानुषम्**=निर्दय को **अयज्वानम्**=अयज्ञशील को **अदेवयुम्**=दिव्यगुणों को प्राप्त करने की कामना न करनेवाले का **स्वः**=स्वर्ग से **अवदुधुवीत**=कम्पित करके दूर कर देता है। 'अन्यव्रत, अमानुष, अयज्वा, अदेवयु' को सुख प्राप्त नहीं होता। (२) **पर्वतः**=वह पूरण करनेवाला प्रभु **दस्युं**=उपक्षय करनेवाले को **सुघ्नाय**=सम्यक् हनन के लिए प्रेरित कर इस दस्यु का आप विनाश करिये।

भावार्थ–प्रभु 'अन्यव्रत, अमानुष, अयज्वा, अदेवयु' पुरुष को सुखों से पृथक् करते हैं। दस्यु का प्रभु विनाश करते हैं।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—आर्चीबृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

द्विः संगृभाय

त्वं न इन्द्रासां हस्ते शविष्ठ दावने। धानानां न सं गृभायास्मयुर्द्विः सं गृभायास्मयुः ॥ १२ ॥

(१) हे **शविष्ठ**=अतिशयेन शक्तिमन् **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **त्वं**=आप **नः**=हमारे लिये **दावने**=देने के लिए **आसां धानानां**=इन धानों को **हस्ते**=हाथ में **संगृभाष**=सम्यक् ग्रहण करिये। **अस्मयुः**=हमारे हित की कामनावाले आप **धानानां न**=धानों के समान हमारे लिए आवश्यक वस्तुओं का ग्रहण करिये। (२) ग्रहण ही क्या? **अस्मयुः**–हमारे हित की कामनावाले आप **द्विःसंगृभाय**=दो बार इन धानों का **संगृभाय**=सम्यक् ग्रहण करिये।

भावार्थ–प्रभु हमारे लिए आवश्यक धन-धान्य की कमी न होने दें।

सूचना–'धानानां द्विः संगृभाय' शब्दों में दो बार के भोजन का संकेत स्पष्ट है।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—उष्णिक्ङ्क **स्वरः**—ऋषभःङ्क

'भोजः सूरिः अह्रयः' प्रभु

सखायः क्रतुमिच्छत कथा राधाम शरस्य। उपस्तुतिं भोजः सूरिर्यो अह्रयः ॥ १३ ॥

(१) हे **सखायः**=मित्रो! **क्रतुं**=यज्ञ, शक्ति व प्रज्ञान की **इच्छत**=कामना करो। **कथा**=किसप्रकार हम **शरस्य**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभु की **उपस्तुतिं राधाम**=आराधना कर सकें। यज्ञों के द्वारा ही तो प्रभु का पूजन होगा। प्रज्ञान से व शक्ति के सम्पादन से ही तो हम प्रभु के प्रिय बन पाएँगे। (२) वे प्रभु **भोजः**=सबका पालन करनेवाले हैं। **सूरिः**=सबको प्रेरणा देनेवाले हैं (षू प्रेरणे)। **यः**=जो प्रभु **अह्रयः**=अतिशयेन बुद्धिमान् हैं अथवा शुद्ध होने से लज्जाशून्य हैं।

भावार्थ–वे प्रभु पालन करनेवाले, प्रेरणा देनेवाले व अतिशयेन बुद्धिमान् हैं। इस प्रभु का हम 'यज्ञों, शक्तियों व प्रज्ञानों' के द्वारा आराधन करें।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—भुरिगनुष्टुपङ्क **स्वरः**—गान्धारःङ्क

भूरिभिः, बर्हिष्मद्भिः, त्रिऋषभिः

भूरिभिः समह ऋषिभिर्बर्हिष्मद्भिः स्तविष्यसे। यदित्थमेकमेकमिच्छर वत्सान्पराददः ॥ १४ ॥

(१) हे **समह**=समानरूप से सबसे पूज्य प्रभो! आप **भूरिभिः**–(भृ धारणपोषणयोः) धारण व पोषण करनेवाले, **बर्हिष्मद्भिः**=वासनाशून्य हृदयोंवाले **ऋषिभिः**=तत्त्वद्रष्टा पुरुषों से **स्तविष्यसे**=स्तुति किये जाते हैं। (२) **यत्**=क्योंकि हे **शर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! आप **इत्थम्**=इस प्रकार–स्तवन किये जाने पर **वत्सान्**=अपने इन प्रिय उपासकों को **एकम् एकम् इत्**=निश्चय से एक-एक वस्तु **परादद**ः=देते हैं। प्रभु का उपासक प्रभु से सब आवश्यक धनों को प्राप्त करता है। योगक्षेम को चलानेवाले प्रभु ही तो हैं।

भावार्थ–उपासक वह है जो शरीर का ठीक पालन व पोषण करे, हृदय को वासना-शून्य बनाए, मस्तिष्क में ऋषितुल्य ज्ञानवाला हो। प्रभु इन वत्सों को सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—पुरुहन्माङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—निचृदुष्णिक्ङ्क स्वरः—ऋषभःङ्क

कर्णगृह्या 'त्रिभ्यः'

कर्णगृह्या मघवा शौरदेव्यो वत्सं नस्त्रिभ्य आनयत्। अजां सूरिर्न धातवे॥ १५॥

(१) **मघवा**=ऐश्वर्यशाली, **शौरदेव्यः**=(शूरश्च असौ देवश्च, स्वार्थे ष्यञ्) शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला, प्रकाशमय प्रभु **नः**=हमें **कर्णगृह्या**=कानों से पकड़कर **त्रिभ्य आनयत्**='ज्ञान, कर्म व उपासना' इन तीनों के लिए प्राप्त कराता है। उचित दण्ड देता हुआ वह प्रभु हमें ठीक मार्ग से चलाकर मस्तिष्क में ज्ञानसम्पन्न, हाथों में यज्ञादि कर्मोंवाला तथा हृदय में उपासनावाला बनाता है। (२) प्रभु हमें इन तीनों के लिए इस प्रकार प्राप्त करता हैं **न**=जैसे **सूरिः**=एक समझदार व्यक्ति **धातवे**=दूध पीने के लिए **वत्सं**=मेमने को (बच्चे को) **अजां**=बकरी को प्राप्त कराता है। उस विद्वान् को वत्स से वैर नहीं होता। इसी प्रकार प्रभु भी हमें हित की भावना से ही कानों में पकड़कर 'ज्ञान' आदि की ओर ले चलते हैं।

भावार्थ–प्रभु मघवा हैं, शौरदेव्य हैं। वे हमें कानों से पकड़कर 'ज्ञान, कर्म व उपासना' की ओर ले चलते हैं।

ज्ञान, कर्म व उपासना में चलता हुआ यह 'सुदीति' उत्तम दीप्तिवाला बनता है (दी-to shine) यह सबके लिए सुखों का सेचन करनेवाला 'पुरुमीढ' होता है। यह प्रार्थना करता है कि–

७१. [एकसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरःङ्क देवता—अग्निःङ्क छन्दः—विराड् गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

'अरातेः, द्विषः' पाहि

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः। उत द्विषो मर्त्यस्य॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **नः**=हमें **महोभिः**–तेजस्विताओं के द्वारा–हमारे में तेजस्विता का स्थापन करके **विश्वस्याः**=सबके अन्दर प्रवेश कर जानेवाली (विशति) **अरातेः**= अदानवृत्ति से **पाहि**=बचाइए। तेजस्वी बनकर हम कृपणता से ऊपर उठें। तेजस्वी सदा दानशूर होता है। (२) **उत**=और हे प्रभो! **मर्त्यस्य**=मनुष्यमात्र के प्रति **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं से भी हमें (पाहि) बचाइए। हम किसी के प्रति द्वेषवाले न हों।

भावार्थ–प्रभु का स्मरण हमें तेजस्वी बनाए। तेजस्विता हमें अदानवृत्ति व द्वेष की भावनाओं से दूर करे।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरःङ्क देवता—अग्निःङ्क छन्दः—निचृद् गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

'पौरुषेय मन्यु' से अनाक्रान्त

नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात। त्वमिदसि क्षपावान्॥ २॥

(१) हे **प्रियजात**=(प्रियेषु जातः) यज्ञादि द्वारा आपका प्रीणन करनेवालों में प्रादुर्भूत होनेवाले प्रभो! **पौरुषेय मन्युः**=पुरुषों में आ जानेवाला क्रोध **हि**=निश्चय से **वः**=आपके उपासकों को **नहि ईशे**=अपने अधीन नहीं कर लेता–क्रोध उनका स्वामी नहीं बन जाता। (२) **त्वम् इत्**=आप ही वस्तुतः **क्षपावान् असि**=सब काम–क्रोध आदि शत्रुओं को परे फेंकनेवाले हैं। आप ही इन्हें हमारे से दूर करते हैं।

भावार्थ–प्रभु का उपासन हमें क्रोध के आक्रमण से बचाए।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

उर्जोनपात्+भद्रशोचे

स नो विश्वेभिर्देवेभिरूर्जो नपाद्भद्रशोचे। रयिं देहि विश्ववारम्॥ ३॥

(१) हे **ऊर्जोनपात्**=शक्ति को न गिरने देनेवाले **भद्रशोचे**=कल्याणकर दीप्तिवाले प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमें **विश्वेभिः देवेभिः**=सब दिव्यगुणों के साथ **रयिं**=धन को **देहि**=दीजिए, जो धन **विश्ववारम्**=सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त करानेवाला है। (२) हम प्रभु का उपासन करेंगे तो प्रभु के अनुग्रह से जहाँ शक्ति को प्राप्त करेंगे, वहाँ साथ ही कल्याणकर दीप्ति को प्राप्त करनेवाले बनेंगे। यह शक्ति व दीप्ति हमें दिव्य- गुणों के साथ वरणीय धन को प्राप्त कराएगी।

भावार्थ–प्रभु शक्ति को न गिरने देनेवाले व कल्याणकर दीप्ति को प्राप्त करानेवाले हैं। इनको प्राप्त करके हम दिव्यगुणों व वरणीय धनों को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अरातयः रायो न युवन्त

न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः। यं त्रायसे दाश्वांसम्॥ ४॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **तं मर्तम्**=उस मनुष्य को **अरातयः**=शत्रु **रायः**=धन से **न युवन्त**=पृथक् नहीं कर पाते, **यं**=जिस **दाश्वांसम्**=दानशील को आप **त्रायसे**=रक्षित करते हैं। (२) हम दाश्वान् बनें। दानशील पुरुष सदा प्रभु का प्रिय होता है, क्योंकि यह धन के प्रति आसक्तिवाला नहीं होता। हम प्रभु के प्रिय होंगे तो कोई भी हमें धनों से पृथक् न कर पाएगा।

भावार्थ–दानशील व्यक्ति प्रभु से रक्षण को प्राप्त करता है। इसे कोई भी ऐश्वर्य से पृथक् करनेवाला नहीं होता।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

गोषु गन्ता

यं त्वं विप्र मेधसातावग्ने हिनोषि धनाय। स तवोती गोषु गन्ता॥ ५॥

(१) हे **विप्र**=विशेषरूप से हमारा पूरण करनेवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **यं**=जिस भी व्यक्ति को **त्वं**=आप **मेधसातौ**=यज्ञों की प्राप्ति के निमित्त **धनाय हिनोषि**=धन के लिए प्रेरित करते हैं। **सः**=वह **तव ऊती**=आपके रक्षणों के द्वारा **गोषु गन्ता**=ज्ञान की वाणियों में गतिवाला होता है। (२) हम प्रभु की उपासना करते हैं तो प्रभु हमें यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त करते हैं। उन यज्ञादि के लिए आवश्यक धनों को भी प्राप्त कराते हैं। यह उपासक धनों का यज्ञों में विनियोग करता हुआ विषयों में नहीं फंसता और उत्कृष्ट ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करता है।

भावार्थ–प्रभु उपासक को यज्ञों के लिए धनों की कमी नहीं होने देते। प्रभु से रक्षित हुआ-हुआ यह व्यक्ति ज्ञान की वाणियों की ओर चलता है।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

वस्यः अच्छ

त्वं रयिं पुरुवीरमग्ने दाशुषे मर्ताय। प्र णो नय वस्यो अच्छ॥ ६॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वं**=आप **दाशुषे मर्ताम्**=दाश्वान्–दानशील–मनुष्य के लिए **पुरुवीरं**=पालक व पूरक वीरता से युक्त **रयिं**=धन को अथवा वीर सन्तानोंवाले धन को प्राप्त कराते

हैं। (२) हे प्रभो! आप **नः**=हमें भी **वस्यः**=उत्कृष्ट धन की **अच्छ**=ओर प्रयाण=प्रकर्षेण ले चलिये।

भावार्थ–हम दाश्वान् (दानशील) बनें। प्रभु हमें वीर सन्तानोंवाले धन को प्राप्त कराएँगे। प्रभु सदा हमें प्रशस्त धन की ओर ले चलें।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'अघायते दुराध्ये' मा परादाः

उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः। दुराध्ये३ मर्ताय॥ ७॥

(१) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ व सर्वधन प्रभो! आप **नः**=हमें **उरुष्य**=रक्षित करिये। (२) आप हमें **अघायते**=पाप की इच्छावाले **दुराध्ये**=दुष्ट ध्यानवाले–दुर्विचिन्तक **मर्ताय**=पुरुष के लिए **मा परादाः**=मत दे डालिये। ऐसे पुरुषों के वश में हमें न करिये।

भावार्थ–प्रभु की उपासना से इस जीवन-संग्राम में हम दुष्ट विचारों से बचें तथा दुष्ट विचारवालों के वशीभूत भी न हो जायें।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु की देन को कोई नहीं रोक पाता

अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत। त्वमीशिषे वसूनाम्॥ ८॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **तं देवस्य रातिम्**=आप देव के दान को **अदेवा**=कोई भी अदेव-दानवीवृत्तिवाला पुरुष **माकिः युयोत**=हमारे से पृथक् न करे। हम प्रभु को दानों को सदा प्राप्त करते रहें। (२) हे प्रभो! **त्वं**=आप ही वसूनाम् **ईशिषे**=सब वसुओं के ईश हैं। आप ही सब वसुओं के देनेवाले हैं। देनेवाले आपको रोक ही कौन सकता है।

भावार्थ–प्रभु की देन को कोई भी अदेव वृत्तिवाला पुरुष विहत नहीं कर सकता। प्रभु ही सब वसुओं के ईश हैं।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'माहिनस्य वस्वः' उपमासि

स नो वस्व उप मास्यूर्जो नपान्माहिनस्य। सखे वसो जरितृभ्यः॥ ९॥

(१) हे **ऊर्जो नपात्**=शक्ति को न गिरने देनेवाले प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमारे लिए **माहिनस्य**=महत्त्वपूर्ण–हमारे जीवन को महनीय बनानेवाले **वस्वः**=धन को **उपमासि**=समीप निर्मित करते हैं अर्थात् प्राप्त कराते हैं। (२) हे **सखे**=मित्र **वसो**=सबको बसानेवाले प्रभो! **जरितृभ्यः**=स्तोताओं के लिए आप धन को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ–प्रभु स्तोता को महनीय धन प्राप्त कराते हैं, वह धन जो उसे शक्ति से भ्रष्ट नहीं होने देता।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'गिरः+यज्ञासः'

अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम्। अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये॥ १०॥

(१) **नः गिरः**=हमारी ज्ञानपूर्वक उच्चारित स्तुतिवाणियाँ **शीरशोचिषं**=काम-क्रोध आदि के विनाशक ज्ञानदीप्तिवाले **दर्शतम्**=दर्शनीय प्रभु की **अच्छा**=ओर **यन्तु**=जाएँ–प्राप्त हों। हम प्रभु

का स्तवन करें। (२) **नमसा**=नमन के साथ **यज्ञासः**=यज्ञ भी उस **पुरुवसुं**=पालक व पूरक धनोंवाले **पुरुप्रशस्तं**=अतिशयेन प्रशस्त प्रभु को **अच्छा (यन्तु)**=प्राप्त हों, अर्थात् हम नमन के साथ यज्ञों के द्वारा प्रभु को प्राप्त करें। **ऊतये**=ये प्रभु ही हमारे रक्षण के लिए हैं। हम प्रभु का उपासन करते हैं, प्रभु हमारा रक्षण।

भावार्थ—स्तुतिवाणियों, यज्ञों व नमन के द्वारा हम प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमें सब आवश्यक धनों को (पुरुवसु) प्राप्त कराके तथा प्रशस्त जीवनवाला (पुरुप्रशस्त) बनाकर रक्षित करेंगे।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

द्विता, अमृतः होता मन्द्रतमः

अ॒ग्निं सू॒नुं सह॑सो जा॒तवे॑दसं दा॒नाय॒ वार्या॑णाम्।
द्वि॒ता यो भू॒दमृ॑तो॒ मर्त्ये॒ष्वा होता॑ म॒न्द्रत॑मो वि॒शि॥ ११॥

(१) हमारी स्तुतिवाणियाँ (**गिरः यन्तु**=) उस प्रभु की ओर प्राप्त हों जो **अग्निं**=अग्रणी हैं, **सहसः सूनुं**=बल के पुत्र–पुतले–पुञ्ज हैं, **जातवेदसं**=सर्वज्ञ व सर्वधन हैं। उस प्रभु को हमारी स्तुतिवाणियाँ प्राप्त हों, जिससे प्रभु **वार्याणाम् दानाय**=वरणीय धनों के देने के लिए हैं। (२) उस प्रभु का हम स्तवन करें **यः**=जो **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **द्विता**=(द्वौ तनोति) दो का, ज्ञान व शक्ति का विस्तार करनेवाले **भूत्**=होते हैं। वे प्रभु **विशि**=सब प्रजाओं में **आ होता**=समन्तात् देनेवाले होते हैं, तथा **अमृतः**=नीरोगता को देनेवाले व **मन्द्रतमः**=(मादयितृतमः) अतिशयेन आनन्दित करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमें ज्ञान देंगे व शक्ति देंगे। प्रभु होता, अमृत व मन्द्रतम हैं।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

क्षैत्राय साधसे

अ॒ग्निं वो॑ देवय॒ज्यया॒ग्निं प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे। अ॒ग्निं धी॒षु प्र॑थ॒मम॒ग्निमर्व॑त्य॒ग्निं क्षैत्रा॑य॒ साध॑से॥ १२॥

(१) **वः**=तुम्हारे **देवयज्यया**=दिव्यगुणों के संगतिकरण के हेतु से **अग्निं**=उस अग्रणी प्रभु को स्तुत करता हूँ। इस **प्रयति अध्वरे**=चल रहे जीवनयज्ञ में प्रभु का स्तवन करता हूँ। वस्तुतः प्रभु स्तवन ही जीवन को यज्ञमय बनाता है। (२) **धीषु**=बुद्धियों के निमित्त उस **प्रथमं अग्निं**=सर्वमुख्य प्रभु को स्तुत करता हूँ 'धियो यो नः प्रचोदयात्'। **अर्वति**=शत्रुओं के संहार के निमित्त **अग्निं**=उस अग्रणी प्रभु को स्तुत करता हूँ। **क्षैत्राय**=इस शरीर–क्षेत्र सम्बन्धी **साधसे**=साधना के लिए– शरीर को पूर्णरूप से स्वस्थ रखने के लिए **अग्निं**=उस अग्रणी प्रभु को स्तुत करता हूँ।

भावार्थ—प्रभु का स्तवन ही हमें दिव्यगुणों से सम्पृक्त करेगा, इसी से जीवन यज्ञमय बनेगा, बुद्धि प्रशस्त होगी, शत्रुओं का संहार होगा व शरीररूप क्षेत्र की साधना पूर्ण होगी।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

वसुं-सन्तं-तनूपाम्

अ॒ग्निरि॒षां स॒ख्ये द॑दातु न॒ ईशे॒ यो वार्या॑णाम्।
अ॒ग्निं तो॒के तन॑ये॒ शश्व॑दीमहे॒ वसुं॒ सन्तं॑ तनू॒पाम्॥ १३॥

(१) **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु **सख्ये**=मित्रभूत जीव के लिए **इषां ददातु**=प्रेरणा को प्राप्त कराएँ। प्रभु की प्रेरणा ही हमें जीवनमार्ग से भ्रष्ट होने से बचाएगी। वे प्रभु **यः**=जो **नः**=हमारे लिए **वार्याणाम्**=वरणीय वस्तुओं के **ईशे**=ईश हैं। (२) **अग्निं**=उस अग्रणी प्रभु को **तोके**=पुत्रों के निमित्त तथा **तनये**=पौत्रों के निमित्त **शश्वद्**=सदा **ईमहे**=याचना करते हैं। उस प्रभु को जो **वसुं**=सबको बसानेवाले हैं। **सन्तम्**=सत् हैं तथा **तनूपाम्**=हमारे शरीरों का रक्षण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें प्रेरणा देते हैं, वरणीय धनों को प्राप्त कराते हैं, पुत्रों व पौत्रों का रक्षण करते हैं, बसानेवाले हैं, सत् हैं और हमारे शरीरों का रक्षण करनेवाले हैं।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सुदीतये छर्दिः

अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम्। अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः॥ १४॥

(१) **अग्निम्**=उस अग्रणी प्रभु को **अवसे**=रक्षण के लिए **गाथाभिः**=स्तुतिवाणियों के द्वारा **ईडिष्व**=उपासित कर। हे **पुरुमीढ**=खूब ही शक्ति का अपने में सेचन करनेवाले उपासक! तू **राये**=ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए **शीरशोचिषं**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाली ज्ञानदीप्तिवाले **श्रुतं**=उस प्रसिद्ध **अग्निम्**=अग्रणी प्रभु को उपासित कर। (२) हे **नरः**=मनुष्यो! **अग्निः**=ये अग्रणी प्रभु **सुदीतये**=उत्तम दीप्तिवाले नर के लिए—खूब ज्ञान को प्राप्त करनेवाले मनुष्य के लिए **छर्दिः**—शरणस्थान व गृह हैं। सुदीति को वे प्रभु शरण देनेवाले हैं।

भावार्थ—हम स्तुतिवाणियों से प्रभु का अर्चन करें। प्रभु ही हमें ऐश्वर्य प्राप्त कराते हैं। प्रभु ही ज्ञानदीप्तिवाले के लिए शरणस्थान हैं।

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

वस्तुः ऋषूणाम्

अग्निं द्वेषो योतवै नो गृणीमस्यग्निं शं योश्च दातवे।
विश्वासु विक्ष्ववितेव हव्यो भुवद्वस्तुर्ऋषूणाम्॥ १५॥

(१) **अग्निं**=उस परमात्मा को **गृणीमसि**—हम स्तुत करते हैं, जिससे **नः द्वेषः योतवै**=हमारे से द्वेष की भावनाओं को वे दूर करें। **अग्निं**=उस परमात्मा को हम **शं**=शान्ति **च**=तथा **योः**=भयों के यावन को देने के लिए पुकारते हैं। (२) वे प्रभु **विश्वासु विक्षु**=सब प्रजाओं में **अविता इव**=रक्षक के समान **हव्यः भुवत्**=पुकारने योग्य होते हैं। वे प्रभु **ऋषूणाम्**=तत्त्वद्रष्टा पुरुषों के **वस्तुः**=उत्तम निवास का कारण होते हैं।

भावार्थः—प्रभु का उपासन हमें 'निर्द्वेष-शान्त व निर्भय' बनाता है। प्रभु हमारे रक्षक हैं, तत्त्वद्रष्टाओं के वस्तु (निवासक) हैं।

गतमन्त्र के अनुसार 'निर्द्वेष, शान्त व निर्भय' बनकर हम 'हर्यत' बनते हैं—उत्तम गति व कान्तिवाले। प्रभु का स्तवन करने से 'प्रागाथ' होते हैं। 'हर्यत प्रागाथ' ही अगले सूक्त के ऋषि हैं :—

७२. [द्विसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अध्वर्यु

हविष्कृणुध्वमा गमदध्वर्युर्वनते पुनः। विद्वाँ अस्य प्रशासनम्॥ १॥

(१) हे मनुष्यो! **हविः कृणुध्वम्**=हवि को सम्पादित करो-जीवन में त्यागपूर्वक अदन वाले बनो। (हु दानादनयोः)। प्रभु का वास्तविक पूजन इस हवि के द्वारा ही होता है। **'कस्मै देवाय हविषा विधेम'**। हवि के होने पर ही **आगमत्**=वे प्रभु आते हैं। प्रभु की प्राप्ति यज्ञशील व्यक्ति को ही होती है। (२) **पुनः**=फिर **अध्वर्युः**=यज्ञशील व्यक्ति **अस्य**=इस प्रभु की **प्रशासनं**=आज्ञा को **विद्वान्**=जानता हुआ **वनते**=यज्ञ का संभजन करता है-यज्ञों को करता हुआ ही हो तो वह प्रभु का उपासन कर पाता है **'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'**।

भावार्थ-हम हवि के द्वारा प्रभु का उपासन करें।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

होतृत्व व प्रभु की मित्रता

नि तिग्ममभ्यं१ंशुं सीदद्धोता मनावधि। जुषाणो अस्य सख्यम्॥ २॥

(१) यह **होता**=यज्ञशील पुरुष **तिग्मं अंशुम् अभि**=अग्नि की तेज़ दीप्ति (ज्वाला) के सामने **मनौ अधि**=उस ज्ञानपुञ्ज प्रभु के अधिष्ठतृत्व में **निसीदत्**=आसीन होता है। प्रभुस्मरण करता हुआ यज्ञ को करता है। (२) यह होता **अस्य**=इस प्रभु की **सख्यम्**=मित्रता का **जुषाणः**=प्रीतिपूर्वक सेवन करता है। यज्ञ के द्वारा ही तो हम प्रभु के प्रिय बन पाते हैं।

भावार्थ-हम प्रभु का उपासन करते हुए अग्नि में आहुति देनेवाले बनें। यह होता बनना ही हमें प्रभु का प्रिय बनाएगा।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गृभ्णन्ति जिह्वया ससम्

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया। गृभ्णन्ति जिह्वया ससम्॥ ३॥

(१) **जने अन्तः**=प्रत्येक उत्पन्न होनेवाले व्यक्ति के अन्दर वर्तमान **तं**=उस **रुद्रं**=दुःखों के द्रावक प्रभु को **मनीषया**=बुद्धि के द्वारा **इच्छन्ति**=प्राप्त करना चाहते हैं। वे प्रभु **परः**=(परस्तात्) इन्द्रियों से परे हैं। इन्द्रियों का विषय नहीं बनते। (२) इस **ससम्**=सबके अन्दर प्रसुप्त प्रभु को **जिह्वया**=जिह्वा से उच्चारित स्तुति के द्वारा **गृभ्णन्ति**=ग्रहण करते हैं। प्रभु का ज्ञान स्तोता को ही हो पाता है।

भावार्थ-प्रभु हृदयदेश में शयन करते हैं। वहाँ प्रभु का स्तोता लोग बुद्धि के द्वारा ग्रहण करते हैं।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

दृषद्-वध

जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनम्। दृषदं जिह्वयावधीत्॥ ४॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार प्रभु का स्तवन करने पर **जामि धनुः**=हमें खा जानेवाला कामदेव का धनुष् **अतीतपे**=अतिशयेन तप्त होता है, अर्थात् कामदेव का धनुष् हमें विद्ध नहीं कर पाता। ऐसा होने पर **वयोधाः**=आयुष्य का धारण करनेवाला सोम **वयनम् अरुहत्**=इस शरीरगृह में आरोहण करता है, अर्थात् सोम की ऊर्ध्वगति होती है। (२) यह स्तोता **जिह्वया**=जिह्वा प्रभव स्तुति के द्वारा **दृषदं**=पाषाण तुल्य दृढ़ वासनाओं को **अवधीत्**=विनष्ट करता है। वासना 'दृषत्' है (दृ+सद्)-हमारा विदारण करके भी बनी रहती है। स्तोता ही इसका वध कर पाता है।

भावार्थ–प्रभुस्तवन से कामदेव का धनुष सन्तप्त होकर भस्म हो जाता है। शरीर में सोम की ऊर्ध्वगति होती है। स्तुतिद्वारा वासनाओं का वध होता है।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

चरन्, वत्सः, रुशन्

चरन्वत्सो रुशन्निह निदातारं न विन्दते। वेति स्तोतव अम्ब्यम्॥ ५॥

(१) **चरन्**=खूब गतिशील होता हुआ **वत्सः**–प्रभु के नामों का उच्चारण करनेवाला (वदति) **इह**–इस जीवन में **रुशन्**=ज्ञान से चमकता हुआ होता है–शुभ्र जीवनवाला होता है। यह **निदातारं**=(दाप् लवने) काटनेवाली वासनाओं को **न विन्दते**=नहीं प्राप्त करता है। इसे वासनाएँ विदीर्ण नहीं कर पातीं। (२) यह वत्स **स्तोतवे**=स्तुति के लिए **अम्ब्यम्**='ज्ञान, कर्म व उपासना' की त्रिविध वाणियों का उच्चारण करनेवाले प्रभु को **वेति**=(कामयते) चाहता है। प्रभु का स्तवन ही तो इसे वासनाओं से विदीर्ण नहीं होने देता।

भावार्थ–शरीर में 'चरन्', मन या वाणी में 'वत्स', मस्तिष्क में 'रुशन्' बनते हुए हम प्रभु के स्तवन की ही कामना करें। ऐसा होने पर हमें वासनाएँ विदीर्ण न कर पाएँगी।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

बृहत् योजनम्

उतो न्वस्य यन्महदश्वावद्योजनं बृहत्। दामा रथस्य ददृशे॥ ६॥

(१) **उत**–और **उ**–निश्चय से **नु**=अब **अस्य**=इस स्तोता का **यत्**=जो **महत्**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण **अश्वावत्**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाला **बृहत् योजनम्**=वृद्धि का कारणभूत योजन है–शरीररथ में इन्द्रियाश्वों का जोतना है वह **ददृशे**–दिखता है। (२) यह योजन **रथस्य**=शरीररथ का **दामा**–एक महान् बन्धन है। यह बन्धन ही इस रथ को विषयों के पत्थरों से टकराकर टूटने से बचाता है।

भावार्थ–स्तोता इन्द्रियाश्वों को शरीररथ में इस प्रकार जोतता है कि यह रथ आगे और आगे बढ़ता चलता है और विषयों से टकराकर चूर-चूर नहीं हो जाता।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

दुहन्ति सप्त एकाम्

दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः। तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे॥ ७॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार शरीररथ का ठीक से योजन होने पर **सप्त**=शरीररथ सात ऋषि 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' कर्ण आदि **एकाम्**=इस अद्वितीय वेदधेनु का **दुहन्ति**–दोहन करते हैं। सातों इन्द्रियाँ ज्ञान को प्राप्त करानेवाली होती हैं। (२) वेदधेनु का दोहन होने पर इस समय **द्वा**=दो–प्राण और अपान **पञ्च**=पाँच ज्ञानेन्द्रियों को **सिन्धोः**=ज्ञानसमुद्र के **तीर्थे**=घाट पर **स्वरे अधि**=उस स्वयं राजमान प्रभु के **उपसृजतः**=समीप संसृष्ट करते है। प्राणसाधना के द्वारा इन्द्रियाँ, विषयों में न जाकर प्रभुप्रवण होती हैं।

भावार्थ–हम कान आदि के द्वारा ज्ञान का वर्धन करें। प्राणसाधना द्वारा इन्द्रियों को प्रभुप्रवण करें।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ देवता—अग्निर्हवींषि वा॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

विवस्वान् के कोश का आच्यवन

आ दुशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत्। खेदया त्रिवृता दिवः॥ ८॥

(१) **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **दशभिः**=दसों इन्द्रियों के द्वारा **विवस्वतः कोशम्**=प्रकाशमय प्रभु के ज्ञान के कोश को **आ अचुच्यवीत्**=अपने अन्दर क्षरित करता है। (२) **त्रिवृतता**=(त्रिषु वर्तते) प्रकृति, जीव, परमात्मा में वर्तनेवाली **दिवः**=ज्ञान की **खेदया**=रश्मि के हेतु से यह जितेन्द्रिय पुरुष विवस्वान् के कोश को अपने में क्षरित करता है।

भावार्थ—जितेन्द्रिय बनकर हम दसों इन्द्रियों से ज्ञान का वर्धन करनेवाले बनें। हमें प्रकृति, जीव व परमात्मा के ज्ञान की रश्मियाँ प्राप्त हों।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ देवता—अग्निर्हवींषि वा॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

होतारः मध्वा अञ्जते

परि त्रिधातुरध्वरं जूर्णिरेति नवीयसी। मध्वा होतारो अञ्जते॥ ९॥

(१) **त्रिधातुः**='वात-पित्त-कफ' से धारण किया जानेवाला यह शरीर **नवीयसी**=नवीन-स्तुत्य-शक्ति से **जूर्णिः**=वेगवान् होकर **अध्वरं परि एति**=यज्ञात्मक कर्मों में गतिवाला होता है। (२) **होतारः**=त्यागपूर्वक अदन करनेवाले लोग **मध्वा**=माधुर्य से **अञ्जते**=जीवन को अलङ्कृत करते हैं।

भावार्थ—यदि जीवन को शक्तिशाली बनाकर हम यज्ञों में प्रवृत्त होते हैं तो जीवन को मधुर बना पाते हैं।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ देवता—अग्निर्हवींषि वा॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'उच्चाचक्रं नीचीनबारम्' अवतम्

सिञ्चन्ति नमसावतमुच्चाचक्रं परिज्मानम्। नीचीनबारमक्षितम्॥ १०॥

(१) यह शरीर आत्मा का निवास स्थान होने से रक्षणीय है, सो 'अवत' है। इसमें मूलाधार चक्र से ऊपर उठते-उठते हम सहस्रार चक्र तक पहुँचते हैं। ये चक्र आठ हैं 'अष्टचक्रा नवद्वारा०'। 'शिश्न व गुदा' नामक दो मलद्वार इसमें नीचे की ओर हैं, सो यह 'उच्चाचक्र' व 'नीचीनवद्वार' है। विविध गतियोंवाला होने से यह 'परिज्मा' है। (२) **अवतम्**=रक्षणीय इस शरीर को **नमसा**=प्रभु के प्रति नमन के द्वारा **सिञ्चन्ति**=शरीर में सुरक्षित सोमशक्ति से **सिञ्चन्ति**=सींचते हैं। यह शक्ति ही इस शरीर का रक्षण करती है। (३) यह शरीर **उच्चाचक्रम्**=एक के ऊपर दूसरा, इस प्रकार ऊपर और ऊपर आठ चक्रोंवाला है। **परिज्मानम्**=चारों ओर गतिवाला है। **नीचीनबारम्**=नीचे अधोमुख दो मलद्वारोंवाला है और **अक्षितम्**=न क्षीण होनेवाला व पुष्ट है।

भावार्थ—शरीर को हमें शक्ति के रक्षण के द्वारा परिपुष्ट रखना है। निवासस्थान के रूप में यह रक्षणीय है। इसमें आठ चक्र हैं। नीचे दो मलद्वार हैं। यह समन्तात् गतिवाला है-गति के धारण से ही इसमें शक्ति बनी रहती है।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ देवता—अग्निर्हवींषि वा॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

जीवन्मुक्त का मधुर हृदय

अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु। अवतस्य विसर्जने॥ ११॥

(१) **अद्रयः**=(आद्रियमाणाः) प्रभु का पूजन (worship) करनेवाले **अभि+आरम् इत्**=उस प्रभु की ओर जाकर ही **अवतस्य**–इस शरीर के **विसर्जने**=विसर्जन में समर्थ होते हैं। शरीर को वे ही छोड़ पाते हैं–इस जन्म-मरण के चक्र से वे ही छूट पाते हैं, जो प्रभु का उपासन करते हैं। (२) इन उपासकों के **पुष्करे**=हृदयकमल में अथवा हृदयान्तरिक्ष में **मधुः निषिक्तम्**=मधु सिक्त हुआ हुआ होता है, अर्थात् इनके हृदय माधुर्य से परिपूर्ण होते हैं। एक उपासक राग-द्वेष से शून्य हृदयवाला होता हुआ सबके प्रति माधुर्य को लिए हुए होता है।

भावार्थ–उपासक का हृदय सबके प्रति मधुरता से परिपूर्ण होता है। ये जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

मही यज्ञस्य रप्सुदा

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा। उभा कर्णा हिरण्यया॥ १२॥

(१) हे **गावः**–वेदवाणीरूप गौओ! **अवतं**=इस आत्मा के निवासस्थानभूत और अतएव रक्षणीय शरीर का **उपावत**–समीपता से रक्षण करो। हमें इन वेदवाणियों का सदा सान्निध्य प्राप्त हो और हम इनके अनुसार जीवन को बनाते हुए इस शरीर का रक्षण कर पाएँ। (२) **मही**–यह पृथिवी **यज्ञस्य**=यज्ञ के **रप्सु-दा**=प्रारम्भ करने की कामनावाले के लिए फल को देनेवाली है। हम यज्ञशील बनें और हमारे लिए यह पृथिवी सब उत्कृष्ट कामों का–काम्य पदार्थों का–दोहन करनेवाली होगी। (३) **उभा कर्णा हिरण्यया**=हमारे दोनों कान ज्योतिर्मय बनें। वेदवाणियों को सुनते हुए वे प्रकाश से परिपूर्ण हों। (४) निरुक्त २.११ के अनुसार 'मही' का अर्थ गौ है। यह वेदवाणीरूप गौ **यज्ञस्य**=यज्ञ का **रप्-सु-दा**=मन्त्रशब्दों के द्वारा सम्यक् उपदेश देनेवाली हैं। इस उपदेश से ही हमारे दोनों कान ज्योतिर्मय बनते हैं।

भावार्थ–वेदवाणीरूप गौएँ हमारे शरीर का रक्षण करती हैं। यह वेदवाणी यज्ञों का उत्तम उपदेश देती हुई हमारे कानों को ज्योतिर्मय बनाती हैं।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

रसा दधीत वृषभम्

आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम्। रसा दधीत वृषभम्॥ १३॥

(१) **सुते**=सोम का सम्पादन होने पर **श्रियं**=श्री को–शोभा को **आसिञ्चत**=चारों ओर सिक्त करो। यह सोम ही शरीर में सर्वत्र श्री का कारण बनता है। (२) इस सोम के रक्षण के होने पर **रसा**=यह पृथिवी उस पुरुष का **दधीत**=धारण करे, जो **रोदस्योः अभिश्रियम्**=द्यावापृथिवी में, मस्तिष्क व शरीर में सर्वतः श्रीसम्पन्न है–जिसका मस्तिष्क सूर्य की तरह ज्ञान ज्योति-वाला है तथा शरीर पृथिवी की तरह दृढ़ है। तथा **वृषभं**=जो शक्तिशाली है अथवा सबके लिए सुखों का सेचन करनेवाला है।

भावार्थ–सोमरक्षण से मस्तिष्क व शरीर दोनों ही श्रीसम्पन्न बनते हैं।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ते जानत स्वम् ओक्यम्

ते जानत स्वमोक्यं१ सं वत्सासो न मातृभिः। मिथो नसन्त जामिभिः॥ १४॥

(१) **ते**=वे–गतमन्त्र के अनुसार सोम का रक्षण करनेवाले पुरुष **स्वम्**=अपने **ओक्यं**=शरीररूप गृह में ही निवास करनेवाले उस परमात्मतत्त्व को **जानत**=जानते हैं और उस प्रभु के साथ इस प्रकार संगत होते हैं **न**=जैसे **वत्सासः**=बछड़े **मातृभिः सम्** (गच्छन्ते)=माताओं के साथ। बछड़ा गौ के साथ, ये उपासक प्रभु के साथ। (२) ये प्रभु के द्रष्टा लोग **जामिभिः**=सब बन्धुजनों के साथ **मिथः न सन्त**=परस्पर मिलकर गतिवाले होते हैं। किसी के प्रति इनका वैर-विरोध व विद्वेष नहीं होता।

भावार्थ–सोमी पुरुष अपने अन्दर प्रभु का दर्शन करते हैं और सबके साथ मिलकर चलते हैं।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

इन्द्रे, अग्नौ

उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि। इन्द्रे अग्ना नमः स्वः॥ १५॥

(१) **स्रक्वेषु**=(सृज्=निर्माण) शरीरावयवों के निर्माणों के निमित्त अर्थात् शरीर की कमी को दूर करने के लिए **उपबप्सतः**=प्रभु के उपासन के साथ भोजन करते हुए ये उपासक **दिवि**=प्रकाश में **धरुणं**=अपने को धारण **कृण्वते**=करते हैं। सदा ज्ञानप्रधान जीवन बिताने का प्रयत्न करते हैं। (२) **इन्द्रे**–उस सर्वशक्तिसम्पन्न प्रभु में तथा **अग्ना**=प्रकाशमय प्रभु में **नमः**=ये नमन वाले होते हैं तथा **स्वः**=प्रकाश को प्राप्त करते हैं। प्रभुनमन इनके हृदयों को पवित्र व वासनाशून्य बनाता है और परिणामतः ये सबल होते है। इस प्रभुनमन के द्वारा ही ये अन्तर्ज्ञान की ज्योति को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ–हम शरीरधारण के लिए ही भोजन करें–सदा प्रकाश में निवास करें। सर्वशक्तिमान् प्रभु के प्रति नमन करते हुए प्रकाशमय जीवन बिताएँ।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

इषम्, ऊर्जम्, सप्तपदीम्

अधुक्षत्पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः। सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः॥ १६॥

(१) **अरिः**=(ऋ गतौ) यह निरन्तर गतिशील उपासक **पिप्युषीम्**=आप्यायन करनेवाले–वर्धन करनेवाले अन्न को ही अपने में **अधुक्षत्**=प्रपूरित करता है। इस अन्न का सेवन करता हुआ यह **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को प्राप्त करता है। (२) यह (**अरि**=) क्रियाशील पुरुष **सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः**=सूर्य की सातों किरणों के सम्पर्क में रहता हुआ **सप्तपदीम्**='भूः भुव, स्व, महः, जनः, तपः, सत्यम्'–'स्वास्थ्य–ज्ञान–जितेन्द्रियता–हृदय की विशालता–विकास–तप व सत्य' रूप सात पदों को (**अधुक्षत्**)=प्रपूरित करता है।

भावार्थ–प्रभु के उपासक बनकर सूर्य किरणों के सम्पर्क में जीवन बिताते हुए हम उत्तम अन्न का सेवन करें और अपने अन्दर बल व प्राणशक्ति का दोहन करें। इस जीवन में हम 'स्वास्थ्य–ज्ञान–जितेन्द्रियता–उदारता–विकास–तप व सत्य' का धारण करें।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सोम का आदान=आतुर का भेषज

सोमस्य मित्रावरुणोदिता सूर आ ददे। तदातुरस्य भेषजम्॥ १७॥

(१) हे **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के दिव्यभावो! **सूरे उदिता**=सूर्य के उदय के निमित्त यह उपासक **सोमस्य आददे**=सोम का आदान करता है। शरीर में सोमशक्ति का रक्षण ही ज्ञान के सूर्य का उदय करता है। यह सोम ही तो ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। (२) **तद्**=यह सोम का पान ही **आतुरस्य भेषजम्**=रोगी की औषध है। सोमरक्षण द्वारा ही सब रोगों की चिकित्सा होती है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमें सोमरक्षण के योग्य बनाते हैं। इस सोमरक्षण से मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञान के सूर्य का उदय होता है तथा शरीरस्थ सब रोग विनष्ट होते हैं।

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ **देवता**—अग्निर्हवींषि वा॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

निधान्यं पदम्

उतो न्वस्य यत्पदं हर्यतस्य निधान्यम्। परि द्यां जिह्वयातनत्॥ १८॥

(१) **उत उ**—और निश्चय से **अस्य**=इस, गतमन्त्र के अनुसार, सोम का रक्षण करनेवाले **हर्यतस्य**—गतिशील व प्रभुप्राप्ति की कामनावाले पुरुष का **यत् पदं**=जो पद होता है वह **निधान्यम्**=उस विश्व के पर निधान को प्राप्त करानेवाला होता हे। यह अपने सब कर्मों को इस प्रकार करता है कि प्रभु की ओर बढ़ता चलता है। (२) यह **जिह्वया**=अपनी जिह्वा से **द्याम्**—ज्ञान को **परि अतनत्**=चारों ओर फैलानेवाला होता है। स्वयं जितेन्द्रियता से सोम का रक्षण करता हुआ ज्ञान को बढ़ाता है और ज्ञान का प्रसार करता है।

भावार्थ—हम प्रभु की ओर ही चलनेवाले बनें तथा ज्ञान का विस्तार करनेवाले हों।

यह गोपवन—ज्ञान की वाणियों का द्वारा पवित्रता को करनेवाला होता है। काम, क्रोध, लोभ से ऊपर उठ जाने से 'आत्रेय' होता है। 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इन सातों को संयमरज्जु से बाँधने वाला यह 'सप्तवध्रि' है। यह अश्विनौ का आराधन करता है—

७३. [त्रिसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उदीरावाम ऋतायते

उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम्। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ १॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **ऋतायते**=ऋत की कामनावाले पुरुष के लिए—सब बातें युक्त रूप में करनेवाले पुरुष के लिए **उद् ईराथाम्**=उत्कृष्ट गतिवाले होओ। प्राणसाधना ऋतायन् पुरुष के लिए—युक्ताहार-विहारवाले पुरुष के लिए—सब कर्मों में युक्तचेष्ट पुरुष के लिए उत्कर्ष को प्राप्त कराती है। हे प्राणापानो! आप **रथम्**=इस शरीररथ को **युञ्जाथाम्**=उत्कृष्ट इन्द्रियाश्वों से युक्त करो। **'प्राणायामैर्दहेद्दोषान्'**=प्राणायामों से इन्द्रियों के दोष दग्ध हो जाते हैं और उत्तम इन्द्रियाश्व शरीररथ को लक्ष्य की ओर ले चलनेवाले होते हैं। (२) हे प्राणापानो! **वाम्**=आपका **अवः**=रक्षण **सत्**=उत्तम है यह सदा **अन्ति भूतु**=हमें समीपता से प्राप्त हो। हम सदा प्राणसाधना में प्रवृत्त हुए-हुए शरीर का पालन (रोगों से बचाव) तथा मन का पूरण (वासनाओं से अनाक्रान्तत्व) कर सकें।

भावार्थ—ऋत की कामनावाला पुरुष प्राणसाधना से शरीररथ को उत्तम इन्द्रियाश्वों से युक्त करके उत्कर्ष की ओर ले चलता है। प्राणापानों का रक्षण उत्तम हैं।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

जवीयसा रथेन (लघुलम्)

निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ २॥

(१) **निमिषः चित् जवीयसा**=आँख की पलक से भी अधिक वेगवान् **रथेन**=शरीररथ से हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **आयातम्**=हमें प्राप्त होओ। प्राणसाधना के द्वारा शरीररथ में अद्भुत स्फूर्त उत्पन्न हो जाती है, लघुत्व आ जाता है। (२) हे प्राणापानो! **वाम् अवः सत्**=आपके द्वारा प्राप्त रक्षण उत्तम है। वह **अन्ति भूतु**=हमें समीपता से प्राप्त हो। हम सदा प्राणसाधनावाले हों।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा शरीररथ स्फूर्तवाला (शीघ्र गतिवाला) बनता है। इसमें लघुत्व उत्पन्न हो जाता है।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सोमरक्षण

उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ ३॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **अत्रये**='काम-क्रोध व लोभ' इन तीनों से ऊपर उठनेवाले के लिए **घर्मं**=शरीर में होनेवाली शक्ति को उष्णता को **हिमेन**=प्रभु के स्तुतिवचनों द्वारा उत्पन्न शान्ति से-बर्फ से-**उपस्तृणीत**=आच्छादित करो। इस सोमकणों में वासना का उबाल न पैदा हो जाए। (२) हे प्राणापानो! **वाम् अवः सत्**=आपका रक्षण उत्तम है। यह रक्षण **अन्ति भूतु**=हमारे समीप हो।

भावार्थ—प्राणसाधना से सोम (वीर्य) की शरीर में ऊर्ध्वगति होती है। वासनाओं के विनाश से सोम शान्त बना रहता है—उसमें उबाल नहीं आता।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

आरोग्य (दोषों पर आक्रमण)

कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ ४॥

(१) शरीर में सब इन्द्रियों का स्थान निश्चित है। परन्तु इन प्राणापान का स्थान अज्ञात ही है—सारे शरीर में ये विचरण करते हैं। '**कुह स्थः**'=हे प्राणापानो! आप कहाँ होते हो? नासिकाछिद्र से बाहर **कुह जग्मथुः**=कहाँ जाते हो? और **कुह**=कहाँ **श्येन इव**=बाज पक्षी के समान **पेतथुः**=आक्रमण करते हो? जैसे बाज़ अपने शिकार पर झपट्टा मारता है, इसी प्रकार ये प्राणापान शरीरस्थ दोषों पर आक्रमण करते हैं 'प्राणायामैर्दहेद्दोषान्'। (२) हे प्राणापानो! **वाम् अवः सत्**=आपका रक्षण उत्तम है। वह रक्षण **अन्ति भूतु**=हमें समीपता से प्राप्त हो।

भावार्थ—प्राणापान शरीरस्थ दोषों पर आक्रमण करते हैं। इस प्रकार प्राणसाधना से आरोग्य प्राप्त होता है।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभुप्रेरणा का श्रावण

यदद्य कर्हि कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम्। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ ५॥

(१) हे प्राणापानो! **यद्**=जब **अद्य**=आज **कर्हि चित्**=किसी समय **इमं हवम्**=इस हृदयस्थ

प्रभु की पुकार को **शुश्रूयातम्**=सुनते हो, तो **वाम्**=आपका यह **सत् अवः**=उत्तम रक्षण **अन्ति भूतु**=हमारे सदा समीप हो। (२) प्राणसाधना से हृदय की निर्मलता प्राप्त होती है और उस निर्मल हृदय में प्रभु की प्रेरणा सुनाई पड़ती है। यह प्रभुप्रेरणा हमारा मार्गदर्शन करती हुई हमारा रक्षण करती है।

भावार्थ-प्राणसाधना से हृदय की निर्मलता सिद्ध होती है। उस निर्मल हृदय में प्रभु की प्रेरणा सुनाई पड़ती है।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'नेदिष्ठ आप्य' की प्राप्ति

अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम्। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ ६॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **याम-हूतमा**=समय पर अतिशयेन आह्वातव्य हो। हमें समय पर आपकी आराधना करनी ही चाहिए। यह नियमपूर्वक प्राणों की साधना ही 'शरीर, मन व बुद्धि' को निर्दोष बनानेवाली है। (२) हे प्राणापानो! मैं आप से **नेदिष्ठम् आप्यं**=अन्तिकतम बन्धुत्व को-उस प्रभु की मित्रता को **यामि**=माँगता हूँ (याचामि)। **वाम्**=आपका **अवः**=रक्षण **सत्**=उत्तम है। वह **अन्ति भूतु**=हमें सदा समीपता से प्राप्त हो। आपके रक्षण के द्वारा ही हमें प्रभु की मित्रता प्राप्त होगी।

भावार्थः-प्राणसाधना के द्वारा ही हमें प्रभु की मित्रता प्राप्त होती है।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अत्रि का 'अवन् गृह'

अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ ७॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **युवम्**=आप **अत्रये**='काम-क्रोध व लोभ' से ऊपर उठे हुए पुरुष के लिए **अवन्तं गृहं कृणुतम्**=रक्षक घर को बनाओ। प्राणसाधना द्वारा यह साधक 'काम-क्रोध व लोभ' से दूर हो तथा इस साधना से यह शरीरगृह रोगाक्रान्त न हो। इसमें रहता हुआ अत्रि रोगरूप शत्रुओं से बचा रहे। (२) हे प्राणापानो! **वाम्**=आपका **अवः**=रक्षण **सत्**=उत्तम है। वह रक्षण **अन्ति भूतु**=हमें समीपता से प्राप्त हो।

भावार्थ-प्राणसाधना से यह शरीरगृह सदा, सुरक्षित गृह हो। इसमें आधि-व्याधि से बचे रहें।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वासनाग्नि से तप्त न होना

वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ ८॥

(१) हे प्राणापानो! आप **वल्गु वदते**=मधुर स्तुतिवचनों का उच्चारण करते हुए **अत्रये**=काम-क्रोध व लोभ से ऊपर उठे व्यक्ति के लिए **अग्निम्**=वासनाओं की अग्नि को **आतपः**=सन्तापक शक्ति से **वरेथे**=निवारित करते हो, अर्थात् प्राणसाधना से यह अत्रि कामाग्नि (वासनाग्नि) से संतप्त नहीं होता। (२) हे प्राणापानो! **वाम्**=आपका **सत् अवः**=उत्तम रक्षण **अन्ति भूतु**=हमें सदा समीपता से प्राप्त हो।

भावार्थ-प्राणसाधना मनुष्य को वासनीय से संतप्त नहीं होने देती।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अग्नि का धारा का हृदय में शयन

प्र स॒प्तव॑ध्रिरा॒शसा॒ धारा॑म॒ग्नेर॑शायत। अन्ति॒ षद्भू॑तु वा॒मवः॑॥ ९॥

(१) **सप्तवध्रिः**=‘कर्णाविमौ नासिके अक्षणी मुखम्’-दो कान, दो नासिकाछिद्र, दो आँखें व मुख रूप सातों इन्द्रियों को संयम रूप से बांधनेवाला यह उपासक **आशसा**=उत्तम आशंसन व स्तवन के द्वारा **अग्नेः धाराम्**=(धारा-वाग् नि० १.११) उस अग्रेणी प्रभु की वाणी को **प्र आशायत**=अपने में निवास करता है। (२) हे प्राणापानो! **वां**=आप का **अवः**=रक्षण **सत्**=उत्तम है। उससे हम प्रभु की वाणी को सुन पाते हैं। वह रक्षण **अन्तिभूतु**=हमारे समीप हो। आपसे रक्षित हुए-हुए हम पवित्र हृदय में प्रभु की वाणी को सुनें।

भावार्थ-प्राणसाधना मनुष्य को कान आदि सातों इन्द्रियों का संयम करने में समर्थ करती है। सो हमें प्राणापान का रक्षण प्राप्त हो।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

वृषण्वसू (अश्विना)

इ॒हा ग॑तं वृषण्वसू शृणु॒तं म॑ इ॒मं हव॑म्। अन्ति॒ षद्भू॑तु वा॒मवः॑॥ १०॥

(१) हे **वृषण्वसू**=सुखसेचक स्वास्थ्य आदि धनों को प्राप्त करानेवाले प्राणापानो! आप **इह आगतम्**=मेरे इस जीवन में प्राप्त होओ। मैं इस जीवन में आपकी साधना करनेवाला बनकर उत्तम स्वास्थ्यधन को प्राप्त करूँ। (२) हे प्राणापानो! **मे**=मेरे लिए **इमं**=इस **हवं शृणुतम्**=प्रभु की पुकार को सुनो। (३) **वाम्**=आपका **अवः**=रक्षण **सत्**=उत्तम है। यह **अन्ति भूतु**=मुझे समीपता से प्राप्त हो।

भावार्थ-प्राणसाधना (१) स्वास्थ्य आदि धनों को प्राप्त कराके सुखों का सेचन करती है। (२) हमें प्रभु की पुकार को सुनने के योग्य बनाती है।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

‘प्राणापान का विलक्षण रक्षण’

किमि॒दं वां॑ पुरा॒ण॒वज्जर॑तोरिव शस्यते। अन्ति॒ षद्भू॑तु वा॒मवः॑॥ ११॥

(१) हे प्राणापानो! **वाम्**=आपका **इदं**=यह रक्षण **पुराणवत्**=उस पुराणपुरुष के रक्षण की तरह **किम्**=क्या ही विलक्षण है? आपका यह रक्षण उसी प्रकार **शस्यते**=स्तुति किया जाता है, **इव**=जैसे **जरतोः**=उस वृद्ध-पुराणपुरुष प्रभु का रक्षण प्रशंसित होता है। प्रभु का रक्षण अद्भुत है। प्राणापानों का रक्षण भी कम अद्भुत नहीं। वस्तुतः प्रभु प्राणापान के द्वारा ही तो हमारा रक्षण करते हैं। (२) **वाम् अवः**=आपका रक्षण **सत्**=उत्तम है। वह हमें **अन्ति भूतु**=समीपता से प्राप्त हो।

भावार्थ-प्राणापान का रक्षण प्रभु के रक्षण की तरह अद्भुत है। यह रक्षण हमें प्राप्त हो।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

‘सम् आनता’ (=सम्यक् जीवन)

स॒मा॒नं वां॑ सजा॒त्यं॑ समा॒नो बन्धु॑रश्विना। अन्ति॒ षद्भू॑तु वा॒मवः॑॥ १२॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **वां**=आपका **सजात्यं समानम्**=समानरूप से प्रादुर्भाव हमें सम्यक् प्रीणित करनेवाला है। प्राणापान का प्रादुर्भाव हमारे में जीवनीशक्ति का संचार करता है।

हे प्राणापानो! आपका **बन्धुः**=अपनें में बाँधनेवाला व्यक्ति **समानः**=आपने को सम्यक् प्रीणित करनेवाला होता है। (सम् आनयति) प्राणसाधना से जीवनशक्ति का विकास होता ही है। (२) सो **वाम्**=आपका **सत् अवः**=उत्तम रक्षण **अन्ति भूतु**–हमारे समीप हो–हमें सदा प्राप्त हो।

भावार्थ–प्राणसाधना हमारे में जीवनशक्ति का संचार करती है।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

रजांसि वियाति

यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ १३॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो **यः**=जो **वां**=आपका **रथः**=यह शरीररूप रथ है, अर्थात् जिस शरीररूप रथ में प्राणसाधना नियम से चलती है, वह रथ **रजांसि** (ज्योतिरज उच्यते रजतेः नि० ४.२९)=ज्योतियों को **वियाति**=विशेष रूप से प्राप्त होता है। प्राणसाधना से दोषों का दहन होकर यह रथ ज्योतिर्मय हो उठता है। (२) यह प्राणापान का रथ **रोदसी**=द्यावापृथिवी को–मस्तिष्क व शरीर को विशेष रूप से प्राप्त होता है। प्राणसाधना से मस्तिष्क बनता है, तो शरीर सबल होता है। हे प्राणापानो! **वाम् अवः**=आपका रक्षण **सत्**=उत्तम है और यह **अन्ति भूतु**=हमें समीपता से प्राप्त हो।

भावार्थ–प्राणसाधना से जीवन ज्योतिर्मय बनता है। मस्तिष्क दीप्त होता है और शरीर सबल बनता है।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उत्तम ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ

आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम्। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ १४॥

(१) हे प्राणापानो! आप **नः**=हमें **सहस्रैः**=(सहस्) आनन्दयुक्त–विकसित शक्तियोंवाले **गव्येभिः**=ज्ञानेन्द्रिय समूहों से तथा **अश्व्यैः**=कर्मेन्द्रिय समूहों से **उप आगच्छतम्**=समीपता से प्राप्त होओ। प्राणसाधना के द्वारा ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ विकसित शक्तिवाली बनें। (२) हे प्राणापानो! **वाम् अवः**=आपका रक्षण **सत्**=उत्तम है। यह रक्षण हमें **अन्ति भूतु**=समीपता से प्राप्त हो।

भावार्थ–प्राणसाधना के द्वारा इन्द्रियों के दोष दूर होते हैं और ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ विकसित शक्तिवाली बनती हैं।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

निर्दोष इन्द्रियाँ

मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम्। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ १५॥

(१) हे प्राणापानो! आप **नः**=हमें **सहस्रेभिः**=प्रसन्न–पूर्ण विकासवाले **गव्येभिः**= ज्ञानेन्द्रियसमूहों से तथा **अश्व्यैः**=कर्मेन्द्रियसमूहों से **मा अतिख्यतम्**=निवारित मत करो–मत वञ्चित करो। प्राणसाधना के द्वारा हमें अवश्य उत्तम ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ प्राप्त हों। (२) हे प्राणापानो! **वाम्**=आपका **अवः**=रक्षण **सत्**=उत्तम है। यह हमें **अन्ति भूतु**=समीपता से प्राप्त हो।

भावार्थ–प्राणसाधना से इन्द्रियाँ निर्दोष न बनें ऐसा नहीं होता।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वाङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

अरुणप्सु+ऋत+ज्योति

अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिर्ऋतावरी। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ १६॥

(१) हे प्राणापानो! आपके अनुग्रह से **उषाः**=उषाकाल हमारे लिए **अरुणप्सुः**=तेजोमय रूपवाला **अभूत्**=हो। हम उषा में प्रबुद्ध होकर प्राणसाधना में प्रवृत्त हों और उषा के समान ही दीप्त रूपवाले बनें। हमारे लिए **ऋतावरी**=ऋत का पालन करानेवाली यह उषा **ज्योतिः अकः**=प्रकाश को करती है। उषाकाल में प्राणायाम करने पर जीवन ऋतमय (यज्ञमय) ज्योतिवाला बनता है। (२) हे प्राणापानो! **वाम्**=आपका **अवः**=रक्षण **सत्**=उत्तम है। वह रक्षण **अन्ति भूतु**=हमें समीपता से प्राप्त हो।

भावार्थ—उषाकाल में प्रबुद्ध होकर हम प्राणसाधना करके दीप्त रूपवाले, ज्योतिर्मय व ऋतमय जीवनवाले बनें।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वाङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

वृक्षं परशुमान् इव

अश्विना सु विचाकशद् वृक्षं परशुमाँइव। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ १७॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आपका आराधक **सुविचाकशत्**=उत्तम प्रकाशमय जीवनवाला होता हुआ अज्ञानान्धकार को इसी प्रकार दूर कर पाता है, **इव**=जैसे **परशुमान्**=कुल्हाड़ेवाला **वृक्षं**=वृक्ष को काट डालता है। (२) **वाम्**=आपका **अवः**=रक्षण **सत्**=उत्तम है। यह रक्षण **अन्ति भूतु**=अन्तिकतम हो—हमें समीपता से प्राप्त हो।

भावार्थ—प्राणसाधना से वासनावृक्षों का व्रश्चन करते हुए हम अज्ञानान्धकार को दूर करके प्रकाशमय जीवनवाले बनें।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वाङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

'कृष्णा विद्' के दुर्ग का विध्वंस

पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा। अन्ति षद्भूतु वामवः॥ १८॥

(१) हे **धृष्णो**=प्राणसाधना द्वारा वासनाओं का धर्षण करनेवाले साधक (सप्त वध्रे)! तू **कृष्णया**=(कर्ष वा) जबर्दस्ती अपनी ओर खींचनेवाली **विशा**=अन्दर घुस आनेवाली वासनाओं से **बाधितः**=पीड़ित हुआ-हुआ इन वासनाओं को प्राणसाधना द्वारा इस प्रकार **आरुज**=छिन्न-भिन्न कर **न**=जैसे **पुरं**=शत्रु की नगरी का ध्वंस किया जाता है। (२) यही तेरी आराधना हो कि हे प्राणापानो! **वाम्**=आपका **सत् अवः**=उत्तम रक्षण **अन्ति भूतु**=हमें समीपता से प्राप्त हो।

भावार्थ—हम प्राणसाधना द्वारा काम-क्रोध-लोभरूप वासनाओं के दुर्गों का विध्वंस कर डालें।

'गोपवन' ही अगले सूक्त का भी ऋषि है—

७४. [चतुःसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—गोपवन आत्रेयःङ्क देवता—अग्निःङ्क छन्दः—निचृदनुष्टुप्ङ्क स्वरः—गान्धारःङ्क

शूषस्य दुर्यम्

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम्। अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः॥ १॥

(१) **वाजयन्तः**=शक्ति को प्राप्त करने की कामनावाले लोग उस प्रभु के **मन्मभिः**=मननीय स्तोत्रों के हेतु से **वचः स्तुषे**=स्तुतिवचनों का उच्चारण करते हैं। जो प्रभु **वः**=तुम **विशः विशः**=प्रजाओं के **अतिथिं**=अतिथि हैं–निरन्तर प्राप्त होनेवाले हैं। **पुरुप्रियम्**=पालक व पूरक हैं तथा पालन व पूरण के द्वारा प्रीणन करनेवाले हैं। (२) उस प्रभु का स्तवन करते हैं, जो **वः अग्निं**=तुम सबके अग्रणी हैं–आगे ले चलनेवाले हैं तथा **शूषस्य दुर्यम्**=सुख व बल के गृह हैं। प्रभु अपने उपासक को शक्ति प्राप्त कराते हैं। इस शक्ति के द्वारा उसका जीवन सुखी होता है। (३) मननपूर्वक प्रभु का स्तवन करते हुए हम भी उन्हीं गुणों को धारण करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ–मननपूर्वक प्रभु का स्तवन करते हुए हम भी शक्तिशाली बनें। यही सुख- प्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

मित्रं न सर्पिरासुतिम्

यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम्। प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः॥ २॥

(१) **यं**=जिस **मित्रं न**=मित्र के समान प्रभु को **हविष्मन्तः जनासः**=हविवाले लोग–दानपूर्वक अदन करनेवाले लोग **प्रशस्तिभिः प्रशंसन्ति**=शंसनात्मक स्तुतिवाक्यों से प्रशंसित करते हैं। हवि के द्वारा ही वस्तुतः प्रभुपूजन होता है। (२) वे प्रभु '**सर्पिरासुतिम्**'–(सर्पिः आसूयतेऽनेन इति) हमारे जीवनों में सर्पि को आसुत करनेवाले हैं। 'सृप गतौ' से बनकर 'सर्पिः' शब्द यहाँ 'दीप्त प्रशस्त गति' का वाचक है। प्रभु अपने उपासक को इस प्रकार दीप्त गतिवाला बनाते हैं, जैसे एक मित्र मित्र को दीप्त गतिवाला बनाता है।

भावार्थ–हम हविवाले बनकर प्रभु का शंसन करें। प्रभु हमें मित्र की तरह उत्तम मार्ग से ले चलनेवाले होंगे।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

दिवि ऐरयत्

पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता। हव्यान्यैरयद्दिवि॥ ३॥

(१) उस **पन्यांसं**=स्तुत्य **जातवेदसं**=सर्वज्ञ व सर्वैश्वर्य युक्त प्रभु का (प्रशंसन्ति), शंसन करते हैं=**यः**=जो हमारे जीवनों में **उद्यता**=उद्यम से प्राप्त **हव्यानि**=हव्य पदार्थों को **देवताति**=यज्ञों में **ऐरयत्**=प्रेरित कराता है और इसप्रकार हमें **दिवि**=ज्ञान में प्रेरित करता है। (२) प्रभु अपने उपासक को श्रम से उत्तम पदार्थों को अर्जित करने के लिए शिक्षित करते हैं। उन पदार्थों को यज्ञों में विनियुक्त कराते हैं और इस प्रकार हमें ज्ञान में उपस्थित करते हैं।

भावार्थ–हम श्रम से धनार्जन करते हुए यज्ञशील बनें और ज्ञान में अवस्थित हों।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

'श्रुतर्वा-बृहन्-आर्क्ष'

आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम्। यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते॥ ४॥

(१) हम **वृत्रहन्तमम्**=वासनाओं के अधिक-से-अधिक विनष्ट करनेवाले प्रभु को **आगन्म**=प्राप्त होते हैं जो प्रभु **ज्येष्ठं**=प्रशस्यतम हैं, **अग्निम्**=हमें आगे ले चलनेवाले हैं तथा **आनवम्**=हमें प्रीणित करनेवाले हैं। (२) उन प्रभु को हम प्राप्त होते हैं, **यस्य**=जिनके **अनीके**=बल में वह

एधते=वृद्धि को प्राप्त होता है, जो **श्रुतर्वा**=(श्रुतेन इयर्ति) शास्त्रज्ञान के अनुसार गतिवाला होता है। **बृहन्**=बड़े हृदयवाला होता है—विशाल हृदय। **आर्क्षः**=(ऋष् गतौ) गतिशील होता है—सदा क्रियाशील। मस्तिष्क में 'श्रुतर्वा', हृदय में 'बृहन्' तथा हाथों में 'आर्क्ष' बनकर हम प्रभु के सच्चे उपासक होते हैं और प्रभु के बल से बलसम्पन्न बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु के हम उपासक बनें। प्रभु हमारी वासनाओं को विनष्ट करेंगे—हमें प्राणशक्ति प्राप्त कराएँगें और प्रशस्त जीवनवाला बनाएँगे। सच्चा उपासक 'श्रुतर्वा-बृहन् व आर्क्ष' होता है।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अमृतं-तिरःतमांसि दर्शतम्

अमृतं जातवेदसं तिरस्तमांसि दर्शतम्। घृताहवनमीड्यम्॥ ५॥

(१) हम उन प्रभु को प्राप्त हों जो **अमृतं**=मृत्यु से परे हैं—सब रोगों से अतीत। **जातवेदसं**=सर्वज्ञ व सर्वैश्वर्यवाले हैं। **तमांसि तिरः**=सब अन्धकारों से परे हैं और **दर्शतम्**=दर्शनीय हैं। (२) उन प्रभु को प्राप्त हों, जो **घृताहवनम्**=मलक्षरण व ज्ञानदीप्ति के हेतु पुकारने योग्य हैं तथा **ईड्यम्**=स्तुत्य हैं।

भावार्थ—प्रभु अपने उपासक को नीरोग (अमृतं) ज्ञानी (जातवेदसं) अन्धकारों से परे व दर्शनीय जीवनवाला बनाते हैं। ये प्रभु ही स्तुत्य हैं। ये हमारे जीवनों में मलों को दूर करके हमें ज्ञानदीप्त जीवनवाला बनाते हैं।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

जुह्वानासः-यतस्त्रुचः

सबाधो यं जना इमे३ऽग्निं हव्येभिरीळते। जुह्वानासो यतस्त्रुचः॥ ६॥

(१) हम उस **अग्निं**=अग्रणी प्रभु को प्राप्त करते हैं, **यं**=जिनको **ये**=ये **सबाधः**=काम, क्रोध आदि शत्रुओं के बाधन के साथ रहनेवाले **जनाः**=लोग **हव्येभिः**=दानपूर्वक अदन के द्वारा **इडते**=उपासित करते हैं। प्रभु की उपासना करनेवाला (क) काम आदि शत्रुओं को जीतने का प्रयत्न करता है। (ख) और सदा दानपूर्वक यज्ञशेष का ही सेवन करता है। (२) ये प्रभु के उपासक **जुह्वानासः**=सदा यज्ञशील होते हैं और **यतस्त्रुचः**=नियमित वाणीवाले होते हैं। वाणी को वश में रखते हुए सदा शुभशब्दों का ही प्रयोग करते हैं।

भावार्थ—उपासक (१) काम आदि को जीतता है, (२) यज्ञशेष का सेवन करता है, (३) सदा यज्ञशील होता है, (४) वाणी को वश में रखता है।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पादनिचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

नव्यसी मतिः

इयं ते नव्यसी मतिरग्ने अधाय्यस्मदा। मन्द्र सुजात सुक्रतोऽमूर दस्मातिथे॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **इयं**=यह **ते**=आपकी **नव्यासी**=अतिशयेन प्रशस्य **मतिः**=मननपूर्वक की गई स्तुति **अस्मद्**=हमारे में (अस्मासु) **आ अधायि**=सर्वथा निहित होती है। हम सदा आपका स्मरण करते हैं। (२) हे **मन्द्र**=आनन्दमय, **सुजात**=सर्वत्र शुभ को जन्म देनेवाले, **सुक्रतो**=शोमन प्रज्ञान व शक्तिवाले, **अमूर**=अमूढ़—सब मूढ़ताओं को नष्ट करनेवाले, **दस्म**=दर्शनीय अथवा सब बुराइयों का उपक्षय करनेवाले **अतिथे**=सतत गमनशील प्रभो! आपका स्तवन हम सदा

करते हैं। आपका 'मन्द्र' आदि शब्दों से स्तवन करते हुए वैसा ही बनने का प्रयत्न करते हैं। (क) हम अपने जीवनों में उत्तम बातों का विकास करते हुए आनन्दमय बनने का प्रयत्न करते हैं। (ख) मूढ़ न बनकर शोभन प्रज्ञान व शक्ति के सम्पादन के लिए यत्नशील होते हैं तथा (ग) निरन्तर क्रियाशील होते हुए सब बुराइयों का उपक्षय करते हैं।

भावार्थ–हम प्रभु का स्तवन करें–प्रभु जैसा ही बनने का यत्न करें। उत्तम विकास द्वारा आनन्द को, विषयों के प्रति न मूढ़ बनकर शोभन शक्ति व प्रज्ञान को तथा निरन्तर क्रियाशील बनकर वासनाविलय को प्राप्त करें।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री **स्वरः**—षड्जः॥

चनिष्ठा (स्तुति)

सा ते॑ अग्ने॒ शन्त॑मा॒ चनि॑ष्ठा भवतु प्रि॒या। तया॑ वर्धस्व॒ सुष्टु॑तः॥ ८॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **सा**=वह **ते**=आपकी हमारे से की जाती हुई (नव्यसी मतिः ७) स्तुति **शन्तमा**=अतिशयेन शान्ति को देनेवाली **भवतु**=हो। वह स्तुति **चनिष्ठा**=हमारे सब काम आदि शत्रुओं का संहार करनेवाली हो। यह हमारे हृदयों में प्रेरणा को देनेवाली हो यह हमें अतिशयित आनन्द को देनेवाली हो तथा यह हमें पर्याप्त भोजनों को भी प्राप्त करानेवाली हो, इस प्रकार यह स्तुति **प्रिया**=प्रीतिजनक हो। (२) **तया**=उस स्तुति से **सुष्टुतः**=सम्यक् स्तुत हुए-हुए आप **वर्धस्व**=हमारे हृदयों में बढ़िये। स्तुति हमें आपके गुणों से युक्त करनेवाली हो। आपकी दिव्यता का इस स्तुति द्वारा हमारे में अवतरण हो।

भावार्थ–प्रभुस्तवन से 'शान्ति, प्रभुप्रेरणा, शत्रुसंहार, आनन्द, सब अन्न व प्रीति' प्राप्त होती है। इससे हमारे में दिव्यता का वर्धन होता है।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

द्युम्नैः द्युम्निनी

सा द्यु॒म्नैर्द्यु॒म्निनी॑ बृ॒हदुपो॑प॒ श्रव॑सि॒ श्रवः॑। दधी॑त वृत्र॒तूर्ये॑॥ ९॥

(१) **सा**=वह प्रभु के लिए की जानेवाली स्तुति **द्युम्नैः द्युम्निनी**=ज्ञानज्योतियों से ज्योतिर्मयी हो। स्तुति से हमारा हृदय प्रकाशमय बने। (२) यह स्तुति **वृत्रतूर्ये**=वासना के विनाश के निमित्त हमारे **श्रवसि**=कान में **बृहत् श्रवः**=खूब ज्ञान को **उप उप दधीत**=समीपता से धारण करे। हम ज्ञान की वाणियों का श्रवण करते हुए प्रकाशमय जीवनवालें बनें। इस प्रकाश में वासनाओं के अन्धकार का विलय हो जाए।

भावार्थ–स्तुति हमारे जीवन को प्रकाशमय बनायें। इस प्रकाश में वासना का विलय हो जाए।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

पन्यं पन्यम्

अश्व॒मिद्गां र॑थ॒प्रां त्वे॒षमिन्द्रं॒ न सत्प॑तिम्। यस्य॒ श्रवां॑सि॒ तूर्व॑थ॒ पन्य॑म्पन्यं च कृ॒ष्टयः॑॥ १०॥

(१) हे **कृष्टयः**=श्रमशील मनुष्यो! उस प्रभु का तुम स्तवन करो जो **इत्**=निश्चय से **अश्वम्**=(अश्नुते) सब लोक-लोकान्तरों को व्याप्त किये हुए हैं। **गाम्**=(गमयति अर्थात्) हृदयस्थरूपेण सब पदार्थों का ज्ञान देनेवाले हैं। **रथप्राम्**=हमारे शरीररूप रथों का पूरण करनेवाले

हैं। **त्वेषं**=दीप्त हैं तथा **इन्द्रं न**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले के समान **सत्पतिम्**=अच्छाइयों के रक्षक हैं। (२) हे मनुष्यो! उस प्रभु का परिचरण करो, **यस्य**=जिसके **श्रवांसि**=ज्ञानों को तुम **तूर्वथ**=अपने अन्दर सुरक्षित करते हो **च**=और **पन्यम् पन्यम्**=प्रत्येक स्तुत्य वस्तु को अपने अन्दर सुरक्षित करते हो। प्रभुस्तवन के द्वारा हम प्रभु के गुणों को अपने अन्दर धारण करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ–वे प्रभु व्यापक, ज्ञान को देनेवाले, शरीरों का पूरण करनेवाले व शत्रुओं का विद्रावण करके अच्छाइयों का रक्षण करनेवाले हैं। प्रभु ज्ञान व स्तुत्य गुणों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गोपवनः गिरा चनिष्ठत्

यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः। स पावक श्रुधी हवम्॥ ११॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी **अंगिरः**=अंग-प्रत्यंगों में रस का संचार करनेवाले प्रभो! **यं त्वा**=जिन आपको **गोपवनः**=ज्ञान की वाणियों को पवित्र करनेवाला उपासक **गिरा**=स्तुतिवाणियों के द्वारा **चनिष्ठत्**=प्राप्त करने की कामना करता है। (२) **सः**=वे आप, हे **पावक**=पवित्र करनेवाले प्रभो! **हवम्**=पुकार को **श्रुधि**=सुनिये।

भावार्थ–स्तुतिवाणियों के द्वारा हम प्रभु को प्राप्त करने की कामना करें। प्रभु हमारे जीवन को पवित्र करते हैं।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वाजसातये

यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये। स बोधि वृत्रतूर्ये॥ १२॥

(१) **सबाधः**=शत्रुओं के बाधन के साथ विद्यमान **जनासः**=लोग, अर्थात् काम, क्रोध, लोभ को जीतनेवाले लोग, हे प्रभो! **यं त्वां**=जिन आपको **ईडते**=उपासित करते हैं। वे लोग **वाजसातये**=शक्ति को प्राप्त करने के लिए होते हैं। (२) हे प्रभो! **सः**=वे आप **वृत्रतूर्ये**=वासना के संहार के निमित्त **बोधि**=हमें बोधवाला करिये–ज्ञान देकर हमें वासनाविनाश के योग्य बनाइए।

भावार्थः–उपासक वही है जो काम-क्रोध आदि का संहार करता है। यह उपासक शक्ति को प्राप्त करता है। प्रभु इसे ज्ञानसम्पन्न करके वासना के विनाश के योग्य बनाते हैं।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ **देवता**—श्रुतर्वण आर्क्षस्य दानस्तुतिः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

आर्क्ष-श्रुतर्वा-मदच्युत्

अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति। शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णाम्॥ १३॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **अहं**=मैं **आर्क्षे**=गतिशील पुरुष में, **श्रुतर्वणि**=ज्ञान के प्रति चलनेवाले व्यक्ति में तथा **मदच्युति**=अभिमान को छोड़नेवाले पुरुष में **हुवानः**=हूयमान होता हुआ–इनसे आराधित होता हुआ–**चतुर्णाम्**='काम-क्रोध-लोभ-मोह' इन चारों के **शीर्षा**=सिरों का **मृक्षा**=सफाया कर डालता हूँ। इन काम आदि चारों को ही समाप्त कर डालता हूँ। (२) मैं इसप्रकार इन्हें नष्ट कर देता हूँ, **इव**=जैसेकि **स्तुकाविनां**=वृषभों के (बैलों के) **शर्धांसि**=बलों को कोई समाप्त कर देता है।

भावार्थ–प्रभु का सच्चा उपासक 'गतिशील, ज्ञानप्रिय व निरभिमान' होता है। प्रभु इसके 'काम-क्रोध-लोभ-मोह' को समाप्त कर देते हैं।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ देवता—श्रुतर्वण आर्क्षस्य दानस्तुतिः॥ छन्दः—विराडनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

आशवः, द्रवित्नवः, सुरथासः

मां च॒त्वार॑ आ॒शवः॒ शवि॑ष्ठस्य द्रवि॒त्नवः॑। सु॒रथा॑सो अ॒भि प्रयो॒ वक्ष॒न्वयो॒ न तुग्र्य॑म्॥ १४॥

(१) **मां**=मुझे **शविष्ठस्य**=उस सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न प्रभु के-प्रभु से दिये गये **चत्वारः**= 'इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और हृदय' रूप चार प्रमुख साधन **तुग्र्य वयः न**=शत्रुसंहारक आयुष्य के समान **प्रयः**=(प्रयस्) उद्योग की **अभि**=ओर **वक्षन्**=प्राप्त कराएँ। इन इन्द्रियों आदि के द्वारा हमारा जीवन काम, क्रोध आदि शत्रुओं का संहार करनेवाला हो तथा हम सतत यत्नशील हों-आलस्य से सदा दूर रहें। (२) ये चारों **आशवः**=शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाले हों। **द्रवित्नवः**=(द्रु अभिगतौ) शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले हों-और इस प्रकार हमें प्रभु की ओर ले चलनेवाले हों और **सुरथासः**=शरीररूप रथ को सदा उत्तम रखें।

भावार्थ-हमारी 'इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और हृदय' हमारे जीवन को शत्रुसंहारक तथा यत्नशील बनाएँ। इनके द्वारा हमारा यह शरीररथ शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाला व प्रभु की ओर हमें ले चलनेवाला हो।

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ देवता—श्रुतर्वण आर्क्षस्य दानस्तुतिः॥ छन्दः—विराडनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

महेनदी, परुष्णी

स॒त्यमित्त्वा॑ महेनदि॒ परु॒ष्ण्यव॑ देदिशम्। नेमा॑पो अश्व॒दात॑रः॒ शवि॑ष्ठाद॒स्ति मर्त्यः॑॥ १५॥

(१) हे **महेनदि**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाली और इसप्रकार **परुष्णि**=हमारा पालन व पूरण करने वाली बुद्धि! **सत्यम् इत्**=सचमुच ही **त्वा**=तुझे **अवदेदिशम्**=मैं इस विषयवासनामय संसार से परे प्रेरित करता हूँ (Direct, order, command)। (२) हे **आपः**=प्रजाओ! **न ईम्**=नहीं ही निश्चय से **शविष्ठात्**-उस शक्तिशाली प्रभु को छोड़कर कोई अन्य **मर्त्यः**=मनुष्य **अश्व-दा-तरः अस्ति**=उत्कृष्ट इन्द्रियाश्वों को देनेवाला है। प्रभु ही इन इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं-हमारी बुद्धि इन्हें प्रभु की ओर ही ले चलनेवाली हो। बुद्धि ही तो सारथि है। मैं रथी इसे इस रथ को प्रभु की ओर ले चलने के लिए निर्देश करता हूँ।

भावार्थ-हमारी बुद्धि इन्द्रियाश्वों को प्रभु की ओर ले चलनेवाली हो। यह बुद्धि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाली है तथा हमारा पालन व पुरण करनेवाली है।

गतमन्त्र के अनुसार प्रभु की ओर चलनेवाला यह व्यक्ति 'विरूप'=विशिष्ट रूपवाला बनता है। यह 'अग्नि' नाम से प्रभु का स्मरण करता है-

७५. [पञ्चसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—विरूपः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

देवहूतमान्

यु॒क्ष्वा हि दे॑व॒हूत॑माँ॒ अश्वाँ॑ अग्ने र॒थीरि॑व। नि होता॑ पू॒र्व्यः स॑दः॥ १॥

हे **अग्ने**=अग्रणी! तू **रथी इव अश्वान्**=जैसे रथी अश्वों को जोड़ता है उसी प्रकार **देवहूतमान्**=योग्यजनों को **युक्ष्व**=जोड़। **होता**=दाता **पूर्व्यः**=पूर्ण होकर **नि सदः**=विराज।

भावार्थ-अधिकारी योग्यतम व्यक्ति की नियुक्ति करे, तथा पूर्ण वेतनादि की व्यवस्था करे।

ऋषिः—विरूपः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

विदुष्टरः

उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः। श्रद्विश्वा वार्या कृधि॥ २॥

हे **देव**=ज्ञानी! तू **विदुस् तरः**=श्रेष्ठ विद्वान् होकर **देवान्**=ज्ञानेच्छुक **नः**=हमको **अच्छ वोचः**=उपदेश कर, **उत**=तथा **विश्वा**=सम्पूर्ण **वार्या**=वरणीय ज्ञानों को **श्रत्**=सत्य ही **कृधि**=प्रकट कर।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ ज्ञान को प्रकट करे छिपाये नहीं।

ऋषिः—विरूपः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

ऋतावा

त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत। ऋतावा यज्ञियो भुवः॥ ३॥

हे **यविष्ठ्य**=युवतमा, **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज! **आहुत**=सर्व स्वीकृत प्रभो! **त्वं ह**=आप ही **ऋतावा**=सत्य न्याय के पालक तथा **यज्ञियः भुवः**=दान योग्य सुपात्र हो।

भावार्थ—वह परमात्मा सत्य-न्याय के पालक हैं।

ऋषिः—विरूपः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'सहस्त्री शती' वाज

अयमग्निः सहस्त्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः। मूर्धा कवी रयीणाम्॥ ४॥

(१) **अयम् अग्निः**=ये अग्रणी प्रभु **वाजस्य**=शक्ति के **पतिः**=स्वामी हैं-रक्षक हैं। उस शक्ति के स्वामी हैं, जो **सहस्त्रिणः**=(सहस्) हमारे जीवनों को आनन्दमय बनाती है तथा **शतिनः**=सौ वर्ष तक जीवन को बड़ा ठीक बनाए रखती है। (२) वे **कविः**=सर्वज्ञ प्रभु **रयीणां मूर्धा**=सब ऐश्वर्यों के शिखर हैं। प्रभु ही सब ऐश्वर्यों के स्वामी हैं। सब धनों के विजेता प्रभु ही हमारे लिए उस-उस ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें वह शक्ति प्राप्त कराते हैं, जो हमारे जीवनों को आनन्दमय व दीर्घ बनाती है प्रभु ही सर्वज्ञ व सब ऐश्वर्यों के स्वामी हैं।

ऋषिः—विरूपः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

यज्ञमय जीवन

तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः। नेदीयो यज्ञमङ्गिरः॥ ५॥

(१) हे **अङ्गिरः**=सब गतियों के देनेवाले प्रभो! (अगि गतौ) आप **सहूतिभिः**=(हूत्या सह वर्तन्ते) आपको पुकारनेवाले उपासकों के साथ **तं यज्ञं**=उस यज्ञ को **नेदीयः नमस्व**=हमारे बहुत समीप नत करिये। इस प्रकार समीप करिये **यथा**=जैसे **ऋभवः**=शिल्पी **नेमिं**=चक्र परिधि को अरों पर नमाते हैं। (२) नेमि ने अरों को अपने में आवृत किया हुआ होता है, इसी प्रकार यज्ञ भी हमारे जीवनों को आवृत किया हुआ हो। हम उपासकों के साथ सदा सद्विचारों के वातावरण में रहते हुए यज्ञमय जीवन बिताएँ।

भावार्थ—प्रभु को पुकारने वाले लोगों के साथ हमारा सम्पर्क हो, उनके साथ पवित्र विचारोंवाले बनते हुए हम यज्ञमय जीवनवाले बनें।

ऋषिः—विरूपः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अभिद्यु वृषा

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया। वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्॥ ६॥

(१) हे **विरूप**=पवित्र जीवन के कारण विशिष्ट रूपवाले जीव! तू **नूनं**=निश्चय से **तस्मै**=उस **अभिद्यवे**=अधि व व्याधियों पर आक्रमण करनेवाले, **वृष्णे**=सब सुखों के वर्षक प्रभु के लिए **नित्यया वाचा**=इस सनातन वेदवाणी से **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को **चोदस्व**=प्रेरित कर। (२) हम वेदमन्त्रों द्वारा प्रभु का स्तवन करने में प्रवृत्त हों। यह वेदवाणी प्रभु की सनातन ज्ञान की वाणी है। इसके द्वारा प्रभु का स्तवन करते हुए हम सब आधि-व्याधियों से ऊपर उठते हैं। हम भी उस स्तुत्य प्रभु की शक्ति से शक्तिसम्पन्न बनते हैं।

भावार्थ—हम ज्ञान की वाणियों के द्वारा प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमारी आधि- व्याधियों को विनष्ट करेंगे।

ऋषिः—विरूपः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पणिस्तरण

कमु ष्विदस्य सेनयाग्नेरपाकचक्षसः। पणिं गोषु स्तरामहे॥ ७॥

(१) **अस्य**=इस **अपाकचक्षसः**=अनल्प ज्ञानवाले-सर्वज्ञ **अग्नेः**=प्रकाशमय प्रभु की **सेनया**=(सह इनेन प्रभुणा) सेना से-नेतृत्व शक्ति से **कम् उ स्वित्**=किसी भी-अधिक से-अधिक शक्तिशाली भी **पणिं**=कृपणता व अपवित्रता की भावना को **गोषु**=ज्ञान की वाणियों के होने पर **स्तरामहे**=विनष्ट करते हैं। (२) प्रभु पूर्ण ज्ञानवाले हैं। उनकी प्रेरणा में चलते हुए हम ज्ञान का वर्धन कर पाते हैं। यह ज्ञान हमें कृपणता से ऊपर उठाकर पवित्र बना देता है।

भावार्थ—हम सर्वज्ञ प्रभु की प्रेरणा में चलें। इस प्रकार हम कृपणता व अपवित्रता को विनष्ट करके ज्ञानोज्वल जीवनवाले बनेंगे।

ऋषिः—विरूपः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

देवानां विशः+अघ्न्याः

मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः। कृशं न हासुरघ्न्याः॥ ८॥

(१) **नः**=हमें **देवानां विशः**=देवों की प्रजाएँ-दिव्यगुणों के प्रवेश-**मा हासुः**-मत छोड़ जाएँ, अर्थात् हम सदा दिव्यगुणों के प्रवेशवाले बनें, इसी प्रकार **अघ्न्याः**=ये अहन्तव्य ज्ञान की वाणियाँ हमें **न**=नहीं **हासुः**=छोड़ जाएँ। ज्ञानदुग्ध को देनेवाली ये वेदवाणीरूप गौएँ हमारे लिय अहन्तव्य हों। हम सदा इनका स्वाध्याय द्वारा दोहन करें। (२) **इव**=जैसे **प्रस्नातीः**=(पयः क्षरन्तीः) दूध को प्रस्तुत करती हुई **उस्राः**=गौएँ **कृशं**=छोटे (दुर्बल) बछड़े को नहीं छोड़ती, इसी प्रकार हमें दिव्यगुणों के प्रवेश व वेदवाणियाँ न छोड़ जाएँ। इन वेदवाणीरूप गौओं के ज्ञानदुग्ध ने ही तो हमें सबल बनाना है।

भावार्थ—हमें दिव्यगुण व वेदवाणियाँ इस प्रकार न छोड़ जायँ, जैसे दूध को क्षरित करती हुई गोएँ छोटे बछड़े को नहीं छोड़ जातीं।

ऋषिः—विरूपःॐ देवता—अग्निःॐ छन्दः—निचृद् गायत्रीॐ स्वरः—षड्जःॐ

ऊर्मिः न नावम्

मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः। ऊर्मिर्न नावमा वधीत्॥ ९॥

(१) **नः**=हमें **परिद्वेषसः**=चारों ओर द्वेषवाले—सबके साथ द्वेष करनेवाले **समस्य**=सब **दूढ्यः**=दुर्बुद्धि पुरुष के **अंहतिः**=पाप **मा आवधीत्**=मत नष्ट करनेवाले हों। हम भी द्वेष की वृत्ति में पड़कर दुर्बुद्धि न बन जाएँ। (२) ये द्वेष की भावनाएँ इसी प्रकार हमारा नाश करनेवाली होती हैं, **न**=जैसे **ऊर्मिः**=तरंग **नावम्**=नाव को।

भावार्थ—द्वेष करनेवालों से भी हम द्वेष न करें। यह द्वेष हमारी शरीररूप नाव को भिन्न कर देगा। तब संसारसमुद्र को कैसे तैरेंगे?

ऋषिः—विरूपःॐ देवता—अग्निःॐ छन्दः—गायत्रीॐ स्वरः—षड्जःॐ

अमित्र-अर्दन

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः। अमैरमित्रमर्दय॥ १०॥

(१) हे **अग्ने**=सब दोषों को दग्ध करनेवाले प्रभो! हे **देव**=सब शत्रुओं को जीतने की कामना करनेवाले प्रभो! **कृष्टयः**=श्रमशील व्यक्ति ही वस्तुतः **गृणन्ति**=आपका स्तवन करते हैं। स्तुति हमें पुरुषार्थवाला बनाती है। हम स्तुत्य के गुणों को धारण करने के लिए यत्नशील होते हैं। (२) हे प्रभो! **अमैः**=बलों के द्वारा **अमित्रम्**=हमारे शत्रुभूत काम-क्रोध आदि को **अर्दय**=आप पीड़ित करके हमारे से दूर करिये। हमें शक्ति दीजिए कि हम काम-क्रोध आदि से ऊपर उठ पायें।

भावार्थ—प्रभु के प्रति नमन व स्तवन से ओज को प्राप्त करके हम काम आदि शत्रुओं का संहार करें।

ऋषिः—विरूपःॐ देवता—अग्निःॐ छन्दः—निचृद् गायत्रीॐ स्वरः—षड्जःॐ

गविष्टये

कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम्। उरुकृदुरु णस्कृधि॥ ११॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **नः**=हमारे लिए **गविष्टये**=गौओं के—ज्ञानवाणियों के **एषण** (प्राप्ति) के निमित्त **कुवित्**=खूब ही **रयिं**=धन को **सु**=अच्छी प्रकार **संवेषिणः**=प्राप्त कराइये। प्रभु हमें धन दें। हम उस धन का विनियोग ज्ञान के साधनों को जुटाने में करें। धन भोग साधनों को जुटाने में ही व्ययित न हो। (२) हे प्रभो! आप **उरुकृतः**=खूब ही धनों को करनेवाले हैं। **नः**=हमारे लिए **उरुकृधि**=खूब ही धन को करिये। आपकी कृपा से हम खूब धन को प्राप्त कर सकें।

भावार्थ—प्रभु हमारे लिए खूब ही धन को प्राप्त करायें। यह धन ज्ञान प्राप्ति के साधनों को जुटाने में व्ययित हो।

ऋषिः—विरूपःॐ देवता—अग्निःॐ छन्दः—गायत्रीॐ स्वरः—षड्जःॐ

सं वर्गं, सं रयिं (जय)

मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा। संवर्गं सं रयिं जय॥ १२॥

(१) हे प्रभो! आप **अस्मिन्**=इस **महाधने**=महान् संग्राम में **नः**=हमें **मा परावर्ग**=दूर छोड़ मत दीजिए। **यथा**=जैसे **भारभृत्**=भार को उठानेवाला अन्त में भार को छोड़ देता है, इसी प्रकार

हमें आप छोड़ मत दीजिये। हम आपके भारभूत न बन जाएँ। (२) हे प्रभो! आप हमारे लिये **सं वर्गम्**=सम्यक् शत्रुओं के वर्जन का **जय**=विजय कीजिये। यहाँ हमारे लिये **रयिम्**=ऐश्वर्य को **सं जय**=सम्यक् जीतिये। हम आपके अनुग्रह से सम्यक् शत्रुओं का विजय करें तथा ऐश्वर्यों को प्राप्त करनेवाले हों।

भावार्थ—प्रभु हमको कामादि शत्रुओं से विजय प्राप्त कराकर हमें ऐश्वर्य युक्त करता है।

ऋषिः—विरूपः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अमवत् शवः

अ॒न्यम॒स्मद्भि॒या इ॒यमग्ने॒ सिष॑क्तु दु॒च्छुना॑। वर्धा॑ नो॒ अम॑व॒च्छवः॑ ॥ १३ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **इयम्**=यह **दुच्छुना**=दुष्ट गति (दुराचरण) **अस्मत् अन्यम्**=हमारे से भिन्न ही किसी व्यक्ति को **भिया सिषक्तु**=भय के साथ सेवन करे। हमारे से यह सदा दूर रहे। दूसरा हमारे साथ अशुभ व्यवहार भी करे, तो भी हम दुष्ट गति को स्वीकार न करें। (२) हे प्रभो! आप **नः**=हमारे **अमवत्**=शक्तियुक्त **शवः**=वेग को-स्फूर्ति के साथ कार्य करने की प्रवृत्ति को **वर्धा**=बढ़ाइये। सदा स्फूर्ति के साथ कर्त्तव्यकर्मों को करते हुए हम अशुभाचरण से बचे रहें।

भावार्थ—दुष्ट आचरण हमें छोड़ जाये। शुभ आचरण हमें सदा सबल बनाये रखें।

ऋषिः—विरूपः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

नमोयुक्त+अदुर्मख

यस्याजु॑षन्नम॒स्विनः॒ शमी॒मदु॑र्मखस्य वा। तं घेद॒ग्निर्वृ॒धाव॑ति ॥ १४ ॥

यस्य=जिस **नमस्विनः**=नमनशील **वा**=तथा **अदुर्मखस्य**=अदुष्ट यज्ञोंवाले उपासक के **शमीम्**=शान्तभाव से किये जानेवाले कर्मों को **अजुषत्**-प्रीतिपूर्वक सेवन करता है, अर्थात् जिस नम्र यज्ञशील पुरुष के शान्तकर्म प्रभु को प्रीणित करते हैं, **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **तम्**=उस उपासक को **धारत्**=निश्चय से **वृधा अवति**=वृद्धि के द्वारा प्रीणित करते हैं। (२) हम कर्मों द्वारा ही प्रभु का प्रीणन कर पाते हैं। ऐसा करने पर प्रभु हमारी वृद्धि का कारण बनते हैं।

भावार्थ—हम नम्र यज्ञशील बनकर कर्त्तव्यकर्मों में लगे रहें। यही प्रभु के आराधन का मार्ग है। प्रभु हमारा वर्धन करेंगे।

ऋषिः—विरूपः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वह तारक प्रभु

पर॑स्या॒ अधि॑ सं॒वतोऽव॑राँ अ॒भ्या त॑र। यत्रा॒हमस्मि॒ ताँ अ॑व ॥ १५ ॥

(१) हे प्रभो! **परस्याः संवतः अधि**=अत्यन्त दूर के वर्षों से, अर्थात् सदा से **अवरान्**=आपके छोटे सखारूप हम जीवों को आप **अभ्यातर**=इस संसार समुद्र से तराने का अनुग्रह करिये। आपके अनुग्रह से हम सांसारिक विषयों में न फँसकर इस भवसागर से उत्तीर्ण हो सकें। (२) हे प्रभो! **यत्र अहं अस्मि**=जिस भी परिवार, समाज व देश में मैं हूँ, **तान् अव**=उन सबका आप रक्षण करिये। आपकी शक्ति से शक्तिसम्पन्न होकर मैं सभी का रक्षण करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—हे प्रभो! आप ही सनातन काल से हम सखाओं को इस भवसागर से तरानेवाले हैं। आप से शक्ति प्राप्त करके हम सभी का हित करनेवाले बनें।

ऋषिः—विरूपः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

वह पिता (प्रभु)

विद्मा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः। अधा ते सुम्नमीमहे॥ १६॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **पितुः ते**=पितृरूप आपके-रक्षण आपके **अवसः**=रक्षण को **वयम्**=हम **यथा पुरा**=पहले की तरह, अर्थात् सदा से **विद्म हि**=अवश्य प्राप्त करें। आप सदा से हमारा रक्षण करते आये हैं। हम अब भी आपके रक्षणीय हों। (२) **अधा**=अब **ते**=आपके **सुम्नं**=(hymn) स्तोत्र को **ईमहे**=हम चाहते हैं। आपके स्तवन में ही हम सदा आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—प्रभु हमारे सनातन काल से रक्षक हैं। हम सदा प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले बनें। प्रभु का स्तवन करते हम 'सुति'=सोमसम्पादन को 'कुरु' करनेवाले 'कुरुसुति' बनें। सोमरक्षण करते हुए ही हम यज्ञ (सुति) शील बनें। यही बुद्धिमत्ता है। यह 'काण्व' बुद्धिमान् 'कुरुसुति' ही अगले सूक्त का ऋषि है। यह इन्द्र नाम से प्रभु का स्तवन करता है—

७६. [षट्सप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

मायिनं, ओजसा ईशानम्

इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा। मरुत्वन्तं न वृञ्जसे॥ १॥

(१) **नु**=निश्चय से मैं **इमं इन्द्रम्**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **हुवे**=पुकारता हूँ। उस इन्द्र को, जो **मायिनम्**=प्रज्ञावाले हैं-सर्वज्ञ हैं, **ओजसा ईशानम्**=अपने बल से सम्पूर्ण संसार के ईशान (स्वामी) हैं। (२) **न** (च)=और मैं उस इन्द्र को पुकारता हूँ जो **मरुत्वन्तम्**=(मरुतः प्राणाः) प्राणशक्तिवाले हैं। इन प्राणों के द्वारा **वृञ्जसे**=शत्रुओं के छेदन के लिये हैं। प्राणसाधना के द्वारा न केवल रोगों का ही नाश होता है, अपितु वासनाओं का भी विनाश होता है।

भावार्थ—प्रभु सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् हैं। हमें प्राणों को देते हुए इस योग्य बनाते हैं कि हम रोगों व वासनाओं को विच्छिन्न कर सकें।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

मरुत्सखा इन्द्रः

अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः। वज्रेण शतपर्वणा॥ २॥

(१) **अयं इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **मरुत्सखा**=प्राणों को मित्ररूप में पानेवाला होकर (मरुतः सखायो यस्य), अर्थात् प्राणसाधना के द्वारा **वृत्रस्य**=ज्ञान की आवरणभूत वासना के **शिरः वि अभिनत्**=सिर को विदीर्ण कर देता है। प्राणसाधना के द्वारा वासना का विनाश करता है। (२) यह इन्द्र **शतपर्वणा**=(पर्व=to fill) सौ वर्ष तक जीवन को भरनेवाले, अर्थात् आजीवन चलनेवाले **वज्रेण**=क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा वासना को विनष्ट करता है। गतिशीलता उसे वासना का शिकार होने से बचाती है।

भावार्थ—एक जितेन्द्रिय पुरुष प्राणसाधना को करता हुआ वासना को विनष्ट करता है। सौ वर्ष तक इसका जीवन गतिशील बना रहता है।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

वृत्रं वि ऐरयत्

वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो विवृत्रमैरयत्। सृजन्त्समुद्रिया अपः॥ ३॥

(१) **मरुत्सखा**=प्राण हैं सखा जिसके, वह **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **वावृधाना**='शरीर, मन व बुद्धि' के दृष्टिकोण से अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होता हुआ **वृत्रम्**=वासना को **वि ऐरयत्**=विशेषरूप से कम्पित करके विनष्ट करता है। (२) यह **समुद्रियाः**=(स+मुद्) उस आनन्दमय प्रभु की ओर ले-जानेवाले **अपः**=कर्मों को **सृजन्**=उत्पन्न करता हुआ होता है। सदा उत्तम कर्मों को करता हुआ, इन कर्मों के द्वारा प्रभु का अर्चन करता है। 'अप' का अर्थ 'रेत:कण' भी है। उन रेत:कणों को उत्पन्न करता है, जो इसे प्रभु प्राप्ति में सहायक होते हैं। इनके रक्षण से तीव्रबुद्धि होकर वह प्रभु का दर्शन करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा जितेन्द्रिय पुरुष वासना का विनाश करता है और रेत:कणों का रक्षण करता हुआ प्रभु की ओर बढ़ता है।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

मरुत्वता स्वः जितम्

अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम्। इन्द्रेण सोमपीतये॥ ४॥

(१) **अयम्**=यह जीव ही **ह**=निश्चय से **सोमपीतये**=अपने अन्दर सोम के रक्षण के लिये समर्थ होता है **येन वा**=जिसने निश्चय से **मरुत्वता**=उत्तम प्राणोंवाला होते हुए, अर्थात् प्राणसाधना द्वारा प्राणों की शक्ति को बढ़ाते हुए, **इन्द्रेण**=जितेन्द्रिय पुरुष ने **इदं स्वः**=यह प्रकाश व सुख **जितम्**=जीता है-प्राप्त किया है। (२) वस्तुतः हमारा मौलिक कर्त्तव्य यही है कि हम सोम का रक्षण करते हुए अपने अन्दर ज्ञान के प्रकाश को बढ़ायें। यह ज्ञान का प्रकाश ही हमारे जीवन को सुखी बनाता है।

भावार्थ—हम प्राणसाधना द्वारा सोम (वीर्य) का रक्षण करें। यह सुरक्षित सोम बुद्धि की तीव्रता द्वारा प्रकाश को प्राप्त करायेगा।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

मरुत्वान् ऋजीषी

मरुत्वन्तमृजीषिणमोजस्वन्तं विरप्शिनम्। इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे॥ ५॥

(१) **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **गीर्भिः**=स्तुतिवाणियों के द्वारा **हवामहे**=पुकारते हैं। प्रभु का स्तवन करते हुए प्रभु को अपने जीवन में धारण करने का प्रयत्न करते हैं। (२) उन प्रभु को हम पुकारते हैं, जो **मरुत्वन्तम्**=प्राणोंवाले हैं-हमारे लिये प्राणशक्ति को प्राप्त कराते हैं। **ऋजीषिणम्**=ऋजुता के मार्ग की प्रेरणा देते हैं। **ओजस्वन्तम्**=ओजस्वी हैं और **विरप्शिनम्**=महान् हैं। प्रभु का आराधन करते हुए हम प्राणशक्ति-सम्पन्न, ऋजुमार्ग से चलनेवाले, ओजस्वी व महान् बनने का प्रयत्न करते हैं।

भावार्थ—वे प्रभु प्राणशक्ति की हमारे में स्थापना करनेवाले, ऋजुता की प्रेरणा देनेवाले, ओजस्वी व महान् हैं। हम प्रभु का आराधन करते हुए प्राणशक्ति-सम्पन्न व ओजस्वी बनें। ऋजुमार्ग से चलते हुए महान् बनने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रत्नेन मन्मना

इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं हवामहे। अस्य सोमस्य पीतये॥ ६॥

(१) **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **प्रत्नेन मन्मना**=सनातन वेदज्ञान के द्वारा **हवामहे**=हम पुकारते हैं। (२) **मरुत्वन्तम्**=प्राणोंवाले-प्राणों की हमारे में स्थापना करनेवाले प्रभु को **अस्य सोमस्य पीतये**=इस सोम के पान के लिये पुकारते हैं। प्रभु का स्तवन हमें वासनाओं के आक्रमण से बचायेगा। प्राणायाम द्वारा सोमशक्ति की शरीर में ऊर्ध्वगति होगी। इस प्रकार हम सोम का रक्षण करने में समर्थ होंगे।

भावार्थ–प्रभुस्मरण व प्राणायाम के करते हुए हम सोम का शरीर में रक्षण करें।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'मरुत्वान् मीढ्वान्' इन्द्र

मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः पिबा सोमं शतक्रतो। अस्मिन्यज्ञे पुरुष्टुत॥ ७॥

(१) हे **मीढ्वः**=सब सुखों का सेचन करनेवाले **शतक्रतो**=अनन्त शक्ति व प्रज्ञानवाले **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालि प्रभो! आप **मरुत्वान्**=प्राणोंवाले हैं। (२) इन प्राणों को स्थापना करते हुए आप **अस्मिन् यज्ञे**=इस जीवन-यज्ञ में **सोमं पिब**=सोमशक्ति का रक्षण करिये। हे **पुरुष्टुत**=अत्यन्त ही स्तवन किये जानेवाले प्रभो! आप का स्तवन ही हमारा पालन व पूरण करनेवाला है। (पुरु ष्टुतं यस्य)। प्राणों की साधना करते हुए हम शरीर में सोम का रक्षण कर पायेंगे। अपने अन्दर सोम का रक्षण करते हुए हम अपने को 'शतक्रतु' बना पायें। इस सोम ने ही हमारे में शक्ति का सेचन करना है, इसी ने ज्ञानाग्नि को दीप्त करना है।

भावार्थः–वे प्रभु हमारे जीवन में सोम का रक्षण करते हुए हमें शक्ति व ज्ञान से परिपूर्ण करते हैं।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सोमरक्षण व प्रभुदर्शन

तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः। हृदा हूयन्त उक्थिनः॥ ८॥

(१) हे **अद्रिवः**=आदरणीय **इन्द्र**=शत्रुओं के विद्रावक प्रभो! **तुभ्यं इत्**=आपकी प्राप्ति के लिये ही **सोमासः**=सोमकण शरीर में **सुताः**=उत्पन्न किये गये हैं। इनके रक्षण से ही ज्ञानाग्नि का दीपन होकर प्रभु का साक्षात्कार होता है। (२) हे प्रभो! **मरुत्वते**=प्रशस्त प्राणों को स्थापित करनेवाले आपके लिये ही **उक्थिनः**=सोमयज्ञोंवाले वे उपासक **हृदा**=हृदय से **हूयन्ते**=आवाहन करते हैं। आपका अराधन ही हमें प्राणशक्तिसम्पन्न बनाता है। इन प्राणों की साधना के द्वारा हम सोमशक्ति को शरीर में सुरक्षित करते हैं।

भावार्थ–प्राणायाम द्वारा सोम की ऊर्ध्वगति करके ही हम प्रभुदर्शन के अधिकारी बनते हैं।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

दिविष्टिषु

पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु। वज्रं शिशान ओजसा॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **मरुत्सखा**=प्राणरूप मित्रों को प्राप्त करानेवाले आप **सुतं**

सोमम्=उत्पन्न हुए सोम को **पिबा इत्**=शरीर में पीजिये ही। आपकी आराधना से व प्राणायाम से सोमकण शरीर में सुरक्षित रहें। (२) इस सोमरक्षण द्वारा **दिविष्टिषु**=ज्ञान के प्रकाशों के प्राप्त होने पर यह उपासक **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा **वज्रं शिशानः**=(वज गतौ) गतिशीलता को तीव्र करनेवाला हो। ज्ञानी व ओजस्वी बने और गतिशील हो।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा सोमरक्षण होकर हमारे ज्ञान ओज व गतिशीलता में वृद्धि हो।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

शिप्रे अवेपयः

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः। सोममिन्द्र चमू सुतम्॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष तू **चमू सुतम्**=मस्तिष्क व शरीर के निमित्त उत्पन्न किये गये **सोमम्**=सोम को-बीर्यशक्ति को **पीत्वी**=शरीर में ही सुरक्षित करके **ओजसा सह**=ओजस्विता के साथ **उत्तिष्ठन्**=उन्नत होता हुआ **शिप्रे**=शत्रुओं के जबड़ों को **अवेपयः**=कम्पित कर देता है। (२) शरीर में प्रभु ने सोमशक्ति को स्थापित किया है। यह शरीर को शक्तिशाली बनाती है और मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त करती है। इसके रक्षण से ओजस्वी बनकर हम शत्रुओं को परास्त करते हैं।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम हमें वह शक्ति प्राप्त कराता है जो हमें शत्रुओं को पराभूत करने में समर्थ करती है।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

क्रक्षमाण (one who gives a crushing defeat to his enemies)

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम्। इन्द्र यद्दस्युहाभवः॥ ११॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **यद्**=जब तू **दस्युहा अभवः**=वासनारूप दास्यववृत्तियों को नष्ट करनेवाला होता है, तो **क्रक्षमाणम्**=शत्रुओं को कुचलनेवाले **त्वा अनु**=तेरे अनुसार **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी-मस्तिष्क व शरीर **अकृपेताम्**=सामर्थ्यसम्पन्न बनते हैं। (२) यह इन्द्र जितना-जितना वासना का विनाश करता चलता है, उसी अनुपात में उसके मस्तिष्क व शरीर शक्तिसम्पन्न होते चलते हैं।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनकर वासना का विनाश करें। तभी हमारे शरीर दृढ़ व मस्तिष्क दीप्त बनेंगे।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अष्टापदी वाक्

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम्। इन्द्रात्परि तन्वं ममे॥ १२॥

(१) **अहम्**=मैं, गतमन्त्र के अनुसार 'दस्युहा' बनकर **इन्द्रात्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु से **वाचम्**=ज्ञान की वाणी को **परिममे**=अपने अन्दर निर्मित करता हूँ, जो **अष्टापदीं**='कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादन, सम्बन्ध, अधिकरण व सम्बोधन' रूप आठ पदोंवाली हैं। **नवस्रक्तिम्**='तिप् तस् सि सिप् धस् थ-मिप् वस् मस्' रूप नौ रूपों में निर्मित होनेवाली है। **ऋतस्पृशम्**=सब सत्यविद्याओं के स्पर्शवाली है। 'नवस्रक्तिम्' शब्द का यह भी अर्थ है कि जो नवीन स्तुत्य जीवन का निर्माण करनेवाली है। (२) इस ज्ञान की वाणी के साथ मैं प्रभु से **तन्यम्**=शक्तियों के विस्तार

को (परिममे=) अपने में निर्मित करता हूँ।

भावार्थ—मैं प्रभु से ज्ञान की वाणी को और शक्तियों के विस्तार को प्राप्त करता हूँ।

अगले सूक्त का ऋषि देवता भी 'कुरु सुति काण्व' व 'इन्द्र' ही हैं—

७७. [सप्तसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

के उग्राः ?

ज॒ज्ञा॒नो नु श॒तक्र॑तु॒र्वि पृ॑च्छ॒दिति॑ मा॒तर॑म्। क उ॒ग्राः के ह॑ शृण्वि॒रे॥ १॥

(१) यहाँ काव्यमय भाषा में उत्पन्न होता हुआ बालक माता से पूछता है और माता उसे अगले मन्त्र में उतार देती है। वस्तुतः माता ही लोरियाँ देते हुए इस प्रकार की ही बात प्रश्नोत्तर के ढंग से करती है। **जज्ञानः नु**=प्रादुर्भूत होता हुआ ही **शतक्रतुः**=ये शतवर्ष पर्यन्त शक्ति व प्रज्ञानवाला बालक, **मातरम्**=माता से **इति**=यह **वि पृच्छात्**=पूछता है कि ये **उग्राः**=कौन भयंकर शत्रु हैं? **के**=कौन **ह**=निश्चय से **शृण्विरे**=लोक में उग्रशत्रु सुने जाते हैं? अर्थात् मैंने इस जीवन में किन भयंकर शत्रुओं का सामना करना है? (२) इस प्रश्न को सुनकर माता उसे अगले मन्त्र में उत्तर देती है कि इन-इन शत्रुओं को तूने जीतना है।

भावार्थ—माता उत्पन्न हुए बालक के साथ प्रारम्भ से ही इस प्रकार बातचीत करे कि बालक पर सुन्दर प्रभाव पड़े, वह किन्हीं भी वासनारूप शत्रुओं का शिकार न हो जाये।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

और्णवाभम् अहीशुवम्

आदीं॑ शव॒स्य॑ब्रवीदौर्णवा॒भम॑ही॒शुव॑म्। ते पु॑त्र सन्तु नि॒ष्टुरः॑॥ २॥

(१) इस प्रकार प्रश्न के होने पर **आत् ईम्**=अब निश्चय से **शवसी**=शक्तिसम्पन्न गतिशील माता **अब्रवीत्**—कहती है कि **और्णवाभम्**=मकड़ी (ऊर्णनाभि) की तरह अपने जाल को फैलानेवाले **अहीशुभम्**=(अहि शिव) सर्प की तरह (आहन्ति इति) गतिवाले व निरन्तर अपने विष-प्रभाव को बढ़ानेवाले (शिव गतिवृद्ध्योः) 'काम' को ही तू अपना उग्रतम शत्रु जान। (२) हे **पुत्र**=अपने जीवन को पवित्र व सुरक्षित (पु+त्रा, पुनाति त्रायते) बनानेवाले प्रिय पुत्र! ये काम आदि शत्रु ही **ते**=तेरे **निष्टुरः सन्तु**=निस्तारणीय हों। इन शत्रुओं को तू सदा समाप्त करनेवाला बन। इनके वशीभूत तूने नहीं होना।

भावार्थ—माता बालक को इस प्रकार प्रेरणा देती है कि तूने वासनाजाल को विनष्ट करनेवाला बनना है।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वृत्रहा-दस्युहा

समित्तान्वृ॑त्र॒हाखि॑दत्खे अ॒राँ इ॑व॒ खेद॑या। प्रवृ॑द्धो दस्यु॒हाभ॑वत्॥ ३॥

(१) गतमन्त्रों के शब्दों में इस प्रकार माता से प्रेरणा प्राप्त करता हुआ यह बालक **प्रवृद्धः**=प्रकृष्ट वृद्धि को प्राप्त हुआ **दस्युहा अभवत्**=सब दास्यववृत्तियों को विनष्ट करनेवाला बनता है। (२) यह दस्युहा बालक **वृत्रहा**=वासनारूप परदे को विनष्ट करनेवाला होता है और **तान्**=उन वासना-रूप शत्रुओं को **इत्**=निश्चय से **सं अखिदत्**=सम्यक् विनष्ट करता है। यह इन शत्रुओं को इस

प्रकार बाँध देता है **इव**=जैसे **खे**=रथचक्र की नाभि में **अरान्**-अरों को **खेदया**=रज्जु से बाँध दिया जाता है। काम आदि को यह पूर्णरूप से वश में कर लेता है।

भावार्थ-माता से उत्तम प्रेरणा को प्राप्त करता हुआ यह बालक बड़ा होकर वृत्रहा व दस्युहा बनता है-वासना को विनष्ट करता है।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

एकया प्रधिा

एकया प्रतिधापिबत्साकं सरांसि त्रिंशतम्। इन्द्रः सोमस्य काणुका॥ ४॥

(१) उल्लिखित प्रकार से माता प्रेरणा को प्राप्त करनेवाला यह बालक बड़ा होकर **एकया प्रतिधा**=अद्वितीय प्रतिधान से, अर्थात् इन्द्रियों को विशेषरूप से विषयों से आवृत्त (प्रत्याहृत) करने के द्वारा **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय बनकर **सोमस्य**=सोमशक्ति के (वीर्यशक्ति के) **काणुका**=कान्त-सुन्दर **सरांसि**=प्रवाहों को **त्रिंशतम्**=शुक्लपक्ष व कृष्णपक्ष के तीसों अहोरात्रों में **साकं अपिबत्**=साथ पीनेवाला होता है-प्रभु की उपासना करता हुआ, प्रभु के सम्पर्क में रहने से वासनाओं के आक्रमण से सदा बचता हुआ अपने अन्दर पीनेवाला होता है (Imbibe)-सोम को अपने अंग-प्रत्यंगों में ही व्याप्त करता है। (२) वस्तुतः उन्नति का मार्ग यही है कि हम दिन-रात सोम के रक्षण का ध्यान करें। सोमशक्ति के ये प्रवाह ही हमारे अंग-प्रत्यंगों को सुन्दर शक्ति प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ-सोमरक्षण के लिये अत्यन्त अधिक प्रत्याहार (प्रतिधान) की आवश्यकता है। एक युवक को सदा इस बात का ध्यान हो तीसों अहोरात्रों में वह इसके रक्षण के लिये यत्नशील हो।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अभि गन्धर्वम्

अभि गन्धर्वमतृणदबुध्नेषु रजःस्वा। इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद् वृधे॥ ५॥

(१) **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **गन्धर्वं अभि**=वेदवाणी के धारण करनेवाले प्रभु की ओर चलता है **अबुध्नेषु**=पदविधान के अयोग्य **रजः सु**=लोकों में, अर्थात् हृदयान्तरिक्ष में **अतृणत्**=यह वासनाओं का विनाश करता है। इसके हृदय में वासनाएँ अपना पैर नहीं जमा पातीं। इन वासनाओं के लिये इसका हृदय 'अबुध्न' बना रहता है। (२) यह इन्द्र वासनाओं का विनाश करके **इत्**=निश्चय से **ब्रह्मभ्यः वृधे**=ज्ञानों के वर्धन के लिये होता है। वासनाविनाश के बिना ज्ञान वृद्धि का सम्भव है ही नहीं।

भावार्थ-एक जितेन्द्रिय पुरुष प्रभु की ओर चलता है और हृदयस्थली से वासनाओं के झाड़ी-झंकाड़ों को उखाड़ फेंकता है। यह अपने जीवन में उत्तमोत्तम ज्ञान की वृद्धि को करता है।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पक्वम् ओदनम्

निराविध्यद्गिरिभ्य आ धारयत्पक्वमोदनम्। इन्द्रो बुन्दं स्वाततम्॥ ६॥

(१) **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **सु आततम्**=अत्यन्त विस्तृत **बुन्दम्**=ज्ञानरूप बाण को (भासमानो द्रवतीति वा नि०) **आ-धारयत्**=समन्तात् धारण करता है। इस ज्ञानरूप बाण से वह **निराविध्यत्**=वासनारूप शत्रुओं को सुदूर बाहर विद्ध करनेवाला होता है। वासनाओं को विद्ध करके बाहर निकाल देता है। (२) यह इन्द्र **गिरिभ्यः**=ज्ञानोपदेष्टा गुरुओं से **पक्वं ओदनम्**=पूर्ण

परिपक्व ज्ञान के भोजन को प्राप्त करता है। इस ओदन को पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से ग्रहण करनेवाला यह जीव 'पञ्चौदन' कहा गया है।

भावार्थ—एक जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञानरूप बाण से वासनारूप शत्रु को मारकर पञ्चौदन बनता है।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

शतब्रध्न

शतब्रध्न इषुस्तव सहस्रपर्ण एक इत्। यमिन्द्र चकृषे युजम्॥ ७॥

हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यशालिन्! आप **यम् युजं चकृषे**=जिसे अपना सहायक बनाते हो, वह **तव इषुः**=आपका बाण **शतब्रध्नः**=सैकड़ों आश्रयोंवाला **सहस्रपर्णः**=सहस्रों बलों से सम्पन्न **एकः इत्**=अद्वितीय हो जाता है।

भावार्थ—जिस पर प्रभु कृपा करें, वह निर्बल भी बली तथा विपन्न भी सम्पन्न हो जाता है।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ऋभुष्ठिर

तेन स्तोतृभ्य आ भर नृभ्यो नारिभ्यो अत्तवे। सद्यो जात ऋभुष्ठिर॥ ८॥

हे **ऋभुष्ठिर**=सत्य न्याय से स्थिर राजन्! तू **सद्यः जातः**=शीघ्र ही राजा होकर **तेन**=राज्य बल से **स्तोतृभ्यः नृभ्यः नारिभ्यः**=प्रशंसक स्त्री पुरुषों के लिये **अत्तवे**=भोजन के लिये **आभर**=अन्न प्रदान कर।

भावार्थ—राजा अपने राज्य में अन्नादि का अभाव न होने दे।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

परीणसा

एता च्यौत्नानि ते कृता वर्षिष्ठानि परीणसा। हृदा वीड्वधारयः॥ ९॥

एता=ये **च्यौत्नानि**=बली **वर्षिष्ठानि**=तथा बरसनेवाले **ते कृता**=तेरे बनाये हुये हैं। तू उनको **वीडु परीणसा**=स्थिरतापूर्वक **हृदा**=हृदय से **अधारयः**=धारण कर।

भावार्थ—सभी बली, व बरसनेवाले बादलादि परमेश्वर ने धारण कर रखे हैं।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

महिषि, क्षीरपाक ओदन, एमुष वराह

विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः। शतं महिषान्क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम्॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **त्वा इषितः**=तेरे से प्रार्थना किया हुआ-तेरे से जाना गया-यह **विष्णुः**=सर्वव्यापक **उरुक्रमः**=महान् पराक्रमवाला प्रभु **विश्वा इत् ता**=सब ही निश्चय से उन ज्ञानों को-गतमन्त्र में वर्णित 'च्यौत्न वर्षिष्ठ' ज्ञानों को **आभरत्**=प्राप्त कराता है। (२) ये प्रभु ही **शतम्**=शतवर्षपर्यन्त **महिषान्**=(मह पूजायाम्) पूजा की भावनाओं को-अथवा उत्तम यज्ञों को प्राप्त कराते हैं। **क्षीरपाकम्**=वेदधेनु के दुग्ध में पके **ओदनम्**=ज्ञान के भोजन को प्राप्त कराते हैं। तथा **एमुषम्**=(मुष स्तेये) सब बुराइयों का मोषण करनेवाली **वराहम्**=(वरं वरं आहन्ति, हन्

गतौ=प्राप्तौ) उत्तमताओं को प्राप्त करानेवाली वृत्ति को हमारे अन्दर भरते हैं।

भावार्थ–प्रार्थना किये हुए प्रभु ज्ञानों को, पूजा की भावनाओं को, वेदधेनु के दुग्ध में पके ज्ञान के भोजन को तथा बुराइयों को समाप्त करनेवाली उत्तमता की वृत्ति को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पं- ः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

धनुः, बुन्दः व बाहू

तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनुः साधुर्बुन्दो हिरण्ययः।
उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋदूपे चिदृदूवृधा॥ ११॥

(१) **ते धनुः**=हे इन्द्र! तेरा धनुष **तुविक्षम्**=शत्रुओं का महान् क्षय करनेवाला है, **सुकृतम्**=शोभन कर्मोंवाला व **शभयम्**=उत्तम सुख को देनेवाला है। वस्तुतः 'प्रणवो धनुः'=प्रभु का नाम ही धनुष है। यह प्रभु नामस्मरण शत्रुओं का विनाशक, शुभ का उत्पादक तथा सुखद है। **बुन्दः**=बाण (इषु) **साधुः**=सब कार्यों को सिद्ध करनेवाला व **हिरण्ययः**=ज्योतिर्मय है। आत्मा ही बाण है–यह साधु व हिरण्य बना है। (२) हे इन्द्र! **ते**=तेरी **उभा बाहू**=दोनों भुजाएँ **रण्या**=रमणीय वरण के लिये उत्तम हैं, **सुसंस्कृते**=ये भुजाएँ पूर्णरूप से परिष्कृत हैं। **ऋदूपे**=सब पीड़कों को दूर फेंकनेवाली हैं तथा **चित्**=निश्चय से **ऋदूवृधा**=इन पीड़क शत्रुओं को विद्ध करनेवाली हैं।

भावार्थ–प्रणवरूप धनुष को हम ग्रहण करें। यह शत्रुओं का क्षय करनेवाला, शुभ कर्मोंवाला व सुख को देनेवाला है। हम आत्मरूप बाण को उत्तम कार्यों का साधक व ज्योतिर्मय बनायें। हमारी भुजाएँ संग्राम में उत्तम व शत्रुओं को परे फेंकनेवाली व उन्हें विद्ध करनेवाली हों।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'कुरुसुति काण्व' ही है–

७८. [अष्टसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पुरोडाश+गोशत

पुरोळाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर। शता च शूर गोनाम्॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमारे लिये **अन्धसः**=अन्न के **सहस्रम्**=आनन्दमय (स+हृस्) **पुरोडाशम्**=(oblation) हुत (पुरा-दाश्), अर्थात् पहले यज्ञ में देने को और फिर यज्ञशेष के रूप में सेवन को **आभर**=भरिये–प्राप्त कराइये। हम सदा यज्ञशेष का सेवन करें। (२) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! आप हुतशेष को तो हमें प्राप्त कराइये ही। **च**=और **गोनां शता**=ज्ञान की वाणियों को भी सैकड़ों की संख्या में प्राप्त करानेवाले होइये।

भावार्थ–हम हुतशेष का सेवन करें–देकर बचे हुए को ही खाएँ। तथा अत्यन्त ज्ञान को प्राप्त करें।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

व्यञ्जनम्+अभ्यञ्जनम्

आ नो भर व्यञ्जनं गामश्वमभ्यञ्जनम्। सचा मना हिरण्यया॥ २॥

(१) हे प्रभो! आप **नः**=हमारे लिये **व्यञ्जनम्**=विविध विज्ञानों के प्रकाश को (Making clear) **आभर**=प्राप्त कराइये। **गां अश्वम्**=ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को प्राप्त कराइये। इन्हीं से तो हम उन विषयों के शास्त्रीय व क्रियात्मक ज्ञान को प्राप्त कर पायेंगे। इन विज्ञानों के द्वारा

अभ्यञ्जनम्=Decoration अध्यात्म ज्ञान के अलंकरण को प्राप्त कराइये। ये विज्ञान अध्यात्म ज्ञान का सहायक बनें। (२) इस प्रकार, हे प्रभो! आप **सचा**=साथ-साथ ही हमारे लिये **मना**=इन मननीय **हिरण्यया**=हितरमणीय ज्ञानों को दीजिये।

भावार्थ-विविध विज्ञान 'व्यञ्जन' हैं, तो अध्यात्मज्ञान 'अभ्यञ्जन' है। प्रभु हमारे लिये इन व्यञ्जनों व अभ्यञ्जन को साथ-साथ प्राप्त कराएँ। इनके लिये हमें उत्तम ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को दें।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

कर्णशोभना

उत नः कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर। त्वं हि शृण्विषे वसो॥ ३॥

(१) हे **धृष्णो**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले प्रभो! आप **नः**=हमारे लिये **उत**=निश्चय से **पुरूणि**=खूब पालन व पूरण करनेवाले **कर्णशोभना**=कानों के लिये शोभा के कारणभूत ज्ञानों को **आभर**=प्राप्त कराइये। ये ज्ञान के वचन ही हमारे कानों के लिये शोभा के वर्धक हों। (२) हे **वसो**=ज्ञान को देकर हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **हि**=ही **शृण्विषे**=हमारे से सुने जाते हैं। हमारे लिये ज्ञानों को देनेवाले आप ही हैं।

भावार्थ-हम ज्ञान के वचनों को सुनें। ये ज्ञानवाणियाँ ही हमारे कानों के आभरण हों।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वृधीक, सुषा व सुदा

नकीं वृधीक इन्द्र ते न सुषा न सुदा उत। नान्यस्त्वच्छूर वाघतः॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वाघतः**=ऋत्विओं-यज्ञशील पुरुषों का **त्वत् अन्यः**=आपसे भिन्न कोई और **वृधीकः**=बढ़ानेवाला **नकीम्**=नहीं है। आप ही सब यज्ञशील पुरुषों के बढ़ानेवाले हैं। (२) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **न ते सुषाः**=आपका कोई भी सुष्ठु सम्भजन करनेवाला नहीं है। संग्राम आदि में आप ही इन ऋत्विजों के संभक्ता (=साथ देनेवाले) होते हैं। **उत**=और **न सुदाः**=आपके समान कोई और उत्तम दाता नहीं। **न**=वस्तुतः आपसे भिन्न कोई नहीं है। आपसे पृथक् स्थान में किसी की सत्ता नहीं है। प्रकृति व जीव सब आपके आधार से ही हैं।

भावार्थ-हम यज्ञशील बनें। प्रभु ही यज्ञशील पुरुषों के बढ़ानेवाले, संग्राम में साथ देनेवाले व सब उत्तम साधनों व पदार्थों को देनेवाले हैं।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

न निकर्तवे, न परिशक्तवे

नकीमिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे। विश्वं शृणोति पश्यति॥ ५॥

(१) **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **निकर्तवे नकीम्**=निरादर व हिंसा के लिये नहीं होते-कोई भी प्रभु का निरादर व हिंसन नहीं कर सकता। **शक्रः**=वे सर्वशक्तिमान् प्रभु **परिशक्तवे न**=बल द्वारा पराजित करने योग्य नहीं होते। वे प्रभु सर्वाधिक ऐश्वर्यवाले व सर्वशक्तिमान् हैं। (२) वे प्रभु ही **विश्वं शृणोति**=सब को सुनते हैं-सब की प्रार्थना को सुननेवाले वे प्रभु ही हैं और सब को वे ही **पश्यति**=देखते हैं (Look after)-सब का वे ही पालन व पोषण करते हैं।

भावार्थः-कोई भी प्रभु का हिंसन व निरादर नहीं कर सकता। प्रभु ही सब की प्रार्थना

को सुनते हैं व सभी का पालन करते हैं।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

क्रोध का पराभव

स मन्युं मर्त्यानामदब्धो नि चिकीषते। पुरा निदश्चिकीषते॥ ६॥

(१) **सः अदब्धः**=वे किसी से हिंसित न होनेवाले प्रभु **मर्त्यानाम्**=मनुष्यों के **मन्युम्**=क्रोध को **निचिकीषते**=(निकरोति) निरादृत करते हैं-पराभूत करते हैं। प्रभु का स्मरण करने पर यह उपासक क्रोधशून्यवृत्तिवाला बनता है। (२) **निदः पुरा**=निन्दनीय स्थिति में पहुँचने से पूर्व ही प्रभु इनके क्रोध को **चिकीषते**=निकृत करते हैं। क्रोध के कारण मनुष्य उपहास्य व निन्द्य स्थिति में पहुँच जाता है। प्रभु अपने उपासक को इस स्थिति में कभी नहीं पहुँचने देते।

भावार्थ—प्रभु अपने उपासक को क्रोध पर विजयी बनाते हैं। उपासना क्रोध को दूर करती है।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

क्रतुसे पूर्ण उदर

क्रत्व इत्पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः। वृत्रघ्नः सोमपाव्नः॥ ७॥

(१) **तुरस्य**=कर्मों को त्वरा से करते हुए **विधतः**=उपासक का-कर्म के द्वारा उपासना करते हुए पुरुष का **उदरम्**=उदर-आभ्यन्तर प्रदेश **इत्**=निश्चय से **क्रत्वः**=शक्ति व प्रज्ञान से **पूर्णम्**=परिपूर्ण **अस्ति**=होता है। इसका प्राणमयकोश शक्ति से परिपूर्ण होता है, तो इसका विज्ञानमयकोश ज्ञान से परिपूर्ण हुआ करता है। (२) **वृत्रघ्नः**=ज्ञान की आवरणभूत वासना का विनाश करनेवाले और इस **सोमपाव्नः**=सोम का (वीर्य का) रक्षण करनेवाले पुरुष का उदर क्रतु से पूर्ण हुआ करता है। सोम ने ही तो शरीर में शक्ति व मस्तिष्क में ज्ञान की स्थापना करनी है।

भावार्थ—हम त्वरा से कर्त्तव्य कर्मों को करते हुए प्रभु का पूजन करें। वासना को विनष्ट करते हुए सोम का रक्षण करनेवाले बनें। इस प्रकार हम शक्ति व ज्ञान से परिपूर्ण हृदयवाले बनेंगे।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

वसूनि+सौभगा

त्वे वसूनि संगता विश्वा च सोम सौभगा। सुदात्वपरिह्वृता॥ ८॥

(१) हे **सोम**=सोम का पान करनेवाले (सोमपायिन्) इन्द्र! **त्वे**=आप में **वसूनि**=निवास के लिये आवश्यक सब तत्त्व-सब धन **संगता**=संगत होते हैं। **च**=और आप में ही सब **शौभगा**=सौभाग्य संगत हुए हैं। सोमशक्ति का रक्षण हमारे जीवनों को भी वसुओं और सौभाग्यों से संगत करे। (२) हे प्रभो! आपके **सुदानु**=उत्तम दान **अपरिह्वृता**=कुटिलता से रहित हैं। प्रभु के अनुग्रह से हमें 'स्वास्थ्य, पवित्रता व ज्ञानदीप्ति' प्राप्त होती है। इनके प्राप्त होने से हमारा जीवन अकुटिल बनता है।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से हमें सब वसु व सौभाग्य प्राप्त हों। ये वसु व सौभाग्य हमारे जीवनों को अकुटिल बनाएँ।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

यवयुः, गव्युः, हिरण्ययुः, अश्वयुः (कामः)

त्वामिद्यवयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः। त्वामश्वयुरेषते॥ ९॥

(१) हे प्रभो! **मम**=मेरा **यवयुः कामः**=(यवः यु मिश्रणामिश्रणयोः) बुराई को दुर करने व अच्छाई को प्राप्त करने का काम (मनोरथ) **त्वां इत्**=आपको ही **एषते**=प्राप्त होता है, अर्थात् मैं 'यव' की कामनावाला होता हुआ आपको ही प्राप्त होता हूँ। इसी प्रकार **गव्युः**=ज्ञानेन्द्रियों की प्राप्ति का काम (मनोरथ) आपको ही प्राप्त होता है। (२) इसी प्रकार **हिरण्ययुः**=हितरमणीय ज्ञान की अभिलाषा आपकी ओर ही मुझे लाती है तथा **अश्वयुः**=उत्तम कर्मेन्द्रियों की कामना **त्वाम्**=आपको ही प्राप्त करती है।

भावार्थ—प्रभु ही हमें बुराइयों से दूर करके अच्छाइयों को प्राप्त कराते हैं। प्रभु ही उत्तम ज्ञानेन्द्रियों, हितरमणीय ज्ञानों व उत्तम कर्मेन्द्रियों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—कुरुसुतिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

दान व प्रभुप्राप्ति

तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं चना ददे। दिनस्य वा मघवन्त्संभृतस्य वा पूर्धि यवस्य काशिना॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अहम्**=मैं **तव इत् आशसा**=आपकी ही आशा से (hoping) प्राप्ति की कामना से (desire) **हस्ते**=हाथ में **दात्रम्**=दान की क्रिया को **चनः**=निश्चय से **आददे**=ग्रहण करता हूँ। दान की वृत्ति हमारी बुराइयों का अवदान (खण्डन) करती है और इस प्रकार हमारे जीवनों को पवित्र बनाकर हमें प्रभुप्राप्ति के योग्य करती है। (२) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **संभृतस्य दिनस्य**=सम्यक् भरण किये गये **दिनस्य**=दिन के **काशिना**=(light, splendour) प्रकाश से **वा**=तथा **यवस्य**=बुराई को पृथक् करने व अच्छाई को धारण करने के प्रकाश से हमारे जीवन को **पूर्धि**=भरिये।

भावार्थ—हम दान की वृत्तिवाले बनकर पवित्र जीवनवाले हों। यही प्रभु प्राप्ति का मार्ग है। हमारा दिन उत्तम कार्यों से भरा हुआ हो। हम सदा बुराई को दूर करने और अच्छाई को धारण करनेवाले बनें। इसी से जीवन प्रकाशमय होगा।

गतमन्त्र के अनुसार अपने प्रत्येक दिन को उत्तम कार्यों से भरनेवाला यह 'कृत्नु' है। तपस्वी होने से 'भार्गव' है। यह सोमरक्षण के द्वारा ही ऐसा बन पाता है—

[७९] एकोनाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कृत्नुर्भार्गवः॥ देवता—सोमः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'विश्वजित्' सोम

अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित्सोमः। ऋषिर्विप्रः काव्येन॥ १॥

(१) शरीर में सुरक्षित **अयम्**=यह **सोमः**=सोम **कृत्नुः**=हमें क्रियाशील बनानेवाला है। **अगृभीतः**=यह रोग आदि शत्रुओं से गृहीत नहीं होता **विश्वजित्**=सबको जीतनेवाला है—यही रोगों को पराजित करके हमें स्वास्थ्य को प्राप्त कराता है, वासनाओं को अभिभूत करके पवित्र मनवाला बनाता है तथा बुद्धि की कुण्ठता को नष्ट करके ज्ञानदीप्त जीवनवाला करता है। इस प्रकार यह सोम **उद्भित्**=हमारी सब उन्नतियों को करनेवाला है। (२) यह सोम **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा है।

बुद्धि को तीव्र बना के हमें तत्त्वज्ञान देनेवाला है। **काव्येन**=वेदरूप महान् काव्य के द्वारा यह **विप्रः**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाला है।

भावार्थ–शरीर में सुरक्षित सोम 'विश्वजित्' है यह हमें शरीर में क्रियाशील, नीरोग, उन्नतिशील व ज्ञानी बनाता है।

ऋषिः—कृत्नुर्भार्गवः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'नग्न-तुर-अन्ध व श्रोण' प्रभुकृपा से कृपा बन जाते हैं?

अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत्तुरम्। प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत्॥ २॥

(१) गतमन्त्र में वर्णित सोम शरीर में सुरक्षित होकर हमें उस महान् सोम (प्रभु) की कृपा का पात्र बनाता है **यत्**=जो ब्रह्म **नग्नं अभ्यूर्णोति**=नग्न को वस्त्रों से आच्छादित करता है, **यत्**=जो **विश्वम्**=सब **तुरम्**=रोगहिंसित पुरुष को **भिषक्ति**=चिकित्सित करता है। (२) उस प्रभु के अनुग्रह से शरीर में सोम के पूर्णरूप से सुरक्षित होने पर **अन्धः**=अन्धा भी **इम्**=निश्चय से **प्र ख्यत्**=देखता है और **श्रोणः**=पंगु भी **निः भूत्**=घर से बाहर जानेवाला बनता है, अर्थात् प्रभु के अनुग्रह से सुरक्षित सोम दृष्टिशक्ति व चलने की शक्ति प्राप्त कराता है।

भावार्थ–प्रभु का अनुग्रह नग्न को वस्त्रों से आच्छादित करता है, रोगी को नीरोग बनाता है, अन्धे को देखनेवाला और लंगड़े को खूब चलनेवाला बनाता है।

ऋषिः—कृत्नुर्भार्गवः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—विराट् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

क्षीण करनेवाला द्वेष

त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः। उरु यन्तासि वरूथम्॥ ३॥

(१) हे **सोम**=सम्पूर्ण संसार को जन्म देनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **अन्यकृतेभ्यः**=दूसरों से हमारे अन्दर उत्पन्न किये गये **तनूकृद्भ्यः**=हमें क्षीण करनेवाले **द्वेषोभ्यः**=द्वेष के भावों से **उरु**=विशाल-महान् **वरूथम्**=रक्षक बल को **यन्तासि**=देनेवाले हैं। (२) प्रभु का स्मरण हमें द्वेष के भावों से दूर करता है। द्वेष हमें क्षीण करनेवाला है। प्रभु ही हमें इस द्वेष से अनाक्रान्त होने का सामर्थ्य प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ–इस शरीर में सोम का रक्षण करें और प्रभु का स्मरण करें तो द्वेष से ऊपर उठ पाते हैं।

ऋषिः—कृत्नुर्भार्गवः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

चित्ती+दक्षैः

त्वं चित्ती तव दक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्। यावीरघस्य चिद् द्वेषः॥ ४॥

(१) हे **ऋजीषिन्**=ऋजुता (=सरलता) के मार्ग की प्रेरणा देनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **तव**=अपने **चित्ती**=ज्ञान से तथा **दक्षैः**=बलों से **दिवः**=मस्तिष्क के दृष्टिकोण से तथा **पृथिव्याः**=शरीर के दृष्टिकोण से (पृथिवी शरीरम्) **अघस्य**=हमारा हनन करनेवाले पापी के **चित्**=भी **द्वेषः**=द्वेष को **आयावीः**=सर्वतः हमारे से पृथक् करिये। (२) ज्ञान और बल हमें द्वेष से दूर करते हैं। द्वेष के अभाव में ज्ञान और बल की वृद्धि होती है। तभी मस्तिष्क व शरीर का ठीक से विकास हो पाता है।

भावार्थ–प्रभु हमें ज्ञान व शक्ति देकर द्वेष से दूर करें। निर्द्वेषता हमारे मस्तिष्क व शरीर

को ठीक रखती है।

ऋषिः—कृत्नुर्भार्गवः॥ देवता—सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

धनप्राप्ति व दान

अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद्ददुषो रातिम्। ववृज्युस्तृष्यतः कामम्॥ ५॥

(१) **अर्थिनः**=प्रार्थना करनेवाले–'वयं स्याम पतयो रयीणाम्' का जप करनेवाले **चेत्**=यदि प्रभु की कृपा से **अर्थं यन्ति**=धन को प्राप्त करते हैं। तो **इत्**=निश्चय से वे **ददुषः**=दानशील पुरुष के **रातिम्**=दान के भाव को भी **गच्छान्**=प्राप्त करें। धन प्राप्त होने पर दानशील बनें। (२) अब ये अर्थी धनी बनकर **तृष्यतः**=प्यासे की **कामम्**=अभिलाषा को **ववृज्युः**=पूर्ण करें। उसकी धन की प्यास को धनदान द्वारा बुझानेवाले हों। अथवा प्यासे की कामना को छोड़नेवाले हों, अर्थात् सतत धन के लोभ में ही न पड़े रहें।

भावार्थ–हम प्रभुकृपा से धन को प्राप्त करें तो दान की वृत्ति को भी प्राप्त करें। खूब दान देनेवाले बनें, धन के लोभ में न पड़ें।

ऋषिः—कृत्नुर्भार्गवः॥ देवता—सोमः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

ज्ञान+यज्ञ=शान्त दीर्घजीवन

विदद्यत्पूर्व्यं नष्टमुदीमृतायुमीरयत्। प्रेमायुस्तारीदतीर्णम्॥ ६॥

यद्=जब **पूर्व्यम्**=जीवन के पूर्व काल में–ब्रह्मचर्याश्रम में होनेवाले ज्ञानरूप धन को **विदद्**=प्राप्त करता है, और **ईम्**=निश्चय से **नष्टम्**=अदृष्ट–सामान्यतः न दिखनेवाली **ऋतायुम्**=यज्ञ की कामना को **ईं उद् ईरयत्**=निश्चय से अपने में प्रेरित करता है। तो **ईम्**=निश्चय से **अतीर्णम्**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं से अनाक्रान्त **आयुः**=जीवन को **प्रतारीत्**=बढ़ाता है।

भावार्थ–हम ज्ञान को प्राप्त करें–यज्ञशील बनें। यही काम–क्रोध आदि से अनाक्रान्त दीर्घजीवन को प्राप्त करने का मार्ग है।

ऋषिः—कृत्नुर्भार्गवः॥ देवता—सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सुशेवः+अवातः (सोमः)

सुशेवो नो मृळयाकुरदृप्तक्रतुरवातः। भवा नः सोम शं हृदे॥ ७॥

(१) हे **सोमः**=वीर्यशक्ते! शरीर में सुरक्षित हुई तू **नः हृदे**=हमारे हृदयों के लिये **शं भवा**=शान्ति को देनेवाली हो। सुरक्षित वीर्य हमें शान्त हृदय बनाता है। (२) यह सोम **नः**=हमारे लिये **सुशेवः**=उत्तम कल्याण को करनेवाला हो। **मृडयाकुः**=यह हमें सुखी करे। **अदृप्तक्रतुः**=यह हमें गर्वशून्य ज्ञान व शक्तिवाला बनाये तथा **अवातः**=(वा To injure, न वातं यस्मात्) सब प्रकार की हानियों से–रोगादि के आक्रमणों से बचाये।

भावार्थ–शरीर में सुरक्षित सोम हमें शान्त हृदयवाला बनाता है। यह हमें शरीर व मन से सुखी करता है। शक्ति व ज्ञान के होने पर भी हमें निरभिमान बनाता है और रोगादि से आक्रान्त नहीं होने देता।

ऋषिः—कृत्नुर्भार्गवः॥ देवता—सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'उद्वेग व भय' से दूर

मा नः सोम सं वीविजो मा वि बीभिषथा राजन्। मा नो हार्दि त्विषा वधीः॥ ८॥

(१) हे **सोम**-वीर्यशक्ते! तू **नः**=हमें **मा संवीविजः**-मत उद्विग्न होने दे। तेरे रक्षण से हमारे हृदय शान्त बने रहें। हे **राजन्**-हमारे जीवनों को दीप्त बनानेवाले सोम! **मा वि बीभिषथाः**=हमें रोग आदि के भय से आक्रान्त मत होने दे। (२) हे सोम! तू **नः**-हमें **हार्दि**=हृदयों में **त्विषा**= ज्ञानदीप्ति के द्वारा **मा वधीः**-काम आदि शत्रुओं से हिंसित मत होने दे।

भावार्थ-सुरक्षित सोम हमें उद्वेग व रोगों के भय से मुक्त करता है। यह हमें ज्ञानदीप्ति प्राप्त कराके काम-क्रोध से हिंसित नहीं होने देता।

ऋषिः—कृत्नुर्भार्गवः॥ **देवता**—सोमः॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

द्विषः स्त्रिधः (अपसेध)

अव यत्स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे। राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्त्रिधः सेध॥ ९॥

(१) **यत्**=जब **देवानाम्**=देववृत्तिवाले पुरुषों के **स्वे सधस्थे**=आत्मा के साथ मिलकर बैठने के स्थान में, अर्थात् हृदयदेश में स्थित हुआ मैं **दुर्मतीः**=अशुभ विचारों को **अव ईक्षे**-अपने से दूर हुआ देखता हूँ तो यही प्रार्थना करता हूँ कि हे **राजन्**-हमारे जीवनों को दीप्त करनेवाले सोम! तू **द्विषः अपसेध**=द्वेष की भावनाओं को हमारे से दूर कर। हे **मीढ्वः**=सुखों का सेचन करनेवाले सोम तू **स्त्रिधः**=हिंसाओं को (अपसेध=) हमारे से पृथक् कर।

भावार्थ-हम हृदयदेश में प्रभु का ध्यान करते हुए दुर्विकारों से बचें। द्वेष व हिंसाओं से दूर होते हुए अपने जीवनों को उत्तम बनायें।

[८०] अशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—एकद्यूर्नौधसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'अद्वितीय सुखदाता' प्रभु

नह्य१न्यं बळाकरं मर्डितारं शतक्रतो। त्वं न इन्द्र मृळय॥ १॥

(१) हे **शतक्रतो**=अनन्त शक्ति व प्रज्ञानवाले प्रभो! मैं **वट्**=सचमुच **अन्यम्**=आपसे भिन्न किसी और को **मर्डितारम्**-मेरे जीवन को सुखी करनेवाला **नहि आकरम्**-नहीं करता हूँ। आपको ही मैं सुख प्राप्त करानेवाला जानता हूँ। (२) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमें **मृडय**-सुखी करिये।

भावार्थ-हम प्रभु पर पूर्ण आस्था रखें। प्रभु ही हमें जीवन में सुखी करनेवाले हैं।

ऋषिः—एकद्यूर्नौधसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'शक्ति-प्रदाता' प्रभु

यो नः शश्वत्पुराविथामृध्रो वाजसातये। स त्वं न इन्द्र मृळय॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **यः**=जो आप **अमृध्रः**=अहिंसित होते हुए **नः**=हमें **शश्वत्**=सदा से **पुरा**=(पृ पालनपूरणयोः) पालन व पूरण के द्वारा **आविथ**=रक्षित करते हो। वे आप **वाजसातये**=शक्ति को प्राप्त कराने के लिये होते हैं। इस शक्ति के द्वारा ही आप हमें पालन व पूरण के योग्य बनाते हैं। (२) हे प्रभो! **सः त्वम्**=वे आप **नः**=हमें **मृडय**=सुखी करिये।

भावार्थ-प्रभु हमें शक्ति को प्राप्त कराके पालन व पूरण के योग्य बनाते हैं। इस प्रकार हमें प्रभु सुखी करते हैं।

ऋषिः—एकद्यूर्नौधसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'रध्रचोदन' व 'सुन्वान के रक्षक' प्रभु

किमङ्ग रध्रचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि। कुवित्स्विन्द्र णः शकः॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **किम्**=क्या ही **अंग**=शीघ्र अथवा खूब **रध्रचोदनः**= आराधक को प्रेरित करनेवाले हैं। उपासक को सदा प्रभु से उत्तम प्रेरणा प्राप्त होती है। आप **सुन्वानस्य**=यज्ञशील पुरुष के **इत्**=निश्चय से **अविता असि**=रक्षक हैं। वस्तुतः प्रभु की कृपा से ही इन यज्ञशील पुरुषों के यज्ञ पूर्ण होते हैं। (२) हे इन्द्र! आप **नः**=हमें **कुवित्**=खूब ही **सुशकः**=उत्तम शक्तिशाली बनाइये।

भावार्थ—प्रभु आराधकों को प्रेरणा प्राप्त कराते हैं, यज्ञशील पुरुषों का रक्षण करते हैं। ये प्रभु हमें खूब शक्तिशाली बनायें।

ऋषिः—एकद्यूर्नौधसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'उन्नति के साधक' प्रभु

इन्द्र प्र णो रथमव पश्चाच्चित्सन्तमद्रिवः। पुरस्तादेनं मे कृधि॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **नः रथम्**=हमारे इस शरीररथ को **प्र अव**=प्रकर्षेण रक्षित करिये। आपने ही शक्ति व प्रज्ञान को प्राप्त कराके हमें सुरक्षित करना है। (२) हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! आप **पश्चात् चित् सन्तम्**=पीछे भी होते हुए-पिछड़े हुवे भी **एनम्**= इस **मे**=मेरे (रथं=) शरीररथ को **पुरस्तात् कृधि**=आगे करिये। आपके अनुग्रह से हम अवनत न रहकर खूब उन्नत हो जाएँ।

भावार्थ—प्रभु हमारे शरीररथ का रक्षण करते हैं। ये हमें आगे बढ़ाते हैं।

ऋषिः—एकद्यूर्नौधसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

वाजयु श्रवः

हन्तो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि। उपमं वाजयु श्रवः॥ ५॥

(१) हे प्रभो! **हन्त नु**=यह दुःख की ही बात है कि **नु किं आससे**=आप अब भी क्यों बैठे ही हैं? आप हमारे पर अनुग्रह करिये और **नः**=हमारे **रथम्**=शरीररथ को **प्रथमं कृधि**=सर्वप्रथम करिये। 'हमारा यह रथ सब से आगे हो' बस ऐसी ही कृपा आप करिये। (२) आपके अनुग्रह से **वाजयु श्रवः**=हमारे साथ शक्ति को जोड़नेवाला ज्ञान **उपमम्**=हमारे अन्तिकतम हो। हमें शक्तियुक्त ज्ञान प्राप्त हो। इसे प्राप्त कराने में आप विलम्ब न करिये।

भावार्थ—प्रभु हमारे सरीर-रथ को आगे उन्नतिशील बनाते हैं।

ऋषिः—एकद्यूर्नौधसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'रक्षक व विजयप्रापक' प्रभु

अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित्परि। अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृधि॥ ६॥

(१) हे प्रभो! आप **नः**=हमारे **वाजयुम्**=शक्ति को अपने साथ जोड़नेवाले **रथम्**=इस शरीररथ को **अवा**=रक्षित करिये। **ते**=आपके लिये **परि**=चारों ओर दिखनेवाला यह कर्त्तव्य समूह **किमित्**=क्या ही **सुकरम्**=सुगमता से करने योग्य है, आप हमारे इन शरीररथों का अनायास ही

रक्षण कर सकते हैं। (२) हे प्रभो! आप **अस्मान्**=हमें **सुजिग्युषः**=उत्तम विजयशील **कृधि**=करिये। आपकी शक्ति से शक्तिसम्पन्न होकर हम सदा विजयी बनें।

भावार्थ—प्रभु हमारे शरीररथों का रक्षण करते हैं—प्रभु के लिये यह बात अनायास ही साध्य है। प्रभु हमें विजयी बनायें।

ऋषिः—एकद्यूर्नौधसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पूरणकर्ता 'पूः' प्रभु

इन्द्र दृह्यस्व पूरसि भद्रा त एति निष्कृतम्। इयं धीर्ऋत्वियावती॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **दृह्यस्व**=आप हमें दृढ़ बनाइये। **पूः असि**=आप हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं। (२) **इयम्**=यह **ऋत्वियावती**=ऋतु-ऋतु में होनेवाली-समय-समय पर होनेवाली **भद्रा**=कल्याणकारिणी **धीः**=बुद्धिपूर्वक की गई स्तुति **ते**=आपके **निष्कृतम्**=संस्कृत हृदयरूप स्थान में **एति**=प्राप्त होती है। हम हृदयस्थित आपका स्तवन करते हैं। आपने ही तो हमें दृढ़ बनाना है—आपने ही हमारा पूरण करना है।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु हमें दृढ़ बनाते हैं और हमारा पूरण करते हैं।

ऋषिः—एकद्यूर्नौधसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उर्वी काष्ठा

मा सीमवद्य आ भागुर्वी काष्ठा हितं धनम्। अपावृक्ता अरत्नयः॥ ८॥

(१) हे प्रभो! **सीम्**=निश्चय से आप हमें **अवद्ये**=पाप में **मा आभाग्**=मत भागी बनाइये। हमें अपनी प्रेरणा द्वारा सदा पापों से बचाइये। **काष्ठा उर्वी**=हमारा लक्ष्य विशाल हो **हितं धनम्**=हम सदा हितकर धन का ही अर्जन करें। (२) **अरत्नयः**=अरममाण शत्रु-आनन्द के विघ्नभूत काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रु **अपावृक्ताः**=हमारे से सुदूर परित्यक्त हों।

भावार्थ—हम पाप से दूर रहें। हमारा लक्ष्य ऊँचा हो। सदा हितकर धन का अर्जन करें। काम-क्रोध आदि को दूर करें।

ऋषिः—एकद्यूर्नौधसः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

तुरीय यज्ञिय नाम

तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि। आदित्पतिर्न ओहसे॥ ९॥

(१) हे प्रभो! **यदा**=जब आप हमारे लिये **तुरीयम्**=चौथे **यज्ञियं नाम**=पवित्र नाम को करा करते हैं, **तत्**=तो **उश्मसि**=हम आपकी प्राप्ति की ही कामना करते हैं। मन में सब के हित की भावना को लेने पर हम 'वैश्वानर' होते हैं। सर्वहितकारी कर्मों में सफलता के लिये 'तैजस' अर्थात् तेजस्वी शरीरवाले बनते हैं और मस्तिष्क में ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करके 'प्राज्ञ' बनते हैं। अब चौथे स्थान में 'शान्त शिव अद्वैत' स्थिति को प्राप्त करते हैं। यही 'यज्ञिय तुरीय नाम' हैं। (२) इस तुरीय नाम को प्राप्त करने पर **आत् इत्**=अब शीघ्र ही **पतिः**=सर्वरक्षक आप **नः**=हमें **ओहसे**=अपने समीप प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम 'वैश्वानर, तैजस व प्राज्ञ' बनते हुए 'शान्त शिव अद्वैत' स्थिति में पहुँचें। यहीं प्रभु की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—एकद्यूनौधसः ॥ देवता—देवाः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अवीवृधत्+अमन्दीत्

अवीवृधद्वो अमृता अमन्दीदेकद्यूर्देवा उत याश्च देवीः।
तस्मा उ राधः कृणुत प्रशस्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्॥ १०॥

(१) हे **देवाः**=देववृत्ति के पुरुषो! **उत**=और **याः च देवी**=जो भी देववृत्ति की नारियाँ हैं, **उ**=उन आप सबको वह **एकद्यूः**=अद्वितीय दीप्तिवाला प्रभु ही **अवीवृधद्**=बढ़ाता है। हे **अमृताः**=विषयवासनाओं के पीछे न मरनेवाले नर-नारियो! वह प्रभु ही तुम्हें **अमन्दीत्**=आनन्दित करता है। (२) **तस्मा**=उसकी प्राप्ति के लिये तुम **उ**=निश्चय से **राधः**=धन को **प्रशस्तं कृणुत**=प्रशस्त करो, अर्थात् धन को अपवित्र साधनों से मत कमाओ। तुम्हें **प्रातः**=प्रातः **मक्षू**=शीघ्र ही **धियावसुः**=बुद्धिपूर्वक कर्मों से निवास को उत्तम बनानेवाला वह प्रभु **जगम्यात्**=प्राप्त हो। तुम प्रातः सर्वप्रथम उस प्रभु का ही स्मरण करो।

भावार्थ—हम देववृत्ति के बनें। विषयवासनाओं में न उलझें। प्रातः सर्वप्रथम प्रभु का स्मरण करें। प्रभु ही हमें बढ़ाते हैं, वे ही आनन्दित करते हैं।

यह प्रभु से अपना संश्लेषण (मेल) करनेवाला 'कुसीदी' कहलाता है (कुस संश्लेषणे)। यही समझदार (काण्व) है। यह प्रभु से कहता है—

नवमोऽनुवाकः

[८१] एकाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कुसीदी काण्वः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

'महाहस्ती' प्रभु

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय। महाहस्ती दक्षिणेन॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **महाहस्ती**=महान् हाथोंवाले हैं। आप **नः**=हमारे लिये **दक्षिणेन**=दक्षिण हाथ से **तु**=अवश्य ही **आ संगृभाय**=सर्वतः सम्यक् सम्पत्ति को संगृहीत कराइये। आपके अनुग्रह से हम सदा सरल-अकुटिल (अवाम-न टेढ़े) मार्गों से धन का संग्रह करें। (२) उस धन का, जो **क्षुमन्तम्**=(क्षु शब्दे) प्रभु की स्तुतिवाला है, जो हमें प्रभुस्तवन से पृथक् नहीं कर देता। **चित्रम्**=जो ज्ञान को देनेवाला है (चित्+र) जो धन ज्ञानवृद्धि का साधन बनता है अतएव **ग्रामम्**=ग्रहणीय है।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से हम उस धन को प्राप्त करें, जो प्रशस्त मार्गों से कमाया जाता है-स्तुत्य है। जो धन हमारी ज्ञानवृद्धि का साधन बनता है और ग्रहणीय है।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

'तुविकूर्मि-तुविमात्र' प्रभु

विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम्। तुविमात्रमवोभिः॥ २॥

(१) हे प्रभो! हम **त्वा**=आपको **हि**=निश्चय से **तुविकूर्मिम्**=महान् कर्मोंवाला व **तुविदेष्णम्**=महान् देनेवाला **विद्मा**=जानते हैं। (२) आप उपासकों के **अवोभिः**=रक्षणों के हेतु से **तुवीमघम्**=महान् ऐश्वर्योंवाले व **तुविमात्रम्**=महान् परिमाणवाले-अनन्त सर्वव्यापक हैं।

भावार्थ—प्रभु महान् कर्मोंवाले, महान् देनेवाले, महान् ऐश्वर्य व महान् परिमाणवाले (सर्वव्यापक) हैं।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

भीमं न+गाम्

नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम्। भीमं न गां वारयन्ते॥ ३॥

(१) हे **शूर**-शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **नहि देवाः**=न देव और **न मर्तासः**-न मनुष्य **दित्सन्तम्**=देने की कामनावाले **त्वा**=आपको **वारयन्ते**=रोक पाते हैं। (२) **भीमं न, गाम्**-आप जैसे शत्रुओं के लिये भयंकर हैं, उसी प्रकार (गाम्=गम् गतौ) उपासकों के लिये अर्थों के गमक हैं। आप शत्रुओं को नष्ट करके अर्थों को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु शत्रुओं के लिये भयंकर हैं, उपासकों के लिये अर्थों के गमक। देने की कामनावाले प्रभु को कोई रोक नहीं सकता।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभुस्मरणपूर्वक धनार्जन

एतो न्विन्द्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजम्। न राधसा मर्धिषन्नः॥ ४॥

(१) हे मित्रो! **एत उ**=आओ ही। **नु**=अब **इन्द्रं स्तवाम**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु का स्तवन करें। जो प्रभु **वस्वः ईशानम्**=धनों के ईशान हैं, **स्वराजम्**=स्वयं देदीप्यमान हैं। (२) वे प्रभु **नः**=हमें **राधसा**=धन से **न मर्धिषत्**=कुचला नहीं जाने देते। प्रभुस्मरण के साथ अर्जित धन हमें हिंसित करनेवाला नहीं होता। इस धन से न हम विलास में फँसते हैं और न विनष्ट होते हैं।

भावार्थ—प्रभुस्मरणपूर्वक धनार्जन करते हुए हम धन से कभी विनष्ट न हों।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभुस्तवन व पुरुषार्थ से धनार्जन

प्र स्तोषदुप गासिषच्छ्रवत्साम गीयमानम्। अभि राधसा जुगुरत्॥ ५॥

(१) जीव को चाहिए कि **प्र स्तोषत्**=प्रभुस्तवन करे। **उप गासिषत्**=प्रभु का ही गायन करे। **गीयमानं साम श्रवत्**=गाये जाते हुए प्रभुस्तोत्रों को ही सुने, अर्थात् जीवन को प्रभुस्तवन व गुणगानमय बना दे। (२) यह जीव **राधसा**=कार्यसाधक धन की प्राप्ति के हेतु से **अभिजुगुरत्**=उद्यमशील हो, अर्थात् पुरुषार्थ से जीवनयात्रा की सिद्धि के लिये धनार्जन करे।

भावार्थ—हम प्रभुस्तवन करें और पुरुषार्थ से धनार्जन करें।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उत्साहित होकर वसु को प्राप्त करना

आ नो भर दक्षिणेनाभि सव्येन प्र मृश। इन्द्र मा नो वसोर्निर्भाक्॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ना**-हमारे लिये **दक्षिणेन**=दाहिने हाथ से **आभर**=ऐश्वर्य को प्राप्त कराइये। **स्वयेन अभि प्रमृश**=बाएँ हाथ से हमें थपकी देकर उत्साहित करिये (मृक्ष्) उत्साहित होकर हम धनार्जन के लिये उद्योगवाले हों। (२) हे प्रभो! हमें **वसोः**=निवास के लिये आवश्यक धन से **मा निर्भाक्**=वञ्चित मत करिये। वसु में हमें भागी बनाइये।

भावार्थ—हे प्रभो! आप हमें उत्साहित करिये और पुरुषार्थ के द्वारा धनार्जन में समर्थ करिये।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

कृपण धन-हरण

उप॑ क्रम॒स्वा भ॑र धृष॒ता धृ॑ष्णो॒ जना॑नाम्। अदा॑शूष्टरस्य॒ वेदः॑ ॥ ७ ॥

(१) **उप क्रमस्व**=हे राजन्! तू राष्ट्र में अनैतिक जीवनवाले पुरुषों पर आक्रमण करनेवाला है- उनके विरुद्ध कार्यवाही को करनेवाला हो। (to go against=उपक्रम) (२) हे **धृष्णो**=धर्षक राजन्! तू **धृषता**=अपने शत्रुधर्षक बल से **जनानाम्**-लोगों में **अदाशूः तरस्य**-इस अतिकृपण व्यक्ति के **वेदः**=धन को **आभर** (आहर)=हर ले।

भावार्थ-राजा को चाहिए कि राष्ट्र में कृपण व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करे और उनके धन का अपहरण करके उन्हें प्रवासित कर दे।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रभु के बल से बल सम्पन्न बनें

इन्द्र॒ य उ॒ नु ते॒ अस्ति॒ वाजो॒ विप्रे॑भिः॒ सनि॑त्वः। अ॒स्माभिः॒ सु तं स॑नुहि ॥ ८ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यः**=जो **उ**=निश्चय से **नु**=अब **ते**=आपका **वाजः**=बल **अस्ति**=है, वह **वि प्रेभिः**=ज्ञान के द्वारा अपना पूरण करनेवाले पुरुषों से **सनित्वः**=सम्भजनीय होता है। (२) आप **तम्**=उस बल को **अस्माभिः सु सनुहि**=हमारे साथ सम्यक् सम्भक्त करिये। उस बल को आप हमारे लिये दीजिये।

भावार्थ-ज्ञानी पुरुष प्रभु के बल को प्राप्त करने के लिये यत्नशील होते हैं। हम भी उस बल से अपने को सम्भक्त करनेवाले बनें।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

आह्लादक बल

स॒द्यो॒जुव॑स्ते॒ वाजा॑ अ॒स्मभ्यं॑ वि॒श्वश्च॑न्द्राः। वशै॑श्च म॒क्षू जर॑न्ते ॥ ९ ॥

(१) हे प्रभो! **ते वाजाः**-आप के बल **अस्मभ्यं सद्योजुवः**=शीघ्र ही हमें सन्मार्ग पर प्रेरित करनेवाले होते हैं **विश्वश्चन्द्राः**=ये बल सब के लिये आह्लाद का कारण बनते हैं। (२) ये बल **वशैः**=शत्रुओं को वशीभूत करने के हेतुओं से **मक्षू**=शीघ्र ही **जरन्ते**=आपका स्तवन करते हैं। आपका स्तवन करते हुए हम बलों के द्वारा शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले हों।

भावार्थ-प्रभु के बल हमें सत्कर्त्तव्यों में प्रेरित करें-ये सब के लिये आह्लादक हों और शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले हों।

कुसीदी काण्व ही प्रभु से प्रार्थना करता है-

इति षष्ठाष्टके पञ्चमोऽध्यायः

अथ षष्ठाष्टके षष्ठोऽध्यायः

[८२] द्व्यशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

परावतः+अर्वावतः

आ प्र द्र॑व परा॒वतो॑ऽर्वा॒वत॑श्च वृत्रहन्। मध्वः॒ प्रति॒ प्रभ॑र्मणि ॥ १ ॥

(१) हे **वृत्रहन्**=वासनाओं को विनष्ट करनेवाले प्रभो! आप **परावतः**=सुदूर फल के हेतु से, अर्थात् परलोक में निःश्रेयस की प्राप्ति के हेतु से **त्र**=तथा **अर्वावतः**=समीप फल के हेतु से, अर्थात् इहलोक में अभ्युदय की प्राप्ति के हेतु से **आ प्रद्रव**=हमें सर्वतः प्राप्त होइये। आपने ही हमें अभ्युदय व निःश्रेयस को प्राप्त कराना है। (२) हे प्रभो! **मध्वः**-सब ओषधियों के सारभूत व जीवन को मधुर बनानेवाले सोम के **प्रति प्रभर्मणि**=प्रतिदिन धारण के निमित्त आप हमें प्राप्त होइये। आपकी उपासना ही हमें वासनाओं से बचाकर इस सोम के रक्षण के योग्य बनायेगी।

भावार्थ–प्रभुस्तवन हमें वासनाओं से बचाकर अभ्युदय व निःश्रेयस को प्राप्त कराता है तथा सोम के रक्षण के योग्य करता है।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'तीव्राः मादयिष्णवः' सोमासः

ती॒व्राः सोमा॑स॒ आ ग॑हि सु॒तासो॑ मादयि॒ष्णवः॑। पिबा॑ द॒धृग्यथो॑चि॒षे॥ २॥

(१) ये **सोमासः**=सोमकण **तीव्राः**=(तीव्=To be strong) बड़ी शक्ति को देनेवाले हैं। सो हे जीव! तू **आगहि**=इनका सब प्रकार से ग्रहण कर–इनके प्रति आनेवाला हो। **सुतासः**=उत्पन्न हुए ये सोमकण **मादयिष्णवः**=आनन्द व मस्ती को देनेवाले हैं। (२) **दधृक्**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं का धर्षण करनेवाला होता हुआ तू **पिबा**=इनका पान कर-इन्हें शरीर में ही सुरक्षित कर। **यथा**=जिससे **ओचिषे**=तू इनका अपने में समवाय करनेवाला हो। तेरे रुधिर के साथ ये समवेत होकर सर्वत्र शरीर में व्याप्त रहें।

भावार्थ–शरीर में उत्पन्न हुए तथा शरीर में ही व्याप्त किये गये सोमकण हमें शक्तिशाली बनाते हैं और हमें आनन्दित करते हैं।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वराय मन्यवे

इ॒षा म॑न्दु॒स्वादु॒ तेऽरं॒ वरा॑य म॒न्यवे॑। भुव॑त्त इन्द्र॒ शं हृ॒दे॥ ३॥

(१) **इषा**=इस सोमरूप अन्न से **मन्दस्व**=आनन्द का अनुभव कर। **आत् उ**=अब शीघ्र ही यह सोमरूप अन्न **ते**-तेरे **वराय मन्यवे**=उत्कृष्ट ज्ञान के लिये **अरम्**-पर्याप्त होता है। सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करने का साधन बनता है। अथवा यह सोम **मन्यवे वराय अरम्**=क्रोध के निवारण के लिये पर्याप्त होता है। सोमरक्षक पुरुष कभी क्रोध का शिकार नहीं होता। (२) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! यह सोम **ते**=तेरे **हृदे**=हृदय के लिये **शं भुवत्**=शान्ति को देनेवाला होता है।

भावार्थ–सोमरक्षण से (क) ज्ञानाग्नि दीप्त होती है, (ख) क्रोध शान्त होता है, (ग) हृदय में शान्ति होती है।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उपमे रोचने दिवः

आ त्व॑शत्र॒वा ग॑हि॒ न्यु१॒॑क्थानि॑ च हूयसे। उ॒प॒मे रो॑च॒ने दि॒वः॥ ४॥

(१) हे **अशत्रो**=सब काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट करनेवाले सोम! **आ आगहि तु**=तू हमें सर्वथा प्राप्त हो ही। (२) **च**=और तू हमें **दिवः**=ज्ञान के **उपमे**=अन्तिकतम **रोचने**=दीप्त

स्थान में-हृदयदेश में **उक्थानि निहूयसे**=स्तोत्रों के प्रति पुकारता है, अर्थात् सुरक्षित सोम हमारे ज्ञान को बढ़ाता है और हमें प्रभुस्तवन की वृत्तिवाला बनाता है।

भावार्थ-शरीर में सुरक्षित सोम हमें क्रोध आदि शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ करता है। हमारे ज्ञान को बढ़ाता है और हमें प्रभुस्तवन की वृत्तिवाला बनाता है।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गोभिः श्रीतः (सोमः)

तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कम्। प्र सोम इन्द्र हूयते॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अयं सोमः**=यह सोम (वीर्यकण) **तुभ्यम्**=आपकी प्राप्ति के लिये **अद्रिभिः**=उपासकों के द्वारा **सुतः**=उत्पन्न किया जाता है। इसके रक्षण से ही तो प्रभु की प्राप्ति होती है। **गोभिः श्रीतः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा इसका परिपाक होता है। यह **कम्**=निश्चय से **मदाय**=हमारे उल्लास के लिये होता है। (२) इस कारण से ही यह **सोमः**=सोम **प्र हूयते**=ज्ञानाग्नि में आहुत किया जाता है। ज्ञानाग्नि में आहुत सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है। दीप्त ज्ञानाग्नि प्रभुदर्शन का साधक बनती है।

भावार्थ-सुरक्षित सोम प्रभुप्राप्ति का साधन बनता है। स्वाध्याय द्वारा ज्ञान प्राप्ति में लगे रहना सोमरक्षण का साधन बनता है। सुरक्षित सोम आनन्द का जनक होता है।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सोम की पीति व तृप्ति

इन्द्र श्रुधि सु मे हवमस्मे सुतस्य गोमतः। वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **मे हवम्**=मेरी प्रार्थना को **सु श्रुधि**=सम्यक् सुनिये। आप **अस्मे**=हमारे हित के लिये **सुतस्य**=उत्पन्न किये गये **गोमतः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाले सोम के **प्रीतिम्**=पान को व **तृप्तिम्**=तृप्ति को **वि अश्नुहि**=व्याप्त करिये। (२) आपकी कृपा से सोम मेरे अन्दर सुरक्षित हो। यह सोम मुझे तृप्ति का अनुभव कराये।

भावार्थ-हम प्रभु का आराधन करते हुए सोम को शरीर में सुरक्षित कर सकें और तृप्ति का अनुभव करें।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

चमूषु सुतः

य इन्द्र यमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः। पिबेदस्य त्वमीशिषे॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यः सोमः**=जो सोम है, वह **ते**=तेरे द्वारा **चमसेषु**=इन शरीररूप पात्रों में **चमूषु**=(चम्वौ=द्यावापृथिव्यौ नि० ३.३०) द्यावापृथिवी के निमित्त-मस्तिष्क व शरीर के निमित्त **सुतः**=उत्पन्न किया गया है। यह सोम शरीर को शक्तिशाली बनाता है, तो मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त करता है। (२) हे प्रभो! आप **अस्य**=इस सोम का **पिबा इत्**=पान करिये ही। **त्वं ईशिणे**=आप ही इस सोमपान के लिये ईश हैं। वस्तुतः प्रभु का उपासन ही वासनाविनाश द्वारा हमें सोम के पान के योग्य बनाता है।

भावार्थ-प्रभुस्मरण द्वारा हम वासना को विनष्ट करके सोम को शरीर में सुरक्षित रखें। सुरक्षित सोम मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त बनाता है, तो शरीर को सबल करता है।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अप्सु चन्द्रमाः इव

यो अप्सु चन्द्रमाइव सोमश्चमूषु ददृशे। पिबेदस्य त्वमीशिषे॥ ८॥

(१) **यः सोमः**=जो यह सोम है, वह **चमूषु**=शरीरस्थ द्यावापृथिवी, अर्थात् मस्तिष्क व शरीर में इस प्रकार **ददृशे**=दिखता है, **इव**=जैसे **अप्सु**=अन्तरिक्ष में **चन्द्रमाः**=चन्द्रमा दिखता है। अन्तरिक्ष चन्द्रमा से उज्ज्वल हो उठता है, इसी प्रकार सोम से-वीर्य से-मस्तिष्क व शरीर चमक उठते हैं। (२) हे प्रभो! आप **अस्य**-इस सोम का **पिबा इत्**-पान करिये ही। **त्वं ईशिषे**=आप ही इसके पान के लिये ईश हैं। आपका स्मरण वासनाओं का विनाश करता है और इस प्रकार सोम का रक्षण होता है।

भावार्थ-शरीर में सुरक्षित सोम मस्तिष्क व शरीर को इस प्रकार उज्ज्वल कर देता है, जैसे चन्द्रमा आकाश को।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

श्येनः पदा आभरत्

यं ते श्येनः पदाभरत्तिरो रजांस्यस्पृतम्। पिबेदस्य त्वमीशिषे॥ ९॥

(१) हे प्रभो! **यम्**=जिस **ते**=आपके सोम को **श्येनः**=शंसनीय गतिवाला **पदा आभरत्**-क्रियाशीलता के द्वारा अपने में धारण करता है। यह श्येन **अस्पृतम्**=काम-क्रोध आदि व रोगरूप शत्रुओं से अस्पृष्ट सोम को **रजांसि तिरः**=राजस भावों को तिरस्कृत करके अपने में धारण करता है वासनाएँ ही सोमरक्षण में विघातक होती हैं। (२) हे प्रभो! आप ही **अस्य**=इस सोम का **पिबा**=पान करिये। **त्वं ईशिषे**=आप ही इसके पान के लिये ईश हैं। प्रभुस्मरण ही हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाकर सोमपान के योग्य बनाता है।

भावार्थ-गतिशील पुरुष ही राजसभावों से ऊपर उठकर सोम का रक्षण कर पाता है। प्रभु का उपासन हमें राजसभावों के आक्रमण से बचाकर सोमरक्षण के योग्य बनाता है।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'कुसीदी काण्व' ही है। यह प्रार्थना करता है कि-

[८३] त्र्यशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

देवों का महान् रक्षण

देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम्। वृष्णामस्मभ्यमूतये॥ १॥

(१) **देवानाम्**=देवों का-माता-पिता, आचार्य आदि का (मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव) **अवः**=रक्षण **इत्**=निश्चय से **महत्**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। **वयम्**-हम **तत्**=उस रक्षण का **आवृणीमहे**=सर्वथा वरण करते हैं। प्रभुकृपा से इन देवों का रक्षण हमें सदा प्राप्त रहे। (२) **वृष्णाम्**=सुखों के वर्षण करनेवाले देवों का यह रक्षण **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **ऊतये**=रक्षण के लिये होता है। ५ वर्ष तक माता के, ८ वर्ष तक पिता के, २४ वर्ष तक आचार्यों के तदनन्तर गृहस्थ में विद्वान् अतिथियों के रक्षण में हमारा जीवन सुरक्षित रहता है-हम विलास की ओर नहीं बह जाते।

भावार्थ-सुखों के वर्षक माता-पिता, आचार्य आदि देवों का रक्षण महत्त्वपूर्ण होता है-

हम इस रक्षण को प्राप्त करके सुरक्षित जीवन बिता सकें। संसार के विषयों में फँसने से बचे रहें।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'वृधासः+प्रचेतसः' (देवाः)

ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा। वृधासश्च प्रचेतसः॥ २॥

(१) **ते**=वे **वरुणः**=द्वेष का निवारण करनेवाली देवता, **मित्रः**=स्नेह की देवता तथा **अर्यमा**=संयम की देवता (अरीन् यच्छति) **नः**=हमारे **सदा**=सदा **युजः सन्तु**=साथी हों-इनका योग हमें सदा प्राप्त हो। (२) ये देव **वृधासः**=हमारी वृद्धि करनेवाले हैं-हमारे शत्रुओं का छेदन करनेवाले हैं (वर्धनम्=Cutting, Dividing), **च**=तथा **प्रचेतसः**=हमारी चेतना को प्रकृष्ट करनेवाले हैं।

भावार्थ-माता, पिता, आचार्य आदि के रक्षण में हम 'निर्द्वेषता, स्नेह व संयम' वाले बनें। ये दिव्य भाव हमारी वृद्धि का कारण होंगे और हमें प्रकृष्ट चेतनावाला करेंगे।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ऋतस्य रथ्यः (देवाः)

अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ। यूयमृतस्य रथ्यः॥ ३॥

(१) हे देवो! **नः**=हमें **विष्पिता**=विविधरूपों में प्राप्त **पुरः**=बहुत इन शत्रु बलों को **अति पर्षथ**=शत्रुवध के द्वारा पार प्राप्त कराओ। हम इन शत्रुओं के आक्रमणों के शिकार न हो जाएँ। अथवा विस्तृत यज्ञ आदि कर्मों के, रक्षणों द्वारा, समाप्ति तक ले चलो। इस प्रकार पार ले चलो **न**=जैसे **नौभिः अपा**=नावों द्वारा जलों के पार पहुँचाया जाता है। (२) हे देवो! **यूयम्**=आप **ऋतस्य रथ्यः**=ऋत के-जो भी ठीक है, उसके प्रणेता हो। आप हमें ठीक ही मार्ग पर ले चलेंगे।

भावार्थ-'वरुण, मित्र व अर्यमा' आदि देव हमें ठीक मार्ग पर ले चलते हैं। ये हमें शत्रुबलों के पार प्राप्त कराते हैं तथा उत्तम कर्मों में पूर्णता तक पहुँचानेवाले होते हैं।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वामम् (आवृणीमहे)

वामं नो अस्त्वर्यमन्वामं वरुण शंस्यम्। वामं ह्यावृणीमहे॥ ४॥

(१) हे **अर्यमन्** (अरीन् यच्छति)=संयम के देव! **नः**=हमारे लिये **वामं अस्तु**=सुन्दर (वननी-संभजनीय) धन प्राप्त हो। हे **वरुण**=द्वेष व पाप के निवारण के दिव्य भाव! हमारे लिये **वामम्**=वननीय (सुन्दर) तथा **शंस्यम्**=प्रशंसनीय धन प्राप्त हो। हम, हे देवो! **वामम्**=संभजनीय सुन्दर धन का **हि**=ही **आवृणीमहे**=सर्वथा वरण करते हैं। हम यही चाहते हैं कि हमें सुन्दर प्रशस्त धन प्राप्त हों।

भावार्थ-हमें प्रशस्त धन प्राप्त हो।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पाप की कमायी नहीं

वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः। नेमादित्या अघस्य यत्॥ ५॥

(१) हे **प्रचेतसः**=प्रकृष्ट ज्ञानोंवाले, **रिशादसः**=शत्रुओं को नष्ट कर देनेवाले देवो! आप

हि=निश्चय से **वामस्य**=सुन्दर (वननीय) धनों के ही **ईशानासः**=स्वामी हैं। आपके अनुग्रह से हमें वाम धन ही प्राप्त हो। (२) हे **आदित्याः**=अदिति (स्वास्थ्य) के पुत्रो! पूर्ण स्वस्थ देवो! आप **ईम्**=निश्चय से उस धन के **ईशान न**=नहीं होते हो **यत् अघस्य**=जो धन पाप का है। हम भी पाप के मार्ग से कभी धन का अर्जन न करें।

भावार्थ—हम प्रकृष्ट ज्ञानवाले बनें, काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट करें और सदा शुभ मार्ग से धन का अर्जन करें।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'क्षियन्तः-यान्तः' (देवान् हूमहे)

वयमिद्वः सुदानवः क्षियन्तो यान्तो अध्वन्ना। देवा वृधाय हूमहे॥ ६॥

(१) हे **सुदानवः**=(दाप् लवने) बुराइयों का अच्छी प्रकार छेदन करनेवाले देवो! **वयम्**=हम **इत्**=निश्चय से **क्षियन्तः**=घरों पर निवास करते हुए (क्षि निवासे) व यज्ञादि कर्मों में गतिवाले होते हुए (क्षि गतौ) तथा इन यज्ञादि कर्मों के लिये सामग्री को जुटाने के लिये **अध्वन् आयान्तः**=मार्ग पर चारों ओर गति करते हुए, अर्थात् विविध कर्मों में लगे हुए **वः हूमहे**=आपको ही पुकारते हैं। (२) हे **देवाः**=दिव्य वृत्ति के पुरुषो! आप ही **वृधाय**=हमारी वृद्धि के लिये होते हो अथवा 'मित्र, वरुण व अर्यमा' आदि दिव्यभाव ही हमारी वृद्धि के लिये होते हैं।

भावार्थ—घर पर यज्ञादि कर्मों के लिये निवास करते हुए तथा साधन संग्रह के लिये मार्गों पर चलते हुए हम देवों का आह्वान करते हैं। इनका रक्षण ही हमारी वृद्धि के लिये होता है।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—स्वराडार्ची गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'इन्द्र, विष्णु, मरुतों व अश्विना' के साथ बन्धुत्व

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम्। इता मरुतो अश्विना॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रियता के दिव्य भाव! **विष्णो**=(विष् व्याप्तौ) व्यापकता के दिव्य भाव! **मरुतः**=(मित राविणः) परिमित बोलने के दिव्य भावो! तथा **अश्विना**=प्राणापानो! आप सब **एषाम्**=इन **सजात्यानां नः**=आपके ही समान जातिवाले भाई, मित्र आदि भूत हमारा **अधि इत**=(to take care of) ध्यान करनेवाले होओ। (२) हम 'इन्द्र, विष्णु, मरुत् व अश्विना' के ही बन्धु बनें। इनके द्वारा हमारा रक्षण किया जाये। हम जितेन्द्रिय-उदार (विशाल हृदय)-कम बोलनेवाले व प्राणापान की साधना करनेवाले बनें।

भावार्थ—हम 'इन्द्र, विष्णु, मरुतों व प्राणापान' की बन्धुता को प्राप्त करें, अर्थात् 'जितेन्द्रिय, उदार हृदय, मितरावी व प्राणापान की साधना करनेवाले' बनें। यही रक्षण का मार्ग है।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

मातुः गर्भे

प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽध द्विता समान्या। मातुर्गर्भे भरामहे॥ ८॥

(१) हे **सुदानवः**=सम्यक् बुराइयों का खण्डन करनेवाले देवो! हम **अध**=अब **मातुः गर्भे**=ज्ञान के द्वारा हमारा निर्माण करनेवाले आचार्य के गर्भ में (आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः) **समान्या हिता**=(सम् आनयति, द्यौ तनोति) उत्तम जीवन को देनेवाले ज्ञान व शक्ति के विस्तार से आपके साथ **भ्रातृत्वम्**=बन्धुत्व को **प्रभरामहे**=अपने में परिपुष्ट करते हैं।

(२) आचार्य ब्रह्मचारी का उपनयन करता हुआ उसे गर्भ में धारण करता है। इस प्रकार आचार्य माता का स्थान ग्रहण करता है यहाँ विद्यार्थी अपने जीवन में शक्ति व ज्ञान का विस्तार करता हुआ जीवन को उत्तम बनाता है। इस प्रकार हम उत्तम जीवनवाले बनकर देवों के साथ अपने बन्धुत्व को पुष्ट करते हैं।

भावार्थ–आचार्य के गर्भ में रहकर हम शक्ति व ज्ञान का विस्तार करें। इस प्रकार हम भी देवों के साथ बन्धुत्ववाले हों।

ऋषिः—कुसीदी काण्वः॥ **देवता**—विश्वेदेवाः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

इन्द्रज्येष्ठा, अभिद्यवः, सुदानवः (देवाः)

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः। अधा चिद्व उत ब्रुवे॥ १॥

(१) दे देवो! **यूयम्**=आप **हि**=निश्चय से **इन्द्रज्येष्ठाः**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ज्येष्ठत्व देनेवाले **अभिद्यवः**=(अभिगत दीप्तयः) प्राप्त ज्ञान ज्योतिवाले तथा **सुदानवः**=बुराइयों का सम्यक् खण्डन करनेवाले हो। (२) **अधा चित्**=सो अब निश्चय से **वः उपब्रुवे**=आपका ही मैं स्तवन करता हूँ। **उत**=और आप से ही अपने जीवन के निर्माण के लिये प्रार्थना करता हूँ। आप प्रभु की उपासना के द्वारा प्राप्त ज्ञान ज्योतिवाले हो। आप हमारे जीवनों में भी बुराइयों का खण्डन करते हुए उन्हें उज्ज्वल बनाने का अनुग्रह करो।

भावार्थ–देव वे हैं जो प्रभु को ज्येष्ठ बनाकर ज्ञान को प्राप्त करते हैं और बुराइयों का अपने जीवन में खण्डन करते हैं। इनके सम्पर्क में हम भी देव बनें।

देव बनकर महादेव की प्राप्ति की प्रबल कामनावाले हम 'उशना' बनें (कामयमान)। 'उशना' ही काम्य है–कविपुत्र है–अतिशयेन क्रान्तदर्शी है। यह प्रभु की प्रार्थना करता हुआ कहता है–

[८४] चतुरशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—उशना काव्यः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'प्रेष्ठ-अतिथि' का स्तवन

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्। अग्निं रथं न वेद्यम्॥ १॥

(१) मैं **वः**=सब के **प्रेष्ठम्**=प्रियतम उस प्रभु को **स्तुषे**=स्तुत करता हूँ। उस प्रभु को जो **अतिथिम्**=हमारे हित के लिये हमें निरन्तर प्राप्त होनेवाले हैं (अत सातत्यगमने)। जो **मित्रं इव प्रियम्**=एक मित्र के समान प्रिय हैं-उत्तम प्रेरणाओं को देते हुए प्रीणित करनेवाले हैं। (२) उस प्रभु का मैं स्तवन करता हूँ जो **अग्निम्**=अग्रेणी हैं–हमें निरन्तर आगे ले चलनेवाले हैं। **रथं न वेद्यम्**=इस जीवन-यात्रा में रथ के समान जानने योग्य हैं। प्रभु के द्वारा ही हमारी जीवन-यात्रा पूर्ण हो सकेगी।

भावार्थ–प्रभु हमारे प्रियतम–निरन्तर हमारे हित के लिये गतिवाले मित्र हैं। वे ही हमें आगे ले चलनेवाले व हमारी जीवन-यात्रा को पूर्ण करनेवाले रथ के समान हैं। इन प्रभु का ही हम स्तवन करें।

ऋषिः—उशना काव्यः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड्गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

कविम् इव प्रचेतसम्

कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अध द्विता। नि मर्त्येष्वादधुः॥ २॥

(१) उस प्रभु का हम स्तवन करते हैं **यम्**=जिसको **देवासः**=देववृत्ति के पुरुष **द्विता**=ज्ञान व शक्ति विस्तार के द्वारा (द्वौ तनोति) **मर्त्येषु**-अपने इन मरणधर्मा शरीरों में **नि आदधुः**=निश्चय से धारण करते हैं। (२) उस प्रभु को हम स्तुत करते हैं जो **कविं इव**=क्रान्तदर्शी की तरह **प्रचेतस**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले हैं। वे प्रभु ही हमें भी प्रकृष्ट चेतनावाला करते हैं।

भावार्थ-वे प्रभु क्रान्तदर्शी होते हुए उपासकों को प्रकृष्ट ज्ञान प्राप्त करानेवाले हैं। हम भी देव बनकर ज्ञान व शक्ति के विस्तार के द्वारा प्रभु को अपने में धारण करें।

ऋषिः—उशना काव्यः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

दाश्वान् के रक्षक प्रभु

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुधी गिरः। रक्षा तोकमुत त्मना॥ ३॥

(१) हे **यविष्ठ**=बुराइयों को हमारे से अधिक से अधिक पृथक् करनेवाले व अच्छाइयों को हमारे से मिलानेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **दाशुषः नृन्**=आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले मनुष्यों को **पाहि**=रक्षित करिये। आप **गिरः**=हमारी इन प्रार्थना वाणियों को **शृणुधि**=अवश्य सुनिये। आपने ही तो हमारा रक्षण करना है-हम आपके ही शरणागत हैं। (२) **उत**=और आप **त्मना तोकं रक्षा**=स्वयं ही हम सन्तानों का रक्षण कीजिये। हमारा व हमारे सन्तानों का आपने ही रक्षण करना है। पुत्र कभी पिता से रक्षण की प्रार्थना थोड़े ही किया करता है? पिता स्वयं ही पुत्र का रक्षण करते हैं।

भावार्थ-हम प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें। प्रभु ही हमारा व हमारे सन्तानों का रक्षण करेंगे।

ऋषिः—उशना काव्यः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'अग्नि, अंगिराः, ऊर्जोनपात् व देव'

कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम्। वराय देव मन्यवे॥ ४॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **अंगिरः**=अंग-प्रत्यंग में रस का सञ्चार करनेवाले प्रभो! **ऊर्जो न पात्**=शक्ति को न नष्ट होने देनेवाले प्रभो! हम **कया**=किस वाणी से **ते उपस्तुतिम्**=आपके स्तवन को करें? अर्थात् शब्दों से आपके स्तवन करने का सम्भव नहीं। आपकी महिमा शब्दातीत है। (२) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! आप ही **वराय मन्यवे**=उत्कृष्ट ज्ञान के लिये होते हैं। आपकी उपासना से ही हमें ज्ञान प्राप्त होता है। आपकी उपासना ही हमें प्रगतिशील (अग्नि) रसमय अंगोंवाला (अंगिरः) व स्थिर बलवाला (ऊर्जोनपात्) बनाती है।

भावार्थ-प्रभु की महिमा शब्दों से वर्णनीय नहीं। प्रभु का उपासन हमें प्रगतिशील, रसमय अंगोंवाला, स्थिरशक्ति व उत्कृष्ट ज्ञानवाला बनाता है।

ऋषिः—उशना काव्यः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

यज्ञ+नमन

दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो। कदु वोच इदं नमः॥ ५॥

(१) हे **सहसो यहो**=बल के पुत्र-शक्ति के पुञ्ज प्रभो! हम **कस्य यज्ञस्य**=आनन्दप्रद यज्ञ के **मनसा**=मन से, अर्थात् यज्ञ की प्रवृत्तिवाले मन से **दाशमे**=आपके प्रति अपने को देनेवाले बनें। यज्ञों के द्वारा आपका उपासन करें। 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'। (२) हे प्रभो! हम उ=निश्चय

से **कत्**=(कं तनोति) आनन्द का विस्तार करनेवाले **इदं नमः**=इस नमस्कार वचन को **वोचे**=बोलें।

भावार्थ—हम यज्ञों व नमन के द्वारा प्रभु का उपासन करें।

ऋषिः—उशना काव्यः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वाजद्रविणसो गिरः

अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः। वाजद्रविणसो गिरः॥ ६॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार हम प्रभु का यज्ञों व नमन के द्वारा उपासन करें और हे प्रभो! **त्वम्**=आप **अधा**=अब **नः**=हमें उन्नत **करः**=करनेवाले होइये। आप ही हमारे जीवनों को उत्कृष्ट बनाइये। आप **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **विश्वाः**=सब **सुक्षितीः**=उत्तम निवासों व गतियों को करिये। (२) इसी उद्देश्य से आप हमारे लिये **वाजद्रविणसः**=शक्तिरूप धनवाली इन **गिरः**=ज्ञान की वाणियों को भी करिये। हम शक्तियुक्त ज्ञान को प्राप्त करके अपने निवासों व गमनों को उत्कृष्ट बनायें।

भावार्थ—प्रभु ही उपासकों के जीवनों को उत्कृष्ट बनाते हैं। प्रभु ही हमारे निवास व गमन को उत्तम बनाने के लिये हमें शक्तियुक्त ज्ञान प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—उशना काव्यः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गोषाता यस्य ते गिरः

कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दंपते। गोषाता यस्य ते गिरः॥ ७॥

(१) हे **दम्पते**=गृहपते! हम सबके गृहों के रक्षक प्रभो! आप **नूनम्**=निश्चय से **कस्य**=आनन्द के-आनन्द को प्राप्त करानेवाले **परीणसः**=बहुत **धिया**=ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले कर्मों को **जिन्वसि**=(प्रीणयसि) प्रीणित करते हैं-इन कर्मों को हमें प्राप्त कराते हैं। (२) **यस्य**=जिस **ते**=आपकी **गिरः**=स्तुतियाँ **गोषाता**=हमारे साथ ज्ञान का सम्भजन करनेवाली है। आप स्तोता के लिये ज्ञान को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु उपासक को आनन्द को प्राप्त करानेवाले बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले कर्मों में प्रेरित करते हैं और उसके ज्ञान को बढ़ाते हैं।

ऋषिः—उशना काव्यः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

तं मर्जयन्त (उसी की उपासना)

तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु। स्वेषु क्षयेषु वाजिनम्॥ ८॥

(१) **ते**=वे उस प्रभु को ही **स्वेषु क्षयेषु**=अपने निवासस्थानों में-गृहों में व हृदयों में **मर्जयन्त**=अलंकृत करते हैं व उपासित करते हैं। घरों में मिलकर प्रभु का उपासन घरवालों को पवित्र जीवनवाला बनाता है। हृदयदेश में प्रभु का ध्यान हमें प्रभु के सान्निध्य में 'शक्ति, पवित्रता व ज्ञान' से दीप्त करता है। (२) उस प्रभु का ध्यान करते हैं जो **सुक्रतुम्**=शोभन कर्मों व प्रज्ञानवाले हैं-उपासक को भी वे शुभ कर्मों व प्रज्ञानोंवाला बनाते हैं। **आजिषु पुरः यावानम्**=संग्रामों में आगे ले चलनेवाले वे प्रभु हैं। प्रभु ही हमें काम-क्रोध आदि से संग्रामों में विजयी बनाते हैं। **वाजिनम्**=वे प्रभु शक्तिशाली हैं-उपासक के जीवन में शक्ति का संचार करते हैं।

भावार्थ—हम अपने घरों में मिलकर प्रभु का उपासन करें-हृदयदेश में प्रभु का ध्यान करें। प्रभु हमें शोभन कर्मों व प्रज्ञानवाला बनायेंगे। वे हमें काम-क्रोध आदि से संग्राम में विजयी करेंगे

और शक्तिशाली बनायेंगे।

ऋषिः—उशना काव्यः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सुवीरः एधते

क्षेति क्षेमेभिः साधुभिर्नकिर्यं घ्नन्ति हन्ति यः। अग्ने सुवीर एधते॥ ९॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार प्रभु की उपासना करनेवाला व्यक्ति **क्षेमेभिः**=कल्याणकर **साधुभिः**= उत्तम कार्यों से **क्षेति**=घर में निवास करता है, अर्थात् सदा उत्तम कल्याणकर कर्मों को करता है। यह उपासक वह होता है **यम्**-जिसको **नकिः घ्नन्ति**=काम-क्रोध आदि शत्रु मार नहीं सकते; प्रत्युत **यः हन्तिः**=जो इन शत्रुओं को मारनेवाला होता है। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आपका यह उपासक **सुवीरः एधते**=उत्तम वीर बनकर वृद्धि को प्राप्त करता है।

भावार्थ-उपासक (क) उत्तम कार्यों में प्रवृत्त होता है, (ख) काम-क्रोध आदि का शिकार नहीं होता, (ग) इन काम-क्रोध आदि को नष्ट करता है, (घ) उत्तम वीर बनकर वृद्धि को प्राप्त करता है।

यह शत्रुओं का धर्षण करनेवाला-विलेखन करनेवाला-उपासक 'कृष्ण' बनता है-यह आंगिरस तो बनेगा ही-अंग-प्रत्यंग में रसवाला शक्तिशाली। यह शरीर में सोम के रक्षण के लिये अश्विना (प्राणापान) का आह्वान करता है-

[८५] पञ्चाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कृष्णः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'मधु सोम' का पान

आ मे हवं नासत्याश्विना गच्छतं युवम्। मध्वः सोमस्य पीतये॥ १॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **युवम्**=आप **मे हवम्**-मेरी पुकार को सुनकर **आगच्छतम्**= अवश्य प्राप्त होओ। आप ही **नासत्या**=मेरे जीवन से सब असत्यों को दूर करनेवाले हो (न+असत्या)। (२) आप ही **मध्वः**=हमारे जीवनों को मधुर बनानेवाले **सोमस्य**=सोम के **पीतये**=रक्षण के लिये होते हो।

भावार्थ-प्राणसाधना से शरीर में सोम का रक्षण होता है। सोमरक्षण द्वारा ये प्राणापान हमारे जीवन से सब असत्यों को दूर करते हैं और उन्हें मधुर बनाते हैं।

ऋषिः—कृष्णः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

स्तोम-हव (स्तुति-प्रार्थना)

इमं मे स्तोममश्विनेमं मे शृणुतं हवम्। मध्वः सोमस्य पीतये॥ २॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **मे**-मेरे से किये जानेवाले **इमम्**=इस **स्तोमम्**=स्तवन को **शृणुतम्**=सुनो। हम प्राणसाधना करते हुए प्रभु का स्तवन करनेवाले बनें। (२) हे प्राणापानो! आप **मे**-मेरी **इमम्**-इस **हवम्**-पुकार को (शृणुतं=) सुनो। मेरी इस प्रार्थना को सुनो। मेरी प्रार्थना को सुनते हुए आप **मध्वः**=मेरे जीवन को मधुर बनानेवाले **सोमस्य पीतये**=सोम के रक्षण के लिये होओ।

भावार्थ-हम प्राणसाधना करते हुए प्रभु की स्तुति प्रार्थना में संलग्न हों। इस प्रकार सोम का रक्षण करते हुए हम अपने जीवन को मधुर बना पायेंगे।

ऋषिः—कृष्णःङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

कृष्ण

अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू। मध्वः सोमस्य पीतये॥ ३॥

(१) हे **वाजिनीवसू**=शक्तिरूप धनोंवाले **अश्विना**=प्राणापानो! **अयम्**=यह **कृष्णः**=वासनाओं का विलेखन (कृष्) करनेवाला आपका उपासक **वां हवते**=आपको पुकारता है। (२) आप इस कृष्ण के जीवन में **मध्वः**=जीवन को मधुर बनानेवाले इस **सोमस्य**=सोम के वीर्य के **पीतये**-रक्षण के लिये होओ।

भावार्थ–प्राणापान का उपासक 'कृष्ण' होता है–यह वासनाओं का विलेखन (अवदारण) करता है और सोम का रक्षण करता है।

ऋषिः—कृष्णःङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

नरा (अश्विना)

शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा। मध्वः सोमस्य पीतये॥ ४॥

(१) हे **नरा**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणापानो! आप **जरितुः**=स्तवन करनेवाले इस **कृष्णस्य**=वासनाओं का विलेखन करनेवाले उपासक की **हवम्**=प्रकार को **शृणुतम्**=सुनो। (२) आप ही **स्तुवतः**=स्तुति करनेवाले इस स्तोता के **मध्वः**=जीवन को मधुर बनानेवाले **सोमस्य**=सोम के **पीतये**=पान के लिये होते हो। आप ही इसके सोम का रक्षण करते हो।

भावार्थ–प्राणापान ही स्तोता के सोम का रक्षण करते हुए उसके जीवन को मधुर बनाते हैं।

ऋषिः—कृष्णःङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—निचृद् गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

'स्तुवन् विप्र' का 'अदाभ्यं छर्दि'

छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा। मध्वः सोमस्य पीतये॥ ५॥

(१) हे **नरा**=सबको आगे और आगे ले चलनेवाले प्राणापानो! आप **स्तुवते**=प्रभु का स्तवन करनेवाले **विप्राय**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले इस ज्ञानी पुरुष के लिये **अदाभ्यम्**=रोगों व वासनाओं से अहिंसित **छर्दिः**=शरीररूप गृह को **यन्तम्**=दीजिये। (२) हे प्राणापानो! आप **मध्वः**=जीवन को मधुर बनानेवाले **सोमस्य**=सोम के-वीर्यशक्ति के **पीतये**=रक्षण के लिये होइये। इस रक्षित सोम ने ही तो हमें 'स्तुवन् विप्र' बनाना है।

भावार्थ–प्राणसाधना करता हुआ स्तोता विप्र रोगों व वासनाओं से अहिंसित शरीररूप गृह प्राप्त करता है।

ऋषिः—कृष्णःङ्क देवता—अश्विनौङ्क छन्दः—गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

दाश्वान् के गृह में प्राणापान का आगमन

गच्छतं दाशुषो गृहमित्था स्तुवतो अश्विना। मध्वः सोमस्य पीतये॥ ६॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **इत्था**=सत्यरूप में **स्तुवतः**=स्तुति करते हुए **दाशुषः**=आपके प्रति अर्पण करनेवाले व्यक्ति के **गृहं गच्छतम्**=शरीररूप गृह में प्राप्त होओ, अर्थात् यह स्तोता आपकी अराधना करता हुआ अपने इस शरीर गृह में आपको प्रतिष्ठित कर पाये। (२) आप **मध्वः**=जीवन को मधुर बनानेवाले रस **सोमस्य**=सोम के **पीतये**=रक्षण के लिये होओ।

भावार्थ–हम प्राणापान द्वारा प्राणापान की प्रतिष्ठा करें–ये शरीर में सोम की ऊर्ध्वगति के कारण बनेंगे।

ऋषिः—कृष्णः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

रथ में रासभ का योजन

युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषणवसू। मध्वः सोमस्य पीतये॥ ७॥

(१) हे **वृषणवसू**=जीवन के धनों का वर्षण करनेवाले प्राणापानो! आप **वीड्वंगे**=दृढ़ अंगोंवाले इस **रथे**–रथ में **रासभम्**–ऋग्, यजु, सामरूप वाणियों का उच्चारण करनेवाले प्रभु को **युञ्जाथाम्**=युक्त करिये। प्रभु ही मेरे रथ के सञ्चालक हों। प्रभुरूप सारथि को पाकर मैं इस रथ के द्वारा लक्ष्यस्थान पर क्यों न पहुँचूँगा? उस समय, प्रभु की प्रेरणा में मेरा जीवन कितना शुद्ध होगा? विजय ही विजय को प्राप्त करता हुआ मैं अवश्य काम–क्रोध आदि शत्रुओं का विजेता 'जिष्णु' होऊँगा। (२) हे प्राणापानो! इस प्रकार वासनाओं का विनाश करके आप **मध्वः**=जीवन को मधुर बनानेवाले **सोमस्य पीतये**=सोम के रक्षण के लिये होओ। इस सोमरक्षण के द्वारा हम 'सौम्य' जीवनवाले बनें।

भावार्थ–हमारे शरीररथ के सञ्चालक प्रभु हों, वे हमें 'ज्ञान, कर्म व उपासना' की प्रेरणा देते हुए सोमरक्षण द्वारा सुन्दर जीवनवाला बनाएँ।

ऋषिः—कृष्णः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'त्रिवन्धुर त्रिवृत्' रथ

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना। मध्वः सोमस्य पीतये॥ ८॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **रथेन**=इस शरीररथ से हमें **आयातम्**–प्राप्त होवो, जो शरीररथ '**त्रिबन्धुरेण**'=सुन्दर 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' वाला है। अन्नमयकोश शरीररथ का ढाँचा है, इस रथ में प्राणमय (प्राणाः वाव इन्द्रियाणि) मनोमय व विज्ञानमयकोश रूप तीन सुन्दर आसन (Seat) हैं। (वन्धुर Beautiful)। यह रथ **त्रिवृता**=(त्रिषु वर्तते) 'ज्ञान, कर्म व उपासना' रूप तीनों मार्गों का आक्रमण करता है। (२) हे प्राणापानो! आप इस त्रिवृत रथ से वासनाओं को कुचलते हुए **मध्वः सोमस्य पीतये**=जीवन को मधुर बनानेवाले सोम के पान के लिये होओ।

भावार्थ–प्राणसाधना से 'इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' तीनों की निर्दोषता व सुन्दरता प्राप्त होती है सोमरक्षण द्वारा हम 'ज्ञान, कर्म व उपासना' के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं–ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले कर्मों के द्वारा हम प्रभु के उपासक बनते हैं।

ऋषिः—कृष्णः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ज्ञान की वाणियों का रक्षण

नू मे गिरो नासत्याश्विना प्रावतं युवम्। मध्वः सोमस्य पीतये॥ ९॥

(१) हे **नासत्या**=सब असत्यों को मेरे जीवन से दूर करनेवाले **अश्विना**=प्राणापानो! **युवम्**=आप निश्चय से **मे**=मेरे लिये **गिरः**=ज्ञानवाणियों व स्तुतिवाणियों को **प्रावतम्**=प्रकर्षेण रक्षित करिये। प्राणापान की साधना से हमारा जीवन ज्ञानमय व स्तुतिमय बने। (२) इसी उद्देश्य से हे प्राणापानो! आप **मध्वः सोमस्य पीतये**=जीवन को मधुर बनानेवाले सोम के रक्षण के लिये होओ।

भावार्थ–प्राणसाधना द्वारा सोमरक्षण होकर हमारा ज्ञान बढ़े।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'कृष्ण आंगिरस' ही है। यह कृष्ण ही पूर्ण जीवनवाला 'विश्वक' हो जाता है। यह 'अश्विनौ' का ही आराधन करता हुआ कहता है–

[८६] षडशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराड् जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

दस्रा भिषजा

उभा हि दस्रा भिषजा मयोभुवोभा दक्षस्य वचसो बभूवथुः।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम्॥ १॥

(१) हे प्राणापानो! आप **उभा**=दोनों **हि**=निश्चय से **दस्रा**=दुःखों का उपक्षय करनेवाले हो। **भिषजा**=सब रोगों का निराकारण करनेवाले हो। **मयोभुवा**=नीरोग बनाकर कल्याण को उत्पन्न करनेवाले हो। **उभा**=आप दोनों **दक्षस्य**=बल के **वचसः**=कहनेवाले, अर्थात् शक्ति में जन्म देनेवाले **बभूवथुः**=होते हो। (२) **ता वाम्**=उन आप दोनों को **विश्वकः**='शरीर, मन व बुद्धि' तीनों को स्वस्थ, निर्मल व तीव्र बनाने की कामनावाला यह सम्पूर्ण उन्नति को चाहनेवाला **विश्वक** **तनूकृथे**=शत्रुओं को क्षीण करने के निमित्त (तनू thin) **हवते**=पुकारता है। आप दोनों **नः**=हमें **मा वि यौष्टम्**=अपने से पृथक् मत कर दो। **सख्या**=अपनी मित्रताओं को (सख्यानि) हमारे से पृथक् न करो। **मुमोचतम्**=हमें सब कष्टों से बचाओ।

भावार्थ–प्राणापान (क) वासनाओं को विनष्ट करनेवाले हैं। (ख) रोगों को दूर करनेवाले हैं। (ग) सुख को उत्पन्न करनेवाले हैं। (घ) ये हमारे में बल का वर्धन करते हैं। (ङ) इनकी आराधना से शत्रुओं का क्षय होकर हमारा वर्धन होता है। सो हम सदा प्राणसाधना को करनेवाले हों।

ऋषिः—कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

धियं, वस्यः

कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददथुर्वस्यइष्टये।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम्॥ २॥

(१) **विमनाः**=विविध दिशाओं में भागनेवाले मनवाला यह 'विमनाः' के लिये प्राणसाधना कठिन हो जाती है। सो हम मन को एकाग्र करने के लिये इस प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। हे प्राणापानो! **युवम्**=आप ही **इष्टये**=इष्ट प्राप्ति के लिये **धियम्**=बुद्धि को तथा **वस्यः**=प्रशस्त धन को **ददथुः**=देते हो। (२) **ता वाम्**=उन आप दोनों को **विश्वकः**=यह पूर्ण उन्नति को अपनानेवाला **तनूकृथे**=शत्रुओं को क्षीण करने के निमित्त **हवते**=पुकारता है। हे प्राणापानो! **नः**=हमें **मा वि यौष्टम्**=छोड़ मत जाओ। **सख्या**=मित्रताओं को नष्ट मत कर दो। आप अवश्य ही **मुमोचतम्**=हमें रोगों व वासनारूप शत्रुओं से मुक्त करो।

भावार्थ–प्राणसाधना से मनोवृत्ति एकाग्र होती है। इससे उत्तम बुद्धि व प्रशस्त धन प्राप्त होता है।

ऋषिः—कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराड् जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

पुरुभुजा (अश्विना)

युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्वे ददथुर्वस्यइष्टये।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम्॥ ३॥

(१) हे प्राणापानो! **युवम्**=आप दोनों **हि ष्मा**-निश्चय से **पुरुभुजा**=खूब ही पालन करनेवाले हो आप **विष्णाप्वे**=(विष्णुं कर्मणा व्याप्नोति) यज्ञादि कर्मों के द्वारा प्रभु को प्राप्त करनेवाले इस के लिए **एधतुम्**=वृद्धि के साधनभूत धन आदि को **ददधुः**=देते हो। आप **वस्यः**=प्रशस्त वसुओं के द्वारा **इष्टये**=इष्ट प्राप्ति के लिये होते हो। (२) **ता वाम्**=उन आप दोनों को **विश्वकः**=यह अपनी पूर्ण उन्नति करनेवाला **विश्वक तनूकृथे**=वासनारूप शत्रुओं को क्षीण करने के लिये **हवते**=पुकारता है। आप **नः**=हमें **मा वि यौष्टम्**=मत छोड़ जाओ। **सख्या**=हमारे साथ अपनी मित्रताओं को मत नष्ट करो और आप **मुमोचतम्**=हमें रोगों व वासनारूप शत्रुओं से मुक्त करो।

भावार्थ–प्राणापान ही हमारा पालन कर रहे हैं। ये ही हमारी वृद्धि का कारण होते हैं। ये हमें शत्रुओं से मुक्त करें।

ऋषिः—कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

'स्वादिष्ठा' सुमतिः

उत त्यं वीरं धनसामृजीषिणं दूरे चित्सन्तमवसे हवामहे।
यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम्॥ ४॥

(१) हे प्राणापानो! हम **उत**=निश्चय से **त्यम्**=उस **वीरम्**=(वि ईर) शत्रुओं को कम्पित करनेवाले **धनसाम्**=धनों को प्राप्त करानेवाले **ऋजीषिणम्**=ऋजुमार्ग की प्रेरणा देनेवाले, **दूरे चित् सन्तम्**=दूर से दूर प्रदेश में भी वर्तमान उस प्रभु को **अवसे हवामहे**-रक्षण के लिये पुकारते हैं। (२) उस प्रभु को हम पुकारते हैं, **यस्य**=जिसकी **यथा पितुः**=जैसे एक पिता की, अर्थात् पिता की ओर से पुत्र के लिये दी गई **सुमतिः**=कल्याणी मति **स्वादिष्ठा**=जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाली है। हे प्राणापानो! आप **नः मा वि यौष्टम्**=हमारे से पृथक् न होओ। **सख्या**=अपनी मैत्रियों को मत नष्ट करो। **मुमोचतम्**=आप हमें सब रोगों व वासनारूप शत्रुओं से छुड़ाओ।

भावार्थ–हम प्रभुस्मरण पूर्वक प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। हमें वह सुमति प्राप्त हो जो जीवन को मधुरतम बनाती है।

ऋषिः—कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—निचृज्जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

ऋत

ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे।
ऋतं सासाह महि चित्पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम्॥ ५॥

(१) **सविता देवः**=वह प्रेरक प्रकाशमय प्रभु **ऋतेन**=ऋत के द्वारा **शमायते**=हमारे जीवनों को बड़ा शान्त बनाता है। **ऋतस्य शृंगम्**=ऋत का **शृंग**=शत्रुनाशक बल **उर्विया वि पप्रथे**=खूब ही विस्तृत होता है। सत्य हमें जहाँ शान्ति प्राप्त कराता है, वहाँ हमारे काम-क्रोध आदि शत्रुओं को भी विनष्ट करता है। (२) **ऋतम्**=यह ऋत **महि चित् पृतन्यतः**=महान् भी शत्रुओं को **सासाह**=पराभूत करता है। प्राणापान ही इस ऋत के प्राप्त करानेवाले हैं–प्राणसाधना द्वारा जीवन अनृत से रहित होकर ऋतवाला बनता है। सो, प्राणापानो! **नः**=हमें **मा वि यौष्टम्**=छोड़ मत जाओ। **सख्या**=अपनी मित्रताओं को हमें प्राप्त कराओ। **मुमोचतम्**=हमें सब शत्रुओं से मुक्त करो।

भावार्थ–ऋत हमारे जीवन को शान्त करता है–ऋत हमारे सब शत्रुओं को नष्ट करता है। प्राणसाधना द्वारा हम जीवन को ऋतमय बनाएँ।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'कृष्ण आंगिरस' है। अथवा 'प्रियमेध आंगिरस' भी कहा गया है–प्रियमेधावाला–शक्तिवाली अंगोंवाला। यह 'अश्विनौ' का स्तवन करता हुआ कहता है–

[८७] सप्ताशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कृष्णो द्युम्नीको वा वासिष्ठः प्रियमेधो वाङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

दिवि प्रियः

द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम्।
मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे॥ १॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **वाम्**=आपका **स्तोमः**=स्तवन **द्युम्नी**=हमारी ज्ञान ज्योति को बढ़ानेवाला है। आपका यह स्तवन **सेके**=उदक के सेचन के होने पर **क्रिविः न**=कूएँ के समान है। वृष्टि द्वारा जलसेचन होने पर कूआँ अल्प उदकवाला नहीं होता। इसी प्रकार प्राणापान का स्तवन हमें अल्पज्ञानवाला नहीं रखता। प्राणसाधना से ज्ञान खूब ही दीप्त हो उठता है। सो हे प्राणपानो! **आगतम्**=आप आओ। (२) हे **नरः**=हमें आगे ले चलनेवाले प्राणापानो! **सुतस्य**=उत्पन्न हुए–हुए **मध्वः**=जीवन को मधुर बनानेवाले सोम का **पातम्**=पान करो। इस प्रकार से पान करो, **इव**=जैसे **इरिणे**=(a riverlet) एक छोटी नदी पर **गौरौ**=दो गौर मृग पानी पीते हैं। हे प्राणापानो! जिसके शरीर में आप उत्पन्न हुए इस सोम का रक्षण करते हो **सः**=वह **दिवि प्रियः**=ज्ञान में प्रीतिवाला होता है। सुरक्षित सोम इसकी बुद्धि को सूक्ष्म बनाता है। यह अपनी सूक्ष्म बुद्धि से गम्भीर विषयों को भी समझनेवाला बनता है।

भावार्थ–प्राणसाधना के होने पर ज्ञानदीप्ति की वृद्धि होती है। प्राणापान सोम का शरीर में पान करते हुए बुद्धि को सूक्ष्म बनाते हैं। यह सूक्ष्म बुद्धि पुरुष ज्ञानप्रिय बनता है।

ऋषिः—कृष्णो द्युम्नीको वा वासिष्ठः प्रियमेधो वाङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—निचृद् पंि-ःङ्क
स्वरः—पञ्चमःङ्क

वेदसा वयः

पिबतं धर्मं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं नरा।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः॥ २॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **मधुमन्तम्**=जीवन को मधुर बनानेवाले **धर्मम्**=शरीर में क्षरित होनेवाले सोम को **पिबतम्**=शरीर में ही पीनेवाले होओ। हे **नरः**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणापानो! आप **वर्हिः सीदतम्**=हमारे वासनाशून्य हृदयासन पर **सीदतम्**=आसीन होओ। हमें सदा हृदय में प्राणसाधना पर पूर्ण आस्था हो। (२) **ता**=वे **मनुषः दुरोणे**=इस मानव शरीररूप गृह में **मन्दसाना**=सोमरक्षण द्वारा हर्षित होते हुए आप **वेदसा**=ज्ञान के साथ **वयः**=आयुष्य का **निपातम्**=रक्षण करो। हमारा जीवन ज्ञानवाला व दीर्घ हो।

भावार्थ–प्राणापान सोम का रक्षण करते हैं। जीवन को यह ज्ञानमय व दीर्घ बनाते हैं।

ऋषिः—कृष्णो द्युम्नीको वा वासिष्ठः प्रियमेधो वाङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

'प्रियमेध वृक्तबर्हिष्'

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत।
ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु॥ ३॥

(१) हे प्राणापानो! **प्रियमेधाः**=(मेध=यज्ञ) यज्ञप्रिय लोग **विश्वाभिः अतिभिः**=सब रक्षणों के हेतु से **वाम्**=आपको **आ अहूषत**=सब ओर से पुकारते हैं। आपकी साधना में ही प्रवृत्त होते हैं। **ता**=वे आप दोनों **वृक्तबर्हिषः**=वासनारूप घास-फूस को छिन्न करनेवाले पुरुष के **बर्हिः**=शरीररूप गृह में **उपयातम्**=समीपता से प्राप्त होओ। वस्तुतः आपकी साधना ही इसे 'वृक्तबर्हिष्' बनाती है। (२) आप ही इस 'प्रियमेध वृक्तबर्हिष्' को यज्ञप्रिय व वासनाओं का छिन्न करनेवाला बनाते हो। **दिविष्टिषु**=(दिव् इष्टि) दिनों के आने पर, अर्थात् प्रातःकाल के होने पर आप ही इस 'प्रियमेध' के जीवन में **यज्ञं जुष्टम्**=यज्ञ का प्रीतिपूर्वक सेवन करो। आपकी साधना से यह सदा यज्ञ की वृत्तिवाला बना रहे।

भावार्थ—प्राणसाधना से हमारा जीवन यज्ञमय बनता है। इस साधना से ही हम हृदयक्षेत्र से वासना के घास-फूस को उखाड़ फेंकते हैं।

ऋषिः—कृष्णो द्युम्नीको वा वासिष्ठः प्रियमेधो वाङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—निचृद् पं-ःङ्क
स्वरः—पञ्चमःङ्क

सोमपान+प्रभुस्तवन

पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं सुमत्।
ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गन्तं गौराविवेरिणम्॥ ४॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **मधुमन्तम्**=जीवन को मधुर बनानेवाले **सोमं पिबतम्**=सोम का-वीर्यशक्ति का पान करो और **सुमत्**=(शोभनं) शोभनतया **बर्हिः**=छिन्न वासनाओंवाले हृदय में **सीदतम्**=आसीन होओ। आपने ही वस्तुतः वीर्यरक्षण द्वारा हमारे जीवन को मधुर बनाना है और इसे वासनाशून्य करना है। (२) **वावृधाना**=हमारे जीवनों में वृद्धि को प्राप्त करते हुए **ता**=वे आप दोनों **दिवः**=उस प्रकाशमय प्रभु के **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तवन को इस प्रकार **उपगन्तम्**=समीपता से प्राप्त होओ, **इव**=जैसे **गौरौ**=दो तृषित गौर मृग **इरिणम्**=एक छोटी नदी को प्राप्त होते हैं। नदी को प्राप्त करके ही उन गौर मृगों की तृषा शान्त होती है, इसी प्रकार प्रभुस्तवन ही हमारे प्राणापानों के लिये शान्ति का देनेवाला हो।

भावार्थ—प्राणसाधना से सोमरक्षण द्वारा जीवन मधुर बनता है-हृदय वासनाशून्य होता है-प्रभुस्तवन की प्रवृत्ति जागरित होती है।

ऋषिः—कृष्णो द्युम्नीको वा वासिष्ठः प्रियमेधो वाङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—निचृद् बृहतीङ्क
स्वरः—मध्यमःङ्क

प्रुषितप्सु अश्व (स्निग्धरूप इन्द्रयाश्व)

आ नूनं यातमश्विनाश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः।
दस्रा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा॥ ५॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **नूनम्**=निश्चय से **प्रुषितप्सुभिः**=स्निग्धरूप-दीप्तरूपवाले-

शक्ति से सिक्तरूपवाले **अश्वेभिः**=इन्द्रियाश्वों के साथ **आयातम्**=हमें प्राप्त होओ। सोमरक्षण द्वारा आप हमारी इन्द्रियों को शक्तिसिक्त बनाओ। (२) **दस्त्रा**=हमारे शत्रुओं का आप ही क्षय करनेवाले हो। शत्रुक्षय के द्वारा आप ही **हिरण्यवर्तनी**=हमारे जीवन को ज्योतिर्मय मार्गवाला बनाते हो और इस प्रकार **शुभस्पती**=शुभ का रक्षण करते हो। हे **ऋतावृधा**=ऋत का (सत्य का व यज्ञ का) वर्धन करनेवाले प्राणापानो! आप **सोमं पातम्**=हमारे जीवनों में सोम का रक्षण करो।

भावार्थ-प्राणापान सोमरक्षण द्वारा हमारे इन्द्रियाश्वों को दीप्तरूपवाला बनाते हैं। ये हमारे शत्रुओं का क्षय करनेवाले, जीवनमार्ग को ज्योतिर्मय बनानेवाले व शुभ के रक्षक हैं।

ऋषिः—कृष्णो द्युम्नीको वा वासिष्ठः प्रियमेधो वाङ्क **देवता**—अश्विनौङ्क **छन्दः**—निचृद् पं- ःङ्क
स्वरः—पञ्चमःङ्क

विप्रासः विपन्यवः

वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रासो वाजसातये।
ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धियाश्विना श्रुष्ट्या गतम्॥ ६॥

(१) हे प्राणापानो! **वयम्**=हम **विपन्यवः**=विशिष्ट स्तुतिवाले होते हुए **वि प्रासः**=विशेषरूप से अपना पूरण करनेवाले ज्ञानी बनकर **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिये **हि**=निश्चयपूर्वक **वाम्**=आपको **हवामहे**=पुकारते हैं प्राणसाधना ही तो हमें सब शक्तियों को प्राप्त कराती है। (२) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **ता**=वे आप दोनों **वल्गू**=सुन्दर गतिवाले हो-जीवन को उत्तम गतिवाला बनाते हो। **दस्त्रा**=शत्रुओं का उपक्षय करनेवाले हो। **पुरुदंससा**=पालक व पूरक कर्मोंवाले हो-आप शरीर का पालन करते हो, तो मन का आप पूरण करनेवाले हो। आप **धिया**=बुद्धि को प्राप्त कराने के हेतु से **श्रुष्टी**=शीघ्र ही **आगतम्**=हमें प्राप्त होओ।

भावार्थ-प्राणसाधना हमें शक्ति प्राप्त कराती है-यह हमें बुद्धि देती है। शक्ति व बुद्धि से सम्पन्न बनकर हम स्तोता, ज्ञानी व पवित्र जीवनवाले बन पाते हैं।

यह विपन्यु (स्तोता) ही अगले सूक्त का ऋषि 'नोधा' बनता है (नौति इति नोधाः) यह इन्द्र का स्तवन करता हुआ कहता है-

[८८] अष्टाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—नोधाङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

दस्मम् ऋतीषहम्

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः। अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे॥ १॥

(१) **तम्**=उस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **गीर्भिः**=स्तुतिवाणियों के द्वारा **स्वसरेषु अभिर्नवामहे**=दिनों में (सूर्यकर्तृकेषु दिवसेषु नि०) प्रातः-सायं (अभि) स्तुत करते हैं-प्रभु की ओर जाते हैं, प्रभु की उपासना में बैठते हैं। इस प्रकार प्रभु की ओर जाते हैं **न**=जैसे स्वसरेषु (सुष्ठु अस्यन्ते प्रेर्यन्ते गावः अत्र) गोष्ठों में **धेनवः**=गौवें **वत्सम्**=बछड़े की ओर जाती हैं। जिस प्रकार प्रेम से भरी हुई गौवें जाती हैं, उसी प्रकार प्रेम से परिपूर्ण हृदयोंवाले हम प्रभु की ओर जानेवाले बनें। (२) उस प्रभु की ओर हम जायें, जो **वः दस्यम्**=तुम सबके दुःखों का उपक्षय करनेवाले हैं। **ऋतीबहम्**-(ऋतयो बाधकाः शत्रवः) काम-क्रोध आदि बाधक शत्रुओं का पराभव करनेवाले हैं। **वसोः**=हमारे निवासों को उत्तम बनानेवाले **अन्धसः**=सोम (वीर्य) के द्वारा **मन्दानम्**=हमें

आनन्दित करनेवाले हैं। वस्तुतः प्रभु काम-क्रोध आदि को विनष्ट करके हमें सोमरक्षण द्वारा सब दुःखों से दूर व आनन्द से परिपूर्ण जीवनवाला बनाते हैं।

भावार्थ-हम प्रातः-सायं प्रभु की उपासना करें। प्रभु हमारी वासनाओं को विनष्ट करके हमारे अन्दर सोम का रक्षण करते हैं और हमारे दुःखों को दूर करके हमें आनन्दमय जीवनवाला बनाते हैं।

ऋषिः—नोधाङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—पं- ःङ्क **स्वरः**—पञ्चमःङ्क

द्युक्षं, तविषीभिरावृतम्

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे॥ २॥

(१) उस प्रभु से हम **मक्षू**=शीघ्र **वाजम्**=बल को **ईमहे**=माँगते हैं। जो बल **क्षुमन्तम्**=प्रभु के स्तवन से युक्त है, **शतिनम्**=सौ के सौ वर्ष तक स्थिर रहता है अथवा शतवर्ष के जीवन को प्राप्त कराता है, **सहस्रिणम्**=(स हस्) जीवन को आनन्दयुक्त रखता है तथा **गोमन्तम्**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाला है अथवा प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाला है। (२) उन प्रभु से हम बल की याचना करते हैं जो **द्युक्षम्**=ज्ञान की दीप्ति में निवास करनेवाले हैं, **सुदानुम्**=सम्यक् हमारी वासनाओं का ज्ञान द्वारा विनाश करनेवाले हैं (दाप् लवने), **तविषीभिः आवृतम्**=बलों से आवृत हैं-बल ही बल हैं-बल के पुञ्ज हैं। तथा **गिरिं न**=(गुरुं न) एक ज्ञानोपदेष्टा गुरु के समान **पुरुभोजसम्**=खूब ही हमारा पालन करनेवाले हैं। ये प्रभु हमें भी ज्ञानयुक्त बल को देकर सुरक्षित करते हैं।

भावार्थ-प्रभु सदा ज्ञानदीप्ति में निवास करनेवाले व बल के पुञ्ज हैं। उपासक को भी ज्ञानयुक्त बल देकर वे सुरक्षित जीवनवाला बनाते हैं।

ऋषिः—नोधाङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

प्रभु की (अजेय्य) शक्ति

न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वा**=आपको **बृहन्तः**=बड़े विशाल **वीडवः**=दृढ़ भी **अद्रयः**=पर्वत **न वरन्त**=रोक नहीं सकते। महान् से महान् भी पर्वत आपके मार्ग में विघ्नरूप नहीं हो सकते। (२) **यत्**=जब आप **स्तुवते**=स्तुति करनेवाले **मा-वते**=(मा=मापना-ज्ञान प्राप्त करना) ज्ञान को प्राप्त करनेवाले के लिये **वसु दित्ससि**=धन को देने की कामनावाले होते हैं, तो **ते**=आपके **तत्**=उस धन को **नकिः आमिनाति**=कोई भी हिंसित नहीं कर पाता।

भावार्थ-प्रभु के मार्ग में कोई विघ्न नहीं कर पाता। प्रभु स्तोता ज्ञानी के लिये जो धन देना चाहते हैं, उसे कोई हिंसित नहीं कर पाता।

ऋषिः—नोधाङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—पं- ःङ्क **स्वरः**—पञ्चमःङ्क

क्रत्वा शवसा दंसना

योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन्॥ ४॥

(१) हे प्रभो! आप **क्रत्वा**=अपने प्रज्ञान से **उत**=और **शवसा**=बल से **योद्धा असि**=शत्रुओं पर संप्रहार करनेवाले हैं। हे प्रभो! आप **विश्वा जाता**=सब प्रादुर्भूत होनेवाली वासनाओं को **दंसना**=अपने कर्मों से तथा **मज्मना**=शत्रुओं को मसल देनेवाले बल से **अभि** (भवसि)=अभिभूत करनेवाले हैं। (२) **अयम्**=यह **अर्थः**=स्तोता **ऊतये**=अपने रक्षण के लिये **त्वा**=आपको **आवर्तति**=अपने अभिमुख आवृत्त करता है। उन आपको यह अपने अभिमुख करने के लिये यत्नशील होता है, **यम्**=जिनको **गोतमाः**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाले **अजीजनन्**=अपने हृदयों में प्रादुर्भूत करते हैं।

भावार्थ–हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमें 'प्रज्ञान शक्ति व क्रियाशीलता' प्राप्त करायेंगे और इस प्रकार हमारे वासनारूप शत्रुओं का विनाश करेंगे।

ऋषिः—नोधाङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—निचृद् बृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

स्व-धा

प्र हि रि॑रि॒क्ष ओज॑सा दि॒वो अन्ते॑भ्य॒स्परि॑। न त्वा॑ विव्याच॒ रज॑ इन्द्र॒ पार्थि॑व॒मनु॑ स्व॒धां व॑वक्षिथ॥५॥

(१) हे प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **दिवः परि अन्तेभ्यः**=द्युलोक पर्यन्तों से भी **ओजसा**=अपने बल से **प्रररिक्षे**=अतिरिक्त होते हैं। यह द्युलोक आपकी शक्ति को व्याप्त नहीं कर पाता। यह **पार्थिवं रजः**=पार्थिव लोक भी **त्वा न विव्याच**=आपको व्याप्त नहीं कर पाता। प्रभु को ये द्यावापृथिवी अपने सीमित करनेवाले नहीं होते। (२) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! आप **स्वधां अनु ववक्षिथ**=हमारे लिये आत्मधारणशक्ति को प्राप्त कराने की कामना करिये। आपकी उपासना हमें 'स्व-धा' को प्राप्त करानेवाली हो। आत्मधारणशक्ति से युक्त होकर हम अधिक और अधिक आपके समीप हो सकें।

भावार्थ–प्रभु को ये द्यावापृथिवी माप नहीं सकते। प्रभु का ओज इनमें समा नहीं पाता। प्रभु का उपासन हमें भी स्वधा=आत्मधारणशक्तिवाला बनाये।

ऋषिः—नोधाङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—विराट् पं- ःङ्क **स्वरः**—पञ्चमःङ्क

दाशुषे दशस्यसि

नकि॑ः परि॑ष्टिर्मघवन्म॒घस्य॑ ते॒ यद्दा॒शुषे॑ दश॒स्यसि॑।
अ॒स्माकं॑ बोध्यु॒चथ॑स्य चोदि॒ता मंहि॑ष्ठो॒ वाज॑सातये॥६॥

(१) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते**=आपके **मघस्य**=ऐश्वर्य का **नकिः परिष्टिः**=कोई भी रोकनेवाला (परिबाधकः) नहीं है, **यद्**=जब **दाशुषे**=दानशील पुरुष के लिये आप **दशस्यसि**=देते हैं। प्रभु जब दाश्वान् को धन प्राप्त कराते हैं, तो कोई रोक थोड़े ही सकता है। (२) हे प्रभो! आप **अस्माकम्**=हमारा **बोधि**=(बुध्यस्व) ध्यान करिये) आप ही **उचथस्य चोदिता**=स्तोत्रों के प्रेरक हैं। आपकी प्रेरणा से ही हम स्तवन में प्रवृत्त हो पाते हैं। आप **मंहिष्ठः**=सर्वमहान् दाता हैं। आप ही **वाजसातये**=शक्ति को प्राप्त कराने के लिये होते हैं।

भावार्थ–प्रभु दानशील पुरुष को धन प्राप्त कराते हैं। वे हमारे जीवनों में स्तोत्रों के प्रेरक होते हैं। वे सर्वमहान् दाता प्रभु हमें शक्ति को प्राप्त कराते हैं।

यह दानशील पुरुष 'नृ-मेध' बनता है–सब पुरुषों के साथ मेलवाला होता है। इसका यह मेल पालन व पूरण के लिये होता है, सो यह 'पुरुमेध' कहलाता है। यह सब से यही कहता है कि हम प्रभु का गायन करें–

[८९] एकोननवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

प्रभु का गायन वृत्रहन्तम है तथा ज्योति का जनक है

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्। येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि॥ १॥

(१) हे **मरुतः**=परिमित बोलनेवाले क्रियाशील स्तोताओ! **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिये **बृहत्**=खूब ही **गायत**=गायन करो। यह गायन **वृत्रहन्तमम्**-वासनाओं को अधिक से अधिक विनष्ट करनेवाला होगा। (२) उस **देवाय**-प्रकाशमय प्रभु के लिये उस स्तोत्र का गायन करो, **येन**=जिससे कि **ऋतावृधः**=ऋत का (यज्ञ का) अपने में वर्धन करनेवाले लोग **ज्योतिः**=प्रकाश के **अजनयन्**=अपने में प्रादुर्भूत करते हैं। उस ज्योति को, जो **देवम्**-उनके जीवन को द्योतित करनेवाली होती है तथा **जागृवि**-उन्हें सतत जागरणशील बनाती है उन्हें लक्ष्य को भूलने नहीं देती। यह ज्योति उन्हें सदा सावधान रखती है और शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होने देती।

भावार्थ-हम परिमित बोलनेवाले व क्रियाशील बनकर प्रभु का स्तवन करें। यह स्तवन हमारे जीवन में ज्योति को जगाएगा और वासनान्धकार का विलय कर देगा।

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृत् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'अशस्तिहा-द्युम्नी' इन्द्र

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्। देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण॥ २॥

(१) **अशस्तिहा**=सब अप्रशस्त भावों का विनाश करनेवाला **इन्द्रः**-वह शत्रुसंहारक प्रभु **अभिशस्तीः**=शत्रुकृत हिंसनों को **अप अधमत्**=हमारे से सुदूर विनष्ट करता है और **अथ**=अब वह प्रभु **द्युम्नी आभवत्**=हमारे लिये सर्वतः ज्ञान की ज्योतियोंवाला होता है। इन ज्ञानज्योतियों से प्रभु हमारे जीवन को उज्ज्वल कर देते हैं। (२) हे **बृहद्भानो**-महान् दीप्तिवाले! **मरुद्गण**=मरुतों के-प्राणों के गणोंवाले, अर्थात् प्राणसमूह को प्राप्त करानेवाले **इन्द्र**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **ते सख्याय**-आपकी मित्रता के लिये **येमिरे**=अपने जीवन को संयमवाला बनाते हैं। प्राणसाधना व स्वाध्याय द्वारा ज्ञानप्राप्ति ही संयम का साधन बनती हैं और हमें प्रभु की मित्रता का पात्र बनाती हैं।

भावार्थ-प्रभु हमें काम-क्रोध आदि शत्रुओं के हिंसन से बचाते हैं और ज्ञान-ज्योति से हमारे जीवन को दीप्त करते हैं। हमें चाहिए कि प्राणापान व स्वाध्याय द्वारा संयत जीवनवाले बनकर प्रभु की मित्रता के पात्र बनें।

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'वृत्रहा-शतक्रतु' इन्द्र

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत। वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा॥ ३॥

(१) हे **मरुतः**=मितरावी क्रियाशील स्तोताओ! आप **नः**-तुम्हारे सच्चे सखा उस **बृहते**=महान् **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिये **ब्रह्म**=ज्ञानपूर्वक की गयी स्तुतिवाणियों का **प्र अर्चत**=प्रकर्षेण उच्चारण करो। इन ज्ञानवाणियों द्वारा प्रभु का खूब ही अर्चन करो-पूजन करो। (२) वह **वृत्रहा**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करनेवाला **शतक्रतुः**-अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाला प्रभु **शतपर्वणा**-शतसंख्याक धाराओंवाले **वज्रेण**-ज्ञानवज्र के द्वारा (वजः=गति-ज्ञान) **वृत्रं हनति**-वृत्र

का विनाश करते हैं। ज्ञानी के नित्य वैरी कामरूप शत्रु का विध्वंस करके प्रभु हमारे जीवनों को दीप्त करते हैं।

भावार्थ–हम उस महान् इन्द्र का स्तवन करें। प्रभु ज्ञानवज्र द्वारा हमारे वासनारूप शत्रु को–वृत्र को विनष्ट करेंगे।

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—विराट् पं- ःङ्क **स्वरः**—पञ्चमःङ्क

'हनो वृत्रं-जया स्वः'

अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद् बृहत्।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः॥ ४॥

(१) हे **धृषन्मनः**=शत्रुओं के धर्षणशील मनवाले इन्द्र! **ते**=आपका **बृहत्**=महान् **श्रवः**=ज्ञान **चित्**=निश्चय से **असत्**=है। आप **धृषता**=शत्रुओं के धर्षक मन के साथ उस ज्ञान को **अभि प्रभर**=हमारे लिये सर्वतः भरिये। (२) इस ज्ञान के द्वारा वासना का विनाश होकर **वि-मातरः**=विशिष्टरूप से हमारा निर्माण करनेवाले अतएव मातृभूत **आपः**=शरीरस्थ रेतःकण (आप=रेतो भूत्वा०) **जवसा**=वेग के साथ **अर्षन्तु**=शरीर के अंग प्रत्यंग में गतिवाले हों। इन रेतःकणों का शरीर में ही व्यापन हो। इसी उद्देश्य से, हे प्रभो! आप **वृत्रम्**=हमारे वासनारूप शत्रु को **हनः**=विनष्ट करिये तथा **स्वः जया**=हमारे लिये प्रकाश व सुख का विजय करिये।

भावार्थ–प्रभु हमें शत्रुधर्षक ज्ञानबल को प्राप्त कराएँ। वासनाविनाश के द्वारा शक्तिकणों का शरीर में ही संयम हो और हमारा जीवन प्रकाश व सुख से सम्पन्न हो।

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—विराड्नुष्टुपङ्क **स्वरः**—गान्धारःङ्क

पृथिवी प्रथन व द्युलोक स्तम्भन

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय। तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्याम्॥ ५॥

(१) हे **अपूर्व्य**=सबसे पूर्व विद्यमान–स्वतो व्यतिरिक्त पूर्व्य से रहित **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जब **जायथाः**=आपका हमारे हृदयों में प्रादुर्भाव होता है, तो **वृत्रहत्याय**–यह प्रादुर्भाव वासना के विनाश के लिये कारण बनता है। आपका प्रादुर्भाव होते ही ज्ञान के प्रकाश में वासनान्धकार का विलय हो जाता है। (२) **तत्**=तब आप **पृथिवीम्**=इस शरीररूप पृथिवी का **अप्रथयः**=विस्तार करते हैं। **उत**=और **द्याम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक को **अस्तभ्नाः**=थामते हैं। आपका प्रादुर्भाव वासना को विनष्ट करके शरीर की शक्तियों का विस्तार करता है और ज्ञान ज्योति को दीप्त करता है।

भावार्थ–हृदयों में प्रभु का प्रादुर्भाव होते ही वासना का दहन हो जाता है इससे शरीर में रेतःकणों का रक्षण होकर शक्तियों का विस्तार होता है और ज्ञान का दीपन होता है।

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—निचृदनुष्टुपङ्क **स्वरः**—गान्धारःङ्क

यज्ञ+अर्क=वासनाविनाश

तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः। तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम्॥ ६॥

(१) हे प्रभो! गतमन्त्र के अनुसार हृदयों में आपके प्रादुर्भाव होने पर **तत्**=तब **ते**=आपका **यज्ञः**=पूजन (यज्ञ=देवपूजा) **अजायत**=हमारे जीवनों में प्रादुर्भूत होता है। हम आपकी पूजा करनेवाले बनते हैं **उत**=और **तत्**=तब **हस्कृतिः**=हास–प्रकाश व हर्ष को करनेवाला **अर्कः**=आपका

स्तवन प्रादुर्भूत होता है। हम आपके स्तवन में प्रवृत्त होते हैं। यह स्तवन हमारे अद्भुत हर्ष का साधन बनता है। (२) **तत्**-तब आप **यत् जातम्**-जो क्रोध आदि शत्रु हमारे यहाँ उत्पन्न हो चुके हैं-दृढ़मूल से बन गये हैं **यच्च**-और जो **जन्त्वम्**=पैदा होने की तैयारी में हैं-अंकुरित हो रहे हैं **तद् विश्वम्**-उन सब को आप **अभिभूः असि**=अभिभूत करनेवाले होते हैं।

भावार्थ-हृदयों में प्रभु का प्रादुर्भाव होते ही (१) जीवन यज्ञमय बन जाता है, (२) हम प्रभुस्तवन में हर्ष का अनुभव करने लगते हैं, (३) सब उत्पन्न हो चुकी व हो रही क्रोध आदि की वासनाओं को अभिभूत कर लेते हैं।

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

प्रभुस्तवन द्वारा ज्ञानवृद्धि

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि। घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत्॥७॥

(१) हे प्रभो! आप ही **आमासु**=हमारी अपरिपक्व बुद्धियों में **पक्वम्**=परिपक्व ज्ञान को **ऐरयः**=प्रेरित करते हैं और आप ही **दिवि**=हमारे मस्तिष्करूप द्युलोक में **सूर्यम्**=ज्ञान-सूर्य को **आरोहयः**=आरूढ़ करते हैं। (२) **घर्मं न**=(Sunshine) वे प्रभु सूर्यप्रकाश के समान दीप्त हैं (आदित्यवर्णम्)। **सामन्**-शान्ति के निमित्त उस प्रभु को **सुवृक्तिभिः**-सम्यक् दोषवर्जन हेतुभूत स्तुतियों से **तपता**=दीप्त करो। **गिर्वणसे**-स्तुतिवाणियों के द्वारा सेवनीय उस प्रभु के लिये **बृहत्**-यह बृहत् साम (स्तुति) **जुष्टम्**=प्रीतिकर होती है। स्तुति हमें प्रभु का प्रिय बनाती है।

भावार्थ-हम जितना प्रभु का स्तवन करते हैं, उतना ही प्रभु को प्रिय होते हैं। प्रभु हमारे मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञानसूर्य का आरोहण करते हैं।

अगला सूक्त भी 'नृमेध पुरुमेधौ' ऋषियों का ही है-

[९०] नवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

ब्रह्माणि सवनानि उप

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः॥१॥

(१) **इन्द्रः**-वह शत्रुसंहारक प्रभु **विश्वासु समत्सु**-सब संग्रामों में **हव्यः**=पुकारने योग्य होते हैं। वे प्रभु **नः**-हमें **आभूषतु**=अलंकृत करनेवाले हों। प्रभु को अपने हृदयों में आसीन करके ही हम शत्रुओं का संहार कर पाते हैं। (२) वे प्रभु सदा **ब्रह्माणि**=ज्ञानपूर्वक की गयी स्तुतिवाणियों के तथा **सवनानि**-यज्ञों के **उप**=समीप होते हैं। प्रभु वहीं होते हैं जहाँ कि स्तवन हो तथा यज्ञ हो। वे प्रभु **वृत्रहा**=ज्ञान की आवरणभूत वासना का विनाश करते हैं। **परमज्याः**=(परमान् जिनाति) अत्यन्त प्रबल शत्रुओं को भी समाप्त करनेवाले हैं। **ऋचीषमः**=(स्तुत्या समः) स्तुतियों से अभिमुखीकरणीय होते हैं। जितना हम प्रभु का स्तवन करते हैं, उतना ही प्रभु के समीप होते हैं।

भावार्थ-सब संग्रामों में प्रभु ही हमें विजयी बनाते हैं। वे ही हमारे जीवनों को अलंकृत करते हैं। ज्ञान व यज्ञ के द्वारा हम प्रभु को समीपता से प्राप्त होते हैं। प्रभु ही हमारे शत्रुओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—पादनिचृत् पं-ःङ्क स्वरः—पञ्चमःङ्क

राधसां प्रथमः दाता

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यासि सत्य ईशानकृत्।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः॥ २॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **राधसाम्**=ऐश्वर्यों के **प्रथमः दाता असि**=सर्वमुख्य दाता हैं। आप **सत्यः असि**=सत्यस्वरूप हैं। **ईशानकृत्**=स्तोताओं को ऐश्वर्यों का ईशान (स्वामी) बनानेवाले हैं। (२) **तुविद्युम्नस्य**=महान् ज्ञान ज्योतिवाले **शवसः पुत्रस्य**=बल के पुत्र-सर्वशक्तिमान् **महः**=महान् आपके **युज्या**=योग्य-संगतिकरण योग्य धनों को **आवृणीमहे**=हमें वरते हैं। हम प्रभु से देव धनों को ही प्राप्त करने की कामना करते हैं।

भावार्थ-प्रभु ही सर्वमुख्य ऐश्वर्यों के दाता हैं। उस महान् ज्ञानज्योतिवाले सर्वशक्तिमान् प्रभु के धनों का ही हम वरण करते हैं।

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—विराड् बृहतीङ्क स्वरः—मध्यमःङ्क

स्तुति से प्रभुसान्निध्य

ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजनेन्द्र या ते अमन्महि॥ ३॥

(१) हे **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों द्वारा सेवनीय **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते**=आपके **अनतिद्भुता**=(सर्वान् अतिक्रम्य न वर्तन्ते भवन्ति-इन्द्र गुणव्यापकानि यथार्थनूतानि) यथार्थ गुणानुरूप **ब्रह्मा**=स्तुतिवचन **क्रियन्ते**=हमारे से उच्चारण किये जाते हैं। हे **हर्यश्व**=तेजस्वी इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **इमा जुषस्व**=इन स्तुतिवाक्यों को प्रीतिपूर्वक सेचन करिये। ये वाक्य आपके लिये प्रीतिकर हों। (२) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **या**=जिन स्तुतिवाक्यों को **ते अमन्महि**=आपके लिये हम उच्चारित करते हैं, वे **योजना**=हमें आपके साथ मिलानेवाले हैं। इन स्तुतिवचनों से अपने जीवनों में प्रेरणा को प्राप्त करते हुए हम आप जैसा बनने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार हम आपके अधिकाधिक समीप होते चलते हैं।

भावार्थ-प्रभु का स्तवन हमें प्रभु का प्रिय बनाता है। इनसे जीवनों में प्रेरणा को प्राप्त होते हुए हम प्रभु के अधिकाधिक समीप आते चलते हैं।

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—पादनिचृत् पं-ःङ्क स्वरः—पञ्चमःङ्क

'सत्यः अनानतः' प्रभु

त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे।
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाञ्चं रयिमा कृधि॥ ४॥

(१) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वं हि सत्यः**=आप ही सत्यस्वरूप हैं। **अनानतः**=किसी से भी पराभूत नहीं किये जाते। आप **वृत्रा**=वासनाओं को **भूरि**=खूब ही **न्यृञ्जसे**=(न्यङ्क रोषि) पराभूत करते हैं। (२) हे **शविष्ठ**=सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न **वज्रहस्त**=हाथ में वज्र लिये हुए प्रभो! **सः त्वम्**=वे आप **दाशुषे**=दाश्वान् के लिये-दानशील पुरुष के लिये **रयिं अर्वाञ्चं आकृधि**=धन को सर्वतः अभिमुख करिये। आप दानशील पुरुष को धन प्राप्त कराते ही हैं।

भावार्थ–प्रभु ही सत्यस्वरूप व किसी भी शत्रु से पराभूत न होनेवाले हैं। प्रभु हमारे लिये वासनाओं का विनाश करके ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'यशाः ऋजीषी' प्रभु

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पते। त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **यशाः असि**=यशस्वी हो। हे **शवसस्पते**=शक्ति के स्वामिन् प्रभो! आप **ऋजीषी**=उपासक के लिये ऋजुत्स की प्रेरणा देनेवाले हो। (२) **त्वम्**=आप **एकः इत्**=अकेले ही–बिना ही किसी की सहायता के **चर्षणीधृता**–मनुष्यों का धारण करनेवाले वज्र के द्वारा **वृत्राणि**=हमारे वासनारूप शत्रुओं को **हंसि**–नष्ट करते हो। उन शत्रुओं को जो **अनुत्ता**=सामान्यतः परे धकेले नहीं जा सकते और **अप्रतीनि**=जिनका सामना करना बड़ा कठिन है।

भावार्थ–प्रभु हमें यशस्वी जीवनवाला बनाते हैं, सरलता की प्रेरणा देते हैं और अतिप्रबल भी वासनारूप शत्रुओं को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौ॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

प्रभु की शरण-शत्रुओं का महान् छेदन

तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन्॥ ६॥

(१) हे **असुर**=प्राणशक्ति का संचार करनेवाले प्रभो! **प्रचेतसम्**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले **तं त्वा उ**=उन आपको ही **भागं इव**=जैसे पुत्र पिता से भजनीय (अपने भागरूप) धन को माँगता है, उसी प्रकार **नूनम्**–निश्चय से **राधः ईमहे**=कार्यसाधक धन की याचना करते हैं। आपने ही हमारे लिये इन धनों को प्राप्त कराना है। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **ते**=आपकी **शरणा**=शरणागति **मही कृत्तिः इव**=अतिमहान् शत्रुछेदन के समान है। आपकी शरण में आने पर हमारे सब शत्रुओं का छेदन हो जाता है। इसलिए हम तो यही चाहते हैं कि **ते सुम्ना**=आपके स्तोत्र **नः**=हमें **प्र अश्नवन्**=प्रकर्षेण व्याप्त करनेवाले हों। हम आपका स्तवन करते हुए आपकी शक्ति से शक्तिसम्पन्न होकर सब शत्रुओं का छेदन व विद्रावण करनेवाले बनें।

भावार्थ–हम प्रभु से कार्यसाधक धन की याचना करें। प्रभु की शरण हमारे शत्रुओं का छेदन करती है। सो हम सदा प्रभुस्तवन करते हुए प्रभु की शरण में रहने का प्रयत्न करें।

'काम, क्रोध व लोभ' रूप शत्रुओं को दूर करके यह 'आत्रेयी' (अविद्यमानाः त्रयो यस्याः) बनती है। शत्रुओं को दूर (अप) रोकने के कारण (अल) यह 'अपाला' कहलाती है। यही अगले सूक्त की ऋषिका है–

९१. [एकनवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—अपालात्रेयी॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराड् पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

इन्द्राय-शक्राय

कन्या३ वारवायती सोममपि स्रुताविदत्।
अस्तं भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा॥ १॥

(१) 'वारयति इति' **वाः**=शत्रुओं का वारण करनेवाली यह **कन्या**=(कन दीप्तौ) दीप्त जीवनवाली बनती है। **अव आयती**=काम क्रोध आदि से दूर गति करती हुई यह **स्रुता**=(स्रु गतौ) मार्ग पर चलने के द्वारा **सोमं अपि अविदत्**=सोम को भी प्राप्त करती है-अपने जीवन में सोम का रक्षण करनेवाली होती है। (२) **अस्तम्**=अपने इस शरीररूप गृह को **भरन्ती**=सोम के द्वारा भरती हुई-परिपुष्ट करती हुई **अब्रवीत्**=यह कहती है कि हे सोम! **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये **त्वा सुनवै**=मैं तुझे उत्पन्न करती हूँ। **शक्राय**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु की प्राप्ति के लिये **त्वा सुनवै**=मैं तुझे अपने में अभिषुत करती हूँ।

भावार्थ-हम शत्रुओं का वारण करते हुए सोम का रक्षण करें। यह सोमरक्षण प्रभुप्राप्ति का साधन बनेगा। यह हमें भी 'इन्द्र व शक्त' बनायेगा।

ऋषिः—अपालात्रेयीङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—पं- ःङ्क **स्वरः**—पञ्चमःङ्क

जम्भसुत का पान

असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत्।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्॥ २॥

(१) हे प्रभो! **यः**=जो आप **वीरकः**=शत्रुओं को अतिशयेन कम्पित करके दूर करनेवाले हैं (वि+ईर) **असौ**=वे आप **एषि**=प्राप्त होते हैं और **गृहंगृहं विचाकशत्**=प्रत्येक गृह को दीप्त करनेवाले होते हैं। हमारे हृदयों में प्रभु का प्रकाश होते ही सारा शरीरगृह चमक उठता है। (२) हे प्रभो! **इमम्**=इस **जम्भसुतम्**=जबड़ों के द्वारा उत्पन्न किये गये-जबड़ों से चबाकर खाये गये भोजन से उत्पन्न होनेवाले सोम को **पिब**=शरीर में ही पीने का अनुग्रह करिये। यह सोम **धानावन्तम्**=शरीर के धारण करनेवाला है। **करम्भिणम्**=(क+रम्भ्) आनन्द के साथ आलिंगनवाला है-जीवन को आनन्दमय बनाता है। **अपूपवन्तम्**=(अपूप=Honey-comb) शहद के छत्तेवाला है, अर्थात् वाणी को शहद के समान मधुर बनानेवाला है। **उक्थिनम्**=स्तोत्रोंवाला है-यह सोम सुरक्षित होकर इस रक्षक पुरुष को प्रभुस्तवन की वृत्तिवाला बनाती है।

भावार्थ-प्रभु का प्रकाश होते ही यह शरीरगृह चमक उठता है। शरीर में सोमरक्षण होकर जीवन 'स्थिर शक्तिवाला, आनन्दमय, मधुर व प्रभुस्तवन की वृत्तिवाला' बनता है।

ऋषिः—अपालात्रेयीङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—निचृदनुष्टुपङ्क **स्वरः**—गान्धारःङ्क

त्वा न अधीमसि चन (प्रभु को भूल ही जाते हैं)

आ चन त्वा चिकित्सामोऽधि चन त्वा नेमसि। शनैरिव शनकैरिवेन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **त्वा**=आपको **चन**=(एव) ही **आचिकित्सामः**=जानने की कामना करते हैं। सामान्यतः इस संसार में विषयों में उलझकर **त्वा**=आपको **न अधि इमसि चन**=नहीं ही स्मरण करते हैं। विषयों का परदा पड़ते ही आप हमारे से ओझल हो जाते हैं। (२) हे **इन्दो**=सोम! तू **शनैः इव**=कुछ धीमे-धीमे यह **शनकैः इव**=धीरे-धीरे ही **इन्द्राय**=प्रभु की प्राप्ति के लिये **परिस्रव**=हमारे में परिस्रुत हो। धीमे-धीमे यह सोम अंग-प्रत्यंगों में व्याप्त होनेवाला हो। शान्तिपूर्वक अंगों में व्याप्त हुआ-हुआ यह सोम हमारे जीवनों को इस प्रकार प्रकाशमय बनाता है कि हम प्रभु का दर्शन कर पाते हैं।

भावार्थ-सामान्यतः विषयों में उलझा हुआ पुरुष प्रभु का स्मरण नहीं करता। हम प्रभु को जानने की कामना करें। इसी उद्देश्य से सोम को शरीर में सुरक्षित करने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—अपालात्रेयीङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—अनुष्टुप्ङ्क स्वरः—गान्धारःङ्क

विषयोन्मुख इन्द्रियों को विषयपराङ्मुख करना

कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत्। कुवित्पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण संगमामहै॥ ४॥

(१) वे प्रभु सोमरक्षण द्वारा **कुवित्**=खूब ही **शकत्**=हमें शक्तिशाली बनाते हैं। **कुवित्**=खूब ही **करत्**-(कृ विक्षेपे) शत्रुओं को विक्षिप्त करते हैं और इस प्रकार **नः**=हमें **कुवित्**=खूब ही **वस्यसः**-प्रशस्त वसुओंवाला करते हैं। (२) हम भी इन **पतिद्विषः**=उस पति प्रभु से प्रीति न करनेवाली (द्विष् अप्रीतौ) **कुवित् यतीः**-खूब ही इधर-उधर विषयों में भटकती हुई इन्द्रियों को **इन्द्रेण**-उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के साथ **संगमामहै**=संगत करते हैं। इन्द्रियों को विषयव्यावृत्त कर प्रभु की ओर प्रेरित करना ही मानवजीवन की उत्कृष्ट साधना है।

भावार्थ-सोमरक्षण द्वारा शक्ति बढ़ती है, वासनाविनाश होता है और प्रशस्त वसुओं की प्राप्ति होती है। हम विषयोन्मुख इन्द्रियों को प्रभुप्रवण करने का यत्न करें।

ऋषिः—अपालात्रेयीङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—विराडनुष्टुप्ङ्क स्वरः—गान्धारःङ्क

त्रिलोकी का उत्कर्ष

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय। शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे॥ ५॥

(१) हे प्रभो! **इमानि**-ये **त्रीणि**=तीन **विष्टपा**=लोक हैं। यह शरीर ही पृथिवीलोक है, हृदय अन्तरिक्षलोक है तथा मस्तिष्क ही द्युलोक है। हे **इन्द्र**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **तानि विरोहय**=उन तीनों लोकों को विशिष्टरूप से उन्नत करिये। (२) **शिरः**-मेरा मस्तिष्क **ततस्य**=अत्यन्त विस्तृत ज्ञान का भण्डार हो। मेरी हृदयभूमि को आप **उर्वराम्**-खूब उर्वरा करिये यह हृदयक्षेत्र नीरस न हो। यह क्षेत्र स्नेह की भावनाओं की उत्पत्ति के लिये उर्वर हो। **आत्**=अब **इदम्**-यह वीर्य **मे**=मेरे **उदरे**=उदर में **उप**=समीपता से रहे। शक्ति का मेरे अन्दर रक्षण करिये। मस्तिष्क ज्ञान का, हृदय स्नेह का शरीर वीर्य (शक्ति) का उत्पत्तिस्थल बने।

भावार्थ-प्रभु मेरी त्रिलोकी को उत्कृष्ट बनाएँ। मस्तिष्करूप द्युलोक विस्तृत ज्ञान के प्रकाश का आधार बने। हृदय प्रेम की भावनाओं का उर्वर क्षेत्र हो। शरीर शक्ति का आधार हो।

ऋषिः—अपालात्रेयीङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—विराडनुष्टुप्ङ्क स्वरः—गान्धारःङ्क

रोमशा

असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं१ मम। अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि॥ ६॥

(१) हे प्रभो! **असौ च या**-और जो वह **नः उर्वरा**-हमारी उर्वरा हृदयस्थली है, गत मन्त्र के अनुसार जो प्रेम के भावों के लिये अतिशयेन उपजाऊ है, उसको **आत्**=अब **इमाम्**=इस **मम तन्वम्**-मेरे शरीर को **अथ उ**=और अब **यत्**=जो **ततस्य**=विस्तृत ज्ञान का निधान **शिरः**=सिर है। **सर्वाता**=उन सब को **रोमशा कृधि**-(रु शब्दे) प्रभु-स्तवन में निवासवाला बनाइये। (२) हमारा मस्तिष्क, हमारा हृदय, हमारा शरीर सभी प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त हों।

भावार्थ-हम हृदय, शरीर व मस्तिष्क सभी से प्रभु का स्तवन करनेवाले बनें। हृदय प्रभु के प्रेम से, शरीर प्रभु की शक्ति से व मस्तिष्क प्रभु के ज्ञान से परिपूर्ण हो।

ऋषिः—अपालात्रेयीङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—पादनिचृदनुष्टुप्ङ्क स्वरः—गान्धारःङ्क

सूर्यत्वच् बनना

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो। अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम्॥ ७॥

(१) **रथस्य**=शरीररूप रथ के **खे**=छिद्र में **अनसः**=(अन प्राणने) प्राणमय कोश के, इन्द्रियों के (प्राणाः वाव इन्द्रियाणि) **खे**=छिद्र में तथा **युगस्य**=आत्मा व इन्द्रियों के मिलानेवाले मन के (मन द्वारा आत्मा का इन्द्रियों के साथ सम्पर्क होता है) **खे**=छिद्र में, हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले **इन्द्र**-परमैश्वर्य-सम्पन्न प्रभो! **अपालाम्**=सब दोषों का सुदूर वारण करनेवाली को **त्रिः**=तीन बार (शरीर, इन्द्रियों व मन से) **पूत्वी**=पवित्र करके **सूर्यत्वचम्**=सूर्य के समान त्वचावाला **अकृणोः**=तूने कर दिया।

भावार्थ-प्रभु अपने उपासक को शरीर, इन्द्रियों व मन में निर्दोष बनाकर दीप्त जीवनवाला बना देते हैं। यह उपासक सूर्यसम तेजस्वी प्रतीत होने लगता है।

प्रभु द्वारा पवित्र किया गया यह उपासक ज्ञान को (श्रुत) अपना सुरक्षा स्थान (कक्ष) बनाता है, सो 'श्रुतकक्ष' नामवाला होता है। इस उत्तम (सु) रक्षा स्थानवाला (कक्ष) यह 'सुकक्ष' बनता है। यह सब अंगों में रसवाला 'आंगिरस' तो है ही। यह सब साथियों से इन्द्र के गायन के लिये कहता है-

९२. [द्विनवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—गान्धारः ॥

विश्वासाह-शतक्रतु प्रभु का गायन

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत। विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम्॥ १ ॥

(१) हे मित्रो! **वः**=तुम्हारे **अन्धसः**=सोम का, वीर्यशक्ति का **आपान्तम्**=सर्वतः रक्षण करनेवाले **इन्द्रम्**=उस शत्रु-विद्रावक प्रभु का **अभि प्रगायत**=दिन के दोनों ओर प्रातः-सायं गायन करो। प्रभु-स्तवन से ही प्रत्येक दिन को प्रारम्भ करो और प्रभु-स्तवन ही प्रत्येक दिन का अन्तिम कार्य हो। (२) उन प्रभु का गायन करो जो **विश्वासाहम्**=सब शत्रुओं का पराभव करनेवाले हैं। **शतक्रतुम्**=अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले हैं। तथा **चर्षणीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के **मंहिष्ठम्**=सर्वोत्तम दाता हैं, इनके लिये सब ऐश्वर्यों के प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ-प्रभु उपासक के सब शत्रुओं का पराभव करते हैं। उसके लिये शक्ति व प्रज्ञान को प्राप्त कराके सब ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हैं। हम प्रतिदिन प्रातः-सायं प्रभु का गायन करें।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

इन्द्र

पुरूहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं सनश्रुतम्। इन्द्र इति ब्रवीतन॥ २ ॥

(१) **पुरुहूतम्**=(पुरु हूतं यस्य) पालन व पूरण करनेवाली है पुकार जिसकी-जिसकी आराधना से शरीर नीरोग बनता है और मन पवित्र होता है, **पुरुष्टुतम्**=जो खूब ही स्तुत होता है, सम्पूर्ण वेद जिसका स्तवन कर रहा है **गाथान्यम्**=जो गायन के योग्य हैं और **सनश्रुतम्**=सदा से (सनातन काल से) प्रसिद्ध हैं, पुराण पुरुष हैं। उन प्रभु को **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले हैं (इदि परमैश्वर्ये, सर्वाणि बल कर्माणि इन्द्रस्य, इनः सन् शत्रून् द्रावयति) **इति**-इस प्रकार **ब्रवीतन**=व्यक्त रूप से गाओ। 'इन्द्र' नाम से प्रभु का गायन करो।

भावार्थ-उस सनातन प्रभु को हम 'इन्द्र' नाम से स्मरण करें। इन्द्र ही बनने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वाङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

महानां वाजानां दाता

इन्द्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः। महाँ अभिज्ञ्वा यमत्॥ ३॥

(१) **इन्द्रः**-वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **नः**-हमारे लिये **इत्**-निश्चय से **महानाम्**-(मघानां) सब ऐश्वर्यों के **दाता**-देनेवाले हैं। वे प्रभु ही **वाजानाम्**=सब शक्तियों के व गतियों के देनेवाले हैं। इन ऐश्वर्यों व शक्तियों को देकर प्रभु ही **नृतुः**-हमें आगे ले चलनेवाले अथवा इस सम्पूर्ण नृत्य के करानेवाले हैं। यह संसार अभिनय-स्थली है, प्रभु ही सब अभिनय करानेवाले सूत्रधार हैं। जीव ही अभिनेता (Actors) हैं। (२) वे **महान्**-पूजनीय प्रभु **अभिशु**=(अभिगत जानुकं यथा स्यात् तथा) घुटने टिकवाकर **आयमत्** हमें नियम में रखते हैं। हमें वे विनीत व संयमी बनाते हैं।

भावार्थ-प्रभु हमारे लिये ऐश्वर्यों व शक्तियों को प्राप्त कराते हैं। वे ही इस संसाररूप अभिनय-स्थली के सूत्रधार होते हुए हमें नृत्य कराते हैं, अपने शासन से वे हमें विनीत व संयमी बनाते हैं।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वाङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—निचृद् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

सुदक्षस्य-प्रहोषिणः

अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः। इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः॥ ४॥

(१) वे **शिप्री**=उत्तम हनु व नासिकाओं को प्राप्त करानेवाले प्रभु खूब चबाकर भोजन करने व प्राणायाम श्रमसाधनों से **अन्धसः**=शरीर-रथ सोम का **उ**=निश्चय से **अपाद्**-रक्षण करते हैं। इस सोम का जो **सुदक्षस्य**=हमें उत्तम बल को देता है तथा **प्रहोषिणः**-हमें त्याग की वृत्तिवाला बनाता है (हु दाने)। (२) **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **इन्दोः**-इस सोम के द्वारा **यवाशिरः**=(यु अभिश्रणे, शृ हिंसायाम्) सब मलों का हमारे से अभिश्रण करनेवाले व सब वासनाओं का संहार करनेवाले हैं।

भावार्थ-हम उत्तम सात्त्विक भोजन को चबाकर खायें तथा प्राणायाम में प्रवृत्त हों। इस प्रकार सोमरक्षण द्वारा जीवन को नीरोग व पवित्र बनानेवाले हों। यह सोम हमें उत्तम बलवाला व त्याग की वृत्तिवाला बनायेगा।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वाङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—आर्चीस्वराड् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

पूजन-सोमकण-दिव्यता का वर्धन

तम्वभि प्रार्चतेन्द्रं सोमस्य पीतये। तदिद्ध्यस्य वर्धनम्॥ ५॥

(१) **तं इन्द्रं उ**=उस शत्रु-विद्रायक प्रभु को ही **अभि प्रार्चत**=आभिमुख्येन पूजित करनेवाले बनो। प्रातः-सायं प्रभु का ही पूजन करो। यह पूजन ही **सोमस्य पीतये**=सोम के रक्षण के लिये होगा। इसी प्रकार सोम का रक्षण होगा। (२) **तत् इत् हि**=वह पूजन द्वारा सोम का रक्षण ही **अस्य वर्धनम्**-उपासक के जीवन में प्रभु का वर्धन करनेवाला होता है।

भावार्थ-हम प्रातः-सायं प्रभु-पूजन करते हुए सोमरक्षण द्वारा अपने जीवन में प्रभु का वर्धन करनेवाले बनें, जीवन को अधिकाधिक दिव्य बना पायें।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वाङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—विराड् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

निरक्षण द्वारा विजय

अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा। विश्वाभि भुवना भुवत्॥ ६॥

(१) **अस्य**=इस सोम का **पीत्वा**=पान करके **मदानाम्**=हर्षों व उल्लासों का **देवः**=अपने में क्रीडन करनेवाला होता है। सोमी पुरुष के जीवन में उल्लासों की क्रीडा होती है। (२) यह सोमी पुरुष **देवस्य ओजसा**=उस महादेव प्रभु के ओज (बल) से **विश्वा भुवना अभिभुवत्**=सब भुवनों को अभिभूत करनेवाला, सब पर विजय पानेवाला होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से जीवन उल्लासमय बनता है। प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर यह सोमी पुरुष सब भुवनों का विजय करता है।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सत्रासाहं (प्रभुं) आच्यावयसि

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्। आ च्यावयस्यूतये॥ ७॥

(१) **त्वम्**=उस प्रभु को **उ**-ही **ऊतये**-अपने रक्षण के लिये **आच्यावयसि**=(आगमय) प्राप्त कर अपने हृदय मन्दिर में प्राप्त करा। (२) वे प्रभु ही **वः**=तुम्हारे **सत्रासाहम्**=सदा शत्रुओं का पराभव करनेवाले हैं और वे प्रभु ही **विश्वासु गीर्षु आयतम्**=सब वेद वाणियों में विस्तृत हैं, सब वाणियाँ प्रभु का ही वर्णन कर रही हैं।

भावार्थ—प्रभु को ही हम प्राप्त करने का प्रयत्न करें वे ही हमारे शत्रुओं का पराभव करनेवाले व सब वेदवाणियों के प्रतिपाद्य विषय हैं।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

युध्मं (प्रभुम्) आच्यावयसि

युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम्। नरमवार्यक्रतुम्॥ ८॥

(१) उस प्रभु को प्राप्त करो जो **युध्मम्**=तुम्हारे शत्रुओं के साथ युद्ध करनेवाले हैं। **सन्तम्**=जो सदा विद्यमान हैं, सत्यस्वरूप हैं। **अनर्वाणम्**=हिंसित न होने देनेवाले हैं। **सोमपाम्**=सोम का रक्षण करनेवाले हैं। **अनपच्युतम्**=शत्रुओं द्वारा पराभूत न होनेवाले हैं। (२) वे प्रभु ही **नरम्**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले हैं व **अवार्यक्रतुम्**=अनिवारणीय शक्ति व प्रज्ञानवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु को प्राप्त करके ही हम युद्ध में शत्रुओं का पराभव कर पाते हैं। यह प्रभु-स्मरण ही हमारे सोमरक्षण का साधन बनता है और हमें उन्नतिपथ पर ले चलता है।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

पार्यधन

शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम। अवा नः पार्ये धने॥ ९॥

(१) हे **ऋचीषम**=(ऋच्, ईष् गतो) स्तुति के द्वारा गन्तव्य प्रभो! **नः**=हमें **रायः**=धनों को **आशिक्ष**=दीजिये। हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं के विद्रावक प्रभो! आप **पुरु**=खूब ही **विद्वान्**=ज्ञानवान् हैं। हमारे लिये आवश्यक धनों को आप प्राप्त कराते ही हैं। (२) हे प्रभो! आप **नः**=हमें **पार्ये धने**=जीवन यात्रा के पूर्ण करने के लिये आवश्यक धन से **अवा**=रक्षित करिये। आवश्यक धन प्राप्त कराके आप हमारा रक्षण करिये।

भावार्थ—प्रभु स्तुति के द्वारा सान्निध्य के योग्य हैं। वे हमें जीवन-यात्रा के लिये आवश्यक धन को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वाङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—निचृद् गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

इषा (शतवाजया, सहस्रवाजया)

अतश्चिदिन्द्र ण उपा याहि शतवाजया। इषा सहस्रवाजया॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **अतः चित्**=इसलिए ही, अर्थात् गतमन्त्र के अनुसार 'पार्य धन' को प्राप्त कराने के लिये ही **नः**=हमें **इषा**=प्रेरणा के साथ **उप आयाहि**=समीपता से प्राप्त होइये। आपकी प्रेरणा ही हमें उत्तम श्रमों में संलग्न करके इस 'पार्य धन' को प्राप्त करानेवाली होगी। (२) यह प्रेरणा **शतवाजया**=सैकड़ों शक्तियोंवाली है। सैकड़ों ही क्या **सहस्रवाजया**=सहस्रों शक्तियोंवाली है। अथवा शतवर्ष पर्यन्त सहस्रों शक्तियों को देनेवाली है।

भावार्थ—प्रभु हमें उस प्रेरणा के साथ प्राप्त हों, जो हमें शतवर्ष पर्यन्त सहस्रों शक्तियों को प्राप्त करानेवाली हो।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वाङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—निचृद् गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

शक्र, गोदरे, वज्रिवः

अयाम धीवतो धियोऽर्वद्भिः शक्र गोदरे। जयेम पृत्सु वज्रिवः॥ ११॥

(१) हे **शक्र**=शक्ति-सम्पन्न **गोदरे**=ज्ञान की वाणियों के मर्मों को खोलनेवाले प्रभो! हम आपका स्तवन करते हुए **धीवतः**=प्रशस्त बुद्धि व कर्मोंवाले पुरुष के **धियः**=ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले कर्मों को **अयाम**=प्राप्त हों। (२) हे **वज्रिवः**=वज्रहस्त अथवा गतिशील प्रभो! हम **अर्वद्भिः**=आप से दिये गये इन इन्द्रियाश्वों के द्वारा **पृत्सु**=संग्रामों में **जयेम**=विजयी हों। हम ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान प्राप्ति में तथा कर्मेन्द्रियों से यज्ञादि उत्तम कर्मों में उत्पन्न हुए-हुए वासनाओं को सदा जीतनेवाले बनें।

भावार्थ—उपासित प्रभु हमें शक्ति-सम्पन्न बनाते हैं, हमारे लिये ज्ञान की वाणियों के मर्मों को बींधते हैं, हमें क्रियाशील बनाते हैं। ज्ञानपूर्वक कर्मों में प्रवृत्त हुए-हुए हम सदा वासना-संग्राम में विजयी बनें।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वाङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—निचृद् गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

स्तुति व प्रभु प्रियता

वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा। उक्थेषु रणयामसि॥ १२॥

(१) हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले प्रभो! **वयम्**=हम **उ**=निश्चय से **त्वा**=आपको **उक्थेषु**=स्तोत्रों में **आरणयामसि**=रमणवाला करते हैं। इस प्रकार **न**=जैसे **यवसेषु गावः**=घासों में गौओं को। (२) हम इस प्रकार हृदय से आपके स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं कि आप उन स्तोत्रों में प्रीतिवाले होते हैं। इन स्तोत्रों के द्वारा हम आपके प्रिय बनते हैं।

भावार्थ—हम स्तोत्रों के द्वारा प्रभु की प्रीति का सम्पादन करते हुए प्रभु से शक्ति व प्रज्ञान को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वाङ्क देवता—इन्द्रःङ्क छन्दः—विराड् गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

मनुष्योचित कामनाएँ

विश्वा हि मर्त्यत्वनानुकामा शतक्रतो। अगन्म वज्रिन्नाशसः॥ १३॥

(१) हे **शतक्रतो**=अनन्त शक्ति व प्रज्ञानवाले प्रभो! **विश्वा हि**=सब ही **मर्त्यत्वना**=

(मर्त्यत्वानि) मनुष्य **अनुकामा**=(कामान् अनुगतानि) कामनाओं से युक्त हैं। मनुष्य का बिलकुल निष्काम होना सम्भव नहीं। (२) सो हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! गतिशील प्रभो! हम **आशसः**=आशंसनों को उन्नति के लिये साधनभूत पदार्थों की कामनाओं को **अगन्म**=प्राप्त हों।

भावार्थ–हम पत्थर की तरह जड़ न हों। उन्नति के लिये साधनभूत पदार्थों की कामनाओंवाले हों। उनकी पूर्ति के लिये गतिशील हों।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

कामकातयः

त्वे सु पुत्र शवसोऽवृत्रन्कामकातयः। न त्वामिन्द्राति रिच्यते॥ १४॥

(१) हे **शवसः पुत्र**=बल के पुत्र, शक्ति के पुतले, सर्वशक्तिमन् प्रभो! **कामकातयः**=(कामपराः कातयः शब्दाः येषां) नाना कामनाओं की प्रार्थना करनेवाले ये उपासक **त्वे सु अवृजन्**=आप में स्थित होते हुए उत्तम वृत्तिवाले होते हैं। आपका स्मरण करते हुए ये शुभ मार्ग से ही अपनी कामनाओं को पूर्ण करने के लिये यत्नशील होते हैं। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वां न अतिरिच्यते**=आप से कोई भी अधिक नहीं है। सो आपको छोड़कर और किस की आराधना करना।

भावार्थ–प्रभु से ही हम सब काम्य पदार्थों की याचना करते हैं। प्रभु ही हमारी कामनाओं को पूर्ण करते हैं।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'सनिष्ठा घोरा' धी

स नो वृषन्त्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्न्वा। धियाविड्ढि पुरन्ध्या॥ १५॥

(१) हे **वृषन्**=सब सुखों व काम्य पदार्थों का वर्षण करनेवाले प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमें **धिया**=बुद्धि के द्वारा **अविड्ढि**=रक्षित करिये। बुद्धि ही 'मे-धा' है, मेरा धारण करनेवाली है। (२) उस बुद्धि के द्वारा जो **सनिष्ठया**=(स-निष्ठया) प्रभु में पूर्ण निष्ठा व आस्थावाली है, अथवा (सन् संभक्तौ) सब उत्तम पदार्थों का सम्भजन करानेवाली है। **सं घोरया**=सम्यक् घोर है, शत्रुओं के लिये भयङ्कर है। **द्रवित्न्वा**=शत्रुओं को दूर भगानेवाली है तथा **पुरन्ध्या**=खूब पालन व पूरण करनेवाली है, बहुतों का धारण करनेवाली है।

भावार्थ–प्रभु हमें वह बुद्धि दें जो निष्ठावाली व सब पदार्थों को प्राप्त करानेवाली है। जो बुद्धि शत्रुओं के लिये भयङ्कर व शत्रुओं को दूर भगानेवाली है। वह बुद्धि प्रभु हमें दें जो बहुतों का धारण करनेवाली है।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'द्युम्नितमः' मदः

यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः। तेन नूनं मदे मदेः॥ १६॥

(१) हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक प्रभो! **यः**=जो **ते**=आपका दिया हुआ **मदः**=हर्ष का उत्पादक यह सोम है, वह **नूनम्**=निश्चय से **द्युम्नितमः**=हमारे जीवनों को खूब ही ज्योतिर्मय बनानेवाला है। (२) **तेन**=उस उल्लास जनक सोम से **नूनम्**=निश्चय ही **मदे**=उल्लास के होने पर आप **मदेः**=हमें आनन्दित करनेवाले हों।

भावार्थ–सुरक्षित सोम जीवन को ज्योतिर्मय व उल्लासयुक्त करता है। इससे जीवन

आनन्दमय बनता है।

ऋषिः — श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ देवता — इन्द्रः॥ छन्दः — गायत्री॥ स्वरः — षड्जः॥

'चित्रश्रवस्तम, वृत्रहन्तम, ओजोदातम' मद

यस्ते चित्रश्रवस्तमो य इन्द्र वृत्रहन्तमः। य ओजोदातमो मदः॥ १७॥

(१) हे **इन्द्र**-सर्वशक्तिमन् प्रभो! हमें उस मद को, हर्षजनक सोम को प्राप्त कराइये **यः**-जो **ते**-आपका **मदः**-उल्लासजनक सोम **चित्रश्रवस्तमः**-अद्भुत ज्ञान को सर्वाधिक प्राप्त करानेवाला है। **यः**-जो सोम **वृत्रहन्तमः**=वासना को अधिक से अधिक नष्ट करनेवाला है। और **यः**=जो **ओजोदातमः**=अत्यधिक ओज को देनेवाला है।

भावार्थ—प्रभु से प्राप्त कराया गया यह उल्लासजनक सोम (क) अद्भुत ज्ञान को देनेवाला है, (ख) वासना को विनष्ट करनेवाला है और (ग) हमें खूब ही ओजस्वी बनानेवाला है।

ऋषिः — श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ देवता — इन्द्रः॥ छन्दः — गायत्री॥ स्वरः — षड्जः॥

अद्रिवः-सत्य-सोमपाः-दस्म

विद्मा हि यस्ते अद्रिवस्त्वादत्तः सत्य सोमपाः। विश्वासु दस्म कृष्टिषु॥ १८॥

(१) हे **अद्रिवः**-आदरणीय, **सत्य**=सत्यस्वरूप, **सोमपाः**=सोम का रक्षण करनेवाले, **दस्म**=शत्रुओं का उपक्षय करनेवाले प्रभो! **यः**-जो **विश्वासु**-सब **कृष्टिषु**=श्रमशील मनुष्यों में **त्वादत्तः**-आप से दिया गया धन है, उसे हम भी **ते**=आप से **विद्मा हि**=प्राप्त करें ही। (२) प्रभु श्रमशील मनुष्यों को ऐश्वर्य प्राप्त कराते हैं। हम भी श्रमशील बनकर प्रभु से दिये जानेवाले इस ऐश्वर्य को प्राप्त करें।

भावार्थ—हम प्रभु का उपासन (आदर) करें। वे सत्यस्वरूप प्रभु हमारे सोम का रक्षण करते हुए हमारे सब शत्रुओं का उपक्षय करेंगे। श्रमशील बनकर हम प्रभु से दिये जानेवाले धन के पात्र बनें।

ऋषिः — श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ देवता — इन्द्रः॥ छन्दः — गायत्री॥ स्वरः — षड्जः॥

सोम का स्वाध्याय व स्तवन द्वारा शरीर में स्तोभन (रोकना)

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः। अर्कमर्चन्तु कारवः॥ १९॥

(१) उस **मद्वने**-(मद्+वन्) हर्ष का सम्भजन करनेवाले, आनन्दस्वरूप **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये **नः गिरः**=हमारी ज्ञान की वाणियाँ **सुतं परिष्टोभन्तु**=उत्पन्न हुए-हुए सोम को शरीर में ही चारों ओर रोकनेवाली हों। (स्तोभते=stop) शरीर में सोम के सुरक्षित होने पर ही प्रभु की प्राप्ति होती है। (२) **कारवः**=क्रियाओं को कुशलता से करने के द्वारा प्रभु का अर्चन करनेवाले स्तोता **अर्कम्**=उस उपासनीय प्रभु का **अर्चन्तु**=पूजन करें। कर्त्तव्य कर्मों को करके उन्हें प्रभु के लिये अर्पित करना ही प्रभु का अर्चन है।

भावार्थ—उस आनन्दमय प्रभु की प्राप्ति के लिये सोम का रक्षण आवश्यक है। सोमरक्षण के लिये स्वाध्याय व प्रभु-स्तवन साधन बनते हैं।

ऋषिः — श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ देवता — इन्द्रः॥ छन्दः — गायत्री॥ स्वरः — षड्जः॥

'श्री का आधार' विष्णु

यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः। इन्द्रं सुते हवामहे॥ २०॥

(१) **यस्मिन्**=जिन प्रभु में **विश्वाः श्रियः**=सब लक्ष्मियाँ **अधि**=आधिक्येन निवास करती हैं। जिस प्रभु के विषय में **सप्त**=सातों **संसदः**=होता 'कर्णाविमौनासिके चक्षणी मुखम्' **रणन्ति**=स्तवन करते हैं। उस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को, सब इन्द्रियों को शक्ति देनेवाले प्रभु को **सुते**=इस सोम के सम्पादन व रक्षण के निमित्त **हवामहे**=पुकारते हैं। प्रभु ने ही वासना विनाश द्वारा इस सोम का रक्षण करना है।

भावार्थ–प्रभु ही सब श्रियों के आधार हैं। प्रभु ने ही कर्ण आदि इन्द्रियों को श्री–सम्पन्न बनाना है। इस श्री–सम्पन्नता के लिये प्रभु ही सोम का सम्पादन व रक्षण करते हैं।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ज्योतिः, गौर, आयुः (त्रिकद्रुक)

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत। तमिद्वर्धन्तु नो गिरः॥ २१॥

(१) **त्रिकद्रुकेषु**='ज्योतिः गौः आयुः'= 'हमें ज्योति प्राप्त कराओ, हमारे लिये उत्तम इन्द्रियों को प्राप्त कराइये (गौ) तथा हमें दीर्घजीवी बनाइये' इस प्रकार तीनों आह्वानों के होने पर (कदि आह्वाने) **चेतनम्**=चेतना को, ज्ञान को देनेवाले **यज्ञम्**=पूजनीय प्रभु को **देवासः**=देववृत्ति के पुरुष **अत्नत**=अपने में विस्तृत करते हैं। (२) **नः गिरः**=हमारी ये वाणियाँ भी **तं इत्**=उस प्रभु का ही **वर्धन्तु**=वर्धन करें। हम वाणियों से प्रभु का ही स्तवन करें। प्रभु हमारे ज्ञान को बढ़ायेंगे, हमें उत्तम इन्द्रियों को प्राप्त करायेंगे और इस प्रकार हमें प्रशस्त दीर्घ जीवनवाला करेंगे।

भावार्थ–प्रभु का ही देववृत्ति के पुरुष पुकारते हैं। प्रभु–स्तवन करते हुए वे ज्ञान के प्रकाश को, उत्तम इन्द्रियों को व दीर्घजीवन को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु में प्रवेश

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः। न त्वामिन्द्राति रिच्यते॥ २२॥

(१) 'इन्दु' शब्द सोम का वाचक है। सोम का रक्षण करनेवाले पुरुष भी यहाँ 'इन्दु' कहे गये हैं। ये **इन्दवः**=सोम का अपने में रक्षण करनेवाले पुरुष **त्वा आविशन्तु**=हे प्रभो! आप में प्रवेश करनेवाले हों। इस प्रकार वे आप में प्रवेश कर जायें **इव**=जैसे **सिन्धवः**=नदियाँ **समुद्रम्**=समुद्र में प्रवेश कर जाती हैं और समुद्र ही हो जाती हैं। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! वस्तुतः **त्वा न अतिरिच्यते**=कोई भी वस्तु आप से अतिरिक्त नहीं है। सभी को आपने अपने गर्भ में धारण किया हुआ है। सोमरक्षक पुरुष अपने को आप में अनुभव करता है।

भावार्थ–हम सोमरक्षण करते हुए प्रभु में प्रवेश करनेवाले बनें।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु के उदर को सोम से भरना

विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे। य इन्द्र जठरेषु ते॥ २३॥

(१) हे **वृषन्**=सुखों का वर्षण करनेवाले **जागृवे**=सदा जागरणशील प्रभो! आप ही **महिना**=अपनी महिमा से **सोमस्य भक्षम्**=सोम के भक्षण को **विव्यक्थ**=व्याप्त करते हैं। अर्थात् आपके अनुग्रह से ही सोम का शरीर में व्यापन होता है। (२) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! उस सोम का आप व्यापन करते हो **यः**=जो **ते जठरेषु**=आपके उदरों में हैं। हम अपने इन उदरों को जब आपका उदर बना देते हैं, अर्थात् इसे आपका ही जानकर पवित्र रखने

का प्रयत्न करते हैं, तो सोम इसमें सुरक्षित रहता है।

भावार्थ–प्रभु सदा जागरणशील (अप्रमत्त) व हमारे पर सुखों का वर्षण करनेवाले हैं। वे प्रभु हमारे अन्दर सोम का रक्षण करते हैं। हम इन उदरों को प्रभु का उदर बना के पवित्र भोजनों को करते हुए सोम का रक्षण कर पायें।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

धामभ्यः अरम्

अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन्। अरं धामभ्य इन्दवः ॥ २४ ॥

(१) हे **वृत्रहन्**-वासनाओं को विनष्ट करनेवाले **इन्द्र**-सर्वशक्तिमन् प्रभो! **सोमः**-यह सोम **ते कुक्षये**-आप से दी गई इस कुक्षि के लिये **अरं भवतुम्**-भूषित करनेवाला हो। यह सोम कुक्षि में ही सुरक्षित रहकर उसे भूषित करे। (२) हे प्रभो! ये **इन्दवः**=सोमकण **धामभ्यः**-सब तेजों के लिये **अरम्**-पर्याप्त हों। इनके रक्षण से तेजस्विता का लाभ हो।

भावार्थ–शरीर में सुरक्षित सोम शरीर को अलंकृत करे। सब तेजों को यह प्राप्त करानेवाला हो।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

अश्व-गौ-इन्द्रधाम

अरमश्वाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे। अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ २५ ॥

(१) **श्रुतकक्षः**=ज्ञान को ही अपना रक्षा-स्थान बनानेवाला (कक्ष hiding place) यह उपासक **अश्वाय**=उत्तम कर्मेन्द्रियों की प्राप्ति के लिये **अरं गायति**=खूब ही प्रभु का गायन करता है। यह **गवे**-उत्तम ज्ञानेन्द्रियों की प्राप्ति के लिये **अरम्**-खूब ही गायन करता है। (२) इसी प्रकार **इन्द्रस्य**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **धाम्ने**=तेज के लिये **अरम्**-खूब ही गायन करता है।

भावार्थ–हम 'श्रुतकक्ष' बनें। स्वाध्याय द्वारा व्यर्थ के व्यसनों से बचकर उत्तम कर्मेन्द्रियों उत्तम ज्ञानेन्द्रियों में प्रभु के तेज को पाने के लिये खूब ही प्रभु का गायन करें।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

सोमरक्षण और सद्गुण धारण

अरं हि ष्मा सुतेषु णः सोमेष्विन्द्र भूषसि। अरं ते शक्र दावने ॥ २६ ॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप **सु सोमेषु सुतेषु**=सोमों का सम्पादन होने पर **नः**=हमें **हिष्मा**=निश्चय से **अरं भूषसि**=खूब ही गुणों से सुभूषित करते हैं। (२) हे **शक्र**-सर्वशक्तिमन् प्रभो! ये **ते**=आपके सोमकण **दावने**-दानशील पुरुष के लिये **अरम्**-पर्याप्त हों। दानशील पुरुष भोग-विलास से ऊपर उठकर इन सोमकणों का रक्षण करनेवाला बने। सुरक्षित सोमकण उसे सद्गुणों से सुभूषित करें।

भावार्थ–हम दानशील बनकर भोगवृत्ति से ऊपर उठकर, सोमकणों के रक्षण के द्वारा सद्गुणों का धारण करें।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः

प्रभु-स्तवन व प्रभु प्राप्ति

पराकात्ताच्चिदद्रिवस्त्वां नक्षन्त नो गिरः। अरं गमाम ते वयम् ॥ २७ ॥

(१) हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! **पराकातात् चित्**=अत्यन्त सुदूर देश से भी **नः गिरः**=हमारी स्तुति-वाणियाँ **त्वां नक्षन्त**=आपको प्राप्त होती हैं। हम चाहे आप से कितनी भी दूर हैं, अभी आपके दर्शन के पात्र चाहे नहीं भी बन पाये हैं, तो भी आपकी सत्ता में निष्ठा रखते हुए हम आपका स्तवन करते हैं। (२) हे प्रभो! इस प्रकार आपका स्तवन करते हुए **वयम्**-हम **ते**=आपके प्रति **अरं गमाम**=खूब ही गतिवाले हों। आपके समीप और समीप प्राप्त होनेवाले हों।

भावार्थ-प्रभु से दूर होते हुए भी हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु-स्तवन करते हुए हम प्रभु को समीपता से प्राप्त होनेवाले हों।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वीर-शूर-स्थिर

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः। एवा ते राध्यं मनः॥ २८॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **वीरयुः**=वीरों को प्राप्त होने की कामनावाले **असि एव**=हैं ही। वीरों को आप प्राप्त होते हैं। आप **एवा**=सचमुच **शूरः**=शूरवीर हैं **उत**=और **स्थिरः**-स्थिर हैं, शत्रुओं से विचलित किये जानेवाले नहीं हैं। (२) **एवा**=सचमुच **ते**=आपके द्वारा ही **मनः राध्यम्**=मन वश में करने योग्य है। आपकी उपासना से ही एक उपासक अपने मन को वश में कर पाता है। उपासक भी उपास्य प्रभु के समान 'वीर, शूर व स्थिर' बनता है और मन को वश में करता है।

भावार्थ-हम प्रभु की उपासना करते हुए प्रभु के समान ही 'वीर, शूर व स्थिर' बनें। ऐसा बनकर हम मन को भी वश में कर पायेंगे।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

दान की वृत्ति व प्रभु मित्रता

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः। अधा चिदिन्द्र मे सचा॥ २९॥

(१) हे **तुवीमघ**-महान् ऐश्वर्यवाले प्रभो! **विश्वेभिः**=सब **धातृभिः**=धारणात्मक कर्मों में प्रवृत्त उपासकों से **एवा**=सचमुच **रातिः**=दान की वृत्ति **धायि**=धारण की जाती है। इस वृत्ति के बिना धारणात्मक कर्मों का सम्भव भी तो नहीं। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अधा**=अब **चित्**=निश्चय से आप **मे सचा**=मेरे साथ होते हैं। दान की वृत्ति ही मुझे आपका प्रिय बनाती है।

भावार्थ-हम दान की वृत्ति को अपनाकर धारणात्मक कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। यह वृत्ति ही मुझे प्रभु की मित्रता को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

मा तन्द्रयुः (अनालस्य)

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते। मत्स्वा सुतस्य गोमतः॥ ३०॥

(१) जीव को प्रभु कहते हैं कि हे **वाजानां पते**=शक्तियों के रक्षक जीव! तू गत मन्त्र के अनुसार प्रभु की मित्रता में दान की वृत्तिवाला बनकर धारणात्मक कर्मों को करता हुआ, **ब्रह्म इव**=प्रभु जैसा बनकर **तन्द्रयुः**=आलस्य को अपने साथ जोड़नेवाला **मा उ**=मत ही **सुभव**=सम्यक् हो। कभी आलसी न बनकर सदा सत्कर्मों में प्रवृत्त रह। (२) तू **सुतस्य**=शरीर में उत्पन्न किये गये इस **गोमतः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियों व इन्द्रियोंवाले सोम का रक्षण करता हुआ **मत्स्वा**=आनन्द का अनुभव कर। सुरक्षित सोम तेरे ज्ञान को बढ़ाये। यह तेरी इन्द्रियों को सशक्त बनाये और तू

जीवन में आनन्द व उल्लास का अनुभव करे।

भावार्थ–हम शक्तियों के स्वामी बनकर प्रभु जैसा बनते हुए कभी आलसी न हों। उत्पन्न सोम के रक्षण के द्वारा इन्द्रियों को प्रशस्त बनाकर आनन्दयुक्त जीवनवाले हों।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

त्वा युजा वनेम तत्

मा न इन्द्राभ्या३ दिशः सूरो अक्तुष्वा यमन्। त्वा युजा वनेम तत्॥ ३१॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रु संहारक प्रभो! **नः**=हमें **अभ्यादिशः**=सब ओर से आयुधों को अतिशयेन विसृष्ट करते हुए, सब ओर से आक्रमण करते हुए **सूरः**=(सर्वत्र सरणशीलाः) सर्वत्र सरणशील ये आसुरभाव **अक्तुषु**–अज्ञानान्धकार की रात्रियों में **मा आयमन्**=मत बाँधनेवाले हों। हम अज्ञानवश कामादि शत्रुओं के शिकार न हो जायें। (२) **त्वा युजा**=आप को साथी के रूप में पाकर, आप के सहाय से **सूरोतत्**–उस आसुर वृत्ति समूह को **वनेम**–पराजित करनेवाले हों।

भावार्थ–हम अज्ञानवश वासनाओं से बद्ध न हो जायें। प्रभु को मित्र बनाकर इन वासनाओं का विनाश कर सकें।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

आप हमारे, हम आपके

त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः। त्वमस्माकं तव स्मसि॥ ३२॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं के संहारक प्रभो! **त्वया युजा**=आप साथी के साथ **वयम्**=हम **स्पृधः**=स्पर्श करनेवाले शत्रुओं को, काम-क्रोध-लोभ आदि को **इत्**=निश्चय से **प्रति ब्रुवीमहि**= निराकृत कर उसे इनकी ललकार का ठीक उत्तर दे सकें। (२) हे प्रभो! **त्वं अस्माकम्**=आप हमारे हों। **तव स्मसि**=हम आपके हों। हम आप से मिलकर ही तो शत्रुओं को जीत पायेंगे।

भावार्थ–हम प्रभु के साथ मिलकर शत्रुओं को पराजित कर सकें। प्रभु हमारे हों, हम प्रभु के हों। यह ऐक्य ही तो शत्रु-विद्रावक होगा।

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

प्रभु-परिचर्या

त्वामिद्धि त्वायवोऽनुनोनुवतश्चरान्। सखाय इन्द्र कारवः॥ ३३॥

(१) हे **इन्द्र**–शत्रु-विद्रावक प्रभो! **त्वायवः**–आपकी प्राप्ति की कामनावाले **अनुनोनुवतः**= प्रतिदिन अनुक्रमेण आपका स्तवन करते हुए **सखायः**–आपके मित्रभूत ये **कारवः** कुशलतापूर्वक कर्मों के करने के द्वारा आपका स्तवन करनेवाले स्तोता लोग **त्वां इत् हि**–आपका ही निश्चय से **चरान्**=परिचरण (उपासन) करते हैं।

भावार्थ–हम प्रभु प्राप्ति की कामनावाले हों, प्रतिदिन प्रभु-स्तवन करें। कुशलतापूर्वक कर्मों को करते हुए प्रभु के सखा बनें। इन कर्मों द्वारा प्रभु की अर्चना करें।

यह सतत प्रभु के उपासन करता हुआ प्रभु रूप उत्तम (सु) रक्षण स्थान (कक्ष) को प्राप्त करनेवाला 'सुकक्ष' अगले सूक्त का ऋषि है। अंग-प्रत्यंग में रसवाला यह 'आंगिरस' इन्द्र का स्तवन करता है–

९३. [त्रिनवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

श्रुतामघ-अस्ता

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्। अस्तारमेषि सूर्य॥ १॥

(१) हे **सूर्य**=आदित्यवर्ण, सहस्र सूर्यसम तेजस्विन् प्रभो! आप **घा इत्**=निश्चय से **अभि उदेषि**=उस व्यक्ति के सम्मुख उदित होते हो, उसको प्राप्त होते हो, जो **श्रुतामघम्**=ज्ञानरूप ऐश्वर्यवाला होता है। (२) आप उस व्यक्ति को प्राप्त होते हो जो ज्ञानैश्वर्य होकर **वृषभम्**=शक्तिशाली बनता है। (३) आप उसे प्राप्त होते हो जो ज्ञानैश्वर्यवाला व शक्तिशाली बनकर **नर्यापसम्**=नरहितकारी कर्मों में प्रवृत्त होता है और इस प्रकार जो **अस्तारम्**=सब वासनाओं को अपने से सुदूर फेंकनेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु उसे प्राप्त होते हैं जो ज्ञानैश्वर्यवाला, शक्तिशाली, लोकहित के कर्मों को करनेवाला व वासनाओं को परे फेंकनेवाला बनता है।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

नवनवति पुरियों का भेदन

नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा। अहिं च वृत्रहावधीत्॥ २॥

(१) प्रभु वे हैं **यः**=जो **बाह्वोजसा**=बाहुओं के पराक्रम से **नवनवतिम्**=निन्यानवे **पुरः**=असुरों की पुरियों को, अनेकों आसुरभावों को **बिभेद**=विदीर्ण कर देते हैं। (२) **च**=और **वृत्रहा**=वासनाओं को नष्ट करनेवाले वे प्रभु **अहिम्**=इस आहन्ता कामरूप शत्रु का **अवधीत्**=वध कर डालते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही असुरों की पुरियों का विध्वंस करते हैं। वे ही विनाशक वासनाओं का विलय करते हैं।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अश्वावत् गोमत् यवमत्

स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत्। उरुधारेव दोहते॥ ३॥

(१) **सः**=वह **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **नः**=हमारा **शिवः सखा**=कल्याणकारी मित्र है। (२) ये प्रभु हमारे लिये **अश्वावत्**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाले, **गोमत्**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाले व **यवमत्**=बुराइयों को पृथक् करके अच्छाइयों को प्राप्त करानेवाले ऐश्वर्य का इस प्रकार **दोहते**=प्रपूरण करते हैं, **इव**=जैसे **उरुधारा**=विशाल दुग्ध की धाराओंवाली गौ वत्स के लिये दूध का दोहन करती है।

भावार्थ—प्रभु हमारे शिव मित्र हैं। वे हमारे लिये उस ऐश्वर्य को देते हैं, जो हमारी इन्द्रियों को उत्तम बनाता है और हमें सब बुराइयों से पृथक् करके अच्छाइयों से मिलाता है।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

इन्द्र, वृत्रहन्, सूर्य

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य। सर्वं तदिन्द्र ते वशे॥ ४॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि हे **वृत्रहन्**=वासनाओं को विनष्ट करनेवाले व **सूर्य**=सूर्य की तरह निरन्तर क्रियाशील जीव! **यद्**=जब **अद्य कत् च**=आज या जब भी कभी तू **उत्**=प्रकृति

से ऊपर उठकर **अभि अगाः** -मेरी ओर आता है तो **तत् सर्वम्**-वह सब, हे **इन्द्र**-जितेन्द्रिय पुरुष! **ते वशे**-तेरी इच्छा पर ही निर्भर करता है। तू दृढ़ संकल्प करेगा, वासनाओं को विनष्ट कर ज्ञानरस से दीप्त जीवनवाला बनेगा तो अवश्य मेरी ओर (प्रभु की ओर) आनेवाला होगा। (२) प्रभु की ओर आने पर हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **तत् सर्वम्**-वह सब **ते वशे**-तेरे वश में होगा। प्रभु को प्राप्त कर लेने पर सब जगत् के पदार्थ तो प्राप्त हो ही जाते हैं।

भावार्थ-हम प्रभु प्राप्ति का दृढ़ संकल्प करें। यह संकल्प हमें वासना विनाश में प्रवृत्त करेगा और तब हमारे जीवन में वासनाओं के मेघों का विलय होकर ज्ञानसूर्य का उदय होगा।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अपने अमरत्व को पहचानना

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे। उतो तत्सत्यमित्तव॥ ५॥

(१) प्रभु जीव से कह रहे हैं कि-हे **प्रवृद्ध**=ज्ञान के दृष्टिकोण से वृद्धि को प्राप्त हुए-हुए **सत्पते**=उत्तम कर्मों के रक्षक जीव! **यद्वा**=जब निश्चय से '**न मरा**'-'मैं मरता नहीं, मैं अमर हूँ' **इति मन्यसे**-इस प्रकार तू मानता है तो **उत उ**-निश्चय से **तव**=तेरा **तत्**-वह अपने को अमर जानना **सत्यं इत्**=सत्य ही है। (२) अपने अमरत्व को पहचानने पर ही तू वास्तविक सत्य को पानेवाला होता है।

भावार्थ-हम अपने अमरत्व को पहचानकर शरीर आदि में 'मैं' की बुद्धि से ऊपर उठें। यही ज्ञान हमें प्राकृतिक भोगों की तुच्छता को स्पष्ट करता हुआ उनके बन्धन में पड़ने से बचायेगा।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सोमासः परावति

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे। सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि॥ ६॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार अपने अमरत्व को पहचानने पर तथा विषयों की तुच्छता को समझने पर **ये**-जो **सोमासः**=सोमकण **परावति**=उस सुदूर मस्तिष्करूप द्युलोक के निमित्त **सुन्विरे**-उत्पन्न किये गये हैं, अथवा **ये**=जो **अर्वावति**=समीपस्थ इस शरीररूप पृथिवीलोक के निमित्त उत्पन्न किये गये हैं, हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **तान् सर्वान्**=उन सब सोमकणों को **गच्छसि**=प्राप्त होता है। (२) अपने अमरत्व को समझकर, विषयों से ऊपर उठने पर ही सोमकणों का रक्षण होता है। इनके रक्षण से ही मस्तिष्करूप द्युलोक दीप्त तथा शरीररूप पृथिवीलोक दृढ़ बनता है।

भावार्थ-हम अपने को अमर जानें। विषयों की तुच्छता को पहचानें। सोमकणों का रक्षण करते हुए मस्तिष्क को दीप्त बनायें तथा शरीर को दृढ़ करें।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वृषा वृषभः भुवत्

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे। स वृषा वृषभो भुवत्॥ ७॥

(१) **तं इन्द्रम्**=उस शत्रु-विद्रावक सर्वशक्तिमान् प्रभु को **वाजयामसि**-हम अपने अन्दर गतिवाला करते हैं। अर्थात् सदा उसे अपने अन्दर अनुभव करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा करने पर वे प्रभु **महे**-उस महान्, अति प्रबल **वृत्राय हन्तव**-वृत्त के विनाश के लिये होते हैं। प्रभु हमारी वासना को विनष्ट करते हैं। (२) वासना को विनष्ट करके **सः**-वे **वृषा**-हमारे पर सुखों के सेवन करनेवाले प्रभु **वृषभः**=हमारे लिये साधनभूत धनों का वर्षण करनेवाले **भुवत्** होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु-स्मरण करें। प्रभु हमारी वासना को विनष्ट करेंगे और हमें आवश्यक धन आदि साधनों को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'इन्द्र' का लक्षण

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः। द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः॥ ८॥

(१) **इन्द्रः सः**=इन्द्रियों का अधिष्ठाता जीव वह है जो **दामने कृतः**=इन्द्रियों के संयम (दाम=बन्धन) के लिये किया गया है। **ओजिष्ठः**=ओजस्वितम है। इन्द्रियों का संयम ही तो उसे ओजस्वी बनाता है। **सः**=वह इन्द्र **मदे**=सोमपान जनित उल्लास के होने पर शक्ति का रक्षण होने पर **हितः**=सब का हित करनेवाला होता है। (२) **द्युम्नी**-यह ज्ञान की ज्योतिवाला होता है। **श्लोकी**=यशस्वी जीवनवाला होता है। हितकर कर्मों में प्रवृत्त हुआ-हुआ यह सदा यश को प्राप्त होता है। परन्तु यशस्वी होता हुआ **स सोम्यः**=वह अत्यन्त विनीत व शान्त होता है।

भावार्थ—इन्द्र वह है जो-(क) इन्द्रियों के संयम के द्वारा 'ओजिष्ठ' बनता है, (ख) सोमरक्षण जनित उल्लास में सदा हितकर कर्मों में प्रवृत्त होता है, (ग) ज्ञान-ज्योति को ही अपना ऐश्वर्य बनाता है, (घ) यशस्वी जीवनवाला होता है, (ङ) आशयेन विनीत होता है।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गिरा संभृतः वज्रो न

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः। ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः॥ ९॥

(१) **गिरा**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुति-वाणियों के द्वारा **सम्भृतः**=सम्यक् धारण किया गया यह प्रभु **वज्रः न**=उपासक के लिये वज्र के समान होता है। उपासक इस प्रभुरूप वज्र के द्वारा ही काम-क्रोध आदि शत्रुओं का संहार करनेवाला होता है। वे प्रभु **सबलः**=सदा शक्ति के साथ वर्तमान हैं और **अपच्युतः**=कभी भी शत्रुओं द्वारा स्थानभ्रष्ट नहीं किये जाते। (२) ये **ऋष्वः**=महान् **अस्तृतः**=अहिंसित प्रभु **ववक्षे**=स्तोताओं के लिये धन आदि साधनों को प्राप्त कराने की कामनावाले होते हैं। इन साधनों को प्राप्त करके साधक उन्नतिपथ पर आगे बढ़ता है।

भावार्थ—स्तुति के द्वारा सम्भृत प्रभु स्तोता के हाथ में वज्र के समान होते हैं। वे सबल प्रभु शत्रुओं से च्युत नहीं किये जा सकते। ये महान् अहिंसित प्रभु ही स्तोता के लिये सब साधनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

दुर्गे चित् सुगम्

दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्वणः। त्वं च मघवन्वशः॥ १०॥

(१) हे **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा सम्भजनीय **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **गृणानः**=स्तुति किये जाते हुए आप **नः**=हमारे लिये **दुर्गे चित्**=दुर्गम मार्गों में भी **सुगं कृधि**=सुगमता से जाने का सम्भव करिये। हम धर्म के दुर्गम मार्गों में सुगमता से चल सकें। (२) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **वशः**=हमारे लिये सब ऐश्वर्यों के देने की कामना करिये।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से हम धर्म के मार्गों पर आसानी से चल सकें। प्रभु के प्रिय होते हुए प्रभु से सब आवश्यक ऐश्वर्यों को प्राप्त करें।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रभु के आदेश का पालन व स्वराज्य

यस्य॑ ते॒ नू चि॑दा॒दिशं॒ न मि॒नन्ति॑ स्व॒राज्य॑म्। न दे॒वो नाध्रि॑गु॒र्जनः॑॥ ११॥

(१) हे प्रभो! **यस्य ते**=जिन आपके **आदिशम्**=आदेश को, आज्ञा को **नु चित्**=निश्चय से **न मिनन्ति**-कोई भी हिंसित नहीं कर पाते। वस्तुतः आपकी आज्ञा को हिंसित न करते हुए वे **स्वराज्यम्**-आत्मशासन को नष्ट नहीं करते। (२) **न देवः**=न तो देव **न**-नहीं **आध्रिगुः जनः**=अधृत गमन मनुष्य विषय-वासनाओं से जिनकी गति रोकी नहीं जाती वे मनुष्य, आपके शासन को तोड़ते हैं। ये देव व अध्रिगुजन सदा स्वराज्य का उपभोग करते हैं।

भावार्थ-हम देव व विषयों से न रोकी हुई गतिवाले बनकर प्रभु के शासन में चलें, तथा सदा स्वराज्य का उपभोग करें। विषयों व किन्हीं दूसरों के पराधीन न हो जायें।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अप्रतिष्कुत शुष्म

अधा॑ ते॒ अप्र॑तिष्कुतं दे॒वी शुष्मं॑ सपर्यतः। उ॒भे सु॑शिप्र॒ रोद॑सी॥ १२॥

(१) हे **सुशिप्र**=शोभन हनु व नासिकावाले, हमारे लिये उत्तम जबड़ों व नासिका को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **अधा**=अब **ते**=आपके **अप्रतिष्कुतम्**=किन्हीं भी शत्रुओं से आक्रान्त न होने योग्य **शुष्मम्**=बल को **उभे**=दोनों **देवी**=दिव्य गुण-सम्पन्न प्रकाशमय **रोदसी**-द्यावापृथिवी **सपर्यतः**=पूजित करते हैं। ये दोनों द्यावापृथिवी आपके अधीन होते हैं। (२) प्रभु ने हमें जबड़े भोजन को चबाने के लिये तथा नासिका छिद्र प्राणसाधना के लिये दिये हैं। खूब चबाया गया भोजन यदि पृथिवीरूप शरीर को दृढ़ करता है तो प्राणसाधना मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त करती है। इस प्रकार द्यावापृथिवी में प्रभु के बल का प्रकाश होता है। तब शरीर रोगों से आक्रान्त नहीं होता और मस्तिष्क दुर्विचारों से अभिभूत नहीं होता।

भावार्थ-प्रभु ने जबड़े दिये हैं। इनके द्वारा खूब चबाकर खाया गया भोजन शरीर को दृढ़ बनाता है। प्रभु ने नासिका छिद्र प्राणसाधना के लिये दिये हैं, यह प्राणसाधना मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त बनाती है। अब न रोग, न दुर्विचार हमारे पर आक्रमण करते हैं।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

काली व लाल सब गौओं में सफेद दूध

त्वमे॒तद॑धारयः कृ॒ष्णासु॒ रोहि॑णीषु च। परु॑ष्णीषु॒ रुश॒त्पयः॑॥ १३॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप ही **कृष्णासु**=कृष्ण वर्णवाली **च**-व **रोहिणीषु**=रोहित वर्णवाली **पुरुष्णीषु**=पालन व पूरण करनेवाली गौओं में **एतत्**=इस **रुशत्**-देदीप्यमान-चमकते हुए **पयः**=दुग्ध को **अधारयः**=धारण करते हैं। (२) गौओं का रंग भिन्न-भिन्न है। परन्तु उनके अन्दर दूध का वर्ण अलग-अलग नहीं। इसी प्रकार प्रभु सब भिन्न-भिन्न वर्णवाली त्वचाओंवाले मनुष्यों के लिये देदीप्यमान् ज्ञानदुग्ध को धारण करते हैं।

भावार्थ-यह भी प्रभु के अद्भुत कार्यों में से एक कार्य है कि सब भिन्न-भिन्न वर्णवाली गौओं में दूध का वर्ण एक ही है।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

मृग के अम की प्राप्ति

वि यद्हेरध त्विषो विश्वे देवासो अक्रमुः। विदन्मृगस्य ताँ अमः॥ १४॥

(१) **विश्वे देवासः**=सब देववृत्ति के पुरुष **यद्**=जब **अहेः**=आहनन करनेवाले इस वृत्रासुर की, वासना की **त्विषः**=दीप्तियों को **वि अक्रमुः**=विशेषरूप से आक्रान्त करते हैं, **अध**=तो अब **तान्**=उन देवों को **मृगस्य**=उस अन्वेषणीय प्रभु का **अमः**=बल **विदत्**=प्राप्त होता है। (२) वासना को जीतकर ही हम अपने अन्दर प्रभु के प्रकाश को देखनेवाले बनते हैं। वासना ज्ञान पर परदे के रूप में पड़ी रहती है, इसी से यह 'वृत्र' कहलाती है। इसका नाश हुआ और प्रभु का प्रकाश हुआ।

भावार्थ—देव लोग वासना की दीप्ति को आक्रान्त करके प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न बनते हैं।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

निवरः (प्रभु)

आदु मे निवरो भुवद् वृत्रहादिष्ट पौंस्यम्। अजातशत्रुरस्तृतः॥ १५॥

(१) **आद् उ**=अब शीघ्र ही निश्चय से प्रभु **मे**=मेरे लिये **निवरः**=शत्रुओं का निवारण करनेवाले **भुवत्**=होते हैं। और हे **वृत्रहा**=वासनारूप शत्रु का नाश करनेवाले प्रभु **पौंस्यम्**=बल को **अदिष्ट**=मेरे लिये देते हैं। (२) ये प्रभु **अजातशत्रुः**=अजातशत्रु हैं। प्रभु का कोई भी शासन करनेवाला नहीं हो सकता। **अस्तृतः**=प्रभु किसी से हिंसित नहीं होते। प्रभु का उपासक भी अजातशत्रु व अहिंसित बनता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे शत्रुओं का निवारण करते हैं और वासना विनाश द्वारा हमारे में बल का स्थापन करते हैं। वे कभी किसी से हिंसित नहीं किये जा सकते।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

आशुषे, राधसे महे

श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम्। आ शुषे राधसे महे॥ १६॥

(१) **आ शुषे**=समन्तात् शत्रुओं के शोषण के लिये (शुष से भाव में क्विप्) तथा **महे राधसे**=जीवन की महान् सफलता के लिये उस प्रभु का **प्र**=खूब ही स्तवन करो जो **श्रुतम्**=सब वेदवाणियों में सुने जाते हैं। **वः वृत्रहन्तमम्**=तुम्हारी वासनाओं का खूब ही विनाश करनेवाले हैं तथा **चर्षणीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के **शर्धम्**=बलभूत हैं। (२) जब हम प्रभु का स्मरण करेंगे, तो वे हमारी वासनाओं का विनाश करके हमें शक्ति प्रदान करेंगे। यह शक्ति ही हमें शत्रुओं के शोषण के लिये समर्थ करेगी और जीवन में महान् साफल्य को देगी।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण हमें वासना-विनाश द्वारा शक्ति-सम्पन्न बनाता है। हम शत्रुओं का शोषण करते हुए जीवन में सफलता को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

गव्या धी

अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत। यत्सोमेसोम आभवः॥ १७॥

(१) हे **पुरुणामन्**-अनन्त स्तोत्रोंवाले, **पुरुष्टुत**-खूब ही स्तुति किये गये प्रभो! **यत्**-जब **सोमे सोमे** सोमकणों के रक्षित होने पर आप **आभवः**=(भू प्राप्तौ) हमें प्राप्त होते हैं, तो **च**-निश्चय से **अया**=इस **गव्यया**-ज्ञान की वाणियों की कामनावाली **धिया**-बुद्धि से हमें प्राप्त होते हैं। आप हमारे लिये उस बुद्धि को प्राप्त कराते हैं, जो ज्ञान की वाणियों की कामनावाली होती है।

भावार्थ-हम प्रभु के स्तोत्रों का गायन करें। यह गायन हमें ज्ञान की वाणियों की रुचिवाली बुद्धि को प्राप्त करायेगा।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

'बोधिन्मना' प्रभु

बोधिन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः। शृणोतु शक्र आशिषम्॥ १८॥

(१) वह **वृत्रहा**-वासना को विनष्ट करनेवाला प्रभु **नः**-हमारे लिये **इत्**=निश्चय से **बोधिन्मनाः**-ज्ञानयुक्त मन को देनेवाला हो। प्रभु हमें सदा प्रबुद्ध मन को प्राप्त करायें। वे प्रभु हमारे लिये **भूर्यासुतिः**-खूब ही सोम का सम्पादन करनेवाले हों। यह सोम ही तो मन आदि करणों (साधनों) की शक्ति का वर्धन करता है। (२) **शक्रः**-वह सर्वशक्तिमान् प्रभु हमारी **आशिषम्**= आशीः-इच्छा व प्रार्थना को **शृणोतु**-सुने। प्रभु हमारी सब कामनाओं को पूर्ण करें।

भावार्थ-वासना को विनष्ट करनेवाले प्रभु हमें प्रबुद्ध मन को प्राप्त करायें, हमारे लिये सोम का सम्पादन करें और हमारी कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हों।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

कया उत्या

कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्। कया स्तोतृभ्य आ भर॥ १९॥

(१) हे **वृषन्**=सुखों का वर्षण करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**-हमारे लिये **कया उत्या**= कल्याणकर रक्षण के द्वारा **अभि प्रमन्दसे**=आनन्दित करनेवाले होते हैं। आप से रक्षित हुए-हुए हम इह लोक के अभ्युदय व परलोक के निःश्रेयस को (अभि) प्राप्त करनेवाले बनकर आनन्द लाभ कर पाते हैं। (२) हे प्रभो! आप इस **कया**-कल्याणकर (आनन्दमय) रक्षण के द्वारा **स्तोतृभ्यः**-स्तोताओं के लिये **आभर**=समन्तात् भरण व पोषण के लिये होइये।

भावार्थ-प्रभु के रक्षण में हम इहलोक व परलोक की उन्नति करते हुए आनन्दित हों। प्रभु के रक्षण में हम ठीक से भरण व पोषण में समर्थ हों।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

कस्य सचा

कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान्वृषभो रणत्। वृत्रहा सोमपीतये॥ २०॥

(१) (सच्=To honour, To assist) **कस्य**-उस आनन्दमय प्रभु के पूजन व सहाय से (सचा-सच्) **सुते**-शरीर में सोम का सम्पादन होने पर यह उपासक **वृषा**=अंग-प्रत्यंग में उस सोम का सेचन करनेवाला होता है। यह **नियुत्वान्**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाला, **वृषभः**=शक्तिशाली बनकर **रणत्**=प्रभु-स्तवन में रमण करता है। (२) इस प्रभु-पूजन से ही यह **वृत्रहा**=वासना को विनष्ट करनेवाला होता हुआ **सोमपीतये**=सोम के पान (रक्षण) के लिये समर्थ होता है।

भावार्थ-प्रभु-पूजन हमें वासनाओं को जीतने व सोमरक्षण में समर्थ करता है। सोमरक्षण

द्वारा शक्तिशाली व प्रशस्तेन्द्रिय बनकर यह और भी अधिक प्रभु-स्तवन में रमण करनेवाला होता है।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

'दाश्वान् के पालक' प्रभु

अभी षु णस्त्वं रयिं मन्दसानः सहस्रिणम्। प्रयन्ता बोधि दाशुषे॥ २१॥

(१) हे प्रभो! **मन्दसानः**-गत मन्त्र के अनुसार उपासक के प्रति प्रीतिवाले होते हुए **त्वम्**=आप **नः**=हम उपासकों के लिये **सु**=अच्छी प्रकार **सहस्रिणं रयिम्**=सहस्रों का भरण करनेवाले ऐश्वर्य को **अभि प्रयन्ता**=देनेवाले होइये। (२) हे प्रभो! **दाशुषे**-दाश्वान्, दानशील पुरुष के लिये **बोधि**=अवश्य ऐश्वर्य प्रदान का ध्यान करिये।

भावार्थ-हम प्रभु का ध्यान करें। प्रभु हमें अवश्य ऐश्वर्यों को प्राप्त करायेंगे। हम दानशील बनेंगे, प्रभु अवश्य हमारा पालन करेंगे।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अपां जग्मिः-निचुम्पुणः

पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये। अपां जग्मिर्निचुम्पुणः॥ २२॥

(१) **पत्नीवन्तः**-प्रशस्त पत्नियोंवाले, अर्थात् अपनी पत्नी के साथ सदा उत्तम कार्यों को करनेवाले **सुताः**=(सुतं अस्य अस्ति इति) सोम का सम्पादन करनेवाले **इमे**=ये साधक **उशन्तः**=प्रभु प्राप्ति की कामनावाले होते हुए **वीतये यन्ति**=(To shine) प्रकाश के लिये गतिवाले होते हैं। इनका जीवन अधिकाधिक प्रकाशमय होता जाता है। (२) यह उपासक **अपां जग्मिः**=सदा कर्मों के प्रति जानेवाला, अर्थात् क्रियाशील होता है और **निचुम्पुणः**=(नितरां चमनेन प्रीणति) सोम के भक्षण अन्दर ही व्यापन के द्वारा अपना प्रीणन करनेवाला होता है। सोमरक्षण द्वारा अपने में प्रीति का अनुभव करता है।

भावार्थ-गृहस्थ में प्रशस्त पत्नीवाले होते हुए हम सोमरक्षण द्वारा प्रभु प्राप्ति की कामनावाले बनें। सदा क्रियाशील होते हुए सोमरक्षण द्वारा जीवन में प्रीति का अनुभव करें।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अवभृथ की ओर

इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधासो अध्वरे। अच्छावभृथमोजसा॥ २३॥

(१) इस जीवन में 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्'=दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें व मुखरूप सात ऋषि (सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे) प्रभु द्वारा **इष्टाः**=यज्ञों के करनेवाले **होत्राः**=सात होता **असृक्षत**=उत्पन्न किये गये हैं। ये सात ऋषि ही यज्ञों को करनेवाले सात होता हैं (येन यज्ञस्तायते सप्त होता)। इसलिए सद्गृहस्थ सदा यज्ञशील बनते हैं और **अध्वरे**=यज्ञों में **इन्द्रं वृधासः**=उस प्रभु का वर्धन करनेवाले होते हैं। इन यज्ञों के द्वारा ही तो प्रभु की प्राप्ति होती है। (२) ये सद्गृहस्थ **ओजसा**=ओजषिता के साथ **अवभृथम्**=अच्छा यज्ञान्त-स्नान की ओर बढ़ते हैं। अर्थात् इनका जीवन यज्ञमय ही बना रहता है और ये सफलता के साथ इन यज्ञों के द्वारा उस प्रभु का पूजन कर पाते हैं।

भावार्थ-हम सब इन्द्रियों से यज्ञों को करते हुए प्रभु का अपने में वर्धन करें। हमारा जीवन यज्ञमय बना रहे।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

हितं प्रयः अभि

इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या। वोळ्हामभि प्रयो हितम्॥ २४॥

(१) **इह**-इस जीवन में **त्या**-वे **सधमाद्या**-(सह माधन्तौ) मिलकर आनन्दित होते हुए **हिरण्यकेश्या**-हितरमणीय ज्ञान-रश्मियोंवाले **हरी**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्व **हितम्**-हितकर **प्रयः अभि**-(प्रयस्=sacrifice) यज्ञों की ओर **वोढाम्**-हमें ले चलें। (२) हमारे जीवन में ज्ञानेन्द्रियों के ज्ञान के अनुसार कर्मेन्द्रियाँ कर्म करनेवाली हैं। ये मिलकर चलती हुई हमें आनन्दित करनेवाली हों। सदा हित रमणीय ज्ञानवाली ये हों और यज्ञों में प्रवृत्त रहें।

भावार्थ-हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ हितरमणीय ज्ञानरश्मियोंवाली हों और कर्मेन्द्रियाँ सदा हितकर यज्ञों में प्रवृत्त रहें। इस प्रकार मिलकर ये हमें आनन्दित करनेवाली हों।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सोमरक्षण-प्रभु प्राप्ति-महत्त्व का अनुभव

तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो। स्तोतृभ्य इन्द्रमा वह॥ २५॥

(१) हे **विभावसो**=विशिष्ट दीप्तियों के निवास स्थानभूत प्रभो! **तुभ्यम्**-आपकी प्राप्ति के लिये ही **इमे सोमाः सुताः**-ये सोमकण सम्पादित हुए हैं। शरीर में सोमकणों के रक्षण से ही उस महान् सोम (शान्त प्रभु) की प्राप्ति होती है। हे प्रभो! **बर्हिः स्तीर्णम्**-यह हृदयासन आप के बैठने के लिये बिछाया गया है। (२) हे प्रभो! **स्तोतृभ्यः**-हम स्तोताओं के लिये **इन्द्रम्**=(इन्द्र-greatness) महत्त्व को, बड़प्पन को **आवह**-प्राप्त कराइये। आपका स्तवन करते हुए हम बड़े बनें और तुच्छ भोगों से ऊपर उठें।

भावार्थ-सोमरक्षण द्वारा हम अपने हृदयासन पर प्रभु को बिठायें और अपने महत्त्व को समझते हुए तुच्छ भोगों से ऊपर उठें।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

दक्षं-रत्ना

आ ते दक्षं वि रोचना दधद्रत्ना वि दाशुषे। स्तोतृभ्य इन्द्रमर्चत॥ २६॥

(१) वह प्रभु ही **ते**=तेरे लिये **दक्षम्**-बल को **आ दधत्**=अंग-प्रत्यंग में धारण करता है। प्रभु ही **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिये तथा **स्तोतृभ्यः**=सब स्तवन करनेवालों के लिये **विरोचना**-विशिष्ट दीप्तिवाले **रत्ना**=रमणीय धनों को **विदधत्**-विशेषरूप से स्थापित करता है। (२) इसलिए हे स्तोताओ! तुम **इन्द्रं अर्चत**-उस परमैश्वर्यशाली प्रभु का ही अर्चन करो। प्रभु की अर्चना ही तुम्हें बल व रत्नों को प्राप्त करायेगी।

भावार्थ-प्रभु की अर्चना करते हुए हम बल व रमणीय रत्नों (धनों) को प्राप्त करें। सदा दानशील बनें।

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

इन्द्रिय-उक्था

आ ते दधामीन्द्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो। स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय॥ २७॥

(१) हे **शतक्रतो**-अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले प्रभो! मैं **ते**=आपकी प्राप्ति के लिये **इन्द्रियं**

आदधामि=अपने में वीर्य व बल की स्थापना करता हूँ शक्ति का रक्षण न करनेवाले को आप प्राप्त नहीं होते। हे प्रभो! मैं **विश्वा उक्था**=सब स्तोत्रों को धारण करता हूँ। आपका स्तवन करता हुआ आपके अनुरूप बनने का प्रयत्न करता हूँ। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **स्तोतृभ्यः**=स्तोताओं के लिये **मृडय**=सुख दीजिये।

भावार्थ–प्रभु प्राप्ति के लिये प्रभु स्तवन व शक्ति का धारण आवश्यक है। यही सुख प्राप्ति का भी मार्ग है।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

इष् व ऊर्ज्

भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो। यदिन्द्र मृळयासि नः॥ २८॥

(१) हे **शतक्रतो**=अनन्त शक्ति व प्रज्ञानवाले प्रभो! आप **नः**=हमारे लिये **भद्रं भद्रम्**=कल्याणकारक व सुखजनक **इषम्**=प्रेरणा को व **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को **आभर**=प्राप्त कराइये। हमें अपनी कल्याणी प्रेरणा को प्राप्त कराइये तथा उस प्रेरणा को जीवन में अनूदित करने की शक्ति भी दीजिये। (२) हे **इन्द्र**–सर्वशक्तिमन् प्रभो! **यत्**=क्योंकि आप इस इष और ऊर्ज के द्वारा **नः**=हमें **मृडयासि**=सुखी करते हैं। प्रभु की उत्तम प्रेरणा व प्रेरणा को कार्यान्वित करने के लिये दी गई शक्ति हमें सुखी करती है।

भावार्थ–प्रभु से हम कल्याणी प्रेरणा व शक्ति को प्राप्त करें।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

विश्वानि सुवितानि

स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो। यदिन्द्र मृळयासि नः॥ २९॥

(१) हे **शतक्रतो**=अनन्त शक्ति व प्रज्ञानवाले प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमारे लिये **विश्वानि**=सब **सुवितानि**=सुष्ठु प्राप्तव्य अभ्युदयों को **आभर**=प्राप्त कराइये। सब दुरितों को दूर करके हमें सदाचरण जनित अभ्युदय को ही दीजिये। (२) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **यत्**=क्योंकि आप ही **नः**=हमें **मृडयासि**=सुखी करते हैं। आप ही सब सुख साधक अभ्युदयों के देनेवाले हैं।

भावार्थ–प्रभु की उपासना हमारे लिये सब सुवितों को, सुष्ठु प्राप्तव्य अभ्युदयों को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—सुकक्षः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वृत्रहन्तम

त्वामिद् वृत्रहन्तम सुतावन्तो हवामहे। यदिन्द्र मृळयासि नः॥ ३०॥

(१) हे **वृत्रहन्तम**=वासनाओं को अधिक से अधिक विनष्ट करनेवाले प्रभो! **सुतावन्तः**=सोम का सम्यक् सवन करनेवाले, सोम को शरीर में सुरक्षित करनेवाले, हम **त्वां इत्**=आपको ही **हवामहे**=पुकारते हैं। आपकी आराधना ही वासना विनाश के द्वारा हमें सोम के रक्षण के योग्य बनायेगी। (२) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **यत्**=क्योंकि **नः**=हमें **मृडयासि**=आप ही सुखी करते हैं। आपकी आराधना करते हुए हम पवित्र व शान्त जीवनवाले बनते हैं।

भावार्थ–प्रभु की आराधना हमारे वासनारूप शत्रुओं का विनाश करती है और हमें सोमरक्षण द्वारा सुखी करती है।

ऋषिः—सुकक्षःॅ देवता—इन्द्रःॅ छन्दः—निचृद् गायत्रीॅ स्वरः—षड्जःॅ

मदानां पति

उप॑ नो॒ हरि॑भिः सु॒तं या॒हि म॑दानां पते। उप॑ नो॒ हरि॑भिः सु॒तम्॥ ३१॥

(१) हे **मदानां पते**-आनन्द के जनक सोमकणों के रक्षक प्रभो! आप **नः**-हमें **हरिभिः**-प्रशस्त इन्द्रियाश्वों के हेतु से **सुतम्**=शरीर में उत्पन्न सोम को **उपयाहि**-(अन्तर्भावितण्यर्थ) समीपता से प्राप्त कराइये। इस सोम के रक्षण से ही सब इन्द्रियाँ सशक्त बनेंगी। (२) हे प्रभो! आप अवश्य ही **नः**-हमें **हरिभिः**-इन्द्रियाश्वों के हेतु से **सुतम्**-इस उत्पन्न सोम को **उप**-समीपता से प्राप्त कराइये।

भावार्थ-प्रभु की आराधना से सोम का रक्षण होकर हमारी सब इन्द्रियाँ प्रशस्त बनती हैं।

ऋषिः—सुकक्षःॅ देवता—इन्द्रःॅ छन्दः—गायत्रीॅ स्वरः—षड्जःॅ

शतक्रतु

द्विता यो वृ॑त्र॒हन्त॑मो वि॒द इन्द्रः॑ श॒तक्र॑तुः। उप॑ नो॒ हरि॑भिः सु॒तम्॥ ३२॥

(१) **द्विता**-(द्वौ तनोति) शक्ति व ज्ञान के विस्तार के द्वारा **यः**-जो **वृत्रहन्तमः**=वासनाओं का अधिक से अधिक विनाश करनेवाला है, वह **इन्द्रः**-परमैश्वर्यवाला प्रभु **शतक्रतुः**-अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाला **विदे**-जाना जाता है। (२) यह प्रभु **नः**=हमें **हरिभिः**-इन्द्रियों के होने से **सुतम्**=शरीर में उत्पन्न सोम को **उप**-समीपता से प्राप्त कराये। इस सुरक्षित सोम ने ही तो इन्द्रियों को शक्ति-सम्पन्न बनाना है।

भावार्थ-प्रभु शक्ति व ज्ञान के विस्तार के द्वारा हमारी वासनाओं का विनाश करते हैं। वे हमें भी सोमरक्षण द्वारा अपने समान 'शतक्रतु' बनाते हैं।

ऋषिः—सुकक्षःॅ देवता—इन्द्रःॅ छन्दः—विराड् गायत्रीॅ स्वरः—षड्जःॅ

सोमानां पाता

त्वं हि वृ॑त्रहन्नेषां पा॒ता सोमा॑ना॒मसि॑। उप॑ नो॒ हरि॑भिः सु॒तम्॥ ३३॥

(१) हे **वृत्रहन्**=वासनाओं को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **त्वं हि**-आप ही **एषाम्**=इन **सोमानाम्**=सोमकणों के **पाता असि**-रक्षक हैं। वस्तुतः इनके रक्षण का सामर्थ्य हमारे में नहीं है। प्रभु ही वासनाओं के विनाश के द्वारा इन सोमकणों का रक्षण करते हैं। (२) हे प्रभो! **नः**-हमें **हरिभिः**-इन इन्द्रियाश्वों के हेतु से, इन्हें सबल बनाने के दृष्टिकोण से **सुतम्**-शरीर में उत्पन्न सोम को **उप**=समीपता से प्राप्त कराइये।

भावार्थ-शरीर में सोमरक्षण का सामर्थ्य हमें प्रभु ही प्राप्त कराते हैं। प्रभु ही वस्तुतः इन सोमकणों का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—सुकक्षःॅ देवता—इन्द्र ऋभवश्चॅ छन्दः—गायत्रीॅ स्वरः—षड्जःॅ

'ऋभुक्षणं ऋभुं' रयिं

इन्द्र॑ इ॒षे द॑दातु न ऋभु॒क्षण॑मृ॒भुं र॒यिम्। वा॒जी द॑दातु वा॒जिन॑म्॥ ३४॥

(१) **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **नः**=हमें **इषे**-(इष्णाति To strike, To unite) रोग आदि शत्रुओं के विनाश के लिये **ऋभुक्षणम्**=महान् तथा **ऋभु**=(उरु भाति) ज्ञानदीप्ति से खूब चमकनेवाले **रयिम्**=ऐश्वर्य को **ददातु** दें। हमें धन तो प्राप्त हो, पर हम उसका विनियोग भोग-

विलास की वृद्धि में न करके यज्ञादि कर्मों व ज्ञान की वृद्धि में करें। (२) **वाजी**=वे शक्तिशाली प्रभु हमें **वाजिनम्**=शक्ति **ददातु**=दें। धन का ठीक विनियोग करते हुए हम अपने यश, ज्ञान व बल का वर्धन करें।

भावार्थ-प्रभु हमें धन प्राप्त करायें। उस धन का यज्ञों में विनियोग करते हुए हम ज्ञान व बल का वर्धन करते हुए यशस्वी हों।

भोगविलास में न फँसनेवाला व्यक्ति 'बिन्दु' बनता है। शरीर में उत्पन्न सोम को (बिन्द् To form a part) शरीर का ही भाग बनाता है। सोम का शरीर में व्याप्त करनेवाला यह 'बिन्दु' पवित्र बलवाला 'पूत-दक्ष' होता है। यह 'बिन्दु पूतदक्ष' ही अगले सूक्त का ऋषि है-

दशमोऽनुवाकः

९४. [चतुर्नवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वा॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

गौः (वेदवाणी)

गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम्। युक्ता वह्नी रथानाम्॥ १॥

(१) यहाँ वेदवाणी 'गौ' शब्द से कही गयी है। यह सब पदार्थों का ज्ञान देती है (अर्थान् गमयति) यह **गौः**=वेदवाणी **मरुताम्**=(मितराविणां, महद् द्रवतां वा) कम बोलनेवाले, खूब गतिशील व्यक्तियों के **श्रवस्युः**=ज्ञान की कामनावाली होती है। इन मरुतों को यह खूब ज्ञानी बनाती है। यह **मघोनाम्**=यज्ञशील पुरुषों की **माता**=निर्मात्री है (मघ=मख)। यह **धयति**=शरीर में सोम का पान करती है। स्वाध्याय से वासनाओं का निराकरण होकर सोम का रक्षण होता ही है। **युक्ता**=जब इस वेदवाणी का हम अपने साथ योग करते हैं, तो युक्त हुई-हुई यह **रथानाम्**=इन शरीर रथों का **वह्निः**=लक्ष्य-स्थान की ओर वहन करनेवाली है। यह शरीर-रथों को उन्नतिपथ पर ले चलती हुई हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाती है।

भावार्थ-वेदमाता हमें मितरावी=खूब क्रियाशील व ज्ञानी बनाती है। यह हमें यज्ञशील बनाती हुई वासनाओं से बचाकर सोमरक्षण के योग्य बनाती है। यह हमें लक्ष्य-स्थान की ओर ले चलती है।

ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वा॥ **देवता**—मरुतः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वेदमाता की गोद में

यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते। सूर्यामासा दृशे कम्॥ २॥

(१) गत मन्त्र में वेदवाणी को माता कहा गया है। यह वह माता है **यस्याः**=जिसके **उपस्थे**=गोद में स्थित हुए-हुए **विश्वे देवाः**-सब देववृत्ति के पुरुष **व्रता धारयन्ते**=व्रतों का धारण करते हैं। वस्तुतः इस वेदवाणी का स्वाध्याय ही उन्हें देववृत्ति का व व्रतमय जीवनवाला बनाता है। (२) इस माता की गोद में स्थित होनेवाले ये देव **सूर्यामासा दृशे**=सूर्य व चन्द्रमा को देखने के लिये होते हैं। अर्थात् सूर्योदय के साथ ही ये अपने कार्यों में प्रवृत्त हो जाते हैं और सूर्यास्त ही इनकी कर्म-निवृत्ति का समय होता है। सूर्य व चन्द्र ही इनकी घड़ी होते हैं। इस प्रकार स्वाभाविक जीवन को बिताते हुए ये **कम्**=सुखमय जीवनवाले होते हैं।

भावार्थ-वेदमाता की गोद में स्थित हुए-हुए हम व्रतमय जीवन बितायें, सूर्य-चन्द्रमा को ही अपनी घड़ी बनाकर नियमित जीवन बिताते हुए हम सुखी जीवनवाले हों।

ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वाङ्क **देवता**—मरुतःङ्क **छन्दः**— गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

तत् सु नो अर्यः

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः। मरुतः सोमपीतये॥ ३॥

(१) **विश्वे**=सब **कावः**=कार्यों को कुशलता से करनेवाले स्तोता लोग **आ गृणन्ति**=सदा यही सर्वत्र कहते हैं कि **तत्**=वह ब्रह्म ही **नः**=हमारा **सु अर्यः**=उत्तम स्वामी है। प्रभु को ही अधिष्ठाता मानकर उसके निर्देशों के अनुसार ये अपना जीवन बिताते हैं। (२) ये **मरुतः**=मितरावी व खूब क्रियाशील पुरुष **सोमपीतये**=शरीर में सोम का पान करने के लिये होते हैं।

भावार्थ—प्रभु को अपना स्वामी जानकर उसकी आराधना के लिये ही हम अपने कर्त्तव्यों को सम्यक् करें। परिमित बोलनेवाले खूब क्रियाशील बनकर सोम का शरीर में ही रक्षण करनेवाले हों।

ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वाङ्क **देवता**—मरुतःङ्क **छन्दः**—निचृद् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

मरुतः स्वराजः अश्विना

अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः। उत स्वराजो अश्विना॥ ४॥

(१) **अयं सोमः**=यह सोम **सुतः अस्ति**=शरीर में सम्पादित हुआ है। **अस्य**=इसका **मरुतः**=परिमित बोलनेवाले खूब क्रियाशील लोग ही **पिबन्ति**=पान करते हैं। (२) **उत**=और **स्वराजः**=आत्मशासन करनेवाले **अश्विना**=प्राणापान की साधना में प्रवृत्त पुरुष इस सोम का शरीर में रक्षण कर पाते हैं। सोमरक्षण से ही सब उन्नतियों का होना सम्भव होता है।

भावार्थ—शरीर में सोम का रक्षण 'मरुत्, स्वराट् व अश्विना' करते हैं। मितरावी खूब क्रियाशील पुरुष, आत्मशासन करनेवाले, प्राणसाधक पुरुष सोम का रक्षण कर पाते हैं।

ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वाङ्क **देवता**—मरुतःङ्क **छन्दः**—गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

मित्र अर्यमा वरुण

पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः। त्रिषधस्थस्य जावतः॥ ५॥

(५) **मित्रः**—सब पापों से अपने को बचानेवाला स्नेहशील (प्रमीतेः चायते, मिद् स्नेहने), **अर्यमा**=(अरीन् यच्छति) काम-क्रोध-लोभ को वश में करनेवाला और **वरुणः**=द्वेष का निवारण करनेवाले पुरुष इस **पूतस्य**=वासना-विनाश के द्वारा पवित्र सोम का **तना**=शक्तियों के विस्तार के हेतु से **पिबन्ति**=पान करते हैं। सोमरक्षण के लिये 'मित्र, अर्यमा व वरुण' बनना चाहिये। सुरक्षित सोम शक्तियों के विस्तार का हेतु बनता है। (२) ये मित्र, वरुण व अर्यमा उस सोम का पान करते हैं जो **त्रिषधस्थस्य**=शरीर, मन व बुद्धि रूप तीनों स्थानों में समान रूप से स्थित होता है। शरीर को यह दृढ़ बनाता है, मन को प्रसन्न व मस्तिष्क को दीप्त बनाता है। इस प्रकार इस सोम की स्थिति इन तीनों स्थानों में है। यह सोम **जावतः**=विकासवाला है, सब शक्तियों के विकास का कारण बनता है।

भावार्थ—हम 'मित्र, वरुण व अर्यमा' बनकर सोम का रक्षण करते हैं। यह सोम हमारे शरीर, मन व मस्तिष्क तीनों को समानरूप से उन्नत करता है। यह हमारी शक्तियों के विकास का हेतु होता है।

ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वा॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रातः होता इव

उतो न्व॑स्य जोष॒माँ इन्द्रः॑ सु॒तस्य॒ गोम॑तः प्रा॒तर्हो॑तेव मत्सति॥ ६॥

(१) **उत**=और **उ**=निश्चय से **नु**=अब **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **अस्य**=इस **गोमतः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाले **सुतस्य**=सोम के **जोषम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन के अनुपात में ही **आमत्सति**=इस प्रकार आनन्दित होता है, **इव**=जैसे **प्रातः होता**=प्रातःकाल होता आनन्द का अनुभव करता है।

भावार्थ—सोम का रक्षण हमारे जीवन को इस प्रकार आनन्दमय बनाता है जैसे प्रातःकाल अग्निहोत्र करनेवाला आनन्दित होता है।

ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वा॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

सूरयः-पूतदक्षसः

कद॑त्विषन्त सू॒रय॑स्ति॒र आप॑इव॒ स्रिधः॑। अर्ष॑न्ति पू॒तद॑क्षसः॥ ७॥

(१) हे प्रभो! **कत्**=(कदा) वह समय कब आयेगा जब कि मेरे जीवन में **अत्विषन्त**=ये मरुत् दीप्त होते हैं, चमक उठते हैं। ये मरुत् **सूरयः**=मुझे ज्ञानी बनानेवाले हैं। प्राणसाधना से ही सोमरक्षण होकर ज्ञानदीप्ति प्राप्त होती है। ये मरुत् **स्रिधः**=शत्रुओं का संहार करनेवाले हैं, उसी प्रकार **इव**=जैसे **तिरः**=रुधिर में तिरोहित हुए-हुए **आपः**=रेतःकण रोगों का विनाश करते हैं। (२) **पूतदक्षसः**=शरीरस्थ बल को पवित्र करनेवाले ये मरुत् **अर्षन्ति**=शरीर में गति करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से (क) ज्ञानदीप्ति प्राप्त होती है, (ख) रोगकृमि व वासनारूप शत्रुओं का विनाश होता है, (ग) बल पवित्र होता है।

ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वा॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—विराड् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

दस्मवर्चस् (मरुत्)

कद्वो॑ अ॒द्य म॒हानां॑ दे॒वाना॒मवो॑ वृणे। त्मना॑ च द॒स्मव॑र्चसाम्॥ ८॥

(१) हे मरुतो! मैं **अद्य**=आज **वः**=आप **महानाम्**=महनीय-पूजनीय **देवानाम्**=देवों के **कत्**=आनन्द का विस्तार करनेवाले (कं तनोति) **अवः**=रक्षण का **वृणे**=वरण करता हूँ। (२) **च**=और उन मरुतों के रक्षण का मैं वरण करता हूँ जो **त्मना**=स्वयं ही **दस्मवर्चसाम्**=शत्रु-संहारक अथवा दर्शनीय तेजवाले हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से हमें आनन्दप्रद रक्षण प्राप्त होता है। ये प्राण शत्रु-संहारक तेज से सम्पन्न हैं।

ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वा॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्राणसाधना-सोमरक्षण-दीप्ति

आ ये विश्वा॒ पार्थि॑वानि प॒प्रथ॑न्रोच॒ना दि॒वः। म॒रुतः॒ सोम॑पीतये॥ ९॥

(१) **ये**=जो मरुत् **विश्वा**=सब **पार्थिवानि**=इस पार्थिव शरीर के अंगों की शक्ति को तथा **दिवः रोचना**=मस्तिष्करूप द्युलोक के दीप्त विज्ञानों को **आ पप्रथन्**=विस्तृत करते हैं। वे **मरुतः**=मरुत् ४९ भागों में बटे हुए प्राण **सोमपीतये**=सोम के पान के लिये हों। प्राणसाधना द्वारा हम सोम का रक्षण करनेवाले बनें। (२) प्राणसाधना द्वारा शरीर में सोम की ऊर्ध्वगति होती है। सोम का शरीर में ही व्यापन होता है। शरीर में व्याप्त हुआ यह सोम अंगों को तेज से दीप्त करता

है और मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त बनाता है।

भावार्थ–हमारे शरीर में प्राणसाधना द्वारा सोम का व्यापन हो। यह सोम अंगों को तेजस्वी व मस्तिष्क को दीप्त बनाये।

ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वाङ्क **देवता**—मरुतःङ्क **छन्दः**—निचृद् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

पूतदक्षसः-दिवः

त्यान्नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे। अस्य सोमस्य पीतये॥ १०॥

(१) मैं **त्यान्**=उन **मरुतः**=प्राणों को **नु**=अब **हुवे**=पुकारता हूँ जो **वः**=तुम्हारे **पूतदक्षसाः**=बल को पवित्र करनेवाले हैं और **दिवः**=ज्ञान की दीप्ति को देनेवाले हैं। (२) इन मरुतों को मैं **अस्य**=इस **सोमस्य**=सोम के **पीतये**=पान व रक्षण के लिये पुकारता हूँ। सोमरक्षण द्वारा ही ये मरुत् बल व ज्ञान का वर्धन करनेवाले होते हैं।

भावार्थ–प्राणसाधना से सोमरक्षण द्वारा ज्ञान तथा बल का वर्धन होता है।

ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वाङ्क **देवता**—मरुतःङ्क **छन्दः**—निचृद् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

रोदसी-स्तम्भन

त्यान्नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे। अस्य सोमस्य पीतये॥ ११॥

(१) **त्यान् मरुतः**=उन मरुतों को **नु हुवे**=निश्चय से पुकारता हूँ, **ये**=जो **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **वितस्तभुः**=विशेषरूप से थामते हैं। (२) इन मरुतों को मैं **अस्य**=इस **सोमस्य**=सोम के **पीतये**=रक्षण के लिये पुकारता हूँ।

भावार्थ–प्राणसाधना सोमरक्षण द्वारा द्यावापृथिवी का, मस्तिष्क व शरीर का स्तम्भन करती है। इस प्रकार यह साधना ज्ञान व बल का धारण करती है।

ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वाङ्क **देवता**—मरुतःङ्क **छन्दः**—निचृद् गायत्रीङ्क **स्वरः**—षड्जःङ्क

गिरिष्ठां-वृषणम्

त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे। अस्य सोमस्य पीतये॥ १२॥

(१) **त्यम्**=उस **मारुतं गणम्**=प्राणों के गण को **नु**=निश्चय से **हुवे**=पुकारता हूँ, प्राणसाधना में प्रवृत्त होता हूँ। इन प्राणों के गण का मैं आराधन करता हूँ जो **गिरिष्ठाम्**=ज्ञान की वाणियों में स्थित होनेवाला है तथा **वृषणम्**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला है। (२) इस प्राणगण को मैं **अस्य सोमस्य**=इस सोम के **पीतये**=पान व रक्षण के लिये पुकारता हूँ।

भावार्थ–प्राणसाधना सोमरक्षण द्वारा हमें ज्ञान की वाणियों में स्थित करती है और शक्तिशाली बनाती है।

इस प्रकार सोमरक्षण द्वारा हम इस संसाररूपी 'अश्मन्वती नदी' को पार करने में समर्थ होते हैं। सो 'तिरश्चीः' बनते हैं (crossing ouer, traversing)। आंगिरस=अंग प्रत्यंग में रसवाले तो होते ही हैं। यह तिरश्ची आंगिरस ही अगले सूक्त का ऋषि है–

९५. [पञ्चनवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—तिरश्चीःङ्क **देवता**—इन्द्रःङ्क **छन्दः**—विराडनुष्टुपङ्क **स्वरः**—गान्धारःङ्क

रथीः इव

आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः। अभि त्वा समनूषतेन्द्र वत्सं मातरः॥ १॥

(१) हे प्रभो! **गिरः**=ये ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुतिवाणियाँ **त्वा आ अस्थुः**=आपको प्राप्त होती हैं। ये हमें आपकी ओर लानेवाली होती हैं। हे **गिर्वणः**=स्तुतिवाणियों से सम्भजनीय प्रभो! **सुतेषु**=शरीर में सोम का सम्पादन होने पर आप हमारे लिये **रथीः इव**=रथवान् की तरह होते हैं, एक रथवान् की तरह आप ही हमें लक्ष्य स्थान पर पहुँचाते हैं। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! ये उपासक **त्वा**=आपको **अभि**=दिन के दोनों ओर प्रातः व सायं **समनूषत**=स्तुत करते हैं, **न**=जैसे **मातरः**-धेनुएँ **वत्सम्**=बछड़े की प्रति प्रेम से हम्भारव को करती हैं। ये उपासक भी प्रेम से स्तुति-वचनों का उच्चारण करते हैं।

भावार्थ-हम प्रभु का स्तवन करें। प्रातः-सायं प्रेम से किया गया यह प्रभु-स्तवन हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचानेवाला होगा।

ऋषिः—तिरश्चीः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

सोमरक्षण व प्रभु प्राप्ति

आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतास इन्द्र गिर्वणः।
पिबा त्व१स्यान्धस इन्द्र विश्वासु ते हितम्॥ २॥

(१) हे **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों से सम्भजनीय **इन्दु**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सुतासः**=शरीर में उत्पन्न हुए-हुए **शुक्राः**=ये शक्तिकण **त्वा**=आपको **आ अचुच्यवुः**=हमारे लिये प्राप्त करानेवाले हों। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुओं के विद्रावक प्रभो! **अस्य अन्धसः**=इस सोम का **पिबा तु**=आप ही पान करेंगे। आपकी उपासना ही वासना-विनाश द्वारा इसके रक्षण का साधन बनती है। **विश्वासु**=सब प्रजाओं में **ते हितम्**=आपके द्वारा ही इसकी स्थापना हुई है।

भावार्थ-प्रभु ही सब शरीरों में सोम की स्थापना करते हैं। प्रभु की उपासना द्वारा ही इसका रक्षण होता है और इसके रक्षण से ही प्रभु की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—तिरश्चीः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

'पति व राजा' प्रभु

पिबा सोमं मदाय कमिन्द्र श्येनाभृतं सुतम्। त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सोमं पिब**=सोम का हमारे शरीर में ही आप रक्षण करिये। उस सोम का जो **कम्**=सुख को देनेवाला है। **श्येनाभृतम्**=(श्यैङ् गतौ) गतिशील पुरुष के द्वारा धारण किया जाता है। **सुतम्**=शरीर में उत्पादित इस सोम को आप ही रक्षित करिये। रक्षित हुआ-हुआ यह सोम **मदाय**=जीवन में उल्लास के लिये होता है। (२) हे प्रभो! **त्वं हि**=आप ही **शश्वतीनां विशाम्**=इन सनातन काल से आ रही अथवा गतिशील प्रजाओं के **पतिः**=रक्षक व **राजा**=शासक **असि**=हैं। आप ही सब प्रजाओं के जीवनों को कर्मानुसार नियन्त्रित करते हैं।

भावार्थ-हे प्रभो आप ही रक्षक व शासक हैं। आप हमारे जीवनों में सोम का रक्षण करते हुए उल्लास को प्राप्त करानेवाले हों।

ऋषिः—तिरश्चीः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

'शक्ति व ज्ञान' से युक्त धन

श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति। सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यः**=जो **त्वा सपर्यति**=आपका पूजन करता है, उस

तिरश्च्याः वासनाओं को पार कर जानेवाले उपासक की **हवं श्रुधि**=पुकार को सुनिये। (२) इस उपासक के लिये **रायः**-धन का **पूर्धि**-पूरण करिये, जो धन **सुवीर्यस्य**-उत्तम वीर्य व पराक्रम से युक्त है तथा **गोमतः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाला है। हे प्रभो! **महान् असि**=आप ही पूजनीय हैं।

भावार्थ-हम प्रभु का पूजन करें, वासनाओं को जीतने का प्रयत्न करें। प्रभु हमें 'शक्ति व ज्ञान' से युक्त धन को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—तिरश्चीः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

'सत्य सनातन' ज्ञान

इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत्। चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम्॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यः**-जो **ते**-तेरे लिये **नवीयसीम्**=नवतर-अतिशयेन स्तुत्य **मन्द्राम्**-हर्षजनक **गिरम्**-स्तुतिवाणी को **अजीजनत्**-प्रादुर्भूत करता है। उसके लिये आप **धियम्**=बुद्धि को, बुद्धिजन्य ज्ञान को करिये। जो वेदज्ञान **चिकित्विन्मनसम्**-समझदार पुरुषों से मनन के योग्य है। **प्रत्नाम्**=सनातनकाल से चला आ रहा है। **ऋतस्य पिप्युषीम्**-ऋत का, सत्य का आप्यायन-वर्धन करनेवाला है।

भावार्थ-हम प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु हमारे लिये सत्य सनातन ज्ञान को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—तिरश्चीः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

प्रभु-भजन व प्रभु पौंस्य प्राप्ति

तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः। पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे॥ ६॥

(१) **तम्**=उस **इन्द्रम्**=परमेश्वर्यशाली प्रभु का **उ**=ही हम **स्तवाम**=स्तवन करते हैं। **यम्**=जिस प्रभु को **गिरः**-सब ज्ञान की वाणियाँ तथा **उक्थानि**=स्तुति-वचन **वावृधुः**=बढ़ाते हैं। जितना-जितना हम इन ज्ञान की वाणियों व स्तुतिवचनों को उच्चरित करते हैं, उतना-उतना ही प्रभु को अपने में बढ़ा पाते हैं। प्रभु की दिव्यता का धारण ही प्रभु का वर्धन है। (२) **अस्य**=इस प्रभु का **पौंस्या**=बल **पुरूणि**=बहुत अधिक व पालक व पूरक हैं। इन बलों को **सिषासन्तः**=प्राप्त करने की कामनावाले होते हुए हम **वनामहे**=प्रभु का सम्भजन करते हैं। प्रभु सम्भजन हमें प्रभु के इन बलों में भागी बनाता है।

भावार्थ-ज्ञान की वाणियों व स्तुति-वचनों से हम प्रभु का सम्भजन करते हैं। यह सम्भजन हमें प्रभु के बलों में भागी बनाता है।

ऋषिः—तिरश्चीः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

'शुद्ध आशीर्वान्' स्तोता

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना। शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान्ममत्तु॥ ७॥

(१) **एत उ**=आओ ही, हे मित्रो! **नु**=अब **शुद्धं इन्द्रम्**-उस अपापविद्ध-पवित्र परमैश्वर्यशाली प्रभु को **शुद्धेन साम्ना**=निर्दोष, पवित्र हृदय से उच्चरित साम से (स्तोत्र से) **स्तवाम**=स्तुत करें। (२) **शुद्धैः उक्थैः**=निर्दोष-पवित्र हृदय से उच्चरित स्तोत्रों से **वावृध्वांसम्**-वृद्धि को प्राप्त होनेवाले उस प्रभु को **शुद्धः**=शुद्ध जीवनवाला **आशीर्वान्**-प्रभु प्राप्ति की कामनावाला यह उपासक **ममत्तु**=आनन्दित करे।

भावार्थ—हम मिलकर हृदय से प्रभु का उपासन करें। स्तवन से हमारे में प्रभु के प्रकाश का वर्धन होता है। हम शुद्ध जीवनवाले व प्रभु प्राप्ति की कामनावाले बनकर प्रभु को आराधित कर पाते हैं।

ऋषिः—तिरश्चीः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—निचृदनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—गान्धारः ॥

शुद्धता

इन्द्र॑ शु॒द्धो न॒ आ ग॑हि शु॒द्धः शु॒द्धाभि॑रू॒तिभि॑: । शु॒द्धो र॒यिं नि धा॑रय शु॒द्धो म॑मद्धि सो॒म्यः ॥ ८ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **शुद्धः**=शुद्ध स्वरूप आप **नः आगहि**=हमें प्राप्त होइये। **शुद्धः**-पवित्र आप **शुद्धाभिः ऊतिभिः**=पवित्र करनेवाले रक्षणों के साथ हमें प्राप्त होइये। (२) **शुद्धः**=शुद्धस्वरूप आप **रयिम्**=धन को **निधारय**=हमारे में धारण करिये। **शुद्धः**=पवित्र **सोम्यः**=सोम का रक्षण करनेवाले आप **ममद्धि**=आनन्दित होइये। हम आपका स्तवन करते हुए शुद्ध जीवनवाले बनकर, सोम का रक्षण करते हुए आपके प्रिय बनें।

भावार्थ—पवित्र प्रभु के पवित्र रक्षण हमें पवित्र धनवाला व सोमरक्षण द्वारा पवित्र जीवनवाला बनायें।

ऋषिः—तिरश्चीः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—अनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—गान्धारः ॥

रयि-रत्न-वाज

इन्द्र॑ शु॒द्धो हि नो॑ र॒यिं शु॒द्धो रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ । शु॒द्धो वृ॒त्राणि॑ जिघ्नसे शु॒द्धो वाजं॑ सिषाससि ॥ ९ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **शुद्धः**=शुद्धस्वरूप आप **हि**=निश्चय से **नः**=हमारे लिये **रयिम्**=धन को दीजिये। **शुद्धः**=शुद्धस्वरूप आप **दाशुषे**=आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले के लिये **रत्नानि**=रमणीय धनों को दीजिये। (२) **शुद्धः**=अपापविद्ध, पूर्ण पवित्र, आप उपासकों के भी **वृत्राणि**=ज्ञान के आवरणभूत मलों को **जिघ्नसे**=नष्ट कर देते हैं। **शुद्धः**=पूर्ण पवित्र आप इन वृत्रों के विनाश के द्वारा **वाजम्**=बल को **सिषाससि**=हमारे लिये देने की कामना करते हैं।

भावार्थ—प्रभु उपासक को धन-रमणीय रत्न व बल को प्राप्त कराते हैं। इसके मलों को विनष्ट करते हैं।

शुद्ध बनकर यह ज्ञान की ज्योति का विस्तार करनेवाला 'द्यु-तान' बनता है। अथवा 'द्योतते, आ अनिति च'=ज्ञान-ज्योति से दीप्त होता है और अंग-प्रत्यंग में प्राणशक्तिवाला होता है। प्राणों की साधना से ऐसा बनने के कारण यह 'मारुतः' कहलाता है। यह 'द्युतान मारुत' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

९६. [षण्णवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

'इन्द्र' का जीवन

अ॒स्मा उ॒षास॒ आति॑रन्त॒ याम॒मिन्द्रा॑य॒ नक्त॒मूर्म्या॑: सु॒वाच॑: ।
अ॒स्मा आपो॑ मा॒तर॑: स॒प्त त॑स्थु॒र्नृभ्य॒स्तरा॑य॒ सिन्ध॑वः सुपा॒राः ॥ १ ॥

(१) **अस्मै इन्द्राय**=इस 'जितेन्द्रिय पुरुष' के लिये **उषासः**=उषायें **यामं आतिरन्त**=नियमन की भावना को बढ़ाती हैं। यह उषा में प्रबुद्ध होकर प्रभु-स्मरण में मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करता है। तथा **ऊर्म्याः**=(ऊर्म्या-Light) रातें **नक्तम्**=अपर रात्रिकाल में **सुवाचः**=शोभन वाणियों-

वाली होती हैं। उस समय प्रबुद्ध होकर ये जितेन्द्रिय पुरुष वेदाध्ययन व शास्त्र श्रवण चिन्तनादि कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। (२) **अस्मा**=इसके लिये **आपः**=शरीरस्थ रेतःकण **मातरः**=जीवन का निर्माण करनेवाले व **सस्र**=सर्पणशील होकर अंग-प्रत्यंग में रुधिर के साथ गतिवाले होकर **तस्थुः**=स्थित होते हैं। और **सिन्धवः**=ज्ञान की नदियाँ **सुपाराः**=शोभनतया पार ले जानेवाली व **नृभ्यः तराय**=लोगों के लिये तैरने के लिये होती हैं, लोगों को विषयों से पार ले जाती हैं। यह लोगों में ज्ञान का प्रसार करता हुआ उन्हें विषय-वासनाओं से दूर ले जाता है।

भावार्थ—इन्द्र, एक जितेन्द्रिय पुरुष—(क) प्रातः जागकर मन को एकाग्र करने का अभ्यास करता है, (ख) अपररात्रिकाल में वेदवाणियों द्वारा स्तोत्रों का उच्चारण करता है, (ग) रेतःकणों को शरीर में सुरक्षित करता है, (घ) लोगों में ज्ञान का प्रसार करता है।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

अविद्या पर्वत के २१ शिखरों का वेधन

अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिः सप्त सानु संहिता गिरीणाम्।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार॥ २॥

(१) इस इन्द्र के द्वारा **गिरीणाम्**=अविद्या पर्वतों के **संहिता**=अतिदृढ़ **त्रिः सप्त**=इक्कीस **सानु**=शिखर **विथुरेण चित्**=निश्चय से शत्रुओं के लिये व्यथा कर **अस्त्रा**=क्रियाशीलतारूप अस्त्र के द्वारा **अतिविद्धा**=अतिशयेन विद्ध किये जाते हैं। स्थान व समय के दृष्टिकोण से अविद्या इक्कीस भागों में विभक्त है। १२ मास व ६ ऋतुएँ समय को सूचित करती हैं तथा तीन लोक (पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक) स्थान को। इन के विषय में अज्ञान ही गिरि हैं। इनके शिखरों का भेदन क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा ही होता है। (२) इन अविद्यापर्वत भेदन आदि **यानि**=जिन कर्मों को **प्रवृद्धः**=जितेन्द्रियता द्वारा प्रवृद्ध शक्तिवाला **वृषयः चकार**=यह प्रजाओं पर सुखों का वर्षण करनेवाला इन्द्र करता है, **तत्**=उस कर्म को **न देवः**=न कोई देव व **न मर्त्यः**=न ही मनुष्य **तुतुर्यात्**=हिंसित कर पाता है। इन्द्र के इन प्रजा हितकारी कर्मों में आधिदैविक व आधिभौतिक आपत्तियाँ नहीं आतीं।

भावार्थ—एक जितेन्द्रिय पुरुष क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा अविद्या का विनाश करता है। तथा प्रवृद्ध शक्तिवाला बनकर ज्ञान प्रसार द्वारा लोगों पर सुखों का वर्षण करता है। इसके इस कर्म में आधिदैविक व आधिभौतिक विघ्न नहीं आते।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराट्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

भूयिष्ठं ओजः

इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः।
शीर्षन्निन्द्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषन्त श्रुत्या उपाके॥ ३॥

(१) **इन्द्रस्य**=एक जितेन्द्रिय पुरुष का **वज्रः आयसः**=क्रियाशीलतारूप वज्र लोहे का बना होता है, अर्थात् यह क्रिया करता हुआ थकता नहीं। यह वज्र **निमिश्लः**=उसके साथ अतिशयेन सम्बद्ध होता है। यह कभी क्रियाशील न हो, ऐसा नहीं होता। इसीलिए **इन्द्रस्य बाह्वोः**=इस जितेन्द्रिय पुरुष की भुजाओं में **भूयिष्ठं ओजः**=खूब ही बल होता है। क्रियाशीलता में ही शक्ति का रहस्य है। (२) इस **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **शीर्षन्**=मस्तिष्क में **क्रतवः**=ज्ञान होते हैं, जो **निरेके**=सब मलों के विरेचन के निमित्त बनते हैं। **आसन्**=इसके मुख में **श्रुत्या**=स्तोतात्मक

श्रुति वाक्य **एषन्त**=गतिवाले होते हैं जो **उपाके**=इसे प्रभु का अन्तिकतम करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—एक जितेन्द्रिय पुरुष 'सतत क्रियाशीलता के द्वारा शक्तिशाली' बनता है। इसके मस्तिष्क में ज्ञान होता है, मुख में श्रुतिवाक्य। ज्ञान इसे पवित्र करता है, श्रुति वाक्य प्रभु के समीप प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'यज्ञिय, च्यवन, केतु, वृषभ'

मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम्।
मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनाम्॥ ४॥

(१) हे मैं प्रभो! **त्वा**=आपको **यज्ञियानां यज्ञियम्**=पूजनीयों में पूजनीय **मन्ये**=मानता हूँ। 'माता, पिता, आचार्य व अतिथि' पूज्य हैं। उन सब के भी पूज्य प्रभु हैं। प्रभु पूजनीयों के भी पूजनीय हैं। हे प्रभो! मैं **त्वा**=आपको **अच्युतानाम्**=अतिप्रबल शत्रुओं के भी **च्यवनम्**=च्युत करनेवाला, नष्ट करनेवाला **मन्ये**=जानता हूँ। (२) **त्वा**=आपको मैं हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सत्वनाम्**=स्तुतियों व हवियों द्वारा सम्भजन करनेवालों का **केतुं मन्ये**=रोगापनयन द्वारा उत्तम निवास को करनेवाला जानता हूँ। **त्वा**=आपको **चर्षणीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों का **वृषभम्**=सुखों का वर्षण करनेवाला **मन्ये**=मानता हूँ।

भावार्थ—प्रभु पूज्य हैं, शत्रु-संहारक हैं। भक्तों के जीवन को उत्तम बनानेवाले हैं, श्रमशील व्यक्तियों को सुखी करनेवाले हैं।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'मदच्युत वज्र'

आ यद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र धत्से मदच्युतमहये हन्तवा उ।
प्र पर्वता अनवन्त प्र गावः प्र ब्रह्माणो अभिनक्षन्त इन्द्रम्॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=प्रभु-विद्रावक जितेन्द्रिय पुरुष! **यद्**=जब तू **बाह्वोः**=अपनी भुजाओं में **मदच्युतम्**=शत्रुओं के मद को च्युत करनेवाले **वज्रम्**=वज्र को **आधत्से**=धारण करता है, तो **उ**=निश्चय से **अहवे हन्तवै**=यह वज्र वासनारूप अहि के विनाश के लिये होता है। उस समय **पर्वताः**=अविद्या पर्वत **प्र अनवन्त**=(नवते=To go) प्रकर्षेण हिल जाते हैं। क्रियाशीलता ही वज्र है। यही अविद्या पर्वत का विनाश करती है। (२) इस अविद्या पर्वत के भेदन के होने पर **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को **गावः**=सब इन्द्रियाँ **प्र अभिनक्षन्त**=खूब ही अभिमुख्येन प्राप्त होती हैं। और **ब्रह्माणः**=इस इन्द्र को ज्ञानी पुरुष प्राप्त होते हैं। इन ज्ञानियों के सम्पर्क में इसका ज्ञान खूब ही बढ़ता है।

भावार्थ—क्रियाशीलता से वासना विनष्ट होती है। इस से अज्ञान के पर्वत का विदारण होता है। तब इन्द्रियाँ स्वस्थ होती हैं। और ज्ञान की वृद्धि होती हैं।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

गीर्भिः-नमोभिः

तमु ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात्।
इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरुपो नमोभिर्वृषभं विशेम॥ ६॥

(१) **तं स्तवाम**=उस प्रभु का ही स्तवन करते हैं, **यः**=जो **इमा जजान**=इन सब लोकों को प्रादुर्भूत करते हैं। **विश्वा**=सब **जातानि**=प्रादुर्भूत हुए-हुए लोक लोकान्तर **अस्मात् अवराणि**=इस प्रभु से अवरकाल में होनेवाले हैं। 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे'। (२) **इन्द्रेण**=उस प्रभु के साथ ही **गीर्भिः**=इन ज्ञान की वाणियों के द्वारा **मित्रं दिधिषेम**=मैत्री को धारण करें। **उ**=और **नमोभिः**=नमस्कारों के द्वारा **वृषभम्**=उस शक्तिशाली प्रभु को **उपविशेम**=समीपता से प्राप्त हों, प्रभु के समीप उपविष्ट हों।

भावार्थ—ज्ञान की वाणियों द्वारा उस प्रभु की मित्रता को प्राप्त करें, नमस्कार द्वारा प्रभु के समीप उपविष्ट हों।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराट्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

प्राणसाधना-वृत्रविनाश-देव मित्रता

वृत्रस्य॑ त्वा श्वसथा॒दीष॑माणा॒ विश्वे॑ दे॒वा अ॑जहु॒र्ये सखा॑यः।
म॒रुद्भि॑रिन्द्र स॒ख्यं ते॑ अ॒स्त्वथे॒मा विश्वाः॒ पृत॑ना जयासि॥ ७॥

(१) शरीर में जब ज्ञान की आवरणभूत वासना का प्रवेश होता है तो **वृत्रस्य**=इस कामदेव के **श्वसथात्**=श्वास से **ईषमाणाः**=सब ओर भागते हुए **विश्वे देवाः**=सब दिव्य भाव, ये **सखायः**=जो अब तक तेरे मित्र थे वे **त्वा अजहुः**=तुझे छोड़ जाते हैं। वासना के साथ दिव्य गुणों का वास नहीं। (२) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **मरुद्भिः**=प्राणों के साथ **ते**=तेरा **सख्यम्**=मित्रभाव **अस्तु**=हो। तू प्राणसाधना करनेवाला बन। **अथ**=अब **इमाः विश्वाः पृतनाः**=इन शरीर-राष्ट्र में घुस आनेवाली वासनात्मक शत्रु-सेनाओं को **जयासि**=तू जीत लेता है। प्राणसाधना वासनाविलय का हेतु बनती है।

भावार्थ—वासना ही दिव्य गुणों की शत्रु है। हम प्राणसाधना द्वारा वासना का विनाश करें और दिव्य गुणों की मित्रता को प्राप्त करें।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

प्राणसाधना व त्यागपूर्वक अदन

त्रिः ष॒ष्टिस्त्वा॑ म॒रुतो॑ वावृधा॒ना उ॒स्रा इ॑व रा॒शयो॑ य॒ज्ञिया॑सः।
उप॒ त्वेमः॑ कृ॒धि नो॑ भाग॒धेयं॒ शुष्मं॑ त ए॒ना ह॒विषा॑ विधेम॥ ८॥

(१) **त्रिः षष्टिः**=६३ संख्या में विभक्त हुए-हुए **मरुतः**=ये प्राण **त्वा वावृधानाः**=तेरा खूब वर्धन करते हुए **राशयः उस्राः इव**=राशिभूत-संघीभूत-प्रकाश की किरणों के समान हैं। संघीभूत प्रकाश की किरणें सब मलों को दग्ध कर देती हैं। अतएव ये मरुत् **यज्ञियासः**=संगतिकरण योग्य हैं। इन प्राणों की जितनी भी साधना की जाये, वह ठीक ही है। (२) हे प्रभो! इस प्राणसाधना को करते हुए हम **त्वा उप इमः**=आपको समीपता से प्राप्त होते हैं। आप **नः**=हमारे लिये **भागधेयम्**=भजनीय धन को **कृधि**=करिये। **ते**=आपके प्रति **एना हविषा**=इस हवि के द्वारा **शुष्मे विधेम**=शत्रु-शोषक बल को अपने में सम्पादित करते हैं। त्यागपूर्वक अदन से प्रभु का पूजन होता है 'कस्मै देवाय हविषा विधेम'। यह हवि इस उपासक को वह बल प्राप्त कराती है, जो काम-क्रोध आदि शत्रुओं का शोषण कर देता है।

भावार्थ—हम प्राणसाधना के साथ त्यागपूर्वक अदन करते हुए प्रभु का पूजन करें। यही शत्रुशोषक बल को प्राप्त करने का मार्ग है।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

प्राणसाधना-क्रियाशीलता-प्रभु उपासना

तिग्ममायुधं मरुतामनीकं कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष।
अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण ताँ अप वप ऋजीषिन्॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! यह **मरुतां अनीकम्**=प्राणों का सैन्य **तिग्मायुधम्**=बड़े तीव्र अस्त्रवाला है। प्राणसाधना के होने पर शत्रु इस साधक का धर्षण नहीं कर सकते। हे प्रभो! **कः**=कौन **ते**=आपके **वज्रं प्रति दधर्ष**=क्रियाशीलता रूप वज्र का धर्षण कर सकता है? मनुष्य प्राणसाधना करे और क्रियाशील बना रहे तो कोई भी काम-क्रोध आदि शत्रु इसे सता नहीं पाते। (२) **अदेवाः**=दिव्य भावनाओं से रहित ये **असुराः**=आसुरभाव **अनायुधासः**=प्राणसाधना व क्रियाशीलता के सामने आयुधशून्य हो जाते हैं। हे **ऋजीषिन्**=ऋजुता की (सरलता की) प्रेरणा देनेवाले प्रभो! आप **चक्रेण**=इस दैनिक कार्यचक्र के द्वारा, दिनचर्या में लगे रहने के द्वारा **अप वप**=छिन्न कर डालिये। प्रभु की उपासना के साथ हम दैनिक कर्त्तव्यों में तत्पर रहें तो काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रु सुदूर विनष्ट हो जायेंगे।

भावार्थ-प्राणसाधना, क्रियाशीलता व प्रभु उपासना ही वे शस्त्र हैं जिनसे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का संहार हो जाता है।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

स्तवन-स्वाध्याय

मह उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः।
गिर्वाहसे गिर इन्द्राय पूर्वीर्धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत्॥ १०॥

(१) **महे उग्राय**=उस महान् तेजस्वी, **तवसे**=शक्तिशाली, **पश्वः शिवतमाय**=पशु तक का कल्याण करनेवाले, **गिर्वाहसे**=ज्ञान की वाणियों का वहन करनेवाले **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिये **सुवृक्ति**=शोभन-स्तुति को प्रेरित करो। (२) उस प्रभु की प्राप्ति के लिये **पूर्वीः गिरः धेहि**=पालन व पूरण करनेवाली या सृष्टि के प्रारम्भ में दी जानेवाली इन वाणियों का धारण कर। वे प्रभु **तन्वे**=शक्तियों के विस्तार के लिये **अंग**=शीघ्र ही **कुवित्**-खूब **वेदत्**=धन प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ-उस महान् तेजस्वी प्रभु के लिये हम स्तवन करनेवाले बनें। साथ पालन व पूरण करनेवाली ज्ञान की वाणियों का अध्ययन करें। प्रभु हमारे लिये आवश्यक धनों को अवश्य प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

द्रुणा न पारमीरया नदीनाम्

उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां द्रुणा न पारमीरया नदीनाम्।
नि स्पृश धिया तन्वि श्रुतस्य जुष्टतरस्य कुविदङ्ग वेदत्॥ ११॥

(१) **उक्थवाहसे**=स्तोत्रों के द्वारा धारण किये जानेवाले **विभ्वे**=उस महान् व शत्रुओं का अभिभव करनेवाले प्रभु के लिये **मनीषाम्**=बुद्धि को **ईरय**=प्रेरित कर। तद्बुद्धि बन। प्रभु की महिमा का ही चिन्तन करनेवाला हो। उस प्रभु का चिन्तन कर जो तुझे **नदीनां पारं द्रुणा न**-नदियों

के पार नाव के द्वारा ले जाने के समान ही भवसागर से पार ले जाते हैं। (२) प्रभु की उपासना के द्वारा **तन्वि**=अपने में **धिया**-बुद्धि के द्वारा **जुष्टतरस्य**=अतिशयेन सेवनीय **श्रुतस्य**=शास्त्रज्ञान का **निस्पृश**=स्पर्श कर। खूब ही स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान का वर्धन करनेवाला बन। वे प्रभु **अंग**-शीघ्र ही **कुवित्**-खूब **वेदत्**=धन को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम स्तवन व स्वाध्याय में प्रवृत्त हों। प्रभु हमें भवसागर से पार ले जानेवाले होंगे।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

रो मत, बात तो कह

तद्विविड्ढि यत्त इन्द्रो जुजोषत्स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास।
उप भूष जरितर्मा रुवण्यः श्रावया वाचं कुविदङ्ग वेदत्॥ १२॥

(१) हे जीव! तू **तत्**-उस स्तोत्र को **विविड्ढि**=अपने में व्याप्त कर, **यत्**-जिस **ते**=तेरे स्तोत्र को **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **जुजोषत्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करे। हे जीव! तू **सुष्टुतिम्**=उस उत्तम स्तुतिवाले प्रभु को **स्तुहि**=स्तुत कर। **नमसा**=नमन के द्वारा **आविवास**=उस प्रभु का आभिमुख्येन उपासन कर। (२) हे **जरितः**-स्तोतः! **उपभूष**=अपने जीवन को अलंकृत कर। **मा रुवण्यः**=धन आदि के अभाव के कारण रो नहीं। **वाचं श्रावया**=ज्ञान की वाणियों को सुना। अथवा प्रार्थना तो कर। वे प्रभु **अंग**=शीघ्र ही **कुवित्**=खूब ही **वेदत्**=धन प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु का स्तवन व पूजन कर। अपने जीवन को सद्गुणों से अलंकृत कर। रो मत। बात तो कह। प्रभु खूब ही धन प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

अंशुमतीं अवातिष्ठत् (द्रप्सः, कृष्णः)

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त॥ १३॥

(१) **द्रप्सः**=(drop, a spark) प्रभु का अंश रूप (miniature) यह जीव **दशभिः**=दस **सहस्रैः**=(सहस्=बल) बलवान् प्राणों के साथ **इयानः**-गति करता हुआ **कृषअमः**=सब दोषों को कृश करनेवाला होता है और **अंशुमतीम्**=प्रकाश की किरणोंवाली ज्ञान नदी के समीप **अवतिष्ठत्**=नम्रता से स्थित होता है। (२) **शच्या**-शक्ति व प्रज्ञान से **धमन्तम्**=(To cast, throw away) शत्रुओं को परे फेंकते हुए **तम्**=उस कृष्णा को **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **आवत्**=रक्षित करते हैं। **नृमणाः**=(नृषु मनो यस्य) कर्मनेता मनुष्यों में प्रेमवाले वे प्रभु **स्नेहितीः**= सबका हिंसन करनेवाली वासनाओं को **अप अधत्त**=सुदूर स्थापित करनेवाले होते हैं, वासनाओं के प्रभु विनाशक हैं।

भावार्थ—जीव जब अंशुमती (ज्ञान की किरणोंवाली) सरस्वती का उपासक बनता है, तो प्रभु उसका रक्षण करते हैं और उसकी वासनाओं को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः मरुतश्च॥ **छन्दः**—निचृत्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

नभः न

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ॥ १४॥

(१) **द्रप्सम्**=उस प्रभु के छोटे रूप जीव को **विषुणे**=उस चारों ओर गति (व्याप्ति) वाले प्रभु में **पश्यम्**=मैं देखता हूँ। प्रभु की गोद में जीव को स्थित अनुभव करता हूँ। यह **अंशुमत्याः नद्यः**=प्रकाश की किरणोंवाली ज्ञान नदी (सरस्वती) के **उपह्वरे**=अत्यन्त गूढ़ स्थान में **चरन्तम्**=गति कर रहा है। (२) **नभः न**=आदित्य के समान **अवतस्थिवांसम्**=स्थित **कृष्णाम्**=वासनाओं के क्षीण करनेवाले को **इष्यामि**=चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मैं वासनारूप वृत्र को विनष्ट करके सूर्य की तरह चमकूँ। हे **वृषणः**=शक्तिशाली मरुतो (प्राणो)! **वः**=तुम **आजौ**=संग्राम में **युध्यत**=इन वासनारूप शत्रुओं के साथ युद्ध करो। इन्हें पराजित करके ही तो मैं चमक सकूँगा।

भावार्थ—जीव उस व्यापक प्रभु में स्थित अपने को देखे। सदा ज्ञान के अन्दर विचरने का प्रयत्न करे। प्राणसाधना द्वारा वासनाओं का विनाश करके सूर्य की तरह चमके।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्राबृहस्पती॥ **छन्दः**—पादनिचृत्त्रिष्टुप्॥
स्वरः—धैवतः॥

स्वाध्याय व प्रभु मैत्री

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे॥ १५॥

(१) **अध**—अब **द्रप्सः**=परमात्मा का छोटा रूप यह जीव **अंशमत्याः**=प्रकाश की किरणोंवाली ज्ञान नदी के **उपस्थे**=समीप **अधारयत्**=अपने को धारण करता है। इस प्रकार यह अपने **तन्वम्**=शरीर को **तित्विषाणः**=दीप्त करनेवाला होता है। 'शरीर में तेज, मस्तिष्क में ज्ञान' इस प्रकार यह चमक उठता है। (२) यह तित्विषाण **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **अदेवीः**=आसुरी **अभ्याचरन्तीः**=आक्रमण करती हुई **विशः**=प्रजाओं को काम-क्रोध आदि आसुरभावों को **बृहस्पतिना युजा**=ज्ञान के स्वामी प्रभु को साथी के रूप में पाकर **ससाहे**=अभिभूत करनेवाला होता है।

भावार्थ—स्वाध्याय व प्रभु की मित्रता हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाती हैं। प्रभु की मित्रता से हम सब शत्रुओं का पराभव कर पाते हैं।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

काम आदि सात शत्रुओं का शातन

त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः॥ १६॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **त्वम्**=तू **ह**=निश्चय से **त्यत्**=उस कर्म को करता है कि **जायमानः**=विकास को प्राप्त होता हुआ तू **अशत्रुभ्यः**=जिनका शातन (समाप्ति) बड़ा कठिन है उन **सप्तभ्यः**='काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर व अविद्या' नामक सात शत्रुओं के लिये **शत्रुः अभवः**=शातन करनेवाला होता है। (२) इन शत्रुओं का शातन करके **गूढे द्यावापृथिवी**=शत्रुओं से आवृत हुए-हुए मस्तिष्क व शरीर को तू फिर से **अन्वविन्दः**=प्राप्त करता है। काम-लोभ आदि ने इनको आवृत-सा कर लिया था। काम आदि के विनाश से हम इन्हें फिर प्राप्त करनेवाले होते हैं। इनको काम आदि के आवरण से रहित करके **विभुमद्भ्यः**=महत्त्वयुक्त **भुवनेभ्यः**=लोकों के लिये, शरीर के सब अंगों के लिये, **रणं धाः**=रमणीयता को तू धारण करता है।

भावार्थ–'काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर व अविद्या' ये हमारे प्रबल शत्रु हैं। इनका शातन करके ही हम मस्तिष्क व शरीर को स्वस्थ कर पाते हैं और सब अंगों के लिये रमणीयता को धारण करनेवाले होते हैं।

ऋषिः — तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता** — इन्द्रः॥ **छन्दः** — पङ्क्तिः॥ **स्वरः** — पञ्चमः॥

शुष्णासुर वध व गो प्राप्ति

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन्धृषितो जघन्थ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः॥ १७॥

(१) हे **वज्रिन्**-क्रियाशीलतारूप वज्र को हाथ में लिये हुए इन्द्र! **त्वम्**=तू **ह**-निश्चय से **त्यत्**-उस **अप्रतिमानम्**-निरूपम-अतिप्रबल **ओजः**=शुष्णासुर के ओज को, वासना के बल को **वज्रेण** क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा **धृषितः**=संग्राम में शत्रुहनन में कुशल होता हुआ **जघन्थ**-नष्ट करता है। (२) इसके ओज को नष्ट करता हुआ **त्वम्**=तू **वधत्रैः**-हनन साधन आयुधों से **शुष्णस्य अवातिरः**=इस शुष्णासुर का अपने शिकार को सुखा देनेवाली काम वासना का वध कर डालता है। इस प्रकार हे **इन्द्र**-जितेन्द्रिय पुरुष! तू **शच्या**=अपनी शक्ति व **प्रज्ञान** से **इत्**-निश्चयपूर्वक **गाः अविन्दः**-ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करता है। कामविध्वंस से ही ज्ञान प्राप्त होता है। काम ही तो सदा ज्ञान को आवृत किये रहता है।

भावार्थ–हम क्रियाशीलता के द्वारा वासना को विनष्ट करें और ज्ञान को प्राप्त करनेवाले हों।

ऋषिः — तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता** — इन्द्रः॥ **छन्दः** — पादनिचृत्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः** — धैवतः॥

वृत्राणां घनः

त्वं ह त्यद् वृषभ चर्षणीनां घनो वृत्राणां तविषो बभूथ।
त्वं सिन्धूँरसृजस्तस्तभानान्त्वमपो अजयो दासपत्नीः॥ १८॥

(१) हे **वृषभ**=सुखों के वर्षक प्रभो! **त्वम्**–आप ही **ह**-निश्चय से **त्यत्**=उस कर्म को करते हैं कि **तविषः**-शक्तिशाली आप **चर्षणीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के **वृत्राणाम्**=वासनारूप शत्रुओं के **घनः**–विनाश करनेवाले **बभूथ**-होते हो। (२) इन वासनाओं को नष्ट करके **त्वम्**=आप **तस्तभानान्**=इन वासनाओं द्वारा रुद्ध किये गये **सिन्धून्**=ज्ञानप्रवाहों को **असृजः**=उत्पन्न करते हो। और **दासपत्नीः**–विनाशक काम जिनका पति बन गया था, उन **अपः**=शरीरस्थ रेतःकणों को **त्वं अजयः**=आप विजयी करते हो।

भावार्थ–प्रभु हमारे ज्ञान के आवरणभूत शत्रुओं का विनाश करते हैं और ज्ञानप्रवाहों को सृष्ट करते हुए शरीर में रेतःकणों का रक्षण करते हैं।

ऋषिः — तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता** — इन्द्रः॥ **छन्दः** — पादनिचृत्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः** — धैवतः॥

सुक्रतुः-अनुत्तमन्युः

स सुक्रतू रणिता यः सुतेष्वनुत्तमन्युर्यो अहेव रेवान्।
य एक इन्नर्यपांसि कर्ता स वृत्रहा प्रतीदन्यमाहुः॥ १९॥

(१) **सः**–वह प्रभु **सुक्रतुः**-शोभन प्रज्ञान व शक्तिवाले हैं। **यः**=जो **सुतेषु**–सब उत्पन्न पदार्थों

में रमण करनेवाले हैं। (२) वे प्रभु **अनुत्तमन्युः**=अनष्ट ज्ञानवाले हैं, **यः**=जो **अहा इव**=सूर्य से दीप्त दिवसों के समान **रेवान्**=प्रकाश की सम्पत्तिवाले हैं। प्रभु प्रकाशमय ही हैं। (२) **यः**=जो **एकः इत्**=अद्वितीय ही, बिना किसी अन्य की सहायता के ही **नरि**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों में **अपांसि**=लोक हितकारी कर्मों को **कर्ता**=करनेवाले हैं। **सः**=वे प्रभु ही **वृत्रहा**=वासना का विनाश करते हैं। इस प्रभु को **इत्**=ही **अन्यं प्रति आहुः**=सब शत्रुओं का सामना करनेवाला कहते हैं।

भावार्थ–शोभन शक्ति व प्रज्ञानवाले हैं। वे सर्वत्र व्याप्त हैं। नर पुरुषों में प्रभु ही सब उत्तम कर्मों को करनेवाले हैं। प्रभु ही शत्रुओं का अभिभव करते हैं।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत् पं॰॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

श्रवस्यस्य वाजस्य दाता

स वृ॒त्र॒हेन्द्र॑श्चर्षणी॒धृत्तं सु॑ष्टु॒त्या हव्यं॑ हुवेम।
स प्रा॑वि॒ता म॒घवा॑ नोऽधिव॒क्ता स वाज॑स्य श्रव॒स्य॑स्य दा॒ता॥२०॥

(१) **सः**=वह **वृत्रहा**=वासना का विनाश करनेवाला **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **चर्षणीधृत्**=श्रमशील मनुष्यों का धारण करनेवाला है। **हव्यम्**=पुकारने योग्य **तम्**=उस प्रभु को हम **सुष्टुत्या**=उत्तम स्तुति से **हुवेम**=पुकारते हैं। प्रभु का सम्यक् स्तवन करते हैं। (२) **सः**=वे **मघवा**–ऐश्वर्यशाली प्रभु **नः प्राविता**=हमारे उत्तम रक्षक हैं। **अधिवक्ता**=अध्यक्षरूपेण प्रेरणा को देनेवाले हैं। **सः**=वे प्रभु ही **श्रवस्यस्य**=यश की प्राप्ति के हेतुभूत **वाजस्य**=बल के **दाता**=देनेवाले हैं। प्रभु हमें यह शक्ति प्राप्त कराते हैं, जिससे हम रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त हुए-हुए यशस्वी बनते हैं।

भावार्थ–प्रभु वासना के विनाश के द्वारा हमारा धारण करनेवाले हैं। वे हमें निरन्तर प्रेरणा देते हैं। वे यशस्वी बल प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराट् पं॰॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

वृत्रहा-ऋभुक्षाः

स वृ॒त्र॒हेन्द्र॑ ऋभु॒क्षाः स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो हव्यो॑ बभूव।
कृ॒ण्वन्नपां॑सि॒ नर्या॑ पु॒रूणि॒ सोमो॒ न पी॒तो हव्यः॒ सखि॑भ्यः॥२१॥

(१) **सः**=वे **वृत्रहा**=वासना को विनष्ट करनेवाले प्रभु **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली हैं। **ऋभुक्षाः**=(ऋभुभिः सह क्षियति) ज्ञानदीप्त पुरुषों के साथ निवास करनेवाले हैं। **सद्यः जज्ञानः**=ज्ञानियों के हृदयों में शीघ्र ही प्रादुर्भूत होते हुए प्रभु **हव्यः बभूव**=पुकारने योग्य होते हैं। (२) ये प्रभु **नर्या**=नरहितकारी **पुरूणि**=बहुत **अपांसि**=कर्मों को **कृण्वन्**=करते हुए, **पीतः सोमः न**=शरीर में सुरक्षित सोम की तरह, **सखिभ्यः**=मित्रभूत ऋत्विजों से **हव्यः**=पुकारने योग्य होते हैं। शरीर में सुरक्षित सोम जैसे हमारा हित करता है उसी प्रकार प्रभु अपने सखाओं का हित करते हैं।

भावार्थ–प्रभु वासना को विनष्ट कर हमें ज्ञान प्राप्त कराते हैं। ज्ञानियों में निवास करते हुए वे प्रभु उनके माध्यम से सब नरहितकारी कर्मों को करते हैं।

अगले सूक्त का ऋषि यह ज्ञानी स्तोत्र 'रेभः काश्यपः' नामवाला है। यह इन्द्र का स्तवन इस प्रकार करता है–

९७. [सप्तनवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

स्तोता व वृक्तबर्हिष्

या ईन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः। स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **स्वर्वान्**=सब सुखों व प्रकाशोंवाले आप **याः भुजः**=जिन पालन के साधनभूत धनों को **असुरेभ्यः**-अपने में प्राणशक्ति का सञ्चार करनेवालों के लिये **असुः**=प्राण **आभरः**-प्राप्त कराते हैं। **अस्य**=इस धन के द्वारा **स्तोतारं इत्**=स्तोता को निश्चय ही, हे **मघवन्**-ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **वर्धय**-बढ़ाइये। (२) **च**-और **ये**=जो **त्वे**-आप में स्थित होते हुए, आपकी उपासना करते हुए **वृक्तबर्हिषः**=अपने हृदयान्तरिक्ष को (बर्हिष्) छिन्न पापों-वाला करते हैं (वृक्त) जो हृदयक्षेत्र में से वासना की घास-फूस को उखाड़ डालते हैं।

भावार्थ-प्रभु स्तोता को व उपासना द्वारा पवित्र हृदयवाले को सब पालन के साधनभूत धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृत् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

यजमान, सुन्वन्, दक्षिणावान्

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम्।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन्तं धेहि मा पणौ॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **यम्**=जिस **अश्वम्**=कर्मों में व्याप्त होनेवाली (कर्मेन्द्रियों) को **गाम्**=ज्ञानेन्द्रियों को तथा **अव्ययम्**-व्ययित न होनेवाले भजनीय धन को **दधिषे**=धारण करते हैं। **तम्**=उसे **तस्मिन्**=उस **यजमाने**=यज्ञशील, **सुन्वति**=सोम का सम्पादन करनेवाले **दक्षिणावति**-दानशील पुरुष में **धेहि**=स्थापित करिये। (२) यह यजमान आप से दी गयी कर्मेन्द्रियों से यज्ञात्मक पवित्र कर्मों को करेगा। ज्ञानेन्द्रियों से सोमरक्षण द्वारा दीप्त बुद्धिवाला बनकर, ज्ञान को प्राप्त करेगा। धन को यह सदा लोकहित के कार्यों में देनेवाला बनेगा। आप इस धन को **पणौ**=वणिक् वृत्तिवाले अयष्टा भोग-प्रसित पुरुष में मत स्थापित करें।

भावार्थ-हम यज्ञशील, सोम के रक्षक व दानशील बनें। प्रभु हमें उत्तम कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ व स्थिर धन प्राप्त करायें।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—भुरिग्नुष्टुपङ्क्ति॥ स्वरः—गान्धारः॥

निद्रालु 'अव्रतः अदेवयु' के धन का नाश

य ईन्द्र सस्त्यव्रतोऽनुष्वापमदेवयुः। स्वैः ष एवैर्मुमुरत्पोष्यं रयिं सनुतर्धेहि तं ततः॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यः सस्ति**-जो सोता है, **अव्रतः**=अपने नियमित कर्मों को नहीं करता है। और **अनुष्वापम्**-निद्रा व आलस्य के साथ-साथ **अदेवयुः**=दिव्य गुणों को अपने साथ जोड़ने की कामना से रहित होता है। **सः**=वह **स्वैः एवैः**=अपने ही आचरणों से **पोष्यं रयिम्**=पोषण योग्य जन (सन्तान) व धन का **मुमुरत्**=नाश कर लेता है। (२) हे प्रभो! **ततः**= उस व्यक्ति से **तम्**=उस रयि को, उस धन को **सनुतः धेहि**-अन्तर्हित करके ही धारण करिये। इसे उस धन से वञ्चित करिये।

भावार्थ-हम आलस्य में सोये न रहें। प्रबुद्ध होकर व्रतमय जीवनवाले व दिव्य गुणों की

प्राप्ति की कामनावाले बनें। यही ऐश्वर्य-भाजन बनने का मार्ग है।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

शक्र-वृत्रहा

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति॥ ४॥

(१) हे **शक्र**=सर्वशक्तिमन्! **वृत्रहन्**=सब ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **यत्**=क्योंकि आप **परावति**=दूर से दूर देश में भी हैं और **यत्**=क्योंकि **अर्वावति**=समीप से समीप देश में भी है (तद् दूरे तद्वन्तिके, तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः), **अतः**=इसीलिए उन सर्वव्यापक **त्वा**=आपको **द्युगत्**=यह ज्ञान-ज्योति में चलनेवाला **सुतावान्**=सोम का शरीर में सम्पादन करनेवाला पुरुष **केशिभिः**=ज्ञान की रश्मियोंवाली **गीर्भिः**=स्तुति-वाणियों से **आविवासति**=पूजता है, परिचरित करता है। (२) आपकी सर्वव्यापकता का स्मरण ही इसे भोगमार्ग में फँसने से बचाता है और ज्ञान के मार्ग पर चलने में प्रवृत्त करता है। इस मार्ग पर चलता हुआ यह भी 'शक्र व वृत्रहा' बनने का प्रयत्न करता है।

भावार्थ—प्रभु सर्वव्यापक हैं। यह सर्वव्यापकता का स्मरण हमें ज्ञानमार्ग पर चलते हुए, सोमरक्षण द्वारा, शक्तिशाली व वासनाओं का विनाशक बनाये।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

हृदय में प्रभु दर्शन

यद्वासि रोचने दिवः समुद्रस्याधि विष्टपि। यत्पार्थिवे सदने वृत्रहन्तम यदन्तरिक्ष आ गहि॥ ५॥

(१) हे **वृत्रहन्तम**=वासनाओं के अधिक से अधिक विनाशक प्रभो! आप **यत्**=जो **वा**=निश्चय से **दिवः रोचने**=द्युलोक के दीप्त प्रदेश में **असि**=विद्यमान हैं तथा **समुद्रस्य**=इस आकाश (मध्यलोक) के **विष्टपि**=लोक में हैं, **यत्**=जो **पार्थिवे सदने**=इस पृथिवीरूप गृह में हैं। आपकी सत्ता त्रिलोकी में है। (२) **यत्**=जो आप **अन्तरिक्षे**=हमारे हृदयान्तरिक्षों में भी **आगहि**=प्राप्त होते हैं। हम अपने हृदयों में आपकी सत्ता को अनुभव करें। आपकी सर्वव्यापकता का स्मरण करते हुए आपको हृदयों में देखने के लिये यत्नशील हों।

भावार्थ—सर्वत्र त्रिलोकी में व्यापक प्रभु हमारे हृदयों में आसीन हो। हृदयों में प्रभु का दर्शन करते हुए हम अपने जीवनों को पवित्र बनायें।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

शक्ति-धन

स नः सोमेषु सोमपाः सुतेषु शवसस्पते। मादयस्व राधसा सूनृतावतेन्द्र राया परीणसा॥ ६॥

(१) हे **शवसस्पते**=शक्तियों के स्वामिन् प्रभो! **सः**=वे आप **सोमेषु सुतेषु**=सोमकणों के शरीर में उत्पन्न होने पर **नः**=हमारे लिये **सोमपाः**=सोम का रक्षण करनेवाले हैं। इस सोमरक्षण द्वारा आप हमें भी शक्तिशाली बनाते हैं। (३) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **परीणसा**=बहुत (पर्याप्त) **राया**=धन से **मादयस्व**=हमें आनन्दित कीजिये। जो धन **राधसा**=कार्यों को सिद्ध करनेवाला है और **सूनृतावता**=सत्यवाला है। प्रिय सत्यवाणी से युक्त धन ही शोभा का बढ़ानेवाला है।

भावार्थ—प्रभु हमें शक्ति प्राप्त करायें तथा सत्य मार्ग से अर्जित धन से हमें जीवन में सुखी

करें।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

'सच्चे बन्धु, सच्चे रक्षक' प्रभु

मा नं इन्द्र परां वृणग्भवां नः सधमाद्यः। त्वं नं ऊती त्वमिन्न आप्यं मा नं इन्द्र परां वृणक्॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**-हमें आप **मा परावृणक्**-छोड़ मत दीजिये। आप **नः**-हमारे **सधमाद्यः**-साथ होते हुए हृदयों में आनन्द को प्राप्त करानेवाले **भवा**-होइये। आपके साथ हृदयों में स्थित होते हुए हम आनन्द का अनुभव करें। (२) **त्वम्**=आप ही **नः**=हमारे **ऊती**=रक्षक हैं। **त्वं इत्**=आप ही **नः आप्यम्**-हमारे बन्धुत्ववाले हैं। वास्तविक बन्धु आप ही हैं। हे **इन्द्र**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**-हमें **मा परावृणक्**-मत छोड़ दीजिये। आपकी छत्रछाया में हम 'सत्य शिव व सुन्दर' जीवनवाले बनें।

भावार्थ-प्रभु का साथ हमें सदा प्राप्त हो। प्रभु के साहचर्य में हम आनन्द का अनुभव करें। प्रभु ही हमारे रक्षक हैं, प्रभु ही सच्चे बन्धु हैं।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

हृदयों में प्रभु का वास व सोमरक्षण

अस्मे इन्द्र सचां सुते नि षंदा पीतये मधुं।
कृधी जंरित्रे मंघवन्नवों महदस्मे इन्द्र सचां सुते॥ ८॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक प्रभो! **अस्मे**-हमारे **सचा**=साथ **सुते**-सोम का सम्पादन होने पर **निषदा**=निषण्ण होइये। आप हृदय में आसीन होंगे, तभी वासनाओं का विनाश होगा। सो **मधुपीतये**-इस जीवन को मधुर बनानेवाले सोम को पीने के लिये आप हमारे हृदयों में स्थित होइये। (२) हे **मघवन्**-ऐश्वर्यशालिन् **इन्द्र**-प्रभो! **अस्मे**-हमारे में **सुते**-सोम का सम्पादन होने पर **सचा**=साथ होते हुए आप **जरित्रे**-स्तोता के लिये **महत् अवः**=महान् रक्षण को **कृधि**=करिये।

भावार्थ-हमारे हृदयों में प्रभु का वास हो। इससे सोम का रक्षण होकर हमारा जीवन मधुर बने तो रोगों से बचा रहे।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'असीम, अचिन्त्य (अगम्य)' प्रभु

न त्वां देवासं आशत न मर्त्यासो अद्रिवः।
विश्वां जातानि शवसाभिभूरसि न त्वां देवासं आशत॥ ९॥

(१) हे **अद्रिवः**=आदरणीय प्रभो! **त्वा**-आपको **देवासः**=सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि सब प्राकृतिक देव **न आशत**-नहीं व्याप सकते। आपकी महिमा इन्हीं में ही समाप्त नहीं हो जाती। **न मर्त्यासः**=न ही मनुष्य आपकी महिमा का व्यापन कर पाते हैं। मनुष्यों से भी आप अचिन्त्य व अगम्य होते हो। (२) हे प्रभो! **विश्वा**-सब **जातानि**=उत्पन्न पदार्थों व व्यक्तियों को आप **शवसा**=अपने बल से **अभिभूः असि**=अभिभूत करनेवाले हैं। ये सब **देवासः**=देव **त्वा**=आपको **न आशत**=व्याप्त नहीं कर पाते।

भावार्थ-प्रभु की महिमा न सूर्य चन्द्र आदि से सीमित की जाती है, न मनुष्य उसका पूर्णतया चिन्तन कर पाते हैं।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—भुरिग्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

प्रभु का प्रकाश व शत्रु-विनाश

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम्॥ १०॥

(१) **विश्वाः**=सब **पृतनाः**=शत्रु-सेनाओं को **अभिभूतरम्**=अभिभूत करनेवाले **नरम्**=सबको आगे ले चलनेवाले **इन्द्रम्**=शत्रु-विद्रावक प्रभु को **सजूः**=मिलकर स्तवन करते हुए (सह जुषन्ते) उपासक **ततक्षुः**=अपने में निर्मित करते हैं। स्तवन द्वारा प्रभु की दिव्यता को अपने अन्दर बढ़ाते हैं। इस प्रभु की भावना की वृद्धि से सब शत्रुओं को ये जीत पाते हैं। **च**=और **राजसे**=अपने प्रकाशन के लिये **जजनुः**=प्रभु को अपने में प्रादुर्भूत करते हैं। (२) **वरे**=श्रेष्ठता की प्राप्ति के निमित्त उस प्रभु को अपने में प्रादुर्भूत करते हैं, जो **क्रत्वा वरिष्ठम्**=प्रज्ञान व शक्ति से श्रेष्ठतम हैं। **आमुरिम्**=शत्रुओं को मारनेवाले हैं। **उत**=और **उग्रम्**=तेजस्वी हैं, **ओजिष्ठम्**= ओजस्वितम हैं, **तवसम्**=बलवान् हैं और **तरस्विनम्**=वेगवान् हैं।

भावार्थ—स्तुति के द्वारा अपने में हम प्रभु का निर्माण करें। जीवन में दीप्ति के लिये प्रभु को प्रादुर्भूत करें। प्रभु सब शत्रुओं का संहार करते हैं।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराड् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

स्तुति से 'सोमरक्षण, प्रकाश वृद्धि व पुण्य का लाभ'

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः॥ ११॥

(१) **रेभासः**=स्तोता लोग **ईं इन्द्रम्**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **सोमस्य पीतये**=सोम के रक्षण के लिये **सं अस्वरन्**=स्तुत करते हैं। प्रभु-स्तवन द्वारा, वासनाओं से आक्रान्त न होते हुए ये स्तोता सोमरक्षण कर पाते हैं। (२) **स्वः पतिम्**=सुख व प्रकाश के स्वामी **ईम्**=इस प्रभु को **यद्**=जब ये स्तुत करते हैं, तो वे प्रभु **वृधे**=इनकी वृद्धि के लिये होते हैं। वे प्रभु **हि**=निश्चय से **ओजसा**=ओजस्विता के साथ तथा **ऊतिभिः**=रक्षणों के साथ **धृतव्रतः**=इनके उत्तम कर्मों का धारण करते हुए **सम्** (गच्छते)=इनके साथ संगत होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमारे जीवन में सोम का रक्षण करेंगे, प्रकाश को प्राप्त करायेंगे, अपने रक्षणों व ओज से हमारे व्रतों का रक्षण करेंगे। इस प्रकार हमारी वृद्धि का कारण बनेंगे।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृद् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

नेमिम्

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः॥ १२॥

(१) स्तोता लोग **नेमिम्**=इस ब्रह्माण्ड की परिधिरूप उस प्रभु को, सर्वत्र व्याप्त उस प्रभु को नमस्कार करते हैं। **विप्राः**=ज्ञानी लोग **चक्षसा**=प्रभु की महिमा को सर्वत्र देखने के द्वारा तथा **अभिस्वरा**=स्तोत्र के द्वारा **मेषम्**=(मेषति=sprinkle)=सर्वसुखों के सेचक प्रभु को नमस्कार करते हैं। (२) **सुदीतयः**=उत्तम ज्ञान की दीप्तिवाले, **अद्रुहः**=द्रोह की भावना से रहित **वः**=तुम सब

अपि-भी **कर्णे**-प्रभु महिमा के श्रवण में **तरस्विनः**=वेगवाले होते हुए **ऋक्वभिः**-ऋचाओं के द्वारा अर्चन-साधन मन्त्रों के द्वारा **सम्**-उस प्रभु के साथ संगत होवो।

भावार्थ-ज्ञानी लोग सर्वत्र प्रभु की महिमा का दर्शन करते हुए उस व्यापक प्रभु को स्तोत्रों द्वारा प्रणाम करते हैं। हम भी ज्ञानदीप्ति व अद्रोह को धारण करते हुए इन स्तोत्रों का श्रवण करें और अर्चन-साधन मन्त्रों के द्वारा प्रभु का स्तवन करें।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अति जगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

सुपथ से ऐश्वर्य प्राप्ति

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि।

मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री॥ १३॥

(१) **तम्**-उस **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् प्रभु को **जोहवीमि**-पुकारता हूँ। जो **मघवानम्**=ऐश्वर्यशाली हैं, **उग्रम्**=तेजस्वी हैं। **सत्रा**-सचमुच **शवांसि**-बलों को **दधानम्**-धारण कर रहे हैं अतएव **अप्रतिष्कुतम्**-शत्रुओं से अप्रतिरोधनीय हैं। (२) वे प्रभु **मंहिष्ठः**-दातृतम हैं, महान् दाता हैं, **च**-और **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों से **यज्ञियः**=पूजनीय हैं। ये प्रभु **राये**=ऐश्वर्य को प्राप्त कराने के लिये **आववर्तत्**-हमें आभिमुख्येन प्राप्त हों। ये **वज्री**=वज्रहस्त प्रभु **नः**-हमारे लिये **विश्वा सुपथा**=सब सुमार्गों को **कृणोतु**-करें। हम विपथ से हटकर सदा सुमार्ग पर चलनेवाले बनें।

भावार्थ-हम प्रभु को पुकारें। प्रभु ही हमारे सब शत्रुओं का संहार करते हैं। सब आवश्यक धनों को प्राप्त कराते हैं। हमारे मार्गों को सुपथ करते हैं, हमें विपथ से परावृत्त करते हैं।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

शत्रु-नगरियों का विध्वंस

त्वं पुर इन्द्र चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयध्यै।

त्वद्विश्वानि भुवनानि वज्रिन्द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा॥ १४॥

(१) हे **शविष्ठ**=बलवत्तम, **शक्र**=शत्रुहनन के लिये शक्तिवाले, **चिकित्**=ज्ञानी **इन्द्र**=परमैश्वर्यवन् प्रभो! **त्वम्**=आप **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा **एना**=इन **पुरः**=शत्रु-पुरियों को **विनाशयध्यै**-विनष्ट करने के लिये होते हैं। 'काम' इन्द्रियों में अपनी नगरी बनाता है, 'क्रोध' मन में तथा 'लोभ' बुद्धि में। प्रभु इन सब पुरियों का विनाश कर देते हैं। (२) हे **वज्रिन्**-वज्रहस्त प्रभो! **त्वत्**-आप से **विश्वानि भुवनानि**=सब भुवन (प्राणी) **भीषा**-भय से काँप उठते हैं। **च**-और **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक भी भय से **रेजेते**-काँप जाते हैं।

भावार्थ-प्रभु अपनी शक्ति से शत्रु पुरियों का विध्वंस कर देते हैं। प्रभु के भय से सब प्राणी व द्यावापृथिवी काँप उठते हैं।

ऋषिः—रेभः काश्यपः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—ककुम्मतीजगती॥ **स्वरः**—निषादः॥

सत्य-निष्पापता-धन

तन्म ऋतमिन्द्र शूर चित्र पात्वपो न वज्रिन्दुरिताति पर्षि भूरि।

कदा न इन्द्र राय आ दशस्येर्विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन्॥ १५॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले, **चित्र**=आश्चर्यमय अथवा (चित्) ज्ञान-प्रदातः,

इन्द्र=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **मे**=मुझे **तत्**=वह **ऋते**=ऋत (सत्य) **पातु**=रक्षित करे। हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! आप हमें सब **दुरिता**=पापों के **भूरि**=खूब ही **अतिपर्षि**=इस प्रकार पार करिये, **न**=जैसे एक नाविक **अपः**=यात्री को जलों के पार करता है। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् **राजन्**=शासक प्रभो! आप **कदा**=कब **नः**=हमारे लिये **विश्वपस्न्यस्य**=स्पृहणीय **रायः**=धन को **आदशस्ये**=देंगे? कब हम आप से इस धन को प्राप्त करेंगे?

भावार्थ—सत्य हमारा रक्षण करे। प्रभु हमें पापों से पार करें और स्पृहणीय अनेकरूप धन को प्राप्त करायें।

यह सुपथ से चलनेवाला सत्यवादी 'नृ-मेध' बनता है, सब मनुष्यों के साथ मेल से चलता है। यह इन्द्र का स्तवन करता है—

९८. [अष्टनवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—नृमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'इन्द्र विप्र बृहत्, धर्मकृत् विपश्चित् पनस्यु'

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्। धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे॥ १॥

(१) **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिये **साम गायत**=साम (स्तोत्र) का गायन करो। **विप्राय**=ज्ञानी, **बृहते**=महान् प्रभु के लिये **बृहत्**=खूब ही साम का गायन करो। (२) उस प्रभु के लिये गायन करो, जो **धर्मकृते**=धारणात्मक कर्मों को करनेवाले हैं। **विपश्चिते**=ज्ञानी हैं और **पनस्यवे**=स्तुति को चाहनेवाले हैं। जीव को इस स्तुति के द्वारा ही अपने लक्ष्य का स्मरण होता है। यह लक्ष्य का अविस्मरण उसकी प्रगति का साधन बनता है। इसीलिए प्रभु यह चाहते हैं, कि जीव का जीवन स्तुतिमय हो।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु के समान ही इन्द्र (जितेन्द्रिय) बृहत् (वृद्धिवाले) विप्र (अपना पूरण करनेवाले) धर्मकृत् (धर्म के कार्य करनेवाले) विपश्चित् (ज्ञानी) व स्तुतिमय (पनस्यु) बनें।

ऋषिः—नृमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—ककुम्मत्युष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

विश्वकर्मा, विश्वदेवः

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः। विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक प्रभो! **त्वम्**=आप **अभिभूः असि**=शत्रुओं का अभिभव करनेवाले हैं। **त्वम्**=आप ही **सूर्यं अरोचयः**=सूर्य को दीप्त करते हैं। प्रभु हमारे भी काम-क्रोध आदि शत्रुओं को अभिभूत करके हमारे मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञानसूर्य को उदित करते हैं। (२) हे प्रभो! आप ही **विश्वकर्मा**=सब कर्मों को करनेवाले व **विश्वदेवः**=सब दिव्य गुणोंवाले वा सब देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले हैं। अतएव **महान् असि**=आप महान् हैं, पूज्य हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सब शत्रुओं का अभिभव करते हैं। प्रभु ही सूर्य को दीप्त करते हैं। प्रभु विश्वकर्मा, विश्वदेव व महान् हैं।

ऋषिः—नृमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—विराडुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

नियम-बन्धन

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः। देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे॥ ३॥

(१) हे प्रभो! आप **ज्योतिषा विभ्राजन्**=ज्योति से दीप्त होते हुए **स्वः**=सुख को **अगच्छः**- प्राप्त होते हैं, आप आनन्दस्वरूप हैं। आप ही **दिवः**=आदित्य के **रोचनम्**=प्रकाशक तेज को प्राप्त कराते हैं। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **ते**=आपकी **सख्याय**-मित्रता के लिये **येमिरे**-अपने को नियमों के बन्धन में बाँधते हैं। यह संयम ही उन देवों को महादेव का मित्र बनाता है।

भावार्थ-प्रभु ज्योति से दीप्त व आनन्दमय हैं, ये सूर्य को भी दीप्ति प्राप्त कराते हैं। संयम के द्वारा देव प्रभु मैत्री के पात्र बनते हैं।

ऋषिः—नृमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ छन्दः—पादनिचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

सत्राजित्

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः। गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**-परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **नः**-हमें **आगधि**=प्राप्त होइये। **प्रियः**-आप प्रीति व आनन्द के जनक हैं, **सत्राजित्**-सदा विजय प्राप्त करानेवाले हैं। **अगोह्यः**-किसी से भी संवृत नहीं किये जाने योग्य हैं। सारे ब्रह्माण्ड को आपने अपने में आवृत किया हुआ है। 'अगोह्यः' का भाव यह भी है कि प्रभु की महिमा कण कण में दृष्टिगोचर होती है, सो प्रभु का प्रकाश तो सर्वत्र है। (२) आप **गिरिः न**-उपदेष्टा के समान हैं। हृदयस्थरूपेण सदा सत्कर्मों की प्रेरणा दे रहे हैं। **विश्वतः पृथुः**-सब दृष्टिकोणों से विशाल हैं। आपका ज्ञान, बल व ऐश्वर्य सब अनन्त है। आप **दिवः पतिः**-प्रकाश के, ज्ञान के स्वामी हैं।

भावार्थ-प्रभु हमें विजय प्राप्त कराते हैं। ज्ञानोपदेश द्वारा वे हमारा कल्याण करते हैं।

ऋषिः—नृमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'ब्रह्माण्ड के शासक' प्रभु

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी। इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः॥ ५॥

(१) हे **सत्य**-सत्यस्वरूप **सोमपाः**=सोम का रक्षण करनेवाले प्रभो! आप **हि**-निश्चय से **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी को **अभि बभूथ**=अभिभूत करते हो। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपके वश में है। (२) हे **इन्द्र**-परमैश्वर्यवन् प्रभो! आप **सुन्वतः**-यज्ञशील पुरुष के व सोम का सम्पादन करनेवाले पुरुष के **वृधः**-बढ़ानेवाले **असि**=हैं। **दिवः**-द्युलोक के व प्रकाश के **पतिः**=स्वामी व रक्षक हैं। जो भी सोम का अपने जीवन में सम्पादन करता है, उसे आप स्वर्ग व प्रकाश प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ-प्रभु सारे ब्रह्माण्ड के शासक हैं। सोम का सम्पादन करनेवाले के रक्षक हैं। प्रकाश व सुख को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—नृमेधः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ छन्दः—ककुम्मत्युष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

'पुरांदर्ता'

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि। हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रु विद्रावक प्रभो! **त्वं हि**=आप ही **शश्वतीनाम्**-अनेक **पुराम्**-काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं की नगरियों के **दर्ता असि**=विदारण करनेवाले हैं। (२) इन नगरियों का विध्वंस करके आप **दस्योः**=हमारा उपक्षय करनेवाले के **हन्ता असि**-नष्ट करनेवाले हैं।

मनोः वृधः=विचारशील पुरुष का वर्धन करनेवाले हैं तथा **दिवः**=प्रकाश व स्वर्ग के **पतिः**=स्वामी हैं।

भावार्थ–शत्रु पुरियों का विदारण करके, दस्युओं के विध्वंस के द्वारा प्रभु विचारशील पुरुषों का वर्धन करते हैं और इनके जीवन को प्रकाशमय व सुखमय बनाते हैं।

ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

'महः कामान्' (महान् कामनायें)

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान्महः ससृज्महे। उदेव यन्त उदभिः॥ ७॥

(१) हे **गिर्वणः**-ज्ञान की वाणियों द्वारा उपासनीय **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अधा हि**=अब निश्चय से **त्वा उप**=आपके समीप ही **महः कामान्**=इन महान् कामनाओं को **ससृज्महे**=अपने में उत्पन्न कर पाते हैं। प्रभु की उपासना से उस महान् प्रभु का सम्पर्क हमारे में महान् ही कामनाओं को जन्म देता है। (२) **इव**=जैसे **उदा यन्तः**=पानी में से जाते हुए पुरुष **उदभिः**=जलों से अपने को संसृष्ट करनेवाले होते हैं।

भावार्थ–नदी से जानेवाले पुरुष जैसे जलों से संसृष्ट होते हैं, इसी प्रकार महान् प्रभु के सम्पर्कवाले पुरुष महान कामनाओं से संसृष्ट हो पाते हैं। इनके अन्दर तुच्छ कामनायें उत्पन्न ही नहीं होती।

ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

स्तुति-प्रभु प्रकाश-दुरित दूरीकरण

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि। वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे॥ ८॥

(१) **न**-जैसे **यव्याभिः**=यवों के क्षेत्रों के उद्देश्य से **वाः**=जल को **वर्धन्ति**=बढ़ाते हैं। जलों के द्वारा ही यव क्षेत्रों ने बढ़ना होता है। एवं हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **यव्याभिः**=(यु अमिश्रणे) बुराइयों को पृथक् करने के उद्देश्य से **ब्रह्माणि**=हमारी स्तुति-वाणियाँ **त्वा वर्धन्ति**=आपको बढ़ाती हैं। (२) हे **अद्रिवः**=आदरणीय व वज्रहस्त प्रभो! **वावृध्वांसं चित्**=सब दृष्टिकोणों से बढ़े हुए भी आपको **दिवे दिवे**=प्रतिदिन हमारी स्तुतिवाणियाँ बढ़ाती हैं। इन स्तुतिवाणियों के द्वारा ही हम अपने अन्दर आपके प्रकाश को अधिक और अधिक बढ़ा पाते हैं।

भावार्थ–स्तवन के द्वारा प्रभु के प्रकाश का अपने अन्दर वर्धन करते हुए हम अपने जीवन से बुराइयों को दूर करें।

ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

इन्द्रवाहा, वचोयुजा

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे। इन्द्रवाहा वचोयुजा॥ ९॥

(१) **इषिरस्य**=उस सर्वप्रेरक, सबको गति देनेवाले प्रभु की **गाथया**=गुणगाथा के साथ **हरी**=इन्द्रियाश्वों को **उरौ रथे**=इस विशाल शरीर-रथ में **युञ्जन्ति**=जोतते हैं। उस रथ में इनको जोतते हैं जो **उरुयुगे**=विशाल युगवाला है, मन ही युग है, यह आत्मा व इन्द्रियों को जोड़नेवाला है। (२) ये **इन्द्रियाश्ववाहा**=जितेन्द्रिय पुरुष का लक्ष्य की ओर वहन करनेवाले हैं, इस जितेन्द्रिय पुरुष को ये प्रभु के समीप प्राप्त कराते हैं। **वचोयुजा**=ये इन्द्रियाश्व वेदवाणी के अनुसार कार्यों में प्रवृत्त होनेवाले हैं।

भावार्थ–प्रेरक प्रभु का गुणगान करनेवाला व्यक्ति इन्द्रियाश्वों को शरीर रथ में वेदवाणी के निर्देश के अनुसार युक्त कर प्रभुरूप लक्ष्य की ओर बढ़ता है।

ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

ओजः-नृम्णं

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे। आ वीरं पृतनाषहम्॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**-आप **नः**-हमारे लिये **ओजः**-बल को तथा **नृम्णम्**-धन को **आभर**-प्राप्त कराइये। (२) हे **शतक्रतो**-अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले **विचर्षणे**=सब के द्रष्टा प्रभो! आप हमें **पृतनाषहम्**-शत्रु-सेनाओं का अभिभव करनेवाले **वीरम्**=वीर सन्तान को **आ (भर)**=प्राप्त कराइये।

भावार्थ–प्रभु का उपासन करते हुए हम बल, धन तथा वीर सन्तान को प्राप्त करके सुखी जीवनवाले हों।

ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

सुम्नम्

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे॥ ११॥

(१) हे **वसो** सब को अपने में बसानेवाले प्रभो! **त्वं हि**-आप ही **नः पिता**=हमारे पिता हैं। हे **शतक्रतो**-अनन्त सामर्थ्य व प्रज्ञानवाले प्रभो! **त्वम्**-आप ही हमारी **माता बभूविथ**=माता हैं। (२) **अधा**=सो अब **ते**-आप से ही **सुम्नम्**=सब सुखों की **ईमहे**=याचना करते हैं।

भावार्थ–हे प्रभो! आप ही हमारे पिता हैं, आप ही माता हैं, आप से ही हम सब सुखों की याचना करते हैं।

ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

सुवीर्यम्

त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो। स नो रास्व सुवीर्यम्॥ १२॥

(१) हे **शुष्मिन्**-शत्रुओं के शोषक बल से सम्पन्न! **पुरुहूत**=बहुतों के पुकारे जानेवाले **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व शक्ति से सम्पन्न प्रभो! **वाजयन्तम्**-हमारे साथ सम्पर्कवाले **त्वाम् उपब्रुवे**=आपको ही मैं पुकारता हूँ। (२) हे प्रभो! **सः**-वे आप **नः**=हमारे लिये **सुवीर्यं रास्व**=उत्तम शक्ति को दीजिये।

भावार्थ–सर्वशक्तिमान् प्रभु उपासक के साथ भी शक्ति को जोड़ते हैं। हमें भी प्रभु सुवीर्य को प्राप्त करायें।

अगले सूक्त में भी 'नृमेध' ही 'इन्द्र' का स्तवन कर रहा है–

९९. [नवनवतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—आर्चीस्वराड् बृहती॥ स्वरः—गान्धारः॥

भूर्णयः नरः

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः। स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्युप स्वसरमा गहि॥ १॥

(१) हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त–क्रियाशीलता रूप वज्र को हाथ में लिये हुए प्रभो! **त्वाम्**=आपको

ह्यः=बल, अर्थात् गत समय में तथा **इव**=(इदानीम्) अब भी ये **भूर्णयः**=भरणात्मक कर्मों में प्रवृत्त **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोग **अपीप्यन्**=स्तुतियों के द्वारा बढ़ाते हैं। (२) हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक प्रभो! **सः**=वे आप **इह**=यहाँ **स्तोमवाहसाम्**=स्तुति-समूहों का वहन करनेवाले इन उपासकों के स्तोत्र को **श्रुधि**=सुनिये। **स्व-सरम्**=आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाले इस उपासक को **उप आ गहि**=समीपता से प्राप्त होइये। नि० ३.४ में 'स्वसरम्' गृह का नाम है। तब अर्थ इस प्रकार होगा कि **स्वसरं उपागहि**=हमारे घर में प्राप्त होइये।

भावार्थ-भरणात्मक कर्मों में प्रवृत्त होकर हम प्रभु का उपासन करें। हम स्तोताओं की प्रार्थना को प्रभु सुने और हमें प्राप्त हो।

ऋषिः—नृमेघः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

प्रभु-स्मरण पूर्वक जीवन को सुभूषित करना

मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे त्वे आ भूषन्ति वेधसः।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः॥ २॥

(१) हे **सुशिप्र**=शोभन हनू (जबड़े) व नासिकाओं को प्राप्त करानेवाले, **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को देनेवाले प्रभो! **मत्स्वा**=आप इन साधनों द्वारा हमें आनन्दित करिये। **तत् ईमहे**=वही बात हम आप से माँगते हैं। **वेधसः**=ज्ञानी पुरुष **त्वे आभूषन्ति**=आप में निवास करते हुए अपने जीवन को सद् गुणों से भूषित करते हैं। (२) हे **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों से वननीय (उपासनीय) **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सुतेषु**=इन सब उत्पन्न पदार्थों में **तव**=आपके **श्रवांसि**=यश **उपयानि**=उपमानभूत हैं तथा **उक्थ्या**=प्रशंसनीय हैं। प्रत्येक पदार्थ आपकी महिमा को प्रकट कर रहा है।

भावार्थ-प्रभु ने हमें उत्तम जबड़े, नासिका व इन्द्रियाश्व प्राप्त कराके जीवन को आनन्दमय बनाने के साधन जुटा दिये हैं। हम प्रभु में निवास करते हुए इन साधनों के सदुपयोग कर जीवन को अलंकृत करनेवाले हों। प्रत्येक पदार्थ में प्रभु की महिमा को देखें।

ऋषिः—नृमेघः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृद्बृहती॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

श्रायन्त इव सूर्यम्

श्रायन्तइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत। वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम॥ ३॥

(१) **सूर्यम् इव**=सूर्य की तरह, अर्थात् जैसे सूर्य की धूप में पसीना आ जाता है, इसी प्रकार **श्रायन्तः**=(आयति To sweat) श्रम के कारण पसीने से तरवतर होते हुए **इन्द्रस्य**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **विश्वा इत् वसूनि**=इन सब पदार्थों को (धनों को) **भक्षत**=उपयुक्त करो। बिना श्रम के खाना पाप है। (२) **ओजसा**=ओजस्विता से, बल से **जाते**=उत्पन्न हुए-हुए अथवा **जनमाने**=आगे उत्पन्न होनेवाले धन में **भागं न**=अपने भाग के समान वसु को **प्रतिदीधिम**=धारण करें। हम काम से व बल से धनों का अर्जन करें। उन्हें अपने-अपने भाग के अनुसार बाँटकर खानेवाले बनें।

भावार्थ-धूप में जैसे पसीना आ जाता है, उसी प्रकार श्रम से पसीनेवाले होकर हम धनों को कमायें। उन्हें भाग के अनुसार बाँटकर खायें।

ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

'अनर्शराति वसुदा' प्रभु

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन्॥ ४॥

(१) उस **आनर्शरातिम्**=निष्पाप दानवाले (A sinless doner) **वसुदाम्**=धनों के दाता प्रभु को **उपस्तुहि**-स्तुत कर। **इन्द्रस्य**=परमैश्वर्यशाली प्रभु के **रातयः**=दान **भद्राः**=कल्याणकर हैं। (२) **सः**=वे प्रभु **अस्य विधतः**=प्रभु की पूजा करनेवाले की, उपासक की **कामम्**=कामना को **न रोषति**=हिंसित नहीं करते। ये प्रभु **मनः**=उपासक के मन को **दानाय चोदयन्**=दान के लिये प्रेरित करते हैं।

भावार्थ-हम उस वसुओं के देनेवाले प्रभु का स्तवन करें। प्रभु स्तोता की कामना को पूर्ण करते ही हैं। प्रभु हमारे मनों को दान के लिये प्रेरित करते हैं।

ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—पादनिचृद् बृहती॥ स्वरः—गान्धारः॥

'अशस्तिहा-विश्वतूः' प्रभु

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **प्रतूर्तिषु**=संग्रामों में **विश्वाः**=सब **स्पृधः**=स्पर्धाकारिणी शत्रु-सेनाओं को **अभि असि**=अभिभूत करनेवाले हैं। (२) आप **अशस्तिहा**=इन शत्रुओं से की जानेवाली हिंसाओं के हन्ता हैं। **जनिता**=इन शत्रुओं की हिंसा को पैदा करनेवाले हैं शत्रुओं से हमें हिंसित नहीं होने देते। हमें शत्रुओं के हिंसन के योग्य बनाते हैं। **विश्वतूः असि**=सब शत्रुओं के हिंसन करनेवाले आप ही हैं। **त्वम्**=आप ही **तरुष्यतः**=हिंसन करनेवालों को **तूर्य**=विनष्ट करिये।

भावार्थ-प्रभु ही संग्रामों में हमारे शत्रुओं का पराभव करते हैं। सब हिंसकों का हिंसन प्रभु ही करते हैं।

ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

प्रभु के बल का अनुगमन

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **ते**=आपके **तुरयन्तं शुष्मम्**=शत्रुओं का संहार करनेवाले बल का **क्षोणी**=द्यावापृथिवी **अनु ईयतुः**=अनुगमन करते हैं। **न**=जैसे **मातरा शिशुम्**=माता-पिता प्रेमवश छोटे बच्चे के पीछे-पीछे चलते हैं। (२) **ते मन्यवे**=आपके क्रोध के लिये **विश्वाः स्पृधः**=सब शत्रु-सैन्य **श्नथयन्त**=श्रथित व खिन्न हो जाते हैं। **यद्**=जब आप **वृत्रं तूर्वसि**=वृत्र को, ज्ञान के आवरणभूत 'काम' को विध्वस्त करते हैं। उस समय शत्रु सैन्य ढीले पड़ जाते हैं।

भावार्थ-प्रभु की शक्ति का ही सम्पूर्ण संसार अनुगमन करता है। प्रभु के मन्यु के सामने सब शत्रु शिथिल हो जाते हैं। प्रभु ही वृत्र का विनाश करते हैं।

ऋषिः—नृमेधः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृद् बृहती ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

'तुग्र्यावृध' प्रभु

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्। आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम्॥ ७॥

(१) **वः**=तुम्हारे **अजरम्**=जरा को दूर करनेवाले, **प्रहेतारम्**=शत्रुओं को दूर प्रेरित करनेवाले **अप्रहितम्**=किसी से भी पराषित न होनेवाले, **आशुम्**=वेगवान्, **जेतारम्**=शत्रुओं को पराजित करनेवाले, **हेतारम्**=शत्रुओं को दूर कम्पित करनेवाले प्रभु को **ऊती**=रक्षण के लिये **इतः**=द्यावापृथिवी प्राप्त होते हैं, अर्थात् प्रभु ही सबका रक्षण करते हैं। (२) उस प्रभु को रक्षा के लिये सब प्राप्त होते हैं जो **रथीतमम्**=रथ के सर्वोच्च संचालक हैं, **अतूर्तम्**=किसी से हिंसित होनेवाले नहीं। तथा **तुग्रयावृधम्**=शरीरस्थ रेतःकणरूप जलों का वर्धन करनेवाले हैं। वस्तुतः शत्रुओं का हिंसन करके, शरीर में शक्तिकणों के वर्धन के द्वारा ही, प्रभु हमारा रक्षण करते हैं।

भावार्थ—सम्पूर्ण द्यावापृथिवी रक्षण के लिये प्रभु को ही प्राप्त होते हैं। प्रभु शत्रुओं का हिंसन करके हमारा रक्षण करते हैं। वे रेतःकणरूप जलों का हमारे में वर्धन करते हैं।

ऋषिः—नृमेधः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

इष्कर्तारं अनिष्कृतं

इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूतिं शतक्रतुम्।
समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवानं वसूजुवम्॥ ८॥

(१) **इष्कर्तारम्**=सब के सञ्चालक, **अनिष्कृतम्**=अन्यों से अप्रेरित, **सहस्कृतम्**=सब बलों के उत्पादक, **शतभूतिम्**=सैंकड़ों रक्षासाधनों से युक्त, **शतक्रतुम्**=अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले, **समानम्**=(सं आनम्) सम्यक् प्राणित करनेवाले **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **अवसे**=रक्षण के लिये **हवामहे**=पुकारते हैं। (२) उस प्रभु को पुकारते हैं जो **वसवानम्**=सबको बसानेवाले हैं तथा **वसूजुवम्**=सब वसुओं के हमारे लिये प्रेरित करनेवाले हैं।.

भावार्थ—प्रभु सर्वसंचालक हैं। शत्रुओं को नष्ट करके हमारे में शक्ति का सम्पादन करते हैं। सबको आच्छादित करनेवाले व सब वसुओं को प्राप्त करानेवाले हैं। इन प्रभु को रक्षण के लिये हम पुकारते हैं।

जो प्रभु के बिना अपने को अधूरा समझता है वह 'नेम भार्गव' है, **नेम**=अधूरा। भार्गव=भृगु का अपत्य=खूब तपस्या की अग्नि में अपने को परिपक्व करनेवाला। तपस्या के द्वारा ही यह प्रभु को जान पाता है। उस समय प्रभु को यह अपने सच्चे मित्र के रूप में देखता है। प्रारम्भिक स्थिति में प्रभु की सत्ता के विषय में इसे सन्देह भी होता है। यह कहता है कि–

१००. [शततमं सूक्तम्]

ऋषिः—नेमो भार्गवः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

निमित्तमात्रं भव (सव्यसाचिन्)

अयं त एमि तन्वा पुरस्ताद्विश्वे देवा अभि मा यन्ति पश्चात्।
यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्रादिन्मया कृणवो वीर्याणि॥ १॥

(१) जीव प्रभु से प्रार्थना करता है कि **अयम्**=यह मैं **तन्वा**=इस शरीर के साथ **ते पुरस्तात्**=आपके सामने **एमि**=उपस्थित होता हूँ। **विश्वे देवाः**=सब देव **मा**=मेरे **पश्चाद्**

अभियन्ति-पीछे आते हैं, अर्थात् सब दिव्य गुण मुझे प्राप्त होते हैं। प्रभु के सामने उपस्थित होने पर सब दिव्य गुणों का हमारे में प्रवेश होता है। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यदा**=जब **मह्यम्**=मेरे लिये **भागं दीधरः**=भाग को धारण करते हैं, मुझे जब आपके भजनीय गुण प्राप्त होते हैं **आत् इत्**=तब शीघ्र ही **मया**-मेरे द्वारा आप **वीर्याणि कृणवः**=शक्तिशाली कार्यों को करते हैं। मैं आपका माध्यम बन जाता हूँ। और आपकी शक्ति से मेरे द्वारा सब कार्य होने लगते हैं। मैं आपका ही भक्त बन जाता हूँ। मेरे द्वारा आपसे किये जानेवाले सब कार्य महान् होते हैं।

भावार्थ-हम प्रभु के सामने उपस्थित हों, हमें प्रभु के दिव्य गुण प्राप्त होंगे। जब प्रभु हमें भजनीय दिव्य गुणों को धारण करायेंगे, तो हमारे द्वारा महान् कार्य हो रहे होंगे।

ऋषिः—नेमो भार्गवः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—निचृत्त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'दक्षियातः सखा' (पूर्ण विश्वसनीय मित्र प्रभु)

दधामि ते मधुनो भक्षमग्रे हितस्ते भागः सुतो अस्तु सोमः।
असश्च त्वं दक्षिणतः सखा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि॥ २॥

(१) हे प्रभो! **ते**=आपके **मधुनः**=इस जीवन को मधुर बनानेवाले सोम के **भक्षम्**=भोजन को, शरीर के अन्दर धारण को **अग्रे दधामि**=सब से पहले स्थापित करता हूँ। मैं सोमरक्षण को अपना मूल-कर्त्तव्य बनाता हूँ। **सुतः सोमः**-शरीर में उत्पन्न सोम **ते**=आपकी प्राप्ति के लिये **हितः भागः अस्तु**=शरीर में सुरक्षित भजनीय वस्तु बने। सोमरक्षण के द्वारा मैं आपको प्राप्त करनेवाला बनूँ। (२) **च**=और हे प्रभो! इस सोमरक्षण के होने पर **त्वम्**=आप **मे**=मेरे **दक्षिणतः सखा**=दाहिने हाथ के रूप में मित्र पूर्ण विश्वसनीय मित्र **असः**=हों। आपको मित्र रूप में पाकर **अधा**=अब **वृत्राणि**=वृत्रों को, वासनाओं को **भूरि जङ्घनाव**=खूब ही विनष्ट करें।

भावार्थ-हम सोमरक्षण को प्राथमिकता दें। इसके रक्षण को ही प्रभु प्राप्ति का साधन जानें। आप मेरे विश्वसनीय मित्र हों। हम दोनों मिलकर वासना रूप शत्रुओं का खूब ही विनाश करें।

ऋषिः—नेमो भार्गवः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

प्रभु में पूर्ण विश्वास व प्रभु-स्तवन

प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति।
नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श कमभि ष्टवाम॥ ३॥

(१) **वाजयन्तः**=शक्ति की कामना करते हुए तुम **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिये **स्तोमम्**=स्तुति को **प्र सु भरत**=प्रकर्षेण सम्पादित करो। **सत्यं अस्ति**=यदि प्रभु सत्य हैं, तो उनके लिये **सत्यम्**=सत्य ही स्तोम का सम्पादन करो। हृदय में प्रभु सत्ता की सत्यता में विश्वास करते हुए तुम प्रभु का हृदय से सच्चा ही स्तवन करो। (२) **नेमः उ त्वः**=अधूरे ज्ञानवाला ही कोई व्यक्ति (त्वः) **इति आह**-यह कहता है कि **इन्द्रः न अस्ति**=परमैश्वर्यशाली प्रभु नहीं है। **कः ईं ददर्श**=किसने इस प्रभु को देखा है? **कं अभिष्टवाम्**=किसका स्तवन हम करें? (३) अपरिपक्वता में ऐसे ही विचार उठते हैं। धीमे-धीमे तपस्या की अग्नि में परिपक्व होने पर ज्ञान वृद्धि के परिणामस्वरूप वह संसार के प्रत्येक पदार्थ में प्रभु की सत्ता का अनुभव करने लगता है।

भावार्थ-प्रभु के लिये हृदय से सचमुच स्तवन करो, प्रभु सत्ता में पूर्ण विश्वास रक्खो। ज्ञान की अपरिपक्वता के स्थिति में प्रभु की सत्ता में सन्देह होने लगता है।

ऋषिः—इन्द्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—पादनिचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

'आदर्दिरः'

अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि॥ ४॥

(१) प्रभु सत्ता के विषय में संदिग्ध स्तोता से प्रभु कहते हैं कि हे **जरितः**=स्तोतः! **अयं अस्मि**=मैं तो ये तेरे सामने ही हूँ, **मा**=मुझे **इह**=यहाँ **पश्य**=देख। इस जगत् के प्रत्येक पदार्थ में तुझे मेरी सत्ता दिखेगी। **विश्वा जातानि**=सब उत्पन्न पदार्थों को **मह्ना**=अपनी महिमा से **अभ्यस्मि**=अभिभूत करनेवाला हूँ। (२) **ऋतस्य प्रदिशः**=सत्य के उपदेष्टा लोग **मा वर्धयन्ति**=मेरा वर्धन करते हैं। सत्य ज्ञान को प्राप्त करनेवाले ज्ञानी प्रभु की महिमा को देखते हुए उसका सब के लिये प्रतिपादन करते हैं। प्रभु कहते हैं कि मैं **आदर्दिरः**=समन्तात् सब लोकों का विदारण करनेवाला हूँ। प्रलय के समय मैं ही **भुवना**=सब भुवनों को **दर्दरीमि**=विदीर्ण करता हूँ। वर्तमान में भी उपासकों के शत्रुओं का मैं ही विदारण (विनाश) करता हूँ।

भावार्थ—ज्ञान के होने पर सब पदार्थों में प्रभु की महिमा दिखती है। पदार्थों के प्रलय में किसी अनन्त शक्ति का हाथ दिखता ही है। वासनारूप शत्रुओं का भी तो हमारे लिये विदारण बड़ा कठिन होता है। इनका विदारण करनेवाली शक्ति वे प्रभु ही हैं।

ऋषिः—इन्द्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

शिशु के साथ बात

आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखायः॥ ५॥

(१) प्रभु कहते हैं कि—**ऋतस्य वेनाः**=ऋत की, यज्ञ की कामनावाले **यत्**=जब **मा अरुहन्**=मुझे प्राप्त होते हैं, मेरा आरोहण करते हैं। उस मेरा, जो **एकम्**=अद्वितीय हूँ और **हर्यतस्य**=(हर्य गतिकान्त्योः) गतिमय चमकनेवाली इस प्रकृति के **पृष्ठे आसीनम्**=पृष्ठ पर आसीन हूँ। मेरे से अधिष्ठित प्रकृति ही तो चराचर को जन्म देती है। (२) उस समय **मनः चित् मे**=मन निश्चय से मेरा हो जाता है। यह प्रभु में लीन मन **हृदे आ प्रत्यवोचत्**=हृदय के लिये प्रतिवचन को कहता है—हृदयस्थ प्रभु के साथ बातचीत ही करता है। **सखायः**=ये प्रभु के मित्र लोग **अन्तः**=हृदय के अन्दर उस **शिशुम्**=अविद्या आदि दोषों के तनू कर्ता प्रभु को **अचिक्रदन्**=पुकारते हैं। हृदयस्थ प्रभु की आराधना करते हैं। अपने दोषों के क्षय के लिये प्रभु को पुकारते हैं।

भावार्थ—हम ऋत की कामनावाले होकर प्रभु को प्राप्त हों। प्रभु से अधिष्ठित प्रकृति को ही चराचर को जन्म देती हुई जानें। प्रभु में मन को लगाकर हृदयस्थ प्रभु से बात करें, दोषों का क्षय करनेवाले उस प्रभु को ही पुकारें।

ऋषिः—नेमो भार्गवः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृज्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

'पारावतं पुरुसम्भृतं' वसु

विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थ मघवन्निन्द्र सुन्वते।
पारावतं यत्पुरुसंभृतं वस्वपावृणोः शरभाय ऋषिबन्धवे॥ ६॥

(१) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **या**=जिन कर्मों को आप **सुन्वते**=

सोमाभिषव करनेवाले, शरीर में सोम का सम्पादन करनेवाले, पुरुष के लिये **चकर्थ**-करते हैं, **ते**-आपके **ता**-वे **विश्वा इत्**-सब कर्म ही **सवनेषु**=यज्ञों में, शुभकर्मों के प्रसंगों में **प्रवाच्या**=प्रवचन के योग्य होते हैं। यज्ञों में एकत्र होने पर लोग उन कर्मो का गायन करते हैं। (२) आप **यत्**=जो **पारावतम्**=(पारः च अवतः च) संसार सागर से पार लगानेवाला और सबका रक्षण करनेवाला, **पुरुसंभृतम्**=खूब ही सम्भरण करनेवाला (पुरु सम्भृतं यस्मात्) **वसु**-धन है, उसे **शरभाय**-वासनाओं का हिंसन करनेवाले **ऋषिबन्धव**-वेदज्ञान को अपने साथ बाँधनेवाले ज्ञानी पुरुष के लिये **अपावृणोः**=अपावृत करते हैं।

भावार्थ-प्रभु सोमरक्षण करनेवाले पुरुष को अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त कराते हैं। वासनाओं का हिंसन करनेवाले ज्ञानी पुरुष को उत्तम रक्षक व भवबन्धनछेदक वसुओं को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—नेमो भार्गवः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

वृत्र के मर्म पर वज्र प्रहार

प्र नूनं धावता पृथङ् नेह यो वो अवावरीत्।
नि षीं वृत्रस्य मर्मणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत्॥ ७॥

(१) **नूनम्**-निश्चय से जो वृत्र (काम) नामक शत्रु **प्रधावता**=तुम्हारी ओर प्रकर्षेण दौड़ता है। **यः**-जो **इह**-इस जीवन में **पृथङ् न**=तुम्हारे से पृथक् नहीं होता है, अपितु **वः**=तुम्हें **अवावरीत्**=आवृत किये रहता है, तुम्हारे पर परदे के रूप में पड़ा रहता है। उस **वृत्रस्य**=ज्ञान की आवरणभूत काम-वासना के **मर्मणि**=मर्मस्थल पर **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **वज्रम्**-वज्र को **सीम्**-निश्चय से **नि अपीपतत्**-गिराता है, वज्र द्वारा उसका विनाश कर देता है। (२) काम-वासना हमारे पर निरन्तर आक्रमण करती है, हमें यह घेरे रहती है। प्रभु की कृपा से ही हम क्रियाशीलता द्वारा इस पर विजय पाने में समर्थ होते हैं। क्रियाशीलता ही वज्र है, जो इसका विनाश करती है।

भावार्थ-प्रभु-स्मरण के साथ सतत क्रियाशील बनकर हम वासना को विनष्ट करें।

ऋषिः—नेमो भार्गवः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—अनुष्टुप्॥ **स्वरः**—गान्धारः॥

आयसीं पुरं अतरत्

मनोजवा अयमान आयसीमतरत्पुरम्। दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत॥ ८॥

(१) **मनोजवाः**-मन में क्रिया के वेगवाला मन में सदा कर्मों के संकल्पोंवाला **अयमानः**=गतिशील जीव **आयसीं पुरम्**-लोहे के समान दृढ़ इस शरीर नगरी को **अतरत्**=तैर जाता है, पार कर जाता है। सदा कर्ममय जीवनवाला, वासनाओं के बन्धन में न फँसता हुआ यह शरीर-बन्धन से ऊपर उठ जाता है। (२) यह **सुपर्णः**-सम्यक् पालन व पूरण करनेवाला व्यक्ति **दिवम्**-द्युलोक को **गत्वाय**-जाकर प्रकाशमय लोक को प्राप्त करके ज्ञानमय जीवन वाला होकर **वज्रिणे**=उस वज्रहस्त प्रभु की प्राप्ति के लिये **सोमं आभरत्**=शरीर में सोम का भरण करता है। सोमरक्षण द्वारा ही उस सोम प्रभु की प्राप्ति होती है।

भावार्थ-सदा क्रियाशील जीवनवाले बनकर हम शरीर-बन्धन से ऊपर उठें। प्रकाशमय जीवनवाले होकर, सोमरक्षण करते हुए हम प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—नेमो भार्गवः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

(प्रभु प्राप्ति के तीन उपाय) समुद्र में प्रभु का शयन

समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः। भरन्त्यस्मै संयतः पुरःप्रस्रवणा बलिम्॥ ९॥

(१) वह प्रभु **समुद्रे अन्तः** (स+मुद्)=प्रसादयुक्त हृदय में, मनः प्रसादवाले व्यक्ति में **शयते**=शयन करता है। प्रभु का निवास प्रसन्न हृदय में ही तो होता है। वह **वज्रः**=क्रियाशील प्रभु **उद्ना**=शरीरस्थ रेतःकण रूप जलों के द्वारा **अभीवृतः**=आभिमुख्येन वृत होता है, रेतःकणों का रक्षक पुरुष ही प्रभु का वरण कर पाता है। (२) **अस्मै**=इस प्रभु की प्राप्ति के लिये **संयतः**=संयमवाले पुरुष, **पुरः प्रस्रवणाः**=आगे और आगे गतिवाले पुरुष **बलिं भरन्ति**=उत्तम कर्मों के उपहार को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति का उपाय यह है कि–(क) हम मन को प्रसादयुक्त (निर्मल) करें, (ख) शरीर में रेतःकणों का रक्षण करें, (ग) कर्त्तव्य कर्मों को करने के द्वारा प्रभु का अर्चन करें।

ऋषिः—नेमो भार्गवः॥ देवता—वाक्॥ छन्दः—विराट् त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

'राष्ट्री मन्द्रा' वेदवाणी

यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम॥ १०॥

(१) **यद्**=जब **वाग्**=यह प्रभु से दी गयी वेदवाणी **अविचेतनानि**=अप्रज्ञात अर्थों को **वदन्ती**=प्रज्ञापित करती हुई **देवानां निषसाद**=देवों के हृदय में आसीन होती है, तो यह **राष्ट्री**=उनका दीपन करनेवाली व **मन्द्रा**=आनन्द की जननी होती है। (२) यह वेदवाणी **चतस्रः**=चारों दिशाओं के प्रति, सब दिशाओं में रहनेवाले मनुष्यों के प्रति **ऊर्जं दुदुहे**=बल व प्राणशक्ति का प्रपूरण करती है। **पयांसि**=आप्यायनों व वर्धनों को करनेवाली होती है, सब अंगों की शक्ति का आप्यायन करती है। अथवा **ऊर्जं पयांसि**=अन्नों व दुग्धों को देनेवाली होती है। ज्ञान देकर मनुष्य का इन वस्तुओं के उत्पादन व अर्जन के योग्य बनाती है। **अस्याः**=इसका **परमम्**=परम, अन्तिम, सर्वोत्तम, प्रतिपाद्य विषय प्रभु तो **क्व स्वित्**=कहीं ही **जगाम**=प्राप्त होता है। अर्थात् प्रभु को तो इस वेदवाणी के द्वारा विरल व्यक्ति ही जान पाते हैं। परन्तु विरल वेदाध्येता ही इसके द्वारा उस प्रभु को प्राप्त करते हैं। ये कुछ व्यक्ति ही मोक्ष सुख को पानेवाले होते हैं।

भावार्थ—वेदवाणी देवों के हृदय में स्थित होती हुई अर्थों का ज्ञान देती है, उनके हृदयों को दीप्त करती है, आनन्दमय बनाती है। यह सब के लिये बल प्राणशक्ति व आप्यायन (वर्धन) को प्राप्त कराती है। कुछ ज्ञानी पुरुष इसके अन्तिम प्रतिपाद्य विषय प्रभु को भी जान पाते हैं।

ऋषिः—नेमो भार्गवः॥ देवता—वाक्॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

वाग् धेनुः

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु॥ ११॥

(१) **देवीम्**=सब विज्ञानों का द्योतन (प्रकाश) करनेवाली **वाचम्**=इस वेदवाणी को **देवाः**=देववृत्ति के ज्ञानी पुरुष **अजनयन्त**=अपने हृदयों में प्रादुर्भूत करते हैं। **ताम्**=उस वेदवाणी को **विश्वरूपाः**=विश्व का निरूपण करनेवाले, वेदवाणी के द्वारा विश्व का ज्ञान प्राप्त करनेवाले **पशवः**=द्रष्टा पुरुष **वदन्ति**=लोगों के लिये उपदिष्ट करते हैं। (२) **सा**=वह **वाग् धेनुः**=वेदवाणी

रूप गौ **नः**-हमारे लिये **मन्द्रा**-आनन्द की जनक, **इषं ऊर्जं दुहाना** अन्न व रस को प्राप्त करानेवाली, **सुष्टुता**-हमारे से सम्यक् स्तुत हुई-हुई **अस्मान् उपैतु**-हमें समीपता से प्राप्त हो।

भावार्थ-यह वेदवाणी देव पुरुषों के हृदयों में प्रादुर्भूत होती है। ये द्रष्टा पुरुष लोगों के लिये इसका उपदेश करते हैं। वह हमारे लिये आनन्द को देनेवाली, अन्न-रस का दोहन करनेवाली वेदवाणी रूप गौ हमारे से स्तुत हो और हमें प्राप्त हो।

ऋषिः—नेमो भार्गवः॥ **देवता**—इन्द्रः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

प्रकाश की प्राप्ति

सखे॑ विष्णो वित॒रं वि क्र॑मस्व॒ द्यौर्दे॒हि लो॒कं वज्रा॑य वि॒ष्कभे॑।
हना॑व वृ॒त्रं रि॒णचा॑व॒ सिन्धू॒निन्द्र॑स्य यन्तु प्रस॒वे विसृ॑ष्टाः॥ १२॥

(१) हे **सखे**-मित्र **विष्णो**=व्यापक प्रभो! **वितरं विक्रमस्व**=हमारे शत्रुओं पर खूब ही आक्रमण करिये। इन काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट करके **द्यौः देहि**-प्रकाश को दीजिये। तथा **वज्राय विष्कभे**-क्रियाशीलतारूप वज्र को धारण करने के लिये **लोकम्**-प्रकाश को प्राप्त कराइये। आप से दिये गये प्रकाश में हम अपने कर्त्तव्यपथ को सम्यक् देखनेवाले हों। (२) हे प्रभो! आप से मिलकर हम **वृत्रं हनाव**-वृत्र का विनाश कर पायें, काम का विध्वंस कर सकें। काम विध्वंस द्वारा **सिन्धून्**=ज्ञानप्रवाहों को **रिणचाव**=गतिवाला करें। हमारी तो एक ही कामना है कि **विसृष्टाः**-काम आदि शत्रुओं के बन्धन से मुक्त हुए हमारे सब बन्धु **इन्द्रस्य प्रसवे**=उस शासक प्रभु की अनुज्ञा में **यन्तु**-गतिवाले हों। प्रभु की आज्ञानुसार सब वर्तनेवाले हों।

भावार्थ-प्रभु हमारे शत्रुओं का अत्यन्त विनाश करें। प्रकाश को प्राप्त करायें। उस प्रकाश के अनुसार हम कर्म करें। प्रभु के साथ मिलकर वासना को विनष्ट करें, ज्ञानप्रवाहों को प्रवृत्त करें। सब लोग वासनामुक्त होकर प्रभु के निर्देश के अनुसार चलें।

वासनाओं से मुक्ति के कारण यह 'जमदग्नि' बनता है, खूब दीप्त जाठराग्निवाला व प्रज्वलित यज्ञाग्निवाला यह 'मित्रावरुणौ' को अपने अनुकूल करने के लिये यत्नशील होता है-

१०१. [एकोत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—जमदग्निभार्गवः॥ **देवता**—मित्रावरुणौ॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

देवतातये-अभिष्टये-हव्यदातये

ऋध॑गि॒त्था स मर्त्यः॑ शश॒मे दे॒वता॑तये। यो नू॒नं मि॒त्रावरु॑णाव॒भिष्ट॑य आच॒क्रे ह॒व्यदा॑तये॥ १॥

(१) **ऋधक्**-विशेषकर **इत्था**=सचमुच वह पुरुष **शशमे**=शमवाला, शान्तिवाला बनता है, जो **देवतातये**-दिव्य गुणों के विस्तार के लिये यत्नशील होता है। (२) **यः**-जो **नूनम्**=निश्चय से **मित्रावरुणौ**=स्नेह व निर्द्वेषता (द्वेष निवारण) के भावों को **आचक्रे**=अपने अन्दर उत्पन्न करता है, वह **अभिष्टये**-रोगों व वासनाओं पर आक्रमण के लिये होता है, और **हव्यदातये**=हव्य के देने के लिये होता है, अर्थात् यज्ञ करता है।

भावार्थ-हम शम की साधना करके दिव्य गुणों का विस्तार करें। स्नेह व निर्द्वेषता को धारण करते हुए वासनाओं पर आक्रमण करें और यज्ञशील बनें।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवःङ्क देवता—मित्रावरुणौङ्क छन्दः—पं-ःङ्क स्वरः—पञ्चमःङ्क

मित्रावरुणौ

वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा।
ता बाहुता न दंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः॥ २॥

(१) मित्र और वरुण, अर्थात् स्नेह व द्वेष-निवारण (निर्द्वेषता) के भाव **वर्षिष्ठक्षत्रा**=अतिशयेन प्रवृद्ध बलवाले हैं और **उरु चक्षसा**=विशाल दृष्टि व ज्ञान प्रकाशवाले हैं। ये **नराः**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले, **राजाना**=जीवन को दीप्त बनानेवाले व **दीर्घश्रुत्तमा**=अन्धकार विदारक शास्त्र ज्ञानवाले हैं। मित्र और वरुण हमें विद्वान् बनाते हैं। (२) **ता**=वे मित्र और वरुण **बाहुता न**=दोनों भुजाओं के समान, **सूर्यस्य रश्मिभिः साकम्**=सूर्य की किरणों के साथ **दंसना रथर्यतः**=कर्मों को प्राप्त करते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता के भावों के होने पर मनुष्य ज्ञान के प्रकाश में यज्ञादि उत्तम कार्यों में तत्पर रहता है।

भावार्थ-स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमारे बल का वर्धन करते हैं, दृष्टि को विशाल बनाते हैं, हमें उन्नतिपथ पर ले चलते हैं। दीप्त व ज्ञानयुक्त जीवनवाला बनाते हैं। यज्ञ आदि कर्मों में हमें प्रवृत्त रखते हैं।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवःङ्क देवता—मित्रावरुणौङ्क छन्दः—गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

अजिरः दूतः

प्र यो वां मित्रावरुणाजिरो दूतो अद्रवत्। अयःशीर्षा मदेरघुः॥ ३॥

(१) हे **मित्रावरुणा**=स्नेह व द्वेषनिवारण के भावो! **यः**=जो **वाम्**=आपके प्रति **प्र अद्रवत्**=प्रकर्षेण गतिवाला होता है वह **अजिरः**=क्रियाशीलता द्वारा सब मलों को परे फेंकनेवाला व **दूतः**=अध्यात्म शत्रुओं को संतप्त करनेवाला होता है, राग-द्वेष उसके समीप नहीं फटकते। (२) यह मित्र और वरुण का उपासक **अयःशीर्षा**=हिरण्यालंकृत सिरवाला, अर्थात् स्थिर ज्ञान से सुशोभित मस्तिष्कवाला व **मदेरघुः**=उल्लासजनक सोम के सुरक्षित होने से तीव्र गतिवाला होता है। यह स्फूर्ति से कार्यों को करनेवाला होता है।

भावार्थ-स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमें क्रियाशील व सब वासनाओं को संतप्त करनेवाला बनाते हैं। इनसे हम स्थिरज्ञान से सुशोभित मस्तिष्कवाले व उल्लासपूर्वक कर्त्तव्य कर्मों को करनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवःङ्क देवता—मित्रावरुणौङ्क छन्दः—पं-ःङ्क स्वरः—पञ्चमःङ्क

बाहुभ्यां न उरुष्यतम्

न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे न संवादाय रमते।
तस्मान्नो अद्य समृतेरुरुष्यतं बाहुभ्यां न उरुष्यतम्॥ ४॥

(१) **यः**=जो कामासक्ति **संपृच्छे**=प्रभु विषयक सम्प्रश्न के लिये **न रमते**=आनन्दित नहीं होती, (कामासक्त पुरुष को प्रभु विषयक प्रश्न ही रुचिकर नहीं होता)। **पुनः**=फिर जो क्रोध **हवीतवे**=प्रभु को पुकारने के लिये **न** (रमते)=प्रीतिवाला नहीं होता, (क्रोध में प्रभु का नाम न लेकर वाणी अपशब्दों को ही बोलती है)। जो लोभ **संवादाय**=प्रभु विषयक वार्ता के लिये न (रमते) आनन्द का अनुभव नहीं करता। **नः**=हमें हे मित्र और वरुण, स्नेह व निर्द्वेषता के भाव! **अद्य**=आज **तस्मात् समृतेः**=इस वासना के आक्रमण से **उष्यतम्**=आप बचाओ। हम काम, क्रोध,

लोभ में न फँसकर प्रभु की चर्चा में स्वाद लें। प्रभु के विषय में ही सम्प्रश्न करें, प्रभु को ही पुकारें, परस्पर आत्मविषयक संवाद ही करनेवाले हों। (२) हे **मित्रावरुणौ**-स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! आप **बाहुभ्याम्**=अभ्युदय व निःश्रेयस विषयक प्रयत्नों के द्वारा, निरन्तर कर्मों में लगे रहने के द्वारा **नः**=हमें **उरुष्यतम्**-काम-क्रोध-लोभ के आक्रमण से बचायें।

भावार्थ-हम काम-क्रोध लोभ के आक्रमण से बचकर स्नेह व निर्द्वेषता का भाव धारण करते हुए प्रभु विषयक प्रश्नों को करें, प्रभु को पुकारें, प्रभु विषयक संवादों को करें। निरन्तर कर्त्तव्य कर्मों में लगे रहने के द्वारा हम इन शत्रुओं के आक्रमण से अपने को बचानेवाले हों।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवः॥ **देवता**—मित्रावरुणादित्याश्च॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'मित्र, अर्यमा व वरुण' का स्तवन

प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो। वरूथ्यं१ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत॥ ५॥

(१) हे **ऋतावसो**-ऋतरूपी वसुवाले, यज्ञ को ही अपना धन बनानेवाले, उपासक **मित्राय**-स्नेह की देवता के लिये **सचथ्यम्**-मेल में उत्तम, सम्यक् मेल के करानेवाले **वचः**=वचन का **प्र (गाय)**=यत्न कर। **अर्यम्णे**=(अरीन् यच्छति) शत्रुओं का नियमन करनेवाले अर्यमा के लिये **वरूथ्यम्**=उत्तम कवच काम करनेवाले वचन का प्र (गाय) गायन कर। इसी प्रकार **वरुणे**=वरुण के विषय में, द्वेष निवारण के पवित्र भाव के विषय में, **छन्द्यं वचः**=छादन में, उत्तम रक्षण में उत्तम वचन को बोल। मित्र, अर्यमा व वरुण की आराधना करता तू 'मित्र, अर्यमा और वरुण' ही बन। (२) **राजसु**-जीवन को दीप्त बनानेवाले इन 'मित्र, अर्यमा व वरुण' के विषय में **स्तोत्रम्**=स्तोत्र का **गायत**-गायन करो। इनका स्तवन करते हुए 'स्नेह, संयम व निर्द्वेपता' को धारण करो।

भावार्थ-हम 'मित्र' का स्तवन करते हुए परस्पर मेलवाले हों। 'अर्यमा' का स्तवन करते हुए शत्रुओं के आक्रमण से अपने को बचायें। 'वरुण' की आराधना ही हमारा छादन हो। इस प्रकार हमारा जीवन दीप्त बने।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवः॥ **देवता**—आदित्याः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

एकं जेन्यं वसु

ते हिन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वेकं पुत्रं तिसृणाम्। ते धामान्यमृता मर्त्यानामदब्धा अभि चक्षते॥ ६॥

(१) **ते**=वे गत मन्त्रों में वर्णित 'मित्र, अर्यमा व वरुण' **अरुणम्**-तेजस्वी (ऋ गतौ) हमें गतिशील बनानेवाले, **जेन्यम्**=विजयशील **वसु**-धन को **हिन्विरे**-प्राप्त कराते हैं। जो वसु **एकम्**-अद्वितीय है। तथा **तिसृणाम्**-शरीर, मन व बुद्धिरूपी पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक नामक तीनों लोकों का **पुत्रम्**=(पुनातित्रायते) पवित्र करनेवाला व त्राण करनेवाला है। (२) **अमृताः**=(न मृतं येभ्यः) मृत्यु से ऊपर उठानेवाले **अदब्धाः**-किसी से हिंसित न होनेवाले **ते**=वे मित्र, अर्यमा और वरुण **मर्त्यानाम्**=मनुष्यों के **धामानि**=तेजों का **अभिचक्षते**-ध्यान करते हैं, रक्षण करते हैं।

भावार्थ-स्नेह, संयम व निर्द्वेषता के द्वारा हमारा जीवन पवित्र व सुरक्षित बना रहता है। इनसे हमारे शरीर, मन व बुद्धि का तेज कायम रहता है।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

द्युमत्तम वचन व कर्म

आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा। उभा यातं नासत्या सजोषसा प्रति हव्यानि वीतये॥ ७॥

(१) प्राणापान 'नासत्या' कहलाते हैं—नासिका में होनेवाले हैं तथा सब असत्यों को दूर करनेवाले हैं। हे **नासत्या**=प्राणापानो! **मे**=मेरे **द्युमत्तमानि**=अतिशयेन ज्योतिर्मय ज्ञान के प्रकाश से युक्त **वचांसि**=वचन **उद्यता**=उद्यत हैं। **कर्त्वा**=मेरे कर्म भी उद्यत हैं। **उभा**=आप दोनों **सजोषसा**=समानरूप से प्रीतिवाले होते हुए **आयातम्**=हमें प्राप्त होवो। आपके द्वारा ही इन द्युमत्तम वचनों व कर्मों का सम्भव होगा। (२) आप दोनों **हव्यानि**=हव्य पदार्थों के सात्त्विक भोजनों के **वीतये**=भक्षण के लिये **प्रति (यातम्)**=प्रतिदिन प्राप्त होवो। अर्थात् हमारे प्राणापान सात्त्विक भोजनों को ही करनेवाले हों।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा हम ज्योतिर्मय ज्ञान की वाणियों को प्राप्त हों तथा ज्योतिर्मय कर्मों को करनेवाले बनें। इस साधना में हमारा भोजन बड़ा सात्त्विक हो।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवः॥ **देवता**—अश्विनौ॥ **छन्दः**—पङ्क्तिः॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

'अरक्षस् राति'

रातिं यद्वामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू।
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्ताविंत नरा गृणाना जमदग्निना॥ ८॥

(१) हे **वाजिनीवसू**=शक्तिरूप धनवाले प्राणापानो! **यद्**=जब हम **वाम्**=आपकी **अरक्षसम्**=सब राक्षसी भावों को दूर करनेवाली **रातिम्**=देन को **युवाभ्याम्**=आप से **हवामहे**=माँगते हैं, तो आप **प्राचीम्**=हमें उन्नतिपथ पर आगे और आगे ले चलनेवाली **होत्राम्**=वाणी को, वेदवाणी को **प्रतिरन्तौ**=बढ़ाते हुए आप **इतम्**=हमें प्राप्त होते हो। (होत्रा=वाक् नि० १।११) इस ज्ञान की वाणी के द्वारा ही सब राक्षसी भावों का अन्त होता है। सो यह आपकी देन वस्तुतः 'अरक्षस्' है। (२) हे प्राणापानो! आप **नरा**=हमें उन्नतिपथ पर आगे और आगे ले चलनेवाले हो। **जमदग्निना**=प्रज्वलित जाठराग्निवाले से **गृणाना**=आप स्तुतमात्र होते हो। आपके द्वारा ही यह शरीरस्थ **वैश्वानर**=अग्नि सदा चतुर्विध भोजनों का पाचन करती है। एक जमदग्नि पुरुष प्राणापान की महिमा का अनुभव करता है उनके गुणों का स्तवन करता है।

भावार्थ—प्राणापान की साधना से हमें वह ज्ञान की वाणी प्राप्त होती है, जो हमारे सब राक्षसी भावों का विनाश करके हमें दिव्य जीवनवाला बनाती है।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवः॥ **देवता**—वायुः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

दिविस्पृश यज्ञ

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः।
अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानोऽयं शुक्रो अयामि ते॥ ९॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि हे **वायो**=(वा गतौ) जीवन को सदा गतिमय रखनेवाले पुरुष! **नः**=हमारे **दिविस्पृशम्**=ज्ञान में स्पर्श करानेवाले **यज्ञम्**='माता, पिता, आचार्य' आदि देवों के पूजनरूप यज्ञ को **आयाहि**=तू प्राप्त हो (यज् देवपूजायाम्)। (२) **अन्तः पवित्रे**=पवित्र हृदय में **सुमन्मभिः**=उत्तम मननपूर्वक की गई स्तुतियों से **अयम्**=यह **शुक्रः**=शरीर में उत्पन्न सोम **उपरि श्रीणानः**=ऊर्ध्वगतिवाला होता हुआ परिपक्व हो जाता है। **ते अयामि**=इस सोम को मैं तेरे लिये **अयामि**=प्राप्त कराता हूँ। यह सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। इसका शरीर में यही सर्वोत्तम विनियोग है।

भावार्थ—'माता, पिता, आचार्य' आदि देवों के आदर व अनुगमन से मैं ज्ञान को बढ़ाऊँ।

स्तुतियों के द्वारा हृदय को पवित्र करते हुए हम सोम की शरीर में ऊर्ध्व गति करें।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवः॥ **देवता**—वायुः॥ **छन्दः**—स्वराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

अध्वर्यु का ऋजुतम मार्गों से गमन

वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये।

अधा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम्॥ १०॥

(१) **अध्वर्युः**=यज्ञशील पुरुष **रजिष्ठैः पथिभिः**=ऋजुतम, सरल, छलछिद्रशून्य मार्गों से **वेति**=जाता है (गच्छति)। यह **हव्यानि**=हव्य पदार्थों के सात्त्विक भोजनों के ही **प्रति वीतये**=प्रतिदिन भक्षण के लिये होता है। सात्त्विक भोजन से सात्त्विक बुद्धिवाला होकर, यह कुटिलता से कभी कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता। (२) हे **नियुत्वः**=कर्त्तव्यों में लगे हुए प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले जीव! **नः**=हमारे **उभयस्य**=अभ्युदय व निःश्रेयस के साधक अथवा ज्ञान व बल दोनों के साधक **सोमं पिब**=सोम का तू शरीर में ही रक्षण कर। यह सोम **शुचिम्**=जीवन को पवित्र बनानेवाला है। **गवाशिरम्**=(गो-शृ) ज्ञान की वाणियों द्वारा सब मलिनताओं का संहार करनेवाला है। शरीर में सुरक्षित सोम मन को पवित्र व बुद्धि को दीप्त बनाता है।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनकर सरल मार्गों से चलें, सात्त्विक भोजनों का सेवन करें। क्रियाशील बनकर सोम का रक्षण करें। सुरक्षित सोम पवित्रता व ज्ञानवृद्धि का साधन बनता है।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवः॥ **देवता**—सूर्यः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सूर्य-आदित्य

बण्महाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि। महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि॥ ११॥

(१) हे **सूर्य**=हे सृष्टि के समय सम्पूर्ण जगत् के उत्पादक (षू) प्रभो! आप **बट्**=सचमुच **महान् असि**=महान् हैं। हे **आदित्य**=प्रलय के समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर ले लेनेवाले (आदानात्) प्रभो! आप **बट्**=सचमुच महान् **असि**=पूजनीय हैं। **महः सतः ते**=महान् होते हुए आपकी **महिमा**=महत्ता **पनस्यते**=हमारे से स्तुत होती है, हम आपकी महिमा का गायन करते हैं। हे **देव**=सब कुछ देनेवाले, दीप्त व उपासकों को दीप्त करनेवाले प्रभो! आप **अद्धा**=सचमुच ही **महान् असि**=महान् हैं।

भावार्थ—सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करनेवाले प्रभु 'सूर्य' हैं। अन्त में सबको अपने अन्दर ले लेनेवाले प्रभु 'आदित्य' हैं। उस महान् प्रभु की महिमा का हम सदा गायन करें।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवः॥ **देवता**—सूर्यः॥ **छन्दः**—भुरिग्बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

(देवानाम्) असुर्यः पुरोहितः

बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि।

मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्॥ १२॥

(१) हे **सूर्य**=सम्पूर्ण जगत् के उत्पादक प्रभो! आप **बट्**=सचमुच ही **श्रवसा**=ज्ञान के हेतु से **महान् असि**=महान् हैं, पूजनीय हैं। आपके पूर्ण ज्ञान के कारण आपका बनाया यह संसार भी पूर्ण है। हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! आप **सत्रा**=सचमुच ही **महान् असि**=महान् हैं। (२) आप अपनी **मह्ना**=महिमा से **देवानां असुर्यः**=देवों के अन्दर प्राणशक्ति का सञ्चार करनेवाले हैं (असून् राति) और **पुरोहितः**=हितोपदेष्टा हैं। आप तो एक **विभु**=व्यापक व **अदाभ्यम्**=अहिंस्य

ज्योतिः=ज्योति हैं। आपके उपासक भी इस ज्योति से अपने जीवन को दीप्त कर पाते हैं।

भावार्थ–प्रभु अपने ज्ञान के कारण महान् हैं, वे एक पूर्ण (न्यूनता शून्य) सृष्टि को जन्म देते हैं। अपनी महिमा से देवों के अन्दर प्राणशक्ति का सञ्चार करते हैं और उन्हें हितकर प्रेरणा देते हैं। प्रभु एक व्यापक अहिंस्य ज्योति हैं।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवःङ्क **देवता**—उषाः सूर्यप्रभा वाङ्क **छन्दः**—आर्चीबृहतीङ्क **स्वरः**—मध्यमःङ्क

सूर्यप्रभा

इ॒यं या नीच्य॒र्किणी॑ रू॒पा रोहि॑ण्या कृ॒ता। चि॒त्रेव॒ प्रत्य॑दर्श्याय॒त्य१॒॑न्तर्द॒शसु॑ बा॒हषु॑॥ १३॥

(१) सूर्य की किरणें द्युलोक से नीचे पृथिवीलोक पर आती हैं। सो **इयम्**=यह **या**=जो सूर्यप्रभा **नीची**=अवाङ्मुखी, नीचे मुख किये हुए-सी है। **अर्किणी**=स्तुतिवाली है। इसके होने पर सब देव प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त होते हैं। यह **रूपा**=उत्तम रूपवाली **रोहिण्या**=प्रकाशयुक्त **कृता**=की गई है। (२) **चित्रा इव**=अत्यन्त अद्भुत-सी यह **दशसु**=दसों **बाहुषु अन्तः**=ब्रह्माण्ड की बाहु-स्थानीय दिशाओं के अन्दर **आयती**=आती हुई **प्रत्यदर्शि**=प्रतिदिन देखी जाती है।

भावार्थ–इस अद्भुत-सी सूर्यप्रभा में उस महान् सूर्य प्रभु की महिमा दिखती है। सूर्य को भी तो वे प्रभु ही दीप्ति दे रहे हैं।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवःङ्क **देवता**—पवमानःङ्क **छन्दः**—पादनिचृत्त्रिष्टुपङ्क **स्वरः**—धैवतःङ्क

तिस्रः प्रजाः-अन्याः

प्र॒जा ह॑ ति॒स्रो अ॒त्याय॑मीयु॒र्न्य१॒॑न्या अ॒र्कम॒भितो॑ विविश्रे।
बृ॒हद्ध॑ तस्थौ॒ भुव॑नेष्व॒न्तः पव॑मानो ह॒रित॒ आ वि॑वेश॥ १४॥

(१) **ह**=निश्चय से **तिस्रः प्रजाः**='पुत्रैषणा, वित्तैषणा व लोकैषणा' रूप तीन एषणाओं के अन्दर चलनेवाली **तिस्रः प्रजाः**=ये तीन प्रकार की प्रजायें **अति आयम्**=अतिशयेन गति को, आवागमन को जन्म-मरण के चक्र को **ईयुः**=प्राप्त होती हैं। **अन्याः**=इन एषणाओं से ऊपर उठ जानेवाली दूसरी प्रजायें **अर्कं अभितः**=उस अर्चनीय (पूजनीय) परमात्मा के चारों ओर प्रभु के समीप **निविविश्रे**=निवेशवाली होती हैं। ये प्रभु की भक्ति में प्रवृत्त होती हैं। (२) ये प्रजायें प्रभु का स्मरण इस रूप में करती हैं कि वह **बृहत्**=महान् प्रभु **ह**=निश्चय से **भुवनेषु अन्तः**=सब लोकों व प्राणियों के अन्दर **तस्थौ**=स्थित हैं। **पवमानः**=सब प्रजाओं को पवित्र करनेवाले वे प्रभु **हरितः आविवेश**–सब दिशाओं में व्याप्त हैं। कोई भी स्थान प्रभु की व्याप्ति से पृथक् नहीं है। ये सर्वव्यापक प्रभु हमारे अन्दर भी व्याप्त होकर हमें पवित्र कर रहे हैं।

भावार्थ–एषणात्रय में चलनेवाली प्रजायें आवागमन के चक्र से ऊपर नहीं उठ पातीं। प्रभु के उपासक ही पवित्र जीवनवाले बनकर ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। आवागमन के चक्र से ये ही बच पाते हैं।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवःङ्क **देवता**—गौःङ्क **छन्दः**—त्रिष्टुपङ्क **स्वरः**—धैवतःङ्क

माता-दुहिता-स्वसा (गौः)

मा॒ता रु॒द्राणां॑ दुहि॒ता वसू॑नां॒ स्वसा॑दि॒त्याना॑म॒मृत॑स्य॒ नाभिः॑।
प्र नु वो॑चं चिकि॒तुषे॒ जना॑य॒ मा गामना॑गा॒मदि॑तिं वधिष्ट॥ १५॥

(१) यह गौ **रुद्राणां माता**=रोगों को अपने से दूर भगानेवालों का (रुत्+द्रु) निर्माण

करनेवाली है। गोदुग्ध के सेवन से शरीर में रोगों का प्रवेश नहीं होता। **वसूनां दुहिता**=शरीर में निवास को उत्तम बनानेवाले सब तत्त्वों का (वसु) यह पूरण करनेवाली है। गोदुग्ध के सेवन से शरीर में सब वसुओं का प्रपूरण होकर जीवन पूर्ण-सा बन जाता है। **आदित्यानां स्वसा**=यह गौ सब अच्छाइयों का आदान करनेवालों की बहिन के समान है। गोदुग्ध का सेवन सब अच्छाइयों को प्राप्त कराता है। यह गौ तो **अमृतस्य**-अमृतत्त्व-नीरोगता के साधनभूत दुग्ध का **ताभिः**=केन्द्र है। उस दूध का यह निवास-स्थान है जो हमें अमर बनाता है। (२) प्रभु कहते हैं कि मैं **चिकितुषे जनाय**-समझदार पुरुष के लिये **नु**=अब **प्रवोचम्**-यह स्पष्ट कहता हूँ कि **गां मा वधिष्ट**-उस गौ को मत मारो, जो **अनागाम्**-निष्पाप है, जिसके दुग्ध के सेवन से हमारे जीवन निष्पाप बनते हैं और **अदितिम्**-जिसके दुग्ध के सेवन से स्वास्थ्य का खण्डन नहीं होता। यह गोदुग्ध हमें शरीर में स्वस्थ बनाता है, मन में निष्पाप।

भावार्थ-गौ उस दूध को हमें प्राप्त कराती है जो रोगों को दूर करता है, निवास के लिये आवश्यक तत्त्वों को उत्पन्न करता है, सब अच्छाइयों को हमारे अन्दर प्राप्त कराता है। यह गौ 'अनागा-अदिति' है। इसका वध न करना ही समझदारी है।

ऋषिः—जमदग्निभार्गवः॥ **देवता**—गौः॥ **छन्दः**—विराट् त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

'स्तुति ज्ञान व कर्म' की प्रतिपादिका वेद-धेनु

व॒चो॒विदं॒ वाच॑मुदी॒रय॑न्तीं॒ विश्वा॑भिर्धी॒भिरु॑प॒तिष्ठ॑मानाम्।

दे॒वीं दे॒वेभ्यः॒ पर्ये॒युषीं॒ गामा मा॑वृक्त॒ मर्त्यो॑ द॒भ्रचे॑ताः॥ १६॥

(१) **वचोविदम्**=स्तुतिवचनों को प्राप्त कराती हुई, **वाचमुदीरयन्तीम्**=ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करती हुई, **विश्वाभिः धीभिः उपतिष्ठमानाम्**=सब ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले कर्मों के हेतु से उपस्थित होती हुई, अर्थात् सब कर्मों का ज्ञान देती हुई, **देवीम्**=इस प्रकाशमयी **गाम्**=वेदवाणी रूप गौ को **दभ्रचेताः**=नासमझ-अल्प चेतनावाला पुरुष **मा परि आ अवृक्त**=सर्वथा परित्यक्त मत करे, इसका स्वाध्याय अवश्य करे ही। (२) यह वेदवाणी रूप गौ **देवेभ्यः एयुषीम्**=देवों के लिये प्राप्त होनेवाली है। हम देववृत्ति के बनेंगे तो अवश्य इस वेदवाणी को प्राप्त करेंगे। या देवों से ही प्राप्त होती है। 'आचार्य देवो भव'=आचार्यों को देवतुल्य आदर देते हुए हम उनसे इस वेदवाणी को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ-यह वेदवाणी रूप गौ स्तुति ज्ञान तथा कर्म तीनों का ज्ञान देती है। इसको नासमझ ही परित्यक्त करता है। समझदार व्यक्ति देवों से इसे प्राप्त करने के लिये यत्नशील होता है।

यह देवों के सम्पर्क में आनेवाला व्यक्ति 'प्र-योग' (=प्रकृष्ट मेलवाला) कहाता है। यह 'भार्गव' है, बुद्धि का परिपाक करनेवाला। निरन्तर आगे बढ़ने से 'अग्नि' है। ज्ञानियों का शिष्यत्व स्वीकार करनेवाला 'बार्हस्पत्य' है। ज्ञान के द्वारा जीवन की पवित्रता का साधक यह 'पावक' है। शक्ति का सम्पादन करके यह 'गृहपति' बनता है, गृह का रक्षक। बुराइयों को पृथक् करनेवाला यह 'यविष्ठ' होता है। यह 'अग्नि' नाम से प्रभु का आराधन करता है-

१०२. [द्व्युत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

बृहद् वयः

त्वम॑ग्ने बृ॒हद्वयो॒ दधा॑सि देव दा॒शुषे॑। क॒विर्गृ॒हप॑ति॒र्युवा॑॥ १॥

(१) हे **अग्ने**-अग्रेणी, **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **त्वम्**=आप **दाशुषे**=आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले पुरुष के लिये **बृहद् वयः**=वृद्धियुक्त आयुष्य **दधासि**=धारण करते हैं। जो भी आपके प्रति अपने को दे डालता है, इसे वह जीवन प्राप्त कराते हैं, जो सब दृष्टिकोणों से बढ़ा हुआ होता है। (२) **कविः**-आप क्रान्तदर्शी है, सब विद्याओं का ज्ञान देनेवाले हैं। **गृहपतिः**=हमारे शरीररूप गृहों के रक्षक हैं। **युवा**=सदा बुराइयों को पृथक् करनेवाले व अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले हैं (यु मिश्रणामिश्रणयोः)।

भावार्थ-हम प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें। प्रभु हमारे लिये वृद्धियुक्त दीर्घजीवन को प्राप्त कराते हैं। वे सब ज्ञानों को देनेवाले, शरीर गृहों के रक्षक व हमारी सब बुराइयों को दूर करके अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले हैं।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ईडानया-दुवस्युवा (वेदवाचा)

स नु ईळनया सह देवाँ अग्ने दुवस्युवा। चिकिद्विभानवा वह॥ २॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **चिकित्**=आप सर्वज्ञ हैं। सो हे विभानो! विशिष्ट दीप्तिवाले प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमारे लिये **ईडानया**=स्तुति करती हुई, **दुवस्युवा**=परिचरणशील प्रभु की परिचर्या करनेवाली इस ज्ञान की वाणी के **सह**=साथ **देवान् आवह**=सब दिव्य गुणों को प्राप्त कराइये।

भावार्थ-प्रभु हमें उस ज्ञान की वाणी को प्राप्त करायें, जिसके द्वारा हम स्तवन व प्रभु परिचर्या को कर पायें। इस वेदवाणी को प्राप्त कराने के द्वारा हमें दिव्य गुणों से युक्त जीवनवाला करें।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वाजसातये

त्वया ह स्विद्युजा वयं चोदिष्ठेन यविष्ठ्य। अभी ष्मो वाजसातये॥ ३॥

(१) हे **यविष्ठ्य**=बुराइयों को अधिकाधिक पृथक् करनेवाले प्रभो! **चोदिष्ठेन**=सदा सत्कर्मों के प्रेरक **त्वया**=आप **युजा**=साथी के साथ **वयम्**=हम **ह स्वित्**=निश्चय से **अभिष्मः**=शत्रुओं का अभिभव करनेवाले बनें। (२) काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं को पराजित करके हम **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिये हों। इन शत्रुओं को पराजित करके ही हम शरीर में शक्ति का रक्षण कर पाते हैं। इनका पराजय आपको मित्र बनाकर ही हुआ करता है।

भावार्थ-प्रभु के मैत्री से सत्कर्मों की प्रेरणा प्राप्त करते हुए हम शत्रुओं का पराजय करें और शक्ति का सम्पादन करनेवाले हों।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

और्व-भृगु-अप्नवान

और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे। अग्निं समुद्रवाससम्॥ ४॥

(१) **और्व (वत्)**=और्व की तरह (उरोरपत्यम्) विशाल की सन्तान की तरह, अत्यन्त

विशाल हृदय बनकर **शुचिम्**-पवित्र प्रभु को **आहुवे**-पुकारता हूँ। वस्तुतः विशालता ही हमारे जीवन को पवित्र बनाती है। जितने-जितने विशाल बनेंगे, उतना उतना ही पवित्र बन पायेंगे तभी हमें 'शुचि' प्रभु को पुकारने का अधिकार होगा। (२) **भृगुवत्**-(भ्रस्ज पाके) तपस्या की अग्नि में अपने को परिपक्व करनेवाले की तरह मैं **अग्निम्**-उस अग्रेणी प्रभु को (आहुवे) पुकारता हूँ। तपस्वी बनकर मैं भी अग्नि बनता हूँ, निरन्तर आगे बढ़नेवाला बनता हूँ। तप ही उन्नति का साधन है। (३) **अप्नवानवत्**-(अपः कर्मनाम-Weaving ताना बाना) कर्मों के ताने बानेवाले, निरन्तर कर्मशील पुरुष की तरह **समुद्रवाससम्**=उस आनन्दमय सब के आच्छादक प्रभु को पुकारता हूँ। कर्मों में लगे रहने से मेरा जीवन भी आनन्दमय बनता है और मैं प्रभु को अपना वस्त्र बनाकर बड़े सुरक्षित जीवनवाला होता हूँ। मेरे कर्म पवित्र बने रहते हैं।

भावार्थ-हम विशाल हृदय बनें यही पवित्रता का मार्ग है। हम तपस्वी बनें, यही उन्नति का साधन है। हम निरन्तर क्रियाशील हों, तभी आनन्दमय प्रभु की गोद को पाने के अधिकारी होंगे।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

वातस्वनं, पर्जन्यक्रन्द्यम्

हुवे वातस्वनं कविं पर्जन्यक्रन्द्यं सहः। अग्निं समुद्रवाससम्॥ ५॥

(१) **वातस्वनम्**-(वा-गतौ) गतिशीलता की प्रेरणा देनेवाली है ध्वनि जिसकी जो हृदयस्थरूपेण सदा प्रेरणात्मक शब्दों का उच्चारण कर रहे हैं, उन **कविम्**=सब विद्याओं का वेदवाणी द्वारा उपदेश देनेवाले (कौति सर्वाः विद्याः) **पर्जन्यक्रन्द्यम्**-बादल के समान गर्जनावाले अथवा परा तृप्ति के जनक आह्वानवाले **सहः**=शक्ति के पुञ्ज प्रभु को **हुवे**-पुकारता हूँ। (२) मैं उस प्रभु को पुकारता हूँ जो **अग्निम्**=अग्रेणी हैं, हमें उन्नतिपथ पर आगे ले चलनेवाले हैं और **समुद्रवाससम्**-सदा आनन्दमय व सभी को अपने में आच्छादित करनेवाले हैं।

भावार्थ-हम प्रभु की प्रेरणा को सुनें, वेदाध्ययन द्वारा ज्ञान को प्राप्त करें, 'ज्ञान, कर्म, उपासना' का अपने में समन्वय करें, शक्ति का सञ्चय करें। आगे बढ़े और प्रभु की गोद में पहुँचकर ही विश्राम लें।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

सवितुः सवं, भगस्य भुजिम्

आ सवं सवितुर्यथा भगस्येव भुजिं हुवे। अग्निं समुद्रवाससम्॥ ६॥

(१) **यथा**=जैसे **सवितुः**=उस प्रेरक प्रभु की **सवम्**=प्रेरणा को **आहुवे**=पुकारता हूँ, अर्थात् जैसे मैं चाहता हूँ कि प्रभु की प्रेरणा को सुन पाऊँ। **इव**=जैसे **भगस्य**-उस ऐश्वर्यशाली प्रभु की **भुजिम्**=पालन की साधनभूत सम्पत्ति को (आहुवे) पुकारता हूँ, अर्थात् पालन के लिये आवश्यक धन की कामना करता हूँ। (२) उसी प्रकार मैं **अग्निम्**-उस अग्रेणी प्रभु को पुकारता हूँ जो **समुद्रवाससम्**-सदा आनन्दमय हैं और सबको आच्छादित करनेवाले हैं।

भावार्थ-हम उस प्रेरक प्रभु की प्रेरणा को सुनें। ऐश्वर्य पुञ्ज प्रभु से पालन के लिये आवश्यक ऐश्वर्य को प्राप्त करें। निरन्तर आगे बढ़ते हुए आनन्दमय प्रभु की गोद में पहुँचकर विश्राम लें।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरःङ्क
देवता—अग्निःङ्क छन्दः—विराड् गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

नप्त्रे-सहस्वते

अ॒ग्निं वो॑ वृ॒धन्त॑मध्व॒राणां॑ पुरू॒तम॑म्। अच्छा॒ नप्त्रे॒ सह॑स्वते॥ ७॥

(१) **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु को मैं पुकारता हूँ, जो **वः वृधन्तः**=तुम सबका वर्धन करनेवाले हैं तथा **अध्वराणां पुरूतमम्**-यज्ञों के अतिशयेन पालक व पूरक हैं। (२) मैं उस प्रभु की **अच्छ**-ओर चलता हूँ जो **नप्त्रे**=मुझे न गिरने देनेवाले हैं अथवा मेरे बन्धु हैं तथा **सहस्वते**=शक्तिशाली हैं, उपासक को शक्तिशाली बनाते हैं।

भावार्थ-प्रभु की उपासना करता हुआ मैं आगे बढूँ, शक्तियों का वर्धन करूँ, यज्ञात्मक जीवनवाला बनूँ। प्रभु मेरा उत्थान करेंगे, मुझे बल देंगे।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरःङ्क
देवता—अग्निःङ्क छन्दः—निचृद् गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

अस्य क्रत्वा यशस्वतः

अ॒यं यथा॑ न आ॒भुव॒त्त्वष्टा॑ रू॒पेव॒ तक्ष्या॑। अ॒स्य क्रत्वा॒ यश॑स्वतः॥ ८॥

(१) **अयम्**=यह प्रभु **नः**=हमें **यथा**=ठीक-ठीक इस प्रकार **आभुवत्**-बनाता है **इव**-जैसे **त्वष्टा**=बढ़ई **तक्ष्या**=तक्षणीय-ढीलढाल कर बनाने योग्य **रूपा**-रूपवान् पदार्थों को बनाता है। (२) हम **अस्य**=इस प्रभु के **क्रत्वा**=शक्ति व प्रज्ञान से ही **यशस्वतः**=अतिशयेन यशस्वी बन पाते हैं।

भावार्थ-हम प्रभु के प्रति अपना अर्पण कर दें, प्रभु हमारा ठीक-ठीक निर्माण करेंगे, उस समय प्रभु की शक्ति व प्रज्ञान को प्राप्त करके हम यशस्वी जीवनवाले होंगे।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरःङ्क
देवता—अग्निःङ्क छन्दः—निचृद् गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

देवों में श्री, मनुष्यों में बल

अ॒यं विश्वा॑ अ॒भि श्रियो॒ऽग्निर्दे॒वेषु॑ पत्यते। आ वाजै॒रुप॑ नो गमत्॥ ९॥

(१) **अयं अग्निः**=यह अग्रेणी प्रभु **देवेषु**=देवों के अन्दर होनेवाली **विश्वाः श्रियः**=सब लक्ष्मियों व शोभाओं के **अभिपत्यते**=ईश हैं, उन देवों में उस-उस श्री को प्राप्त करानेवाले ये प्रभु ही हैं। (२) ये 'अग्नि' प्रभु **नः**=हमें भी **वाजैः**=शक्तियों के साथ **उपगमत्**=प्राप्त हों। हमें भी अग्नि के अनुग्रह से बल की प्राप्ति हो।

भावार्थ-वे अग्रेणी प्रभु सूर्य आदि सब देवों में उस-उस श्री को स्थापित करते हैं। प्रभु हमारे अन्दर भी बल की स्थापना करें।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरःङ्क
देवता—अग्निःङ्क छन्दः—पादनिचृद् गायत्रीङ्क स्वरः—षड्जःङ्क

यशस्तम 'होता'

विश्वे॑षामि॒ह स्तु॑हि॒ होतॄ॑णां य॒शस्त॑मम्। अ॒ग्निं य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यम्॥ १०॥

(१) संसार में एक से एक बढ़कर दाता हैं, प्रभु सर्वमहान् दाता हैं। **विश्वेषाम्**=सब

होतृणाम्=दाताओं में **यशस्तमम्**-सर्वाधिक यशस्वी प्रभु को **इह**=इस जीवन यज्ञ में **स्तुहि**-स्तुत कर। (२) उस **अग्निम्**-अग्रेणी प्रभु को स्तुत कर जो **यज्ञेषु पूर्व्यम्**-सब यज्ञों में, श्रेष्ठतम कर्मों में पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम हैं।

भावार्थ-प्रभु ही सर्वमहान् दाता हैं, प्रभु ही हमारे यज्ञों का पालन व पूरण करते हैं।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

ज्येष्ठः-दीर्घश्रुत्तमः

शीरं पावकशोचिषं ज्येष्ठो यो दमेष्वा। दीदाय दीर्घश्रुत्तमः॥ ११॥

(१) **यः**-जो **दीर्घश्रुत्तमः**=अतिशयेन विद्वान् सर्वज्ञ **ज्येष्ठः**-सर्वश्रेष्ठ प्रभु हैं वे **दमेषु**=यज्ञशील पुरुषों के गृहों में **आदीदाय**=दीप्त होते हैं। (२) उन **शीरम्**=सर्वत्र अनुशायी (व्यापक) **पावकशोचिषम्**=पवित्र दीप्तिवाले प्रभु को स्तुत करो।

भावार्थ-प्रभु सर्वज्ञ, सर्वश्रेष्ठ हैं, यज्ञशील पुरुषों के गृहों में दीप्त होते हैं। उन सर्वव्यापक पवित्र दीप्तिवाले प्रभु का हम स्तवन करें।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

अर्वन्तं न, मित्रं न

तमर्वन्तं न सानसिं गृणीहि विप्र शुष्मिणम्। मित्रं न यातयज्जनम्॥ १२॥

(१) हे **विप्र**-अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले साधक! तू **तम्**-उस **अर्वन्तं न**=(अर्व्) शत्रुओं का संहार करनेवाले के समान **सानसिम्**=सम्भजनीय **शुष्मिणम्**=शत्रु शोषक बलवाले प्रभु को **गृणीहि**-स्तुत कर। प्रभु तेरे भी काम-क्रोध आदि शत्रुओं का संहार करेंगे और तुझे शक्ति प्राप्त करायेंगे। (२) उस प्रभु का तू स्तवन कर जो **मित्रं न**-एक पापों से बचानेवाले (प्रमीतेः त्रायते) सखा के समान **यातयज्जनम्**=लोगों को उत्तम कर्मों में यत्नशील करते हैं।

भावार्थ-हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमारे वासनात्मक शत्रुओं का संहार करेंगे और हमें शक्ति देते हुए एक मित्र की तरह उत्तम कर्मों में प्रेरित करेंगे।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

स्तुति से सद्गुणों व बल की प्राप्ति

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः। वायोरनीके अस्थिरन्॥ १३॥

(१) हे अग्ने! **हविष्कृतः**-इस यज्ञशील पुरुष की, इससे की जानेवाली **त्वा देदिशतः**=आपका संकेत करती हुई, आपके गुणों का प्रतिपादन करती हुई **गिरः**=स्तुतिवाणियाँ **उप (तिष्ठन्ते)**-आपके समीप उपस्थित होती हैं। ये स्तुतिवाणियाँ **जामयः**=सद्गुणों को जन्म देनेवाली होती हैं। इन स्तुतिवाणियों से स्तोता के हृदय में भी उस-उस गुण को धारण करने की प्रेरणा उत्पन्न होती है। (२) ये स्तुतिवाणियाँ स्तोता को **वायोः**=वायु के **अनीके**=बल में **अस्थिरन्**=स्थापित करती हैं।

भावार्थ-प्रभु-स्तवन से स्तोता के जीवन में सद्गुणों का स्थापन होता है और ये स्तुतिवाणियाँ स्तोता को वायु के समान शक्ति-सम्पन्न करती हैं।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उपासना से हृदय की पवित्रता

यस्य॑ त्रि॒धात्ववृ॑तं ब॒र्हिस्त॒स्थावसं॑दिनम्। आप॑श्चि॒न्नि द॑धा प॒दम्॥ १४॥

(१) **यस्य**=जिस प्रभु का **बर्हिः**=यह हृदयरूप आसन **त्रिधातु**='ज्ञान, कर्म, उपासना' तीनों का धारण करनेवाला होता हुआ **तस्थौ**=स्थित होता है। जब हम हृदय को प्रभु का आसन बनाते हैं, तो यह ज्ञान, कर्म व उपासना तीनों का धारण करनेवाला होता है। **अवृतम्**=यह काम-क्रोध से संवृत नहीं होता, इस पर काम आदि का आवरण नहीं पड़ जाता। **असन्दिनम्**=यह विषय वासनाओं से बद्ध नहीं होता। (२) हृदय को प्रभु का आसन बनाने पर वासनाओं के विनाश के कारण **आपः चित्**=ये रेतःकणरूप जल भी **पदं निदधा**=शरीर में स्थिति को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—हृदय में प्रभु का ध्यान करने पर हृदय (क) ज्ञान, कर्म, उपासना का धारण करनेवाला बनता है, (ख) काम आदि से संवृत नहीं होता, (ग) विषयों से अबद्ध रहता है। उस समय शरीर में उत्पन्न रेतःकणों की शरीर में ही स्थिति होती है।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

शत्रुओं से अधर्षण व अन्धकार विनाश

प॒दं दे॒वस्य॑ मी॒ळ्हुषोऽना॑धृष्टाभिरू॒तिभिः। भ॒द्रा सूर्य॑इवोप॒दृक्॥ १५॥

(१) **मीढुषः**=सब सुखों का सेचन करनेवाले **देवस्य**=प्रकाशमय प्रभु का **पदम्**=स्थान **अनाधृष्टाभिः**=शत्रुओं से अधर्षणीय **ऊतिभिः**=रक्षणों से युक्त है। जब हम प्रभु का स्मरण करते हैं, तो कोई भी वासनात्मक शत्रु हमारा धर्षण नहीं कर पाता। (२) इस प्रभु की **उपदृक्**=उपदृष्टि **सूर्यः इव**=सूर्य के समान है, सूर्य की तरह सब अन्धकार को दूर करनेवाली है और **भद्रा**=कल्याणकर है। जब हम प्रभु के समीप उपस्थित होते हैं और प्रभु की कृपादृष्टि को प्राप्त करते हैं, तो हमारा सब अन्धकार विनष्ट हो जाता है और हम वास्तविक कल्याण को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु में स्थित होने का प्रयत्न करें, उस समय कोई भी शत्रु हमारा धर्षण न कर पायेगा। प्रभु की कृपादृष्टि हमारे सब अन्धकार को दूर कर देगी। उस समय हमारा कल्याण ही कल्याण होगा।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

घृतस्य धीतिभिः-शोचिषा

अग्ने॑ घृ॒तस्य॑ धी॒तिभि॑स्तेपा॒नो दे॑व शो॒चिषा॑। आ दे॒वान्व॑क्षि॒ यक्षि॑ च॥ १६॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी **देव**=हमारे जीवनों को ज्ञान से द्योतित करनेवाले प्रभो! (देवो द्योतनात्) **घृतस्य**=ज्ञानदीप्तियों के **धीतिभिः**=धारणों से विविध विज्ञानों को प्राप्त कराने के द्वारा तथा **शोचिषा**=अन्तःप्रकाश के द्वारा, पूर्ण निर्मल हृदय की दीप्ति के द्वारा (चमक के द्वारा) **तेपानः**=हमारे जीवनों को दीप्त करते हुए आप **देवान् आवक्षि**=हमारे जीवनों में दिव्य गुणों को प्राप्त कराइये **च**=और **यक्षि**=उनके साथ ही हमारा सम्बन्ध करिये।

भावार्थ—प्रभु हमें विज्ञानों के धारण व अन्तःप्रकाश से दीप्त जीवनवाला बनाते हुए दिव्य

गुणों को प्राप्त करायें, दिव्य गुणों से ही हमारा सम्बन्ध करें।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

मातरः-देवासः

तं त्वाजनन्त मातरः कविं देवासो अङ्गिरः। हव्यवाहममर्त्यम्॥ १७॥

(१) हे **अंगिरः**-हमारे अंग-प्रत्यंग में रस का संचार करनेवाले अथवा हमें गति देनेवाले प्रभो! **तं त्वा**-उन आपको **मातरः** अपने अन्दर ज्ञान को उत्पन्न करनेवाले (प्रमातारः) अथवा निर्माणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होनेवाले लोग **अजनन्त**-अपने अन्दर प्रादुर्भूत करते हैं। प्रभु का प्रकाश इन निर्माताओं को ही प्राप्त होता है। (२) **देवासः**=देववृत्ति के लोग ही **कविम्**=उस क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ प्रभु को, **हव्यवाहम्**=हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले प्रभु को, **अमर्त्यम्**=अविनाशी प्रभु को अपने अन्दर प्रादुर्भूत करते हैं।

भावार्थ-प्रभु का दर्शन निर्मणात्मक कार्यों में प्रवृत्त देववृत्ति के लोगों को होता है।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—पादनिचृद् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

उपासना का फल

प्रचेतसं त्वा कवेऽग्ने दूतं वरेण्यम्। हव्यवाहं नि षेदिरे॥ १८॥

(१) हे **कवे**=क्रान्तदर्शिन्-सर्वज्ञ **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **प्रचेतसम्**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले, प्रकृष्ट चेतना को प्राप्त करानेवाले, **त्वा**=आपको **निषेदिरे**=देव लोग उपासित करते हैं, आपके चरणों में बैठते हैं। (२) उन आपको देव उपासित करते हैं, जो **दूतम्**=ज्ञान के सन्देश को प्राप्त करानेवाले हैं। अतएव **वरेण्यम्**=वरणीय हैं। प्रभु के वरण में ही कल्याण है। प्रकृति का वरण हमें पीस डालता है। प्रभु का वरण होने पर प्रकृति हमारी सेवा करती है। **हव्यवाहम्**=वस्तुतः प्रभु ही सब हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ-प्रभु के चरणों में बैठनेवाला व्यक्ति (क) प्रकृष्ट चेतना को प्राप्त करता है, ज्ञान सन्देश को सुनता है, (ग) प्रकृति से सेवित होता है, (घ) सब हव्य पदार्थों को प्राप्त करता है।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् गायत्री॥ **स्वरः**—षड्जः॥

न अघ्न्या, न स्वधितिः

नहि मे अस्त्यघ्न्या न स्वधितिर्वनन्वति। अथैतादृग्भरामि ते॥ १९॥

(१) हे प्रभो! **मे**=मेरे पास **अघ्न्या**=यह अहन्तव्य वेद-धेनु **नहि अस्ति**=नहीं है। अर्थात् मैंने कोई बड़ा (वेद) ज्ञान नहीं प्राप्त किया है। **स्व-धितिः**=आत्मधारण शक्ति **न वनन्वति**=मेरे दोषों का संहार नहीं करती। आत्मधारण के द्वारा मैं जीवन को निर्दोष भी नहीं बना पाया। न तो मैं ज्ञानी हूँ, और ना ही निर्दोष। (२) **अथ**=अब **एतादृग्**=ऐसा अज्ञानी व सदोष होता हुआ भी **ते भरामि**=आपके लिये स्तुति-वचनों का भरण करता हूँ। आपका स्तवन ही मुझे दीप्त ज्ञानाग्निवाला बनाकर दोषों को भस्म करने की क्षमता प्रदान करेगा।

भावार्थ-एक अज्ञानी व आत्मधारणशक्ति से रहित पुरुष भी जब प्रभु का स्तवन करता है, तो प्रभु उसकी ज्ञानाग्नि को दीप्त करके उसमें उसके दोषों को भस्म कर देते हैं।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

दारूणि=दानवृत्तियाँ

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि। ता जुषस्व यविष्ठ्य॥ २०॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **यत्**=जो **कानि कानि चित्**=जिन किन्हीं भी छोटी-मोटी **दारूणि**=(दा=दाने) दानवृत्तियों को (दारुः=दाता) **ते**=आपकी प्राप्ति के लिये **दध्यसि**=धारण करते हैं। इन सांसारिक सम्पत्तियों का त्याग व दान ही हमें प्रभु के समीप प्राप्त कराता है। (२) हे **यविष्ठ्य**=हमारे से बुराइयों को पृथक् करनेवाले प्रभो! **ता जुषस्व**=उन हमारे दानों को आप प्रीतिपूर्वक स्वीकार करिये। ये धनों के त्याग हमें आपका प्रिय बनायें।

भावार्थ—हम सदा दानशील बनें। यही पवित्र बनने का व प्रभु को प्राप्त करने का मार्ग है।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

उपासना से विषयासक्ति का निराकरण

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति। सर्वं तदस्तु ते घृतम्॥ २१॥

(१) **यत्**=जिस को **उपजिह्विका**=जीभ की चञ्चल प्रकृति-चटोरापन **अति**=खा जाता है। अथवा **यत्**=जो **वम्रः**=सब पढ़े-लिखे का वमन कर डालनेवाला होकर **अति स्पर्ति**=ज्ञानदीप्त हो उठे। (२) प्रभु की उपासना सब विषयासक्तियों को दूर कर देती है। उपासना से जीभ का चटोरापन दूर हो जाता है और ज्ञान की रुचि उत्पन्न हो जाती है।

भावार्थ—हमें जीभ का चटोरापन खा जाता है। ज्ञान में अरुचिवाले होकर हम अवारा से हो जाते हैं। उपासना सब विषयों को दूर करके हमें ज्ञानदीप्त बना देती है।

ऋषिः—प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥
देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृद् गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

उपासना-बुद्धि-पवित्रता

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः। अग्निमीधे विवस्वभिः॥ २२॥

(१) **मर्त्यः**=सामान्यतः विषयों की ओर जानेवाला (विषयों के पीछे मरनेवाला) मनुष्य, विषयासक्ति को छोड़ने के उद्देश्य से, **मनसा**=मन से मनन व चिन्तन के द्वारा **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु को **इन्दायः**=अपने अन्दर समिद्ध करता हुआ **धियं सचेत**=बुद्धि को प्राप्त करे, बुद्धि का अपने साथ समवाय करे। यह बुद्धि ही उसे विषयासक्ति से मुक्त करेगी। 'उपासना से बुद्धि व बुद्धि से विषयासक्ति का निराकरण' यह क्रम है। एवं उपासना हमारे जीवनों को पवित्र कर डालती है। (२) मैं **विवस्वभिः**=विद्वान् पुरुषों के सम्पर्क से **अग्निम् ईधे**=उस प्रभु को ही अपने हृदय में समिद्ध करता हूँ। ज्ञानियों का सम्पर्क हमें भी ज्ञानी बनाता है। तब हम प्रभु की ओर झुकते हैं और सब विषय-वासनाओं से मुक्त हो जाते हैं।

भावार्थ—हम कितने भी गिर जायें, उपासना से हमें बुद्धि प्राप्त होगी और हम फिर उत्थान को प्राप्त करेंगे। सो ज्ञानियों के सम्पर्क से हम प्रभु को अपने अन्दर दीप्त करें।

अब यह व्यक्ति अपना उत्थान करनेवाला व उत्तम भरण करनेवाला 'सोभरि' बनता है।

समझदार हो जाने से अब यह 'काण्व' है। यह अग्नि का आराधन करता हुआ कहता है–

१०३. [त्र्युत्तरशततमं सूक्तम्]

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

गातु वित्तमः, आर्यस्य वर्धनः

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः। उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्त नो गिरः॥ १॥

(१) वह **अग्नि** अग्रेणी प्रभु **गातुवित्तमः**-अतिशयेन मार्ग का ज्ञाता **अदर्शि**-हमारे हृदयों में प्रादुर्भूत होता है। **यस्मिन्**-जिस प्रभु में स्थित हुए-हुए ये आराधक **व्रतानि**-अपने कर्त्तव्य कर्मों को **आदधुः**-धारण करते हैं। हृदयस्थ प्रभु मार्ग का दर्शन कराते हैं, और आराधक उस मार्ग पर आगे बढ़ता है। (२) उस **सुजातम्**-हृदयों में सम्यक् प्रादुर्भूत **आर्यस्य वर्धनम्**=आर्यों के कर्त्तव्य कर्मों का आचरण करनेवालों के **वर्धनम्**-बढ़ानेवाले **अग्निम्**-अग्रेणी प्रभु को **नः**=हमारी **गिरः**-स्तुतिवाणियाँ **उपोनक्षन्त**=प्राप्त हों ही। हम अवश्य प्रभु का स्तवन करनेवाले बनें। यह प्रभु-स्तवन ही हमें मार्गदर्शन करायेगा, मार्ग पर बढ़ने की शक्ति देगा और उत्तम कर्मों को करते हुए हम वृद्धि को प्राप्त करेंगे।

भावार्थ–प्रभु मार्गदर्शक हैं, मार्ग पर बढ़ने की शक्ति देते हैं, मार्ग पर चलनेवालों का वर्धन करते हैं। सो प्रभु को हमारी स्तुतिवाणियाँ प्राप्त हों।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृद् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

दैवोदासः

प्र दैवोदासो अग्निर्देवाँ अच्छा न मज्मना।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि॥ २॥

(१) इस जीवन में जो व्यक्ति **दैवोदासः**-उस देव का दास (सेवक) बनता है। वह **अग्निः**-आगे बढ़नेवाला होता है। और **न** (=सम्प्रति)-अब **मज्मना** (मस्ज्)=प्रभु की उपासना में गोता लगाने के द्वारा शोधन से **देवान् अच्छा**=दिव्य गुणों की ओर **प्र (चलति)**=प्रकर्षेण बढ़ता है। (२) यह दिव्य गुणों की ओर बढ़नेवाला व्यक्ति **मातरं पृथिवीं अनु**-इस भूमि माता पर उसकी गोद में अपने जीवन को सफलता से बिताने के बाद **विवावृते**-फिर अपने ब्रह्मलोक रूप गृह को लौट जाता है। अब यह **नाकस्य**-मोक्षलोक के दुःखशून्य (न अकं यत्र) सुखमय लोक के **सानवि**-शिखर प्रदेश में आनन्द की चरम सीमा में **तस्थौ**=स्थित होता है।

भावार्थ–हम प्रभु के उपासक बनें, आगे बढ़ें, प्रभु में अपने को शुद्ध कर डालें। दिव्य गुणों को बढ़ाते हुए, इस जीवनयात्रा को पूर्ण करके मोक्षसुख में स्थित हों।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—विराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

अग्निं धीभिः सपर्यत

यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिः सपर्यत॥ ३॥

(१) **यस्मात्**=जिस प्रभु से **चर्कृत्यानि कृण्वतः**=कर्त्तव्य कर्मों को करते हुए **कृष्टयः**=श्रमशील मनुष्य **रेजन्त**-दीप्ति को प्राप्त करते हैं (रेज To shine), उस **अग्निम्**-अग्रेणी प्रभु को **धीभिः**-बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले कर्मों से **सपर्यत**-पूजो। प्रभु का पूजना कर्मों द्वारा ही होता

है। (२) **मेधसातौ**=(मेध=यज्ञ, साति=प्राप्ति) यज्ञों के सेवन के होने पर **स्रा इव**=स्वयं ही (एव) बिना किसी अन्य की सहायता के होने पर ही **सहस्रसाम्**=अनन्त लाभों के देनेवाले उस प्रभु का पूजन करो। प्रभु ने इन यज्ञों को 'कामधुक्' बनाया है, इनके द्वारा सब इष्टों की पूर्ति होती है।

भावार्थ–प्रभु क्रियाशील पुरुषों को दीप्त जीवनवाला बनाते हैं। कर्मों द्वारा ही प्रभु का उपासन होता है। यज्ञों के सेवन के होने पर प्रभु सब इष्ट कामनाओं को पूर्ण करते हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

'उक्थशंसी-सहस्रपोषी' सन्तान

प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत्।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम्॥ ४॥

(१) हे **वसो**=वसानेवाले, सब वसुओं के स्वामिन् प्रभो! **यम्**=जिस पुरुष को **राये निनीषसि**=आप ऐश्वर्य के लिये ले चलना चाहते हैं और **यः**=जो **ते**=आपके प्रति **दाशत्**=अपने को दे डालता है, **सः**=वह **वीरं धत्ते**=वीर सन्तानों को प्राप्त करता है। (२) हे **अग्ने**=परमात्मन्! इस, आप से ऐश्वर्य को प्राप्त करके (आपके प्रति अपना यज्ञशील) पुरुष को अर्पण करनेवाले वह सन्तान प्राप्त होती है, जो **उक्थशंसिनम्**=प्रभु के स्तोत्रों का शंसन करनेवाली होती है। और **त्मना**=स्वयं **सहस्रपोषिणम्**=सहस्रों का पोषण करनेवाली होती है।

भावार्थ–हम प्रभु से ऐश्वर्यों को प्राप्त करके प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाले यज्ञशील बनें। प्रभु कृपा से हमें प्रभु-स्तवन करनेवाला सहस्रों का पोषण करनेवाला वीर सन्तान प्राप्त होगी।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—पं॥ **स्वरः**—पञ्चमः॥

वाजं-अक्षिति श्रवः

स दृळ्हे चिदभि तृणत्ति वाजमर्वता स धत्ते अक्षिति श्रवः।
त्वे देवत्रा सदा पुरूवसो विश्वा वामानि धीमहि॥ ५॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाला **सः**=वह उपासक **दृढे चित्**=अतिशयेन प्रबल भी काम-क्रोध रूप शत्रुओं को **अभितृणत्ति**=हिंसित करता है। इनको हिंसित करके **सः**=वह **अर्वता**=इन्द्रियाश्वों के द्वारा **वाजम्**=शक्ति को तथा **अक्षिति श्रवः**=अक्षीण ज्ञान को **धत्ते**=धारण करता है। कर्मेन्द्रियों द्वारा शक्ति को तथा ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ज्ञान को प्राप्त करता है। (२) हे **पुरुवसो**=पालक व पूरक धनोंवाले प्रभो! **त्वे देवत्रा**=तुझ देव में स्थित हुए-हुए हम **विश्वा वामानि**=सब वननीय, सम्भजनीय, सुन्दर वसुओं को **सदा**=सदा **धीमहि**=धारण करें।

भावार्थ–प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाला अति प्रबल काम-क्रोध को नष्ट करता है, शक्ति व ज्ञान को प्राप्त करता है। प्रभु के आधार में सब सुन्दर वस्तुओं को धारण करें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—आर्चीस्वराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

स्तोमरूप मधुपर्क द्वारा प्रभु का आतिथ्य

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्यग्नये॥ ६॥

(१) **यः**=जो **विश्वा वसु**=सब धनों का **दयते**=रक्षण करता है और **होता**=हमारे लिये आवश्यक धनों को देता है। वे प्रभु **जनानां मन्द्रः**=लोगों के आनन्द का कारण हैं, सब उपासकों को आनन्द को प्राप्त करानेवाले हैं। (२) **अस्मै**=इस **अग्नये**=अग्रेणी प्रभु के लिये **मधोः प्रथमा पात्रा न**=मधु के मुख्य पात्रों की तरह जैसे एक अतिथि के लिये सर्वप्रथम मधुपर्क प्राप्त कराया जाता है, **स्तोमाः**=स्तुति समूह **प्रयन्तु**=प्रकर्षेण प्राप्त हों। इन स्तोमों के द्वारा ही हम प्रभु को मधुपर्क प्राप्त कराते हुए अतिथिवत् आदृत करें।

भावार्थ–प्रभु सम्पूर्ण धनों के स्वामी व दाता हैं, वे ही सब आनन्दों की खान हैं। हम स्तुति समूह रूप मधुपर्क द्वारा प्रभु का आतिथ्य करें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—स्वराड् बृहती॥ **स्वरः**—मध्यमः॥

सुदानवः-देवभवः

अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः।
उभे तोके तनये दस्म विश्वपते पर्षि राधो मघोनाम्॥ ७॥

(१) **सुदानवः**=उत्तम दानशील अथवा वासनाओं का खण्डन (दाप् लवने) करनेवाले, **देवयवः**=उस महान् देव प्रभु को अपने साथ जोड़ने की कामनावाले लोग **रथ्यम्**=रथ वहन में उत्तम **अश्वं न**=अश्व के समान प्रभु को **गीर्भीः**=स्तुतिवाणियों के द्वारा **मर्मृज्यन्ते**=अपने अन्दर शुद्ध करते हैं। अपने हृदयों में प्रभु के प्रकाश को देखने का प्रयत्न करते हैं। ये उपासक यह समझते हैं कि प्रभु ने ही उनके शरीर-रथ को लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाना है। प्रभु का स्तवन करते हुए ये प्रभु को अपने अन्दर देखने का प्रयत्न करते हैं। (२) हे **दस्म**=सब दुःखों के नाशक **विश्पते**=सब प्रजाओं के पालक प्रभो! आप हमारे **तोके**=पुत्रों में व **तनये**=पौत्रों में **उभे**=दोनों ही में **मघोनाम्**=(मघ=मख) यज्ञशील पुरुषों की **राधः**=सम्पत्ति को **पर्षि**=प्राप्त कराइये। हमारे पुत्र-पौत्र भी ऐश्वर्य को प्राप्त करके यज्ञशील बनें।

भावार्थ–हम 'सुदानु व देवयु' बनकर स्तोमों द्वारा प्रभु के प्रकाश को देखने का प्रयत्न करते हैं। और प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हमारे पुत्र-पौत्र भी सम्पन्न व यज्ञशील बनें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ **देवता**—अग्निः॥ **छन्दः**—निचृदुष्णिक्॥ **स्वरः**—ऋषभः॥

ऋतावा, बृहत्, शुक्रशोचिः

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे। उपस्तुतासो अग्नये॥ ८॥

(१) हे **उपस्तुतासः**=(स्तोतारः) स्तोता लोगो! **मंहिष्ठाय**=उस **दातृतम**=सर्वाधिक देनेवाले **अग्नये**=अग्रेणी प्रभु के लिये **प्रगायत**=गायन करो। उस प्रभु के लिये गायन करो जो **ऋताव्ने**=ऋत का रक्षण करनेवाले हैं। स्तोता को भी प्रभु ऋतमय जीवनवाला बनाते हैं। (२) उस प्रभु के लिये गायन करो जो **बृहते**=वृद्धि को प्राप्त हुए-हुए हैं, सर्वमहान् हैं। **शुक्रशोचिषे**=दीप्त ज्ञानवाले व दीप्त तेजवाले हैं।

भावार्थ–प्रभु का स्तवन करनेवाला भी ऋतमय जीवनवाला, प्रवृद्ध शक्तियोंवाला व दीप्त तेजवाला बनता है।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—स्वराड् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

वीरवद् यशः, वाजेभिः सुमतिर्नवीयसी

आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत्॥ ९॥

(१) **मघवा**=वह ऐश्वर्यशाली प्रभु **वीरवत्**=वीर सन्तानों से युक्त **यशः**=यश को **आवंसते**=देते हैं। **समिद्धः**=हृदय में समिद्ध (प्रकाशित) हुए-हुए ये प्रभु **द्युम्नी**=ज्ञान-ज्योति को प्राप्त करानेवाले होते हैं और **आहुतः**=समन्तात् दानोंवाले होते हैं। (२) **अस्य**=इस प्रभु की **सुमतिः**=कल्याणीमति **नवीयसी**=अतिशयेन स्तुत्य है। यह **नः अच्छा**=हमारे प्रति **वाजेभिः**=शक्तियों के साथ **कुवित् आगमत्**=खूब ही प्राप्त हो।

भावार्थ—हमारे हृदयों में प्रकाशित होते हुए प्रभु हमारे लिये ज्ञान-ज्योति को दें। वीर सन्तानों से युक्त यश को प्राप्त करायें। और शक्तियों के साथ स्तुत्य सुमति को दें।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—आर्चीभुरिग्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रियाणां प्रेष्ठम्

प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुह्यासावातिथिम्। अग्निं रथानां यमम्॥ १०॥

(१) हे **आसाव**=शरीर में समन्तात् सोम का सम्पादन करनेवाले स्तोतः! तू उस **अतिथिम्**=निरन्तर गतिशील महान् अतिथि प्रभु को **स्तुहि**=स्तुत कर, जो प्रभु **उ**=निश्चय से **प्रियाणां प्रेष्ठम्**=प्रियों में प्रियतम हैं। (२) उस प्रभु को स्तुत कर जो **अग्निम्**=तुझे आगे और आगे ले चलनेवाले हैं। तथा **रथानां यमम्**=शरीर-रथों के नियन्ता हैं।

भावार्थ—स्तोता के प्रभु प्रियतम अतिथि हैं, उसे आगे ले चलनेवाले हैं और उसके रथ के नियन्ता हैं।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—निचृत् पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

पुण्य-पाप के ज्ञाता प्रभु

उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो ववर्तति।
दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः॥ ११॥

(१) **यः**=जो **उदिता**=हमारे उत्कृष्ट कर्मों को व **निदिता**=निन्दनीय कर्मों को **वेदिता**=जानता है। और उन कर्मों के अनुसार ही वह **यज्ञियः**=पूजनीय प्रभु **वसु आववर्तति**=धनों को समन्तात् प्राप्त कराता है। (२) **धिया**=बुद्धि के साथ **वाजम्**=शक्ति को **सिषासतः**=हमारे लिये सम्भक्त करने की कामनावाले **यस्य**=जिस प्रभु की **ऊर्मयः**=ज्ञानदीप्तियाँ (ऊर्मि Light) उस प्रकार **दुष्टराः**=कठिनता से अभिभूत करने योग्य हैं **न**=जैसे **प्रवणे**=निम्न प्रदेश में **ऊर्मयः**=तरंगें। झुकाव की ओर गतिवाली तरंगों का वेग जैसे दुस्तर होता है, इसी प्रकार प्रभु के प्रकाश को भी कोई अभिभूत नहीं कर सकता। ये प्रभु हमें बुद्धि के साथ बल को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे पुण्य-पाप को जानते हुए हमें कर्मानुसार वसुओं को प्राप्त कराते हैं। प्रभु के प्रकाश अभिभूत करने योग्य नहीं। प्रभु ही हमें बुद्धि व बल प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

सुहोता-स्वध्वरः

मा नो हृणीतामतिथिर्वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः। यः सुहोता स्वध्वरः॥ १२॥

(१) वे प्रभु **नः**=हमारे लिये **मा हृणीताम्**=क्रोधवाले न हों, हम प्रभु के कोपभाजन न हों। उस प्रभु के जो **अतिथिः**=हमारे हित के लिये निरन्तर गतिशील हैं, **वसुः**=सब को बसानेवाले हैं और **अग्निः**=अग्रेणी हैं। (२) **एषः**=ये प्रभु **पुरुप्रशस्तः**=अत्यन्त प्रशस्त हैं। **यः सुहोता**=जो प्रभु उत्तम दाता हैं और **स्वध्वरः**=उत्तम हिंसारहित कर्मोंवाले हैं।

भावार्थ–हम प्रभु के कोपभाजन न हों। प्रभु की तरह ही निरन्तर क्रियाशील बनें, सब को बसानेवाले हों, आगे बढ़ें, प्रशस्त कर्मों को करें, दानशील व यज्ञशील हों।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराड् बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥

निर्मल स्तुतिवचन व सुख वृद्धिवाले कर्म

मो ते रिषन्ये अच्छोक्तिभिर्वसो ऽग्ने केभिश्चिदेवैः।
कीरिश्चिद्धि त्वामीट्टे दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः॥ १३॥

(१) हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **ते**=वे **उ**=निश्चय से **मा रिषन्**=मत हिंसित हों, **ये**=जो **अच्छोक्तिभिः**=निर्मल स्तुतिवचनों से तथा **केभिः चित् एवैः**=(क=सुख) निश्चय से सुख के वृद्धिकर कर्मों से आपके स्तुति करनेवाले होते हैं। (२) **कीरिः**=स्तोता **चित्**=निश्चय से **त्वाम्**=आपको **ईट्टे**=स्तुत करता है। यह **दूत्याय**=ज्ञानसन्देश के वहन रूप कर्म को करनेवाला होता है। इस कर्म के लिये ही अपने जीवन को अर्पित करता है। **रातहव्यः**=हव्यों को देनेवाला, अर्थात् अग्निहोत्र करनेवाला होता है। **स्वध्वरः**=उत्तम हिंसारहित कर्मों में प्रवृत्त होता है।

भावार्थ–हम निर्मल स्तुतिवचनों से तथा सुखवृद्धि के कारणभूत कर्मों से प्रभु का उपासन करें। ज्ञान-सन्देश को सर्वत्र प्राप्त करायें, यज्ञशील हों, उत्तम हिंसारहित कर्मों में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निर्मरुतश्च॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

प्रभु की मित्रता के लिये

आग्ने याहि मरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये। सोभर्या उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे॥ १४॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **आयाहि**=मुझे प्राप्त होइये। **मरुत् सखा**=(मितराविणां सखा) आप कम (मपा तुला) बोलनेवाले क्रियाशील पुरुषों के मित्र हैं। आप **रुद्रेभिः**=रोगों को दूर भगानेवाले इन प्राणों के द्वारा **सोमपीतये**=शरीर में सोम के रक्षण के लिये होते हैं। (२) हे प्रभो! आप **सोभर्याः**=जीवन के कर्त्तव्यों का सम्यक् भरण करनेवाले की **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को **उप (आयाहि)**=समीपता से प्राप्त होइये, और **स्वर्णरे**=प्रकाशमय लोक को प्राप्त करानेवाले यज्ञों में **मादयस्व**=आनन्दित कीजिये।

भावार्थ–हम प्रभु की मित्रता की प्राप्ति के लिये परिमित बोलनेवाले हों, प्राणसाधना द्वारा सोम का शरीर में रक्षण करें, प्रभु-स्तवन के साथ यज्ञों में आनन्द का अनुभव करें।

इत्यष्टमं मण्डलम्